अक्टूबर १९३५

मूल्य ।।।)

भाग ४६, संख्या १

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७७

वार्षिक मूल्य ३)

इस अंक के संपादक—डाक्टर गोरखप्रसाद

विशेष संपादक—डाक्टर श्रीरंजन, डाक्टर रामशरणदास, श्री श्रीचरण वर्मा, स्वामी हरिशरणानंद और डाक्टर सत्यप्रकाश।

निवेदन

यदि यह अंक आपको पसंद आया हो तो कृपया इसकी सिफ़ारिश अपने मित्रों से कर दीजिये। इस विशेषांक का अंदर पुस्तकाकार भी छपा है। पुस्तक सुंदर जिल्द-सहित है और मोटे काग़ज़ पर छपी है। मूल्य १)

मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञान

(जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है)

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

भाग ४६

अक्टूबर-मार्च सन् १९३७-३८

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य ३)] [इस जिल्दका १॥)

विषयानुक्रमणिका

आरोग्य-शास्त्र और शरीर-विज्ञान

औद्योगिक

चित्र-कला

जीवन-चरित्र

वनस्पति-शास्त्र

वैद्यक-शास्त्र

मिश्रित

अक्टूबर १९३७

मूल्य ।।।)

भाग ४६, संख्या १

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या [illegible]

वार्षिक मूल्य ३)

इस अंक के संपादक—डाक्टर गोरखप्रसाद

विशेष संपादक—डाक्टर श्रीरंजन, डाक्टर रामशरणदास, श्री श्रीचरण वर्मा, स्वामी हरिशरणानंद और डाक्टर सत्यप्रकाश।

निवेदन

यदि यह अंक आपको पसंद आया हो तो कृपया इसकी सिफारिश अपने मित्रों से कर दीजिये। इस विशेषाङ्क का मैटर पुस्तकाकार भी छपा है। पुस्तक सुंदर जिल्द-सहित है और मोटे कागज़ पर छपी है। मूल्य १)

मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी [illegible]

विज्ञान

(जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है)

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान सम्पादक - डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०

विशेष सम्पादक

डा० गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, (गणित) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, (आयुर्वेद-विज्ञान)

डा० रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीव-विज्ञान) श्री श्रीचरण वर्मा, एम० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)

डा० श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान) श्री रामनिवासराय, (भौतिक-विज्ञान)

प्रबंध संपादक— श्री राधेलाल मेहरोत्रा, एम० ए०, एल-एल० बी०

भाग ४६

अक्टूबर-मार्च सन् १९३७-३८

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य ३)] [इस जिल्दका १॥)

विषयानुक्रमणिका

आरोग्य-शास्त्र और शरीर-विज्ञान

औद्योगिक

चित्र-कला

जीवन-चरित्र

वनस्पति-शास्त्र

वैद्यक-शास्त्र

मिश्रित

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते;
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४६	प्रयाग । तुलार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । अक्टूबर, सन् १९३७ ईसवी	संख्या १

फल-संरक्षण

फल-संरक्षणका महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। करोड़ों रुपयों का व्यवसाय इसीपर निर्भर है। थोड़ी पूँजीसे भी यह रोज़गार लाभ-सहित आरम्भ किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गृहस्थ फल-संरक्षणके ज्ञानसे अपना पैसा बचा सकता है और रुचिकर तथा पौष्टिक भोज्य पदार्थ सदा अपने पास तैयार रख सकता है।

परंतु अभी तक हिंदीमें कोई भी पुस्तक इस विषयपर नहीं थी। आशा है यह विशेषांक उस कमीको पूरा करेगा और व्यवसायी तथा गृहस्थ दोनोंका प्रिय होगा।※

※यह लेख एक प्रसिद्ध अमरीकन पुस्तकके आधार पर लिखा गया है परंतु अधिकांश रीतियों और नुसख़ोंकी जाँच करली गई है और आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके इसे भारतवर्षके लिये पूर्ण तथा उपयोगी बना दिया गया है।

१—इतिहास

वैज्ञानिक डिब्बा-बन्दीके विकासका इतिहास—डिब्बाबन्दी करके भोज्य पदार्थोंका संरक्षण बिल्कुल नया तरीक़ा है। भोज्य पदार्थोंके संरक्षणकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत प्राचीन समयमें ही आकर्षित हुआ था, लेकिन सुखाने, अचार डालने, धुंआ दिखाने और मुरब्बा बनानेके सिवाय भोज्य पदार्थको सुरक्षित रखनेका डिब्बाबन्दीवाला उपाय उन्हें मालूम न था। डिब्बाबन्दीसे भोज्य पदार्थ सुरक्षित रक्खा जा सकता है इसका ज्ञान तो लोगोंको ईसाकी १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें ही हुआ।

फ्रांसकी सरकारको सर्वप्रथम इस बातका पता लगा। डिब्बाबंदीका आविष्कार नेपोलियनके महायुद्ध के कारण हुआ। अठारहवीं शताब्दीके अंतमें फ्रांसकी सरकारने घोषित किया कि जो कोई फ़ौजी और जहाज़ी कामोंके लिये भोज्य पदार्थोंके सँरक्षणकी सर्वोत्तम

रीतिका आविष्कार करेगा उसे पारितोषिक दिया जायगा। पारितोषिककी आशासे उत्साहित होकर पैरिस-निवासी महाशय निकोलस ऐपर्टने परीक्षण आरम्भ किया। सन् १७९५ से सन् १८०९ ईसवी तक इस कार्यमें वह लगे रहे और तब उन्होंने अपनी सरकारके सामने भोजन-संरक्षणके विषयपर एक पुस्तक उपस्थित की। इसपर उनको १२००० फ्रैंन्क (लगभग ६०००) रु०) का पारितोषिक मिला। सन् १८१० में उनकी रीति प्रकाशित की गई।

ऐपर्टकी रीति—ऐपर्टकी रीति यह थी कि फलोंको गरम करनेके बाद शीशेकी बोतलमें बन्द कर दिया जाय और बोतलमें डाट लगा दिया जाय। इसके लिये बोतलको पानीमें रख कर पानीको धीरे धीरे गरम किया जाय। भोज्य पदार्थके गुणके अनुसार उसे न्यूनाधिक समय तक इस प्रकार खौलते पानीमें रक्खा जाय। ऐपर्टको इस बातका पता नहीं था कि क्यों ऐसा करनेसे भोज्य पदार्थ टिकाऊ हो जाता है। उसका विश्वास था कि वायुसे ही वस्तुएँ सड़ती हैं और वायुके निकाल देनेसे भोजन सुरक्षित रहेगा। अपनी पुस्तकमें उसने लिखा था, "जब भीतरी वायु खौलते पानीके प्रभावसे दोषरहित कर दी जाय तब बोतलको इस प्रकार बन्द करना चाहिये कि बाहरकी वायु भीतर किसी प्रकार ज़रा सी भी न घुसने पाये।"

ऐपर्टको सफलता इसलिये मिली कि उसको अपने जीवनमें बहुत विस्तृत अनुभव था। उसने पचास वर्षों तक चटनी, अचार, मुरब्बा, मिठाई बनानेका काम किया था और शराब बनाने और भोजन पकानेके कार्यमें भी वह निपुण था। उसने अनेक वस्तुओंको अनेक रीतियोंसे डिब्बोंमें बन्द करके जाँच की थी कि किस प्रकार भोजन सुरक्षित रक्खा जा सकता है। उसने डिब्बा-बन्दीके हुनरको इतना दोषरहित रूप दिया था कि आज भी उससे अच्छी रीतिका पता नहीं लगा है। हाँ, उसके साधारण बरतनों और यन्त्रों पर आजकलके वैज्ञानिक हँसेंगे। परन्तु यद्यपि उसका संरक्षण-सम्बन्धी सिद्धान्त ग़लत था तो भी उसकी रीति बिल्कुल ठीक थी।

गाइलूज़कके प्रयोग—एक प्रसिद्ध फ्रेंच रसायनज्ञ गाइलूज़कको फ्रांसकी सरकारने इस बातकी और अच्छी तरहसे जाँच करनेका कार्य सौंपा। इस वैज्ञानिक ने यह रिपोर्ट दी कि वायुके रहनेसे भोज्य पदार्थ ओषजनसे मिलकर बिगड़ जाता है और इसलिये वायुके निकल जानेपर भोजन बिगड़ने नहीं पाता। लोगोंको इस सिद्धांतको, यद्यपि यह भी ग़लत था, मानना ही पड़ा। सच्ची बातका पता तब लगा जब लोगोंने कीटाणुओंके विषयमें विशेष जानकारी पायी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया लोगोंको ऐपर्टकी रीतिका मूल्य मालूम होता गया। वह इस कलाका पिता माना जाता है जिस कलासे सारे संसारको लाभ हुआ। उसकी सरकारने एपार्टके नामपर एक स्मारक बनवाया है। उसकी रीति इतनी सरल थी कि कुछ ही वर्षोंमें भोजनको डिब्बेमें बन्द करनेका बड़ा भारी व्यवसाय चल पड़ा। बोतलोंको गर्म करनेके लिये वह खुले बरतनमें खौलते हुए पानीमें अपनी बोतलोंको रखता था और यही रीति आज भी घर-घर डिब्बाबन्दीके लिये काममें लाई जाती है। यद्यपि ऐपर्टकी रीति फ़ौजी और जहाज़ी भंडारोंके लिये निकाली गई थी तो भी इस तरहसे संरक्षित सामग्री इतनी संतोषजनक होती थी कि घरेलू कामोंमें भी शीघ्र ही बहुत अधिक मात्रामें लायी जाने लगी।

इंगलिस्तानमें डिब्बाबन्दीका आरम्भ—सन् १८०७ में श्री सैडिंगने एक रीति भोजन-संरक्षणकी आंग्ल-कला-परिषद्के सामने उपस्थित की। उनके पर्चेका शीर्षक था "घरेलू और जहाज़ी भंडारोंके लिये बिना चीनीके फलोंको सुरक्षित रखनेकी एक रीति।"

ऐसा विश्वास किया जाता है कि सैडिंग जब फ्रांसमें सैर करने गया था तो उसने इस रीतिको ऐपर्टसे ही प्राप्त किया था।

डिब्बेका विकास—इस समयके बाद डिब्बे-बन्दीका उद्योग डिब्बेकी उत्तमतापर निर्भर था। डिब्बा बनानेकी रीतियाँ पहले बहुत भद्दी थीं। उदरको कैंचीसे काट कर उनके सिरोंको सँड़सीसे फँसा दिया जाता था और फिर राँगेसे जोड़ दिया जाता था। ठप्पा मार कर पेंदी और ढक्कन काट लिये जाते थे और इसके लिये छतकी ऊँचाईसे हथौड़ा नीचे गिराया जाता था। हाथसे ही यह डिब्बेमें जोड़े जाते थे। डिब्बे ज़रा लम्बे होते थे। इन रीतियोंसे विकास होते-होते अब डिब्बे मशीनोंसे बनते हैं जिससे डिब्बे अब
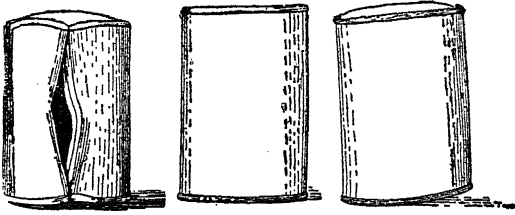
चित्र नं० १—यदि बिना कृमिरहित किये ही सामग्री डिब्बेमें बंद की जायगी तो वह सड़ने लगेगी, और डिब्बा फूल जायगा, जैसा कि दाहिनी ओर दिखाया गया है, या फट जायगा, जैसा कि बाईं ओर दिखाया गया है। बीचमें बिना फूला हुआ डिब्बा दिखाया गया है।

बहुत सस्ते पड़ते हैं। व्यवसायमें शीशेके बरतनकी अपेक्षा टीनके डिब्बे ही काममें आरम्भसे आने लगे, क्योंकि एकाएक गर्मी पानेसे वे चटकते नहीं और शीशेसे उनका कम ख़र्च पड़ता है। फिर टीनका डिब्बा शीशेके डिब्बेसे हलका होता है। इसलिये किराया कम लगता है और रास्तेमें फूटनेका डर भी कम रहता है। आजकल प्राय: केवल टीनके डिब्बोंका ही प्रयोग होता है। तो भी बहुत बढ़िया और क़ीमती मालके लिये सौन्दर्यके ख़्यालसे शीशेके बरतनोंका प्रयोग किया जाता है।

सड़नेका असली कारण—सन् १८२२ से १८६५ तक टिंडल और पास्च्यूरके समयमें सड़नेके असली कारणका पता लगा। बात यह है कि अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओंके कारण चीज़ें सड़ती हैं। ये कीटाणु इतने छोटे होते हैं कि वे केवल ख़ुर्दबीनसे ही दिखाई पड़ते हैं। अब इस बातका अच्छी तरह पता चल गया है कि डिब्बेके भीतर हवाके रहने या न रहनेसे कुछ नहीं होता। हवाके साथ साधारणत: ये कीटाणु रहते हैं। बस हवा लगनेसे सड़नेका यही कारण है। इन कीटाणुओंको अँग्रेज़ीमें जर्म्स, माईक्रोब्स, बैक्टीरिया आदि विविध नामोंसे सूचित किया जाता है और मोटे हिसाबसे इन सब विभिन्न शब्दोंसे एक ही अर्थ निकलता है।

अमरीकामें डिब्बेबन्दीका रोज़गार—अमरीकामें डिब्बेबन्दीका पहला कारख़ाना सन् १८१६ में खुला और मछली, झींगे और घोंघे डिब्बोंमें बन्द किये जाते थे। धीरे-धीरे कई एक और नये कारख़ाने खुले और यह रोज़गार ख़ूब ज़ोरोंसे बढ़ा। तब नये-नये कारख़ाने जगह-जगह खुल गये। इसमें अधिकांश कारीगर बहुत होशियार नहीं होते थे जिससे माल अकसर ख़राब होता था। इससे डिब्बाबन्द चीज़ोंपर से लोगोंका विश्वास उठने लगा। अन्तमें कैनर्स ऐसोसियेशन (डिब्बाबन्द करनेवालोंका संघ) स्थापित हुआ और तबसे नवीन और उत्तम रीतियोंसे काम होने लगा।

डिब्बा-बन्दीका सिद्धांत अब भी नहीं समझे—लोग कारख़ानोंमें दूसरोंको घुसने नहीं देते थे। कोई बाहरी व्यक्ति यह नहीं देख सकता था कि काम कैसे होता है। बात असलमें यह थी कि कारख़ानेवालोंको इतना कम ज्ञान था कि उनको अपने अज्ञानको सावधानीसे छिपाना पड़ता था। थोड़ी बहुत बातें जो वे जानते थे उन्हें अत्यन्त गोपनीय रहस्य समझ कर वे अच्छी तरह छिपाये रखते थे। सदा ही खटका लगा रहता था कि कहीं माल सड़ने न लगे और हानि न हो जाय, क्योंकि सब कुछ होते हुए भी उनका ज्ञान इतना पक्का न था कि हर बार माल बढ़ियाँ बने। कीटा-

णुओंका ज्ञान अभी फैला नहीं था। अभी तक लोग यही समझते थे कि कीटाणुओंका सम्बन्ध केवल रोगों-से है। डिब्बा-बन्दीके कारख़ानेवाले कीटाणुओंका नाम नहीं लेते थे क्योंकि वे समझते थे कि लोग इससे भड़क जायँगे और डिब्बेमें बन्द सामग्री खायेंगे हीनहीं। अगर किसी वर्ष कीटाणुओंका अधिक प्रकोप हुआ तो यह बात किसीकी समझमें न आती थी और केवल यही कहा जाता था कि इस वर्ष ऋतु ही अनुकूल नहीं है। अब कीटाणुओंका ज्ञान इतना पक्का हो गया है कि हम लोग ठीक-ठीक जानते हैं कि क्या करना चाहिये और हम आजकल शर्तिया प्रत्येक बार सफलता पा सकते हैं। कीटाणुओंसे बचनेका सबसे अमोघ अस्त्र सफ़ाई है, ठीक उसी तरह जैसे आधुनिक शल्य-चिकित्सा पूर्ण स्वच्छतापर टिका हुआ है। अब इस उद्यमका कायापलट हो गया है और बड़ी वैज्ञानिक रीतिसे सब काम होता है।

बनानेकी रीतियाँ—आरम्भमें खुले बरतनोंमें खौलाये गये पानीसे डिब्बे गरम किये जाते थे। इस प्रकार २१२ डिग्री फ़ा० (खौलते पानीके तापक्रम) से अधिक आँच बोतलोंको नहीं दी जा सकती थी। शीघ्र ही पता चला कि यदि बोतलोंको किसी प्रकार और ज़्यादा गरम किया जा सके तो अधिक कीटाणु मरेंगे, और इस प्रकार थोड़े ही समय तक आँच दिखानेसे अधिक सफलता मिल सकेगी। इसलिये कुछ दिनोंके बाद लोग पानीमें नमक घोल कर खौलाने लगे जिससे कि तापक्रम थोड़ा सा बढ़ जाता था। कुछ समयके बाद एक दूसरी रीति लोगोंको पसन्द आई। उनको मालूम हुआ कि यदि नमकके बदले कैल्सियम-क्लोराइड पानीमें ख़ूब अधिक मात्रामें घोल दिया जाय तो २४० डिग्री फ़ा० तकका तापक्रम आसानीसे पा सकते हैं। परन्तु इस रीतिमें एक असुविधा यह थी कि डिब्बे बदरंग हो जाते थे और उनके साफ़ करनेमें बहुत पैसा ख़र्च होता था। अंतमें लोगोंने उस रीतिको पसंद किया जिसमें भापको दबावमें रक्खा जाता है। पानीको बन्द बरतनमें रख कर ख़ूब आँच दिखाई जाती है और भाप के निकलनेके लिये छेद बहुत छोटा रक्खा जाता है, जिसपर एक कमानीदार ढक्कन लगा रहता है। इस कमानीको कसने या ढीला करनेसे भापके दबावको इच्छानुसार अधिक या कम किया जा सकता है और २४० डि० तकका तापक्रम आसानी से पाया जा सकता है।

अन्य मशीनें—आजकल तो प्रत्येक कामको सुविधाजनक रीतिसे करनेके लिये मशीनें बनी हैं जिनसे हर प्रकारके फल और तरकारी डिब्बोंमें बहुत शीघ्र भरे जासकते हैं। फलोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुँचानेके लिये पट्टे, उनके धोने, चुनने, छीलने, तराशने, भरने और बन्द करनेके लिये अलग-अलग मशीनें बन गई हैं। इन मशीनोंकी सहायतासे बहुतसा माल थोड़ेसे स्थानमें थोड़ेसे समयमें डिब्बोंमें बन्द किया जा सकता है।

अमरीकामें डिब्बाबन्द सामग्रीकी खपत—सन् १८९० में इस उद्यममें लगे हुए एक हज़ार कारख़ाने थे और वहां १२ करोड़ रुपयेका माल प्रति वर्ष तैयार होता था। सन् १९१६ में लगभग १½ अरब रुपयेका माल प्रतिवर्ष बनने लगा। साथ ही डिब्बेमें बन्द चीज़ें सस्ती भी हो गईं जिससे गरीब लोग भी उन्हें खा सकते थे। अब जनताको इस बातका पता लग गया है कि ये चीज़ें बड़ी सफ़ाईसे तैयार-की जाती हैं और ताज़े भोजनोंकी तरह ही यह सब डिब्बेमें बन्द सामग्रीभी स्वास्थ-प्रद है। सन् १९१६ में तीन खरब डिब्बे खर्च हुये थे। आजकलतो इससे कहीं अधिक माल बनता होगा।

यह आवश्यक है कि भोजनमें फल और हरी तर-कारियाँ भी सम्मिलित रहें। परंतु प्रत्येक ऋतुमें, विशेष कर बड़े शहरोंमें, ताज़े फल और तरकारियोंका मिलना मुश्किलहो जाता है। फ़सल पर शहरोंसे दूरके देहातों में कुछ चीज़ें बहुत सस्तीहो जाती हैं। परंतु बहुत दिन तक न ठहर सकने के कारण वे न तो अपने जन्म-स्थानमें अधिक दिनों तक रक्खी जासकती हैं और न शहरों तक पहुँचाई जा सकती हैं। परंतु उचित रीतिसे डिब्बेमें

बंद करने पर उनकी ताज़गी बनी रहती है। वे बहुत दूर तक भेजी जा सकती हैं और बहुत दिनों तक रक्खी भी जा सकती हैं। यही कारण है कि डिब्बेबंदीका व्यवसाय उत्तरोत्तर महत्व पूर्ण होता जाता है।

भारतवर्षमें डिब्बाबंद सामग्रीकी खपत--भारतवर्षमें लाखों रुपयेका डिब्बाबंद माल प्रतिवर्ष विदेशसे आता है। इसमें उस सामग्रीकी गिनती नहीं है जो भारतवर्ष में ही बनता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह रोज़गार कितना बड़ा है। अभी तक डिब्बाबंद माल अधिकतर अँग्रेज़ लोग ही व्यवहार में लाते हैं। यदि इसका रिवाज़ साधारण जनता में चल जाय तो यह रोज़गार और भी बढ़ जायगा।

[२]

कीटाणु-विद्या

वैज्ञानिकोंने निश्चय रूपसे सिद्ध कर दिया है कि भोज्य पदार्थोंके बिगड़नेका कारण यह है कि उनमें जीवित कीटाणु पड़ जाते हैं, जिससे उनमें ख़मीर उठने लगता है या वे सड़ जाते हैं। यह तीन जातिके हैं। फफूँद (भुकड़ी), ख़मीर और बैक्टीरिया। इनमेंसे एक या अधिक जातियोंके रहनेसे भोज्य सामग्री बिगड़ने लगती है। ये करोड़ोंकी संख्यामें सब जगह उपस्थित रहते हैं। ये पानीमें हैं जिसे हम पीते हैं, हवामें हैं जिसमें हम साँस लेते हैं, और पृथ्वीपर हैं जिस पर हम चलते हैं। फफूँदको छोड़कर ये सब इतने छोटे हैं कि वे बिना खुर्दबीनके देखे नहीं जासकते। साधारण पौधों और इन फफूँद, ख़मीर आदिमें अंतर यह है कि इनमें हवा और पृथ्वीसे हरे पौधोंकी तरह भोजन खींचनेकी शक्ति नहीं होती। इसलिये वे दूसरे पौधों या जानवरोंके माँससे अपना भोजन चूसते हैं।

यद्यपि बिना इन कीटाणुओंको समझे भी भोज्य-पदार्थ-संरक्षणका काम सफलता पूर्वक किया जासकता है, तोभी इनके सिद्धांतको समझ लेनेसे काम अधिक आकर्षक हो जाता है और सफलता लगातार मिलती है।

फफूँद—ख़मीर और बैक्टीरियाके प्रतिकूल फफूँद कोरी आंखसे दिखाई पड़ता है। फफूँदमें विशेषता यह है कि यह खटाईमें भी पनप सकता है। अँधेरे और सील की जगहों में, विशेष कर जहाँ वायु का आवागमन कम हो, यह ख़ूब बढ़ता है। फलों पर फफूँद आसानीसे लगता है। पहले यह फ़ाख़तई रंगका और रुईकी तरह नर्म और पोला रहता है। पीछे यह रंगीनहो जाता है, जैसे नीला, हरा, ख़ाकी, काला या पीला। ख़ुर्दबीनसे देखने पर पता चलता है कि इसकी जड़ें उस सामग्रीके भीतर घुस जाती हैं जिस पर यह होता है और ऊपर निकले भाग (तने) में विशेष अंग होते हैं जिनपर हज़ारों बीज होते हैं। यह बीज फफूँदसे छूट कर हवामें उड़ने लगते हैं और दूसरी जगहोंमें पहुँच जाते हैं। ये सब जल्द बढ़ते हैं।

हवामें इतने अधिक ऐसे बीज उड़ते रहते हैं कि कोई भी चीज़ हवामें रहे, उसपर ये ज़रूर पड़ जायेंगे। यदि कोई फल काट कर किसी बरतन पर रख दिया जाय तो फल पर फफूँद लगने लगेगा, क्योंकि काटते समय इस पर फफूँद के बीज गिर पड़ते हैं। यद्यपि फफूँद ऊपर ही ऊपर लगता है, तोभी इसका स्वाद सारे भोजन में फैल जाता है। पहले लोगोंका विश्वास था कि यदि किसी चीज़ पर फफूँद लग जाय तो वह वस्तु और न सड़ेगी; केवल भुकड़ीके फेंक देने पर नीचे अच्छा भोजन बचा हुआ मिलेगा। लेकिन असल बात यह है कि भुकड़ी लगनेसे कुल भोजनका स्वाद ही बदल जाता है।

खौलते पानीसे कमके तापक्रममें ही फफूँद मर जाती है। यदि खानेकी चीज़ोंको बरतनोंमें रख कर खौलते पानी में गर्म किया जाय और तुरंत ढक्कन इस प्रकार बंद किया जाय, कि अंदर हवा न घुस सके तो उस वस्तु पर भुकड़ी न लगेगी। सिरके से भी फफूँद मर जाती है। सिरके में डुबाकर अगर एक टुकड़ा कागज़ मुरब्बे पर चिपका दिया जाय, या यदि उसपर पिघले मोमकी एक तह जमा दी जाय, तो उसपर भुकड़ी न

लगेगी। इन दोनों तरीक़ोंसे मुरब्बेके ऊपर गिरे फफूँद के बीज मर जायेंगे।

ख़मीर—जलेबी या पावरोटी बनानेके लिये जो ख़मीर उठाया जाता है वह अत्यंत सूक्ष्म ख़मीरके पौधे के कारण उठता है। ख़मीरके पौधे इस प्रकार बढ़ते हैं कि उनकी बगलमें आँखें निकल आती हैं। यह शीघ्र बढ़ जाते हैं और अपनी माँ से अलग होजाते हैं; तब उनमें स्वयम् आँखें निकलती हैं और यही क्रम बराबर जारी रहता है। परन्तु ख़मीर की सेलोंमें बीज भी बन सकता है और जब सेलें कट जाती हैं तो यह बीज हवामें उड़ने लगते हैं। जब ख़मीर उठता है तो करबन-द्विओषिद् नामक गैस निकलने लगती है। इसीसे चीज़ें बजकने लगती हैं। चूँकि ख़मीरके बीज हवामें और फल व तरकारियोंके छिलकोंमें हमेशा मौज़ूद रहते हैं, इसलिये उनको मार डालना संरक्षणके लिये आवश्यक है। खौलते पानीसे कमके तापक्रममें ख़मीर और ख़मीरके बीज भी मर जाते हैं।

बैक्टीरिया—बैक्टीरिया पर विजय पाना सब से कठिन है। यह सर्वत्र असंख्य संख्यामें वर्तमान रहते हैं। ये भी पौधे हैं परंतु ये ख़मीरसे भी छोटे हैं। बैक्टीरियाका एक सेल बहुत ही थोड़े समयमें युवा अवस्था प्राप्त करता है और बच्चे पैदा करने लगता है। यह काम इतना जल्द होता है कि कुछ ही घंटोंमें एकसे लाखों बैक्टीरिया पैदा होजायेंगे। इनसे एक लसलसी, रंगरहित, तरल वस्तु पैदा होती है। ये सब तरहके खानोंमें जी सकते हैं, परंतु खटाईमें यह नहीं पनपते। इसीलिये खट्टे फलोंके मुरब्बे अधिक दिन तक ठहर सकते हैं।

खौलते हुये पानीमें कुछ समय तक रखनेसे बैक्टीरिया मर जाते हैं। परन्तु गरमीके साथ ही पानी या पानीकी भाप भी उपस्थित रहनी चाहिये। कई तरहके बैक्टीरियामें बीज भी पैदा होते हैं जो आसानीसे नहीं मरते। यद्यपि बैक्टीरिया स्वयम् खौलते पानीसे कमके तापक्रममें मर जाते हैं तोभी उनके बीज खौलते पानीमें कई घंटों तक जीवित रह सकते हैं। कुछमें तो १६ घंटे तक पानीमें खौलनेके बाद भी उगनेकी शक्ति सुरक्षित रह जाती है। सुखानेसे प्राय: सभी जीवित पदार्थ मर जाते हैं, परंतु बैक्टीरियाके बीज कई साल तक सुखाने पर भी नहीं मरते। तो भी यदि तीन दिन तक एक-एक घंटे भोज्य पदार्थको खौलते पानीमें रक्खा जाय तो बैक्टीरिया-के बीज साधारणतया मर जाते हैं। कारण यह है कि पहले दिनके गरम करनेके बाद १२ या १८ घंटेमें बीज उग आयेंगे और दूसरे दिन गर्मीमें यह बचे-खुचे बैक्टीरिया भी मर जायेंगे। इस लिये प्राय: कई तरहके फलों को लगातार ३ दिन तक एक-एक घंटा या कम समय तक प्रतिदिन गरम किया जाता है।

इस तरहके बैक्टीरिया जिनके बीज जल्द नहीं मरते खेत और बाग़की ज़मीनोंमें बहुतायतसे होते हैं। यही कारण है कि मटर, सेम आदि तरकारियोंको सुरक्षित रखना फलोंके सुरक्षित रखनेसे अधिक कठिन है। यदि तरकारियोंमें कहीं चोट लग गयी है तबतो उनको सुरक्षित रखना और भी कठिन होजाता है, क्योंकि घावके होजानेसे इनके भीतर घुसनेका मार्ग खुल जाता है और नस नस में बैक्टीरिया भर जाते हैं।

यदि खानेकी चीज़ोंको २४० से २५० डिग्री फ़ा० तक गरम किया जा सके तो बैक्टीरिया और उनके बीज मर जाते हैं। २५० डिगरीका तापक्रम खौलते पानीके तापक्रमसे ३८ डिग्री अधिक है। इतनी अधिक गर्मी पैदा करनेके लिये विशेष यन्त्रोंकी आवश्यकता पड़ती है जिनमें भापको दबावमें रखकर पानी खौलाया जा सके। इसीलिये लगातार तीन दिन तक एक-एक घंटा या कम समय तक प्रतिदिन डिब्बेमें बंदकी हुई सामग्रीको खौलते पानीमें रखनेकी घरेलू रीतिको लोग अधिक पसन्द करते हैं। प्रत्येक दो बार गरम करनेके बीच में डिब्बेको मामूली तापक्रमपर रखा जासकता है जिसमें बैक्टीरियाके बीज निकल आयें और गरम करनेपर वे मर जायँ। कई लोगोंकी राय यही है कि एक बार २५० डिग्री तक गरम करनेके बदले तीन बार खौलते पानीमें गरम करनेसे भोजनका स्वाद अधिक अच्छा बना रहता है। ध्यान रखना चाहिये कि सूखनेसे फल

और तरकारीका ऊपरी भाग कड़ा हो जाता है और इस लिये उसके भीतर गर्मीके घुसनेमें अधिक देर लगती है, जिससे बैक्टीरिया आसानीसे नहीं मरते। चोट लगनेका बुरा असर जो पड़ता है वह ऊपर बतलाया जा चुका है। इसलिये बड़ी सावधानी, स्वच्छता और शीघ्रतासे डिब्बाबन्दीका कुल काम समाप्त करना चाहिये।

रासायनिक क्रिया—कीटाणुओंके अतिरिक्त कुछ रासायनिक क्रियायें भी ऐसी हैं जिनके कारण भोज्य पदार्थ बिगड़ जाता है। फलोंकी सुगंध और स्वाद अक्सर रासायनिक क्रियाके कारण ही बिगड़ जाता है और फल बासी होजाते हैं। डिब्बोंमें बन्द करनेकी क्रियासे उन रासायनिक पदार्थोंका भी नाश होजाता है जिनसे स्वाद बिगड़ता है। इसी लिये यह परम आवश्यक है कि तोड़नेके बाद जहाँ तक हो सके शीघ्र ही फलोंकी डिब्बाबन्दी कर दी जाय।

बैक्टीरियोंकी जाति—बैक्टीरियोंकी कई जातियाँ हैं। परंतु उन सबका यहाँ गिनाना आवश्यक नहीं जान पड़ता। कुछ तो हवाकी उपस्थितिमें, और कुछ बिना हवाके ही, उगते और बढ़ते हैं। कुछके कारण इतनी गैस पैदा होती है कि यदि पदार्थ बन्द डिब्बेमें हो तो डिब्बा फट जायगा। कुछकी उपस्थितिमें विशेष स्वाद और महक आ जाती है, जिससे सड़ी चीज़ोंकी पहचान हो जाती है।

संरक्षणकी विविध रीतियाँ—इसी स्थानपर संरक्षणकी विविध रीतियोंका विचार कर लेना रोचक और लाभदायक होगा। उनके समझ लेनेसे डिब्बेबन्दी आदि ख़ूबी और होशियारीसे की जा सकती है। चार साधारण रीतियोंका प्रयोग किया जाता है—सुखाना, रासायनिक पदार्थ डालना, गरम करना और ठंढा करना।

१—सुखाकर पदार्थोंको सुरक्षित रखना—कदाचित् इसी रीतिका सर्वप्रथम आविष्कार हुआ होगा। पुराने ज़मानेमें केवल धूपमें ही रख कर चीज़ें सुखाई जाती थीं। इन दिनों भी इसी रीतिका बहुत उपयोग किया जाता है, परन्तु बड़े कारख़ानोंमें इससे सुविधा नहीं होती और वहाँ आँच दिखला कर चीज़ें सुखाई जाती हैं। सुखानेसे बहुतसा पानी निकल जाता है और अधिकांश कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। बैक्टीरिया, फफूँद और ख़मीर, सभी, सूखी चीज़ोंमें उग नहीं सकते। धुयेंमें रख कर सुखाई चीज़ोंमें धुयेंमें उपस्थित कीटाणु-नाशकोंके कारण भी ये निश्चेष्ट होजाते हैं। योरुप आदिमें मछली और माँसको अक्सर धुयेंमें या नमक लगा कर, सुखाते हैं। गेहूँ, चावल आदि आपसे आप पौधेमें ही बहुत कुछ सूख जाते हैं और इसी कारण वे इतने दिन चल सकते हैं। जिन चीज़ोंमें चीनीकी मात्रा अधिक रहती है वे यदि कुछ कम भी सूखी रहें तो भी वे शीघ्र नहीं बिगड़तीं। उदाहरणार्थ, किशमिश पूर्णतया न सूखनेपर भी बहुत दिनों तक चलती है। यदि आटेमें कहीं उतना ही पानी रहे जितना किशमिशमें तो यह बहुत जल्द बिगड़ जाय। फल आदिको सुखा लेनेपर उनको ऐसे बरतनमें बंद करना चाहिये जिसमें वे बरसाती हवासे नम न हो सकें। इसके लिये उनको शीशे या चीनी मिट्टीके बरतनोंमें रख कर सच्चा काग लगा देना काफ़ी होगा।

२—रासायनिक पदार्थोंसे—साधारणतया नमक, चीनी, सिरका और मसालोंका उपयोग इस काम के लिये किया जाता है। इन सबोंकी उपस्थितिमें बैक्टीरिया और ख़मीर आसानीसे नहीं बढ़ते। मुरब्बे, अचार, जेली वगैरह इसी लिये आसानीसे बहुत दिन तक चलते हैं कि उनमें उपयुक्त पदार्थोंमें से कोई अवश्य पड़ा रहता है। परन्तु यद्यपि चीनी या मसालोंके कारण इनमें ख़मीर नहीं उठता तो भी इनपर आसानीसे फफूँद लग सकता है। हाँ, अगर उन्हें गरम करके बरतनोंमें अच्छी तरह बंद रक्खा जाय तो बात दूसरी है। इस तरहसे बरतनोंमें बंद करना कि उनमें फफूँद न लग सके बहुत आसान है।

तरकारी, गोश्त और मछलीके सुखानेमें नमक काममें लाया जाता है। छिड़कते ही नमक पानीके अधि-

कांशको तुरंत बाहर खींच लेता है और नमकका घोल उस पदार्थके चारों ओर लिपट जाता है, जिससे बैक्टीरिया फैल नहीं सकता। नमकसे भी तेज़ कई एक पदार्थ जो बैक्टीरियाको एकदम रोक रखते हैं। परंतु ऐसा समझा जाता है कि इनसे स्वास्थ्यको हानि पहुँचती होगी। इसके अतिरिक्त जब इन रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग भोज्य पदार्थके संरक्षणमें किया जाता है, तो सड़नेका विशेष डर न रहनेके कारण लोग सफ़ाईपर ध्यान नहीं देते और अक्सर बासी और बुसी हुई चीज़ोंको डिब्बेमें बंद कर देते हैं। बेंज़ोइक तथा सैलिसिलिक एसिड और उनके लवण, तथा फ़ारमैल्डीहाइड और बोरिक एसिड और उनके लवणोंका प्रयोग किया जाता है। सौभाग्यकी बात यह है कि अब गर्मीसे भोज्य पदार्थके संरक्षणकी रीति ऐसी अचूक होगई है कि इन रासायनिक संरक्षकोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

परंतु अबभी चटनी और मुरब्बे बिकते हैं जिनमें सैलिसिलिक ऐसिड, सोडियम बेनज़ोएट या सुहागा पड़ा रहता है। बात यह है कि होटल वाले और कुछ घरगृहस्थभी रासायनिक संरक्षक पड़े सामानको पसंद करते हैं क्योंकि डिब्बा खोलनेपर ये शीघ्र नहीं बिगड़ते और एक दो सप्ताह तक चल सकते हैं। केवल गर्मी से सुरक्षित किये पदार्थोंमें डिब्बा खोलनेके तीनही चार दिनके अंदर ख़मीर उठने लगता है और पाँच छः दिनमें फफूँदभी लगने लगती है। इसी लिये जब तक लोग सस्तीका ख़्याल करके बड़े बड़े डिब्बोंमें अपना सामान खरीदेंगे और खोलनेके बाद उसे बहुत दिन तक चलने की आशा रक्खेंगे, तब तक शायद रासायनिक संरक्षकोंका प्रयोग न मिट सकेगा। परंतु यह अवश्य सत्य है कि जहाँ तक हो सके अच्छा यही होता है कि उनके बिनाही काम चलाया जाय।

३—गर्मी से—गर्मीसे भोज्य पदार्थों के संरक्षणकी दो रीतियाँ है—कीटाणु-निश्चेष्ट-करण और कीटाणु-नाशन। कीटाणु-निश्चेष्ट-करणमें भोज्य पदार्थको खौलते पानीसे कुछ कमही तापक्रम तक गरम करके ठंढाकर लिया जाता है। इससे कुछ जातियोंके बैक्टीरिया तो मर जाते हैं, परंतु सब नहीं मरते। इस रीतिका उपयोग दूध और क्रीमके संरक्षणमें किया जाता है। इससे ये अधिक समय तक ठहर सकते हैं।

कीटाणु-नाशन का अर्थ यह है कि सामग्रीको इतना गरम किया जाय कि सब जीव मर जायँ; और यदि इसके बाद बरतनको इस प्रकार बंद किया जाय कि नवीन बैक्टीरिया इसमें न पहुँच सकें तो सामग्री अनियत समय तक चल सके। इस रीतिसे भोज्य पदार्थके संरक्षणमें ऐसे ताप क्रमको चुनना चाहिये जिसमें बैक्टीरिया तो मर जायँ परंतु स्वयम् उस भोज्य पदार्थके स्वादमें कोई अंतर न आने पाये। फलोंमें जो थोड़ी बहुत खटास होती है उसके कारण केवल खौलते पानीके तापक्रम तक उनको गरम कर देनेसे सब बैक्टीरियोंका नाश होजाता है। इसी तरहसे उन पदार्थोंमें भी जिनमें चीनीकी मात्रा अधिक होती है केवल खौलानेसे ही कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। परंतु मटर, सेम आदि तरकारियोंमें न तो खटास होती है और न बहुत शरकरा और इस लिये उनका संरक्षण अधिक कठिन है। इसके अलावा इन सब में अक्सर ऐसे बैक्टीरिया होते हैं जिनके बीज खौलते पानीके तापक्रमको आसानीसे सहन कर सकते हैं। इस लिये उनको बहुत अधिक तापक्रम तक (१४० डिग्री फ़ा० तक) गरम करनेकी आवश्यकता पड़ती है। कैलीफ़ोर्नियाके विश्वविद्यालय में किये गये प्रयोगोंसे पता चला है कि यदि तरकारियोंके साथ नीबूका रस या सिरका छोड़कर डिब्बेमें बंद किया जाय तो वे उतनीही आसानी से सुरक्षित रह सकती हैं जैसे फल। उदाहरणतया, यह देखा गया है कि यदि सेम, मटर, चुकंदर तथा अन्य तरकारियोंको दो प्रतिशत नमकके घोलमें, जिसमें सेर पीछे आधी छटाँक नीबूका रस भी पड़ा हो, रक्खा जाय तो कुलको खौलते पानीमें गरम करनेसे और उचित रीतिसे डिब्बा बंद करनेसे ये तरकारियाँ अच्छी तरह सुरक्षित रक्खी जा सकती हैं यद्यपि यदि केवल नमक पड़ा हो और खटाई न पड़ी हो। यही तरकारियाँ शीघ्र ही बिगड़ जायँगी।

चूँकि गरम करके डिब्बेमें बंद करनेसे ही फलों और तरकारियोंका स्वाद और सुगंध अच्छी तरहसे सुरक्षित

रहती है और उनकी पचनशीलतामें कोई अंतर नहीं आता, इसलिये इस पुस्तकमें प्रधानतः इसी रीतिपर विचार किया जायगा।

४—ठंढा रखकर सुरक्षित रखना—प्रायः सभी भोज्य सामग्री ठंढी रखकर बहुत दिनों तक सुरक्षित रक्खी जा सकती है। ठंढकसे कीटाणु मरते नहीं; उनका बढ़ना बंद हो जाता है। कुछ सामग्री तो बर्फ़से जमा देनेके बाद अनिश्चित् काल तक बिगड़ने नहीं पाती। माँस भी बर्फ़के तापक्रमपर रखनेसे बहुत दिनों तक चलता है। कुछ बैक्टीरिया तो बर्फ़से भी ठंढे तापक्रममें बढ़ सकते हैं। परंतु चूँकि जिस माध्यममें वे रहते हैं वह स्वयम् जम जाता है इसलिये वे बढ़ने नहीं पाते।

[३]

तैयारी और सामान

घरके भीतर और खुले मैदानमें डिब्बाबंदीकी रीतियाँ नीचे अलग-अलग लिखी गई हैं, लेकिन दोनोंके लिये मोटी बातें एक ही हैं। सामान सुविधाजनक होना चाहिये। उसे समझ-बूझ कर चुनना चाहिये। कार्य आरम्भ करनेके पहले स्थानकी पूरी सफ़ाई कर लेनी चाहिये। गर्दका नाम-निशान न रहे। स्वच्छ जल बहुत-सा रख लिया जाय और आवश्यक सामान सब ठिकानेसे लगाकर रख लिया जाय।

घरके भीतर डिब्बाबंदी—बरसातके मौसममें, या थोड़े-बहुत फल-तरकारीको डिब्बोंमें बंद करनेके लिये, आसानी इसीमें होती है कि कार्य रसोई-घरमें किया जाय।

रसोई-घर—हो सके तो रसोई-घरमें जालीके दरवाज़े लगे हों जिसमें मक्खियाँ, बर्रें और दूसरे कीड़े-मकोड़े जो शीरे और फलोंकी महकसे आकर्षित होते हैं भीतर न घुस सकें। रसोई-घर अगर छोटा हो तो फलोंके चुनने, धोने, काटने और छीलनेका कार्य दालानमें भी किया जा सकता है। बरतनोंको कीटाणुरहित करनेका कार्य भी बाहर ही किया जा सकता है।

बरतन—बरतनोंके मोल लेनेमें कामकी सुगमता, सचाई और समयकी बचत पर विशेष ध्यान देना चाहिये। धोनेके लिये फल और तरकारियोंको साफ़ टोकरीमें रक्खा जा सकता है। स्वच्छ, गीले कपड़ेसे फलोंको रगड़ कर साफ़ कर देना भी कभी-कभी आवश्यक होता है। चाकू तेज़ हो और हो सके तो वह
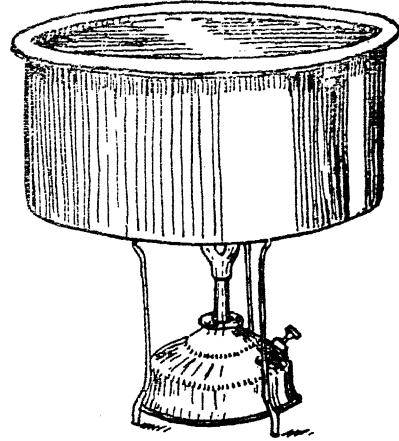
चित्र नं० २—फलोंके पकानेके लिये या बोतलोंको कृमिरहित करनेके लिये अल्युमिनियमका भगौना या राँगेकी क़लई किया हुआ ताँबेका भगौना अच्छा होता है। स्टोवके बदले साधारण अँगीठीका भी प्रयोग किया जा सकता है।

मोर्चा न लगने वाले फ़ौलाद (स्टेनलेस स्टील) का बना हो। ये चाकू बहुत मँहगे नहीं आते। ऊपरके सामानके अलावा डेकची, कड़ाही या भगौनेकी भी आवश्यकता पड़ेगी। भगौने ही में अधिक सुविधा होती है। दो रहें। यथासम्भव वे बड़े हों। उनपर ढकना सच्चा बैठ सके तो आसानी होगी। बोतलोंको पानीमें गरम करते समय यह आवश्यक है कि बोतलें पेंदेको न छूने पायें। इसके लिये काठ, बाँस, तार, या धातुपत्रकी एक जाली बनवाकर पेंदे पर रख देना काफ़ी होगा, जिससे बोतलें पेंदीसे इंच, डेढ़ इंच, ऊपर उठी रहें। एक कलछुल और एक पौनेकी भी आवश्यकता पड़ेगी। ये दोनों

काठके हो सकते हैं। एक सँड़सी भी चाहिये जिससे खौलते हुये पानीसे डिब्बे या बोतलें निकाली जासकें।

चित्र नं० ३—ख़ाली बोतलोंको कृमिरहित करनेके लिये उनको पानीमें रखकर पानीको उबालना चाहिये। पेंदीमें लकड़ीकी एक जाली रख देनी चाहिये जिससे कोई बोतल टूटे नहीं। चित्र ४ देखो।

यदि दस-बारह ही डिब्बे या बोतलें एक-साथ गरम करनी हों तो मामूली बरतनोंसे काम चल जायगा। लेकिन अधिक डिब्बोंके गरम करनेके लिये विशेष बरतन मिलते हैं। इनके नीचे भट्ठी भी बनी रहती है और ऐसा प्रबंध किया रहता है कि भट्ठीसे निकली गरम हवा पाइप द्वारा पानीमें होकर निकले। इससे पानी जल्द गरम होता है और ईंधन कम लगता है। इन भट्ठियोंमें चिमनी भी लगी रहती है जिससे धुआँ ऊपर चला जाय। डिब्बोंको पानीकी टंकीमें डालने और उसमें से निकालनेके लिये तारकी एक डलिया बनी रहती है; और ढकन भी बहुत सच्चा बना रहता है जिससे भाप शीघ्र ठंढी होकर पानी न बन जाय। ये बरतन अक्सर राँगेसे जोड़ कर बनाये जाते हैं, इसलिये पहले टंकीमें पानी भर कर पीछे आग जलाना चाहिये। अगर भूलसे आग पहले सुलगा दी जायगी और टंकीमें पानी न रहेगा तो जोड़ खुल जायेंगे।
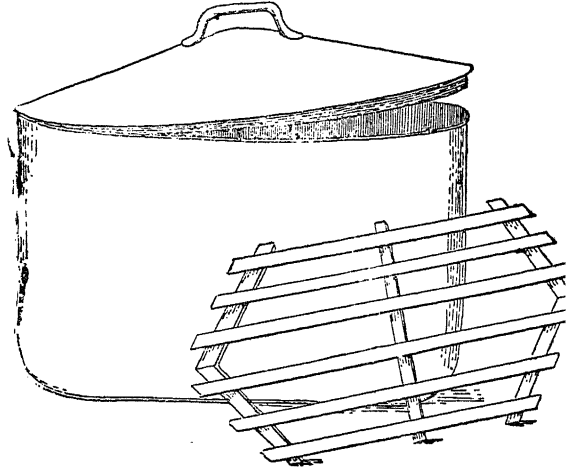
चित्र नं० ४—सामग्री भरी बोतलोंको कृमिरहित करनेके लिये ढक्कनदार भगौना चाहिये। इस चित्रमें लकड़ीकी जाली बाहर निकाल कर दिखायी गई है।

कहियाको गरम करनेके लिये एक अलग दमकल होनेमें ही सुभीता रहता है। इसमें लकड़ीका कोयला जलाया जाय। दमकलके बदले मिट्टीके तेलका स्टोव भी अच्छा है। (राँगासे जोड़नेके लिये काममें आने वाले लोहेको कहिया कहते हैं।)

खुले मैदानमें डिब्बाबंदी—खुले मैदानमें डिब्बाबंदीमें बहुत फ़ायदे हैं और इसमें अधिक आनंद भी आता है। विशेषरूपसे जब अधिक सामग्रीकी डिब्बेबंदी करनी हो तो यह काम उसी बाग़में करना चाहिये जहाँ फल तोड़े जायँ। यह पहले ही बताया जाचुका है कि फलों और शीरेकी ख़ुशबूसे मक्खियाँ आकर्षित हो जाती हैं और इसलिये यह अच्छा होगा कि पासमें मक्खियोंके फँसानेकी मक्खीदानी (बक्स) रख दी जाय। मक्खियोंको शीरेसे दूध या माँस अधिक पसंद होता है और इस लिये यदि बक्समें दूध या माँस रख दिया जाय तो वे उस बक्समें घुस जाती हैं और फँस जाती हैं। इन बक्सोंके बनानेकी रीति चित्र १० से स्पष्ट हो जायगी।

मेज़ वग़ैरह—सुभीता इसीमें होता है कि खड़े होकर मेज़ पर काम किया जाय। यदि मेज़ न मिल सके तो ईंटोंके पाये बना कर उसपर पटरा बिछा देना काफ़ी होगा। तीन मेज़ें आस ही पास रहें। पहली मेज़पर फलोंको चुना जाय, अर्थात् छोटे और बड़े फल अलग-अलग किये जायँ। धोया, काटा और बीज निकाला जाय। इसके पास हीमें दूसरी मेज़ रहे।

दूसरी मेज़पर फलोंको तौला जाता है और नमक या चीनीका घोल तैयार किया जाता है। तीसरी मेज़ पर डिब्बोंपर ढक्कन लगाये जाते हैं और उन्हें राँगेसे बन्द किया जाता है। इस मेज़को चूल्हेके पास ही होना चाहिये, क्योंकि बार-बार यहाँसे चूल्हे तक और चूल्हे से यहाँ तक आना पड़ेगा। यदि केवल शीशेकी बोतलोंमें बन्द करना हो तो इस मेज़की कोई ज़रूरत नहीं।
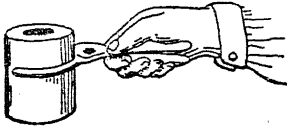
चित्र नं० ४—गरम बोतलों या डिब्बोंको खौलते पानीसे निकालनेके लिये बड़े मुँहकी सँड़सीका उपयोग करना चाहिये। ऐसी सँड़सियाँ इसी कामके लिये विशेष रूपसे बनी बाज़ारमें बिकती हैं, परंतु यदि वे आसानीसे न मिलें, या मँहगी मिलें, तो शीशम या सागवान आदि कड़ी लकड़ीसे सँड़सी किसी बढ़ईसे बनवा ली जा सकती है। सँड़सीके लकड़ीकी बनी रहनेसे हाथ न जलेगा।

जब टीनके डिब्बोंमें सामान भरा जाय तो राँगा लगानेके लिये एक बड़े और एक छोटे कहिये की ज़रुरत पड़ेगी। बड़ा कहिया विशेष रूपसे इसी कामके लिये बना रहता है और डिब्बेके ढक्कनके नापसे ज़रा ही छोटा रहता है।

डेकची या भगौना विशेष रूपसे बड़ा हो जिससे एक साथ ही बहुत-से डिब्बे गरम किये जा सकें। इसे इसी कामके लिये बनवाना चाहिये। पासमें एक कंडाल ठंढा पानी रख लेना चाहिये जिसमें छोड़ कर डिब्बे शीघ्र ठंढे किये जा सकें। अगर बोतलोंमें सामान बन्द करना हो तो एक साफ़ कम्बल भी साथ रखना चाहिये। खौलते पानीसे बोतलोंको निकालने के बाद उनपर कम्बल उढ़ा देना चाहिये जिससे ठंढी हवाके लगनेसे वे चटक न जायँ।

विशेष सामान—बार-बार एकसी सफलता पानेके लिये कुछ विशेष सामानकी भी आवश्यकता पड़ती है। नापनेके लिये चिह्न लगा हुआ शीशेका गिलास होना चाहिये। एक तराज़ू भी चाहिये। अगर कमानीदार तराज़ू हो, जिसके ऊपर सामान रखनेसे काँटा देखते ही वज़न मालूम हो जाता है, तो बहुत आसानी होगी। बार-बार घड़ी भी देखनेकी ज़रूरत पड़ेगी, जिससे सब क्रियायें उचित समय तक हों। चाशनीका घनत्व नापनेके लिये यदि एक घनत्वमापक हो तो चाशनी के हो जाने या न हो जानेकी जाँचमें अटकल न लगानी पड़ेगी। तापमापक (थर्मामीटर) के रहनेसे जेली और मुरब्बोंके बनानेमें आसानी पड़ेगी।

डिब्बे और बोतल

डिब्बों की जातियाँ—किस चालका डिब्बा लिया जाय इस पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये। सबसे पहली बात यह है कि डिब्बा ख़ूब अच्छी तरहसे बंद हो सके। उसके बाद उसकी नाप और शक्ल पर भी ध्यान देना चाहिये।

टीनके डिब्बे—डिब्बोंके लिये काफ़ी पहले आर्डर देना चाहिये क्योंकि इनके बनने और आनेमें अक्सर देर होती है। स्मरण रहे कि बड़े डिब्बोंकी अपेक्षा छोटे डिब्बोंका ही प्रयोग करना अच्छा है यद्यपि उनमें कुछ दाम अधिक लगता है। छोटे डिब्बोंमें भीतरतक गरमी जल्द पहुँचती है; इसलिये उनके अन्दरका माल जल्द कीटाणुरहित हो सकता है। फिर एक बार डिब्बा खोलनेके बाद छोटे डिब्बेकी सामग्री जल्द समाप्त हो जाती है; इसलिये माल बिगड़ने नहीं पाता। परंतु बड़े

फलोंको बहुत छोटे डिब्बोंमें बंद करना बेकार है, क्योंकि प्रत्येकमें मुश्किलसे एक-दो फल आ सकेंगे। बाज़ फल टीनसे, जो वस्तुत: लोहे पर राँगेकी क़लई करनेसे बनती है, बदरंग होजाते हैं। ऐसे फलोंको शीशेके बरतनोंमें ही बंद करना चाहिये। आम और अन्य खट्टी चीज़ोंको शीशेकी बोतलोंमें बंद करना अच्छा है।

डिब्बोंको बंद करनेके लिये अब जो ढक्कन आते हैं वे तीन तरहके होते हैं। एक तो सादे। यह घरेलू कामोंके लिये अच्छे नहीं हैं। दूसरे वे जिनके किनारों पर राँगा लगा रहता है। इनको डिब्बेपर लगाकर और गरम लोहे से दबाकर गरम करनेसे राँगा पिघल कर डिब्बेको पूर्णरूपसे बंद कर देता है। तीसरे मेलके ढक्कन वे होते हैं जोमशीनकी सहायतासे डिब्बे पर चढ़ाये जाते हैं। इनमें राँगा नहीं रहता। मशीनसे उनके सिरे पर फंदा पड़ता है और फिर वह इतनी ज़ोरसे दब जाता है कि डिब्बेमें हवाके जानेके लिये रास्ता नहीं रहता और हवा अंदर नहीं जा सकती। एक हाथकी छोटी मशीन भी आती है। यदि बहुत-से डिब्बोंको बंद करना हो तो इस मशीनसे समयकी इतनी बचत होती है कि इसका दाम शीघ्र वसूल हो जाता है।

शीशेकी बोतलें कई आकार और नापकी आती हैं। उनमें आसानीसे सामग्री इस प्रकार भरी जा सकती है कि देखनेमें चित्ताकर्षक लगे। ये बरतन छोटे-बड़े सब नापके मिलते हैं, जिसमें आधी बोतलसे लेकर चार बोतल सामान तक अट सकता है। गोलके बदले चौकोर बोतलोंमें रखनेसे चीज़ें अधिक सुंदर जान पड़ती हैं।

बोतलोंमें ढक्कन दो तरहसे लगाये जा सकते हैं। या तो ढक्कन और बोतल दोनोंमें पेच लगा रहता है और घुमानेसे ही कस दिया जा सकता है या शीशे पर मोटे तारकी एक कमानी लगी रहती है जिसको नीचे दबानेसे ढकना चिपक कर बैठ जाता है। दोनों प्रकारके ढक्कनोंमें एक रबड़का छल्ला लगा रहता है जो बोतलके मुँहकी ओर पड़ता है और थोड़े दबावके पड़ जानेसे हवाके आने-जानेका रास्ता एकदम रोक देता है। रबड़के एक ओर ढक्कन रहता है, दूसरी ओर बोतलका मुँह। अगर यह रबड़ न लगाया जाय तो बहुत कसने पर भी टीनका ढक्कन बोतल पर सच्चा न बैठ सकेगा और कहीं न कहींसे हवा भीतर घुस ही जायगी। इसलिये रबड़ नया और लचीला होना चाहिये।
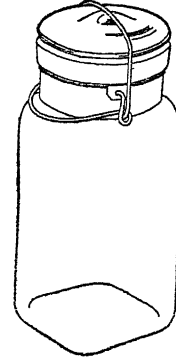
चित्र नं० ६—कमानीदार ढक्कन—बाज़ बोतलोंको बंद करनेके लिये ऐसी कमानी लगी रहती है कि उसे नीचे गिराते ही ढक्कन बोतल पर कसकर बैठ जाता है। ढक्कन और बोतलके बीचमें एक रबड़का छल्ला रहता है जिसके कारण बाहरकी हवा भीतर नहीं घुस सकती। ऐसी बोतलोंको गरम दशामें बंद करनेमें भी बड़ी आसानी होती है क्योंकि बोतलको हाथसे देरतक या ज़ोरसे पकड़ना नहीं पड़ता, परंतु पेंचयुक्त बोतलें ही अधिक चलती हैं (आगामी चित्र देखो)।

कमानीदार ढक्कनोंमें यह आसानी रहती है कि बिना बोतलको पकड़े ही उनका ढक्कन आसानीसे बंद किया जा सकता है। परंतु पेचवाले ढक्कनोंमें एक हाथसे बोतलको पकड़ना पड़ता है और दूसरे हाथसे ढक्कनको कसना पड़ता है। एक तो गरम बोतल और गरम ढक्कनको कपड़े आदिसे पकड़नेमें कुछ दिक़्क़त पड़ती है और दूसरे कुछ ही बोतलोंके बंद करनेके बाद कलाई थक जाती है। तब बाक़ी ढक्कन कुछ ढीले ही रह जाते हैं। ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा न होने पाये।

रंगीन बोतलोंके बदले सादी बोतलोंमें ही फल आदिका बंद करना अच्छा है। रंगीन बोतलोंमें फलोंका रंग अस्वाभाविक दिखाई पड़ता है जो इतना चित्ताकर्षक नहीं होता।

रबड़के छल्ले रक्खे रहनेसे सूख जाते हैं; वे चुरमुरा होजाते हैं और अक्सर चटक भी जाते हैं। ऐसे रबड़के छल्ले लगे ढक्कनको बंद करने पर बाहरकी हवा भीतर घुस आती है और चीज़ बिगड़ने लगती है। उन बोतलोंमें जिनमें रबड़ बाहर दिखाई पड़ती हैं चीज़ें तबतक ही सुरक्षित रहेंगी जबतक यह रबड़ ख़राब नहीं होती। रबड़के छल्लोंको ख़रीदनेमें बुद्धिमानी इसीमें है कि अच्छीसे अच्छी रबड़ ख़रीदी जाय और हमेशा ताज़ा माल लिया जाय। एक बोतल सामग्रीका दाम एक दर्जन छल्लोंसे अधिक होता है। इसलिये किफ़ायत इसीमें होती है कि छल्ले हर साल नये लिये जायँ। मोटी, लाल या ख़ाकी रबड़ अच्छी होती है। सफ़ेद रबड़का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि यह जिन पदार्थोंसे सफ़ेदकी जाती है उनके कारण शीघ्र नष्ट हो जाती है। सफ़ेदसे काली रबड़ अच्छी होती है।

[४]

टीन के डिब्बों में बन्द करना

चूँकि टीनके डिब्बोंमें ही अधिकांश सामग्री बंदकी जाती है इसलिये पहले इसीका वर्णन दिया जायगा। परंतु यदि घरके लिये थोड़ी मात्रामें सामान तैयार करना हो तो शीशेकी बोतलोंसे ही आसानी होती है। हाँ, यदि फल या तरकारियाँ बहुत-सी हों तो टीनके डिब्बोंमें ही बंद करनेसे आसानी होगी। टीनके बरतनोंके टूटनेका डर भी नहीं रहता और शीशेकी बोतलोंकी अपेक्षा इनमें दाम कम लगता है।

तैयारी—यदि कोई राँगेसे जोड़नेवाला मिल जाय, तब तो अच्छा ही है, नहीं तो यह काम आसानीसे खुद भी किया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक औज़ारोंके अतिरिक्त थोड़ा सा नौसादार, नमकका तेज़ाब और जस्ता चाहिये। नमकके तेज़ाबको शीशेके या चीनी
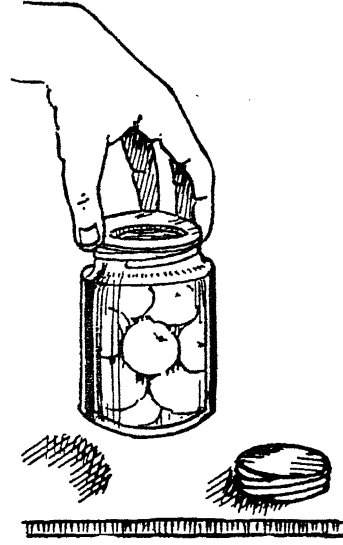
चित्र नं० ७—पेचयुक्त ढक्कनवाली बोतल—अधिकतर बोतलोंके सर पर नर-चूड़ी बनी रहती है और इस पर ऐसा ढक्कन कसा जाता है जिसमें मादा-चूड़ी बनी रहती है। परंतु केवल इस ढकनेके कसनेसे ही बोतल अच्छी तरह बंद नहीं हो सकती; इसलिये बोतल पर पहले पतले टीनका एक छिछला तश्तरीनुमा ढक्कन रक्खा जाता है। इसके और बोतलके बीचमें रबड़का छल्ला रहता है। पेचवाले ढक्कनको कसने पर तश्तरीनुमा ढक्कन बोतल पर अच्छी तरह चिपक जाता है। अच्छी तरह बंद होनेकी पहचान यह है कि बाहरी पेचवाले ढक्कनको खोल देने पर भीतरी तश्तरीनुमा ढक्कनके उठानेसे पूरी बोतल ही उठ आयगी, क्योंकि ढक्कन कसनेके पहले हवा निकाल दी जाती है और भीतर प्रायः शून्य हो जाता है जो इस ढक्कनको ज़ोरसे भीतरकी ओर चूसे रहता है।

मिट्टीके बरतनमें रख कर उसमें जस्तेका टुकड़ा छोड़ देना चाहिये। जब और जस्ता न घुल सके तब घोलको सँभाल कर बोतलमें रख लेना चाहिये। वस्तुतः यह ज़िंक-क्लोराइडका घोल है।

अब किसी पुराने टीनके डिब्बेमें राँगा और सीसा (लेड) बराबर-बराबर मिला कर पिघलाना चाहिये। आगे जहाँ कहीं राँगा लिखा जायगा वहाँ इसी राँगे और सीसेका मिश्रण समझना चाहिये। डिब्बे इसी मिश्रणसे जोड़े जाते हैं। यदि इसको मोटे तारके रूपमें ढाल लिया जाय तो और आसानी पड़ेगी। अब छोटी और बड़ी दोनों कहियोंको साफ़ करना चाहिये। ज़रूरत हो तो उनको रेती, रेगमाल, झावें या ईंटसे रगड़ कर चमकाना चाहिये। तब उनपर राँगा चढ़ा देना चाहिये। इसके लिये कहियोंको गरम करना चाहिये। एक ईंटपर रक्खे हुये थोड़े-से राँगे और सीसेके मिश्रणपर नौसादार छिड़क कर उसीपर गरम कहियेको इस प्रकार रगड़ना चाहिये कि राँगा उसपर चढ़ जाय। कहियोंपर राँगेकी चमकदार क़लई चढ़ जायगी। इनपर अक्सर इसी तरहसे क़लई कर ली जाय। गंदे कहियोंसे डिब्बोंके जोड़नेमें बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी। साथमें हाथ और बरतन पोंछनेके लिये साफ़ कपड़ा भी रख लेना चाहिये। चूल्हेके पास काफ़ी लकड़ी भी रख लेनी चाहिये जिससे बीचमें लकड़ी उठाने न जाना पड़े। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, पासमें एक कंडाल या एक बालटी ठंढा पानी भी रखना चाहिये।

डिब्बाबदीकी रीतिके विविध पद नीचे दिये जाते हैं।

१—चुनना—यह बहुत ज़रूरी बात है कि फल सब ताज़े और अच्छे हों। अगर ऐसा न होगा तो यह आशा करना निरर्थक होगा कि विशेष सावधानी या चतुराईसे काम करनेपर सफलता मिल जायगी। अच्छा परिणाम पानेके लिये यह परम आवश्यक है कि फल
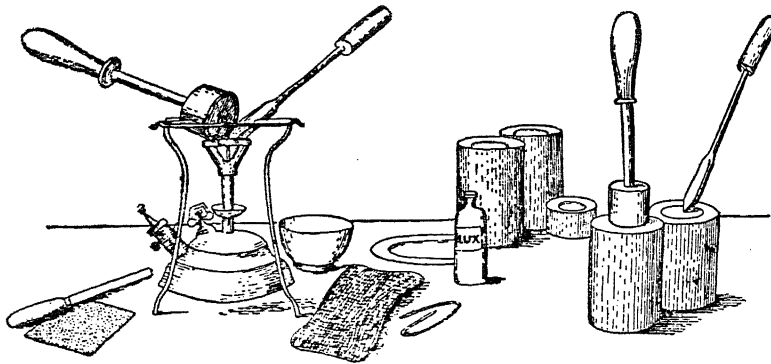
चित्र नं० ८—टीनके डिब्बोंका बंद करना—सबसे बाईं ओर नीचे रेगमाल और रेती दिखाई गई है। इससे जोड़के स्थानको आवश्यकता पड़नेपर साफ़ कर लिया जाता है। बगलमें स्टोवपर बड़ी और छोटी कहियोंका गरम करना दिखाया गया है। बगलकी प्यालीमें ज़िंक-क्लोराइडका घोल (फ़्लक्स) है। पास ही एक टुकड़ा कैनवस रक्खा है जिसपर ज़रा सा नौसादर छिड़का है। गंदी हो जानेपर कहियाको इस पर रगड़ते हैं। इसकी बगलमें राँगे (वस्तुतः राँगे और शीशेके मिश्रण) का तार है। बोतलमें ज़िंक-क्लोराइडका घोल है। तीन डिब्बोंपर ढक्कन जोड़ दिये गये हैं। चौथेका ढक्कन बड़ी कहियासे जोड़ा जा रहा है। पाँचवें डिब्बेके ढक्कनका वह छेद बंद किया जा रहा है जो हवा निकलनेके लिये बना रहता है।

बिलकुल ताज़े और स्वच्छ हों और वे ठंढी जगह रक्खे जायँ। सब काम बड़ी फुरतीसे करना चाहिये। नियम यह होना चाहिये कि एक घंटेके भीतर वे पेड़से डिब्बोंमें पहुँच जायँ।

फलोंको अच्छी तरहसे उनके नाप और पकनेके अनुसार अलग-अलग छाँटना चाहिये। केवल एक नापके और एक तरहके फल एक डिब्बेमें रक्खे जायँ। जो फल ज़रा भी सड़े-गले हों उनको निकाल देना चाहिये। कारखानोंमें फलोंको चुननेके लिये बड़ी-बड़ी चलनियाँ बनी होती हैं। इनमें फलोंको रख कर धीरेसे लुड़कानेपर छोटे फल नीचे गिर पड़ते हैं। फिर दूसरी चलनीमें डालनेसे दूसरे नापके फल अलग हो जाते हैं। इसी तरह सबसे बड़े फल भी अलग कर लिये जाते हैं। इस प्रकार फलोंको अलग करके उन्हें शीरेमें पकाकर डिब्बोंमें बंद करनेमें आसानी पड़ती है और एक ही नापके फलोंके रहनेसे देखनेमें माल अच्छा भी लगता है।

चित्र नं० ६—फलोंका छिलका छीलनेके लिये उन्हें कपड़ेमें ढीला बाँध कर एक मिनट तक खौलते पानीमें डुबाया जाता है। खौलते पानीसे निकाल कर फलोंको ठंढे पानीमें डाला जाता है, जिससे छिलका फलको छोड़ देता है। तरकारियोंको बोतलोंमें भरने या सुखानेसे पहले भी उनको इसी तरह खौलते पानीमें दो-चार मिनट तक डाला जाता है। ऐसा करनेसे उनका रंग पक्का और स्वाद बढ़िया हो जाता है।

२—छीलना और बीज निकालना—कुछ फलोंके छीलनेके लिये, जैसे टमाटरको, पहले खौलते पानीमें ज़रा सी देरके लिये रख दिया जाता है। इसके लिये उन्हें खँखरे कपड़ेमें बाँध कर खौलते पानीमें एक मिनटके लिये डुबा दिया जाता है और तुरंत निकाल कर ठंढे पानीमें छोड़ दिया जाता है। यदि वे खौलते पानीमें बहुत देर तक रह जायँगे तो वे उबल जायँगे। इस तरह खौलते पानीमें छोड़ने के बाद ठंढे पानीमें छोड़ देने से फल नरम नहीं होने पाता। साथ ही उनके छीलकेका उखाड़ना आसान हो जाता है। यदि छिलके छीलते समय गूदा भी उखड़ आये तो समझना चाहिये कि खौलते पानीमें छोड़नेकी क्रिया ठीक नहीं हुई है; या तो फल बहुत कच्चे थे, या वे खौलते पानीमें बहुत देर तक रक्खे गये थे, या बहुत-सा फल एक साथ ही खौलते पानीमें छोड़ा गया था, जिससे खौलता पानी ठंढा हो गया। छीलनेके लिये ख़ूब नोकीली छुरीका प्रयोग करना चाहिये। इसके बाद फलोंके बीजोंको भी निकाल कर फेंक देना चाहिये।

३—पहला उबाल—इसके बाद तरकारियों और फलोंको बहुतसे खौलते पानीमें थोड़ी देरके लिये छोड़ा जाता है। इसके लिये भी उन्हें कपड़ेमें बाँधकर खौलते पानीमें डालना काफ़ी होगा। इस तरहसे थोड़ी देर तक खौलते पानीमें डाले जानेसे वे साफ़ हो जाते हैं और ऊपरी सतह पर लगे हुये कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। स्वाद बढ़िया होजाता है और बाज़ तरकारियोंकी बू दूर हो जाती है। फल कुछ सिकुड़ जाते हैं और अधिक लचीले हो जाते हैं। इसलिये उनको डिब्बोंमें भरनेमें अधिक आसानी पड़ती है। कितने समय तक फलों और तरकारियोंको खौलते पानीमें रक्खा जाय यह भिन्न-भिन्न फल और तरकारियोंके लिये भिन्न-भिन्न है और यह फलोंके कम या अधिक पके रहने पर भी

निर्भर है। खौलते पानीमें डालनेसे नाशपाती और शफ़तालू अधिक पारदर्शक हो जाते हैं और उनका स्वाद अधिक अच्छा हो जाता है। बाज़ तरकारियाँ खौलते पानीसे निकालनेके बाद नमकीन ठंढे पानीमें छोड़ देनेसे अधिक अच्छी हो जाती हैं। हरी मटर, सेम और भिंडीको इस प्रकार खौलते पानीके बाद ठंढे नमकीन पानीमें डालनेसे उनके हरे रंगको सुरक्षित रखनेमें सहायता मिलती है।

४—बरतनोंको कीटाणुरहित करना—बरतनोंके भीतर कुछ रखनेसे पहले उनको कीटाणुरहित कर देना बहुत आवश्यक है। जबसे फल चुने और छीले जायँ तबसे यह काम किया जा सकता है। डिब्बोंको धोकर उन्हें खौलते पानीमें दस या पंद्रह मिनट तक छोड़ देना चाहिये। निकालनेके बाद उनको साफ़ तौलिया पर औंधे मुँह रखना चाहिये।

५—भरना—इन डिब्बोंको फलों या तरकारियोंसे भरना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो अधिक-से-अधिक सामग्री प्रत्येक डाल दी जाय। परंतु कोई चीज़ चूर न होने पाये। कोई जगह ख़ाली न रह जाय जिससे पीछे वे हिलें और एक दूसरेसे लड़कर पिचक जायँ। यदि बाज़ारके लिये डिब्बोंको तैयार करना हो तो डिब्बोंको अक्सर तौलते रहना चाहिये जिससे डिब्बोंमें ज़रूरतसे कम माल न रक्खा रह जाय। अमरीकामें तो इस विषय पर क़ानून है कि डिब्बोंमें शीरा कम-से-कम मात्रामें हो और डिब्बे जहाँ तक हो सके फलों या तरकारियोंसे ही भरे हों।

पहलेसे सब बातें सोच लेनी चाहिये और काम चट-पट करना चाहिये। ऐसा न हो कि डिब्बोंमें फल इसी तरह कुछ समय पड़े रह जायँ। उन्हें शीघ्र ही शीरे या अन्य घोलसे भरना चाहिये और आँच दिखानेकी क्रिया करनी चाहिये। डिब्बोंके ऊपर पेंसिलसे या चाक़ूसे निशान बना देना चाहिये जिससे पता रहे कि किस डिब्बेमें क्या रक्खा गया है।

६—शीरे या नमकका पानी भरना—अब डिब्बोंमें शीरे या नमकका पानी भरना चाहिये। नुसख़ा एक आगामी अध्यायमें यथास्थान दिया गया है। डिब्बेके लबालब भरनेमें चौथाई इंचकी कमी रह जाय। डिब्बेको हिलाकर और धीरेसे पटक कर ऐसा उपाय करना चाहिये कि भीतर जो कुछ हवा हो, या भीतर जो हवाके बुलबुले हों, निकल जायँ। अब डिब्बेके मुँहको कपड़ेसे पोंछ कर साफ़ करना चाहिये। फिर राँगेकी गोंट लगा हुआ ढक्कन बंद कर देना चाहिये।

७—ढक्कन बंद करना—किसी तिनके पर रुई लपेट कर उससे ज़िंक-क्लोराइडका घोल, जिसके बनानेकी तरकीब ऊपर दी गयी है, ढक्कनकी कोर पर चारों ओर लगा देना चाहिये। इसका पूरा ख़्याल रखना चाहिये कि यह घोल इतना अधिक न लगाया जाय कि कुछ भीतर घुस जाय। इस घोलके लगानेसे राँगा डिब्बेको पकड़ता है। इसके बाद स्वच्छ, बड़ी कहियासे ढक्कनको दबाना चाहिये। कहियाको धीरे-धीरे घुमाते रहना चाहिये, जिससे सब जगह आंच बराबर पहुँचे। जब राँगा चारों ओर पिघल जाय तो कहियाको उठा लेना चाहिये। लेकिन तब भी किसी छड़से ढक्कनको तबतक दबाये रहना चाहिये जबतक राँगा ठंढा होकर जम न जाय।

८—हवा निकलना—अब डिब्बोंको तारकी या लकड़ीकी झँझरीदार तश्तरीमें रखकर खौलते पानीमें नीचे उतारना चाहिये। डिब्बेका मुँह क़रीब एक इंच ऊपर रहे। छोटे डिब्बोंको तीन मिनट तक खौलते पानीमें रखना काफ़ी होगा। इससे बहुत सी हवा बाहर निकल जाती है। हवाके निकलनेके लिये डिब्बेके सिरेमें एक छोटा-सा छेद बना रहता है। स्मरण रहे कि इस प्रकार हवा निकाल देना आवश्यक है। यदि बिना हवा निकाले ही यह छोटा-सा छेद बन्द कर दिया जायगा तो पीछे आँच दिखलानेसे डिब्बा फूल जायगा। लोग समझेंगे कि डिब्बेके भीतरका माल सड़ गया है और इस लिये डिब्बा फूल गया है। ऐसे डिब्बेको कोई ख़रीदेगा नहीं। फिर हवाके रहनेसे टीनके डिब्बेकी

भीतरकी क़लई अधिक सुगमतासे फलोंके रसमें घुल जाती है।

९—छेद बंद करना—हवा निकालनेके बाद ही, जब डिब्बा ख़ूब गरम रहे तभी, हवा निकलनेके लिये बने छोटे छेदको राँगेसे बंद कर देना चाहिये। इसके लिये छेदके पासके टीनको कपड़ेसे पोंछ कर वहाँ ज़रा-सा ज़िंक-क्लोराइडका घोल लगा देना चाहिये। छोटी कहिया-को दाहिने हाथमें लेकर उसके गरम सिरेको छेदके ऊपर रखना चाहिये और राँगेके तारसे कहियाको छू देना चाहिये। राँगा ज़रा-सा गलकर कहिया पर फैल जायगा। अब कहियाको खड़ा करके ऐसा करना चाहिये कि एक बूँद राँगा उस छेद पर टपक पड़े। कहियाकी गरमीसे वहाँका टीन पहले ही से गरम हुआ रहेगा और ज़िंक-क्लोराइडके लगनेसे वह साफ़ भी होगया होगा। इसलिये राँगा तुरंत टीनको पकड़ लेगा।

१०—आँच दिखाना—उपरोक्त रीतिसे हवा निकालने और छेद बंद करनेके बाद डिब्बेमें बंद फल या तरकारीको आँच दिखाकर अब कीटाणुरहित करना होगा। इसके लिये डिब्बोंको खौलते पानीमें छोड़ना होगा। पानी ख़ूब ज़ोरसे खौलता रहे। जब उसमें डिब्बे छोड़ो तो उनको एक-एक करके पानीमें छोड़ो और ग़ौरसे देखो कि उनसे बुलबुले तो नहीं निकलते। यदि बुलबुले उठते हुये दिखाई पड़ें तो समझना चाहिये कि डिब्बा वहाँ ठीक नहीं बंद हुआ है जहाँसे बुलबुले उठते दिखाई पड़ते हैं। उस डिब्बेको निकाल कर फिरसे जोड़ डालना चाहिये। पानी बराबर ख़ूब ज़ोरसे खौलता रहे। समयकी गणना उस क्षणसे करनी चाहिये जब डिब्बोंके डालनेके बाद पानी फिर खौलना आरंभ करे। यदि भापके ज़ोरसे गरम करनेके यंत्रमें डिब्बोंको आँच दिखाई जाय तो समयकी गणना उस क्षणसे करनी चाहिये जब यंत्रके भारमापकसे पता चले कि भापमें वांछित दबाव होगया है। जब डिब्बोंको बार-बार आँच दिखाना होता है (यह कुछ तरकारियोंके लिये आवश्यक है) तो तरकारीको प्रतिदिन ४५ से ६० मिनट तक खौलते पानीमें रक्खा जाता है; और ऐसा लगातार तीन दिन तक किया जाता है। यदि तरकारियाँ बहुत नरम हों, या ऐसी हों जो आसानीसे कीटाणुरहित की जा सकती हों, तो उनको दो दिन आँच दिखाना काफ़ी होगा। ये सब बातें आगेके एक अध्यायमें विस्तारपूर्वक समझा दी गई हैं। फलोंको बहुत थोड़े ही समय तक और केवल एक बार गरम करना पड़ता है।

११—ठंढा करना—गरम करनेके बाद डिब्बोंको जहाँ तक हो सके बहुत जल्द ठंढा कर डालना चाहिये जिससे वे और न पकने पावें, क्योंकि अधिक पक जानेसे फलोंका स्वाद और रंग बिगड़ जाता है। इस लिये खौलते पानीसे निकालनेके बाद ख़ूब ठंढे पानीमें डिब्बों-को डुबा देना चाहिये, और जबतक डिब्बे बिल्कुल ठंढे न हो जायँ तबतक उनको एकके ऊपर एक रखकर अलमारी या बक्समें न रखना चाहिये। रखनेसे पहले डिब्बोंको कपड़ेसे पोंछकर सुखा लेना चाहिये, जिससे उनमें मोर्चा न लग जाय।

१२—जाँच—डिब्बेके ढक्कनको किसी धातुकी छड़से ठोंको। यदि ढक्कन ठीक तरहसे बंद किया गया है, तो साफ़ घंटीकी तरह आवाज़ निकलेगी। यदि ढक्कन ठीक तरहसे बंद न होगा तो गद्-गद् सी आवाज़ सुनाई देगी। कारख़ानोंमें अक्सर यह तमाशा देखनेमें आता है कि एक कारीगर जलतरंग बजानेकी तरह डिब्बोंको टंटनाया करता है। बात यह है कि एक बार चोट करनेसे वह आवाज़ सुनकर तुरंत बतला सकता है कि डिब्बा ठीक बंद हुआ है या नहीं।

१३—लेबिल चिपकाना—जबतक डिब्बे पूर्ण-तया ठंढे न हो जायँ तब तक उनपर लेबिल न चिपकाना चाहिये। अच्छा तो यह होगा कि दस-पाँच दिन तक प्रतीक्षा की जाय, क्योंकि इतने दिनोंमें पता लग जाता है कि किसी डिब्बेका माल सड़ेगा तो नहीं। अगर मालको बेचना हो तो माल रवाना करनेके पहले ही इसपर ताज़ा-ताज़ा लेबिल चिपकाना अच्छा है। प्रत्येक डिब्बेपर तौल,

और माल और बनानेवालेका नाम ज़रूर रहना चाहिये। लेबिल इस तरह लगाना चाहिये कि डिब्बेका जुड़ा सिरा नीचे पड़े और चिकना सिरा ऊपर रहे। लेबिल इतना बड़ा होना चाहिये कि डिब्बेका एक पूरा चक्कर लग सके। लेईको काग़ज़के केवल एक सिरेपर लगाना चाहिये, जिससे लेई कहीं भी टीनको न छूये। यदि कहीं लेई टीनको छूयेगी तो वहाँ मोर्चा लग जानेका डर रहेगा।

लेई बनानेके लिये एक चायवाला प्याला-भर मैदा और एक प्याला ठंढा पानी, एक चम्मच फिटकरी, आधा चम्मच लौंगका तेल और तीन प्याला खौलता हुआ पानी चाहिये। पहले आटेको एक प्याला पानीमें अच्छी तरह मिलाओ। फिर खौलते पानीको धीरे-धीरे छोड़ो और चलाते जाओ, जिससे आटेमें गाँठ न पड़े। अब मंद आँचपर रखकर ५ मिनट तक लेई-को पकने दो, लेकिन बराबर चलाते रहो। जब लेई तैयार हो जाय तो उसमें फिटकरी और लौंगका तेल छोड़ दो और उसे चौड़े मुँहकी ढक्कनदार शीशेकी बोतलों में रक्खो। लेई इस तरहसे बनानेपर कुछ समय तक न बिगड़ेगी और यह लेई लेबिल लगानेके लिये बहुत अच्छी होगी।

अक्सर लोग डिब्बोंपर 'लैकर' (स्पिरिट और लाहसे बनी वार्निश) चढ़ा देते हैं जिससे डिब्बोंपर मोर्चा लगने का डर न रहे। चित्ताकर्षक लेबिलसे मालका दाम बढ़ जाता है; इस लिये लेबिलका डिज़ाइन सोच-विचारकर रखना चाहिये।

[५]

शीशेमें बन्द करना

शीशेमें बन्द करना बहुत-कुछ टीनके डिब्बेमें ही बन्द करनेकी तरह है। सिद्धान्त आदिसे अन्त तक वही है। शीशेके बरतनोंका दाम टीनके डिब्बोंसे अधिक होता है; परन्तु घरके लिये किफ़ायत शीशेके बरतनोंमें ही है, क्योंकि ये बरतन बार-बार काममें लाये जा सकते हैं। टीनका डिब्बा केवल एक बार ही काममें लाया जा सकता है। पिछले अध्यायमें दिये गये प्रथम तीन पद शीशेके बरतनोंमें बन्द करनेमें भी लागू हैं। इसके बादकी क्रियायें नीचे बतलाई जाती हैं। यह बहुत आवश्यक है कि सब सामग्री सुविधाजनक रीतिसे कार्य आरम्भ करनेके पहले पास ही रख ली जाय।

४—कीटाणुरहित करना—बोतलोंको धोकर बेंड़े-बेंड़े एक बड़े बरतनमें रखना चाहिये और उसमें मामूली पानी भर देना चाहिये। अब धीरे-धीरे आँच लगानी चाहिये। जब पानी खौलने लगे तबसे कम-से-कम १५ मिनट तक खौलते पानीमें बोतलोंको रक्खे रहना चाहिये। जैसा पहले बताया जा चुका है बरतनकी पेंदीमें लकड़ी या धातुकी जाली रख देनी चाहिये, जिससे बोतलें पेंदीसे इंच, आध इंच, ऊँची उठी रहें, नहीं तो उनके चटक जानेका डर रहता है।

५—भरना—फलोंको चुनने, उबालते पानीमें डालने और छीलने, काटने और फिर उबालते पानीमें डालनेके बाद उन्हें कीटाणुरहित की हुई बोतलोंमें क़ायदेसे भर देना चाहिये और जहाँतक हो सके अधिक माल उनमें भरना चाहिये। बाँसके बने पतले, चपटे और लचीले चाक़ू या खपचीसे इसमें बड़ी सहायता मिलती है।

६—शीरे या नमकका पानी भरना—यह बहुत आवश्यक है कि शीरा बनानेमें स्वच्छ और नरम स्रवित जलका उपयोग किया जाय। कुएँका जल अक्सर कड़ा होता है, अर्थात् उसमें चूना आदि पदार्थ घुले रहते हैं, जिससे शीरा स्वच्छ नहीं बन पाता। कभी-कभी पानीको पहले खौला कर, ठंढा करके, और छान कर इस्तेमाल करनेसे बढ़िया शीरा बनता है। शीरा बनाते समय चीनी और पानीको आँच पर रखनेके बाद बराबर चलाते रहना चाहिये जिससे शीरा जलने न पाये।

७—हवाके बुलबले निकालना—एक पतली बाँसकी तीलीसे हवाके बुलबुले बोतलोंमें से निकाल

दिये जाते हैं। इसके लिये प्रत्येक बुलबुलेको इस तीलीसे छू देना काफ़ी है। तीली बोतलकी बग़लको छूती हुई नीचे डाली जाती है; छूतेही हवाका बुलबुला ऊपर चढ़ आता है। सब बुलबुलोंके निकालनेके बाद और शीरा छोड़ देना चाहिये जिससे बोतल भर जाय। ये तीलियाँ घर पर बनाई जा सकती हैं। इनको पक्के बाँससे बनाना चाहिये। हरे बाँसका रस शीरेमें उतर कर स्वादमें अन्तर डाल देगा।

८—ढक्कन लगाना—ढक्कन लगाते समय देख लेना चाहिये कि रबड़ अपनी ठीक जगह पर है कि नहीं और बोतलका मुँह साफ़ है कि नहीं। यदि इस पर बीज या फलके टुकड़े लगे रहेंगे तो ढक्कन बैठने नहीं पायेगा। ढक्कन अभी कस कर बन्द नहीं कर देना चाहिये। उसे इतना ढीला बन्द करना चाहिये कि बोतलके गरम करने पर हवा बाहर निकल सके।

९—**आँच दिखाना**—बड़े भगौनेमें नीचे काठ, **बाँस**, तार या धातुकी जाली रख कर (जिससे बोतलें पेंदी न छूने पायें) पानी इतना भरना चाहिये कि बोतलोंके खड़ा करने पर बोतलोंके सरसे पानी दो इंच नीचा रहे। बाज़ लोग नीचे जाली रखनेके बदले कपड़ा रख देते हैं। लेकिन यह रीति अच्छी नहीं है, क्योंकि बोतलोंके बोझसे अक्सर कपड़ा पेंदीमें चिपक जाता है और जल जाता है। जालीही अच्छी है जिससे बोतलें पेंदीके इंच, डेढ़ इंच, ऊपर रहें। बोतलोंको खड़ा करनेके बाद पानी छोड़ना चाहिये और पानी क़रीब उतनाही गरम रहे जितनी भी बोतलें, जिससे वे चटकने न पायें। भगौनेको अच्छी तरह ढक देना चाहिये जिससे पानीकी भाप बोतलों के सर पर भी लगे और ठंढी होकर पानी न हो जाय। पानी जब ज़ोरसे खौलने लगे तबसे समयकी गणना करनी चाहिये। उचित समय तक पानीको खौलने देना चाहिये (सारिणी देखो)। भगौनेके ढक्कनको हटातेही सब बोतलोंके ढक्कनोंको चटपट बन्द कर देना चाहिये, और तब उन्हें खौलते पानीसे निकाल लेना चाहिये। उन्हें ठंढी हवाके झोंकेमें नहीं रखना चाहिये, नहीं तो शायद वे चटक जायेंगी। यदि किसी बोतलको एकसे अधिक बार गरम करना हो तो प्रत्येक बार गरम करनेके पहले ढक्कनको ढीला कर देना चाहिये और गरम पानीसे निकालनेके पहले ढक्कन कस कर बन्द कर देना चाहिये। दबावमें रक्खी गयी भापसे बरतनोंको गरम करनेकी रीति आगे दी जायगी।

१०—जाँच—बोतलके ठंढा होजानेके बाद यह जाँच करके देख लेना कि बोतल ठीक बन्द हुई है, या नहीं, अच्छा है। इसके लिये ढक्कनकी कमानी या ऊपरी पेचको खोल कर इसके नीचेवाले रबड़ लगे ढक्कनको हाथसे ऊपर उठानेकी कोशिश करनी चाहिये।

अच्छी तरह बंद होनेकी पहचान यह है कि बाहरी पेचवाले ढक्कनको खोल देने पर भीतरी तश्तरीनुमा ढक्कनके उठानेसे पूरी बोतलही उठ आयगी, क्योंकि ढक्कन कसनेके पहले हवा निकाल दी जाती है और भीतर प्राय: शून्य हो जाता है जो इस ढक्कनको ज़ोरसे भीतरकी ओर चूसे रहता है।

अगर यह ढक्कन आसानीसे उखड़ आये तो समझना चाहिये कि ढक्कन ठीकसे बन्द नहीं था। बात यह है कि बोतलके गरम करते समय हवा सब निकल जाती है और बोतल भापसे भर जाती है। ढक्कन बन्द करनेके बाद जब बोतल ठंढी की जाती है तो भाप जम कर पानी हो जाती है और इस लिये बोतलके भीतरका दबाव बहुत कम हो जाता है। ढक्कन पर वही असर पड़ता है जैसे कोई बोतलके भीतरसे उसे ज़ोरसे चूसे। इसलिये अगर बोतल ठीक तरहसे बन्द रहेगी तो उसके ढक्कनको उखाड़नेमें काफ़ी ज़ोर लगाना पड़ेगा। एक बार अच्छी तरह बन्द की हुई बोतलके ढक्कनको उखाड़ कर अन्दाज़ा करनेसे पता चल जायगा कि जाँच करते समय बोतलके ढक्कन पर कितना ज़ोर लगाना चाहिये। जाँचके बाद पेच या कमानीको पूर्ववत् कस देना चाहिये।

अगर ढक्कन उखड़ आये तो बोतलको फिरसे गरम पानीमें रखकर ढक्कन को बन्द करना चाहिये। और साथ ही यह भी देख लेना चाहिये कि रबड़ ठीक है

या नहीं, ढक्कनमें कहीं चोट लगनेकी वजहसे ढक्कन टेढ़ा-मेढ़ा तो नहीं हुआ है और बोतलसे सिरा चौरस है या नहीं।

११—लेबिल लगाना—प्रत्येक बोतलको बंद करनेके कुछ समय बाद अच्छी तरह धो और पोंछ कर लेबिल लगाना चाहिये। लेबिलका डिज़ाइन बहुत सोच-विचार कर रखना चाहिये। यह आवश्यकतासे बड़ा न रहे, स्वच्छ हो और इतना चटक रंगोंका न हो कि इसके आगे बोतलके भीतरका माल फीका लगे।

१२—बोतलों का रखना—बोतलमें बन्द किये सामानको ठंढी, सूखी और अँधेरी जगहमें रखना चाहिये। बहुत रोशनीमें रखनेसे शीशेमें रक्खी हुई वस्तुओंका रंग उड़ जाता है

[६]

दबे भाप से आँच दिखाना

बोतलबंदीके इतिहासके आरम्भसे ही फल आदिको आँच दिखा कर कीटाणुरहित किया जाता है। केवल छोटे-छोटे ब्योरोंमें ही पुरानी और नवीन रीतियोंमें अन्तर पड़ा है। पहले फलोंको अलग शीरेमें गरम किया जाता था और बोतलोंको अलग पानीमें। जब लोग समझते थे कि दोनों कीटाणुरहित हो गये तब फल और शीरे को डिब्बे या बोतलमें डाल कर डिब्बा या बोतल बन्द कर दिया जाता था। परन्तु इस क्रियामें अक्सर फफूंद (भुकड़ी) के बीज खुले डिब्बेमें पड़ जाते थे जिससे भीतर-ही-भीतर फफूँद लग जाती थी। इसी लिये इस रीतिको छोड़कर लोग भोज्य पदार्थ पहले बन्द करके पीछे उसे कीटाणुरहित करने लगे। शुरूमें एकदम कच्चा फल बिना कीटाणुरहित किये भर दिया जाता था और तब सबको कीटाणुरहित किया जाता था; लेकिन अब डिब्बोंको पहले कीटाणुरहित कर लिया जाता है। फलोंको दो-तीन मिनट तक खौलते पानीमें रख लिया जाता है और डिब्बोंमें रखकर उनमें गरम शीरा छोड़ दिया जाता है, और फिर बंद करनेके बाद कुलको कीटाणुरहित किया जाता है, जैसा कि पिछले दो अध्यायोंमें बतलाया गया है। यह भी कहा जा चुका है कि यदि तरकारीको खौलते पानीके तापक्रमपर ही कीटाणुरहित किया जाय, तो बाज तरकारियोंको एकसे अधिक बार गरम करना पड़ता है; परन्तु यदि २४१ डिग्रीकी गरमी उनको लगाई जाय तो एक बारके गरम करनेमें ही काम चल जाता है। इसके लिये भापको दबावमें रखकर पानी खौलाया जाता है। इसी लिये विशेष यन्त्रोंकी आवश्यकता पड़ती है। इसकी ज़रूरत विशेष रूपसे मटर, सेम आदि तरकारियों के लिये पड़ती है जिनमें न काफ़ी खटाई होती है और न काफ़ी मिठास।

यन्त्र—इन यन्त्रोंकी विशेषता यह रहती है कि ये इतने मज़बूत बनाये जाते हैं कि भापके दबावसे वे फट नहीं सकते। इनका ढक्कन बहुत सच्चा बैठता है और इसे कसनेके लिये चार या अधिक पेच लगे रहते हैं जिससे ढक्कन सब तरफ़से ख़ूब कस दिया जा सकता है। ढक्कन और बरतनके बीचमें रबड़की गद्दी भी दी जाती है जिससे भाप उस रास्तेसे न निकल सके। भापके निकलने के लिये एक छोटा-सा ढक्कन अलग लगा रहता है। यह ढक्कन या तो कमानीसे बन्द रहता है या तुला-दंड से, जिसके एक सिरे पर बोझ लटका दिया जाता है। इस बोझके घटाने-बढ़ानेसे, या अगर कमानी लगी हो तो कमानीको ढीला या कसा करनेसे ढक्कनके ऊपरका दबाव कम या ज़्यादा किया जा सकता है। अब भापका दबाव उपरोक्त कमानी या बोझसे अधिक हो जाता है तो ढक्कनको ठेल कर भाप बाहर निकल जाती है। ढक्कनमें कहीं दूसरी जगह छेद करके चापमापक भी कसा रहता है जिसकी सुई बराबर भाप का दबाव बतलाया करती है या उसके बदले तापमापक लगा रहता है जिससे भापका तापक्रम तुरन्त जाना जा सकता है।

घरेलू कामके लिये इस प्रकारके यन्त्र छोटे नापके भी आते हैं जिनमें चार-छः डिब्बे या बोतल अट सकते हैं। इनको गरम करनेके लिये लकड़ीके कोयले का दमकल या मिट्टीके तेलका स्टोव काफ़ी होता है।

कुछ तरकारियोंके लिये आवश्यक तापक्रम, भाप का दबाव और समय नीचेकी सारिणीमें दिया गया है।

सारिणी

तरकारी का नाम	तापक्रम डिगरी फ़ा०	चाप पाउंडोंमें	समय मिनटोंमें
चुकंदर (छोटा)..	२२८	५	३०
पालक	२४०	१०	३५
भाँटा	२४०	१०	५५
भिंडी	२५०	१५	३०
मटर	२४०	१०	४५
रसदार तरकारी (कोई भी)	२५०	१५	३५
लौकी	२४०	१०	६५
सेम	२४०	१०	४५

[७]

डिब्बाबन्दीके लिये फल

अंजीर—पहाड़ों पर होता है। डिब्बाबन्दीके लिये इसे पका और कड़ा होना चाहिये। आठ सेर अँजीर पर एक चायवाला प्यालाभर खाने वाला सोडा (सोडियम-बाइकारबोनेट) छिड़क दो। उस पर क़रीब आठ सेर खौलता हुआ पानी उँडेल दो। पन्द्रह मिनट तक पड़ा रहने दो। फिर सोडेके पानीको फेंक दो और अंजीरको ठंडे पानीमें अच्छी तरह धो डालो। पानी निथार डालो। शीरेमें ४० मिनटसे ले एक घंटा तक उबालो। शीरा एक हिस्सा चीनी और दो हिस्सा पानीसे बनता है (प्यालेसे नापो)। ठंढा होने पर डिब्बे या बोतलमें बन्द करो। शीरा भरो; ३० मिनट तक आँच दिखाओ। ढकना बन्द करो। सादे टीनके डिब्बोंमें अंजीर कुछ बदरंग हो जाते हैं। उनका रंग और स्वाद दोनों भीतरसे एनामल लगे डिब्बोंमें या शीशेकी बोतलोंमें सुरक्षित रह सकता है।

अनन्नास—बहुत-सा अनन्नास मलाया देशसे हिन्दुस्तानमें डिब्बोंमें भर कर आता है। अनन्नासको डिब्बे या बोतलमें भरनेके लिये पहले उन्हें छील कर और आँखें निकाल कर, उनके ½ इंच मोटे गोल कतरे काट डालो। बीचसे क़रीब आधे इंच व्यासका गोल भाग काट कर फेंक दो, क्योंकि यह कड़ा होता है। साधारण रीतिसे डिब्बेमें बन्द करो।

यदि शीरेमें थोड़ी खटाई (साइट्रिक ऐसिड) छोड़ दी जाय तो स्वाद और बढ़िया हो जाता है और अनन्नास की ख़राश निकल जाती है।

शीरा बनाने का नुसख़ा सारिणीमें दिया है।

अमरूद—अमरूदके डिब्बेबन्दीमें कोई ख़ास बात नहीं है। अमरूदकी जेली भी बहुत अच्छी बनती है।

आम—पके हुये क़लमी आमको छील और तराश डालना चाहिये। छिलका और गुठली फेंक दो और साधारण रीतिसे डिब्बे या बोतलोंमें बन्द करो।

आड़ू—देखो शफ़्तालू।

कटहल—पक्के कटहलको बहुत कमही लोग पसन्द करते हैं। परन्तु पक्के कटहलके कोओंको बीज निकालनेके बाद साधारण रीतिसे डिब्बा या बोतल-बन्द करनेमें कोई दिक़्क़त न होनी चाहिये।

ख़िरनी—खिरनी बीज समेत और बीज निकाल कर दोनों तरहसे आसानीसे बोतलबन्द की जा सकती है। लेकिन बीज निकाल करही बन्द करना अच्छा होगा। एक-एकके दो-दो टुकड़े करना ठीक होगा।

ख़ूबानी—ठीक शफ़्तालूकी तरह इसको बोतल-बन्द कर सकते हैं।

ख़रबूज़ा—छिलका और बीज निकाल कर साधारण रीतिसे बोतलों में बन्द करना चाहिये। ध्यान रक्खो कि बीज या गुच्छा लगा न रह जाय। जो ख़रबूज़े मीठे और खुशबूदार होते हैं उन्हींको बोतलबन्द करना उचित है।

गन्ना—छील कर या गँडेरी काट कर इनकी बोतल-बन्दी करनी चाहिये। शीरेमें यदि थोड़ा गुलाबजल भी मिला दिया जाय तो कोई हर्ज नहीं है।

गुलाबजामुन—इस फलको बोतलमें बन्द करना बहुत आसान होगा क्योंकि फलमें रस बहुत कम होता है और यह ख़ूब मीठा और ख़ुशबूदार होता है। मगर दिक़्क़त यह है कि यह फल अधिक मात्रामें बाज़ारोंमें बिकता नहीं है। बीज निकाल कर बोतल-बन्दी करनी चाहिये।

चेरी—यह पहाड़ों परही होती है। टीनके डिब्बोंमें बन्द करनेसे यह बदरंग हो जाती है। इसलिये शीशेकी बोतल या एनामल किये हुये डिब्बोंमें बन्द करना चाहिये।

टमाटर—भारतवर्ष में बहुत सस्ती चीज़ है। परन्तु विलायतमें यह सेबके भाव बिकता है। बहुत-सा माल डिब्बोंमें बन्द होकर इन देशोंमें बाहरसे आता है। टमाटर बड़े फ़ायदेकी चीज़ है और भारतवर्षमें भी इसकी खपत बढ़नी चाहिये।

फलोंको छिछली टोकरियोंमें तोड़ कर रखना चाहिये जिससे अपनेही भारसे वे दब न जायँ और तोड़नेमें जल्दी करनी चाहिये। टमाटर एक सुकुमार फल है और तोड़ कर रख देनेसे ख़राब हो जायगा। कच्चा तोड़ कर पकनेके लिये रख देना भी ठीक नहीं है। बहुत पक्के फल भी डिब्बोंमें बन्द करनेके लिये ठीक नहीं होते। एक नापके टमाटरोंको अलग चुन कर, धोकर, खौलते पानीमें एक-दो मिनट रख कर, फिर ठंडे पानीमें डुबा कर ठंडा करो और चटपट छील डालो। तेज़ नोकीले चाक़ूसे बीचके भागको काट कर निकाल दो, जिससे बीज सब निकल जायँ। केवल लाल, पक्के, अच्छे टमाटरोंको ही डिब्बेमें बन्द करना चाहिये। वे या तो समूचे रक्खे जायँ या उनके बड़े-बड़े टुकड़े काटे जायँ। अन्य बातें सारिणीसे मालूम होंगी। परन्तु यदि पतले शीरेमें रखनेके बदले टमाटरोंके गूदे और शक्करकी चाशनी बना ली जाय, या चटनीके साथ टमाटर सुरक्षित रक्खे जायँ, तो उनका स्वाद और रंग और भी बढ़िया बना रहता है।

नाब (नख)—नाब नाशपातीकी ही एक जाति है।

नाशपाती—नाशपातियाँ पकी हों परंतु घुली न हों। छील कर और खौलते पानीमें ३ मिनट तक डाल कर उनको खानेवाले सोडाके फीके घोलमें डाल देना चाहिये। पाँच सेर पानीमें एक चायवाली चम्मच-भर सोडा काफ़ी होगा। निथार कर उन्हें तुरन्त डिब्बोंमें रख देना चाहिये। अगर समूचीही नाशपातियाँ डिब्बोंमें रक्खी जायँ तो उनके डंठल भी लगे रहें। ऐसा करनेसे वे अधिक अच्छी मालूम होंगी। अधिकतर आधी-आधी काट कर नाश्पातियोंके रखनेमें सुविधा होती है। तब बीज निकाल कर फेंक देना चाहिये। छीलनेके बाद नाशपातियोंको पानीमें डुबा कर रखना चाहिये; नहीं तो वे शीघ्र बदरंग हो जायँगी।

पपीता—छील कर पपीतेकी चार-चार फाँक करके और बीज निकाल कर उनको डिब्बों या बोतलोंमें बन्द करना चाहिये। पपीता अच्छी तरह पका हो लेकिन घुला न हो। बीज वगैरह निकाल कर फेंक देना चाहिये, क्योंकि बीजके साथकी झिल्ली कड़वी होती है। यदि एक-आध बीज भी रह जायँगे तो स्वाद बिगड़ जायगा।

पालम—यह पहाड़ी फल है। पालम वस्तुतः अँगरेज़ी शब्द plum (प्लम) का अपभ्रंश है। धोने और चुननेके बाद इनको सूजेसे कोंचना चाहिये; नहीं तो शीरेमें यह अक्सर फट जाते हैं। इनको शीशे या एनामेलके बरतनोंमें बन्द करना चाहिये। टीनके डिब्बोंमें ये बदरंग हो जाते हैं।

बेर—इनको समूचा, या छील कर और बीज निकाल कर, डिब्बोंमें बन्द करना चाहिये। परन्तु समूचे बेरोंको पहले सूजेसे कोंच लेना चाहिये; नहीं तो शीरेमें उनके फटनेका डर रहता है।

बड़हल—छील कर और बीज निकाल कर साधारण रीतिसे इनकी बोतलबन्दी करनी चाहिये।

लीची—छील कर समूचाही या दो टुकड़े करके और बीज निकाल कर उनको आसानीसे बोतलबन्द किया जा सकता है। डिब्बोंमें बदरंग होनेका डर रहता है; इसलिये बोतलों का प्रयोग करना चाहिये।

लोकाट—लोकाटका डिब्बा या बोतलमें बंद करना बहुत आसान है। छिलका छील कर बीज निकाल डालना चाहिये। फलोंकी दो-दो फाँकें ही काफ़ी होंगी।

शफ़तालू—चुन कर पके, कड़े और अच्छे फलोंको डिब्बे और बोतलोंमें बंद करनेके लिये अलग कर लेना चाहिये। टूटे-फूटे फलोंको जैम बनानेके लिये अलग कर देना चाहिये। पहले खौलते, फिर ठंडे पानीमें छोड़ कर छिलका उतार डालना चाहिये और प्रत्येककी दो फाँकें कर बीज भी निकाल देना चाहिये।

शहतूत—शहतूत अक्सर बाज़ारमें गंदी हालतमें बिकनेके लिये आता है। बोतलबंद करनेके लिये पेड़ोंसे पके शहतूत तोड़ना चाहिये। बहुत नरम होनेके कारण इसे खौलते पानीमें केवल एक मिनट तक रखना चाहिये और तुरंत डिब्बोंमें रखकर शीरा छोड़कर शेष क्रिया करनी चाहिये।

सेब—इनको भी डिब्बेमें रखने के पहले केवल एक मिनट तक खौलते पानीमें डालना चाहिये। अधिक देर तक गरम पानी में रखनेसे ये सिकुड़ जाते हैं।

अन्य फल—मौलसिरी और पनियाला भी साधारण रीतिसे सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। नारंगी, अंगूर, शरीफ़ा, मकोय (टिपारी या रसभरी) ऐसे नाज़ुक फल हैं कि उनका सुरक्षित रखना कठिन है। जैम बनाकर उनको आसानीसे रक्खा जा सकता है। अनार, जामुन, और फालसाका शर्बत ही बनाना ठीक होगा, और बेलका शर्बत या मुरब्बा। आलूबुख़ारा, कमरख, हरफारेवड़ी, लिसोड़ा, इमली, कच्चा आम, करौंदा, इन सबोंको चटनी या मुरब्बेके रूपमें और आँवला, बेल, पेठा इनको भी मुरब्बेके रूपमें रक्खा जा सकता हैं। हलके शीरेमें सुरक्षित रखनेसे या तो ये इतने खट्टे रहेंगे कि खानेके लायक़ न रहेंगे, या इनका असली स्वाद इतना ख़राब होता है कि इनको हलके शीरेमें रखना बेकार है। नीबू और मूली अचारके रूपमें रक्खे जाते हैं। करौंदा और पटुआकी जेली बहुत बढ़िया बनती है। (जैसा आगे बतलाया जायगा, कई एक अन्य फलोंकी भी जेली अच्छी बनती हैं।)

गरी और केला बारहों मास मिलता है। इसलिये उन्हें सुरक्षित रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। ककड़ी, खीरा, गूलर, तरबूज़, गाजर, कंदा (शकरकंद), कच्ची मूँगफली, कैथा, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, ये सब इतने सस्ते फल हैं कि शायद ही इन्हें कोई बोतलबंद करना चाहे। परंतु यदि कोई चाहे तो इनमेंसे बहुतेरोंको आसानीसे बोतलबंद किया जा सकता है। कसेरू, सिंघाड़ा, कंदा और कमलगट्टाको बोतलबंद करनेके लिये उन्हें छीलकर बंद करना चाहिये, और शीरेमें नीबूका रस भी छोड़ देना चाहिये, नहीं तो वे अधिक दिन न टिक सकेंगे।

फलोंकी खिचड़ी—एक ही बोतलमें एकसे अधिक प्रकारके फल बंद करनेसे बहुत ही चित्ताकर्षक बोतल तैयार होती है। परंतु ध्यान रखना चाहिये कि बहुत मीठे फल खट्टे फलोंके साथ या सादे रंगके फल चटक रंगों वाले फलोंके साथ न बंद किये जायँ; क्योंकि ऐसा करनेसे अक्सर एकका रंग या स्वाद दूसरे पर चढ़ जाता है।

फलोंकी बोतलबन्दी

पुस्तकमें दी गई रीतिको सावधानीसे पढ़नेके पहले इस सारिणीके प्रयोगकी चेष्टा न करनी चाहिये ।

फल	खौलते पानीमें रक्खो (सेकंड)	शीरा नम्बर	टीन का डिब्बा			शीशेकी बोतल	
			डिब्बे की समाई (छटाँक)	हवा निकालो (मिनट)	खौलते पानीमें डिब्बा रक्खो	बोतल की नाप	खौलते पानी में रक्खो
अंजीर	३०	३	१२	२	२५	अद्धा	३०
अनन्नास	६०	२	१२	२	२५	अद्धा	३०
अमरूद	३०	४	१८	३	२५	पूरा	३०
आम	३०	४	१८	३	२०	पूरा	२५
आड़ू, शफ़ालू	१५	४	१२	२	१५	अद्धा	२०
खिरनी	३०	४	१२	३	२०	अद्धा	२५
ख़ूबानी	१५	३	१२	२	१५	अद्धा	२०
टमाटर	१५	३	१२	२	२०	अद्धा	२५
नाशपाती	६०	२	१८	३	१५	पूरा	२०
पपीता	३०	३	१८	२	१५	पूरा	२०
पालम	३०	४	१२	२	१२	अद्धा	१७
बेर	६०	२	१२	३	१५	अद्धा	२०
लीची (छिली)	१५	३	१२	३	१५	अद्धा	२०
लोकाट	६०	३	१२	३	२०	अद्धा	२५
शहतूत	१५	३	१२	२	१०	अद्धा	१५
सेब	६०	१	१८	३	१०	पूरा	१५

नोट:—खट्टे फल या तो बोतल में बंद किये जायँ, या भीतर एनामेल किये टीन के डिब्बों में
शीरा नंबर १ के लिये ५ सेर पानीमें ७ छटाँक चीनी डालो ।
नंबर २ के लिये ५ सेर पानीमें १५ छटाँक चीनी डालो ।
नंबर ३ के लिये ५ सेर पानीमें २८ छटाँक चीनी डालो ।
नंबर ४ के लिये ५ सेर पानीमें ४४ छटाँक चीनी डालो ।

[८]

डिब्बाबंदीके लिये तरकारियाँ

भारतवर्षमें सदा ही कई-एक हरी तरकारियाँ मिला करती हैं। इसलिए इस देशमें तरकारियोंकी डिब्बा-बंदीकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी यूरोप और उत्तरी अमरीकामें। वहाँ तो जाड़ेमें बर्फ़ पड़ता है और उस समय कोई तरकारी हो ही नहीं सकती। इसलिये या तो अन्य देशोंसे मँगाई गई या सुरक्षित रक्खी हुई या डिब्बाबंद तरकारियोंसे काम चलाना पड़ता है।

तो भी भारतवर्षमें बाज़ तरकारियोंकी डिब्बाबंदी लाभसहित की जा सकती है, विशेषकर उन तरकारियों-की जो फ़सलके आरंभमें बहुत मँहगी बिकती हैं, जैसे हरी मटर या गोभी। अन्य तरकारियां जैसे अरुई, ककड़ी, कुँदरू, कोंहड़ा, खीरा, गाँठगोभी, चिचिंडा, चुकंदर, टिंडा, तरोई (घीयातरोई, रामतरोई, झींगातरोई), नेनुआ, पातगोभी, पालक, बंडा, बैंगन, मिरचा, मूली, सलाद, साग, सेम आदि बराबर इतनी सस्ती बिकती हैं कि इनको डिब्बाबंद करनेमें घाटा ही होगा। हाँ, यदि इन तरकारियोंके बिलकुल बेमौसम खानेका रिवाज विज्ञापन और लेक्चरबाज़ीसे प्रचलित कर दिया जाय और लोग इन तरकारियोंके भी दूना दाम देनेको तैयार हो जायँ तो लाभ हो सकता है।

तरकारियोंकी डिब्बाबंदी—तरकारियोंकी डिब्बा-बंदीके लिये या तो नमकका पानी या चीनी मिले नमकका पानी इस्तेमाल किया जाता है। नमकका घोल ५ सेर पानीमें सवा छटाँक नमक मिलाने-से बनता है। यदि चीनी भी मिलानी हो तो एक भाग नमक और दो भाग चीनीका प्रयोग किया जाता है। इस अनुपातमें नमक और चीनी मिला कर इस मिश्रणका चार चम्मच (चायवाला चम्मच) ३ पाव पानीमें डालना ठीक होगा। चीनी और नमकके घोलमें सुरक्षित रक्खी गई तरकारियाँ केवल नमकके घोलमें रक्खी गई तरकारियोंसे अधिक स्वादिष्ट और अधिक टिकाऊ होती हैं।

तरकारियोंके सुरक्षित रखनेकी एक व्यापक रीति—जिन तरकारियोंकी रसदार (शोरबेदार) तरकारी बनती हो उनके सुरक्षित रखनेकी सबसे सरल रीति यह है कि उनकी रसदार तरकारी नमक मसाले आदि डाल कर बना ली जाय, परंतु वे भरपूर न पकाई जायँ। जब तरकारी आधीसे अधिक पक चले तो उनको गरमा-गरम कीटाणुरहित की हुई बोतलों या डिब्बोंमें बंद कर दिया जाय और बंद डिब्बेको खौलते पानीमें बीस-पच्चीस मिनट तक रक्खा जाय और ढकना कस दिया जाय। इसके बाद डिब्बेको ठंढा कर डालना चाहिये। दूसरे दिन तरकारीको फिर खौलते पानीमें ३० मिनट तक रक्खा जाय और ठंढा किया जाय। तीसरे दिन फिर तीस मिनट तक खौलते पानीमें रखकर ठंढा करो। इस तरहसे डिब्बाबंद की गई तरकारी आसानीसे एक वर्षसे ऊपर चलेगी, क्योंकि मसालोंसे इस बातमें सहायता मिलती है।

करैला—नरम करैलोंको पानीसे धोकर उनके पतले-पतले कतरे काट डालो। फिर उनको नमकके पानीसे धो डालो ताकि कड़वापन निकल जाय। इसके बाद कपड़ेमें ढीला बाँध कर खौलते पानीमें तीन मिनट रक्खो और तुरंत ठंढे नमकके पानीमें छोड़ दो (१ सेर पानीमें आधी छटाँक नमक हो)। फिर डिब्बेमें रक्खो और नमकके पानीसे डिब्बेको भर दो (४ सेर पानीमें १ छटाँक नमक रहे)। दूसरे दिन फिर ३० मिनट आँच दिखलाओ, ठंढा करो और तीसरे दिन भी यही करो। या इस प्रकार तीन दिन गरम करनेके बदले एक ही दिन ४५ मिनट तक २४५ डिग्री फ़ा० की आँच दबे भापसे देकर भी काम चलाया जा सकता है।

गोभी (फूलगोभी)—गोभीके फूलके छोटे-छोटे टुकड़े कर डालो, ठीक वैसे ही जैसे उसे तरकारीके लिये काटते हैं। पानीसे धो डालो। कपड़ेमें ढीला बाँध कर खौलते पानीमें एक मिनटके लिये डालो। डिब्बे या बोतलोंमें रक्खो; और नमकका पानी भरो (४ सेर पानीमें १ छटाँक नमक रहे। बाक़ी काम करैलेकी तरह करो।

परवल—(१)—परवलके दोनों सिरोंको ज़रा-ज़रा काट कर फेंक दो और चाकूसे खुरच कर छील डालो। दो-दो फाँकें कर डालो। कपड़ेमें ढीला बाँध कर खौलते पानीमें तीन मिनट तक रक्खो। फिर डिब्बोंमें रक्खो और नमकका पानी भरो (४ सेर पानीमें १ छटांक नमक रहे)। बाक़ी सब काम करेलेकी तरह करो।

(२) कतर कर छीलो। चार-चार फाँकें करो। करेलेकी तरह सुरक्षित करो।

बोड़ा—(लोबिया, चूँड़ा या सेंगरीकी फली)-यह सेमकी जातिकी तरकारी है। दस-बारह इञ्च लम्बी फलियाँ लगती हैं जिसके भीतर सेमके बीजकी तरह बीज होते हैं। नरम और ताज़े बोड़ेको चुन कर एक मोटाईके फलोंको अलग कर लो। काट कर टुकड़े-टुकड़े करो। क़रीब दो इञ्चके टुकड़े हों। यदि तिरछे काटे जायँगे तो अधिक सुंदर दिखाई पड़ेंगे। एक चम्मच (चायवाला चम्मच) सोडेको पाँच सेर पानीमें डालकर घोल बनाओ। घोलको ज़ोरसे खौलाओ और इसमें बोड़ेको कपड़ेमें ढीला बाँध कर चार मिनटके लिये छोड़ दो। निकालते ही तुरंत ठंडे नमकके पानीमें छोड़ दो। सेर भर पानीमें तीन चम्मच नमक रहे। ऐसा करनेसे बोड़ेका हरा रंग पक्का हो जायगा और इस लिये डिब्बोंमें से निकालने पर ताज़े ही दिखाई पड़ेंगे। नमकके पानीसे निकाल कर चटपट पानी निथारो और डिब्बोंमें रक्खो। ताज़ा नमकका पानी भरो (४ सेर पानीमें १ छटांक नमक रहे)। बाक़ी बातें करेलेकी तरह हैं।

भिंडी या रामतरोई—नरम भिंडियोंको लेकर उनकी नोक और सिरा दोनों काट दो। बोड़ेकी तरह इसेभी खौलते सोडाके पानीमें डाल कर नमक के पानी में डालो, और डिब्बोंमें बन्द करो।

नोट—डिब्बेसे निकालनेके बाद भिंडी कड़ी हो जाती है और उसका काटना मुश्किल हो जाता है। इसलिये अगर शोरबेदार तरकारी बनानी हो तो तरकारी बना करही इसे डिब्बाबन्द करना चाहिये (ऊपर देखो)।

मटर (हरी)—हरी मटरका डिब्बाबन्द करना ज़रा मुश्किल है। मटरके दानोंको इस प्रकारसे सुखा लेना कि उनका हरा रंग मिटने न पाये आसान है। इन सूखे दोनोंको पानीमें फुलाने पर वे बहुत कुछ ताज़े मटरकी तरह हो जाते हैं, परन्तु यदि सावधानीसे काम किया जाय
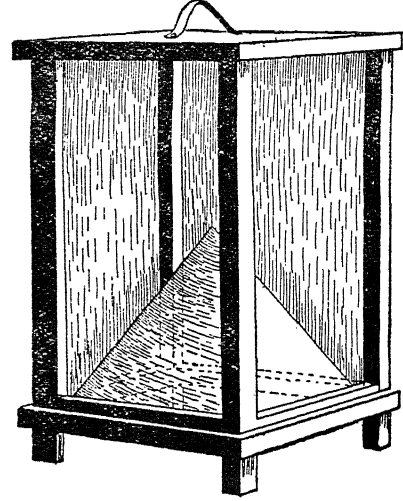
चित्र नं० १०—मक्खी-फाँस—यह साधारण जालीदार अलमारी है। परंतु इसका पेंदा तम्बूके आकारका होता है जिसकी नोक पर छेद होता है। इस अलमारीके नीचे दूध या माँस रख देनेसे मक्खियाँ फल या शीरे पर जानेके बदले इसके नीचे चली आती हैं। पेट भरनेपर जब वे उड़ती हैं तो तम्बूमेंसे उड़कर वे अलमारीमें पहुँचजाती हैं और उसीमें फँसी रहती हैं। इस तरहकी एक दो मक्खी-फाँस चाशनी आदि बनाते समय आसपास रखनी चाहिये।

तो मटरको डिब्बाबन्द करना असम्भव नहीं है। सिर्फ़ नरम ताज़ी छीमियोंका प्रयोग करना चाहिये। उन्हें सुबहके समय तोड़ना चाहिये और यथासम्भव शीघ्रही डिब्बोंमें बन्द करना चाहिये। इस काममें शीघ्रता करनी चाहिये, क्योंकि छीलनेके बाद कुछ समय तक पड़े रहनेसे मटर ख़राब हो जाती है। छीलनेके बाद मटरके दानोंको ब्रीन डालना चाहिये। छोटे, बड़े और मझले नापके दानोंको अलग-अलग कर लेना

चाहिये। नरम मटर के साथ कड़ी मटर न मिल जाय। इसके बाद उन्हें कपड़ेमें ढीला बाँध कर खौलते पानीमें डाला जाता है। इससे नमकीन पानी जो डिब्बोंमें भरा जायगा मटमैला नहीं होने पायेगा। बहुत नरम मटरको दो-ढाई मिनट खौलते हुये पानीमें रखना काफ़ी होगा, लेकिन कड़ी मटरको १५ या २० मिनट तक खौलते पानीमें रखनेकी आवश्ययकता पड़ती है। इतनी देर तक खौलते पानीमें रखना चाहिये कि वे नरम हो जायँ। नहीं तो वे डिब्बोंमें बन्द करनेके बाद बराबर कड़ी रहेंगी। खौलते पानीसे निकालनेके बाद उनको बोड़ेकी तरह खौलते सोडाके पानीमें छोड़ना चाहिये और शेष क्रियाभी उसी प्रकार करनी चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि नमकके पानीमें थोड़ी चीनीभी मिला लेनी चाहिये (चार सेर पानीमें १ छटाँक नमक और दो छटाँक चीनी पड़ेगी) और तीन दिन तक (प्रत्येक दिन एक-एक घंटे तक, खौलते पानीमें रखना चाहिये। अगर मटर बहुत नरम हो तो पैंतालिस—पैंतालिस मिनट तकही आँच दिखाना काफ़ी होगा। हर बार जब खौलते पानीमें रख कर आँच दिखाई जाय और डिब्बेके निकालनेका समय आ जाय तो डिब्बेको निकालते ही उसे ख़ूब ठंडे पानीमें डुबा देना चाहिये। इसके बदले केवल एक बार दबावमें रक्खे भापसे एक घंटा २५० डिग्रीकी आँच दिखाना काफ़ी होगा।

लौकी—इसकी रसदार तरकारीही बना कर डिब्बेमें बन्द करना ठीक होगा। तरकारी बना कर डिब्बाबन्दीकी रीति ऊपर दी जा चुकी है।

शलजम—नरम शलजमको लेकर धोओ, छीलो, कपड़ेमें ढीला बाँध कर खौलते पानीमें सात-आठ मिनट रक्खो, निकाल कर ठंढे पानीमें रक्खो, डिब्बोंमें रक्खो और गरम नमकका पानी भरो (४ सेर पानीमें एक छटाँक नमक रहे) । शेष बातें करैलेकी तरह हैं।

[९]

जेली बनाना

वर्णन—कुछ फलोंके रसोंके साथ उचित मात्रामें चीनी मिलाकर पकानेसे जेली बनती है। बढ़िया जेली स्वच्छ, पारदर्शक, और चमकदार होती है और उसका रंग भी सुंदर होता है। थाली या प्लेट पर रखनेसे जेली, गाढ़े शीराकी तरह बहनेके बदले, अपना रूप बनाये रक्खेगी और थल-थल हिलेगी। काटने पर साफ़ कटेगी और चाक़ूसे बने कोने और किनारे बने रहेंगे। यद्यपि जेली नरम होती है तो भी थोड़ा-सा दबाकर छोड़ देने पर वह अपने पुराने रूपकी हो जायगी। जेलीकी सुगन्ध और स्वाद ताज़े फलोंकी याद दिलाता है। जेलियाँ दो प्रकारकी होती हैं, एक तो फलोंकी, जिसे उन फलोंके रसोंसे बनाया जाता है जिनमें काफ़ी पेक्टिन होता है (पेक्टिन वह वस्तु है जिससेही जेलीका बनना संभव होता है); और दूसरी अन्य, प्राय: स्वाद-सुगंध-रंगहीन, वस्तुओंसे पेक्टिन निकाल कर बनाई गयी जेली, जिसमें ऊपरसे रंग और सुगंध डाल दी जाती है। साधारणत: फलोंके स्वाभाविक रसकी जेलीही लोग पसंद करते हैं। शायद पेक्टिनमें रंग और गुलाब-जल, पुदीना आदि डाल कर बनी जेली इतनी पुष्टिकर न होती होगी।

यदि तैयार करने पर जेली शीरेकी तरह चिपचिपी, या गोंदकी तरह कड़ी हो, तो समझना चाहिये कि जेली ठीक नहीं बनी।

पेक्टिन—फलोंके रसोंमें पेक्टिन नामक जो पदार्थ रहता है, जेली उसीके कारण बन पाती है। अच्छी जेली बननेके लिये पेक्टिन, खटाई और चीनीका ठीक-ठीक मात्रामें रहना आवश्यक है। जेली बनानेके लिये वे फल सबसे अच्छे होते हैं जिनमें पेक्टिन और खटाई दोनों हों, जैसे करौंदा या पेटुआ। पेक्टिन सब फलोंमें नहीं होती और ख़ूब पके फलोंकी अपेक्षा गदर (अध-पके) फलोंमें अधिक होती है। फल पकनेसे मीठे हो

जाते हैं और ऐसा विश्वास किया जाता है कि सूर्यकी गरमीसे पेक्टिन बदल कर चीनीमें परिणित हो जाती है। इसीसे ख़ूब पके फलोंसे अच्छी जेली नहीं बनती। जेली बनानेके लिये करौंदा, पेटुआ, अमरूद, नारंगी, सेब, और अंगूर उपयुक्त हैं। बाज़ फल ऐसे होते हैं कि उनमें पेक्टिन तो ख़ूब होती है, परंतु उनमें खटाई नहीं होती। इनमें जबतक खटाई न डाली जाय तबतक उनसे जेली नहीं बन सकती। उदाहरणार्थ, अमरूदमें खटाई डालना आवश्यक है। मकोय (रसभरी), अनन्नास, ख़ूबानी, शफ़्तालू आदिकी जेलियाँभी बन सकती हैं, परंतु उनमें ऊपरसे पेक्टिन डालनी पड़ती है। यह पेक्टिन नारंगियोंके छिलकेके सफ़ेद भागसे निकाली और उपर्युक्त फलोंके रसोंमें डाली जा सकती है। इस प्रकार उन फलोंकी भी बहुत अच्छी जेलियाँ बन सकती हैं जिनमें पेक्टिन नहीं रहती और इस प्रकारसे बनाई गई जेलीमें उसी फलका स्वाद और रंग रहेगा जिसके रससे वह बनेगी। जिन फलोंमें पेक्टिन होती है उनसे जेली बनानेमें यदि आधा फल पका हुआ लिया जाय और आधा गद्दर, तो पके फलसे स्वाद और रंग; मिलेगा और गद्दर फलसे पेक्टिन और इस प्रकार अच्छी जेली बन सकेगी।

रस निकालना—आँच लगानेसे रस आसानीसे निकाला जा सकता है। यदि फलको केवल कुचल दिया जाय तो रस इतनी आसानी से न निकलेगा जितना कुचलने और गरम करनेसे। पेक्टिनकी मात्रा बढ़ानेके लिये भी फलोंको गरम करना आवश्यक है। कुछ फल ऐसे भी हैं जिनमें बिना आँच पर पकाये उनका रस निचोड़ने पर कुछ भी पेक्टिन नहीं रहती, परन्तु उसी फलको पानीमें उबाल कर रस निचोड़ने पर बहुत-सी पेक्टिन मिलेगी। उबालनेके पहलेही खटाई मिला देनेसे पेक्टिनके बननेमें सहायता मिलती है।

रसदार फलोंको कुचल कर उनमें केवल इतनाही पानी मिलाना चाहिये कि फलको आँच पर पका कर नरम किया जा सके। कम रसवाले फलोंमें, जैसे सेबमें, अधिक पानी मिलानेकी आवश्यकता पड़ेगी। सेर-भर सेब पीछे क़रीब सवा सेर पानी डालो और इतनी देर तक उबालो कि सेब बिल्कुल नरम होजाय।
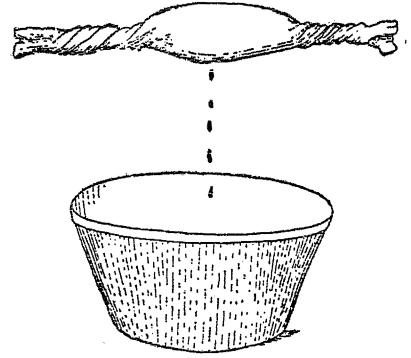
चित्र नं० ११—फलोंका रस निकालनेके लिये उनको कुचलकर और कपड़ेमें लपेट कर कपड़ेको ऐंठना चाहिये।

पकाये गये फलको पानीसे तर किये स्वच्छ, खँखरे, परंतु मज़बूत कपड़ेमें रखकर इस प्रकार ऐंठो कि सब रस निकल पड़े। फिर खौलते पानीमें फ़लालैनको भिगो कर उससे इस रसको छानो, जिससे फलका कोई अंश रसमें न आजाय, केवल स्वच्छ रस निकले। यदि फ़लालैन न मिले तो गफ़ बुने हुए दोहरे सूती कपड़ेसे ही काम चल जायगा। इस प्रकार पहले निचोड़ कर गारनेसे, और फिर उसे दुबारा छाननेसे रस अधिक निकलता है। यदि पहलेही गफ़ कपड़ेसे और बिना निचोड़े फलको छाना जाय तो बहुत सा रस सिट्ठीके साथ रह जायगा। कभी-कभी सिट्ठीको दुबारा पानीमें खौला कर छान लिया जाता है। स्वभावतः, इसमें पेक्टिन कम होता है और इसलिये इसमें चीनीभी कम डालनी चाहिये।

पेक्टिनकी जाँच—फलके रसकी जाँच कर ली जाय तो अच्छा है। इसका आसानीसे पता चल सकता है कि पेक्टिनकी मात्रा अधिक है या कम। शीशेके गिलासमें चार-पाँच चम्मच फलका रस डाल दो

और उसमें धीरेसे उतनीही मेथिलेटिड स्पिरिट डालो। गिलासको धीरे-धीरे घुमाकर या टेढ़ा करके दोनोंको मिला दो और फिर सावधानीसे दूसरे गिलासमें छोड़ो। यदि पेक्टिन जम कर थक्का (एक-पिंड) हो जाय तो साधारणतः रसके नाप (आयतन) के बराबर चीनी छोड़नेमें कोई हरज नहीं है।
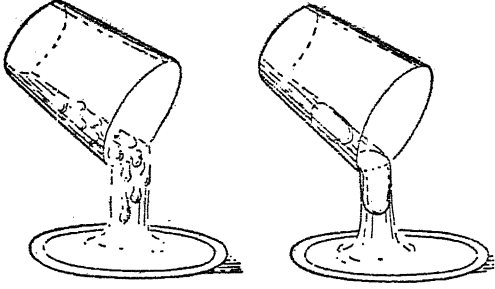
चित्र नं० १२—पेक्टिनकी जाँचके लिये फलके रसमें उतनी ही स्पिरिट मिलाकर उँड़ेलना चाहिये। यदि काफ़ी पेक्टिन उपस्थित होगी तो घोलका एक अंश पतली लेईकी तरह जम जायगा।

यदि ऊपरके प्रयोगमें पेक्टिन न जमे तो चीनीकी मात्रा घटा देनी चाहिये। जेली बनानेमें साधारण गलती यही होती है कि चीनी अधिक पड़ जाती है और परिणाम जेलीके बदले शीरा हो जाता है। उपर्युक्त जाँचसे पेक्टिनकी मात्राका ठीक-ठीक पता नहीं चलता, केवल इतना ही ज्ञात होता है कि पेक्टिन अधिक है या कम। भिन्न-भिन्न रसोंमें पेक्टिनकी मात्रा न्यूनाधिक होती है और इससे प्रत्यक्ष है कि जेली बनानेके लिये प्रत्येक रसमें रसके बराबर ही चीनी छोड़नेमें जेलीके बिगड़ जानेका बहुत डर रहता है। सभी रसोंके लिये एक ही नियम नहीं लगाया जा सकता। यदि ऊपरके प्रयोगसे पता चले कि पेक्टिन बहुत कम है, तो इससे आधी ही मात्रामें चीनी छोड़नी चाहिये।

कभी-कभी घनत्वमापकसे रसका घनत्व नाप कर देख लिया जाता है कि रस कितना गाढ़ा है। इससे इसका पता तुरंत लग जाता है कि कितनी चीनी छोड़ी जाय। ठंढा हो जानेके बाद ही रसका घनत्व नापना चाहिये। कुछ घनत्वमापक विशेष रूपसे इसी कामके लिये बनाये गये हैं। उनसे घनत्वके बदले सीधा इसका पता चल जाता है कि १ सेर रसमें कितने छटाँक चीनी डालनी चाहिये।

यदि रसमें ठीक मात्रामें चीनी पड़ेगी तो जेली बनानेमें सफलता प्रायः निश्चय ही मिलेगी।

चीनी छोड़ना आदि—जितना रस पकाना हो भगौनेमें उसका चौगुना आ सके; नहीं तो रसके उफन जानेका डर रहेगा।

चीनी जितनी ही पहले छोड़ दी जायगी उतना ही कम डर इसके जेलीसे अलग होजानेका रहेगा, क्योंकि खटाईके साथ गन्नेकी चीनीको पकानेसे इसमें कुछ रासायनिक परिवर्तन हो जाता है और यह अन्य अधिक सरल शर्कराओंमें परिवर्तित हो जाती है। यदि चीनी बहुत पीछे छोड़ी जायगी तो संभवतः जेलीमें सर्वत्र चीनीके रवे दिखलाई पड़ने लगेंगे और इस प्रकार जेली ख़राब हो जायगी।

तो भी ठंडे रसमें चीनी न छोड़नी चाहिये। रसको पहले आँच पर चढ़ा दो और कलछुलीसे ऊपरकी गदगी काछकर फेंकदो और तब चीनी छोड़ो (कलछुली काठकी हो)। आँच तेज़ रक्खो जिससे जेली जल्द बने। इससे रंग चटक उतरता है और जेली स्वच्छ होती है। आरंभसे ही चीनी छोड़ कर उबालने पर मैल काछनेसे चीनीका घाटा पड़ता है।

कब उतारें?—थर्मामीटरसे जेली बनानेमें बड़ी सहायता मिलती है, परंतु थर्मामीटर बिना भी काम चल सकता है। यदि थर्मामीटर हो तो उसके निचले भागको रसमें डालना चाहिये। जबतक २१६ या २१७ डिग्रीका तापक्रम न हो जाय तबतक इसको चुरने देना चाहिये। इसके बाद रस बहुत शीघ्र पकता है, और बहुत सावधानीसे उसे देखते रहना चाहिये। रस बराबर ख़ूब खौलता रहे। पहली बार उबाल आनेसे लेकर अंत तक रस ज़ोरसे खौलता रहे। बहुत समय तक पकने

से खटाईकी उपस्थितिके कारण पेक्टिनकी जेली बनाने वाली शक्ति बहुत कुछ मर जाती है। अधिक समय तक पकानेसे जेलीकी चमक जाती रहती है और तेज़ आँच पर शीघ्र पकायी गयी जेलीकी अपेक्षा यह जेली अधिक काली हो जाती है।

जब जेली लगभग तैयार हो चले तो इसकी बार-बार जाँच करनी चाहिये। थोड़ा-सा रस कलछुलीसे उठाओ; कलछुलीको हवामें हिलाकर उसे ठंढा करो और गिराओ। पहले तो जेली पतली चाशनीकी तरह बूँद-बूँद
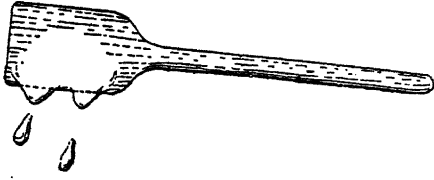
चित्र नं० १४—यदि कलछुलीसे उठाने पर बूँदें इस तरह टपकें जैसा चित्रमें दिखाया गया है तो समझना चाहिये कि जेली अभी काफ़ी नहीं पकी।

करके गिरेगी। परंतु कुछ अधिक पकने पर जेली अधिक गाढ़ी हो जायगी, और बूँदें बड़ी हो जायँगी। जब बूँदे एक साथ बँध कर कलछुलसे इस प्रकार गिरें कि कलछुल साफ़ हो जाय तो समझना चाहिये कि जेली तैयार
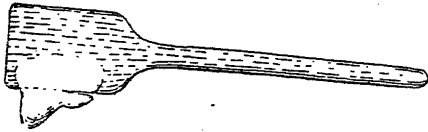
चित्र नं० १४—यदि कलछुलीसे उठाने पर बूँदें इस तरह टपकें जैसा चित्र १४ में दिखाया गया है तो समझना चाहिये कि जेली तैयार होगई।

हो गई और उसे तुरंत आँच परसे उतार लेना चाहिये।

यह जाँच जाड़ेके दिनोंमें ठीक उतरती है, परंतु गरमीके दिनोंमें केवल हवामें हिलानेसे कलछुली काफ़ी ठंढी नहीं होती और जेली जम नहीं पाती। इसलिये उसके अधिक पक जानेका बहुत डर रहता है। इसलिये दो-चार बूँदें धातुके ठंढे बरतन पर गिरा कर देखना चाहिये। जिसने पहले कभी जेली न बनाई हो उसे चाहिये कि वह पहली बार कम ही रस ले और जेलीके तैयार हो जानेके पहले ही थोड़ा-सा रस उस समय निकाले जब वह समझे कि जेली लगभग तैयार हो गई और थोड़े-से रसको कुछ और पका ले। इस प्रकार जान-बूझ कर प्रयोग करनेसे आसानीसे अंदाज़ लग जाता है कि किस अवस्थामें जेलीको उतारनेसे अच्छी जेली तैयार होगी।

जब जेली पकती रहे तब मैल काछनेकी आवश्यकता नहीं है। बराबर मैल काछते रहनेसे बहुत-सी जेली छीज जाती है। जेली जब तैयार हो जाय और आँच परसे उतार ली जाय तो एक साथ ही सब मैलको काछ लेनेमें अधिक किफ़ायत होती है। यह बहुत आवश्यक है कि जेली उतारनेके बाद आप शांतिसे काम करें और काममें इतनी फुर्ती करें कि जमनेके पहले ही वह गिलासों और बोतलोंमें रख दी जाय।

बरतनोंमें रखना—घरके कामके लिये जेली शीशेके गिलासों या चायके प्यालोंमें रक्खी जा सकती है। इसके लिये जेलीके गरम रहते ही उसे कृमिरहित किये गये गिलासों (या प्यालों) में उँड़ेल देना चाहिये। ऊपर छोटे-छोटे बुलबुले उठ आते हैं। इनको चम्मचमें उठा लेना चाहिये। ठंढा होने पर जेली सिकुड़ जाती है। अब इस प्रकार मोम पिघला कर जेली पर छोड़ देना चाहिये कि $\frac{1}{8}$ इंच मोटी तह बन जाय। इससे हवा जेली तक न पहुँच सकेगी और जेली बहुत दिनों तक सुरक्षित रक्खी रहेगी। यदि मोम डालनेके बाद और उसके जमनेके पहले लकड़ीकी पतली तीली जेलीके किनारे-किनारे सावधानीसे दौड़ा दी जाय तो मोम किनारोंपर अधिक मज़बूतीसे शीशेमें चिपका रहेगा। केवल यही आवश्यक है कि जेली और शीशेके बीचमें $\frac{1}{8}$ इंचकी गहराई तक मोम घुस जाय।

जेलीको सुरक्षित रखनेकी दूसरी रीति यह है :—कागज़का एक गोल टुकड़ा गिलासके मुँहके नापका काट लिया जाय और तब तेज़ शराब या ब्रैंडीमें भिगो कर जेली पर रख दिया जाय। गिलासके मुँहपर मोमी कागज़ की दो तह रखकर गिलास बाँध दिया जाय। खटाई और चीनीके उपस्थित रहनेके कारण जेलीमें ख़मीर उठने और सड़नेका विशेष डर नहीं रहता, केवल भुकड़ी (फफूँद) का डर रहेगा ; वह भी शराब या गरम मोमसे मर जाती है।

मोम छोड़ने पर भी गिलास पर मोमी कागज़ रखकर बाँध देना चाहिये या ऊपर कसा ढक्कन लगा देना चाहिये। बेचनेके लिये भी जेली इसी प्रकार गिलासोंमें बंदकी जासकती है। या उसे चौड़े मुँहकी बोतलोंमें इसी प्रकार बंद करके उन पर रबड़दार पेचयुक्त ढक्कन कसे जा सकते हैं। एक दूसरी रीति नीचे दी गई है।

लेबिल लगाना—छोटी और सफ़ाईसे छपी लेबिलें इन बोतलों या गिलासों पर चिपका देनी चाहिये। बड़ी लेबिलोंसे जेलीका बहुत कुछ अंश छिप जाता है। बहुत चटक रंगोंमें छपी लेबिलें भी अच्छी नहीं होतीं, क्योंकि उनके आगे जेली फीकी जान पड़ती है।

जेलीको गोदाममें रखना—तेज़ रोशनीमें रखनेसे जेलीका रंग उड़ जायगा और वे रसने लगेंगी, अर्थात् वे चिपचिपी हो कर गिलाससे निकल भी पड़ेंगी। उनको ठंढे, अँधेरे और सूखे स्थानमें रखना चाहिये। यदि नरम जेलीके बरतन अक्सर हटाये-बढ़ाये जायँ या उनको रेल-द्वारा अन्यत्र भेजा जाय तो वे रसने लगती है। इस दोषको मिटानेके लिये कारख़ानेवाले बोतलें इस प्रकार बंद करते हैं कि उनमें हवा किसी प्रकार न घुस सके। काग लगे पट्टायुक्त टीनके ढक्कनों को बोतलोंके मुँह पर मशीनसे कस देने पर जेली आसानीके सुरक्षित रक्खी जा सकती है। जब जेलीको इस रीतिसे बंद करना हो तो पहले उसे ठंढा हो जाने देना चाहिये और तब उस पर पिघले मोमकी पतली तह या शुद्ध शराब (रेक्टिफ़ायड स्पिरिट या ग्रेन ऐलकोहल) से तर किया कागज़ चिपका कर ढक्कन कसना चाहिये।
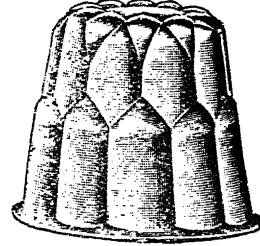
चित्र नं० १५—यदि जेलीको तुरंत खाना हो तो उसे नक़्क़ाशीदार साँचोंमें ढाल देना चाहिये। एक सुंदर साँचा इस चित्रमें दिखाया गया है।

फैंसी पैकिंग—एक ही गिलासमें दो या तीन रंगों या स्वादोंकी जेली भरनेसे फैंसी जेली बनती है। यह आवश्यक है कि पहली तहके ठंढा हो जाने पर दूसरी तह डाली जाय। यही बात तीसरी चौथी आदि तहोंके लिये लागू है। सेबके रस या नारंगीके छिलकेसे निकले पेक्टिनकी जेलीमें विविध रंग और सुगंध डाल कर भी तहें जमाई जा सकती हैं।

फैंसी जेली—पेक्टिन रहित फलोंकी और अन्य वस्तुओंकी भी जेलियाँ नारंगीके छिलकेसे निकाले पेक्टिन से या सेबके रससे बनाई जासकती हैं। पुदीनेकी जेली नारंगीके छिलकेसे निकाले पेक्टिनमें हरा रंग और ताज़ा पुदीना या पुदीनेका सत डालकर बनाई जा सकती है। यदि आधा रस बिना पेक्टिन वाले फलोंका हो और आधा रस नारंगीके छिलके या सेबका हो तो भी बढ़िया जेली बनेगी और इसमें वांछित फलोंका रस या सुगंध मिलाई जा सकती है, परंतु करौंदेकी जेली बनानेमें इसका प्रयोग न करना चाहिये।

भोज्य पदार्थोंमें डालनेके लिये विशेष विषहीन रंग बिकते हैं। साधारण रंग न डालना चाहिये, क्योंकि

उनमेंसे अधिकांश विषैले होते हैं। नीचे नारंगीके छिलकेसे पेक्टिन निकालनेकी भी रीति दी गई है।

अमरूदकी जेली—आधा गद्दर और आधा पका अमरूद लो। तौलो। धोओ। चाकूसे काट कर स्वच्छ सिलपर लोढ़ेसे कुचल डालो। भगौने या डेकचीमें रखकर इतना पानी छोड़ो कि अमरूद प्रायः डूब जाय। इसमें ३ सेर अमरूद पीछे दो नीबुओंका रस डालो। नीबू छोटे हों तो ३ सेरमें ३ नीबुओंका रस डालो। घंटे, सवा घंटे मंद आँच पर पकाओ। सब रस निचोड़ लो और फिर फ़लालैनसे छानो। रसको प्यालेसे नापो और उसकी आधी चीनी (प्यालेसे नाप कर) छोड़ो। तेज़ आँच पर पकाओ। जब रस इतना गाढ़ा हो जाय कि ठंढा होने पर जेलीकी तरह जम सके तो आँचसे उतारो और कृमिरहित किये गये बरतनोंमें भरो। यदि दो-चार दिनमें ख़र्च करना हो तो बात दूसरी है, नहीं तो जेली पर पिघला मोम डाल कर रक्खो।

करौंदेकी जेली—कच्चे करौंदेको धोकर स्वच्छ सिलपर लोढ़ेसे कुचल डालो। भगौने या डेकचीमें रख कर इतना पानी छोड़ो कि करौंदा प्रायः डूब जाय। धीमी आँच पर घंटे, सवा घंटे, तक चुरने दो। फिर सब रस निचोड़ लो और फ़लालैनसे छानो। रसको प्यालेसे नापो और उसकी तीन-चौथाई या कुछ अधिक चीनी नाप कर छोड़ो। तेज़ आँच पर पकाओ। जब रस इतना गाढ़ा हो जाय कि ठंढा होने पर जेलीकी तरह जम सके तो आँचसे उतार लो और कृमिरहित किये गये बरतनोंमें भरो। उनपर पिघला मोम छोड़ो।

नारंगीसे पेक्टिन निकालना—नारंगीके छिलकेको महीन बिलाई (कद्दूकस) पर या झाँवे या खुरखुरे पत्थर पर घिस कर ऊपरी लाल भाग निकाल डालो। सफ़ेद भागको कुचल डालो। तौलो और प्रत्येक पावके लिये तीन प्याला (चायका प्याला) पानी लो और प्रत्येक प्यालाके लिये चार चम्मच (या १ बड़ा चम्मच भर) नीबूका रस लो। अच्छी तरह मिलाओ और ४-५ घंटे पड़ा रहने दो। दस मिनट तक उबालो और ठंढा करो। जितना पानी पहले डाला गया था उतना ही पानी और मिलाओ। १ मिनट तक खौलाओ। रात भर पड़ा रहने दो। दूसरे दिन सबेरे ५ मिनट तक खौलाओ; और ठंढा होने दो। अब सब रस निचोड़ लो और फिर फ़लालैनसे छानो।

इस पेक्टिनकी सहायतासे उन फलोंकी जेलियाँ बनती हैं जिनमें काफ़ी पेक्टिन नहीं होती। यदि इस पेक्टिनको सुरक्षित रखना हो तो इसे कृमिरहित बोतलों में बंद करो। १८० डिग्री तक गरम किये पानीमें बोतलोंको तीस मिनट तक रख कर ढक्कन कस दो (ढक्कन रबड़ और पेचयुक्त हों)। अँधेरी ठंढी जगहमें रक्खो।

पुदीनेकी जेली—निम्नलिखित सामान चाहिये:—

१ सेर नारंगी या सेबकी पेक्टिन,
१ सेर चीनी,
४ बूँद पिपरमिंटका सत (तेल),
४ बूँद हरा रंग।

पेक्टिनको इतना गरम करो कि यह क़रीब खौलने लगे। उसमें चीनी धीरे-धीरे छोड़ो और इतना पकाओ कि ठंढा होने पर जेली बन सके। आँचसे उतारो और इसमें पिपरमेंटका सत और रंग सावधानी से छोड़ो। चलाओ, परंतु धीरे-धीरे। कृमिरहित बरतनोंमें भरो। मोमसे मुँह बंद करो।

पेठुएकी जेली—करौंदेकी तरह बनती है।

मकोय (रसभरी या टिपारी) की जेली:—निम्नलिखित सामानकी आवश्यकता पड़ेगी:—

१ प्याला नारंगीके छिलकेकी पेक्टिन,
१ प्याला मकोयका रस,
१ प्याला चीनी।

मकोयको खूब मसल कर कपड़ेमें रस निचोड़ लो। इसमें पेक्टिन और चीनी मिला कर पकाओ। जब रस इतना गाढ़ा हो जाय कि ठंढा होने पर जेलीकी तरह जम सके तब आँचसे उतारो, इत्यादि।

कुछ और जेलियोंके नुसख़े नीचे दिये जाते हैं।

नाशपातीकी जेली—(१) नाशपातीको छिलके सहित टुकड़ोंमें काट लो और अन्दरके बीज और कड़े भागको अलग कर दो। टुकड़ोंको एक बरतनमें भरदो और इतना पानी डालो कि टुकड़े ठीक पानीमें डूब जायँ। फिर उन्हें उबालो और वे टुकड़े उबलकर मुलायम पड़ जायँ, पानीको अलग निथार लो। यदि यह रस साफ़ न हो तो इसे कपड़ेसे छान लो। जितना रस हो उसका ¾ भाग शक्कर और थोड़ा-सा नीबूका रस (सेर भर रस में ३ नीबुओंका रस) मिलाकर उबाल लो और सेबकी जेलीके समान इसकी भी जेली बनाओ। इसकी जेली नरम जमती है।

(२) नाशपातीका रस २ भाग
सेबका रस १ भाग
शक्कर १½ भाग

इसकी जेली बनाओ। यह जेली अच्छी जमेगी।

सेबकी जेली—छिलके सहित सेबके चार-चार फाँकें काट लो और अन्दरका बीज और कड़ा भाग अलग कर दो।

पाँच सेर सेबके कुचले हुए टुकड़ोंको आधा सेर पानीके साथ इतना उबालो कि वे मुलायम पड़ जायँ और फिर बिना मसले ही पानीको अलग निथार लो। अगर रस साफ़ न हो तो कपड़ेमें छान लो। आध सेर रसमें आध सेर या कुछ कम शक्कर और दो नीबुओंका रस मिला दो, और फिर धीरे-धीरे उबालो। थोड़ा-थोड़ा लेकर देखते जाओ कि ठंढा करने पर रस जमता है कि नहीं। जब जमने योग्य हो जाय तब इसे कृमिरहित किये काँच या चीनीके बरतनमें उँड़ल दो। मोमसे मुँह बद करो।

स्ट्रॉबेरीकी जेली—

स्ट्रॉबेरीका रस	१ भाग
करौंदेका रस	१ भाग
सेबका रस	१ भाग
शक्कर	१½ भाग

रस मिलाकर खौलाओ; फिर शक्कर छोड़ो। खौलाओ। जमने योग्य हो जाने पर उतारो; इत्यादि।

[१०]

जैम और मारमलेड

जैम वग़ैरह जब ठीक बनते हैं तो वे जेलीसे बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं (जेली क्या चीज़ है यह पिछले अध्यायमें बतलाया जा चुका है,) जिससे पता चलता है कि इन फलोंमें थोड़ी-बहुत पेक्टिन ज़रूर होती होगी। पेक्टिन वह चीज़ है जिससे ही जेली बन पाती है। जिन फलोंमें पेक्टिन अधिक होती है उसको असानीसे जेली बनाई जा सकती है। मारमलेड और जैम को तेज़ आँच पर जल्द पकाना चाहिये जिससे उनका चटक रंग और बढ़िया स्वाद सुरक्षित रहे। रंग और स्वादसे ही इन चीज़ोंकी क़दर होती है।

मारमलेड—नारंगीकी जाति, तथा कुछ अन्य बड़े फलोंके बने जैमको मारमलेड कहते हैं। फलोंको बारीक काट कर शीरेमें पकाया जाता है। फलोंके छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने सब मिल जाता है। इन फलोंमें छिलकेके भीतरी सफ़ेद हिस्सेमें पेक्टिन होती है। रसमें कुछ भी पेक्टिन नहीं होती। बोतलोंमें बंद करनेके पहले मारमलेडको १७६ डिग्री तक ठंढा कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे वे कुछ गाढ़े हो जाते हैं और इसलिये फलके टुकड़े सब उठकर ऊपर नहीं जमा होने पाते।

जैम—जिन फलोंके जैम बनाने हों वे सबके सब भरपूर पके न रहें, आधे फल पके हों और आधे गद्दर। पके फलोंसे बढ़िया स्वाद और सुगन्ध आती है और गद्दर फलोंसे तैयार माल जेलीकी तरह हो जाता है। गद्दर फलोंमें पके फलोंकी अपेक्षा पेक्टिन अधिक होती है। थोड़ा-थोड़ा जैम बनानेसे रंग और स्वाद अधिक अच्छा रहता है। यदि फलोंके बराबर ही चीनी मिलानेके बदले तीन-चौथाई ही चीनी मिलाई जाय तो स्वाद अधिक अच्छा होता है। जैम साधारणतया ऐसे फलोंका

बनाया जाता है जो छोटे होते हैं और शीरेमें पकानेसे फूट कर एक हो जाते हैं।

जैमको तेज़ आग पर जल्द पकाना चाहिये। बरतनके भीतर एनामेल किया हो और लकड़ीकी कलछुली से काम लिया जाय। बनाते समय जैमको ख़ूब चलाना चाहिये जिससे नीचे वह जलने न पाये। लेकिन जल्दी-जल्दी हाथ नहीं चलाना चाहिये नहीं तो शीरेमें कदाचित रवे पड़ जायँगे। जैम बनानेमें थर्मामीटर बहुत उपयोगी होता है। जब २२२ डिग्रीका तापक्रम होजाय तब समझना चाहिये कि जैम तैयार होगया। थर्मामीटर न हो तो जैमको कलछुलीसे निकाल कर ठंडे बरतन में छोड़कर जाँच करनी चाहिये। जब ठंढा हो जाते ही जैम नरम जेलीकी तरह होजाय तब समझना चाहिये कि जैम तैयार होगया। गरम रहने पर जैम पतला रहता है और ठंढा होने पर यह गाढ़ा हो जाता है, इसलिये गाढ़ा करनेके धोखेमें इसे बहुत देर तक न पकाना चाहिये।

डिब्बोंमें रखनेके बाद कृमिरहित करनेके लिये डिब्बेको खौलते पानीमें डालनेके बदले १८० डिग्री फ़ा० तक गरम किये हुये पानी में २० या ३० मिनट तक रखना अधिक अच्छा है, क्योंकि इससे अधिक अच्छा स्वाद और रंग आता है। अगर बोतलका ढक्कन गरम पानीमें से निकालनेके पहले कसकर बंद कर दिया जाय तो इतने ही तापक्रमसे जैम कृमिरहित होकर महीनों तक स्वादिष्ट बना रहेगा।

फलोंका खोया—रसदार फलोंको मसल कर उनको चलनीसे छान लिया जाता है। इसमें थोड़ी-सी चीनी मिलाकर आँच पर रक्खो और बराबर चलाते रहो। जब गीले खोयेके समान गाढ़ा होजाय तो उतार लो। फलको ख़ूब पका होना चाहिये, परंतु सड़ा न हो। कच्चे या सड़े फलसे स्वाद तुरंत बिगड़ जाता है। तैयार मालका स्वाद इस बात पर भी निर्भर है कि चलनी मोटी थी या बारीक। चीनी बहुत थोड़ी-सी छोड़नी चाहिये। अक्सर इलायची भी उसमें छोड़ दी जाती है। इसे रोटी, पूरी वग़ैरहके साथ खा सकते हैं।

फलोंकी बरफ़ी—यह भी क़रीब-क़रीब फलोंके खोये ही की तरह बनती है। परंतु इसमें अक्सर फलोंके छोटे-छोटे टुकड़े काटकर डाल दिये जाते हैं और मेवा, गरी, किशमिश इत्यादि भी छोड़ दिये जाते हैं। मेवोंको आँच से उतारनेके सिर्फ़ पाँच मिनट पहले छोड़ना चाहिये। इसको थालमें जमाकर टुकड़े कर लेना चाहिये।

मारमलेड

मीठी नारंगीका मारमलेड—तीन सेर नारंगी, ६ नीबू, दो सेर पानी और तीन सेर चीनी चाहिये। फलोंको धोओ और छीलो; फिर बीज और भीतरी कड़े रेशे आदिको फेंक दो। अँगरेज़ लोग वही मारमलेड पसन्द करते हैं जिसमें नारंगियोंका बाहरी छिलका भी पड़ा रहे। इससे मारमलेडमें ख़ुशबू आ जाती है और एक प्रकारकी कड़ुआहट भी आ जाती है, जिसे वे लोग पसन्द करते हैं। इसके लिये आधे छिलकेको चाक़ूसे बारीक-बारीक काटकर नारंगियोंमें डाल दो। बाक़ी आधे छिलकोंकी बाहरी लाल सतहको बिलाई या झावें या खुरखुरे पत्थर पर घिसकर निकाल डालो और बचे हुये सफ़ेद हिस्सेको कूट कर नारंगीमें मिलादो। अगर कड़ुआहट पसन्द न हो तो सभी छिलकेको इसी तरह घिसकर ही नारंगीके गूदेमें मिलाना चाहिये। पानी इतना छोड़ो कि गूदा ढक जाय और रातभर पड़ा रहने दो। तब दस मिनट तक उबालो और फिर १२ घंटे पड़ा रहने दो। चीनी मिलाओ, और फिर रात भर पड़ा रहने दो। दूसरे दिन सबेरे तेज़ आँच पर इतना पकाओ कि ठंढा होने पर जेलीकी तरह जम सके। कृमिरहित किये गिलासोंमें भरो और पिघले मोमसे मुँह बंद करो।

अनन्नासका मारमलेड

अनन्नासका गूदा	८ भाग
शक्कर	७ भाग

पानी इतना छोड़ो कि फल आधा डूब जाय। अब इसे इतना पकाओ कि गाढ़ा हो जाय।

टमाटरका मारमलेड—पके टमाटरोंको गरम पानीमें छोड़ो और १ मिनटमें निकाल लो। ठंढा करके

इनके छिलकोंको-अलग कर दो। अब इनको आधा-आधा काट लो और सावधानीसे बीज अलग कर डालो। ६ भाग फलोंके लिये ४ भाग शक्कर लेकर थोड़े-से पानीमें घोलो, और कटे टमाटरोंमें मिला दो। एक ताज़े नीबूका छिलका भी काटकर मिला दो, और इतना उबालो कि गाढ़ा हो जाय।

नीबूका मारमलेड—नीबुओंके छिलकोंको पानीके साथ दो घंटे तक उबालो परंतु बीच-बीचमें पानी बदलते जाओ। इससे कड़ुआहट दूर हो जायगी। अब ठंढा करके इसके पतले परत काटो और बीज अलग कर दो। छिलका रहने दो। फलको तौलो। १ सेर फलके लिये $\frac{1}{2}$ सेर पानी और २ सेर शक्करको चाशनी बनाओ और इसमें कटा हुआ फल छिलका सहित डाल दो और उबालो। ठंढी चम्मचमें थोड़ा-थोड़ा लेकर देखते जाओ कि ठंढा होने पर जेली बनती है कि नहीं। जब जेली बनने लगे तो उतार कर जेली कृमिरहित किये गये बरतनोंमें भर लो।

सेबका मारमलेड—फलोंको धोओ; और बीज और आस-पासका कड़ा भाग निकाल दो। गूदेको कुचल डालो, और पानी इतना छोड़ो कि तीन-चौथाई फल डूब जाय। फिर इतनी देर तक पकाओ कि फल नरम हो जाय। फलको तौलो और सेर पीछे तीन पाव चीनी डालो। अब इतना पकाओ कि ठंढा होने पर जम सके। कृमि-रहित किये गिलासोंमें छोड़कर मोमसे मुँह बंद करो।

जैम

अंगूर—अंगूरको डंठलोंसे अलग करो, धोओ और कुचल कर गूदा अलग निकाल लो। गूदेको उबालो। जब वह नरम हो जाय तो चलनीमें डाल कर बीज अलग कर दो। थोड़े-से पानीमें छिलकोंको अलग उबालो। जब वे नरम हो जायँ तब उन्हें कुचल या मसल डालो। बीजरहित गूदेमें इन्हें मिलाओ और तौलो। सेरभर फल पीछे आध सेर चीनी डालो और आँच पर पकाओ। यदि अंगूर ख़ूब मीठे हों तो चीनी इससे कम ही डालनी पड़ेगी, परंतु यदि अंगूर खट्टे हों तो सेरभर फल पीछे तीन पाव चीनी मिलाना ठीक होगा। यदि थर्मामीटर हो तो पकाते समय जैमका तापक्रम देखना चाहिये। जब तापक्रम २२६ डिग्री फ़ा० हो जाय तो समझना चाहिये कि जैम तैयार हो गया है। कृमिरहित बरतनोंमें गरमा-गरम ही भरो और उचित रीतिसे मुँह बंद करो। इच्छा हो तो जैममें वे मसाले भी डाले जा सकते हैं जो मीठे अचारमें पड़ते हैं।

अंजीर—पके अंजीर लो, डंठल निकाल कर फेंक दो। कपड़ेमें ढीला बाँधकर सोडाके खौलते हुए फीके घोलमें ३ मिनट तक डालो और फिर ठंढे पानीसे ख़ूब धोओ। डेढ़ सेरसे अधिक एक बार मत पकाओ। डेढ़ सेर अंजीरमें ३ पाव चीनी पड़ेगी। इतनेमें आधा प्याला (चायवाला प्याला) पानी डाल कर पकाओ, परंतु पकानेके पहले फलको कुचल लो और एक उबाल आ जाने पर चीनी छोड़ो। तेज़ आँच पर पकाओ। जब काफ़ी गाढ़ा हो जाय (या जब तापक्रम २२२ डिग्री फ़ा हो जाय) तो उतारो। साधारण रीतिसे डिब्बा-बंदी करो।

आमका जैम—ताज़े लँगड़ा या बम्बइया आम लो। इसमेंसे कुछ तो अच्छे पके हों (इनसे ख़ुशबू आयेगी) और कुछ कम पके। बहुत पके (गले) आमोंसे जैम अच्छा नहीं बनता। आमोंको धोकर छील डालो, और फिर टुकड़े काटो। लकड़ीके कलछुलसे इन टुकड़ोंको कुचल डालो।

आमके एक सेर गूदेमें पावभर पानी मिलाओ, और भगौनेमें १० मिनट तक उबालो। अब इस गरम गूदेमें तीन पाव रवेदार साफ़ शक्कर अच्छी तरह मिला दो। फिर उबालो और उबालते समय चलाते जाओ जिससे जैम जलने न पावे। जब काफ़ी गाढ़ा हो जाय, या जब तापक्रम २२० डिग्री हो जाय, तो समझो कि जैम बन गया।

जब जैम तैयार हो जाय तो इसके ऊपर जमे मैलको काछ दो, और जैमको कृमिरहित की हुई बोतलोंमें उँड़ेल लो।

ऊपर थोड़ा-सा पिघला मोम छोड़कर मुँह बंद करो, या बोतलबंदी करनेकी क्रिया करो। इच्छा हो तो मीठे अचारके मसाले भी डाले जा सकते हैं।

खूबानी—ठीक आमकी तरह इसका जैम बनाया जाता है। सेरभर फल पीछे तीन पाव चीनी चाहिये।

बेरी—छोटे, रसभरे, जंगली फलोंका जैम साधारण रीतिसे (पृष्ठ ३३देखो) बनाओ। अँग्रेज़ीमें इन फलोंको बेरी कहते है और इनकी कुछ जातियाँ वहाँ बागोंमें बोई जाती हैं। वहाँ इन्हींका जैम बहुत बनता है। इनकी कई जातियाँ हैं, परंतु सबका जैम एकही रीतिसे बनाया जाता है।

शफ़ालू—

शफ़ालू	१ सेर
शफ़ालूका रस	½ प्याला
चीनी	½ सेर
अदरक	१ टुकड़ा (एक इंच लंबा)
तेजपात	१
लौंग	१ चम्मच
काली मिरच	१ चम्मच

सब मसालोंको कुचल कर कपड़ेकी पोटलीमें ढीला बाँधो। फल, चीनी और मसाला साथ पकाओ। जब जैम तैयार हो जाय तो मसालेकी पोटली निकाल लो। जैमकी बोतलबंदी करो।

शहतूत—शहतूतका जैम बहुत बढ़िया बन सकता है। साधारण रीतिका प्रयोग करना चाहिये।

खोआ

सेबका खोआ—

सेब	४ सेर
चीनी	२ सेर
लौंग	२ चम्मच
काली मिरच	३ चम्मच
दारचीनी	१ चम्मच

मसाला खूब बारीक पिसा रहे। फलोंको धोओ, छीलो, काटो, और बीज निकालो। थोड़ा पानी डाल कर फलोंको उबालो। फिर गूदेको कुचल डालो और उसमें चीनी और मसाला मिलाओ। पकाओ। बराबर चलाते रहो कि जलने न पाये। जब काफ़ी गाढ़ा हो जाय तो उतारो। अधिक दिन रखना हो तो कृमिरहित किये गिलासोंमें भरकर मोमसे मुँह बंद करो।

उबालनेके लिये पानीके बदले विदेशमें बराबर सेब की शराब (साइडर) काममें लाई जाती है। इससे खोआ और स्वादिष्ट बनता है।

शफ़तालू का खोआ—

शफ़तालू	६ सेर
शफ़तालू का रस	४ सेर
चीनी	२ सेर

रस निचोड़नेके बाद एक-दो दिन पड़ा रहने दो। जब रसमें ख़मीर उठ आये तो इसमें ताज़ा शफ़तालू, चीनी और जी चाहे तो कुछ मसाला भी छोड़ कर पकाओ। जब काफ़ी गाढ़ा हो जाय तो सेबके खोयेकी तरह रक्खो।

अंगूर का खोआ—

अंगूर	१ सेर
चीनी	½ सेर
पानी	½ प्याला

पके अंगूर लेकर धोओ, कुचलो, छिलका अलग करके आधा फेंक दो और गूदेको गरम करो। फिर चलनीसे चाल कर बीज अलग करो। बचे हुये छिलकोंको थोड़े पानीमें पकाओ। जब वे नरम हो जायँ तो गूदेमें मिला दो। अब रस और चीनीभी मिला कर आँच पर चढ़ाओ। इसे बराबर चलाते रहो जिससे यह जलने न पाये। जब यह गाढ़ा हो जाय तो गिलासोंमें उँड़ेलो, इत्यादि।

अमरूदका खोआ—बहुत थोड़े पानीमें अमरूद को पकाओ। पानी बस इतनाही रहे कि अमरूद जलने न पाये। जब नरम हो जाय तो चलनी पर गूदेको

रगड़ो जिससे बीज अलग हो जाय। गूदे को नापो। ३ प्यालेमें १ प्याला चीनी छोड़ो। पकाओ और अंगूरके खोयेकी तरह बरतनोंमें रक्खो। चाहो तो मसाला भी छोड़ो।

अन्य फल—ऊपरकी रीतिसे अन्य फलोंका भी खोया बन सकते हैं, विशेष कर शरीफ़ों का।

बरफ़ी

मिश्रित फलोंकी बरफ़ी—

शफ़तालू	१ सेर
नाशपाती	१½ सेर
सेब	१ पाव
नीबू	३
चीनी	आवश्यकतानुसार
मेवा	१ पाव

फलोंको धोओ, छीलो, काटो, बीज और हीर निकालो, कुचलो और तौलो सेरभर फल पीछे ३ पाव चीनी लो। फल और चीनीकी तहें एकके ऊपर एक किसी क़लई की हुई थालीमें लगा दो और रात भर पड़ा रहने दो। दूसरे दिन उसमें नीबूका रस और गूदा, और आधा छिलका भी (बारीक कतरकर), छोड़ दो। कुलको इतना पकाओ कि ख़ूब गाढ़ा हो जाय। मेवों को साफ़ करके और घीमें तल करके फलोंको आँचसे उतारनेके ५ मिनट पहले मिला दो बरफ़ी जमा कर ऊपरसे पिस्ता कतर कर छिड़क दो, या यदि बरफ़ीको बहुत दिन तक रखना हो तो कृमिरहित किये गये गिलासोंमें रख कर मोमसे मुँह बन्द करो।

गरीकी बरफ़ी—कच्ची गरीको खुरचनीसे खुरच डालो। तौलो। उतनीही चीनी मिला कर कड़ाहीमें रख कर आँच दिखाओ और ख़ूब हल करो। जमने योग्य हो जाने पर १ इंच मोटी तह घी लगे थाल पर जमाओ और बरफ़ी काटो। अधिक दिन रखना हो तो थाल पर जमानेके बदले कृमिरहित बोतलोंमें रखकर बन्द करो। उबलते पानीमें रक्खो, और ढक्कन कसो।

अन्य फलोंकी बरफ़ी—अन्य फलोंकी भी बरफ़ी ऊपरकी तरह बनाई जा सकती है।

सूखी बरफ़ी—जब फलोंका रस निकाल लिया जाता है (अगला परिच्छेद देखो) तो बची सिट्ठी (फोक) की भी स्वादिष्ट बरफ़ी बनाई जा सकती है। फलके मिठास-खटास के अनुसार चीनी न्यूनाधिक मात्रा में मिलाई जाती है। बहुतसे फलोंके लिये बराबर चीनी मिलाना ठीक होगा। बहुत मंद आँचमें पकाना चाहिये, क्योंकि पानी न रहनेके कारण जलनेका बहुत डर रहता है। बराबर चलाते रहना चाहिये। मेवा इच्छानुसार मात्रामें मिलाओ और जी चाहे तो कोई ख़ुशबू भी मिला दो। अंतमें घी चुपड़ी थालीमें एक इंच मोटी तह जमा कर बरफ़ी काट लेनी चाहिये। कुछ सूख जाने पर बरफ़ीको चीनीमें लपेट कर सूखने देना चाहिये। जब ख़ूब सूख जाय तब ढक्कनदार बरतनोंमें कसकर बंद कर देना चाहिये।

बिना रस निकाले फलोंकी भी सूखी बरफ़ी बन सकती है। केवल उन्हें इतनी आँच दिखानी चाहिये कि पानी सब जल जाय।

[४]

फलोंके रस

गुण—फलोंके रस कई प्रकारसे काममें लाये जा सकते हैं और इसलिये वे सदा ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। दवाके काममें वे बराबर आते हैं। फिर, अनार, संतरे आदिके रसोंके बड़े स्वादिष्ट शरबत बनते हैं और गरमीके दिनोंमें उनका उपयोग प्रति दिन किया जा सकता है। एक गिलास शरबतसे तबियत जितनी ताज़ी हो जाती है उतनी और किसी वस्तुसे नहीं। इसके अतिरिक्त यदि फलोंके रसोंका प्रयोग प्रति दिन भोजन उपरांत किया जाय तो वे बड़े स्वास्थ्यप्रद होंगे। शरबत के अतिरिक्त इन रसोंसे मलाईकी कुलफ़ी, खीर, जेली आदि स्वादिष्ट वस्तुयें बन सकती हैं। दावतोंमें फलोंके रसोंसे अति सुंदर पेय पदार्थ बन सकता है।

तैयारी—रसोंका स्वाद और शक्तिवर्द्धक गुण बहुत कुछ उनके चुनने और स्वच्छतासे काम करने पर निर्भर है। यह परमावश्यक है कि केवल पके फल चुने जायँ। कच्चे फलमें स्वाद नहीं रहता और वे बहुत खट्टे भी होते हैं। फल आवश्यकतासे अधिक न पके हों। बहुत पके फलों से या सड़े-गले फलोंसे स्वाद बिगड़ जाता है। फलों को छिछले बरतनों में रखना चाहिये। एकके ऊपर एक लाद देनेसे नीचेके फल दब जाते हैं और शीघ्र ख़राब हो जाते हैं। सड़े-गले फलोंके फेंक देनेके बाद बचे फलोंकी जाँच अच्छी तरह करनी चाहिये और सड़े या गले भागोंको काट कर फेंक देना चाहिये। फिर फलोंको सावधानीसे धोना चाहिये जिससे उनपर लगा सब गर्द और मैल धुल जाय। सब फलों पर कुछ-न-कुछ गर्द अवश्य जमी रहती है। धोनेके लिये फलोंको छिछली दौरी (खाँची) में रख कर उसपर फुहारेके रूपमें पानी गिरने देना चाहिये। गहरे बरतनोंमें पानी रखकर उनमें फल भरना बुरा है, क्योंकि एक तो फल इस प्रकार अच्छी तरह धुल नहीं पाते, दूसरे वे दब कर ख़राब भी हो जाते हैं। फलोंके धोनेमें भी पीतल आदिके बरतनोंका प्रयोग न करना चाहिये, क्योंकि उनसे फल कसैले हो जाते हैं।

रस निकालना—थोड़े-से फलोंसे रस निकालनेकी अपेक्षा बहुत-से फलोंसे एक साथ ही रस निकालनेमें समय अपेक्षाकृत कम लगता है, क्योंकि तब रस निचोड़नेकी मशीनोंका उपयोग किया जा सकता है।

ठंढी रीति—इस रीतिमें फलोंको पहले कुचल कर इस प्रकार दबाया जाता है कि उनका सब रस निकल आये। यदि बहुतसे फलोंसे रस निकालना हो तो विशेष कोल्हूका प्रयोग किया जा सकता है। परंतु यदि फल थोड़े ही हों तो उनको पहले सिल पर कुचल कर, या हाथकी छोटी मशीनसे कुचल कर, मज़बूत परंतु खँखरे कपड़ेमें लपेटना या बाँधना चाहिये। फिर कपड़ेको इतना ऐंठना चाहिये कि प्राय: सब रस निकल आये।

कोल्हू—यदि बहुत-से फल हों तो उनको निचोड़नेके लिये घर पर 'कोल्हू' निम्नलिखित रीतिसे बन सकता है। एक बक्स बनाओ (एक हाथ लंबा और इतना ही या कुछ कम चौड़ा बक्स काफ़ी होगा; गहराई १ बित्ता हो)। इस बक्सकी पेंदीमें, और आधी ऊँचाई तक किनारोंमें भी, $\frac{1}{2}$ इंचके छेद रहें। बक्सके ऊपर ढक्कन न रहे। उसके बदले ऐसा पटरा बनाओ जो पेंदीके भीतरी नापसे ज़रा-सा ही छोटा हो और इस लिये बक्समें आसानीसे पट (बेंड़ा) घुस सके। बक्सको काठकी छिछली तश्तरी (कठौते) में रक्खो। इसके लिये पेंदीके दो सिरों पर आध इंच मोटी लकड़ी जड़ लेना ठीक होगा। इस प्रकार पेंदीके छेद बंद न होने पायेंगे। फलोंको निचोड़नेके लिये उनको बक्समें रक्खो। ऊपरसे पटरा रक्खो। पटरेकी पीठ पर ६" × ६" × ६" की मोटी लकड़ी रक्खो, जिससे पटरे पर ज़ोर बँट कर प्राय: सब जगह एकसा पड़े और पटरा न फटे। यदि यह लकड़ी पटरे पर स्थायी रूपसे जड़ ली जाय तो और भी अच्छा है। इसके लिये लकड़ीको पटरे पर इस स्थिति में रक्खो कि लकड़ीकी लंबाईकी दिशा पटरेके रेशेसे समकोण बनावे। इस प्रकार पटरा मज़बूत हो जायगा और दबाव पड़ने पर फटेगा नहीं। अब पटरेको किसी बल्लीसे चाँड़ कर दबाओ। रस सब आसानीसे निकल पड़ेगा। बल्ली क़रीब ८ फुट लंबी हो। चाँड़नेके लिये ज़मीनमें मज़बूत खूँटा गाड़ दो (या किसी पेड़से काम लो) और बल्लीका एक सिरा इसीमें बाँध दो।

कोई भी होशियार कारीगर ऊपरके संकेतसे काफ़ी अच्छा कोल्हू बना सकता है। स्मरण रखना चाहिये कि ऊपर वर्णन किये गये कोल्हूमें फल पेरनेके बदले केवल दबाये जाते हैं।

गरम रीति—छोटे फलोंका रस उनको बिना गरम किये ही, या गरम करके, दोनों रीतियोंसे निकाला जा सकता है; परन्तु निचोड़नेके पहले आँच दिखला लेनेसे रस अधिक निकलता है, रंग अधिक गाढ़ा आता है और स्वादकी विशेषताभी अधिक स्पष्ट हो जाती है। गरम करने पर रसभी अधिक आसानीसे निकलता है। जब जेली बनानेके लिये रस निकालना रहता है तब तो गरम करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि पेक्टिनके

अधिक मात्रामें बननेके लिये गरमीकी आवश्यकता होती है (पेक्टिनके ही कारण जेली बनती है ; देखो भाग ६) ।

यदि छोटे फलोंको निचोड़नेके पहले गरम करना हो तो जिस बरतनमें फलोंको गरम करना हो उसीमें लगभग आधे फलोंको छोड़ कर लकड़ीके कुंदेसे कुचल डालना चाहिये । शेष फल बिना कुचलेही डाले जा सकते हैं । परन्तु यदि सभी फल कुचल दिये जायँ तो और भी अच्छा है ।

इस बरतनको आँच पर न रखना चाहिये । पहले किसी बड़े बरतनमें पानी डालकर आँच पर रक्खो और उस पानीमें फलोंसे भरा हुआ बरतन रक्खो । इस प्रकार गरम पानीकी आँचसे फलोंको गरम करनेसे उनके जलनेका कुछ भी भय नहीं रहता और उनका स्वाद और रंगभी अच्छी तरह सुरक्षित रहता है । पानी खौलने न पाये । उसका तापक्रम यदि लगभग २०० डिग्री फ़ा० पर (खौलते पानीके तापक्रमसे १२ डिग्री कम पर) टिका रहे तो बहुत अच्छा होगा । गरम करनेसे फलोंके रसमें अंतर पड़ जाता है । यदि फलोंमें काफ़ी रस न हो तो उनको आँच पर चढ़ानेके पहले उनमें ज़रा पानी मिला देना चाहिये ।

छानना—कारख़ानोंमें रस इतनी ज़ोरसे निकाला जाता है कि सिट्ठी प्राय: सूखी हो जाती है और भट्ठीमें झोंक कर जलाई जा सकती है । किफ़ायतके ख़्यालसे फलोंको इसी प्रकार ख़ूब कसकर निचोड़ना चाहिये । परन्तु कभी-कभी अंगूर आदि फलोंके रस पहले धीरेसे गारे जाते हैं । जो रस मिलता है उसे 'स्वच्छंद रस' के नामसे अलग बोतलोंमें भरते हैं । यह अधिक स्वच्छ और स्वादिष्ट होता है । शेष रसको अलग निचोड़ते हैं ।

निचोड़नेके बाद रसको फ़लालैन या गफ़ कपड़ेसे छानना चाहिये, चाहे यह स्वच्छंद रस हो, चाहे कुल रस । छाननेके बाद रसको कुछ समय तक स्थिर पड़ा रहने देना चाहिये । इससे रसके साथ निकले छोटे-छोटे ठोस कण नीचे बैठ जाते हैं और रस अधिक स्वच्छ हो जाता है । इसके बाद स्वच्छ रसको इस प्रकार उँड़ेलना चाहिये कि तलछट रसमें फिर न मिलने पाये । रसवाले बरतनोंके मुँह पर बराबर ढक्कन लगा कर रखना चाहिये जिससे गर्द न पड़ने पाये ।

बोतलबन्दी—गाढ़े रसोंको (जैसे आमके रसको) ठंढाही कृमिरहित बोतलोंमें बन्द कर देनेसे वे काफ़ी समय तक चल सकेंगे । परन्तु पतले रस बिना एक बार गरम किये टिक न सकेंगे । इसलिये रसोंको १७० से १८० डिग्री तक अक्सर गरम किया जाता है कभीभी तापक्रम २०० डिग्रीसे अधिक न होने पाये । रस यदि क्षण भरके लिये भी उबल जायँगे तो उनका स्वाद और रंग बदल जायगा । यदि थर्मामीटर पासमें न हो तो रसवाले बरतनको दूसरे बड़े बरतनमें रखना चाहिये और बड़े बरतनमें पानी डाल देना चाहिये । फिर बड़े बरतनको आँच पर रख कर पानीको इतना गरम करना चाहिये कि यह क़रीब उबलने लगे । इस प्रकार ५ मिनट तक बाहरी पानीको धीरे-धीरे उबलने देकर रसको उतार लेना चाहिये ।

रसको आँचसे उतारतेही उसे कृमिरहित किये गये बोतलोंमें भरना चाहिये । काग के नीचे क़रीब १ इंच जगह खाली रहे, जिससे गरम करने पर जब रस बढ़े तो बोतल फूट न जाय । यदि ठंढे रसको बोतलमें भरा जाय तो कुछ अधिक ही स्थान खाली छोड़ देना चाहिये । यदि शरबत बनानेके लिये फलके रसों को रखना हो तो रसमें थोड़ी चीनी मिला देनेसे स्वाद अधिक बढ़िया हो जायगा । चीनीकी मात्रा विविध फलोंके लिये भिन्न-भिन्न है, परंतु साधारणत: ५ सेर रसमें १ प्याला (चाय का प्याला) चीनी डालना काफ़ी होगा । । यदि पीछे कभी जेली बनाने की इच्छासे फलका रस बोतलबंद किया जाय तो उसमें चीनी न मिलानी चाहिये । इस प्रकार पहले रसको बोतलबंद रखकर पीछे जेली बनानेमें एक लाभ यह होता है कि टारटरिक ऐसिड के रवे नीचे बैठ जाते हैं । ताज़े रससे बनाने पर इस ऐसिडके रवे अंगूरकी जेलीमें अक्सर अलग हो जाते हैं

और तब जेली अच्छी नहीं लगती। रसको बोतलबंद करनेके बाद बोतलोंको चुपचाप पड़ा रहने देना चाहिये जिससे तलछट उसमें मिलने न पाये।

काग लगाना—नये काग लेकर उनको आध घंटे तक सोडाके गरम घोलमें डुबा कर रख छोड़ना चाहिये। फिर, बोतलोंमें लगानेके पहले उन्हें खौलते पानीमें कुछ मिनटोंके लिये डुबाना चाहिये। रसोंको कृमिरहित करनेके पहले कागको ढीला लगाना चाहिये। अक्सर काग पर एक टुकड़ा कपड़ा रखकर उसे तागेसे बाँध दिया जाता है जिससे बोतलको गरम करने पर काग उड़ न जाय। इस कामके लिये पेटेंट किये हुये तारके फंदे भी बिकते हैं, परंतु यदि पानीके तापक्रम पर ध्यान दिया जाय (जिसमें रस उबलने न पाये) और रसके ऊपर काफ़ी स्थान छोड़ दिया जाय (जैसा ऊपर बतलाया गया है) तो न तो कपड़ेकी और न किसी अन्य यंत्रकी आवश्यकता पड़ेगी। यदि रसमें थर्मामीटर डाल कर तापक्रम नापना हो तो कागको निकालकर बाहरके पानीमें (जिसमें रखकर बोतलें गरम की जा रही हैं) डाल देना चाहिये।

कृमि निश्चेष्टीकरण—फलोंके रसको उबाल कर हम उसे कृमिरहित नहीं करते, क्योंकि खौलानेसे उसका स्वाद और रंग बिगड़ जायगा। इसलिये केवल कृमिनिश्चेष्टीकरणकी ही क्रियाकी जाती है। यह क्रिया आवश्यक है, चाहे रस गरम करके ही क्यों न भरा गया हो। इसके लिये किसी भगौनेमें लकड़ीकी जाली रख कर उस पर बोतलें खड़ी कर दी जाती हैं। लकड़ीकी जाली रहनेके कारण बोतलें पेंदीको नहीं छू सकती और इस लिये आंचके लगाने पर उनके टूटनेका डर नहीं रहता। इस भगौनेमें पानी इतना भरना चाहिये कि वह बोतलोंके सिरोंसे केवल दो इंच नीचा रहे। पानीको अब मंद आँच पर गरम करना चाहिये और बीससे तीस मिनट तक पानीको बुदबुदाने देना चाहिये। ठीक समय बोतलोंके नाप और रसोंके गाढ़ेपन पर निर्भर है। यदि थर्मामीटरसे रसका तापक्रम नाप लिया जाय तो और भी अच्छा है। यदि थर्मामीटरका उपयोग किया जाय तो पानीको इतना गरम करना चाहिये कि कृमि-निश्चेष्टीकरण तापक्रम आ जाय। थर्मामीटरको रसके भीतर डालना चाहिये और कागको बाहरके गरम पानी में। रसको १४० से १५० डिग्री तक गरम करना काफ़ी होगा। इस तापक्रम पर रसको तीससे पैंतालिस मिनट तक रक्खो। तब काग कसकर बंद करो। ठंढा होने दो। जब पानी ठंढा हो जाय तब बोतलोंको पानीसे निकालो।

मुहरबंदी—केवल कसकर बंद किये कागके भरोसे ही रसको नहीं रक्खा जा सकता; बोतलों पर लाह भी लगा दी जाती है। इसके लिये काग जहाँ तक घुस सके वहाँ तक तो उसी समय जब बोतल गरम पानीमें रहे घुसा देना चाहिये। फिर, गरम पानीसे निकालने बाद बोतलोंको मेज़ पर बेंड़ा रख कर तेज़ चाक़ूसे कागके बढ़े हुये भागको काटकर फेंक देना चाहिये। तब बोतलको उलट कर उसके मुँहको पिघले मोममें डुबाना चाहिये। लगभग एक इंच तक बोतल डूबे। बोतलको निकाल कर उसे घुमाते रहना चाहिये जिससे मोम सब तरफ़ एक मोटाई की लगे। केवल मोमके बदले निम्न मिश्रणका प्रयोग अधिक अच्छा है।

मोम	१ भाग
रजन	१ भाग

लेकर किसी बरतनमें रक्खो और उस बरतनको गरम पानीमें रखकर मोम और रजनको पिघलाओ और चला कर मिलाओ। बेचनेके लिये रसको बोतल-बंद करना हो तो उपरोक्त मिश्रणमें गेरू, सेंदुर, हिरमिजी मिट्टी, हरी या पीली मिट्टी, कालिख आदि खनिज रंगोंको मिला इच्छानुसार रंगीन मोम तैयार कर लेना चाहिये। सफ़ेद मोमके लिये—

सफ़ेद रजन	२ सेर
सफ़ेद वार्निश	१ छटाँक
मोम (मधुमक्खीका)	१ सेर
नकली सफ़ेदा (ज़िंक व्हाइट)	१॥ तोला

मिला कर पिघलाओ।

ढक्कन लगाना—कागसे बन्द करके ऊपरसे मोम लगानेके बदले पेचयुक्त बोतलोंका भी प्रयोग किया जाता है। इसमें रबड़का वाशर लगा रहता है। पेचवाली बोतलों के बदले टीनके झालरदार ढक्कनोंका भी उपयोग किया जाता है। बोतलके सर पर एक विशेष आकारका खाँच (गड्ढा) बना रहता है। उस पर टीनकी झालरदार कटोरी उलट कर रख दी जाती है। कटोरीके भीतर कागकी एक परत रक्खी रहती है। अब मशीनसे टोपीको दबानेसे दो बातें होती हैं—एक तो कागकी परत ख़ूब दब जाती है और दूसरे, टीनका झालर सिकुड़ कर बोतलके सिरमें बने खाँचको पकड़ लेता है। इस प्रकार कागकी गद्दीके कारण बोतल सच्चा बन्द हो जाता है।
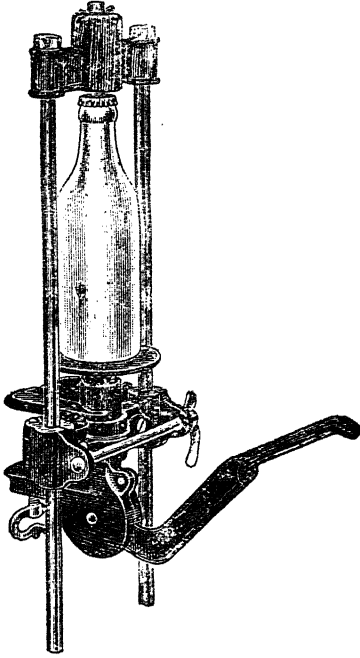
चित्र १६—बोतलों पर टीनके झालरदार ढक्कन-लगाने की मशीन

लेबिल लगाना—बोतलोंकी हैसियत बहुत कुछ लेबिलसे बनती-बिगड़ती है। लेबिल लगानेके पहिले बोतलको धो और पोंछ डालना चाहिये। नीचेसे $\frac{1}{4}$ इंच हट कर और बोतलकी बगलमें दिखलाई पड़नेवाले जोड़के दागोंके बीचमें लेबिल लगे। बेचनेके लिये बोतलों पर माल रवाना करनेके कुछही समय पहले लेबिल लगाना चाहिये, जिससे माल धराऊ न जान पड़े।

रखना—सब बोतलबन्द रसोंको ठंडे, अंधेरे, सूखे स्थानमें रखना चाहिये। यदि बोतलें तेज़ रोशनीमें रक्खी जायँगी तो उनका रंग उड़ जायगा। यदि ताज़े रसको लेकर उसे उचित रीतिसे बोतलबंद किया जाय तो वह बरसों चलेगा, परन्तु बोतलके एक बार खुलने पर रसको यथासंभव शीघ्रही ख़र्च कर डालना चाहिये। इसलिये घरके लिये रक्खे रसोंको आवश्यकतानुसार छोटीही बोतलोंमें बन्द करना चाहिये, जिससे एक बोतल का रस एक बारमें ख़र्च हो सके और खोलकर बोतल रखना छोड़ना पड़े।

शरबत—ऊपर जो विधि दी गई है उसमें फलोंके रस ज्यों-के-त्यों, या थोड़ी-सी चीनीके साथ, सुरक्षित रक्खे जाते हैं और ये रस बिना पानी मिलाये या थोड़ा-सा पानी मिलाकर पीये जाते हैं।

शरबतोंमें इतनी चीनी रहती है कि एक भाग शरबतमें ८ भाग, या अधिक, पानी मिलाया जाता है। प्रत्यक्ष है कि इन शरबतोंमें स्वास्थ्यप्रद गुण उतनी मात्रामें उपस्थित नहीं रह सकते जितनी मात्रामें ये फलोंके सुरक्षित रसमें। तो भी गरमीके दिनोंमें शरबत बहुतही रुचिकर प्रतीत होता है और भारतवर्षमें शरबतोंकी बहुत खपत है।

बाज़ारू शरबतोंमें अक्सर केवल शीरा, थोड़ी-सी खटाई (साइट्रिक ऐसिड), ज़रा-सी सुगंधि और नाम मात्र रंग रहता है। सुगंधियाँ प्रायः कृत्रिम होती हैं जो सुगंधरहित पदार्थोंसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा बनी रहती हैं, परन्तु वे स्पिरिटमें प्राकृतिक सुगंधोंके घोल भी हो सकती हैं। बाज़ारमें ये एसेंसके नामसे बिकती हैं और काफ़ी सस्ती होती हैं। ऐसे शरबतोंसे लाभ केवल उतनाही हो सकता है जितना चीनी खानेसे।

फलोंसे इनका कोई सरोकार नहीं, इसलिये ऐसे शरबतों के बनानेकी विधि यहाँ नहीं दी जायगी।

फलोंके रससे बने शरबतोंमें उन फलोंसे बने शरबत बहुत रुचिकर होते हैं जिनमें सुगंधि होती है। अंगूर, अनार, और नारंगीके शरबत बहुत प्रसिद्ध हैं। अमरूद, अनन्नास, आम, इमली, केला, ख़रबूज़ा, जामुन, नाशपाती, नीबू, फालसा, बेल, मकोय (टिपारी या रसभरी), लीची, शहतूत, सेबके भी शरबत बन सकते हैं। रसमें आवश्यकतानुसार चीनी छोड़ कर गरम करना या उबालना चाहिये, फिर उसकी बोतलबंदी उसी प्रकार करनी चाहिये जैसे सादे रसकी।

अंगूर—संयुक्त-प्रांतके अधिकांश स्थलोंमें अंगूर बाहरसे आता है। वहाँ बाज़ारसे अंगूर ख़रीद कर शरबत बनाना बेकार है। परन्तु जहाँ अंगूर बहुत होता है वहाँ अंगूरसे बहुत बढ़िया शरबत बन सकता है और बाहर भेजा जा सकता है। विधि यह है—

अंगूरोंको धोकर, कुचल या मसल डालो। एनामेल के बरतनमें रख कर गरम करो, परन्तु अंगूर उबलने न पायें। ख़ूब नरम हो जाने पर रस निचोड़ो। फिर रसको फ़लालैनसे छानो।

यदि अंगूरोंको धो और कुचल कर बिना गरम कियेही रस निचोड़ा जाय तो अधिक चमकीला, पारदर्शक, स्वादिष्ठ, सुगंधमय रस निकलेगा, परन्तु रस इतना अधिक न निकलेगा।

अब १ सेर रसमें तेरह-चौदह छटाँक चीनी मिला कर ख़ूब गरम करो, पर खौलने न पाये। खौलनेसे स्वाद कुछ ख़राब हो जाता है।

साधारण रीतिसे बोतलबन्द करो।

अन्य फलों के शरबत या रस—ये भी अंगूरके शरबत या रसकी तरह बनाये या सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं; केवल चीनीकी मात्रा फलके मिठास-खटासके अनुसार न्यूनाधिक रक्खी जाती है।

[१२]

अचार और चटनी

फलोंके रखनेकी एक रीति यह भी है कि उनका अचार डाल दिया जाय, या उनकी चटनी बनाई जाय। अवश्य ही, ऐसा करनेसे उनका स्वाद और गुण दोनों बहुत बदल जाते हैं। उदाहरणत:, किसी भी वैद्य या डाक्टरसे रोगीको फल खानेकी अनुमति मिल सकती है, परंतु उन्हीं फलोंके अचार खानेकी अनुमति शायद ही मिले। तो भी प्रत्येक घरमें अचारोंकी आवश्यकता पड़ती ही है। कुछ लोग तो नित्य ही कोई-न-कोई अचार खाते हैं। उसके बिना उनको भोजन अरुचिकर जान पड़ता है। निसंदेह, थोड़ी मात्रामें खानेसे अचारोंसे पाचन-शक्ति बढ़ती होगी, क्योंकि उनमें तरह-तरहके उपयोगी मसाले पड़े रहते हैं। (विटैमिन आदि शक्ति-वर्द्धक पदार्थ जो फलोंमें उपस्थित रहते हैं अचारमें बने रहते हैं या नष्ट हो जाते हैं इस विषय पर शायद अभी किसीने खोज नहीं की है।)

अचार पानी, तेल, सिरके या नीबूके रसमें बनते हैं, कुछमें गुड़ या चीनी पड़ती है कुछमें नमक। अचार प्राय: सभी कच्चे या गद्दर फलोंके बनते हैं। कुछ को पहले पानीमें या नमकीन पानीमें उबाल लिया जाता है। इससे फल नरम हो जाता है और उसमें सिरका आदि अधिक आसानीसे भिन सकता है।

चटनी बनानेमें फल बहुत छोटा काटा जाता है या कुचल दिया जाता है।

अचारको चीनी मिट्टी या साधारण मिट्टीके बरतनोंमें बनाना चाहिये। चम्मच या कलछुली काठकी हो। मीठा अचार या चटनी बनानेमें यदि फलको आँच पर चढ़ाना पड़े तो यथासंभव एनामेल किये हुये बरतनोंमें उसे बनाना चाहिये। लोहेके बरतनोंमें वे काले पड़ जाते हैं।

कीटाणुरहित करना—अचारमें इस तरहके मसाले पड़ते हैं, या उनमें इतनी खटाई या चीनी रहती है कि उनमें अनेक प्रकारके कीटाणु जीवित ही नहीं रह

सकते। केवल वे कीटाणु जीवित रह सकते हैं जो दहीमें होते हैं। ये स्वास्थ्यप्रद हैं। हाँ, अचारोंकी ऊपरी सतह पर भुकड़ी लग सकती है। केवल इनसे रक्षा करनी चाहिये। इसका सबसे सरल उपाय यह है कि बरतनोंके मुँहको खोल कर इस प्रकार बरतनको धूपमें रक्खा जाय कि अचारकी ऊपरी (खुली) सतह पर धूप पड़े। इससे भुकड़ी (फफूँद) के बीज मर जाते हैं। जब दिन बीत चले तब बरतनको घरमें उठा लाना चाहिये और उस पर अच्छा ढक्कन लगा देना चाहिये।

कुछ अचार केवल इसीलिये तैयार हो पाते हैं कि उनके भीतर कीटाणु बराबर काम किया करते हैं। आमका खट्टा अचार इसी सिद्धांत पर तैयार होता है। यदि तेल, मसाला आदि डालते ही कुलको कीटाणुरहित करके उनकी उसी रीतिसे बोतलबंदी कर दी जाय जिस प्रकार फलोंको सुरक्षित रखनेमें की जाती है तो आम बरसों तक वैसा ही कड़ा बना रहेगा जैसा वह पहले दिन था। इस लिये अचारके तैयार (गल कर नरम) हो जाने के पहले उसकी बोतलबंदी आँच दिखा कर न करनी चाहिये।

उन अचारोंकी बात दूसरी है जो जिस दिन बनते हैं उसी दिन खाने योग्य हो जाते हैं, जैसे आमका आँच पर पका कर बनाया गया मीठा अचार। इनकी, तथा चटनियोंकी, बोतलबंदी ठीक उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार फलोंके रसोंकी, या जैम और जेलियोंकी। साधारणत: ऊपरसे पिघले मोमकी तह जमा देना काफ़ी होगा।

उन अचारोंके बनानेमें, जो कुछ समय तक रखने पर ही तैयार होते हैं, इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि वे अपने मसाले (पानी, तेल, सिरका या नीबूके रस) में पूर्णतया डूबे रहें। जो फल ऊपर उतराये रहेंगे उनमें अन्य प्रकारके कीटाणु (जो स्वास्थ्यप्रद नहीं हैं) लग जायँगे और फल सड़ जायगा। यदि बरतनोंमें इतना अचार बनाया जाय कि बरतन प्राय: भर जाय तो बड़ी सुविधा होगी। तब धूपमें रखनेसे ऊपर भुकड़ी न लगने पायेगी और भीतर, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, हानिकारक कीटाणु जीवित नहीं रह सकते।

अचार और चटनी बनाना—अचार आदि बनानेकी रीतियाँ प्राय: सभी स्त्रियाँ जानती हैं, इस लिये उनके ब्योरेवार वर्णनकी यहाँ आवश्यकता नहीं जान पड़ती। जो इस संबंधमें विशेष जानकारी चाहें वे विज्ञान-परिषद्की छपी नुसख़ोंकी पुस्तक देख सकते हैं। उसके प्रथम अध्यायमें प्रत्येक भाँतिके अचार-चटनी आदि के चुने-चुने नुसख़े और सर्वोत्तम विधियाँ दी गई हैं।

[१३]

मुरब्बा

फलोंको चीनीकी चाशनीमें जब इतना पकाया जाता है कि वे स्वच्छ, नरम और पारदर्शक हो जाते हैं तो उनका नाम मुरब्बा पड़ जाता है, फलका स्वरूप सुरक्षित रहता है। वे चिचुक कर बद-शक्ल नहीं होने पाते, चिमड़ा या नरम होनेके बदले वे पहलेसे कुछ कुरकुरे हो जाते हैं। जब मुरब्बे तैयार हो जाते हैं, तो फलके सेलोंमें उनके रसके बदले शीरा भर जाता है।

जो सिद्धांत अभी तक डिब्बाबंदी या बोतलबंदीके बारेमें बतलाया गया है वह मुरब्बेके लिये भी लागू है। मुरब्बे बनानेमें विशेष बात केवल यही है कि किस प्रकार शीरा फलके भीतर इतने धीरे-धीरे प्रविष्ट होने दिया जाय कि फल न तो सिकुड़ने पाये और न चिमड़ा होने पाये। जब फलको गरम और गाढ़े शीरेमें एकाएक डाला जाता है तो शीरा फलके रसोंको इतना जल्द खींच लेता है कि फल चिचुक जाता है। फिर फलके ऊपर इतना गाढ़ा शीरा लिपट जाता है कि उसके भीतर कुछ भी शीरा नहीं घुस सकता। इस चिमड़े होने और सिकुड़नेको रोकनेके लिये यह आवश्यक है कि फलको पहले पतले शीरेमें डालकर पकाया जाय और जब शीरा काफ़ी गाढ़ा हो जाय तो उतार लिया जाय।

मुरब्बों का पकाना—मुरब्बोंको ख़ूब तेज़ आँच पर जहाँ तक हो सके जल्द पका कर तैयार करना

चाहिये। इससे उनका रंग सुन्दर, स्वच्छ और चमकीला उतरता है। यदि धीरे-धीरे पकाया जायगा तो चमक-रहित, काली, अरुचिकर वस्तु बनेगी। पकते समय फल शीरेसे अच्छी तरह ढके रहें, जिससे फलका कोई भी भाग सूखने और इसलिये चिमड़ा होने और चिचुकने न पाये। कभी-कभी फलके पक जानेके पहले ही शीरा बहुत गाढ़ा हो जाता है। विशेषकर जब बड़ी कढ़ाहीमें थोड़ा-सा फल पकाया जाता है। ऐसी दशामें चौड़े खुले सतहके कारण बहुत-सा पानी उड़ जाता है और शीरा जल्द गाढ़ा हो जाता है। इसलिये आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा-सा पानी या पतला शीरा छोड़ देना चाहिये। मुरब्बा बनानेके लिये फलोंको पतले शीरेमें पकाना आरम्भ करना चाहिये और तेज़ आँच पर इतना पकाना चाहिये कि फल स्वच्छ हो जाय। यदि इसी शीरेमें फल रात भर पड़ा रहे। तो उसमें अधिक शीरा घुस जायगा और फल अधिक अच्छी तरह फूल जायगा।

सेब नाशपाती आदि कड़े फलोंका मुरब्बा बनानेके लिये पाँच सेर पानीमें पौने दो सेर चीनी घोल कर उसमें फलोंको डाल कर पकाना आरम्भ करना चाहिये। अधिक रसवाले नरम फल अधिक गाढ़े शीरेमें डाले जा सकते हैं। उनके लिये पाँच सेर पानीमें सवा तीन सेर या साढ़े तीन सेर तक चीनी डाली जा सकती है, क्योंकि फलमें अधिक रस रहने के कारण शीरा शीघ्र ही पतला पड़ जाता है। खट्टे फल जब उतारे जाते हैं तो उनका शीरा मीठे फलोंके लिये उपयुक्त शीरे से अधिक गाढ़ा होता है। कारण यह है कि फलकी खटाईसे चीनीकी बनावट इस प्रकार बदल जाती है कि उसके रवे आसानीसे नहीं बन पाते। चूँकि बहुत समय तक पकानेसे रंग और स्वाद कुछ ख़राब हो जाता है, विशेषकर नरम फलोंका, जैसे रसभरी या मकोयका, इसलिये बहुत फीके शीरेमें डालकर इन्हें देर तक पकाना अच्छा नहीं है।

मुरब्बे को ठंढा करना—मुरब्बोंको जल्द ठंढा करनेसे उनका रंग और स्वाद अधिक अच्छा हो जाता है। यदि वे गरम ही बोतलोंमें बन्द कर दिये जायँ तो ठीक न होगा। फलोंके शीरेमें पक जानेके बाद भी उन्हें शीरेमें ही पड़ा जाना चाहिये, जिससे शीरा उनमें खूब भिन जाय। इसलिये मुरब्बोंको ठंढा करनेके लिये छिछली तश्तरियोंका प्रयोग करना चाहिये। इसमें फलोंकी एक तह बिछा दी जाय और उनके साथ शीरा इतना रहे कि फल डूबे रहें। यदि तश्तरियोंके नीचे ठंढा पानी बहाया जाय तो फल अधिक शीघ्र ठंढे होंगे। तश्तरियाँ ऐल्युमिनियमकी हों तो अच्छा है।

बोतलमें भरना—मुरब्बोंको बोतलोंमें ठंढा ही रक्खा जाता है। इसके बाद उस शीरेको जिसमें वे पकाये गये थे इतना गरम करना चाहिये कि शीरा खौलने लगे। फिर शीरेको छानकर फलों पर छोड़ देना चाहिये। लकड़ीकी खपचीसे हवाके बुलबुलोंको निकाल देना चाहिये। अगर मुरब्बे बरतनोंमें सावधानीसे रक्खे जायँगे तो उनमें फलही अधिक रहेंगे, शीरा कम। बोतलमें बन्द करनेकी तारीफ़ यह है कि सब फल या फाँकें एक नापकी रहें और फलोंकी चूर न रहै। फलोंको इस प्रकार क़िले से तह पर तह लगा कर पंक्तियोंमें रखना चाहिये कि देखनेमें बोतल बहुत सुन्दर जान पड़े। इस प्रकार बोतलबन्दी करनेमें समय तो कुछ अधिक लगता है परन्तु उतने ही स्थानमें अधिक मुरब्बा अटता है और देखनेमें भी ऐसा माल अधिक आकर्षक जान पड़ता है।

बोतलबन्द करना—यदि मुरब्बेके बरतन साधारण रीतिसे बन्द कर दिये जायँ तो भी मुरब्बा बहुत दिन तक चल सकता है, क्योंकि शीरा गाढ़ा रहता है। परन्तु तो भी उन पर फफूँद या भुकड़ी लग जानेका डर हमेशा बना रहता है। निश्चिन्त रूपसे भुकड़ीसे बचनेके लिये यह ज़रूरी है कि मुरब्बेको कीटाणुरहित की हुई बोतलोंमें बन्द किया जाय और बोतलोंमें बन्द करनेके बाद उनको इतनी आँच दिखाई जाय कि कीटाणु निश्चेष्ट हो जायँ। इसके लिये बोतलों पर ढक्कन ढीला लगा कर पानीमें रख कर पानीको गरम करना काफ़ी होगा। इस तापक्रममें बोतलोंको लगभग ३० मिनट तक रखना चाहिये। अधिक गरम करनेकी अपेक्षा

केवल इतनेही तापक्रम पर कीटाणु-निश्चेष्टकरणसे फलोंका स्वाद, रंग और नरमी अधिक सुरक्षित रहती है। यदि थर्मामीटर न हो तो खौलते पानीमें बोतलोंको १५ मिनट तक रखना काफ़ी होगा। बोतलोंको निकालनेके पहले उनके ढक्कनको ख़ूब कस देना चाहिये।

विशेष बातें—सफलता प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि फल ताज़े हों। फलोंके तोड़नेके बाद सब कार्रवाई चटपट करनी चाहिये।

बराबर एक-सा बढ़िया परिणाम पानेके लिये थर्मामीटर रखना ज़रूरी है। अधिकांश फलोंको आँचसे तब उतारना चाहिये जब शीरेका तापक्रम २२२ और २२४ डिग्री फ़ा० के बीचमें रहे। जबतक काफ़ी पानी जल न जायगा तबतक शीरा इस तापक्रम पर पहुँचेगा ही नहीं। खट्टे फलोंके लिये, जैसे आम या करौंदेके मुरब्बेके लिये, अधिक गाढ़ा शीरा अच्छा होता है। उनको तब उतारना चाहिये जब शीरेका तापक्रम २२४ से २२६ डिग्री तक हो जाय।

चीनी कितनी डालनी चाहिये—साधारणतया एक सेर फलके लिये तीन पाव चीनी ली जाती है। कड़े फलोंको, जैसे आँवला, नाशपाती या खट्टे सेबको, पहले पानीमें इतना उबाल लेना चाहिये कि वे नरम हो जायं।

अनन्नास—छीलो, आँख और हीर निकालो। कतरो। क़लईदार बरतनमें चीनी पर फल, उस पर चीनी, फिर फल, यों तह पर तह जमा कर रात भर रख दो सेरभर फल पीछे ३ पाव चीनी रहे। दूसरे दिन रस निथार लो और उसे दस मिनट तक खौलाओ। उसमें फल अब डाल कर १५ मिनट तक खौलाओ। आँचसे उतारो। ऊपरका मैल काछो। बोतलबन्दी करो। फलसे भरे बोतलोंको १५ मिनट तक खौलते पानीमें रखना काफ़ी होगा।

आम—गूदेदार बिना रेशोंके गदर आम छील डालो और लम्बे कतरोंमें काट लो, अब इन्हें गोद कर चूनेके पानीमें डाल कर रक्खो (ढाई सेर पानीमें आधी छटाँक चूना रहे)। १५-२० मिनटके बाद, चूनेके पानीसे निकाल कर स्वच्छ पानीसे ख़ूब धोओ, और कपड़ेसे पोंछ कर पानी सुखा दो। १ सेर आमके लिये ½ पाव मिश्री १ सेर पानीमें घोलो और आमके क़तरोंको उबालो और फिर पानीसे निकाल कर कपड़े पर फैला दो। अब डेढ़ सेर शक्करकी एकतार चाशनीमें आमके (१ सेर) क़तरोंको पकाओ। जब अच्छी तरह गल जायँ तो ४ माशे काली मिर्च, १ माशा केशर, और ४ माशे छोटी इलायची सबको दूधमें पीस कर मिला दो। साधारण रीतिसे बोतलबन्दी करो।

आँवला—कोई भी आँवला दाग़ी न होना चाहिये, नहीं तो सब मुरब्बा ख़राब हो जायगा। आँवलोंको तीन दिन पानीमें भिगो रक्खो। फिर पानीसे निकाल कर सूजे या चाकू से ख़ूब गोदो। पाँच सेर आँवला पीछे २ तोले फिटकरी एक बालटी पानीमें घोलो। आँवलों को इस घोलमें आँवलोंको इतना उबालो कि वे नरम हो जायँ। फिर ५ सेर आँवला पीछे १ सेर चीनी और २ सेर पानीकी चाशनी बनाओ और उसमें आँवलोंको उबालो। पक जाने पर उतार लो। ३ दिन बाद २ सेर चीनी और २ सेर पानीकी चाशनीमें आँवलोंको पकाओ। चार-पाँच दिन बाद इस चाशनीको भी फेंक दो। अंत में ५ सेर आँवलोंके लिये ५ सेर चीनी और २ सेर पानीकी चाशनीमें आँवलोंको पकाओ। साधारण रीतिसे बोतलबन्दी करो।

तरबूज़—तरबूज़के ऊपरी हरे भागको पतला छील डालो। फिर एक या डेढ़ इंच मोटा भाग ऊपरसे काट कर उतार लो। इसमें लाल गूदा ज़राभी न लगा रहे। इस मोटे छिलकेको टुकड़े-टुकड़े काट डालो। एक-एक इंचके टुकड़े रहें। तौलो। रात भर चूनेके पानीमें पड़ा रहने दो (ढाई सेर पानीमें आधा छटाँक चूना डालो)। तब स्वच्छ पानीमें २ घंटा पड़ा रहने दो। अच्छी तरह निथार कर खौलते पानीमें डालो और १० मिनट तक पानीको तेज़ आँच लगा कर खौलाओ। पानी निथार कर तरबूज़के टुकड़ोंको शीरेमें डाल दो। (तौलमें फल जितना रहा हो उतनीही चीनी और उसका तिगुना पानी

लेकर शीरा बनाना चाहिये)। सेरभर फल पीछे १ नीबूके हिसाबसे नीबू लेकर उनका रस निचोड़ो और शीरेमें छोड़ो। थोड़ा-सा छिलका भी कतर कर शीरेमें छोड़ दो। इससे ख़ुशबू आ जायगी। शीरेको अब इतनी देर तक पकाओ कि तरबूज़ नरम और पारदर्शक हो जाय। ठंढा होने दो (सब फल शीरेमें डूबा रहे)। कृमिरहित बोतलोंमें रुचिपूर्वक तह लगाओ और ऊपरसे शीरा डालो (यह शीरा काफ़ी गाढ़ा रहे; आवश्यकता हो तो फलसे बचे शीरेको अलगसे आँच पर चढ़ा कर गाढ़ा कर लो)। बोतलबन्दीकी क्रिया करो।

नाशपाती—सेर भर नाशपाती पीछे ३ पाव चीनी और आध सेर पानी लो। नाशपातीको छीलो और बीज और हीर निकाल डालो। चीरो। चार-चार फाँकें करना काफ़ी होगा। इन फाँकोंको अलग स्वच्छ पानीमें उबालो। जब नरम हो जायँ तो सूजेसे गोदो। अब शीरेमें डाल कर पकाओ, ठंढा करो और बोतलोंमें बन्द करो।

पेठा—ऊपरका हरा छिलका छील कर फेंक डालो। भीतरका बीजवाला भाग भी निकाल कर फेंक दो। पेठाको पका होना चाहिये। इसकी पहचान यह है कि बीज कड़े हो गये हों। बचे भागको सूजेसे ख़ूब गोदो और तब डेढ़-डेढ़ इंच के टुकड़े काट डालो। ५ सेर पानीमें १ छटाँक चूना घोल कर उसमें पेठेको डाल दो। आध घंटे बाद निकाल कर स्वच्छ पानीसे ख़ूब धोओ। सेर भर पेठा पीछे डेढ़ सेर चीनी और ३ पाव पानी लेकर चाशनी बनाओ। उबाल आने पर पेठा डाल दो। इतना पकाओ कि पेठेमें भीतर तक झलक आजाय (अर्थात् अर्ध-पारदर्शक हो जाय)। ठंढा होने पर इच्छानुसार गुलाबजल (या अन्य ख़ुशबू) डालो (यह आवश्यक नहीं है)। साधारण रीतिसे बोतलबंदी करो।

सेबका मुरब्बा—सेरभर सेब पीछे १ सेर चीनी, आध सेर पानी और आधा नीबू चाहिये।

छोटे सेबोंका मुरब्बा उनको छील कर बिना फाँक किये (अर्थात् समूचाही) बनाया जाता है। बड़े सेबोंकी चार-चार फाँकें कर देना ठीक होगा।

अन्य मुरब्बोंकी तरह सेबका भी मुरब्बा बनता है, परन्तु छिलकों और हीरको पहले अलग पानीमें उबाल कर उस पानीसे ही शीरा बनाना अधिक अच्छा है; क्योंकि ऐसा करनेसे छिलके आदिकी पेक्टिनभी काममें आ जाती है (देखो जेलीवाला परिच्छेद)।

सूखा मुरब्बा—नाशपाती, अनन्नास, पेठा आदि का सूखा मुरब्बा भी बन सकता है, परंतु इसमें समय बहुत लगता है, इसके लिये बारबार फलको शीरेमें धीरे-धीरे पकाना पड़ता है और शीरेमें फलको फूलने देनेके लिये बहुत समय तक रखना पड़ता है।

पहले फलको धोओ, छीलो, काटो, और दो-तीन मिनट तक खौलते पानीमें डालो (जिन फलोंको चूनेके पानीमें रखनेकी आवश्यकता होती है उनको उचित समय तक चूनेके पानीमें भी रख लेना चाहिये)। निथार कर सेरभर फल पीछे सेरभर चीनीको आध सेर पानीमें मिला कर शीरा बनाना चाहिये। इसमें फलको डाल कर तेज़ आँच पर १५ मिनट तक खौलाना चाहिये। आँचसे उतार कर फलको शीरेमें रात भर पड़ा रहने दो। पाँच-छः दिन तक प्रति दिन शीरेको १५ मिनट तक उबालो। फल बराबर उसीमें पड़ा रहे। जब फलमें शीरा ख़ूब भिन जाय और फल भीतर तक झलकने लगे तो उसे शीरेसे निकाल कर धूपमें सुखा लो।

रवेदार मुरब्बा—ऊपरकी तरह सूखा मुरब्बा बना कर उसे पाव भर पानीमें ६ सेरके हिसाबसे चीनी डाल कर बनाई गई गाढ़ी चाशनीमें डाल कर दो दिन पड़ा रहने दो। अब फलोंको निकाल कर धूपमें सुखा लो। ऊपर चीनीके रवे बन जायँगे।

[१४]

फल, तरकारी और वनस्पतियोंका सुखाना

बहुत प्राचीन कालमें भी फलोंको सुखा कर सुरक्षित रखनेकी रीति ज्ञात थी। प्रकृति भी गेहूँ, जौ, धान

आदि अनाजोंको सुखा कर ही आगामी फ़सल तक सुरक्षित रखती है। प्राकृतिक रीतिके आगे इस विषयमें मनुष्य इतना ही बढ़ा है कि वह कृत्रिम आँच दिखा कर सुखानेकी क्रिया कम समयमें ही संपादन कर सकता है। सुखानेके लिये आँचकी सहायता विशेष रूपसे तब ली जाती है जब साधारण रीतिसे सूखने देनेमें फलोंके सड़ जानेका डर रहता है। आधुनिक रीतिसे फलोंके सुखानेमें गर्द पड़ने या ख़मीर उठनेकी संभावना बहुत कम हो जाती है।

सुखाये गये फल और तरकारियाँ कम स्थानमें आ जाती हैं और इस लिये भंडार-घरमें वे बहुत जगह नहीं छेंकती। प्रथम श्रेणीके सुखाये गये फल प्रायः उसी दाम पर बिकते हैं जिस दाम पर डिब्बा बंद फल, परंतु हल्का होनेके कारण उनपर रेलभाड़ा कम लगता है, उनके लिये स्थान भी कम लगता है और उनको मँहगे डिब्बोंमें बंद करने की आवश्यकता नहीं रहती।

अमरीकामें भी पहले सूखे हुये फलोंकी क़दर बहुत नहीं होती थी, क्योंकि बाज़ारू माल घटिया होता था, वे गंदी रीतिसे बाँधे या डिब्बोंमें बंद किये जाते थे और अक्सर उनपर ख़ूब धूल पड़ी रहती थी। उनमें कीड़े भी कभी-कभी पड़े रहते थे। परंतु अब यह सब बदल गया है।

सूखे फल आदिके बिगड़नेका कारण अधिकतर यही होता है कि वे काफ़ी सुखाये नहीं जाते। यदि २५ प्रतिशतसे अधिक मात्रामें पानी रह जायगा तो फल बदरंग और खट्टा होने लगता है या उस पर भुकड़ी (फफूँद) लग जाती है। उदाहरणार्थ, ५० सेर सेबसे कुल सात या आठ सेर सूखा बढ़िया फल निकलेगा, और चार सेर माल छिलका, हरि आदिके रूपमें रद्दी निकल जायगा। शेष सुखवन चला जाता है, क्योंकि सेबमें लगभग ८५ प्रतिशत पानी होता है।

बरसातको छोड़ अन्य ऋतुओंमें फल आदि धूपमें आसानीसे सुखाये जा सकते हैं, परंतु आँचकी सहायतासे उचित रीतिसे सुखाया गया फल जल्द तैयार होता है और वह टिकाऊ भी अधिक होता है। इस लिये उसका दाम अच्छा मिलता है।

भट्ठी—घर पर या छोटे-मोटे रोज़गारके लिये भड़भूजों जैसी भरसाईं (भट्ठी) अच्छी होगी। अमरीकामें ये इस प्रकार बनती हैं कि पहले एक या दो फ़ुट ऊँची दीवार चारों ओर बना ली जाती है, परंतु एक ओर एक फ़ुट चौड़ा मुँह खुला छोड़ दिया जाता है और दूसरी ओर धुआँ निकलनेके लिये चिमनी बना दी जाती है। ये भट्ठियाँ छोटी या बड़ी जैसी भी आवश्यकता जान पड़े बनाई जा सकती हैं, परंतु साधारणतः वे चार फ़ुट चौड़ी और आठ या दस फ़ुट लंबी होती हैं। सामने (चार-फ़ुटवाली एक भुजाके बीचमें) लकड़ी झोंकनेका मुँह होता है और पीछेकी ओर एक चिमनी बना दी जाती है। यह पाँच या छः फ़ुट ऊँचा रहे, जिससे धुआँ ऊँची चला जाय और फलोंका स्वाद न बिगड़े। दीवारों पर लोहेके छड़ रख दिये जाते हैं और छड़ों पर टीन। इस टीन पर मिट्टीकी क़रीब दो इंच मोटी तह बिछा दी जाती है। सूखने पर मिट्टी यदि फटे तो उसकी मरम्मत मिट्टीसे कर दी जाती है। भट्ठीमें आग जला कर मिट्टीको ख़ूब सुखा डालना चाहिये। फिर उस पर छिछली तश्तरियों या परातोंमें फल तरकारी आदि रख कर सुखाई जाती हैं। ऊपरसे कभी-कभी पंखा झलना चाहिये (या बिजलीका पंखा लगा देना चाहिये), कुछ ही घंटोंमें फल आदि सूख जायँगे।

तरकारियोंके सुखानेकी फ़्रेंच रीति—नीचे वे दो रीतियाँ दी गई हैं जो फ़्रांसमें बहुत प्रचलित हैं—

(१) तरकारियों को पहले सावधानीसे चुना और छीला जाता है और फिर उनको खँखरे कपड़ों पर रक्खा जाता है। ये कपड़े चौखटे पर तने रहते हैं। चौखटोंमें पाये लगे रहते हैं, जिससे वे देखनेमें चारपाइयोंकी तरह लगते हैं। इनको ऐसी कोठरीमें रखते है जिसे गरम किया जाता है। इस कामके लिये कोठरीमें पाइप लगे रहते हैं। इन पाइपोंमें गरम पानी पंप किया जाता है, या घूमने दिया जाता है। कोठरीका तापक्रम ६५ से ११३ डिग्री तक रक्खा जाता है (बुख़ारमें मनुष्यका

तापक्रम १०३ या १०५ डिग्री हो जाता है, इसे स्मरण रखनेसे तापक्रमका अंदाज़ लगाया जा सकता है)। ठीक तापक्रम तरकारीकी दशा पर निर्भर है। आँच धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये जिससे रंग और स्वाद न बिगड़े। तरकारियोंके ऊपरकी हवा बदलती रहे, इसके लिये भी कुछ प्रबंध रहता है।

(२) दूसरी रीतिमें सुखानेके साथ ही तरकारियों को दबाते भी जाते हैं। दबानेका काम मशीन (हाइड्रॉलिक प्रेस) से किया जाता है। इस रीतिसे एक बड़ासा पातगोभी दब कर इतना छोटा हो जाता है कि वह साधारण लिफ़ाफ़ेमें आ सकता है। पानीमें भिगाने पर यह फिर फूल कर बहुत-कुछ पहले जैसा हो जाता है। कुछ तरकारियोंको दबाकर और काट कर बरफ़ीके अकार का बना देते हैं। इनको जल अमेद्य कागज़में लपेट कर दफ़ती या टीनके साधारण डिब्बोंमें बंद करके बेचते हैं।

धूपमें सुखाना—चारपाइयों पर स्वच्छ कपड़ा बिछा कर, उस पर फल या तरकारीकी एक तह फैला कर धूपमें फल या तरकारी आसानीसे सुखाई जा सकती है, परंतु यदि पहले फलोंको जलते हुये गंधकके धुयेंसे कीटाणु रहित कर लिया जाय तो फल बहुत बदरंग न होने पायेंगे। फलोंके इंच, दो इंच, ऊपर मसहरीवाली जाली तान देनेसे मक्खियाँ फलों पर न बैठने पायेंगी। चारपाई के पायेको पानी भरे थालोंमें रखनेसे चीटियाँ भी न चढ़ पायेंगी। फलोंको अक्सर उलटते-पुलटते रहना चाहिये, इससे फल शीघ्र सूखते हैं। बड़े फलोंके सुखानेमें इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। बड़े फलोंकी (आम, नाशपाती आदिकी) काटकर चार फाँकें कर ली जाती हैं। सेब, नाशपाती आदिको अक्सर इस प्रकार काटा जाता है कि ¼ इंच मोटे गोल-गोल क़तरे हो जायँ।

सूखनेकी अलमारी—अधिक मात्रामें फल सुखानेके लिये लोहेके चादरकी अलमारियाँ या ईंट आदि की कोठरियाँ बनायी जाती हैं। इसमें नीचेसे ऊपर तक टाँड़ (पटरे) रहते हैं, परंतु वे इस प्रकार रक्खे रहते हैं कि पहला टाँड़ और अलमारीकी बग़लीके बीच दाहिनी ओर दो-तीन इंच जगह छूटी रहती है, दूसरे टाँड़की बाईं ओर जगह छूटी रहती है, तीसरेकी दाहिनी ओर, इत्यादि। अलमारीके पेंदे पर मिट्टीकी तह जमा दी जाती है और उसके नीचे आग जलानेका प्रबंध रहता है। यदि कोठरी हुई तो फ़र्श केवल दो-तीन इंच मोटा होता है और उसके नीचे भी आग जलाई जा सकती है। आगका धुआँ चिमनीके रास्ते बाहर निकल जाता है, फलों तक नहीं पहुँचता। अलमारी या कोठरीके नीचेसे जो हवा पेंदी या फ़र्शके गरम होनेके कारण उठती है वह टाँड़ोंके ऊपरसे दाहिनेसे बायें और बायेंसे दाहिने, घूमती हुई ऊपर पहुँचती है। अलमारी (या कोठरी) में ताज़ा हवा आनेके लिये नीचे दो-तीन छेद या झरोखे अवश्य चाहिये। इन पर जाली तनी हो जिससे मक्खियाँ अंदर न घुस सकें। नापमें ये ३″ × ३″ के हों। हवाके बाहर निकलनेके लिये सबसे ऊपर वाले टाँड़के ऊपर दो चार छेद चाहिये एक थर्मामीटर भी क़रीब बीच में लगा रहना चाहिये और शीशेका छोटा-सा जंगला इस स्थितिमें रखना चाहिये कि थर्मामीटर बाहरसे ही पढ़ा जा सके।

कितना सुखायें—आँच इतनी तेज़ न रहे कि फल आदि झुलस जायँ। आँच धीरे-धीरे बढाओ, पीछे ताप क्रम १४५ डिग्री फ़ारनहाइट तक किया जा सकता है।

जब केवल २५ प्रतिशत पानी फलोंमें रहे तब सुखानेकी क्रिया रोक देनी चाहिये। इसका पता लगाने के लिये कि कितना प्रतिशत पानी रह गया है थोड़ेसे फल को तौल कर और फिर उसे पूर्णतया सुखाकर चूर्ण कर और दुबारा सुखा कर तौलो। परंतु थोड़े अनुभवसे ठीक पता चल जाता है कि फल काफ़ी सूखा हो गया है या नहीं। इसकी पहचान यह है कि सुखाये गये फलको बीचसे काटने पर और ख़ूब निचोड़ने पर एक भी बूँद रस न टपके। परंतु फल इतना भी न सूखा हो जाय कि यह कड़कड़ा हो जाय और दबानेसे टूट जाय। उसे चिमड़ा और लचीला होना चाहिये। फलोंके सुखानेके बाद उनको शीघ्र ठंढा करना चाहिये। धीरे-धीरे ठंढा किया फल बहुत चिचुक जाता है और चित्ताकर्षक नहीं दिखलाई पड़ता।

सूखे फलोंका रखना—सूखने और ठंढा होनेके बाद फलोंको चुनना चाहिये। जो फल या फाँकें ठीक न हों उनको अलग कर दो। अच्छे मालको इस प्रकार रखना चाहिये कि नमी, गर्द और कीड़ोंसे उनकी रक्षा हो सके। कोई भी भोज्य पदार्थ, जो उचित रीतिसे सुखाया जायगा, कागज़के थैलोंमें रखकर छतोंसे लटका देने पर बहुत दिनों तक चलेगा। हाँ, बरसातमें उसके बिगड़नेका विशेष डर रहेगा। कागज़के थैलोंका मुँह अच्छी तरह बाँध देना चाहिये या चिपका देना चाहिये, जिससे गर्द भीतर न घुस सके। लटकानेके बदले यदि थैले टीनके ऐसे बक्सोंमें बंद कर दिये जायँ जिन पर कसा ढक्कन लगा हो तो और भी अच्छा है।

सुखाये फलोंका पकाना—सूखे फलोंको काफ़ी समय तक (कई घंटों तक) ठंढे पानीमें डुबा रखना चाहिये और उनको मंद आँच पर काफ़ी समय तक उबालना चाहिये। जब फूल कर नरम हो जायँ तब आवश्यकतानुसार चीनी डालनी चाहिये और पकाना चाहिये। अधिकांश सूखे फल पानी या शीरेमें उबाल कर ही खाये जाते हैं। कम समय तक ठंढे पानीमें भिगोने या चीनी आरंभसे ही डाल देनेसे फल काफ़ी फूलने नहीं पाते और वे चिमड़े ही रह जाते हैं।

अंजीर—ढाई सेर चुने हुये अच्छे अंजीरोंको ५ सेर चूनेके पानीमें (५ सेर पानीमें ½ छटाँक चूना रहे) घंटा भर तक डुबा रक्खो। चूनेके पानीसे निकाल कर धोओ और स्वच्छ पानीमें आधा घंटा तक पड़ा रहने दो। तब सब पानी निथार कर अंजीरोंको खौलते शीरेमें एक-एक करके डालो। शीरेमें १ भाग पानी और एक भाग चीनी रहे। दस मिनट तक इसे उबालनेके बाद अंजीर छोड़ना चाहिये। अंजीरोंको पैंतालिस मिनट तक पकाओ। आँच तेज़ रहे। अंजीरोंके निकालने पर उनका शीरा निथर जाने दो। फिर तश्तरियोंमें या कपड़े पर रख कर धूपमें कई दिन तक सुखाओ, या आँच दिखा कर १३० से १५० डिग्री फ़ारनहाइटके तापक्रम पर तीन घंटे तक सुखाओ।

अमरूद—अमरूदोंको सुखा कर रखने की प्रथा प्रचलित नहीं है, परंतु कोई कारण नहीं जान पड़ता कि वे सुखाकर क्यों न रक्खे जायँ।

आम—कच्चे आमको काट कर और गुठलीके भीतरका गूदा निकाल कर सुखानेसे खटाई बनती है। यदि छिलका छील कर फेंक दिया जाय और गुठली भी निकाल दी जाय तो और भी अच्छी खटाई तैयार होती है। खटाई पूर्णतया सुखा दी जाती है। उसमें २५ प्रतिशत पानी नहीं रख छोड़ा जाता। इसीके कूटनेसे अमचुर बनता है।

पके देशी आमके रसको सुखाकर अमावट बनाया जाता है। जिस बरतन पर वे सुखाये जायँ वे क़लईदार हों (राँगेकी क़लई हो)। उस पर पहले ज़रा-सा घी लगा दिया जाता है। नक़्क़ाशीदार बरतनों पर सुखानेसे नक़्क़ाशीदार अमावट बनता है। कुछ लोग कपड़े पर अमावट जमाते हैं। पर ऐसा अमावट बहुत स्वच्छ नहीं जान पड़ता। यदि अमावटकी मोटी तह तैयार करनी हो तो कई बार एक ही बरतन पर रस डाल कर सुखाना चाहिये। प्रत्येक बार ⅛ इंच मोटी तह रसकी डाली जाय। यदि एक ही बार बहुत मोटी तह डालनेकी चेष्टाकी जायगी तो अमावट काफ़ी न सूख पायेगा और पीछे सड़ जायगा।

इमली—बनियोंके यहाँ सूखी इमली मिलती ही है। कई एक मसालोंके साथ कूट कर भी इमली रक्खी जाती है। एक नुसख़ा यह है—

पकी इमलीका गूद	५ सेर
मेथी, हल्दी, सौंफ, मँगरैल	एक-एक छटाँक

मसालेको कड़ाहीमें भून कर पीस लो। फिर उसमें मिर्चा, राई, नमक और हींग भी इच्छानुसार कूट कर मिला दो। इमलीमें सब मसाला और ज़रा-सा कड़ुआ तेल डाल कर ख़ूब कूटो।

खजूर—खजूरको सुखाकर ही छुहारे बनाये जाते हैं।

नाशपाती—छीलो, बीज निकालो और आठ-आठ फाँकें करो। शीघ्र सुखाओ, क्योंकि रखनेसे वे बदरंग हो

जायँगे। १० सेर पानीमें १ छटाँक नमक डालकर बनाये घोलमें नाशपातीकी फाँकोंको काटते ही एक मिनट तक डुबा देनेसे वे बदरंग नहीं होती। ऊपर लगे पानीको सुखाकर आँचसे उनको सुखाना चाहिये। पहले तापक्रम ११० डिग्री रहे पीछे १४० डिग्री कर दिया जाय। पाँच-छः घंटे तक सुखाना चाहिये।

बेर—खट्टे बेरको खूब सुखा कर और कूट कर बयमचुर बनता है जो बनियोंके यहाँ बिकता है।

लीची—लीचीको छील कर और बीज निकाल कर सुखाना चाहिये। यूरोपमें चीनसे लीची इस रूपमें काफ़ी मात्रामें आती है।

शफ़्तालू—दो-दो फाँकें करके, बीज निकाल कर इसको सुखाया जाता है। कभी-कभी छिलका भी छील दिया जाता है। कभी-कभी सुखानेके पहले उनको शीरेमें कुछ समय तक पका लिया जाता है। इससे स्वाद और रंग दोनों अक्सर अधिक अच्छे हो जाते हैं।

सेब—छीलो। बीज और हीर निकालो। सड़े भागोंको काट कर फेंक दो। ¼ इंच मोटे क़तरे काटो, कारख़ानोंमें इसके बाद क़तरों को जलते गंधकके धुँयेमें रख कर सफ़ेद किया जाता है, परंतु निजी इस्तेमालके लिये सुखाये सेबोंको इसकी आवश्यकता नहीं है। क़तरोंको धूपमें या भट्ठी पर सुखाओ। धूपमें तीन-चार दिन लगेंगे। भट्ठीमें चार-छः घंटे लगेंगे। पहले तापक्रम ११० डिग्री रहे। धीरे-धीरे तापक्रम १४० डिग्री कर दिया जाय। फल इतना सुखाया जाय कि यदि एक मुट्ठी क़तरे हाथमें लेकर दबाये जायँ तो छोड़ते ही वे छटक कर अलग-अलग हो जायँ। मोमी कागज़ या सेलाफ़ेनमें बन्द करके दफ़्तीके डिब्बोंमें पैक करो। डिब्बोंको सूखी जगहमें रक्खो और गर्द और कीड़ोंसे बचाओ।

बीजके पासके भाग (हीर) और छिलकोंको अलग सुखाओ। ये अलग बिकते हैं क्योंकि इससे जेली बन सकती है।

तरकारियाँ—सुखानेके लियेभी तरकारी वैसीही अच्छी होनी चाहिये जैसी डिब्बाबन्दीके लिये। वे बिल्कुल ताज़ी हों, नरम और पूर्णतया स्वच्छ हों। सब तरकारियोंको पहले धो लेना चाहिये। काटनेके लिये स्वच्छ चाक़ूका प्रयोग करना चाहिये और यदि वे स्टेनलेस स्टील (मोर्चा न लगने वाले इस्पात) के हों तो अच्छा होगा। साधारण लोहेसे बहुत-सी तरकारियाँ काली पड़ जाती हैं।

छीलने और काटनेके बाद तरकारियोंको कपड़ेमें ढीला बाँध कर उनको खौलते पानीमें दो-चार मिनट (तरकारीके अनुसार न्यूनाधिक समय तक) रक्खा जाता है। इससे तरकारियाँ साफ़ भी हो जाती हैं, कुछ तरकारियोंकी तीव्र गंध कम हो जाती है और वे नरम भी पड़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त तरकारियोंके भीतर उपस्थित अलब्युमेन जम जाता है, जिससे तरकारियोंका प्राकृतिक स्वाद सुखाते समय नष्ट नहीं होने पाता। खौलते पानीसे निकालकर दो तौलियोंके भीतर रखकर या धूपमें डालकर उनके ऊपर लगे पानीको सुखा डालना चाहिये।

इसके बाद, यदि तरकारीको भट्ठियों पर सुखाना हो तो उसे फैला कर भट्ठी पर या सुखानेकी आलमारीमें रखना चाहिये। प्रत्येक तश्तरीमें तरकारीकी पतली तह रहे। ११० डिगरीके तापक्रमसे सुखाना आरंभ करो। धीरे-धीरे तापक्रम १४५ डिग्री कर दो। अधिकांश तरकारियाँ दो-तीन घंटेमें सूख जाती हैं। सभी तरकारियोंके लिये एकही समय नहीं लगता। कुछ शीघ्र सूखती हैं, कुछ देरमें। थोड़े-से अनुभवके बाद ठीक पता चल जाता है कि कितना सुखाया जाय। सूखते समय मालको कई बार चला देना चाहिये जिससे सब माल एक भाँति सूख सके।

सूखी तरकारियोंका रखना—भट्ठी परसे उतारने पर तरकारियाँ बड़ी चुरमुरी हो जाती हैं। यदि उनको दो-तीन घंटे हवामें खुला रहने दिया जाय तो वे कुछ नरम हो जाती हैं और तब उनको कागज़ आदिकी थैलियों या बक्सोंमें रखना अधिक सरल हो जाता है,

यदि तरकारियाँ जिस दिन सुखाई जायँ उसीदिन पैकन की जा सकें तो उनको पैक करनेके पहले एक बार कुछ मिनटों तक १६० डिग्री तक गरम कर लेना चाहिये। इससे कीड़े-मकोड़ोंके अंडे मर जाते हैं, परन्तु सावधानीसे देखना चाहिये कि तापक्रम १६० डिग्रीसे अधिक न हो जाय, नहीं तो तरकारियाँ झुलस जायँगी।

सूखी तरकारियोंको हमेशा जल-अभेद्य बरतनोंमें और सूखे स्थानमें रखना चाहिये। गर्द उन पर न पड़ने पाये। टीनका डिब्बा, या ढक्कनदार कटोरदान अच्छा होता है। परन्तु सबसे सस्ती और सुविधाजनक रीति यह है कि सूखी तरकारियोंको काग़ज़के थैलोंमें बंद किया जाय। प्रत्येक थैलेमें थोड़ी-सी तरकारी भरनी चाहिये, बस उतना ही जितनी एक या दो समयके लिये काफ़ी हो। इससे ऐसा कभी न होगा कि थैला खोल कर रख छोड़ा जाय और उसके भीतरका माल ख़राब हो जाय थैलेके ऊपरी भागको ऐंठकर गरदन बना लेनी चाहिये और गरदनको दोहरा करके तागेसे कसकर बाँध देना चाहिये। इसके बाद मोमबत्तीके मोमको पिघला कर ब्रुशकी सहायतासे थैले पर मोम पोत देना चाहिये। इस प्रकार थैला प्राय: जल अभेद्य हो जाता है और इसमें कीड़ भी नहीं घुसते। यदि थैलोंको अब टीनके ढक्कनदार कनस्टरोंमें बन्द कर दिया जाय तो और भी अच्छा होगा। ढक्कन सच्चा हो। मोमी काग़ज़के बने थैले ख़रीदे भी जा सकते हैं।

सूखे फलों और तरकारियोंकी जाँच कभी-कभी करते रहना चाहिये। यदि उसमें कीड़े पड़ने लगें तो धूपमें मालको फैला देना चाहिये। जब कीड़े भाग जायँ तो कुलको १६० डिग्री तक कुछ मिनटके लिए गरम करना चाहिये। पीछे सावधानीसे पैक करना चाहिये।

सूखी तरकारियों का पकाना—१—सूखी तरकारियोंको पहले कई घंटे तक ठंडे या कुनकुने पानीमें फूलने देना चाहिये।

२—इस पानीको फेंक कर खानेवाला सोडा मिले पानीमें मटर, सेम, पालक आदिकी जातिकी तरकारियों को उबालना चाहिये। दस सेर पानीमें एक चायका चम्मचभर सोडा रहे।

३—सेम आदिमें नीबूका रस डाल देनेसे उनका स्वाद बढ़िया हो जाता है।

४—तरकारियाँ मसालेदार बनानी चाहिये, जिससे उनका बुरा स्वाद बहुत कुछ छिप जाय।

करैला—½ इंच मोटे क़तरे काटकर ३ मिनट तक खौलते पानीमें डालो (पानीमें ज़रा-सा सोडा—दस सेर पानी पीछे १ चम्मच खानेवाला सोडा पड़ा रहे तो अच्छा है)। ख़ूब कड़कड़ा सुखाओ।

गोभी—फूल के छोटे-छोटे टुकड़े कर लो। खौलते पानीमें २ मिनट रक्खो। कुछ नरम सुखाओ।

चना (हरा)—देखो मटर।

चुकंदर—पानीमें इतना उबालो कि उसके पूर्णतया नरम हो जानेमें चौथाई ही कसर रहे। ठंडे पानीमें डालो। छीलो। ⅛ इंच मोटे क़तरे काटो। सुखाओ (भट्ठी हो तो ११० डिग्रीसे आरंभ कर १५० डिग्रीका तापक्रम उत्पन्न करो)।

परवल—परवल सुखाना प्रचलित नहीं है, पर इसे छील कर और चार-चार फाँकें करके, फिर ३ मिनट तक खौलते पानीमें रख कर और बाहर निकाल कर, सुखाया जा सकता है।

पातगोभी—टुकड़े-टुकड़े करो। दस मिनट तक खौलते पानीमें रक्खो और धूपमें, या भट्ठी पर सुखाओ। भट्ठी पर ३ घंटे रखना काफ़ी होगा। तापक्रम आरंभ में ११० डिगरी रहे, पीछे १४५ डिग्री हो जाय।

पालक—ख़ूब धोओ, काटो, खौलते। पानीमें १ मिनटके लिये डुबाओ। तौलियेमें पोंछ कर पहले सायेमें, पीछे धूपमें सुखाओ। भट्ठी पर ११० डिग्रीसे आरंभ कर १३० डिग्री तक जाना काफ़ी होगा।

बोड़ा—सेमकी तरह इसे भी सुखाओ।

भिंडी—करैलेकी तरह इसे सुखाओ, परन्तु इसके क़तरे ⅛ इंच मोटे हों और भिंडी ख़ूब नरम हो। कुछ नरम ही सुखाओ।

मटर—नरम हरी मटरको खौलते पानीमें ३ मिनट तक डालो। फिर ठंढे पानीमें डालो। तौलिये में सुखा कर धूपमें या भट्ठी पर सुखाओ। भट्ठी हो तो अंतमें १४५ डिग्री तक तापक्रम पहुँच जाय। ऐसा मटर जब पानीमें फूलेगा तो हरा रहेगा।

लौकी—छीलो और ½ इंच मोटे क़तरे काटो। ३ मिनट तक खौलते पानीमें डालो। सुखाओ। भट्ठी हो तो तापक्रम केवल १४० डिगरी तक उठने दो।

सेम—धोओ। अगल-बगलके रेशे निकालो बहुत नरम सेमोंके लिये यह आवश्यक नहीं है)। ½ इंच या १ इंच लंबे टुकड़े तेज़ चाक़ू (या मशीन) से काटो। खौलते पानीमें ६ मिनटके लिये डालो। हरा रंग पक्का करनेके लिये खौलते पानीमें १० सेर पानी पीछे एक चम्मच सोडा रहना चाहिये। सुखाओ। भट्ठी हो तो तापक्रम १४५ डिग्री तक बढ़ने दो।

—गोरख प्रसाद

स्वर्गीय श्री रामदास जी गौड़

अकस्मात् समाचार मिला कि श्री रामदास जी गौड़का देहावसान रविवार १२ सितम्बर १९३७ को हो गया। इस अवसर पर इस समय क्या लिखा जाय। विज्ञान परिषद्के गौड़ जी एक प्रकारके जन्मदाता थे, और इस समय विज्ञान के संपादक। अपने संपादक की इतनी अचानक मृत्यु पर हमें कितना दुःख हुआ है, इसे हम ही जानते हैं। श्री गौड़जीके संबन्धमें विस्तारसे हम फिर लिखेंगे। हम इस अवसर पर उनके दुःखी परिवारसे सहानुभूति प्रकट करते हैं। गौड़जीकी साहित्यिक सेवायें सर्वतोमुखी हैं, और उनके देहावसानसे हिन्दी जगत्की बड़ी भारी क्षति हुई है।

—मंत्री, विज्ञान परिषद्

× × ×

स्वर्गीय श्री प्राणाचार्य्य शास्त्री नारायणशंकर देवशंकर

२१ सितम्बर १९३७ को सायंकाल वैद्यशास्त्री श्री नारायणशंकर देवशंकर जी का देहावसान हो गया। इस वर्ष काशी में होने वाले भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलनके सभापति मनोनीत हुए थे। इस अवसर पर हम आपके दुःखी परिवारके साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

—संत

विषय-सूची

नवम्बर १९३७

मूल्य ।)

भाग ४६ संख्या २

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्‌का
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-
विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २७२

वार्षिक मूल्य ३)

विषय-सूची

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पास भेजे जायँ। शेष सब सामायिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीआर्डर '**मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद**' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७ | प्रयाग । तुलार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । नवम्बर, सन् १९३७ | संख्या २

बेरीबेरी

बेरीबेरी अधिकतर गरम देशोंमें ही होता है। इस रोगके मरीज़ अधिकतर मर ही जाते हैं। अन्त साधारणतया हार्टफ़ेलसे होता है।

बेरीबेरी पुरुष और स्त्री दोनोंको होता है। दूध पीते बच्चोंको भी अक्सर यह रोग हो जाता है, विशेषकर जब उनकी मातायें बेरीबेरीकी रोगिणी हों। कम उम्रके लड़के और लड़कियाँ और बहुत बूढ़े लोगोंमें भी यह कम होता है। १५ से ३० वर्षके लोगोंको यह अधिकतर होता है। ग़रीब और अमीर दोनोंको हो सकता है। किसी ख़ास उद्यम या व्यवसायसे इसका कोई सरोकार नहीं है। लेकिन यह अवश्य ठीक है कि जो लोग प्रायः घरके भीतर बैठे-बैठे काम करते हैं, जैसे विद्यार्थी, क़ैदी, अस्पताल या पागलख़ानेके मरीज़, उनको यह अधिकतर होता है। गर्भिणी या दूध पिलाती स्त्रियोंको भी यह रोग होता है। हृष्ट-पुष्ट और दुबले-पतले कम ख़ूनवाले व्यक्तियोंको बराबर ही यह रोग पकड़ सकता है।

भिन्न-भिन्न देशोंमें इस रोगके उभड़नेकी ऋतु भिन्न-भिन्न है। अधिकतर गरमीके दिनोंमें यह रोग होता है। जाड़ेमें इस रोगसे ग्रसित रोगी अकसर चंगे हो जाते हैं। थोड़ी-सी जगहमें बहुत आदमियोंका रहना और अस्वस्थ मकानोंसे इस बीमारीका फैलना आसान हो जाता है। जहाज़ोंपर भी ख़ानसामा और नौकरोंको, विशेषकर हिन्दुस्तानी नौकरोंको, यह रोग हो जाता है, अफ़सरोंको बहुत ही कम होता है। सन १८६४ के बादसे नारवे और स्वेडनके जहाज़ों में काम करनेवाले कुलियोंको यह रोग अक्सर होता है। लेकिन अँग्रेज़ी जहाज़ोंमें यह रोग बहुत ही कम होता है। इसका कारण एक तो यही मालूम होता है

कि उक्त सालमें एक क़ानून बना जिससे गेहूँ और जौके आटेकी पाव रोटीके बदले मैदाकी पाव रोटी मिलने लगी।

'बेरीबेरी' रोगका कारण

पुराने खोज करनेवालोंने यह समझा था कि बेरीबेरी शायद किसी ज़हरीली चीज़से होता है, क्योंकि इसका असर ठीक अधिक शराब पीने या डिफ़्थीरिया हो जानेकी तरह होता है। लेकिन अब नया सिद्धान्त यह है कि खानेमें एक विशेष विटेमिनकी कमीके कारण यह रोग होता है।

यह बात अब पक्की मालूम होती है कि चीन व जापान और अन्य पूर्वी देशोंका बेरीबेरी ख़ूब छटे हुये चावल खानेसे होता है। धान जब पहले छाँटा जाता है तो इसमेंसे जो चावल निकलता है उसपर एक प्रकारकी बहुत पतली कन्नेकी तह लिपटी रहती है। चावलको दुबारा ख़ूब कूटनेसे या मशीनसे उसे पालिश करनेपर यह कन्ना छूट जाता है और फटकनेपर यह कन्ना निकल जाता है। इस कन्नेमें एक ऐसा विटेमिन होता है जो मनुष्यों और अन्य गर्मकुनवाले जानवरोंके स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अगर मुर्गीको केवल धान खिलाकर रक्खा जाय तो मुर्गी बहुत दिनोंतक स्वस्थ रहेगी और शायद वज़न भी बढ़ेगा; लेकिन अगर मुर्गीको केवल ख़ूब छाँटा हुआ और पालिश किया हुआ चावल खिलाया जाय अर्थात ऐसा चावल खिलाया जाय जिसके ऊपर लिपटी हुई तह पूरी छुड़ा दी गई हो तो थोड़े ही दिनोंमें मुर्गीकी नसोंमें दर्द होने लगेगा और उसका वज़न कम हो जायगा; और यदि अब भी केवल छाँटा हुआ चावल ही खिलाया जाय तो मुर्गी मर जायगी और बेरीबेरीके पूरे-पूरे लक्षण उसमें दिखाई पड़ेंगे। परन्तु यदि बेरीबेरीके प्रारम्भिक चिह्न दिखलाई देनेपर ही मुर्गीको चावलसे निकाला कन्ना भी देना आरम्भ कर दिया जाय तो धीरे-धीरे मुर्गी अच्छी हो जायगी। मुर्गी मोटी-ताज़ी हो जायगी और उसकी जान बच जायगी। इससे स्पष्ट है कि नसोंका शक्तिहीन हो जाना केवल खानेमें विशेष चीज़ोंकी कमीके कारण होता है और ये वस्तुएँ अवश्य ही कन्नेमें होती होंगी। छाँटनेसे कन्नेके साथ चावलका वह अंश भी निकल जाता है जहाँ अंकुर रहता है (धानको बोनेसे इसी अंकुरसे अँखुआ निकलता है)। बेरीबेरी ग्रसित मुर्गियोंको चावल या गेहूँके अँखुएका सत पानीमें निकालकर और उसे खोखली सुईकी नोकवाली पिचकारी द्वारा शरीरमें देनेसे आश्चर्यजनक लाभ होते देखा गया है।

मुर्गियोंके इस रोग (अर्थात् नसोंका शक्तिहीन हो जाना) और मनुष्यमें हो जानेवाले रोग बेरीबेरीमें कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि यदि भूलसे या जानबूझकर यही प्रयोग मनुष्यपर किया जाय—और ऐसा कई बार किया गया है—तो परिणाम ठीक वैसा ही होता है। दो डाक्टरोंने २४ क़ैदियोंपर जिन्हें मृत्युदण्डकी सज़ा मिल चुकी थी यह प्रयोग किया था। उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यह रोग एक मनुष्यको दूसरेसे छूतसे नहीं होता और यह रोग केवल खानेमें विशेष वस्तुओंकी कमीके कारण होता है।*

रसायनज्ञोंने इस बातका पता लगाया है कि चावलके कन्नेका वह सत जो बेरीबेरीको रोकता है पानीमें घुलनशील है और खटाईसे नहीं बिगड़ता परंतु सोडा आदि क्षारसे बिगड़ जाता है।

---

*देहातोंमें एक कहानी मशहूर है जिससे पता चलता है कि शायद पुराने ज़मानेके लोग भी यह जानते थे कि केवल चावल खाकर कोई जीता नहीं रह सकता। कहानी यह है कि एक स्त्रीका लड़का काला था परन्तु उसका सौतेला लड़का गोरा था। डाहके कारण अपने सौतेले लड़केको काला तिल खिलाया करती थी और अपने लड़केको सफ़ेद चावल जिससे एक काला हो जाय दूसरा गोरा। परंतु परिणाम यह हुआ कि चावल खानेवाला लड़का मर गया और तिल खानेवाला लड़का ख़ूब तगड़ा हो गया।

जबसे सिंगापुर और फ़ैडेरेटेड मलायाकी सरकारने सफ़ेद चावल (अर्थात पालिश किया हुआ चावल) अपने जेलों, पागलख़ानों, स्कूलों और अस्पतालोंमें बंद कर दिया तबसे बेरीबेरी वहाँ प्राय: मिट गया। इसके पहले बेरीबेरीसे वहाँ बहुत आदमी मरते थे। डच, मलाया और फ़िलीपाइन द्वीपोंमें भी यही नतीजा पाया गया है। परंतु पता नहीं क्यों भारतवर्षमें मामला पेचीदा जान पड़ता है। यहाँ करोड़ों आदमी छाँटा हुआ चावल ही खाकर रहते हैं। लेकिन बेरीबेरी ख़ास जगहोंमें ही पाया जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि जहाँ पर बेरीबेरी है वहाँके लोग एक तो छाँटा हुआ चावल खाते हैं और दूसरे कोई दूसरा काफ़ी पौष्टिक पदार्थ नहीं खाते। यह बात तय है कि चावलके कन्नेमें जो पौष्टिक पदार्थ(विटेमिन) होता है वह अन्य अनाजों और फल आदिमें भी है।

आरम्भ होनेसे लेकर पूरा ज़ोर पकड़नेतक बेरीबेरीको ८० या ६० दिन लगते हैं। भारतवर्षके दो कार्यकर्त्ता एक्टन और चोपराने फिर पुराने सिद्धांतको उभाड़ा है। उनका कहना है कि बेरीबेरी किसी विषैली चीज़के खानेसे होता है और यह विषैली वस्तु चावलको अधिक समयतक रख देनेसे चावलमें उत्पन्न हो जाती है। उनका कहना है कि भुजिया चावल एक बार उबाले रहनेके कारण कमज़ोर हो जाता है और उसमें इस प्रकारका विष किसी जर्म या भुकड़ी आदिके कारण, जो आँखसे नहीं देखे जा सकते, उत्पन्न होता होगा।

विटेमिन

बेरीबेरीपर लिखे गये लेखमें विटेमिनका पूरा विवेचन देना कठिन है। परंतु ये अत्यन्त पौष्टिक पदार्थ हैं जो भोज्य पदार्थोंमें थोड़ी-बहुत मात्रामें सदा उपस्थित रहते हैं। परंतु यद्यपि ये थोड़ी ही मात्रामें रहते हैं तो भी इनका प्रभाव बहुत महत्वपूर्ण है। समझा जाता है कि उनके ही कारण साधारण भोज्य पदार्थ पचता है और ख़ून बनता है। अभीतक भी इन विटेमिनोंका पूरा पता वैज्ञानिकोंको नहीं लग पाया है और बराबर खोज जारी है। विटेमिनोंकी कई जातियाँ हैं और इनका नाम ए, बी, सी आदि अँग्रेज़ी अक्षर लगाकर रख दिया गया है। ऐसा समझा जाता है कि विटेमिनकी कमीसे बेरीबेरी होता है। इसकी कमीसे रतौंधी होती है। यह दालकी भूसी, गेहूँके चोकर और चावलके कन्नेमें भी अधिक मात्रामें होता है।

ख़ास-ख़ास परिस्थितियोंमें बेरीबेरी बड़ी आसानीसे होता है। अगर खानेमें विटेमिन बीकी कमी हुई तो किसी भी कारणसे जिससे कमज़ोरी पैदा हो सकती है बेरीबेरी उत्पन्न हो सकता है। उदाहरणार्थ यह बीमारी अकसर स्त्रियोंको गर्भवती होनेकी दशामें या दूध पिलाते रहनेकी हालतमें हो जाती है। फिर, यह चीरफाड़ या किसी छूतकी बीमारीसे उठनेके बाद या कमज़ोरी लानेवाली बीमारियोंसे उठनेके बाद हो जाती है। पेचिश, आँव, मलेरिया आदिके बाद तो यह बीमारी आसानीसे हो जाती है।

उत्पत्ति

रोगीके मर जानेके बाद लाशको चीरनेसे देखा गया है कि नसें, विशेषकर हाथ और पाँवतक जानेवाली नसें, और दिल भी ख़राब हो जाता है।

बाहरी लक्षण यह है कि सारे शरीरकी नसें उसी प्रकार कमज़ोर हो जाती हैं जैसे अधिक शराब पीनेसे या डिफ़्थीरिया होनेसे।

बेरीबेरीके लक्षण

बेरीबेरीके लक्षण भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं और ये इस बातपर निर्भर हैं कि नसोंको हानि कहाँ-कहाँ हुई है। साधारणतया बेरीबेरी बहुत धीरे-धीरे शुरू होता है। परंतु कभी-कभी इसके सब लक्षण बहुत कम समयमें उत्पन्न हो जाते हैं और पहले लक्षण दिखाई देनेके कुछ ही घंटोंके भीतर मृत्यु हो जाती है। इसलिए लक्षणके अनुसार बेरीबेरीकी दो जातियाँ मानी जाती हैं। एकमें तो हाथ पाँवकी नसें और दूसरीमें हृदयके पासकी नसें पहले ख़राब होती हैं। परंतु दोनोंका कारण एक ही है। एकमें रोगी सूख जाता है, दूसरेमें जलोदर हो जाता है। बेरीबेरीकी बीमारीमें,

चाहे यह किसी भी जातिकी हो, हार्टफ़ेलसे एका-एक मृत्यु हो सकती है।

पहली जाति—जिसमें हाथ-पैरकी नसें ख़राब होती हैं

इसके रोगीकी जाँच करनेसे पता चलता है कि केवल हाथ-पैर ही सुन्न नहीं होते किंतु चमड़ा भी सुन्न हो जाता है, विशेषकर जाँघ, पैर और उँगलियोंके छोरके पासका चमड़ा; घुड़नस अर्थात पैरकी मोटी नस आधी बेकाम हो जाती है। पैरकी पिंडली बहुत दुबली पड़ जाती है और पैरके निचले हिस्सेका माँस फूलकर फफ्फस-सा हो जाता है। जाँच करनेके लिये पिंडलीकी नसको ज़ोरसे दबाना चाहिये जिससे हड्डीतक दब जाय। तब मरीज़को दर्द मालूम होगा और वह पैर खींच लेगा। जाँघ और पैरकी नसें भी इसी तरह कमज़ोर हो जाती हैं। हाथ-पाँवकी नसें बेक़ाबू हो जाती हैं। अगर मरीज़से सुई उठानेके लिए या कुरतेका बटन लगानेके लिए कहा जाय तो नशा चढ़े हुये आदमीकी तरह उसका हाथ इधर-उधर पड़ेगा और वह इस कामको ठीक नहीं कर सकेगा। कभी-कभी हाथ कलाई परसे भूल जाता है अर्थात भीतरकी ओर मुड़ जाता है। अगर हाथ इतना न भी ख़राब हुआ हो तो भी अकसर यह इतना कमज़ोर हो जाता है कि मरीज़ कटोरा नहीं उठा सकता और उसे अपने हाथसे खानेमें कठिनाई होगी, परंतु हाथ काँपता नहीं है। आँख और मुख आदिकी नसें, ज़बान ये ऐसे ही कभी ख़राब होते हैं। पेशाब आदि भी ठीक रीतिसे होता है और हाज़मा भी काफ़ी अच्छा रहता है यद्यपि खाना खानेके बाद पेट कुछ भारी मालूम होता है या थोड़ी-बहुत बदहज़मी मालूम होती है। या तो मरीज़ उठ ही न सकेगा परंतु उठकर यदि चल सके तो लड़खड़ाती चालसे चलेगा। कारण यह है कि पैरकी नसें बहुत कमज़ोर पड़ जाती हैं। यदि चारपाईपर पड़े-ही-पड़े रोगीसे पाँव उठानेको कहा जाय तो वह शायद ही उठा सकेगा। रोगी अकसर एक पैरपर दूसरा पैर नहीं रख सकता या रख देनेके बाद हटा नहीं सकता। टखना (गुल्फ) से पैर नीचे लटक जाता है। इसलिए यदि रोगी साधारण रीतिसे चलना चाहता है तो अँगूठा ज़मीनमें लगता है। इसीलिए रोगी पैरको बहुत ऊपर उठाकर आगे बढ़ता है और जब पैरको नीचे रखता है तो पैर फटसे पड़ता है।

अधिकांश बातोंमें स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जीभ साफ़ रहती है। दस्त साफ़ होता है। बुख़ार नहीं रहता। पेशाबमें कोई ख़राबी नहीं रहती। हाज़मा भी काफ़ी अच्छा रहता है।

दिल—स्टेथसकोप लगाकर दिलकी जाँच करनेसे तुरंत एक विचित्रता जान पड़ती है। दिलकी धड़कन स्पष्ट होनेके बदले फैल जाती है। उँगलीसे छातीपर ठोंकनेपर पता लगता है कि दिल बढ़ गया है। विशेषकर दाहिनी ओर और भी कई एक लक्षण दिखाई पड़ते हैं जो डाक्टर ही समझ सकता है। स्वास्थ्य में दिलकी धड़कन एकबार जल्द एकबार देरमें सुनाई पड़ती है। परंतु बेरीबेरीमें धड़कन बराबर-बराबर देर-पर सुनाई पड़ती है। थोड़ी-सी भी मेहनत करनेसे धड़कन बढ़ जाती है।

जलोदर—बेरीबेरीसे लोग केवल दुबले ही नहीं होते किंतु मुँह फूल आता है और भारी मालूम होता है। ओंठ भी थोड़ा फूल आता है। हाथ-पैर सब फूल आते हैं और उनमें जल उतर आता है। पेशाब गाढ़े रंगका, भारी और कम मात्रामें होता है। इसमें एलबम नहीं होता है। नाड़ी बहुत मंद चलती है।

लक्षणोंकी विभिन्नता—भिन्न-भिन्न मरीज़ोंमें बेरीबेरीके लक्षण इतने विभिन्न होते हैं कि यह कहना मुश्किल होता है कि सबको एकही रोग हुआ है। बाज़ मरीज़ोंके बाहरी लक्षण इतने कम होते हैं कि वे बराबर अपना रोज़का काम करते हैं और बाज़ मरीज़ इतने सख़्त बीमार हो जाते हैं कि बराबर चारपाई-पर लकड़ीकी तरह पड़े रहते हैं और हाथ-पैर ज़रा भी नहीं उठा सकते। कभी-कभी तो वे एक उँगली भी टेढ़ी

नहीं कर सकते। बाज़ सूखकर काँटा हो जाते हैं और बाज़ जलोदरसे फूलकर कुप्पा। लेकिन बाज़में जलोदर-की मात्रा बस इतनी होती है कि दुबलेपनको छिपाये रहती है। बाज़-बाज़में बोलनेवाली नसें बेक़ाबू हो जाती हैं और रोगी साँय-साँय करके बोलता है, यहाँ-तक कि ज़ोरसे खाँस भी नहीं सकता।

अनिश्चित क्रम—बेरीबेरी या तो धीरे-धीरे या बहुत जल्द बढ़ता है। कुछ सप्ताह या कुछ महीनोंमें पूरे लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। बीचमें कभी कमज़ोरी मालूम पड़ती है। पैरमें दर्द होता है। दिल धड़कने लगता है, हाँफने लगता है और हाथ-पैर कुछ फूल आते हैं और उनमें कुछ जल आ जाता है। परंतु ये सब शिकायतें बराबर बढ़नेके बदले कभी घट जाती हैं, कभी बढ़ जाती हैं। हो सकता है कि मरीज़को एक रातमें जलोदरकी शिकायत हो जाय। यह बिलकुल अनिश्चित है कि इसके बाद बीमारी कैसे बढ़ेगी और परिणाम क्या होगा। कभी एक दिनमें, कभी महीनोंमें बुरे लक्षण दिखाई पड़ते हैं। कभी दो-चार दिनमें ही रोगी अच्छा हो जाता है और कभी महीनोंतक रोगी घुलता रहता है। अकसर हाथ-पैरमें झनझनी थकावट और इन अंगोंका भारी मालूम होना—इन्हीं लक्षणोंसे बेरीबेरी मालूम होता है। हाथ-पैर फूलते हैं और पानी उतर आता है। कहींपर छूनेसे अत्यंत तीव्र पीड़ा होती है, और कहीं नसें एकदम सुन्न पड़ जाती हैं। कभी अच्छा हो जानेपर बीमारी दुबारा उभड़ आती है। अकसर रोगके मिटनेपर रोगी पहिलेकी तरह स्वस्थ हो जाता है। परंतु कभी-कभी रोगके मिट जानेपर भी दिल सूजा हुआ हो जाता है या कोई हाथ या पैर टेढ़ा रह जाता है। इस प्रकार रोगके लक्षणोंमें विभिन्नताकी संख्या असंख्य है। परंतु सब रोगियोंमें मुख्य लक्षण ये हैं—हाथ-पैरके चमड़ेका सुन्न पड़ जाना, विशेषकर टगाँके अगले हिस्सेके चमड़ेका, नसोंका कमज़ोर पड़ जाना विशेषकर पैरकी नसोंका, उँगलियोंका सुन्न पड़ जाना, दिलमें कम या अधिक धड़कन और अन्तमें इसी कारणसे मृत्यु।

दिलका खराब हो जाना—जो लोग बेरीबेरीसे मरते हैं उनमेंसे अधिकांशका दिल सूज जाता है। अकसर दिलका दाहिना भाग अधिक सूजता है। दिल सुन्न भी पड़ जाता है। साथ-ही-साथ फेफड़ा भी कुछ सुन्न पड़ जाता है या पेट वायुके कारण फूल आता है या और कोई ख़राबी पैदा हो जाती है।

रोगीके मर जानेपर लाश चीरनेसे ऐसी हालतोंमें देखा जाता है कि कलेजा बहुत फूल गया है। दाहिने भागमें ख़ूब ख़ून भरा रहता है। फेफड़े और कलेजेमें काला ख़ून भरा रहता है और सब नसें ख़ूनसे ख़ूब भरी रहती हैं। फुप्फुस और हृदयावरण ख़ूनसे भर जाता है। क्यों ये बातें ऐसी होती हैं इसका अभी ठीक पता नहीं लगा।

बेरीबेरीसे मृत्यु

बेरीबेरीसे मृत्युकी संख्या देश और कालपर निर्भर है। साधारणतया गरम देशोंमें अधिक मृत्यु होती है। सूखेकी अपेक्षा जलोदरवाली बेरीबेरीमें अधिक मृत्यु होती है और इसी प्रकार धीरे-धीरे बढ़ने-वाली बेरीबेरीकी अपेक्षा शीघ्र उभड़नेवाली बेरीबेरीसे। कभी-कभी तो सौ रोगियोंमें तीसतक मर जाते हैं। परंतु कभी-कभी तो सौमें छ:से भी कम मरते हैं।

दूध पीते बच्चोंमें बेरीबेरी

मिश्रदेश, फ़िलीपाइन द्वीप आदिमें यह बीमारी अधिक होती है और इससे बहुत बच्चे मरते हैं। यह उन बच्चोंको होता है जिनकी मातायें बेरीबेरी रोगसे पीड़ित रहती हैं या जिनके भोजनमें विटेमिनोंकी कमी रहती हैं। दूध छुड़ा देनेसे और ताज़े अखड़ा चावलके कन्नेका माँड़ बनाकर खिलानेसे साधारणतया बच्चे शीघ्र चंगे हो जाते हैं। अगर कोई उपचार न किया जाय तो बच्चे हाथ-पैर नचाकर किसी दिन मर जाते हैं। मृत्यु वस्तुत: हार्टफ़ेलसे होती है और यह साधारणतया १½ से ३ महीने तकके बच्चोंको होता है। यदि रोगका जोर कुछ कम हुआ तो हार्टफ़ेल होनेके पहले के, बोली निकलनेमें कठिनाई, निगलनेमें दिक्कत और

बोली बंद हो जाती है। कभी-कभी बच्चा धीरे-धीरे कमज़ोर होने लगता है और सूखने लगता है और बीच-बीचमें कै होनेकी शिकायत रहती है। ताड़ी पिलानेसे भी यह रोग अच्छा हो जाता है और ताड़ी पीनेवालोंको यह रोग होता ही नहीं। अगर बच्चोंको आधा चमचा ताड़ी दिनमें दो बार पहले महीनेमें पिलाई जाय, दूसरे महीनेमें एक-एक चमचा दिनमें दो बार और तीसरे महीनेमें एक-एक चमचा दिनमें तीन बार तो बेरीबेरी होनेका डर मिट जाता है। जिन परदेशोंमें ताड़ीका पीना सरकारने बंद कर दिया था वहाँ बेरीबेरीसे यकायक मृत्यु अधिक हुआ करती थी।

रोगकी पहचान

अकसर बेरीबेरीके पहचाननेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। जब कभी बेरीबेरीके लक्षण बहुत से लोगोंको एक ही प्रदेशमें होते दीखें तो समझ लेना चाहिए कि अवश्य ही बेरीबेरी है। कहीं अकेले ही किसी-को बेरीबेरी होनेसे इसका पहचानना मुश्किल हो जाता है, विशेषकर यदि वह व्यक्ति शराब पीता रहा हो, संखिया खाता रहा हो या उसे मलेरिया रहा हो। परंतु यदि टाँगके आगेकी हड्डीके ऊपरका चमड़ा सुन्न हो गया हो, धड़कन हो और दिलकी ख़राबीके और कोई लक्षण हों तो समझना चाहिए कि बेरीबेरी हुआ है। रोगीको उकड़ूँ बिठाकर उसके हाथोंको सरपर रखना चाहिए और उससे उठनेको कहना चाहिए। बेरी-बेरीके रोगी उठ नहीं पायेंगे। परंतु याद रखना चाहिए कि अगर बेरीबेरी हलका ही हुआ हो तो ये लक्षण बहुत कम मात्रामें होंगे और ध्यानपूर्वक जाँच करनेसे ही थोड़े-बहुत लक्षण दिखाई पड़ेंगे। गठियासे भी कुछ इसी प्रकारके लक्षण उत्पन्न होते हैं।

अन्य रोगोंमे और बेरीबेरीमें अन्तर

बेरीबेरीको अक्सर लोग दिलकी बीमारी, गठिया, नसोंका पथराना या मलेरियाका असर समझते हैं। परंतु मलेरियासे ऐसी बीमारी नहीं हो सकती। यह बात दूसरी है कि कमज़ोरीके कारण बेरीबेरी हो जाय।

शराबके असर और बेरीबेरीमें यह अंतर है कि शराबीका हाथ काँपता है और दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता। इसलिए शराबियोंकी तुरंत पहचान हो जाती है। संखिया खानेवालोंका रंग बदल जाता है। पेटझड़ी और हाज़मेकी शिकायत रहती है। सीसेके विषसे मसूड़े काले पड़ जाते हैं। दिलकी बीमारीका और बेरीबेरीके असरका आसानीसे पता चल जाता है।

रोगीका भविष्य

दिल सूजनेका डर बेरीबेरीमें सबसे भयानक है और डाक्टरको इसका हमेशा ख़्याल रखना पड़ता है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि इतनी जल्दी दिल सूख सकता है और इतनी जल्द इससे मृत्यु हो सकती है। इसीलिए बेरीबेरीके बहुत हलके आक्रमणमें भी कोई डाक्टर निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि रोगी अच्छा हो जायगा या नहीं।

यदि दिलके अधिक ख़राब हो जानेके लक्षण दिखाई पड़ें—जैसे अधिक धड़कन, एक कम समयमें और एक देर-में धड़कन सुनाई देनेके बदले बराबर-बराबर समयपर धड़कनका सुनाई देना, सुनाई देना, विशेषकर दाहिने दिलकी धड़कनका, नाड़ीका कमज़ोर हो जाना और जल्दी-जल्दी चलना, पेट फूल आना, हाथ-पैर ठंडे पड़ जाना, शरीरका काला पड़जाना, भोजन निगलनेमें कठिनाई, दिलकी धड़कन और नाड़ीके ज़ोरमें अधिक अंतर पड़ जाना—ये सब लक्षण भयानक हैं। बहुत कम पेशाब होना भी बुरा लक्षण है। कै होना भी बुरा है। जापानी डाक्टरोंका विश्वास है कि कै होने लगनेपर मृत्यु अवश्य होती है। यदि पेट बहुत फूल जाय तो भी यह दशा होती है।

यदि रोगीका भोजन बदलकर ऐसा कर दिया जाय जिसमें विटेमिन काफ़ी हों और यदि दिलमें कोई बुराई न पैदा हुई हो तो उसे स्वस्थ प्रदेशमें या पहाड़पर भेज देनेसे रोगके बढ़ जानेकी सम्भावना कम हो जाती है।

बेरीबेरीमें पहली और सबसे मुख्य बात, जिसपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है, भोजन है। भोजनसे चावल, विशेषकर अच्छी तरह छाँटा हुआ चावल, निकाल देना चाहिए और ऐसी चीज़ें खानी चाहिए जिनमें विटेमिन अधिक हो जैसे चना, मटर, सेम, जौ, बिना चोकर निकाला हुआ आटा। हो सके तो रोगीको किसी ऐसी स्वस्थ जगहमें भेज देना चाहिए जहाँ बेरीबेरीकी बीमारीकी शिकायत न हो। हो सके तो सूखी जगह ही रोगीको ऊँची चारपाईपर सोना चाहिए। कोठेपर उसे रहना चाहिए। खिड़कियाँ और दरवाज़े खुले रक्खे जायँ और कोठरी ऐसी जगह हो जहाँ सुबह-शाम धूप आ सके। उसे कपड़ा काफ़ी पहनना चाहिए जिससे सर्दी लगनेका डर न रहे। खाना भी अच्छा और काफ़ी खाना चाहिए। इसपर ध्यान रखना चाहिए कि रोज़ एक ही तरहका खाना न दिया जाय और खाना ऐसा न हो कि काफ़ी ताक़त लानेके लिए बहुत-सा खाना पड़े। खानेमें ताज़ा मक्खन, दूध आदि पदार्थ ज़रूर रहें। चावल बेरीबेरीवालोंके लिए यों भी बुरा है, क्योंकि थोड़ी-सी शक्ति पानेके लिए बहुत-सा खाना पड़ता है। बेरीबेरीमें अंडा फ़ायदा करता है। ख़मीर-से और भी अधिक फ़ायदा होता है। थोड़ा ख़मीर उठी ताड़ी बहुत लाभदायक है। यदि रोगी गोश्त न खाता हो तो उसे दूध और मक्खन ज़रूर खाना चाहिए। अगर बेरीबेरी ज़ोरसे हुआ हो, विशेषकर यदि दिलमें ख़राबी आ गई हो, तो रोगीको चारपाई-पर पड़े रहना चाहिए। परंतु यदि रोगी चल-फिर सके या उठ-बैठ सके, और विशेषकर यदि दिल अधिक ख़राब न हुआ हो, तो रोगीको दिनका अधिकांश समय घरके बाहर बिताना चाहिए।

इस अभिप्रायसे कि खानेकी मात्रा बहुत अधिक न हो और ताक़त उतनी ही पहुँचे बेरीबेरीसे अधिक बीमार रोगीको पानी और तरल भोजन बहुत कम लेना चाहिए और पेटको साफ़ करनेके लिए कोई खार पदार्थ, जो दस्तावर हो, खाना चाहिए। डाक्टर लोग दिलकी शिकायतको दूर करनेके लिए डिजिटैलिस या स्ट्रोफैंथस देते हैं। यदि दिलकी बीमारी यकायक बढ़ने लगे तो नाइट्रोग्लिसरीन देते हैं (इसके १ प्रतिशत घोलकी तीन, चार या पाँच बूँदें काफ़ी हैं) एक-एक खुराक पाव-पाव या आध-आध घंटेपर देना चाहिए और जब दिलकी शिकायत घटने लगे तो दवा रोक देनी चाहिए। यदि दिलकी शिकायत यकायक उभड़ पड़े तो नाइट्रोग्लिसरीन पिलानेके बाद एमाइल नाइट्राइट सूँघनेको देना चाहिए। नाइट्रो-ग्लिसरीनका असर होनेमें कुछ समय लगता है; तबतक यह फ़ायदा करेगा। चूँकि डाक्टर बराबर रोगीके पास उपस्थित नहीं रह सकता इसलिए डाक्टरोंको चाहिए कि उन दिनों दवाइयोंको वे मरीज़के उपचारकोंके पास छोड़ जायँ और उनकी प्रयोग-विधि बतला जायँ। अकसर इन दवाओंके न रहनेसे डाक्टरके बुलाते-बुलाते रोगीकी मृत्यु हो जाती है। यदि उपरोक्त दवाओंके देने-पर भी कुछ लाभ न हो और दिलकी सूजन बढ़ती ही जाय तो फ़स्द खोलकर (नश्तर लगाकर) चार या पाँच छटाँक ख़ून निकाल देना चाहिए। यदि किसी कारणसे बाँहका फ़स्द न खोला जा सके तो कनपटीका फ़स्द खोलना चाहिये। अक्सर ख़ूनके निकलते ही रोगीको बहुत आराम मिलता है और उस समय रोगी बच जाता है। इस प्रकार रोगीको चंगा होनेके लिए कुछ समय और मिल जाता है। यदि फिर वही लक्षण हो जायँ या दिखलाई पड़ें—और ऐसा अकसर होता है—तो फ़स्द फिर खोलना चाहिए। यदि ओषजन गैस देनेका प्रबंध किया जा सके तो उसे भी देकर देखना चाहिए कि कितना लाभ होता है।

ऊपरकी बातें इसलिए लिखी गई हैं कि मोटे हिसाबसे मालूम हो जाय कि डाक्टर लोग क्या करते हैं। किसी अनाड़ीको स्वयं बिना डाक्टरके पूछे (दिलके रोगकी) दवा करनेकी चेष्टा न करनी चाहिए।

यदि रोगीका खाना बदलकर उचित खाना उसे दिया जाय और जिस जगह वह बीमार पड़े वहाँसे हटाकर उसे स्वस्थ प्रदेशमें भेज दिया जाय और इसके बाद वह बीमार दो सप्ताहतक बच जाय तो बहुत

अधिक संभावना है कि वह चंगा हो जायगा परंतु यदि वह बीमार होनेपर भी चावल ही खाता रहे और जहाँ उसे रोग हुआ है वहीं पड़ा रहे तो संभव है एक या दो बार वह बच जाय, परंतु यह निश्चय है कि बेरी-बेरी उसे नहीं छोड़ेगा और वह पीछे अवश्य ही इस रोगसे मर जायगा।

दूध पीते बच्चोंको बेरीबेरी होनेपर उनकी माँका दूध छुड़ा देना चाहिए और बच्चेको किसी धायाके सुपुर्द करना चाहिए। या यदि ऐसा न हो सके तो उसे गायका दूध पिलाना चाहिए। अखड़ा चावलके कन्ने-की माँड़ी बनाकर बीस-बीस बूँदें दो-दो घंटेमें देना चाहिए। फ़िलीपाइन द्वीपमें बच्चोंकी केवल यही दवा की जाती है और इससे २४ घंटेके भीतर ही बच्चेको आराम मिलता है और वह तीन दिनमें नीरोग हो जाता है। ताड़ी पिलानेकी बात पहले ही बताई जा चुकी है।

हाथ-पैरके सुन्न होनेकी दवा मालिश है और ज्योंही नसोंकी पीड़ा कम हो, मालिश शुरू कर देनी चाहिए। बछनार, संखिया और सिलवर नाइट्रेट पड़े हुए टॉनिक (ताक़तकी दवा) से भी थोड़ा-बहुत लाभ होता है। हाथ-पाँवकी थोड़ी-बहुत सेंक भी करनी चाहिए। इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि हाथ-पैर आदि सदाके लिये टेढ़े न हो जायँ। पैरमें यदि आवश्यकता हो तो खपची बाँधनी चाहिए। अच्छे हो जानेपर पुराने भोजन या पुराने स्थानसे बचना चाहिए नहीं तो बीमारीके दोहरा जानेका बराबर डर रहेगा। समुद्रके किनारे जाकर रहने या लम्बी समुद्र-यात्रा करनेसे अधिक लाभ होता है।

बचनेके उपाय

जब बेरीबेरी बोर्डिंगहाउस, जेल या ऐसी किसी दूसरी जगहमें हो तो वहाँके निवासियोंको हटा देना चाहिए। कमसे कम मकानोंको ख़ाली करके उनकी ख़ूब सफ़ाई करनी चाहिए और उनकी दीवारोंको साफ़ करके कृमिनाशक दवा छोड़नी चाहिए। जबतक वे ख़ूब अच्छी तरहसे फिर सूख न जायँ और हवा बदल न जाय तबतक भीड़-भाड़को दूर रहना चाहिए। घरोंके दरवाज़े और खिड़कियाँ आमने-सामनेकी दीवारोंमें हों हो सके तो पूर्व और पश्चिमकी दीवारोंमें वे इस तरह हों कि कोठरी-की हवा बराबर बदलती रहे। भोजनपर विशेष ध्यान देना चाहिए और हो सके तो चावल बिल्कुल न खाना चाहिए। माँस, रोटी, चना, मटर आदि खाना चाहिए। माँसके बदले दूध, दही, मक्खन आदि भी खाये जा सकते हैं। लोगोंको दिनका अधिक भाग खुले मैदानों, बाग़-बग़ीचों आदिमें बिताना चाहिए। पैरोंकी जाँच सावधानीसे करनी चाहिए कि कोई भाग सुन्न तो नहीं पड़ गया है या किसी नसमें दर्द तो नहीं हो रहा है। यदि किसी व्यक्तिपर संदेह हो तो उसे तुरंत अलग कर देना चाहिए।

यदि थोड़ी-सी ताड़ी रोज़ पिये तो अच्छा होगा। शायद जलेबी भी कुछ फ़ायदा करती हो। आटेमेंसे नाम-मात्रको भी चोकर नहीं निकालना चाहिए।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि शायद कडुये तेलसे भी बेरीबेरी होता हो क्योंकि बेरीबेरी बंगालियोंको अकसर होता है और वे कडुआ तेल खाते हैं। यद्यपि इस बातकी जाँच अभी नहीं हो सकी है तो भी कडुये तेलको भोजनसे निकाल देना ही उचित जान पड़ता है।

—मैनसनके ट्रॉपिकल मेडिसिनके आधारपर

नक़ली पचीकारीकी रीति

वस्तु पर पहले क़लई कर दी जाय। साधारणत: बिजलीसे क़लईकी जाती है। फिर बेल बूटेदार सुंभियोंसे ठोंककर वस्तु पर बेलबूटे बना दिए जाते हैं। अवश्य ही ये धँसे हुए होंगे। अब वस्तुको रेती आदिसे घिस कर क़लई छुड़ानेपर बेल बूटेकी क़लई नहीं छूटती क्योंकि ये ज़रा गड्ढेमें रहते हैं।

रसायनके चमत्कार

प्रकृति माताने भी क्या मज़ा किया है। मनुष्यको उसने सब तरहकी चीज़ें बनानेका सामान दिया है। लेकिन सफलता पानेका भेद नहीं बताया है।

प्रकृतिने अपने दानको तितर-बितर कर दिया, छिपा दिया और रूपान्तर कर दिया। उदाहरणार्थ, पत्थरके कोयलेमें सुंदर रंगों और मनोहर सुगंधियोंको छिपा रक्खा है। चीड़के पेड़में झिलमिलाते कपड़े, मोटर-गाड़ियोंका रंग, कंघा और दाँतके ब्रुशका हैंडिल छिपा रहा। इसी तरहसे उसने अपने दूसरे नवरत्नोंको भी इधर-उधर पृथ्वीमें, हवामें या समुद्रमें छिपा रक्खा और मनुष्यके ऊपर यह छोड़ दिया कि इस भूल-भुलैयाँमें टटोल-टटोलकर वह अपना रास्ता निकाले।

शुरूमें मनुष्यने कच्चे मालको ज्यों-का-त्यों ले लिया और किसी-न-किसी तरह अपना काम चलाया। उसके लिए लकड़ी लकड़ी थी और पत्थर पत्थर था। वह किसी भी चीज़को बदलकर कोई नई चीज़ नहीं बना सकता था। इसलिए वह कच्चेमालका ही यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग किया करता था। तब उसे आग जलानेकी रीति ज्ञात हुई; और उसने ऐसा देखा कि आगसे वस्तुओंका आश्चर्यजनक रूपान्तर हो जाता है। बस यहींसे रसायनका श्रीगणेश हुआ। मनुष्यने प्रकृतिकी दी हुई चीज़ोंको लेकर उनसे नई-नई चीज़ें बनाना शुरू किया। उदाहरणार्थ, उसने इसका पता लगाया कि खानसे निकली मिट्टीको किस प्रकार आँच दिखाई जाय कि उसमेंसे लोहा निकल आये। फिर उसने इसका पता चलाया कि लोहेमें किस प्रकार कर्बन मिलाया जाय कि इस्पात मिले। मनुष्य धीरे-धीरे कई एक नई चीज़ें बनाने लगा—ऐसा श्री एच० डब्ल्यु० माजी पॉपुलर मिकेनिक्समें लिखते हैं।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि मनुष्यको पेचीदा चीज़ोंके रहस्यका पता पहले लगा और लकड़ी, कोयला आदि वस्तुओंका रहस्य बहुत बादमें खुला। दुर्लभ धातुओंका जैसे इट्रियम, थोरियम आदिका पता उसे बहुत पहले लग गया। परंतु लकड़ीके बुरादेसे कामकी चीज़ें (चीनी शराब आदि) बन सकती हैं इसका पता अभी हाल ही में लगा है। गत २० बरसोंके रसायनने संसारमें बड़ी क्रांति मचा दी है। खेत, खान, जंगल, यहाँतक कि समुद्र और हवा आदिकी उपज अब रासायनिक कारख़ानोंमें लाखों मनकी मात्रामें प्रतिवर्ष जाकर ऐसी नवीन चीज़ोंमें बदल जाती है जो अत्यंत ही सुंदर और उपयोगी होती हैं और मनुष्यके सुख तथा विलासकी वृद्धि करती हैं।

आज रसायनज्ञको यदि एक पत्थरका कोयला दे दिया जाय तो वह ऐसा चमत्कार दिखलायेगा कि बूढ़े ब्रह्माजी भी शायद लज्जित हो जायँगे। चलिये, हम आपको दुनियाके सबसे बड़े रासायनिक कारख़ानेकी सैर करायें और दिखलायें कि कैसे लकड़ीके लट्ठेसे नरम कपड़े, चमकता हुआ रंग या पारदर्शक (नक़ली) हाथी दाँत बनता है।

सैलूलोज़के चमत्कार

बीसों आधुनिक कृत्रिम पदार्थोंकी जड़ है सेलूलोज़। सैलूलोज़ लकड़ीकी जातिके पदार्थोंके रेशोंको कहते हैं और ये पदार्थ प्रकृतिमें बहुतायतसे पाये जाते हैं। रूई, पेड़ पुआल, घास, भूसा, गन्ना, सन, पटुआ आदि सभीमें सैलूलोज़ रहता है। लेकिन रासायनिक कारख़ानोंमें साधारण चीड़की लकड़ी और रुईसे सैलूलोज़ निकाला जाता है। अमरीकाकी डु पॉन्ट कम्पनी अकेले ही हरसाल सात लाख मन रुई और दस लाख मन लकड़ीका तो सैलूलोज़से बने नवीन पदार्थोंमें रूपान्तर करती है।

एक बार जब रसायनज्ञ लकड़ी या रुईको सलफ़ाइट-या कॉस्टिक सोडाके घोलमें उबालकर सैलूलोज़को अलग कर पाता है तब आधुनिक विश्वकर्मा बन जाता है। सलफ़ाइटका घोल वह चूने और गंधकसे और कॉस्टिक-सोडा वह नमकके पानीमें बिजली दौड़ाकर बना लेता

है। इस प्रकार प्राप्त सैलूलोज़को नमक और गंधकके तेज़ाबोंमें घोलनेसे उसको नाइट्रो-सैलूलोज़ मिलता है जिसने शुरू-शुरूमें बारूद बनानेके लिये उपयोगी होनेके कारण संसारभरका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। ध्यान देने योग्य बात है कि एकको तो हवामें बिजली दौड़ाकर और दूसरेको गंधक मिलाकर तैयार करते हैं।

नाइट्रो-सैलूलोज़ कई एक तरल पदार्थोंमें घुलकर शीरेके समान घोल देता है। यदि इस घोलको किसी चिकनी चीज़पर फैला दिया जाय तो सूखनेके बाद एक चिमड़ी, लचीली, पारदर्शक झिल्ली बन जाती है। इसी चिमड़ी, लचीली, पारदर्शक झिल्लीने मोटर बनानेके उद्यममें एकदम क्रांति मचा दी है। कुछ ही वर्ष पहले गाड़ियोंको रंगों और वार्निशोंसे रँगा जाता था। तब प्रत्येक बार रँगाईके बाद कई दिनतक ठहरना पड़ता था जिससे रंग ख़ूब सूख जाय और उनपर दुबारा रंग लगाया जाय। कारख़ानेके रँगाई-विभागमें गाड़ियाँ हफ़्तोंतक पड़ी रहती थीं और कारीगर उनको रँगने, सुखाने और रगड़नेमें परेशान रहते थे। परंतु रसायनने नाइट्रो-सैलूलोज़ पैदा करके इन सब बातोंको एकदम बदल दिया है क्योंकि नाइट्रो-सैलूलोज़से एक ऐसा रंग बनता है जिससे सूखनेका समय कई दिनोंसे घटकर केवल दो घंटे रह गया है। उसी चीज़से मोटर गाड़ियोंपर सुन्दर रंग चढ़ता है। रसायनज्ञने बीसों अन्य उपयोगी वस्तुएँ बना डाली हैं। केवल इसकी कड़ाई, नरमी, लचीलेपन आदिको बदलनेके लिये उसमें थोड़ी-सी दूसरी चीज़ें मिला देनी पड़ती हैं। इसमें वह तरह-तरहके रंग भी मिला सकता है। कपड़ेको गाढ़े रंगसे रँगकर डू पॉन्ट कम्पनी एक जल-अभेद्य कपड़ा बनाती है जिसे किसी भी जानवरका या चमड़ेका रूप दिया जा सकता है या तरह-तरहके बेलबूटे बनाकर अगणित अत्यन्त सुन्दर रूप दिये जा सकते हैं।

इस वस्तुका नाम उस कम्पनीने फैब्रीकॉयड रक्खा है। यह जिल्दबंदी या सूटकेस, हैंडबेग, टेबिल-क्लॉथ, कुर्सी ढकनेका चमड़ा, मोटरोंकी गद्दियाँ, पर्दे आदिकी पेटियाँ, जूते आदि बनानेके काममें आता है। तारीफ़ यह है कि जहाँ असली चमड़ा पानी पड़नेसे ख़राब हो जायगा वहाँ फैब्रीकॉयडको साबुन और पानीसे धोकर साफ़ किया जा सकता है। यदि नाइट्रो-सैलूलोज़में कपूर मिला लिया जाय तो एक नई चीज़ मिलती है जो हजारों कामोंमें लाई जा सकती है। ऐसी चीज़को अँग्रेज़ीमें 'प्लास्टिक' कहते हैं और इसे हम 'आकारद' कहेंगे, क्योंकि गरम करनेपर यह गूँधे हुए आटेकी तरह नरम हो जाता है और तब इसे कोई भी आकार दिया जा सकता है। यह पदार्थ छड़, चादर और नलीके रूपमें बराबर बेचा जाता है। इन्द्र-धनुषका प्रत्येक रंग इसमें दिया जा सकता है। इससे ही बड़ी सुन्दर और मज़बूत रंगबिरंगी चीज़ें जैसे ब्रुशोंके हैंण्डिल, साबुनदानी, फ़ाउंटेन पैन, खिलौने और दफ़्तरका सामान बनती हैं। हाथी और कछुएको रसायनज्ञके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि इन नवीन, सस्ते, हज़ारों रंगके सुंदर और टिकाऊ आकारद पदार्थोंके बन जानेसे उनके दाँत या पीठके पीछे लोग हाथ धोकर नहीं पड़ते। ये नये आकारद पदार्थ चिमड़े, कड़े और ठोस होते हैं। ज़मीनपर गिरनेसे फूटते नहीं और वे चाकू या आरीसे काटे जा सकते हैं। रेतीसे रेते जा सकते हैं। गरम करके शीशेकी तरह फूँके जा सकते हैं। बेलनसे चिपटे किये जा सकते हैं और उनपर हथौड़ा, बरमी या रुखानी आसानीसे चलाई जा सकती है और खरादमें वे खरादे जा सकते हैं। न उनसे चीड़ उखड़ती है। इच्छानुसार वे पारदर्शक, अर्ध-पारदर्शक या अपारदर्शक बनाये जा सकते हैं या इनमें कोई भी चितकबरा रंग लाया जा सकता है। इनकी सतहको चिकना और चमकीला या खुरखुरा और चमकरहित बनाया जा सकता है। इससे सीप, हाथीदाँत या आबनूसकी हूबहू नक़लकी जा सकती है। हमारे प्रति दिनके जीवनमें इनका उपयोग असंख्य रीतियोंसे किया जा सकता है।

आइये, अब हम अपने पूर्व परिचित मित्र सैलूलोज़-

के पास लौट चलें जिससे उपरोक्त सब चीज़ें बनती हैं। इसे नमक और तेज़ाबोंमें हल करनेके बदले कॉस्टिक सोडा और कार्बन-डाई-सल्फ़ाइडमें हल करें (कार्बन-डाई-सल्फ़ाइड कोयला और गंधक की सहायतासे बनता है)। लकड़ीकी लुगदीको इन पदार्थोंमें हल करनेसे नाइट्रो-सैलूलोज़के बदले हमको शीरेकी तरहका एक दूसरा घोल मिलता है जिसको विसकॉस कहते हैं। यदि शीरेकी पतली चपटी धार गंधकके तेज़ाबमें गिराई जाय तो यह जमकर पारदर्शक काग़ज़की तरह हो जाता है जिसको कम्पनीने सैलूलोज़का नाम दिया है। यह वही पारदर्शक, चमकदार, लचीला, जल-अभेद्य कागज़ है जिसमें साबुन, सिगरेट या यूँ कहिये कि प्राय: सभी चीज़ें लपेटकर बाज़ारमें बिकती हैं। अब तो नवजात बच्चे भी इसमें लपेटे जाते हैं। कम-से-कम एक अस्पतालमें तो बच्चे पैदा होने पर गोदमें लेनेके पहले सैलूलोज़में लपेट दिये जाते हैं जिससे उनके कोमल शरीरोंमें किसी प्रकारका छूत न लगे। परंतु चीड़के आलीशान पेड़का यह नया रूप है। केवल वस्तुओंके लपेटनेके ही काममें यह नहीं आता, इसके जल-अभेद्य कोट और हैट बनते हैं। जूते और पेटियाँ बनती हैं और इसपर छपाई भी होती है।

नक़ली रेशम

अब रसायनज्ञकी नई जादूगरीको ध्यानसे देखिये। शीरेको चपटे पतले छेदसे तेज़ाबमें डालनेके बदले वह अब उसको बारीक छेदोंसे निकालकर तेज़ाबमें डालता है। इससे शीरेसे कागज़ बननेके बदले सूत बन जाता है जो मनुष्यके बालसे, यहाँतक कि असली रेशमके तारसे भी, पतला होता है। नक़ली रेशमका इसी तरह जन्म हुआ। यह इतना बारीक होता है कि डेढ़ ही सेर नक़ली सूतसे पृथ्वी एक बार लपेटी जा सकती है। इस सूतका बना कपड़ा खड़ियाके समान चमकरहित क्रेपसे लेकर असली मख़मलसे भी अधिक चमकदार बनाया जा सकता है। इसके अलावा यह तरह-तरहके रंगोंका बनाया जा सकता है। जिस कामको पहले केवल रेशमका कीड़ा ही कर सकता था उसे आज मनुष्य भी आसानीसे कर सकता है। वह भी वनस्पतिसे रेशमी तार तैयार कर सकता है। अंतर केवल इतना ही है कि मनुष्य चीड़की लकड़ी या रुईसे रेशम बनाता है और सब बातें उसके क़ाबूमें रहती हैं, और रेशमका कीड़ा शहतूतकी पत्तियोंसे रेशमी तार बनाता है और उसकी चमक और रंगका बदलना उसके बसकी बात नहीं है।

नई और क्रांतिकारी चीज़ें इस नक़ली रेशमसे अब बन रही हैं और इसका प्रचार आज दिन इतना बढ़ गया है कि केवल अमरीकामें तीस लाख मन सन् १९३५ में हुआ था। अब तो इसकी खपत इससे कहीं अधिक होती है। कुछ लोगोंके दिमागमें नक़ली रेशमका नाम लेते ही सस्ते और रद्दी मालका चित्र खिंच आता है, लेकिन आज यह बात ठीक नहीं है। अब तो सभी तरहका कपड़ा नक़ली रेशमसे बनता है और कई बातोंमें नक़ली रेशम असली रेशमसे बढ़कर है। उदाहरणार्थ, नक़ली रेशम पहले ख़ूब चमकीला ही बन पाता था। कुछ ही दिनोंमें फ़ैशन बदल गया और अब नक़ली रेशम ऐसा भी बनता है जो खड़ियाके समान चमकरहित होता है। इस प्रकारका कपड़ा न तो असली रेशमसे न सूतसे तैयार हो सकता है। नक़ली रेशम अब इतना मज़बूत और सब जगह एक मोटाईका इतनी सच्चाईसे होता है कि इन बातोंमें वह असली रेशमको भी मात कर देता है। इसपर रंग भी जितना चटक चढ़ सकता है उतना असली रेशमपर कभी भी नहीं चढ़ सकेगा। सन् १९३५ में केवल अमरीकामें ७० करोड़ गज़ कपड़ा नक़ली रेशमसे बना। जापानमें तो इससे कहीं अधिक कपड़ा नक़ली रेशमसे बना होगा। ये कपड़े बारीक-से-बारीक रेशमी कपड़ेसे लेकर मोटे ऊनी कपड़ोंकी जातिके बनते हैं। बारीक पारदर्शक कपड़ोंसे लेकर मोटे मख़मल और मज़बूत चमकरहित क्रेपसे लेकर अत्यंत चमकीले साटनतक बनते हैं। आजकलके बहुत-से कपड़े कुछ ही वर्ष पहिले किसी भी चीज़से नहीं बन पाते। नक़ली रेशमके सूत

बटोनेपर दर्सोंके कते सूतकी तरह हो जाते हैं और दोनोंके मिश्रणसे तरह-तरहकी नई चीज़ें बनती हैं। विशेषज्ञोंका ऐसा ख़्याल है कि कुछ ही वर्षोंमें और भी नई तरहके कपड़े बनने लगेंगे।

नक़ली रेशम और सेलोफ़ेनके अलावा और भी चीज़ें विसकॉससे बन सकती हैं। इसमें उपयुक्त ठोस पदार्थोंको फेंटकर तेज़ाबमें एकबारगी उँडेलनेके बाद उसे जम जानेपर ऐसे घोलमें छोड़ देते हैं जिसमें वे ठोस पदार्थ घुल जाते हैं और इसलिए जमे हुये मालमें छेद ही छेद बन जाते हैं। इस प्रकार नक़ली स्पंज बनता है।

चलिये, एकबार फिर सैलूलोज़तक लौट चलें। इसको सिरकेके तेज़ाबमें हल करें तो हमको न तो नाइट्रो-सैलूलोजऔर न विस्कॉस मिलेगा। हमको उनके बदले सैलूलोज़-एसीटेट मिलेगा। इसे भी तरल पदार्थोंमें घोलनेसे एक शीरा बन जाता है जिसकी बनी चीज़ें शीघ्र नहीं जलती। इससे ही फ़ोटो और सिनेमाके लिए फिल्म बनता है। इससे भी एक प्रकारका नक़ली रेशम बनता है जिससे औरतोंके लिए बहुमूल्य कपड़ा बनता है। इस कपड़ेमें दाग़ आसानीसे नहीं पड़ता। पसीने, तेल, रोशनाई, फल या रस आदिसे इसपर धब्बे नहीं पड़ते। इसमें आसानीसे शिकन नहीं पड़ता। धूपमें पड़े रहनेसे यह पीला नहीं पड़ता और इसमें भुकड़ी नहीं लगती। इतना गुणयुक्त तो कोई भी असली कपड़ा नहीं है। शायद इस क्षेत्रमें सब बातों-का पता नहीं लगा है। शोरे (नमककी जगह शोरेका) और सिरकेके तेज़ाबके अलावा अवश्य ही सैलूलोज़ दूसरी चीज़ोंमें भी घुलता होगा और रसायनज्ञोंकी धीरजपूर्ण खोजोंसे एक दिन ऐसी चीज़ोंके मिल जानेकी संभावना प्रतीत होती है जो आजके नक़ली रेशम आदिसे भी बढ़कर हों।

हिमालयकी बलिवेदीपर

[ले० श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव एम०एस-सी०]

स्वभावसे ही मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी रहा है। उसकी जिज्ञासा भी तृप्त होनेवाली वस्तु नहीं है। नई बातोंके जाननेके लिए वह सदैव उत्सुक रहता है—एक समस्या हल करनेके बाद वह दूसरीकी खोजमें आगे बढ़ता है—उसकी जिज्ञासाकी परिधि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। उसी जिज्ञासाकी तुष्टिके लिए अनेक कष्टोंका मनुष्य आवाहनतक करता है। कुछ ऐसी ही मनोवृत्तिके वशीभूत हो अनेक साहसी वीरोंने हिमालयके तुहिन प्रांतोंमें अपने प्राणोंकी बलि समय-समयपर दी है।

आजसे लगभग ८० वर्ष पहले पहाड़ी प्रांतोंकी पैमाइश-के सिलसिलेमें सर्वे-विभागके कर्मचारियोंको हिमालयकी निम्न श्रेणियोंमें थोड़ी-बहुत चढ़ाई करनेका अवसर मिला था। उस समयसे आजतक हिमालयकी भिन्न-भिन्न चोटियोंतक पैदल पहुँचनेके उद्देश्यसे अनेक प्रयत्न किये गये हैं। इन पर्वतारोहियोंमें अधिकांश यूरोपियन्स रहे हैं, और इनमेंसे कई एक तो एल्पस पर्वतके सर्वोच्च शिखरपर विजय प्राप्त कर चुके थे। किन्तु उन्हें भी हिमालयकी दुर्गम घाटियोंमें मुँहकी खानी पड़ी। समयकी प्रगतिके साथ क्षेत्रमें लोगोंका अनुभव भी बढ़ता गया। अपने पूर्वारोहियोंकी त्रुटियोंसे लोगोंने सबक़ सीखा। दुर्गम चढ़ाईके कामके लिये गुरखे, कुली विशेष रूपसे तैयार किये गये। इसी सिलसिलेमें १९२८ में भारत सरकारके वाणिज्य मंत्री, तथा सर्वे विभागके अध्यक्षके उद्योगसे 'हिमालयन क्लब' नामकी एक संस्थाका उद्‌घाटन हुआ। इस क्लबका मुख्य उद्देश्य हिमालय प्रांतके बारेमें हर प्रकारकी जानकारी प्राप्त करना है। हिमालयको भौगोलिक और वैज्ञानिक दृष्टिसे कहाँतक महत्व प्राप्त हैं इसका भी पता लगाना इस क्लबके उद्देश्योंमें है। १९२८ के बादसे हिमालयके सम्बंधमें पर्वतारोहियोंके जितने अभियान हुए हैं, वे सब इस क्लबके सहयोगसे ही हुए हैं।

अन्य देशोंसे आए पर्वतारोहियोंके लिए इस क्लब-का सहयोग वास्तवमें बड़ा भारी महत्व रखता है। गाइड, कुली, खाने-पीनेका सामान तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ, जिनकी ऐसे अभियानमें प्रायः ज़रूरत पड़ा करती है, सभी कुछ इस क्लबकी ओरसे मुहैया किया जाता है।

तीन वर्ष पहले जर्मनीसे आरोहियोंका एक दल भारतमें नङ्गा पर्वतके शिखरपर विजय प्राप्त करनेके लिए आया था। इस दलके नेता श्रीयुत मर्कल थे। इस अभियानमें लोग नङ्गा पर्वतकी चोटीके काफ़ी नजदीक पहुँच चुके थे, और आश्चर्य नहीं कि वे चोटीतक शीघ्र ही पहुँच जाते—किंतु प्रकृतिके आगे किसीका कुछ बस न चला। ऊँचे पर्वतसे हिम शिला गिरी और उसने श्रीयुत मर्कल तथा अन्य दो आरोहियोंको ज़िन्दा ही क़ब्रमें दफ़न कर दिया। अतएव उस बारकी चढ़ाईका काम भी यहीं रुक गया। मर्कलके जत्थेके इस दुःखांत नाटकके उपरांत जर्मनी हताश नहीं हो गया। जर्मनीके उत्साही पर्वता-रोही तभीसे नङ्गा पर्वतपर विजय प्राप्त करनेकी फ़िक्रमें लगे रहे हैं। निस्संदेह ऐसे अभियानोंके लिए साहसी व्यक्तियोंकी आवश्यकता हुआ करती है, किंतु इतनेसे ही हमारी कठिनाई हल नहीं हो जाती। इस काममें रुपया भी पानीकी भाँति बहाना पड़ता है। पहाड़के दुर्गम्य रास्तेमें सामान ढोनेके लिये आपको बहुत ही होशियार और हृष्ट-पुष्ट कुली चाहिए। ये कुली अपनी जान हथेलीपर लेकर आपके पास काम करने आते हैं, अतएव उन्हें मुँहमाँगी मजदूरी भी देनी पड़ती है।

जर्मनीके इन साहसी वीरोंकी भरपूर आर्थिक सहायता वहाँकी सरकारने की है। फिर १९३४ के अभि-यानमें जो आरोही मृत्युकी गोदमें गए उनके सम्बंधियोंने भी काफ़ी रुपया इसलिए दिया कि नङ्गा पर्वतपर विजय प्राप्त करनेके लिये पुनः उद्योग किया जाय। फलस्वरूप अप्रैल १९३७ में जर्मनीसे ९ व्यक्तियोंका

एक जत्था इस महान उद्योगको लेकर भारतके लिए रवाना हुआ। इनमेंसे दो तो वैज्ञानिक थे, और एक सिनेमाकी फ़िल्मका सञ्चालक था, तथा अन्य व्यक्ति ऐसे थे जो एल्प्सके सर्व्वोच्च शिखरपर कई बार चढ़ चुके थे।

इन लोगोंने अपने अभियानके लिए मई और जून-के महीने चुने थे, क्योंकि इस समयतक कश्मीरमें मॉन्सून नहीं पहुँचती, और गर्मी भी इतनी पड़ती है कि ऊँचे-ऊँचे दर्रोंकी बर्फ़ गल जाती है, और रास्ता साफ़ हो जाता है। मॉन्सून लगते ही, हिमालय प्रांतमें तूफ़ान, आँधी और ओलोंकी वर्षाकी भरमार हो जाती है। ऐसी दशामें लाख प्रयत्न करनेपर भी आप पर्वतपर चढ़ाई नहीं कर सकते क्योंकि वर्षा और आँधीके झोंकेसे यदि आप बच भी गये तो चोटीसे टूटकर गिरनेवाले शिलाखंडसे बचना असम्भव ही हो जाता है। पग-पग पर 'एवेलेंश' का खटका बना रहता है।

अब हमने देखा कि जत्थेमें वनस्पति-शास्त्रमें अनुसंधान करनेके उद्देश्यसे दो वैज्ञानिक भी शामिल थे। इस अभियानकी फिल्म तैयार करनेकी भी इन लोगोंने तैयारी की थी। इस जत्थेके अधिनायक डा० कार्लवियन थे। जर्मनीसे बम्बईतक ये लोग बराबर इसी अभियानकी फ़िक्रमें लगे रहे थे। तरह-तरह की जिमनैस्टिक और कसरतोंसे उन्होंने अपने शरीरके पुट्ठों और रगोंको मज़बूत बनाया, क्योंकि पर्वतारोहणमें निरे उत्साह और उमंगसे काम नहीं चलता। शरीरकी रग-रगकी परीक्षा उस समय होती है जब रस्सीके एक सिरेसे बँधा हुआ आपका साथी बर्फ़की चट्टानपर फ़िसलकर नीचेको गिर रहा है, और दूसरे सिरेसे बँधे हुए आप, उसे और अपने, दोनोंको सँभालनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे अवसरपर यदि आपके शरीरका कोई भी अंग धोखा दे गया, तो सारा करा कराया चौपट हो जायगा।

यह जत्था बम्बईमें १ मईको जहाज़से उतरा। डा० वियनने-प्रेस प्रतिनिधियोंसे बात करते समय भारत-सरकारको इस बातके लिये धन्यवाद दिया कि उसने अन्य लोगोंको छोड़कर जर्मनीके जत्थेको ही नङ्गा पर्वत-के आरोहणके लिए अनुमति दी। निस्संदेह भारत-सरकार ने जर्मनीके जत्थेको ही अनुमति केवल इसीलिए दी कि सन् १९३४ में इसी देशसे एक जत्था नङ्गा पर्वत के आरोहणके लिए आ चुका था। बम्बईमें डा० वियन तथा उनके अन्य साथी बड़े ही प्रसन्नचित्त थे। सन् १९३४ वाले अभियानके सदस्योंका ज़िक्र उन्होंने बड़े सम्मानके साथ किया, और कहा कि उस अभियानसे प्राप्त हुए अनुभवकी सहायतासे हम पूरी आशा करते हैं कि हम अपने इस महान उद्योगमें अवश्य सफल होंगे।

इस जत्थेमें कई एक व्यक्ति ऐसे थे, जो एल्प्सकी दुर्गम श्रेणियोंमें चढ़ाई कर चुके थे। कितने ही तुषार आवृत्त शिखरोंपर विजय प्राप्त करनेका श्रेय उन्हें मिल चुका था। इसी कारणसे इन लोगोंमें विश्वास और आत्म-निर्भरता इतनी अधिक मात्रामें थी।

वे लोग श्रीनगर ३ मईको पहुँच गये। भारत-सरकार द्वारा नियुक्त किए गये एक कर्मचारी भी यहाँसे इनकी सहायताके लिए साथ हो लिये। ६ मईको श्री-नगर छोड़कर ये लोग आगे बढ़े। ऊलर झीलके तट-पर हिमालयन क्लब द्वारा चुने गये १२० कुली इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अब अभियानका पूरा काफिला आगे बढ़ा। इन कुलियोंमेंसे कई ऐसे थे जिन्होंने सन् १९३४ में श्रीयुत मर्कलके जत्थेके संग काम किया था। अतएव इस अभियानमें भी इनका सहयोग हर प्रकारसे वांछनीय था।

तदुपरांत सिंधकी घाटीसे होकर ये लोग आगे बढ़े। अभीतक मौसम अच्छा था। किसी प्रकारके तूफ़ान या आँधीका सामना इन्हें नहीं करना पड़ा। इस प्रकार त्रागबल दर्रे (१३३५० फ़ीट) को ७ मईकी सुबहतक इन लोगोंने पार कर लिया। किंतु दर्रेके उस पार जब ये लोग उतर रहे थे, तब इन्हें ओलोंकी वर्षा और आँधी-का सामना करना पड़ा। उस अभियानके सदस्योंके खिलाफ़ प्रकृतिका यह पहला मोरचा था। हिमालयकी श्रेणियोंमें तूफ़ानसे अधिक ख़तरनाक और कोई चीज़ हो ही नहीं सकती। तंग रास्तेसे होकर आप ऊपरको

चढ़ रहे हैं, इसी समय तूफ़ान आता है, ऊपरसे बर्फ़की एक विशाल चट्टान टूटकर गिरती है, और पूरी टोली-को बर्फ़की राशिमें दफ़न कर देती है। यही कारण है कि ऐसे अभियानोंका आयोजन इस तरह करते हैं, कि मॉन्सून आरम्भ होनेके पहले ही पहाड़ी प्रांतसे उतरकर मैदानमें आ जायँ।

अस्तु, यह जत्था अब आगे बढ़ा। बंजिल दर्रेसे राकिएटकी घाटीतक किसी प्रकारकी उन्हें दिक़्क़त न हुई। फिर ४८०० फ़ीटकी चढ़ाई समाप्त करके ये लोग 'टैटो' पहुँचे। अब ऊपर जानेका रास्ता मुश्किल था। कठिन चढ़ाईका काम वास्तवमें यहींसे आरम्भ होता है, अतएव यहाँपर इन लोगोंने अपना प्रधान अड्डा बनाया। खाने-पीनेकी सामग्री, डाकका प्रबंध तथा गोदाम आदि सबका आयोजन यहींसे करनेका निश्चय हुआ।

यहाँसे आगे बढ़नेके लिए पहले दिन एक छोटी-सी टोली रास्तेकी जाँच करनेके लिए भेजी गई। फिर दूसरे दिन पूरा जत्था आगे बढ़ा। १३३५० फ़ीटकी ऊँचाईपर इन लोगोंने अपना पहला कैम्प स्थापित किया—पहाड़के ढालपर यह कैम्प लगाया गया था। ठीक सामने आकाशको छूती हुई नङ्गा पर्वतकी चोटी थी, जहाँसे टूट-टूटकर हिमशिलाएँ बड़े जोर-शोरके साथ गिरती दिखाई देती थीं। यह कैम्प राकिएट ग्लेशियरमें था।

२३ मईको कैम्प न० २ के लिए स्थान चुननेके लिए एक छोटी पार्टी ऊपर भेजी गई, और तत्पश्चात् जत्थेकी चढ़ाई आरम्भ हुई।

कैम्प न० २ की ऊँचाई १६०८० फ़ीट थी। सारे दिन मौसम बहुत ही ख़राब रहा। निरंतर हिमवर्षा होती रही। ठंढक बड़े जोरोंकी थी। किंतु जत्थेके संग जो रसोइया था, उसने गरम चाय पिलाकर लोगोंको ठंढकसे बचाया। इस स्थानपर इन आरोहियोंपर प्रकृतिका दूसरा वार हुआ, और पहलेकी अपेक्षा यह कहीं ज्यादा भयावह था। कैम्प न० २ में पहुँचकर अभी लोग सुस्ताने भी न पाए थे कि एक विशाल हिमशिला ऊपरसे प्रलयकारी वेगसे गिरी और उनके टेंटकी रस्सियाँ वग़ैरह तोड़ती हुई, बगलसे निकल गयी। साँस रोककर कई सेकण्डतक ये लोग निस्तब्ध पड़े रहे। उनकी धमनियोंमें चेतनाका जब पुनः सञ्चार हुआ तो लोगोंने एक दूसरेको बर्फ़के नन्हे-नन्हे टुकड़ोंसे आच्छादित पाया।

मौसमके बहुत ही ख़राब होनेके कारण यह तय ही पाया कि रात कैम्प नं० २ में न गुज़ारकर नीचे अड्डेमें बिताई जाय। अड्डेपर लौटनेपर इन्हें अपनी डाक भी मिल गई। यहींपर डा० वियनने अपने मित्रोंके नाम कई एक पत्र भी लिखे।

३१ मईतक मौसम बहुत-कुछ सुधर चुका था, और बिना किसी विशेष परेशानीके ये लोग कैम्प नं० २ तक पहुँच गये। यहाँसे लोगोंने उन कुलियोंको साथ लिया जो आराम कर चुके थे, क्योंकि अब आगेकी चढ़ाई बड़ी दुस्तर थी। कैम्प नं० ३ के लिए रास्ते वग़ैरह-की जाँच कर ली गई। आख़िर यह चढ़ाई भी सकुशल समाप्त हो गई, और ५ जूनकी रात इन लोगोंने कैम्प नं० ३ में ही गुजारी। अब सर्दी बढ़ती जा रही थी—चाय परसनेके साथ ही ठंढी हो जाती थी—थर्मामीटर-का पारा शून्यसे २० डिग्री नीचेको पहुँच चुका था।

लेकिन अब मंजिले-मकसूद भी काफ़ी निकट था, अतएव ठंढक और चढ़ाईकी अन्य कठिनाइयोंके होते हुए भी इन आरोहियोंके हृदयमें उत्साहकी तरंगें हिलोरे ले रही थीं। किसीके चेहरेपर भी नैराश्यका भाव न था। ध्येय प्राप्त करनेके लिए हम जो सतत उद्योग करते हैं उसीमें तो जीवन है!

दूसरे दिन कैम्प नं० ४ के लिये पूरी तैयारी हो गई—उस कैम्पतक पहुँचनेमें दो दिन लग गये। ६ जूनतक इस दलके आरोही और साथके कुली सब इस कैम्पतक पहुँच चुके थे। यह कैम्प १८५५५ फ़ीटकी ऊँचाईपर था। दलके लीडर डा० कार्लवियनने ६ जूनको 'स्टेटस्मैन' के सम्पादकके नाम जो पत्र लिखा उसका निम्नाङ्कित अंश उल्लेखनीय है:—

"अब आगेकी चढ़ाई विशेष खतरनाक है। पाँचवे कैम्पतक पहुँचनेके लिए हमें राकिएट घाटीकी श्रेणीके

ढालसे होकर जाना है। जहाँतक दृष्टि जाती है, सफ़ेद चद्दरसे ढकी हुई चट्टानें ही चट्टानें दिखाई देती हैं।"

इसके उपरांत इस कठिन चढ़ाईको भी इन वीरोंने पूरा कर लिया, जैसा कि डा० वियनकी १४ जूनकी चिट्ठीसे मालूम होता है:—

"हिम-वर्षा जोरोंमें हो रही है। १२ जूनको हम पाँचवें कैम्पतक पहुँच गये। इस स्थानकी ऊँचाई २०,०६० फ़ीट है। हिम-वर्षा और मौसमकी ख़राबीके कारण वहाँ ठहरना मुनासिब नहीं समझा गया अतः हम लोग कैम्प नं० ४ को फिर वापस चले गये"

इस जत्थेका यह आखिरी संदेश था—इसके उपरांत २१ जूनको गिलगिटके पॉलिटिकल एजेंटने खबर भेजी कि पूरा जत्था तुषार और हिमशिलाके नीचे दब गया। आख़िर जिस बातकी शंका इतने दिनोंसे थी, वह होकर ही रही। हिमालय-यज्ञमें एक और आहुति पड़ी।

१४ जूनको लेफ्टिनेंट स्मार्ट, जो भारत सरकारकी ओरसे इस अभियानमें सहयोग देनेके लिए नियुक्त किये गये थे, कुछ कुलियोंको लेकर कैम्प नं० ४ से नीचे 'टैंटो' के अड्डेके लिये रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने डा० एलरिच टफ़्टको, जो टैंटोके अड्डेके इनचार्ज थे, स्मार्टने कैम्प नं० ४ में जानेके लिए भेजा। निदान १८ ता० को जब डा० एलरिच उस स्थानपर पहुँचे जहाँ कैम्प नं० ४ का ख़ेमा गाड़ा गया था, तो आपको उस स्थानपर हिमशिलाका विशाल टुकड़ा मिला। हताश होकर इधर-उधर नज़र दौड़ाई कि कदाचित् टोलीका कोई व्यक्ति दिखाई पड़े, किंतु वहाँ तो बिलकुल सन्नाटा था। 'टैंटो' के अड्डेपर वापस जाकर उसने गिलिगटके पॉलिटिकल एजेंटके पास यह दुःखद समाचार फौरन एक हरकारेके हाथ भेजा। तदुपरांत अन्य लोगोंकी सहायतासे उन्होंने मृतक साथियोंके शवकी तलाश आरम्भ की।

इस दुर्घटनामें ७ जर्मन आरोही और ६ कुली मृत्यु को प्राप्त हुए थे। हिमालयन क्लबके ये कुली बड़े निपुण और साहसी थे; इनके अहितसे क्लबकी भारी क्षति हुई।

इस दुर्घटनाकी ख़बर सुन जर्मनीसे डा० बावर, जिन्होंने इस अभियानका पूरा आयोजन किया था, वायुयान द्वारा भारतमें आये। आते ही आपने अन्य साथियोंके साथ बर्फ़की खुदाई आरम्भ कर दी। कई दिनके निरंतर परिश्रमके उपरांत कैम्प नं० ४ के शव दिखाई पड़े। ऐसा जान पड़ता है, कि सब लोग दुर्घटनाके समय गहरी नींदमें थे। हिमशिलाकी दुर्घटना १४ जूनकी रातमें हुई थी। उनकी घड़ियाँ लगभग १ बजे रातको बंद हो गई थीं, अतएव अनुमान किया जाता है कि दुर्घटनाका यही समय रहा होगा। उनके चेहरेपर किसी प्रकारकी चिंता या भयका चिह्न न था, शायद 'एवेलेंश' उनके ऊपर एक बारगी ही गिरा।

उनके मृतक शरीर निकटकी हिमशिलामें विधिपूर्वक दफ़न कर दिए गये।

नङ्गा पर्वतकी यह तीसरी आहुति थी। कोई ४० वर्ष पहले सन् १८६५ में डा० ममरी (एक अँग्रेज़ आरोही) अपने दो कुलियोंके साथ नङ्गा पर्वतकी चोटीपर विजय प्राप्त करने आये थे किंतु वे ज़िंदा वापस न जा सके थे। उसके बाद सन् १९३४ में श्रीयुत मर्कलके नेतृत्वमें जर्मनीसे एक जत्था आया, और इस बार भी चार व्यक्ति इस पर्वतकी भेंट हुए। और १९३७ के अभियानमें भी विजय प्रकृतिके ही हाथ रही।

यदि दाल न गले तो ?

कभी कभी चने की दाल या सूखी मटर उबालकर गलानेमें देर लगती है। यदि शीघ्र गलाना हो तो एक चुटकी भर सोडा (धोबीवाला सोडा) पानीमें उबालते समय डाल दो। सोडाकी अधिक मात्रा मिलानेसे दाल बिलकुल हलुआ हो जायगी, और इसमें खारापन आ जायगा। इसलिए सेर भर पानीमें २ रत्ती सोडा ही मिलाओ।

भाँग

[लेखक—आर० बेंडी० ओ० एम० एस-सी०, गुरुकुल विश्वविद्यालय]

नाम

हिंदी—भाँग, भंग, गाँजेका पेड़, गाँजा, चरस।

संस्कृत—जया (दुःखोंको जीतनेवाली—प्रथमावस्था), विजया (विशेषखः—जयशीला, हर्षोत्पादक—द्वितीयावस्था), त्रैलोक्य-विजया (तीनों लोकोंके या सब प्रकारके दुःखोंको जीतनेवाली—तृतीयावस्था), हर्षिणी (हर्षोत्पादक, हलकम्पन करनेवाली), मादिनी (मदकारक) आदि।

अँग्रेज़ी—इंडियन हेम्प

लैटिन—केन्नेबिस सेटिवा

प्राप्ति-स्थान तथा सामान्य वर्णन

भाँग प्रारम्भमें पश्चिमी या मध्य एशियामें पैदा होनेवाला पौधा था। अब यह समशीतोष्ण और उष्ण प्रदेशोंके जंगलोंमें पाई जाती है। इसकी खेती भी बहुत की जाती है। यूरोप और अन्य देशोंमें उगनेवाली भाँगकी अपेक्षा भारतवर्षमें उगनेवाली भाँग गुणोंमें बहुत अधिक भिन्न होती है। इसीलिए इसको अलग नाम केन्नेबिस इंडिका दिया गया था जो अब छोड़ दिया गया है। यह हिमालयके जंगलमें सर्वत्र पाई जाती है। सेटिवा और भारतीय भाँग (इंडिका) के पौधोंके वानस्पतिक गुणोंमें कोई ऐसा भेद नहीं है जिससे इनमें भेद किया जा सकता हो। इसलिए रेशे उत्पन्न करनेवाली और नशा उत्पन्न करनेवाली भाँगमें कोई भेद नहीं है। भाँगके दोनों प्रकारके पौधोंको ध्यानमें रखते हुए कुछ गण्यमान्य लेखकोंने भारतीय भाँग और साधारण भाँगके बीजोंमें भी कुछ भेद प्रदर्शित किए हैं। तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि भाँगका मादा पौधा जिसकी कमायूँ और अन्य स्थानोंमें रेशेके लिए खेती की जाती है, उसमें चरसकी पर्याप्त मात्रा होती है और कभी-कभी यह गाँजेके रूपमें भी पाया जाता है। मादा भाँगके शुष्क पुष्पित या फलित शिखर चिकित्सामें प्रयुक्त होते हैं। यूरोपियन व्यापारमें मिलनेवाली ओषधिमें बहुत अधिक नमी होती है।

एशिया और अफ्रीकाके प्रदेशोंमें भाँगके योग मादक वस्तुके रूपमें अज्ञात कालसे प्रयुक्त हो रहे हैं। लाखों मनुष्य-जातियोंमें भाँग, गाँजा, चरस आदिके पीनेकी लत पड़ गई है। इनके मादक वेदना दूर करनेके गुणोंको अंतिम शताब्दीके प्रारम्भमें पाश्चात्य चिकित्सकोंने भी मुक्तकंठसे स्वीकार किया है और ब्रिटिश संयुक्त-राज्यकी ओषधियोंमें भी इसे स्थान दिया गया है। यह पौधा संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें मिलता है परंतु कुछ ही अन्य स्थानोंमें यह द्रव्य गुणकी दृष्टिसे भारतीय भाँगकी श्रेणीमें आता है। नरकी अपेक्षा मादा पौधा अधिक ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ अधिक व गहरे हरे रंगकी होती हैं और अधिक लम्बी होती हैं। इसके पकनेमें ५, ७ सप्ताह अधिक लग जाते हैं। पौधेकी ऊँचाईपर ऋतु तथा भूमि और खादका भी प्रभाव पड़ता है। कुछ ज़िलोंमें यह ३ से ८ फ़ीटतक ऊँचा होता है, परंतु अन्य स्थानोंमें कभी-कभी यह ८ से १६ फ़ीट ऊँचा भी देखनेमें आता है।

प्रेनके अनुसार भाँग भारतका मूल पौधा नहीं है परंतु भारतमें रेशे उत्पन्न करनेवाली जाति वानस्पतिक जातियोंकी तरह आई। लोगोंपर इसका नशीला गुण प्रकट हुआ और अब यह इसीलिए उगाई जाने लगी। वॉटक इस बातपर कोई निश्चित मत नहीं है। साइबेरियामें, किरघिज़की मरुभूमिमें और कैस्पियन समुद्रके दक्षिण भागमें यह पौधा जंगली रूपमें पाया

जाता है। मध्य और दक्षिणी रूसमें और काकेशसके दक्षिणमें भी यह प्राकृतिक दशामें उगता है। छठी ईसवी पूर्व शताब्दीसे चीनके लोग इस पौधेको जानते हैं और सम्भवतः चीनके कुछ नीचे पहाड़ोंमें यह प्राकृत रूपमें पाया जाता है। पर्शियामें यह जंगलोंमें उगता है। भारतवर्षमें यह हिमालयकी पश्चिमी पर्वत-श्रेणियोंपर और कश्मीरमें जंगलोंमें उगता हुआ मिलता है। कल्पना की जाती है कि वहाँसे इसे भारतके मैदानोंमें लाकर यहाँकी जलवायुके अनुकूल कर लिया गया है।

भाँग हिमालयपर कश्मीरसे आसामके पूर्वतक सब स्थानोंमें उगती है। १०००० फ़ीटसे ऊपर यह नहीं मिलती। पर्वतोंके दक्षिणी ढालू स्थानोंके नीचे और पञ्जाबमें तथा गंगाके आस-पास कुछ सीमित दूरियोंतक यह फैली हुई है। आसामके पहाड़ी मार्गोंमें यह पाई जाती है और पूर्वीय बंगालके पर्वतीय मार्गोंमें भी यह फैली हुई है। निर्धारित की जाय तो इसकी दक्षिणी सीमा लगभग यह होगी—पेशावरसे पञ्जाब और संयुक्त-प्रांतके मध्यतक और गंगाके सहारे-सहारे। इस प्रदेशमें यह पौधा स्वयं उगता है, परंतु सम्भव है कि बहुत अधिक अंशोंमें पहाड़ोंसे इसका बीज नीचे लाकर यह हिमालयके अधिक निचले ढालू स्थानोंमें और तराईके स्रोतोंमें उगाया गया हो। हिमालयके निचले भागके आबाद स्थानोंमें भाँग और गाँजा पीनेके शौकीन आदमियों द्वारा इसका बीज हाल ही में लाया गया है और अब यह जंगलोंमें होने लगा है। यह पौधा एक बार जहाँ लग जाता है फिर नष्ट नहीं होता और अधिकाधिक स्थानमें फैलता जाता है, परंतु भारतवर्षके जंगलोंमें इसका विस्तार करनेके लिए जो प्रयत्न किए गए हैं उनसे स्पष्ट है कि जलवायु और भूमिकी अवस्थाएँ भी इसकी पूर्ण वृद्धिपर ख़ास असर डालती हैं। ज़मीन बहुत उपजाऊ होनी आवश्यक नहीं है परंतु पानीके अच्छे निकासवाली और पोली होनी चाहिए।

भाँगके पौधेकी कृषि

भारतवर्षमें भाँगके पौधेकी खेती बहुत अधिक परिमाणमें कभी भी नहीं की गई। १८९२-९३ के हेम्पड्रग-कमीशनकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि रेशेके लिए बोई जानेवाली भाँगको छोड़कर मादक प्रयोजनके लिए ही भाँग बोई गई। भाँगका क्षेत्रफल ६००० एकड़से कुछ ही अधिक होगा। मादक ओषधियोंकी उत्पत्तिके संबंधमें जो लीग-ऑफ-नेशंसने सीमाएँ निर्धारित की हैं उससे इसकी पैदाइश बहुत कम हो गई है। १९२९-३० के प्राप्त आँकड़ोंसे पता चलता है कि उस वर्ष मुश्किलसे १००० एकड़में इसकी खेती की गई थी।

रासायनिक विश्लेषण

एक उड़नशील तैल होता है जिसमें केन्नाबीन, केन्नाबिन-उदिद कई क्षारीय तत्व केन्ना, एक रेज़िन, केन्नाबिनिन आदि, केन्नाबिनोन केन्नाबिनोल और कई तरपीन होते हैं।

भाँग, गाँजा और चरसमें क्रमशः लगभग १०, २० और ४० प्रतिशततक रेज़िन होता है। इसीके अनुसार इनके नशाकारक गुणमें भी भेद है। चरस तीनोंमें सबसे अधिक मादक है, गाँजा उससे कम और भाँग गाँजेसे भी कम नशीली है। डूपरकी सम्मतिमें यदि ओषधि दो या तीन सालसे अधिक समयतक रक्खी जाय तो उसके क्रियाशील तत्वोंमें सड़ाद हो जानेसे ओषधिकी शक्ति घट जाती है।

पौधेके स्वाभाविक स्राव चरसमें स्निग्ध पदार्थ और वानस्पतिक हरित द्रव्य नहीं होता। विश्लेषण करनेपर इसमें ३३ प्रतिशततक एक तेल निकलता है जिसका सूत्र $क_{१८} उ_{२४} ओ_{२}$ है। यह स्राव भाँग-विषके सब लक्षणोंको उत्पन्न कर देता है इसलिए ओषधिसे उत्पन्न मुख्य प्रभाव इसके कार्यके कारण होते हैं। चरसका ईथरसे निष्कर्ष निकालनेपर भिन्न-भिन्न निम्न रासायनिक यौगिक प्राप्त होते हैं :—

(क) तरपीन ($क_{१०} उ_{१६}$, द्रवांक १६५° से १७५° तक) लगभग १·५ प्रतिशत

(ख) सेस्की तरपीन ($क_{१५} उ_{२४}$ द्रवांक २५८° से २५९° तक) लगभग १·७५ प्रतिशत

(ग) पेराफिन उदकर्बन ($क_{२९}$ $उ_{६०}$, द्रवांक ६३° से ६४° तक) लगभग ०·१५ प्रतिशत

(घ) विषैला लाल तैल ($क_{१}$ $उ_{२४}$ $ओ_{२}$, २ सें० मी० के दबावपर द्रवांक २६५°) लगभग ३३ प्रतिशत

यह लाल तैल एक अर्धठोस समूह है। जलमें अविलेय परंतु मद्यसार, ईथर, बानजावीन, हैम सिरकाम्ल-में सुगमतासे और कार्बनिक घोलकोंमें सामान्यतया घुलनशील है। यह कम-से-कम दो यौगिकोंका मिश्रण है जो गुणमें एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं। इनमेंसे एक $क_{२१}$ $उ_{२६}$ $ओ_{२}$ सूत्रका पृथक् किया गया है और इसका नाम केन्नाबिनोल रक्खा गया है। केन्नाबिनोल ओषधिका क्रियाशील तत्व है।

तरपीनका शरीर-क्रिया सम्बन्धी कार्य इसकी श्रेणीके अन्य पदार्थोंसे बहुत अधिक मिलता है जिनमेंसे उदाहरणके लिए साधारण तारपीन लिया जा सकता है। ०·५ ग्रामकी मात्रामें इनका बहुत थोड़ा असर होता है और ये भाँगका कोई विशिष्ट लक्षण नहीं उत्पन्न करते। इसके विपरीत, लाल तैल बहुत क्रियाशील है। ०·०५ ग्रामकी मात्रामें भी यह तैल निद्रानुयायी विष-लक्षण निश्चित रूपसे उत्पन्न करता है। इससे उत्पन्न लक्षण भाँगके विशिष्ट लक्षणोंके समान ही हैं और क्योंकि भाँगमेंसे किसी दूसरे निकाले हुए तत्वका कार्य ऐसा नहीं है इसलिए यह पदार्थ पौधेका क्रियाशील तत्व समझना चाहिए।

भाँगके बीजोंमेंसे हलके हरे या हरेसे पीले रंगका २५ से ३२ प्रतिशततक एक स्थिर तेल निकलता है। पड़ा रहनेपर यह भूरेसे पीला हो जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व ·९१५ से ·९३१ तक है। महाद्वीपमें यह पेण्ट ऑयलके रूपमें और मृदु साबुन बनानेके लिए प्रयुक्त होता है।

प्रभाव

पौधेका प्रत्येक भाग विषैला, मादक, उत्तेजक, वाजीकर और शामक है। सामान्य मात्रामें प्रारम्भमें उत्तेजक और वाजीकर है, कुछ काल बाद शामक है। भाँग थोड़ी मात्रामें अग्निदीपक और क्षुधावर्धक है। भारी होनेसे अहिफेनके समान अतिसार और प्रवाहिकाहर है, परन्तु मलबन्धक नहीं है। इसमें मूत्रल गुण भी है। वातनाड़ियोंपर भी इसका प्रभाव पड़ता है। संज्ञावाहिनियोंके निःसंज्ञ हो जानेसे त्वचापर संज्ञा-नाशक प्रभाव होता है। शरीरके शूलको न्यून या बन्द कर देती है अतः शूलहर है। अहिफेन और धतूरेकी अपेक्षा इसमें यह गुण निर्बल है। माँसपेशियोंके तीव्र उद्वृत्त और आक्षेपको शान्त करती है जिससे आक्षेप रोग, हनुस्तंभा रोग तथा अन्य रोग शान्त होते हैं। अधिक मात्रामें यह आलस्य तथा निद्राजनक है। भाँगके पत्ते गण, पाचक, ग्राही और मादक समझे जाते हैं।

भाँगका विशेष प्रभाव मस्तिष्कपर होता है। थोड़ी मात्रामें हर्षजनक, मध्यम मात्रामें प्रलापक और अति-मात्रामें निद्राजनक है। स्पष्टीकरणके लिए इस प्रभावको निम्न तीन अवस्थाओंमें श्रेणीकरण किया जा सकता है—

प्रथमावस्था

भाँगखाने वालेको शारीरिक और मानसिक परिश्रम-का ज्ञान नहीं रहता। मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है। उसे एक विशेष प्रकारका हर्ष अनुभव होता है। वह बहुत प्रसन्नचित्त प्रतीत होता है। उसे समय और व्यक्तिका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रहता। थोड़ा समय अधिक प्रतीत होता है।

द्वितीयावस्था

भाँगकी मात्रा कुछ अधिक हो तो मादक प्रभाव होता है। अपने आपको आकाशमें उड़ता हुआ-सा अनुभव करता है। काल्पनिक बातोंको प्रत्यक्ष रूपमें अनुभव करता है। मैथुनकी उत्कट इच्छा होती है। क्षुधा बढ़ जाती है। स्वाभाविक मात्रासे अधिक खाता है। अनाकारण खूब हँसता है। उच्छृंखल होकर बोलता है।

तृतीयावस्था

ग्लानि अनुभव करता है। शरीरावयव शिथिल हो जाते हैं और निद्राभिभूत हो जाता है। निद्रान्तर शिरो-

गौरव, वेदना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन लक्षणों-से छुटकारा पानेकी इच्छासे और फिर पहले जैसा आनन्द और उत्तेजना पानेकी आकांक्षासे वह फिर-फिर भाँगका प्रयोग करता है।

मात्रा

केन्नाबिनिन प्रबल शामक है, मात्रा—१ से ४ ग्रेन-तक। केन्नाबिनोनका प्रभाव भी शामक है, मात्रा $\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन तक। टोटेनो केन्नाबिनिन पूरा या पूर्ण शूलघ्न और निद्राकारक है, मात्रा—४ से ८ ग्रेनतक। चरस शूलघ्न, मादक और वाजीकर है, मात्रा—$\frac{1}{8}$ से २ ग्रेनतक। गाँजा, मात्रा १ से ४ ग्रेन तक। भाँगपत्र, मात्रा—४ रत्तीसे २ माशेतक। भाँगके बीज, मात्रा—१ से २ रत्तीतक।

गुण

रस-तिक्त, गुण, बलरुक्ष, वीर्य-रुक्ष, पाक-कटु, दोष-वात-कफहर।

भाँग

भङ्गा कफहरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः।
तीक्ष्णोष्ण पित्तला मोहमदवाग्वह्निवर्द्धिनी॥
(भावप्रकाश)

गाँजा

आग्नेयी हर्षिणी बल्या मन्मथोद्दीपनी चला।
निद्रासंजननी गर्भपातिनी च विकाशिनी॥
वेदनाक्षेप हरिणी हेमा च मदकारिणी।
(आत्रेय संहिता)

धूम्र पानेके लिए प्रयोग

भाँग और उससे बने योग नशेके प्रयोजनके लिए भारतवर्षमें दो भिन्न-भिन्न विधियाँ—धूम्रपान तथा मन्तः प्रयोग—प्रयुक्त होती हैं। मादकताके लिए निम्न रूपोंमें भाँग व्यवहारमें लाई जाती है—

गाँजा

हिंदुस्तानी, मराठी, बँगला और पंजाबी भाषाओंमें इसे गाँजा कहते हैं। कृषि की जानेवाली मादा भाँगके रेज़िनसे युक्त शुष्क, अगर्भित, पूरे हरे-से-पुष्प-मंजरि-शिखर गाँजा कहलाते हैं। गाँजेमें नशीला तत्व अगर्भित फूलोंके कारण होता है। यदि फूल गर्भित हो जायँ तो यह गुण सर्वथा जाता रहता है। यह भी कहा जाता है कि यह एक विशेष प्रकारके जंगली पौधेसे तैयार किया जाता है जिसे गाँजेका पौधा कहते हैं; परंतु यह संदेहास्पद है। गाँजेका रंग जंगका सा-हरा होता है। इसमें अपनी एक विशेष गंध होती है।

गाँजेका धूम्रपान—जितना गाँजा बनाया जाता है उसका अधिकांश भाग धूम्रपान करनेमें व्यय होता है। यद्यपि थोड़ा-सा भाग भारतवर्षके कुछ भागोंमें अन्तः-प्रयोग द्वारा भी लिया जाता है यथा पुरी और मद्रासमें धूम्रपानके लिए ओषधि तैयार करनेकी विधि सुगम है। बूटीकी थोड़ी-सी मात्रा—लगभग १ से २ रुपयाभर तक—और थोड़ा-सा सूखा तम्बाकू लेकर उसमें ज़रा-सा पानी मिला गीला कर लिया जाता है। इस गीली बूटीको बाएँ हाथकी हथेलीपर रखकर दाएँ हाथके अँगूठेसे कुछ देरके लिए मसलते हैं कि पूरी चिपचिपी लेसदार हो जाय। अब चिलममें थोड़ा-सा तम्बाकू रक्खा जाता है, फिर तैयार की हुई बूटीकी एक तह, इसके ऊपर थोड़ा और तम्बाकू और सबसे ऊपर भाँग। प्रायः चार या पाँच आदमी इसे पीनेके लिए इकट्ठा बैठते हैं। हुक्का या चिलम चक्करमें रहती है और हर एक आदमी केवल एक घूँट लगाता है। साधारणतया नशा शीघ्र ही चढ़ जाता है—नये और अनभ्यस्त आदमीको आधे घण्टेके अन्दर और इसके अभ्यस्त आदमियों-को ४ या ५ दमके बाद। कइयोंके मतमें गाँजेका मादक गुण उसको मसलनेमें लगाए गए समयपर निर्भर होता है। वह जितना मसला जाय उतना ही अधिक नशीला हो जाता है। इसके प्रभाव सिद्धिसे उत्पन्न होनेवाले प्रभावोंसे भिन्न हैं—भारीपन, आलस्य और बड़े-बड़े मनसूबे बाँधना आदि। परंतु ज़ोरसे चिल्लानेसे मनुष्य शीघ्र ही उठाया जा सकता है और उसका नैत्यिक कार्य करवाया जा सकता है।

साधु, जोगी, वैरागी, मुसलमान फ़कीर, और भिखारियोंमें गाँजेका अधिक प्रचार है। निर्धन और नीच श्रेणीके लोग जैसे घसियारे, सईस, भंगी, जुलाहे, मज़दूर आदि इसे पीते हैं। लुटेरे इसे भोले-भाले अनजान मनुष्योंको पिला देते हैं जिससे गाँजा पीनेवालेकी चेतना लुप्त हो जाती है और इस अवस्थामें ये लोग उस आदमी-के धन, गहने, कपड़े आदि उतार ले जाते हैं। इस प्रयोजनके लिए गाँजेके साथ काले धतूरेके बीज और खाँड़ भी मिला दी जाती है जिससे यह मीठा ठंढा स्वादिष्ट पेय बन जाता है और लूटे जानेवाले मनुष्य पी जाते हैं।

चरस

गहरे हरे या भूरे रंगका होता है। पृथक् किये गये भाँगके क्रियाशील तत्व (और सदृश पदार्थ) का नाम चरस है। पत्ते, तने और फलोंपर यह प्राकृतिक रूप-में निकलता है। यह वास्तवमें भाँगकी पत्तियों, शाखाओं और पुष्पित शिखरोंसे निकला हुआ इकट्ठा किया गया गोंद है या चिपचिपी लेसदार बनाई हुई भागकी मंजरी है। ६००० से ८००० फ़ीट तक ऊँचे पर्वतोंपर उगनेवाले पौधोंपर ही निकलता है। यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि चरस मैदानोंमें भी तैयार किया जाता है या नहीं। यह तीव्र मादक है और तम्बाकूके साथ पिया जाता है। चरस तैयार करनेके भिन्न-भिन्न तरीके हमारे देशमें प्रचलित हैं। किसी-किसी स्थानपर चमड़ेके कपड़े पहनकर भाँगके खेतोंमें प्रातःकाल ही सूर्योदयसे कुछ देर बाद, जब कि पौधोंपर ओसकी कुछ बूँदें पड़ी रहती हैं, पौधोंको थोड़ा मसल और कुचल देते हैं। इस प्रकार जो गोंद सदृश पदार्थ पौधेपर चिपक जाता है, खुरच लिया जाता है, और यह व्यापारिक गाँजा बन जाता है। कुल्लू और पहाड़ी राज्योंमें फूलों के सिरे हाथ मसल दिये जाते हैं और संचित से रेज़िन खुरच लिया जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि पौधोंको पैरोंसे कुचलकर भी यह कार्य किया जाता है। कभी-कभी फूली हुई डालियाँ कपड़ेके ऊपर रखकर खपचीसे केवल पीटी ही जाती हैं और चूरा-सा सफ़ेद रंगका गिरा हुआ चूर्ण इकट्ठा कर लिया जाता है।

यारकन्दमें भाँग खूब उपजती है और कहा जाता है कि बोखारा और तुर्किस्तानके अन्य स्थानोंमें भी बड़े परिमाणमें इसकी खेतीकी जाती है। बहुत वर्ष बीते, रूसियोंने अपने राज्यमें इसकी खेती करनेकी मनाही कर दी थी, इसलिए रूसमें लगभग सम्पूर्ण आयात यारकंद राज्यसे ही होता था। भारतमें जितना चरस बाहरसे आता है सब कश्मीरकी रियासत लेहसे आता है और कुछ राशि कुल्लूसे भी आती है। लेहमें चरसको इकट्ठा करनेके लिए एक विभाग भी स्थापित हो गया है। कर-विभागके अनुमानके अनुसार १८९२-९२ में कुल भारतमें आई हुई चरसकी राशि ४००० मन है, परंतु अन्य वर्षोंके आँकड़ोंको देखनेसे यह वर्ष अपवाद रूप ही है। साधारणतया ३००० से ४००० मन तक प्रतिवर्ष भारतवर्षमें बाहरसे आता है। इसके परिणाममें पिछले वर्षोंसे पर्याप्त कमी हो रही है।

अन्तःप्रयोगके लिए योग

भाँग—पौधेकी सूखी पत्तियोंको भाँग, सिद्धि या पत्ती कहते हैं, चाहे यह कृषि की हुई हो या जंगलमें उगनेवाली। इसमें मादक गुण तबतक अच्छा नहीं आता जबतक कि बीज परिपक्व न हो जाएँ। इसलिए बीज पकनेपर ही पत्तियोंको तोड़ना चाहिए। कभी-कभी गीली पत्तियोंके साथ स्त्री पुष्पोंके शिखर मिला देनेसे बने योगके लिए भी भाँग शब्द प्रयुक्त होता है। पत्तियाँ सूखी या गीली कैसी भी हो सकती हैं। यह भी सम्भव है कि पुरुष पुष्पोंके सिरे भी मिला दिए जाते हों, क्योंकि भाँग तैयार करनेके तरीके इतने सुंदर और सुसंस्कृत नहीं हैं। पौधे को सुखाकर किसी कठोर साफ़ ज़मीन या लकड़ीके तख़्तेके ऊपर उसे छड़ियोंसे पीटकर पत्ते पृथक कर लिए जाते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि पत्तियोंकी अपेक्षा पुरुष पुष्प क्रियामें अधिक नशीले नहीं होते, स्त्री पुष्पोंके सिरे जैसे भी नहीं।

भाँग साधारणतया जंगलमें उगनेवाले पौधेसे तैयार की जाती है और थोड़ी मात्रामें कृषि किए गये पौधेसे भी बनाई जाती है। पौधा काटकर धूपमें और ओसमें सुखाया जाता है। जब पत्तियाँ सूख जाती हैं तो दबा-कर मट्टीके बर्तनोंमें भर ली जाती हैं। गाँजा तैयार करनेके बाद बचे हुए रद्दीमालको भी कई बार भाँग कहा जाता है।

भाँग तैयार करनेके लिए पत्तियोंको इकट्ठा करनेका समय भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न होता है। परंतु सामान्यतया कम ऊँचे स्थानोंपर समय मई और जून तथा अधिक ऊँचे स्थानोंपर जून और जुलाई है। किन्हीं-किन्हीं स्थानोंकी भाँग दूसरे स्थानोंकी भाँगसे अधिक बढ़िया समझी जाती है। कृषि किए हुए पौधेसे अधिक बढ़िया किस्मकी भाँग निकलती है यह कहना कठिन है।

सेवन विधि—लगभग ३ तोला पत्तोंको शीतल जल-से अच्छी तरह धोकर साफ़ कर लें। फिर इसको समान भाग काली मिर्च, शुष्क गुलाब पुष्प दल, पोस्तके बीज, बादाम, इलायची, खीरा खरबूजा और तरबूजके बीजोंके साथ, घोट छानकर खाँड़, १ ½ पाव दूध और समान परिभागमें जल मिला लें। अभ्यस्त मनुष्यको नशा पैदा करनेके लिए यह काफ़ी है। अनभ्यस्त नये आदमीके लिए ½ से ¾ पावतकके-परिमाणमें पर्याप्त है। इस पेयसे उत्पन्न नशेमें आदमी गाता है, नाचता है, भोजन बड़ा स्वाद लेकर और प्रसन्नतासे खाता है और कामेच्छा पूर्तिके उपाय ढूंढता है। नींद आ जाती है और नशा लगभग २ घण्टेतक रहता है। जी मचलाना या कोई पेटकी शिकायत नहीं होती है। आँतोंमें भी किसी प्रकार-का विकार उत्पन्न नहीं होता। अगले दिन मामूली-सा कुछ सिर घूमना और आँखोंके लाल होनेके सिवाय कोई अन्य विशेष लक्षण नहीं होते।

माजूम या विजयावलेह

यह भाँग, गाँजा, चरस, अहिफेन, पोस्तके बीज, धतूरपत्र और बीज, लवंग, पिस्ता, सौंफ, जीरा, खाँड़, मक्खन, आटा, दूध, इलायची वंशलोचन और घीमें बनाया जाता है: मात्रा—½ से १ ड्रामतक नये-नये आरम्भ करनेवालेको १ ड्रामसे नशीला प्रभाव होता है। जो इसके प्रयोग करनेका आदी है उसे ३ ड्रामकी आवश्य-कता होती है। स्वाद मीठा और गंध बहुत दिलपसंद होती है। कभी-कभी यदि ग्राहक आवश्यकता अनुभव करे तो धतूरेके पत्ते तथा बीज और मिला दिए जाते हैं, परंतु कुचला कभी नहीं। खानेवालेपर इसका प्रभाव बहुत मनोरंजक होता है—अत्यन्त प्रसन्नता, दिमाग़में किसी एक विचारका देरतक रहना, भावुकता, ऊँची उड़ानें लेना, उड़ता हुआ अनुभव करना, खानेकी अत्यन्त प्रबल इच्छा और उत्कट कामेच्छा।

एशिया और अफ्रीकामें मादकताके लिए भाँग-का प्रयोग सब स्थानोंपर होता है। मिश्रदेशके निवासी आजकल भाँगसे तैयार किये हुए एक पदार्थ हशीश-को पीते हैं। उत्तरीय अफ्रीकामें चिपोलीसे मॉरॉको तक इसका काफी प्रयोग होता है। इन भागोंमें यह अफ़ीमसे अच्छी समझी जाती है। सारा अलजीरिया हशीश पीनेवालोंसे भरा पड़ा है। ऊँट और गधे हाँकनेवाले जैसे निर्धन लोगोंमें यह अधिक प्रचलित है। अफ्रीकाके पश्चिमी तटपर इसके पीनेके अधिक शौकीन पृथक्कृत प्रदेशोंमें हैं। परन्तु साइबेरियामें रहनेवाले कांगो नीग्रोमें इसे पीनेकी आदत और भी विकट रूपमें विद्यमान है। वे इसकी खेती करते हैं और सूखी या ताज़ी पत्तीको ही चिलममें रखकर उसके ऊपर जलते कोयले डालकर पीते हैं। लोएङ्गो तटकी ओर भाँग पत्तों और बीजोंके रूपमें हुक्केमें रखकर पीई जाती है। आगे दक्षिणमें दक्षिण अफ्रीकाके आदिम निवासियों, ऑस्ट्रेलियाके मूल निवासियों और काफ़िरोंमें भाँग पीना एक प्रचलित रिवाज़ है। यह तम्बाकू-के साथ या अकेली ही पीई जाती है। झीलोंके बीचके प्रदेशोंको छोड़कर पूर्वीय अफ्रीकामें भाँगकी चिलम पीनेका बड़ा रिवाज़ है। ये लोग अपने आप पैदा की हुई भाँग पीते हैं।

टर्कीमें भाँगकी खेती अच्छी उन्नतावस्थामें थी, परंतु पिछली शताब्दीसे बन्द हो गई है। फिर भी इसका

गुप्त रीतिसे प्रयोग बन्द नहीं हुआ। भाँगका एक योग एसरार तम्बाकूके साथ पीया जाता है। भाँग कुछ रूपोंमें चबाई भी जाती है। सीरियामें भाँगकी कृषि की जाती है और रेजिन सावधानीसे इकट्ठा किया जाता है। दमिश्क और पर्शियामें बहुत-से ऐसे मठ हैं जहाँ अफ़ीम और हशीश पीई जाती हैं। उज़्बेक और तातार लोगभी भाँग पीनेके आदी हैं।

भारतवर्षमें भाँगका प्रयोग सब जगह होता है। बंगाल और बिहारमें गाँजा बहुत अधिक पीया जाता है और भाँगका थोड़ी मात्रामें प्रयोग होता है। संयुक्त-प्रान्तमें गाँजा, चरस और भाँग ये सब बहुत अधिक प्रयुक्त होते हैं; पंजाबमें भी इसके पीनेका रिवाज़ है। सिंधमें भाँग अधिक मात्रामें पीई जाती है और गाँजा तथा चरस इससे कम। बम्बई, मद्रास और संयुक्त-प्रान्तमें गाँजा अधिक मात्रामें काममें लाया जाता है, भाँग कुछ कम मात्रामें और चरस बहुत कम। कुछ भागोंने भाँगका उपयोग धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाज़-के तौरपर किया जाता है। भारतका हेम्प ड्रग कमीशन इस परिणामपर पहुँचा है कि भाँगका परमित मात्रामें प्रयोग विशेष शारीरिक हानि नहीं करता। थोड़ी मात्रामें भाँग पीनेसे मस्तिष्कपर बुरा प्रभाव नहीं होता। कमीशनके विचारके अनुसार इसका पीरमित प्रयोग कोई नैतिक हानि नहीं करता। इस बातका कोई प्रमाण नहीं कि इसके पीनेवालेके आचरणपर इसका बुरा असर हुआ हो। अत्याधिक मात्रामें प्रयोग शारीरिक और मानसिक दोनों तरहकी हानियाँ करता है और नैतिक दुर्बलता भी पैदा करता है। अत्याधिक प्रयोगसे पहले आत्म-सम्मानका नाश और इस प्रकार नैतिक पतनकी ओर प्रवृत्ति होती है।

चिकित्सोपयोग

हकीम और वैद्य लोग भाँग और गाँजेको आँतों-की शिकायतोंमें देते हैं। क्षुधावर्धक रूपमें और नाड़ी-मण्डलको उत्तेजक करनेके रूपमें भी इसका प्रयोग होता है। इसके लेनेसे कठिन परिश्रम या थकावटके कार्य-को देरतक करनेकी शक्ति आती है। मस्तिष्क साफ़ करनेके लिए पत्ते उत्तम नशाका काम करते हैं। लीख और जुएँ मारनेके लिए इनको सिरपर लगाया जाता है। कर्णशूलमें गरम रस कानमें डालनेसे वेदना शान्त होती है और कृमियोंको मारता है। रस अतिसार और पूयमेहके स्रावोंको रोकता है, क्षुधा बढ़ाता है। अतिसम्र और शूल शान्त करता है। अन्त:प्रयोगमें पत्तोंका चूर्ण ४० ग्रेनकी मात्रामें दिया जाता है। चिर-स्थायी उदर शूलोंमें विजयके योग बहुत लाभदायक हैं। ताज़े व्रणोंपर पत्र चूर्ण का प्रयोग माँसांकुरोत्पत्ति-को बढ़ाता है। संपूर्ण पौधे या पत्तोंकी गरम पोल्टिस स्थानिक शोथ, विसर्प, वातनाड़ीशूल, रक्तार्श आदि-पर शूलहर और शामक रूपमें लगानेसे लाभ होता है। भाँग और खुरासानी अजवायनका धुआँ भी दिया जाता है। नेत्रशोथपर विजयाका गरम कल्क बाँधते हैं। अंडशोथमें शोफ़ और वेदनाको हटानेके लिए इसका प्रयोग होता है।

निद्रानाशमें चरसका प्रयोग नींद लानेके लिए किया जाता है। पाँवपर इसके कल्क या इसके बनाए घृतके लेप करनेसे भी निद्रा आती है। काली खाँसी, वातिक कास तथा श्वास रोगमें ½ से २ ग्रेन-तककी मात्रामें धतूरा या जायफलादिके साथ देनेसे उनके दौरे घट जाते हैं। बैलेडोनाके साथ मिलाकर यह कूकर खाँसी, बच्चोंके आक्षेप रोगी यकृत्, वृक्कशूल, हनुस्तम्भ और जललासमें दिया जाता है। धनुस्तंभमें इसका धुआँ पिलानेसे आक्षेप धीरे-धीरे कम हो जाते हैं। आक्षेप-काल कम हो जाता है। धीरे-धीरे आक्षेपोंके बीचका अंतर लंबा हो जाता है। उनकी तीव्रता कम हो जाती है। कुछ काल सेवन करनेसे रोग मुक्त हो जाता है। मूत्र कम आता हो तो इसके मूत्रल प्रभावके कारण लाभ होता है। कष्टार्तव और रक्तप्रदरके दर्दोंको हटाता है। क्षुधाको बढ़ाता है, अहिफेनके समान यह क्षुधानाश या मलबंध नहीं करता।

श्वास और हनुस्तंभमें भाँगसतकी मात्रा १/२ से २ ग्रेनतक है। चूर्णित पत्रमें खाँड़ मिलाकर घीमें भून लिया जाता है और काली मिर्च मिलाकर पुरातन अतिसार-में दिया जाता है। प्रवाहिकामें भाँगका सत पोस्त बीजके साथ और योषापस्मारमें हिंगुके साथ दिया जाता है। प्रवाहिकामें कोमल पत्तोंका १/२ ड्राम शुष्क चूर्ण थोड़ी-सी खाँड़ और काली मिर्चके साथ मिलाकर देना एक प्रसिद्ध और उत्तम औषध है। तीव्र प्रवाहिकामें भाँगका मद्यासव (टिकचर) १५ से २० बूँदोंकी मात्रामें दिनमें तीन बार दिया जाता है। पुरातन उदरशूलमें १/५ ग्रेन इपिकाकनाके साथ १ ग्रेन भाँग-सत मिलाकर देनेसे आश्चर्य-जनक प्रभाव होता है। बीजोंसे निकाले हुए तैलकी आमवातमें मालिशकी जाती है।

प्राचीन हिंदु-चिकित्सा शास्त्रोंमें भाँगका व्यवहार कामोत्तेजनाके लिए किया गया है। क्लीव रोग, शुक्र सम्बंधी निर्बलता तथा कामोत्तेजनाके लिए भाँगकी भिन्न-भिन्न मोदकों और अवलेहोंके रूपमें सिफ़ारिश की है। ये रसायन समझे जाते हैं और आँतोंकी पुरानी शिकायतों और पतिक निर्बलताओंके लिए लाभकारी होते हैं। इन्हें बनानेकी सामान्य विधि इस प्रकार है,—कुछ वृष्य ओषधियाँ समान भागमें, थोड़ी मात्रामें वृश्य द्रव्य और अन्य सब द्रव्योंके समान परिमाणमें भाँग, इनमें सामान्य सुगंधित और पाचक द्रव्य, खांड़ और शहद मिलाकर विधिपूर्वक मोदक या अवलेह बनाए जाते हैं। ये प्राया: रातको दूधसे ५, ६ माशेकी मात्रामें लिए जाते हैं।

विष लक्षण

भाँगकी अधिक मात्रा खाई जाय तो रोगीका शरीर शिथिल हो जाता है और वह बेहोश अवस्थामें पड़ा रहता है। इन लक्षणोंको दूर करनेके लिए नीबू या इमलीका रस तथा अन्य वानस्पतिक खटाईका प्रयोग करना चाहिए। दही या लस्सीका प्रयोग भी लाभकारी है। नींद आ जानेसे भी नशा उतर जाता है। बेहोशीमें अमोनिया सुँघाएँ। कारस्कर, स्ट्रिकनीन आदि उत्तेजक औषधें हैं। वमन भी हितकर है।

स्व० लार्ड रथरफोर्ड

अकस्मात, यह समाचार मिला है कि जगत, प्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड रथरफोर्ड की मृत्यु १९ अक्टूबर १९३७ को हो गई। जनवरी १९३८ में होनेवाली इण्डियन सायंस काँग्रेस की जुबली के आप सभापति मनोनीत हुए थे। ऐसे अवसरपर आपकी मृत्यु का होना हमारे लिए और भी शोक का कारण है। इस अवसरपर हम समवेदना प्रकट करते हैं।

बिजलीके टेबिल-लैंप

एक सालसे ऊपर हुआ विज्ञानमें बिजलीके टेबिल-लैम्पका एक डिज़ाइन दिया गया था। उससे भी सुंदर डिज़ाइन यहाँ दिया जाता है। चित्रमें दो टेबिल-लैम्प दिखलाए गये हैं। उनके पाये खरादे हुए हैं। चित्रके देखते ही उनके खरादनेकी रीतिका पता लग जायगा। उनपर जो शेड लगा है वह दो प्रकारसे बनाया जा सकता है। एक तो तम्बूनुमा और दूसरा चौकोर। तम्बूनुमा शेड बनानेके लिए प्लाईवुडके चार टुकड़े काटने चाहिए। इनमें की हुई झँझरियोंका आकार चित्र १ से स्पष्ट हो जायगा। लकड़ीपर एक-एक इंचके वर्ग खींचकर चित्र १ की सहायतासे झँझरियोंका चित्र लकड़ीपर उतार लेना चाहिए और तब उसे फ्रेट-सॉसे काट डालना चाहिए। सरेससे इनको जोड़कर और मज़बूतीके लिए कोनोंपर मोटी लकड़ी सरेससे चिपकाकर शेड तैयार करना चाहिए। बारीक कील ठोंक देनेसे शेड और भी मज़बूत हो जायगा। शेडके भीतर हरा अर्धपारदर्शक काग़ज़ लगा देना चाहिए। बत्तीके जलनेपर शेड बहुत ही सुंदर जान पड़ेगा। शेडको बत्तीके ऊपर लगानेकी रीति चित्र २ में दिखाई गई है। शेडके चारों पल्ले सिरेके पास एक चौखूटी लकड़ीपर जड़े हुए हैं जैसा चित्र २ में गोलेसे घिरा हुआ दिखाया गया है। इस चौखूटी लकड़ीमें एक गोल छेद कटा रहता है। इसे शेड-होल्डरके ऊपर रखकर होल्डरकी घुंडी कस दी जाती है। इस तरहका शेड-होल्डर बाज़ारमें बना-बनाया बिकता है। शेड-होल्डर स्वयम् लैम्प-होल्डरपर चूड़ीसे कस दिया जाता है। लैम्प-होल्डर स्विचवाला हो जिससे लैम्प आसानीसे जलाया-बुझाया जा सके।
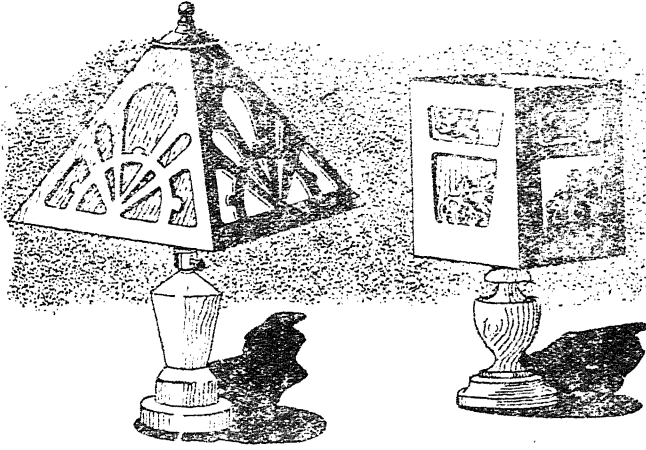
चौकोर लैम्प-होल्डर

चौकोर लैम्प-होल्डर बनानेके लिए प्लाईवुडके चार टुकड़े लेने चाहिए। ये क़रीब १४″ × १८″ के हों। इन-

पर झँझरी काटनेके लिए फूलोंका नकशा चित्र ३ की सहायतासे लकड़ीपर उतारा जा सकता है। चारों लकड़ियोंके जोड़नेसे नीचे ऊपर दोनों ओर खुला हुआ ढाँचा बन जायगा। लैम्पको ऊपर लगानेके लिए बीचमें एक लकड़ी लगाई जाती है।

इस लकड़ीमें इतना बड़ा छेद कटा रहता है कि यह लैम्प-होल्डरपर पहनाकर चूड़ीसे कस दिया जा सके। इसके बनाने और जड़नेकी रीति चित्र ४ में दिखलाई गई है। सुविधाके ख़्यालसे अगल-बगलकी लकड़ियाँ पूरी नहीं दिखलाई गई हैं। इस लैम्पमें भी रंगीन पारदर्शक काग़ज़ भीतर चिपका देनेसे शेड बहुत सुंदर लगेगा।

गोलेमें शेड-होल्डरके सिरेके बनानेकी रीति स्पष्ट रूपसे दिखलाई गई है।
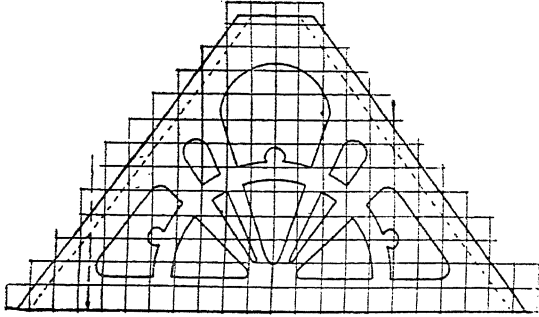
चित्र १—तम्बूके शेडका एक परला।
प्रत्येक वर्गको एक इंचका बनाकर झँझरी और परला काटनेसे पूरे नापका परला तैयार हो जायगा।
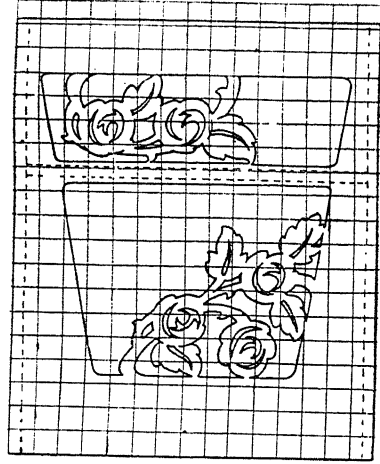
चित्र ३—चौकोर शेडपर झँझरी काटनेका चित्र—प्रत्येक वर्गको लकड़ीपर एक इंचका बनाना चाहिए।

चित्र २—पायेपर लैम्प-होल्डर, उसपर शेड-होल्डर और शेड-होल्डरपर शेड लगानेकी रीति।
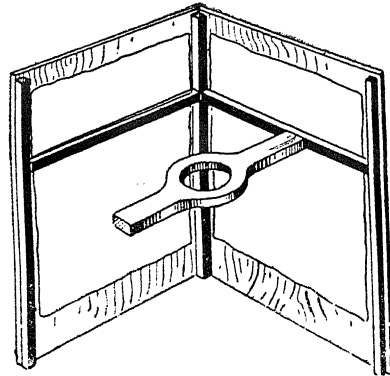
चित्र ४—चौकोर शेडको लैम्प-होल्डरपर लगानेके लिए बीचमें एक गोल छेदवाली लकड़ी लगाई जाती है।

मेले-तमाशेमें फ़ोटोग्राफ़ीसे पैसा कमाना

मेले-तमाशेमें फ़ोटोग्राफ़ीसे पैसा कमानेके लिए यह ज़रूरी है कि फ़ोटो बात-की-बातमें तैयार हो जाय। इसके लिए चित्रमें दिखलाई गई रीतिसे कैमरा बनाना चाहिए। इस यंत्रमें साधारण कैमरेके पीछे एक बक्स जोड़ दिया जाता है। वस्तुत: यह अँधेरी कोठरीका काम करता है। इस बक्सके ऊपर चित्रमें जो पीछेकी ओर एक नली दिखलाई गई है उसीमें आँख लगाकर देखा जाता है कि बक्सके भीतर चित्र पूरा डेवलप हो गया है या नहीं। इस नलीमें नारंगी रंगका शीशा लगा रहता है जिससे भीतर सफ़ेद रोशनी पहुँचकर ब्रोमाइड पोस्टकार्डको ख़राब न कर सके। नलीके पास ही एक ढक्कन रक्खा हुआ दिखलाया गया है। जब नलीपर आँख न लगाई जाय तो नलीको ढकनेसे बंद कर देना चाहिए जिससे बेमतलब बहुत देरतक ब्रोमाइड पोस्कार्डपर नारंगी प्रकाश न पड़ने पाये क्योंकि इससे ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर धुंध उत्पन्न हो जानेका डर रहता है।

पीछेकी ओर जो काली झोली लटक रही है उसीमें-से हाथ डालकर ब्रोमाइड पोस्टकार्ड डेवलप किया जाता है या वह कैमरेके पीछे लगाया जाता है। झोलेके सिरेपर नेफ़ा बनाकर उसमें रबड़का नारा छोड़ देना चाहिए जिससे झोलेका सिरा हाथपर चिपककर बैठ जाए और अंदर रोशनी न जा सके। हाथ छोड़ते समय झोलेको एक बग़ल इस तरह खींच रखना चाहिए कि हाथ छोड़ते समय इसके भीतर सफ़ेद रोशनी न घुस सके। बक्स-की एक बग़लमें जो तिकौना निकला हुआ भाग दिखलाया गया है उसपर गहरे नारंगी या लाल रंगका शीशा लगा रहता है। इससे बक्सके भीतर काफ़ी रोशनी जाती है जिससे पता चलता है कि ब्रोमाइड पोस्टकार्ड ठीक डेवलप हो रहा है या नहीं। यह भाग हिंजेज़से जड़ा रहे और जब लाल प्रकाशकी ज़रूरत न रहे तो इसे भीतर ढकेलकर बंद कर देना चाहिए जिससे बेमतलब बहुत देरतक प्रकाश भीतर न घुसने पाये। जोड़ोंपर काला चमड़ा इस प्रकारसे जड़ा रहना चाहिए कि कहींसे भी सफ़ेद रोशनी भीतर न घुसने पाये। ऐसा भी किया जा सकता है कि बंद होने और खुलनेवाले तिकौने मुँहके बदले एक साधारण खिड़की लगी रहे जिसमें गहरे नारंगी या लाल रंगका शीशा जड़ा रहे और इसपर कोई ढकना लगा रहे जो ज़रूरत पड़नेपर खोला या बंद कर दिया जा सके। इस बड़ी खिड़कीके उपर एक छोटा-सा दूसरा रोशनदान लगा रहता है जिसमें हलके नारंगी रंगका शीशा लगा रहता है। इसके द्वारा इतनी तेज़ रोशनी भीतर जाती है कि यदि रोशनी सूखे ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर दो-चार सेकिंडसे अधिक देरतक या गीले ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर २० सेकिंडसे अधिक देरतक पड़े तो ब्रोमाइड पोस्टकार्ड काला हो जायगा। इसपर भी ढक्कन लगा रहता है जिसे बराबर बंद रक्खा जाता है। केवल जब ब्रोमाइड पोस्टकार्ड क़रीब-क़रीब पूरा डेवलप हो जाता है तो क्षणभरके लिए इसके ढक्कनको खोलकर भीतर तेज़ रोशनी जाने दी जा सकती है जिससे ख़ूब अच्छी तरह

देखा जा सके कि ब्रोमाइड पोस्टकार्ड पूरा डेवलप हो गया कि नहीं। इसे कभी भी एक आध सेकिंडसे अधिक देरतक नहीं खोलना चाहिए और इसका ख़्याल रखना चाहिए कि बाक़ी सब ब्रोमाइड पोस्टकार्ड प्रकाशसे सुरक्षित रक्खे रहें जिससे उन-पर यह तेज़ रोशनी न पड़ने पाये। बक्सके अगले सिरेपर व्यूफ़ाइंडर लगा हुआ है। बक्स-की पेंदीमें एक लम्बी लकड़ी पट पड़ी रहती है।
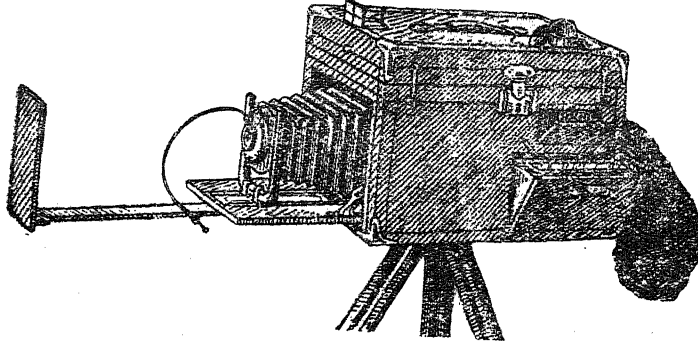
अँधेरी कोठरीयुक्त कैमरा

इसके सिरेपर एक दूसरी लकड़ी खड़ी जड़ी रहती है। इस खड़ी लकड़ीपर ब्रोमाइड पोस्टकार्ड आलपीन-से या कमानीसे लगा देनेपर कैमरेसे इसकी नक़ल उतारी जाती है। कैमरेकी पीठसे इस खड़ी लकड़ीकी दूरी इतनी होनी चाहिए कि बराबर नापका चित्र उतर सके। इसके लिए पीठ और इस खड़ी लकड़ीकी दूरीको लेंसकी फ़ोकल लम्बाईका चौगुना होना चाहिए। ऐसा भी प्रबंध होना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने-पर (और इसकी आवश्यकता बार-बार पड़ेगी) यह पट लकड़ी नीचे गिरा दी जा सके।

प्रयोग-विधि

इस कैमरेसे चित्र लेनेकी रीति यह है कि पहले कैमरेकी पीठमें एक ब्रोमाइड पोस्टकार्ड लगा दिया जाय। फिर लेंसको पीठसे इतनी दूरीपर ला दिया जाय कि चार फ़ुट या अन्य किसी दूरीपर स्थित मनुष्यका चित्र ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर ठीक फ़ोकसमें रहे। मनुष्यको उचित दूरीपर खड़ा करके अब प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र) देना चाहिए। यह ब्रोमाइड पोस्टकार्डकी तेज़ी और लेंसके अपरचर (लेंस-छेद) के ऊपर निर्भर है। बाज़ कारख़ानेवाले नेगेटिव खींचनेके लिए विशेष ब्रोमाइड पोस्टकार्ड बनाते हैं जो प्रायः उतने ही तेज़ होते हैं जितने कि स्पेशल रैपिड प्लेट। परन्तु यदि साधारण ब्रोमाइड पोस्टकार्डोंका प्रयोग किया जाय तो भी बहुत प्रकाश-दर्शन नहीं देना होगा विशेषकर यदि लेंस काफ़ी तेज़ हो। पहली बारके लिए खुले मैदानमें परंतु सायेमें खड़े हुये आदमीके लिए फ़/८ पर ½ सेकिंडका प्रकाश-दर्शन देकर जाँच करनी चाहिए (यह मान लिया गया है कि आकाशमें बादल नहीं हैं और समय ६ बजे सबेरेसे ३ बजे शामके भीतर है। यदि बादल हों या बहुत सबेरे या शामको फ़ोटो खींचा जाय तो उसी हिसाबसे प्रकाश-दर्शन बढ़ा देना चाहिए)।

ब्रोमाइड पोस्टकार्डको कैमरेकी पीठपर लगानेकी सबसे सरल रीति यह है कि पीठपर स्वच्छ शीशा लगा दिया जाय और इसके पीछे कमानीदार काली मख़मल जड़ी हुई तख़्ती लगा दी जाय। तख़्तीको नीचे गिराकर उसपर ब्रोमाइड पोस्टकार्ड रखकर उसको ऊपर उठानेसे तख्ती शीशेपर कमानीके ज़ोरसे दब जायगी। प्रबंध ऐसा होना चाहिए कि कुल काम एक हाथसे हो सके। यदि कमानीदार तख्तीके बनानेमें कोई दिक़त मालूम हो तो इसे बिना कमानीके बनाना चाहिए। नीचेकी तरफ़ यह पीठपर क़बज़े (हिंजेज़) से जड़ी हो और उठानेके बाद ऊपरसे बिल्ली या चटकनीसे पीठपर कसकर चिपका दी जा सके। यह तख्ती इस प्रकार बनी हो कि प्रकाश-दर्शन देते समय कुछ भी प्रकाश तख्ती पारकर बक्सके भीतर न घुस सके।

बक्सके भीतर एक बग़लमें नये ब्रोमाइड पोस्टकार्डोंके रखनेके लिए जगह होनी चाहिए। बक्सका ऊपरी हिस्सा ढक्कनकी तरह बन्द होता है। अवश्य ही ढक्कनमें इस तरहकी कतरी कटी रहनी चाहिए कि जोड़से रोशनी भीतर न घुस सके।

प्रकाश-दर्शन देनेके बाद ब्रोमाइड पोस्टकार्डको बक्सके भीतर-ही-भीतर डेवलप करना चाहिए और ज़रा-से पानीसे धोकर हाइपोमें डाल देना चाहिए। हाइपोसे निकालकर और ज़रा-सा धोकर पोस्टकार्डको झोलेके रास्ते बाहर निकाल लेना चाहिए। इस ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर नेगेटिव चित्र उतरेगा अर्थात् कालेकी जगहपर सफ़ेद और सफ़ेदकी जगह काला रहेगा। इसकी नक़ल अब दूसरे ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर उतारनी चाहिए। इस दूसरे ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर साधारण चित्र अर्थात् कालेकी जगहपर काला और सफ़ेदकी जगहपर सफ़ेद होगा। नक़ल करनेके लिए नीचेवाली पट पटरीको ठीक स्थितिमें लाकर इसके सामने लगी हुई खड़ी पटरीको नेगेटिव ब्रोमाइड पोस्टकार्डपर लगा देना चाहिए; और लेंसको आगे खिसकाकर उस स्थिति-में ला देना चाहिए जिस स्थितिमें फ़ोकस ठीक रहे। इस दूसरे ब्रोमाइड पोस्टकार्डको भी पहलेकी तरह डेवलप और स्थाई करना चाहिए। परंतु इसे बाहर निकालनेके बाद कुछ अधिक समयतक धोना चाहिए। यदि कोई सहायक नौकर रख लिया जाय और ग्राहक कुछ समयतक इन्तज़ार कर सके तो दूसरे ब्रोमाइड पोस्टकार्डको कम-से-कम ५ मिनटतक धोना चाहिए।

इस रीतिमें प्रत्येक चित्रके लिए साधारणतया १० मिनट लगते हैं। परन्तु यदि बहुत जल्दी हो तो ५ मिनटमें भी चित्र तैयार किया जा सकता है।

समयका हिसाब

प्रकाश-दर्शन	१ सेकिंड
डेवलप करना	$\frac{1}{2}$ मिनट
स्थाई करना	”
धोना	”
नक़ल करना	”
दूसरा पोस्टकार्ड डेवलप करना	”
स्थाई करना	१ ”
धोना कम-से-कम	”
फुटकर	$\frac{1}{2}$ ”
कुल समय	५ मिनट

यदि दूसरे पोस्टकार्डको तीन मिनटतक स्थाई किया जाय और दस मिनटतक बहते पानीमें धोया जाय तो यह पोस्टकार्ड बीसों बरस चल सकेगा।

हाइपोके घोलमें थोड़ा-सा नौसादर मिलानेसे पोस्ट-कार्ड बहुत जल्द स्थाई होते हैं। नुसख़ा यह है।

हाइपो	२ छटाँक (पाव भर पानीमें)
नौसादार	$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ छटाँक तक (क़रीब छटाँकभर पानीमें)
पानी	१० छटाँक

आशा है पाठक यहाँ दिये गये चित्र और वर्णनसे ऐसा कैमरा आसानीसे बना सकेंगे। डेवलपर काफ़ी तेज़ बनाया जाय जिससे डेवलप करनेमें अधिक समय न लगे।

क्रेयन बनानेकी विधि

मोम (मधुमक्खीका)	१० भाग
तैल (तिलका)	१ भाग
तारपीनका तैल	१ भाग
ग्लिसरीन	$\frac{1}{4}$ भाग

आँच दिखाकर एक दिल करो। फिर सफेद (चीनी) मिट्टीमें काफ़ी रंग मिलाओ और उसमें मोम आदिका उपर्युक्त मिश्रण आवश्यकतानुसार डालकर खूब कड़ा सानो। यदि चीनी मिट्टी न मिले तो खड़िया या ह्वाइटिंग डालो। गाढ़े रंगोंके लिए इसके मिलानेकी आवश्यकता न पड़ेगी, केवल रंग डालना काफ़ी होगा। $\frac{1}{4}$ इंच या कुछ अधिक मोटी बत्ती बनाकर सूखने दो। क्रेयन तैयार हो जायगा।

रंगोंके लिए प्रशियन ब्लू, क्रोम-यैलो शिंगरफ आदि खनिज रंग उपयुक्त होंगे।

वार्षिक रिपोर्ट

१९३६-३७

विज्ञान परिषदको स्थापित हुए आज २४ वर्ष हुए और इसके मुखपत्र 'विज्ञान' का ४५ वाँ भाग अभी समाप्त हुआ है। हर्षकी बात है कि परिषदका कार्य सुचारु रूपसे इस वर्ष भी चलता रहा। 'विज्ञान' बराबर समयसे निकलता रहा। धनाभावके कारण इस वर्ष दो आयुर्वेदांकोंके अतिरिक्त अन्य कोई विशेषांक न निकल सका, परन्तु पिछले वर्षोंकी अपेक्षा इस वर्ष विज्ञान अधिक सज-धजके साथ निकला और चित्र भी अधिक रहे। लेखोंको अधिक सुपाठ्य और रोचक बनानेपर विशेष ध्यान दिया गया।

परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि विज्ञानकी ग्राहक-संख्या उतनी नहीं बढ़ी जितनी आशा की जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पुस्तकोंकी बिक्री, सदस्योंका चंदा और मकानका किराया—प्रायः सभी विज्ञानपर व्यय हो गया। नवीन पुस्तकके प्रकाशनमें हम विशेष सफल न हो सके। केवल विज्ञान-प्रवेशिका, जो बहुत दिनोंसे अप्राप्य हो गई थी फिरसे छापी जा सकी।

आगामी वर्षका एक मास भी अब प्रायः बीत गया है। हर्षकी बात है कि नवीन वर्षके प्रथम मासमें एक वस्तुतः उपयोगी विशेषांक हम निकाल सके हैं जिसमें फल-संरक्षणका पूर्ण विवरण है। हम इसको पुस्तकाकार भी छपा सके हैं। आशा की जाती है कि विषयके बहुत लोकप्रिय होनेके कारण इस पुस्तककी बिक्री अच्छी होगी।

हमने एक बड़े ग्रंथ छापनेकी योजना भी की है जिसमें विज्ञानके आकारके लगभग १००० पृष्ठ होंगे। इसमें प्रायः दस हज़ार नुसख़े, तरकीबें और हुनर रहेंगे। ऐसी पुस्तकें अँग्रेज़ी भाषामें तो कई एक हैं, परन्तु उनका मूल्य पचीस-तीस रुपये होता है और उनके नुसख़ोंमें बतलाये गये पदार्थ अकसर भारतवर्षमें नहीं मिलते हैं। आशा है कि हमारी पुस्तक केवल ६) में बिक सकेगी और भारतवर्षके लिए विशेष उपयोगी होगी। इसके लिखनेमें प्रसिद्ध लेखकों और विशेषज्ञोंकी सहायता हमको मिल रही है। साथ ही स्वामी हरिशरणानंदसे इस कामके लिए हमको ५००) की सहायता भी मिली है। अन्य ५ सज्जनोंने भी धनसे सहायता की है। फिर श्री निरंजनलाल भार्गवने अत्यन्त उदारतापूर्वक हमें १८५०) का काग़ज़ उधार दे दिया है। इस प्रकार हम आसानीसे कार्य आरम्भ कर सके हैं। आज १० फ़रमे छप भी गये हैं और इस महीनेके अंततक २ फ़रमे और भी छप जायँगे। परन्तु पुस्तकके समाप्त होनेमें अभी शायद दो वर्ष लग जायँ। तबतक इस पुस्तकके छापनेके लिए विशेष चंदा एकत्रित करनेकी चेष्टा की जा रही है। पूरी आशा है कि उदार हिंदी-प्रेमियोंसे इतनी सहायता अवश्य मिल जायगी कि पुस्तककी छपाईमें कोई रुकावट न पड़े।

परिषद् सरकारका बड़ा ऋणी है। सरकारसे हमको प्रतिवर्ष ६००) मिल जाता है। हम स्वामी हरिशरणानंदके प्रतिभी अत्यंत कृतज्ञ हैं जिनसे हमें प्रतिवर्ष कई सौ रुपये मिल जाया करते हैं। इस वर्ष उनसे हमको लगभग ८००) सहायताके रूपमें मिला। हम इंडियन प्रेस, हिन्दी प्रेस, रायसाहब रामदयाल अग्रवाल और मेसर्स रामनारायणलालके भी बहुत अनुग्रहीत हैं जिन्होंने क्रमानुसार हमारा कवर, विज्ञापन, लेटर-पेपर और गश्ती चिट्ठी और विज्ञानके रैपर मुफ्त छाप दिये हैं। इससे हमें लगभग १००) की बचत हो गई।

हम अपने लेखकोंके भी बड़े आभारी हैं जो बिना किसी प्रकारका पुरस्कार पाये बड़े परिश्रम तथा खोजके साथ लेख लिखा करते हैं।

हमारे अवैतनिक सम्पादक श्री रामदासजी गौड़के गत सितम्बरमें स्वर्गवास हो जानेके कारण हमें बड़ा धक्का लगा। उन्हींके कठिन परिश्रमसे विज्ञान इधर दिनों-दिन उन्नति कर रहा था। बीमारीके बढ़ते ही गौड़जी ने संपादनका भार मंत्रीको सौंप दिया था। यही कारण है कि विज्ञान पिछड़ने नहीं पाया।

इस वर्षमें तीन व्याख्यान हिंदीमें दिये गये जिनमें जनता प्रचुर संख्यामें आई और उसने व्याख्यानोंको खूब पसंद किया। डा० सत्यप्रकाशजीने 'रंग' पर, हमारे सभापति डा० बाह्ल महोदयने 'जीवनके रहस्य' पर, और डा० रामकुमार सक्सेनाने 'फूलके रहस्य' पर व्याख्यान दिया था।

गोरखप्रसाद

२१—१०—३७

वास्तु-विद्या

मकान बनानेमें कई बातोंपर ध्यान रखना पड़ता है। कुछ बातें साथमें दिये गये चित्रोंमें समझाई गई हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :—

दरवाजे

(१) पृष्ठ ८६ पर दरवाजे दिखलाये गये हैं। बाईं ओरका दरवाजा दिल्हेदार है अर्थात चौखटा बनाकर इसमें दूसरी लकड़ीके पटरे (दिल्हे) भरे गये हैं। चौखटे-की लकड़ी सागौनकी हो और दो इंच मोटी हो। दिल्हा ¾ इंच मोटा हो। शीशमके दिल्हेसे काम चल जायगा।

(२) दाहिनी ओर सस्ता दरवाजा दिखलाया गया है। आम या साखूके खड़े पल्लोंको जोड़कर उनपर तीन बेंड़ी लकड़ियाँ और दो तिरछी लकड़ियाँ कील या पेच-से जड़ दी जाती हैं। पल्ले एक इंच मोटे हों। उनपर जड़ी जानेवाली लकड़ियोंको अँग्रेज़ीमें बैटन कहते हैं इसीलिए ऐसे दरवाज़ेको बढ़ई लोग बटनडोर कहते हैं जो अँग्रेज़ी शब्द 'बैटन डोर' का अपभ्रंश है। ऐसे दरवाजे रसोई-घर भंडार-घर और नौकरोंके मकानोंमें लगानेके लिए अच्छे होते हैं।

(३) पृष्ठ ९० पर बाईं ओर दिल्हेदार दरवाजा दिखलाया गया है। परंतु इसमें ऊपरके दो खानोंमें शीशे लगे हैं।

(४) दाहिनी ओर पुराने देशी ढंगका दरवाजा दिखलाया गया है। यह बहुत मजबूत और काफी सुंदर होता है, परंतु भारी होता है। आमके एक या डेढ़ इंच मोटे पल्लेपर १½ इंच मोटा चौखटा कीलसे जड़कर दरवाजा तैयार किया जा सकता है कीलके सिरपर फुलिया लगी रहती है जिससे दरवाजा और भी सुंदर लगता है।

फाटक

(१) पृष्ठ ९१ में दो ढंगके फाटक दिखलाये गये हैं। ऊपर लोहेका फाटक दिखलाया गया है। दोनों खंभोंके बीचमें कम-से-कम १२ फ़ुटकी जगह चाहिए जिससे गाड़ी, मोटर आदि आसानीसे निकल सकें। १४ या १५ फ़ुट चौड़ा फाटक और भी अच्छा होगा।

(२) नीचे लकड़ीका फाटक दिखलाया गया है। कुछ जोड़ोंपर लोहेकी पट्टी जड़ दी गई है। एक कोनेसे दूसरे कोनेतक लोहेकी छड़ या पट्टी जड़ देनेसे फाटकके लटकनेका डर नहीं रहता।

जाली

पृष्ठ ९२ पर तीन प्रकारकी जालियाँ दिखलाई गई हैं। इनके बनानेके लिए एक भाग सीमेंटमें तीन भाग बालू मिलाकर १½ इंच मोटी तह बिछा देनी चाहिए और जब सीमेंट कुछ कड़ा हो चले तब सँभालकर झँझरियाँ काट देनी चाहिए। उठाने-बिठानेमें ऐसी

जालियाँ अकसर टूट जाती हैं। इसलिए अकसर उन्हें अपने स्थानमें ही बनाया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी जंगलेमें कोई जाली बनानी हो तो उचित स्थानमें जंगलेके बीच बिना गाराके लगाये सूखी ईंटोंसे दीवार खड़ी कर दी जाती है। इसपर फिर चूनेका पलस्तर कर दिया जाता है तब उसपर सीमेंट-बालूका १½ इंच मोटा पलस्तर कर दिया जाता है। इसमें झँझरी काट दी जाती है और सीमेंटके कड़ा हो जानेके बाद (दो-तीन दिनके बाद) पीछेकी दीवार निकाल दी जाती है। इस तरहसे झँझरी तैयार हो जाती है।

ख्याल रहे कि सीमेंट-बालूसे पलस्तर करने और झँझरी काटनेके बाद जालीपर बोरा तान देना चाहिए और बोरेको तर रखना चाहिए जिससे सीमेंट सूखनेके बदले धीरे-धीरे कड़ा होवे।

टाइल

फ़र्शपर बिछानेके लिए टाइल बनाये जाते हैं। ये एक इंच, डेढ़ इंच या दो इंच मोटे होते हैं। दो रंगोंमें बनानेसे ये बहुत सुंदर लगते हैं। लकड़ीके पटरेपर लकड़ीके गिट्टक जड़े रहते हैं और चारों ओर खड़ी लकड़ी लगी रहती है। इसमें एक भाग सीमेंट, ढाई भाग चूना और चार भाग पत्थरकी छोटी गिट्टी और आवश्यकतानुसार रंगीन मिट्टी एक साथ सानकर डाल दिये जाते हैं। सीमेंटके कड़ा हो जानेपर लकड़ीके गिट्टक पेच ढीला करके निकाल लिए जाते हैं, और उनके बदले दूसरे रंगका सीमेंट, बालू और गिट्टीकी कंकरीट छोड़ दी जाती है। इस प्रकार दुरंगा टाइल तैयार हो जाता है। सीमेंटमें मिलानेके लिए विशेष रंगीन मिट्टी बाज़ारमें मिलती है। मिट्टी मिलानेके बदले रंगीन सीमेंटका प्रयोग किया जा सकता है।

सीमेंट जब काफ़ी कड़ा हो जाय तब इसपर ऐमेरी पत्थरका चूरा छिड़ककर और पानी डालकर चिकने और सपाट पत्थरसे रगड़नेसे टाइल ख़ूब चिकना किया जा सकता है। यदि पीछे बहुत बारीक ऐमेरी पाउडरका प्रयोग किया जाय तो टाइलपर बहुत बढ़िया चिकनाहट आ सकती है। कुछ लोग अंतमें इसपर मोम और तारपीनकी पालिश करते हैं। चित्रमें टाइलके छ: डिज़ाइन दिखलाये गये हैं।

सीमेंटकी छतें

(१) ईंटको मिट्टी या चूनेके बदले सीमेंट (पोर्टलैंड सीमेंट) से जोड़नेसे वे एक दूसरेसे चिपककर बड़े-से पत्थरके समान हो जाती हैं। इसलिए उनसे छतें बन सकती हैं। परन्तु यह परमावश्यक है कि जोड़ोंमें उचित स्थान पर लोहेकी छड़ें भी डाल दी जायँ।

छत बनानेके लिए पहिले 'ढोला' बाँध दिया जाता है; अर्थात, बल्ली, लकड़ी, बाँस, पटरे और मिट्टीसे कच्ची छत इस प्रकार बाँध दी जाती है कि उसके ऊपर पक्की छत जोड़ी जा सके। ढोला इस प्रकार बाँधना चाहिए कि पक्की छतके तैयार हो जानेपर ढोला नीचेसे खोल दिया जा सके।

ढोला बीचमें ज़रा उठा रहे जिससे पक्की छत बनाते समय बोझके कारण यह बीचमें लटक न आये। दस फ़ुट चौड़ी छतमें ढोला बीचमें ½ इंच उठा रहे। दूसरी छतोंमें इसीके अनुपातमें ऊँचाई चाहिए। ढोलाके ऊपर पड़ी मिट्टीपर पानी छिड़ककर कार्य आरम्भ करना चाहिए। मान लो छत ८ फ़ुट × १२ फ़ुट नापकी है। अब आठ फ़ुटवाले किनारेपर एक पंक्ति ईंटोंको बिछा दो। यह पंक्ति दीवारोंपर कम-से-कम ९ इंच चढ़ी रहे। ईंटें प्राय: ३″ × ४½″ × ९″ नापकी होती हैं। इनको इस प्रकार रक्खो कि ३″ × ९″ वाली एक सतह ढोलेको छूती रहे। प्रत्येक जोड़में सीमेंट और बालूसे बना गारा लगाते चलो। एक भाग सीमेंट और तीन भाग स्वच्छ, करकराती, बड़े दानेकी बालू रहे। गारा कुछ कड़ा ही सना रहे। ईंटें पहलेसे पानीमें तरकी हुई रहें जिससे वे गारेके पानीको न सोख लें।

इस पंक्तिकी एक ओर अब सीमेंट और बालूवाला गारा लगाओ और नीचेसे केवल ½ इंच या बहुत हुआ तो ¾ इंच हटकर ¼ इंच मोटी लोहेकी छड़ चिपकाओ। हाथ हटा देनेसे छड़ गिर पड़ेगी, परन्तु जब इसपर

गारा लगाकर इसकी बगलमें ईंटोंकी दूसरी पंक्ति बैठ जायगी तो छड़ न गिर सकेगी। छड़ इतनी लंबी हो कि एक दीवारसे दूसरी दीवारतक पहुँच जाय और दीवारों-पर नौ-नौ इंच चढ़ी भी रहे। इसके सिरे मुड़े रहें (देखो चित्र पृ० ६३)।

इसी प्रकार ईंटोंकी पंक्तियाँ जोड़ते चले जाओ। प्रत्येक जोड़में लोहेकी छड़ दो। हर तीसरे जोड़में ऊपरसे ½ इंच हटकर ढाई फ़ुट या ३ फ़ुटकी छड़ दो (चित्र देखो)। इसके भी दोनों किनारे मुड़े रहें।

कुछ लोग उन छड़ोंमेंसे जो नीचे लगती हैं (लंबी छड़ोंमें से) हर तीसरी या चौथी छड़को इस प्रकार मोड़ देते हैं कि इसके दोनों किनारेवाले भाग तिरछे हो जायँ। तिरछा भाग छड़की पूरी लंबाईका चौथाई भाग हो। ऐसा करनेसे छत अधिक मजबूत बनती है।

(२) यदि छत प्राय: चौकोर हो, जैसे ८' × ८' की हो, तो इसके बनानेमें कुछ अधिक कठिनाई पड़ेगी। ऐसी छतोंमें दोनों ओरसे छड़ें देनी पड़ेगी। इस प्रकार छड़ोंसे चारखाने-सा बन जायगा और जोड़ाईमें कुछ कठिनाई पड़ेगी। एक दिशामें छड़ें नीचेसे ½ इंच उठी रहें, दूसरी दिशामें ¾ इंच।

(३) जबतक 'बयांग' अर्थात आमने-सामनेकी दीवारोंके बीचकी दूरी ८ फ़ुटसे अधिक न हो तबतक ऊपरकी रीतिसे जोड़ाई करनी चाहिए। इस प्रकार ४½ इंच मोटी छत तैयार होगी। यदि कोठरी चौखूटी न हो तो इसकी चौड़ाईको बयांग समझना चाहिए।

(४) यदि बयांग ८ फ़ुटसे १० फ़ुटतक हो तो भी ४½ इंचकी छतसे काम चल सकता है, परन्तु इसके बनानेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ेगी, विशेषकर इस बातपर ध्यान रखना पड़ेगा कि छड़ सब जगह नीचेसे केवल ½ इंच उठी रहे, कहीं अधिक या कम ऊँची न रहे, कहीं भी जोड़ बिना गारे (सीमेंट) के न रह जाय, कहीं भी लोहा बिना गारे से लिपटा हुआ न रह जाय, ऐसा न हो कि सीमेंट और बालू ठीकसे न मिलें और कहीं-कहीं बालू ही अधिक रह जाय, या ईंटें काफ़ी तर न रहें और गारेके पानीको सोख लें या गारेमें इतना पानी मिला हो कि सीमेंट बह जाय या बालूसे अलग हो जाय, इत्यादि।

(५) यदि कारीगर खूब होशियार न हों और बयांग ८ फ़ुटसे अधिक हो तो ४½ इंचके बदले ६ इंच-की छत ही बनवानी ठीक होगी (नीचे देखो)।

(६) जब बयांग ९ फ़ुट या १० फ़ुटकी हो तो ६ इंच मोटी छत बनवानी चाहिए। इसके लिए दो रद्दा ईंट लगेगी। प्रत्येक जोड़ अब साढ़ेचार-साढ़ेचार इंचकी दूरीपर पड़ेगा। इनमेंसे प्रत्येक जोड़में लोहेकी छड़ें दी जायँ, पर वे ⅜ इंच मोटी रहें (पृ० ६३ पर दाहिनेवाला चित्र देखो)।

(७) जब दीवारोंपर केवल छत हो (छतके ऊपर दीवार न हो तो इसमें छड़ोंको टेढ़ा करने या ऊपर छोटे टुकड़े लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं है (पृ० ६३ पर नीचेसे तीसरा चित्र देखो)। परंतु यदि छतके सिरेपर दीवारका बोझ आता हो तो तिरछी छड़ें और ऊपरवाली छोटी छड़ोंकी भी आवश्यकता पड़ेगी (दूसरा चित्र देखो)। यदि इनका केवल एक ही सिरा दबा हो तो केवल उसी ओर तिरछी छड़ें और ऊपरवाली छोटी छतोंकी आवश्यकता पड़ेगी (सबसे नीचेवाला चित्र देखो)। इन चित्रोंमें ल = बयांग।

सेप्टिक टैंक—(१) सभी जानते हैं कि सड़नेसे चीज़ें गल जाती हैं। परंतु इसे शायद लोग नहीं जानते कि ज़मीनके अंदर अँधेरेमें और वायुके बिना सड़नेसे वस्तुओंमें दुर्गन्ध नहीं आती। परंतु यह बात सच्ची है। इस बातके भरोसे अब 'सेप्टिक टैंक' (अंध-कूप) बनते हैं जिनमें मल (पैखाना) सड़कर गल जाता है और पानीमें घुलकर बिलकुल पानीकी तरह हो जाता है। इस पानीको ज़मीनके नीचे-नीचे बहने देते हैं और धीरे-धीरे मिट्टी पानीको सोख लेती है। इस तरहसे बिना मेहतर-के हाथ लगाये ही पैखाना हमेशा साफ़ रहता है और इसमें बदबू नहीं रहती। इसके बनानेकी सबसे सरल रीति पृष्ठ ६४ के एक कोनेमें दिखलाई गई है। इसके लिए ज़मीनके नीचे ६ फुट गहरा और करीब ४ फुट × ७ फुटके नापका एक पक्का हौज़ बनाया जाता है।

ईंटोंकी जोड़ाई १ हिस्सा सीमेंट और ३ हिस्सा बालूसे की जाय और इस सीमेंट-बालूसे पलस्तर भी कर दिया जाय। इस हौज़के ऊपर ईंट और सीमेंटकी छत (ढक्कन) बना दी जाय। ढक्कनमें केवल एक छेद हो जिसमें एक चार इंच व्यासका सफेद मिट्टीका पाइप करीब २ फुट लम्बा नीचे लटका रहे। छत लगानेके पहिलेही हौज़से पानीके बाहर जानेका प्रबंध कर लेना चाहिए। इसके लिए एक कोहनी लगाई जाती है जिसका मुँह ऊपर दिखलाये गये २ फुट लम्बे पाइपके नीचेवाले सिरेकी ऊँचाईपर रहे। इस कोहनी और पाइपके बीच हौज़में एक दीवार खड़ी कर देनी चाहिए। इस दीवारमें एक या दो ८"×८" के छेद हौज़की पेंदीसे १ फ़ुट ऊपर उठकर रहें। इसका परिणाम यह होगा कि विष्ठा चित्रमें दिखलाये गये बायें खानेमें गिरेगी। पानीसे हलका होनेके कारण यह उतराती रहेगी। अगर बिष्ठाके साथ कोई पानीसे भारी चीज़ भी इसमें गिरे तो वह नीचे जाकर बैठ जायगी। जब विष्ठा-सड़कर गल जायगी तब यह हौज़के दूसरे खानेमें बीच वाली दीवारके रास्ते होकर कोहनीके मुँहमें घुसेगी और वहाँसे बेंड़े लगे हुए पाइपोंके रास्ते बाहर निकल जायगी। हौज़से कुछ दूर हटकर इन पाइपोंको बिना चूनेसे जड़े केवल एकमें एक सटाकर रख दिया जाता है। अवश्य ही ये सब पाइप मिट्टीमें गड़े होते हैं। जोड़में चूना न होनेके कारण गंदा पानी हर एक जोड़से थोड़ा-थोड़ा ज़मीनके भीतर घुस जाता है और थोड़ी दूरके बाद सब पानी खतम हो जाता है। तो भी यह अच्छा होगा कि पचास फुटतक इस तरहसे पाइप जोड़नेके बाद एक गड्ढा खोदकर उसमें झामा या ईंटके रोड़े बिना कूटे हुए भर दिए जायँ और ऊपरसे इसे मिट्टीसे ढक दिया जाय। बचा-कुचा पानी इस गड्ढेमें जाकर सोख लिया जाता है। सरल सेप्टिक टैंकके नक्शेमें बाईं ओर जो गमलेकी बगलमें बेंड़ा पाइप दिखलाया गया है वह ज़मीनके नीचे है।

(२) ऊपरके सेप्टिक टैंकमें ख़राबी यह है कि गमलेसे जो खड़ा पाइप हौज़में जाता है उसमें बराबर २-४ इंच गंदा पानी रहता है (यह ज़रूरी है कि इस पाइपका मुँह हौज़के गंदे पानीमें डूबा रहे नहीं तो मलके सड़नेसे जो दुर्गन्ध उड़ेगी वह सब इस पाइपके रास्ते ऊपर चली आयेगी और पैखाना बहुत दुर्गन्धके कारण बेकाम हो जायगा)। जब-जब कोई पैखानेमें पानी गिराता है तब-तब यह पानी बदल जाता है और इसमें साफ़ पानी भर जाता है लेकिन तो भी घंटे-दो-घंटेमें यह पानी भी गंदा हो जाता है और इसलिए ऐसे पैखानेमें थोड़ी-बहुत बदबू ज़रूर रहती है यद्यपि साधारण पैखानोंसे यह बहुत अधिक स्वच्छ और दुर्गन्धरहित रहता है। यदि इच्छा हो कि पैखाना सदा पूर्णतया दुर्गन्धरहित रहे और अधिक खर्च होनेकी परवाह न की जाय तो उसे उसी पृष्टपर (पृष्ठ ८४ में) दिखलाये गये बड़े सेप्टिक टैंककी तरह बनाना चाहिए। ऐसे पैखानेमें गमला चीनी मिट्टीका बना रहता है जो बराबर खूब साफ रक्खा जा सकता है। इसमें टंकी लगी रहती है जिसकी जंजीरको खींचनेसे ३ गैलन पानी बड़े झोंकेसे गमलेमें जाता है और गमलेको अच्छी तरह साफ कर देता है। इस टंकीमें पानी म्यूनिसिपल्टीके नलसे आता है और इसमें ऐसी टोंटी लगी रहती है कि भर जाते ही पानी आपसे आप बंद हो जाता है। ऐसी टंकी बाज़ारमें बिकती है परंतु यदि टंकी न भी लगाई जाय तो भी काम चल सकता है। हाँ, प्रत्येक बार इस्तैमाल करनेके बाद गमलेमें एक बालटी पानी डालना पड़ेगा।

बदबू रोकनेकी खास तरकीब यह है कि गमलेके नीचे एक ∽ आकारका पाइप लगा रहता है और उसके आगे सीधा पाइप लगा रहता है। गमलेमें साफ पानी छोड़नेसे अधिकांश पानी तो बह जाता है परंतु ३ या ४ इंच गहराईतक इसमें स्वच्छ पानी रुका रह जाता है जिससे हौज़की गंदी हवा गमलेमें नहीं आ सकती। इस टेढ़े पाइपको ट्रैप या साइफ़न कहते हैं और बाज़ारमें यह सफ़ेद मिट्टी या लोहेका बना-बनाया बिकता है। २) के क़रीब एक साइफ़नका दाम होता है।

यदि केवल साइफ़नके बलपर ही दुर्गंधसे बचनेका भरोसा किया जाय तो पूरी सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि सेप्टिक टैंककी बदबूदार हवा धीरे-धीरे स्वच्छ पानीमें घुलने लगती है और ८, १० घंटेमें यह पानी बदबूदार हो जाता है। इसलिए यदि ८ या १० घंटेतक इस पैखानेको कोई इस्तैमाल न करे तो थोड़ी-बहुत बदबू आने लगती है। इसलिए मकानके पास ही वायुके निकलनेके लिए एक बड़ा पाइप लगा दिया जाता है। इस पाइपका व्यास कम-से-कम २ इंच और हो सके तो ४ इंच हो। इसकी चोटी मकानकी छतसे करीब ८ फ़ुट ऊँची हो जिससे बदबूदार हवा मकानमें रहनेवाले या छतपर सोनेवालेके पास न आवे। इसके सिरेपर तारकी जालीका गोला लगा दिया जाता है जिससे इसमें कोई जानवर या चिड़िया न घुस सके। सेप्टिक टैंक कुछ दूरपर बनाया जाय और इसके पास ही एक दूसरा खड़ा पाइप लगा हो जिसमेंसे स्वच्छ हवा आ सके। यह कम-से-कम ४ इंच व्यासका हो। इसके सिरेपर अबरककी पत्तीवाला वाल्व लगा रहता है। इस वाल्वके लगे रहनेके कारण हवा भीतरतक घुस सकती है परंतु भीतरकी हवा बाहर नहीं आ सकती। यह ज़मीनसे केवल ४, ५ फ़ुट ही ऊँचा रहे। इस प्रबंधका परिणाम यह होता है कि वाल्वसे ताज़ी हवा भीतर आया करती है और मकानके ऊपर गंदी हवाको लिए हुये निकल जाती है। इस तरह पाइपके अंदरकी हवा लगभग सदा ही स्वच्छ रहती है और इसमें इतनी बदबू नहीं रहती कि साइफनका पानी बदबूदार हो सके और पैखानेमें कुछ भी बदबू जा सके।

सेप्टिक टैंकके पास ही एक जाँचका हौज़ भी बना दिया जाता है। इसका ढक्कन खोलकर पाइप और सेप्टिक टैंकमें लचीला बाँस घुसाया जा सकता है। और पाइपकी सफाई की जा सकती है। यह केवल एहतियातके लिए है। यदि गमलेमें कपड़ेकी चीरें, ठीकरे, लकड़ीकी सींकें आदि कभी न गिरने पायें तो इस जाँचके हौज़की जरूरत न पड़ेगी। परंतु बच्चोंके हाथसे पैखानोंमें कभी-न-कभी ऐसी चीज़ें गिर ही पड़ती हैं और इसलिए जाँचके हौज़के रहनेमें सुविधा रहती है। कुछ लोग सेप्टिक टैंकमें एक पाइप लगा देते हैं जिससे बदबूदार हवा गमलेकी ओर जानेके बदले सीधी ऊपर चली जाय। यह पाइप भी मकानकी छतसे काफी ऊँचा रहे। शेष बातें या तो चित्रसे स्पष्ट हो जायँगी या वे ऊपर बतलाए गये सरल सेप्टिक टैंककी तरह रहती हैं।

सेप्टिक टैंक यदि जरूरतसे ज्यादा बड़ा रहे तो कोई हर्ज नहीं। परंतु छोटा रहेगा तो पैखाना इसमें काफी देरतक न रुकने पायेगा। इस प्रकार काफी सड़नेके पहिलेही विष्ठा निकलकर हौज़के दूसरे पाइपमें पहुँचकर फँस जायगी और बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी। जितना बड़ा हौज़ दूसरे नकशेमें दिखलाया गया है अर्थात् ७ फ़ुट ४ फ़ुट × × ४½ फ़ुटके नापवाला एक बड़े परिवारके लिए काफी होगा। यदि इसे पंद्रह आदमी रोज़ इस्तैमाल करेंगे तो भी यह बराबर काम देगा।

(३) यदि गमलेके नीचे साइफ़न या ट्रैप लगाया जाय परंतु वायुके आवागमनके लिए कोई प्रबंध न किया जाय तो भी काफी अच्छा पैखाना बनेगा। परंतु यदि ऐसे पैखानेमें दस-बारह घंटेतक पानी न पड़े तो थोड़ी-थोड़ी बदबू आने लगती है।

(४) चाहे किसी भी तरहका सेप्टिक टैंक बने, गंदा पानी बहनेके लिए पाइप लगानेके बदले पक्की ईंटोंकी, बिना गारे या चूनेसे जोड़े, खुली नाली बनाकर और उसे ईंटोंसे ढककर मिट्टीसे दबा देनेसे काफ़ी अच्छी तरह काम चल जायगा। इससे पैसेकी बहुत बचत होती है परन्तु डर यही रहता है कि यदि कहींकी मिट्टी धँस जायगी और ईंटें खिसक जायँगी तो मिट्टी खुदवाकर ईंटोंको फिरसे एक सीधमें रखवाना पड़ेगा।

(५) सरल सेप्टिक टैंक और पैखाना बनवानेमें पैखानेको छोड़कर बाक़ी चीजें २०-२५ रुपयेमें बन सकती हैं। अच्छे सेप्टिक टैंकके बनवानेमें पानीकी टंकीमें करीब २०), गमला और साइफनमें २०) दाम लगेगा। पाइप आदि मिलाकर सौ-सवासौ रुपये-ख़र्च हो जायँगे। इस खर्चमें पैखानेकी कोठरी बनानेका खर्च भी शामिल है।

धरन—अगर दीवारोंकी बीचकी दूरी (बयांग) ८ फुट या १० फुटतक हो तो लकड़ीकी सादी धरन या लोहेके गार्टर लगानेमें कोई दिक़्क़त नहीं होती। परन्तु यदि बयांग ज़्यादा हो तो या तो बहुत भारी धरन और गार्टर लगेगा या विशेष ढंगसे लकड़ियोंको जोड़कर धरन बनाना पड़ेगा। एक सरल रीति पृष्ठ ६५ के ऊपरी भागमें दिखलाई गई है। यह नकशा २४ फुट-के बयांगके लिए खींचा गया है। दूसरे बयांगोंके लिए इसी अन्दाज़से लकड़ियोंकी मोटाई और लम्बाई घटाई-बढ़ाई जा सकती है। चित्रमें दिखलाई गई रीतिसे लकड़ियोंको जोड़नेसे धरन बहुत हलकी होते हुए एक-दूसरेमें कील, पेच, बाल्टू आदिसे जोड़ दी जाय नहीं तो कुल जोर नीचेवाली लकड़ीपर पड़ेगा और वह टूट जायगी।

जोड़—पृष्ठ ६५ के बीचमें लकड़ियोंको जोड़कर लम्बी बनानेकी रीति दिखलाई गई है। मज़बूतीके ख़्यालसे जोड़के अगल-बगल लोहेकी चौड़ी पट्टी लगा-कर कुलको बाल्टू और ढिबरीसे कस देना चाहिए।

कारनिस—ये तरह-तरहकी बनती हैं। पृष्ठ ६५ में एक सुंदर कारनिस दिखलाई गई है।

पाइप—पृष्ठ ६५ पर पाइपोंके ४ आकार दिखलाये गये हैं। कुछ और आकार पृष्ठ ६६ पर खम्भोंके संबंध-में दिये गए हैं।

नीव—पृष्ठ ६६ पर एक ईंट, डेढ़ ईंट और २ ईंट मोटी दीवारोंकी नीव बनानेकी रीति दिखलाई गई है। सबसे नीचे १ भाग चूना, ३ भाग बालू या सुरखी और ४ या ५ भाग मिट्टी कुटी रहती है।

नीवकी गहराई ३ फुट होनेसे काम चल सकता है। इससे गहराई कम न हो। यदि ३ फुटपर कड़ी मिट्टी न मिले तो नीवको यहाँतक खोदना चाहिए कि कड़ी मिट्टी मिल जाय।

खम्भा—पृष्ठ ६६ के नीचेके भागमें ५ तरहके खम्भे दिखलाए गए हैं (ग़लतीसे कुछ खम्भे ज़रा टेढ़े खिंच गये हैं परंतु उनके आकारका स्पष्ट पता चलता है)।

दरवाज़ा ~
क
ख
ग
घ
कख पर काट
गघ पर काट
३½"
२'६"
१२"
६"
७'०"
६'३"
२'१½"
३"
२½"
४'११½"
३'६"
३½"×२½"
पैमाना १"=२'

दरवाज़ा ~
५१/२"
२०"x१६"
५१/२"
७'०"
पुराने देशी ढंग
का
दरवाज़ा ~
६"
३'९"
३'४"
३' १११/२"

फाटक ~

जाली ~
टाइल ~

ईंट और सीमेंट की छतें ~

सेप्टिक टैंक –

(अंध - कूप)

टंकी
गमला
वायु का
निकास
सरल
सेप्टिक टैंक
गमला
७′
६′
गमला
६′
वायु आने का रास्ता
ढक्कन
मिट्टी
वायु का निकास
ज़मीन
सफ़ाई के लिये
तिन मुहाँ
डाट
४६ में १ का
ढाल
४½′
बिना चूने का जोड़
जाँच का हौज़
सीमेंट की पेंदी
८′
खुली नाली
पावदान
गमला
६′
४½′
२½′
३′
४′
१०० में १ का ढाल
४″ का पाइप

धरन ~
४"
२½"
२½"
२' १½"
२'०"
४¾" × २½"
६"×६"
६" × ४¾"
४"×४"
बोल्ट
दोहरा खंभा
प्रत्येक ६"×२½"
६" × ४ ३/४"
३" मोटा पत्थर
१८"
दीवारों के बीच दूरी २४'
जोड़ ~
कारनिस
पाया ~

नींव ~

खंभा ~
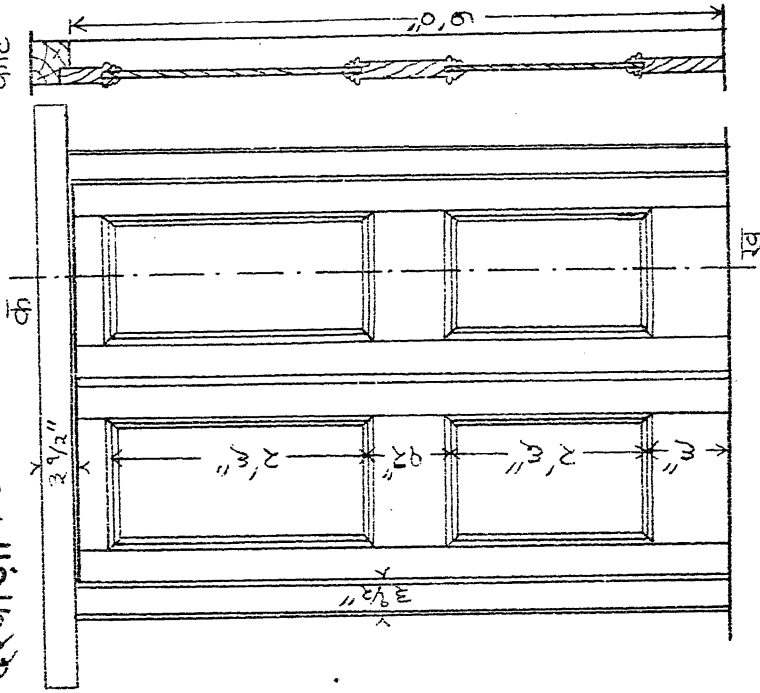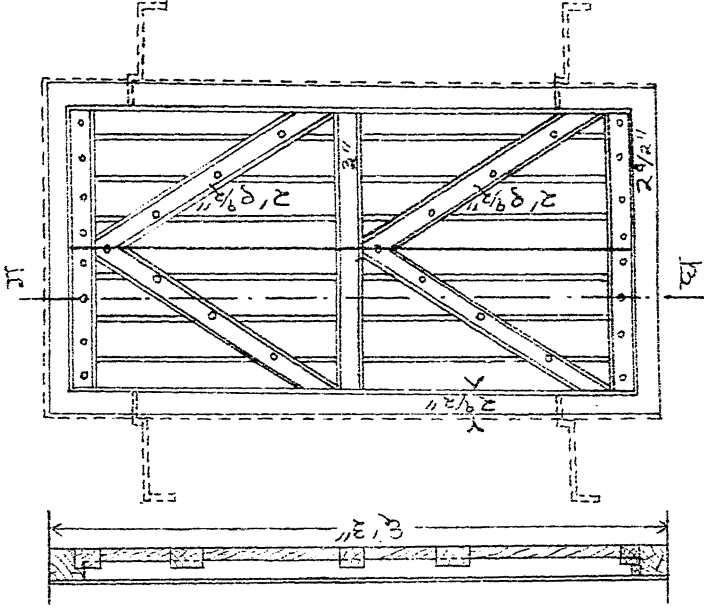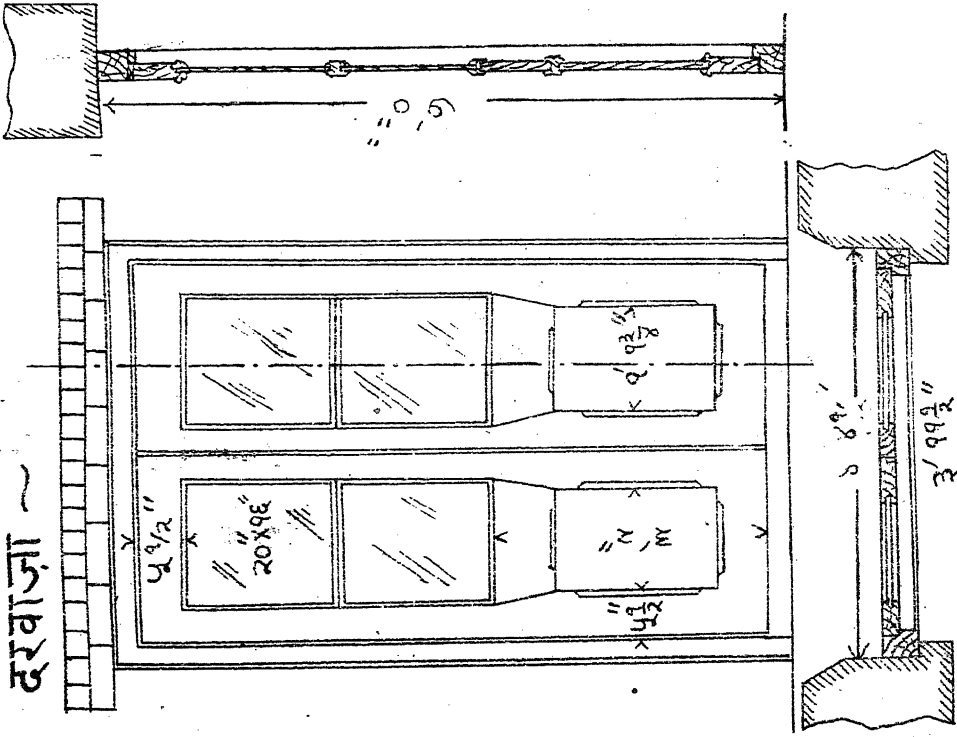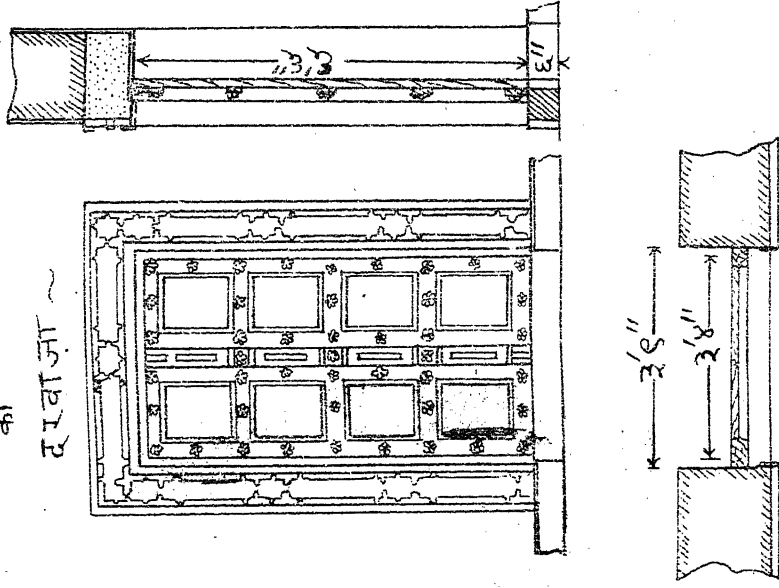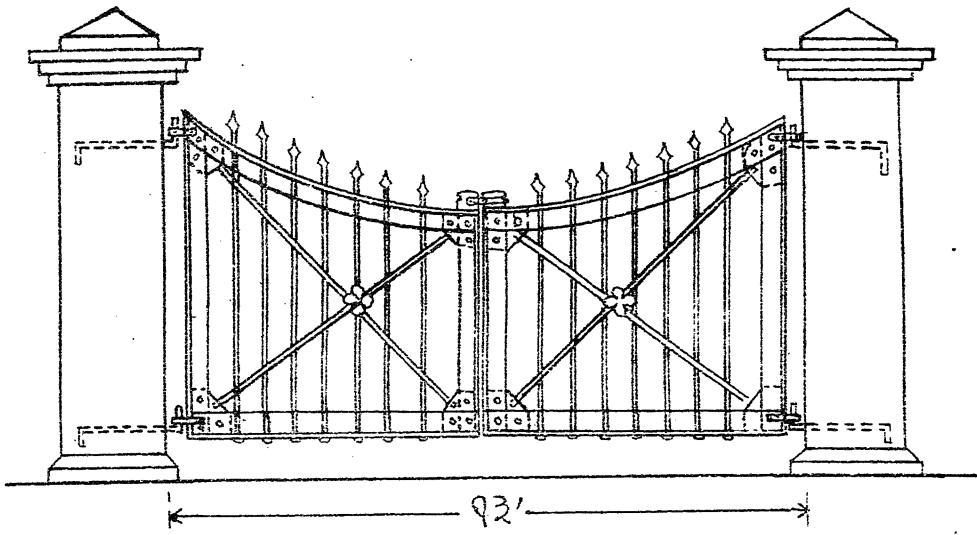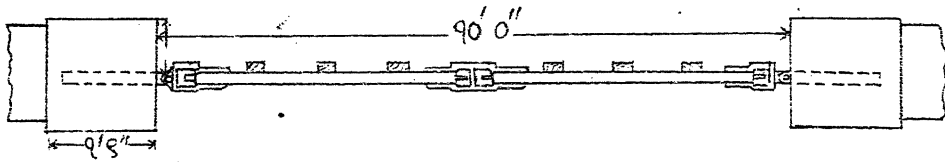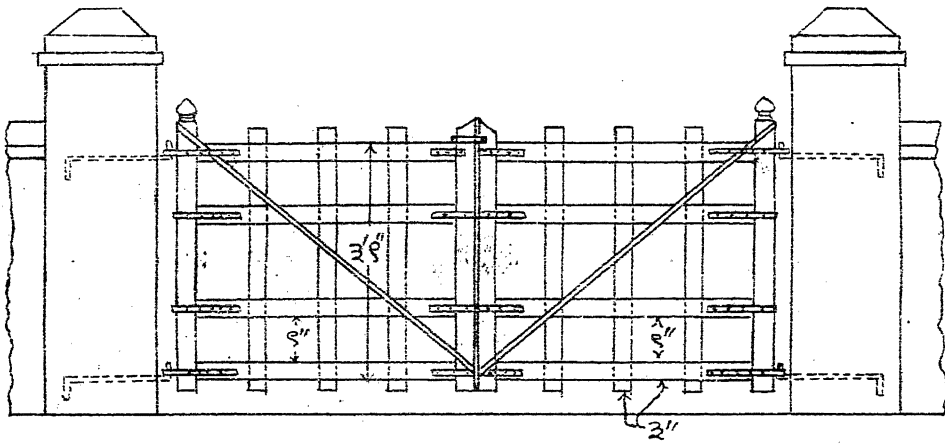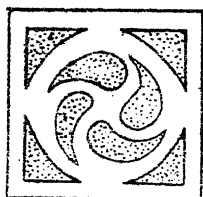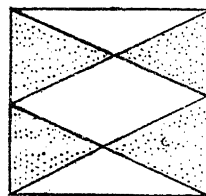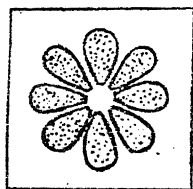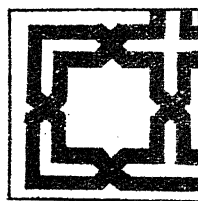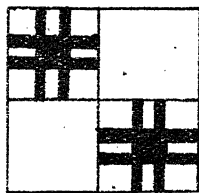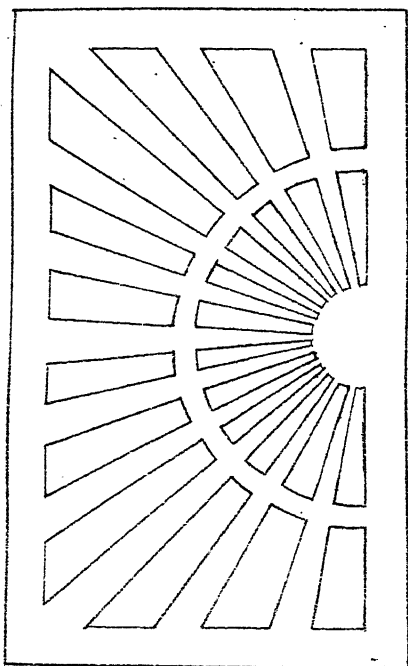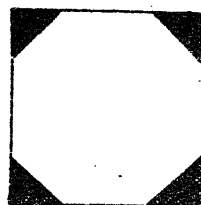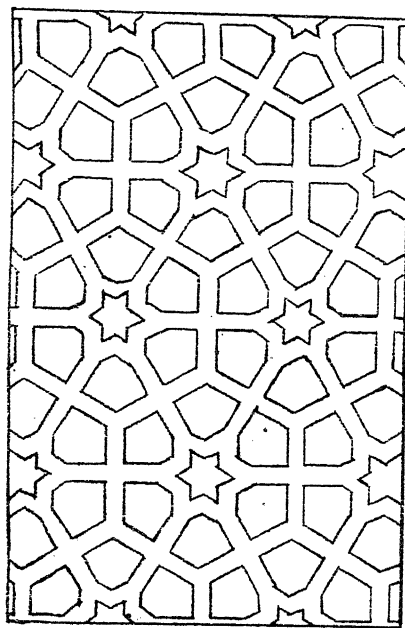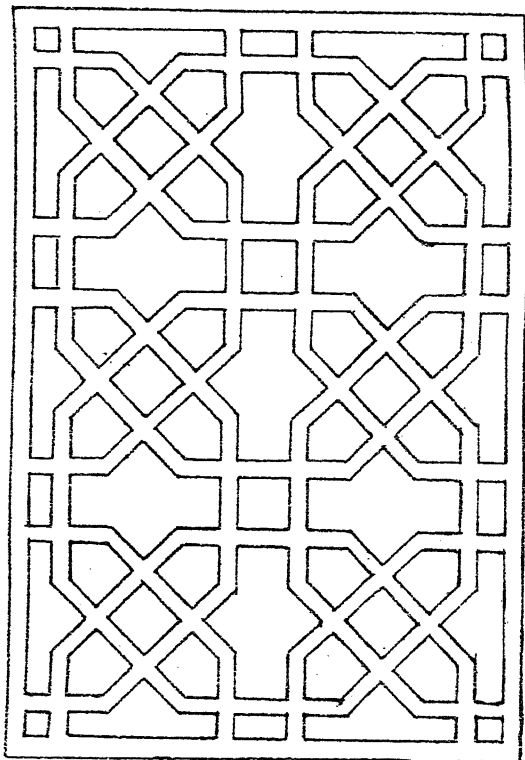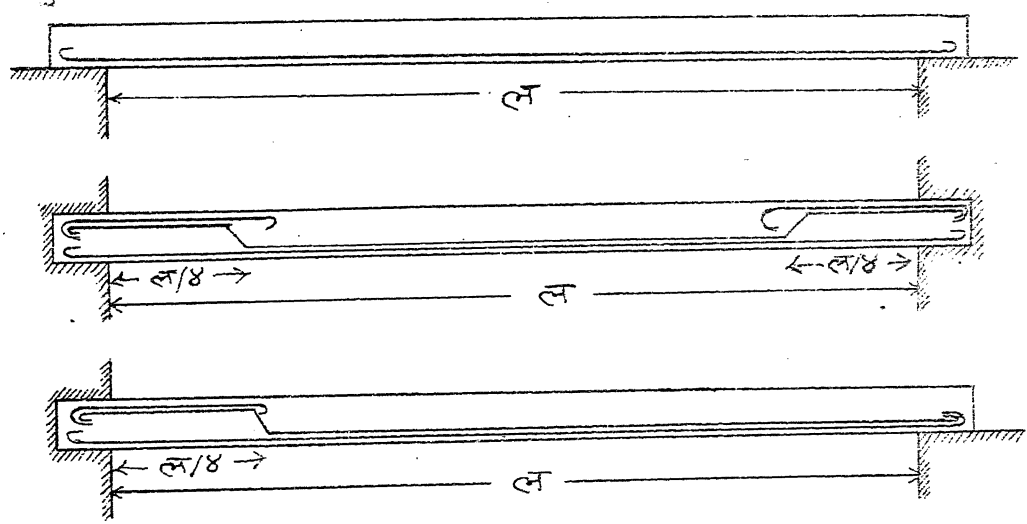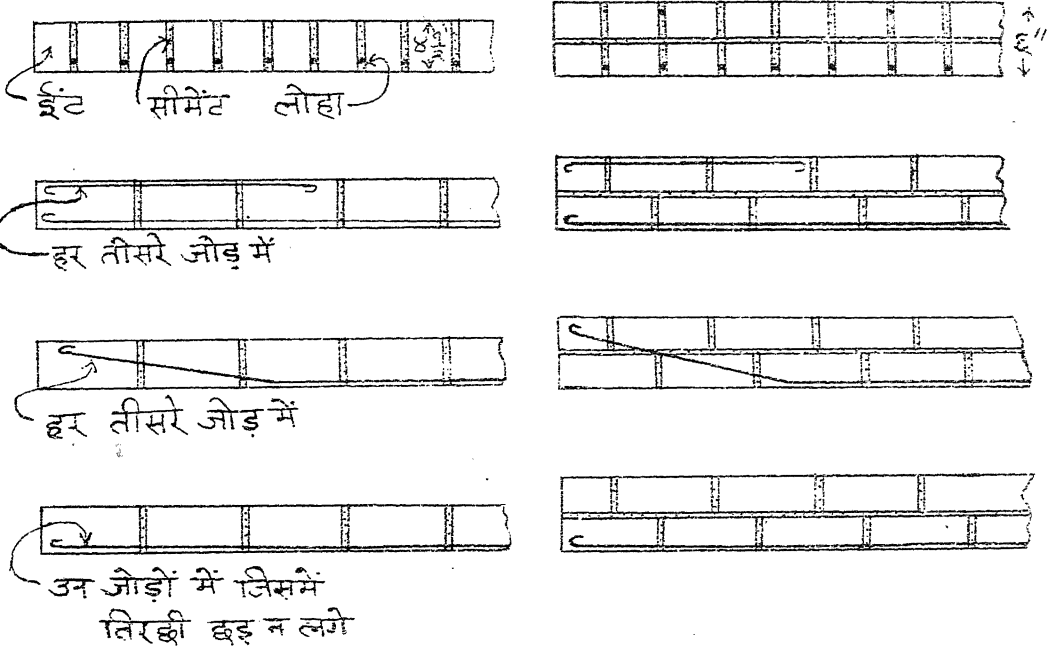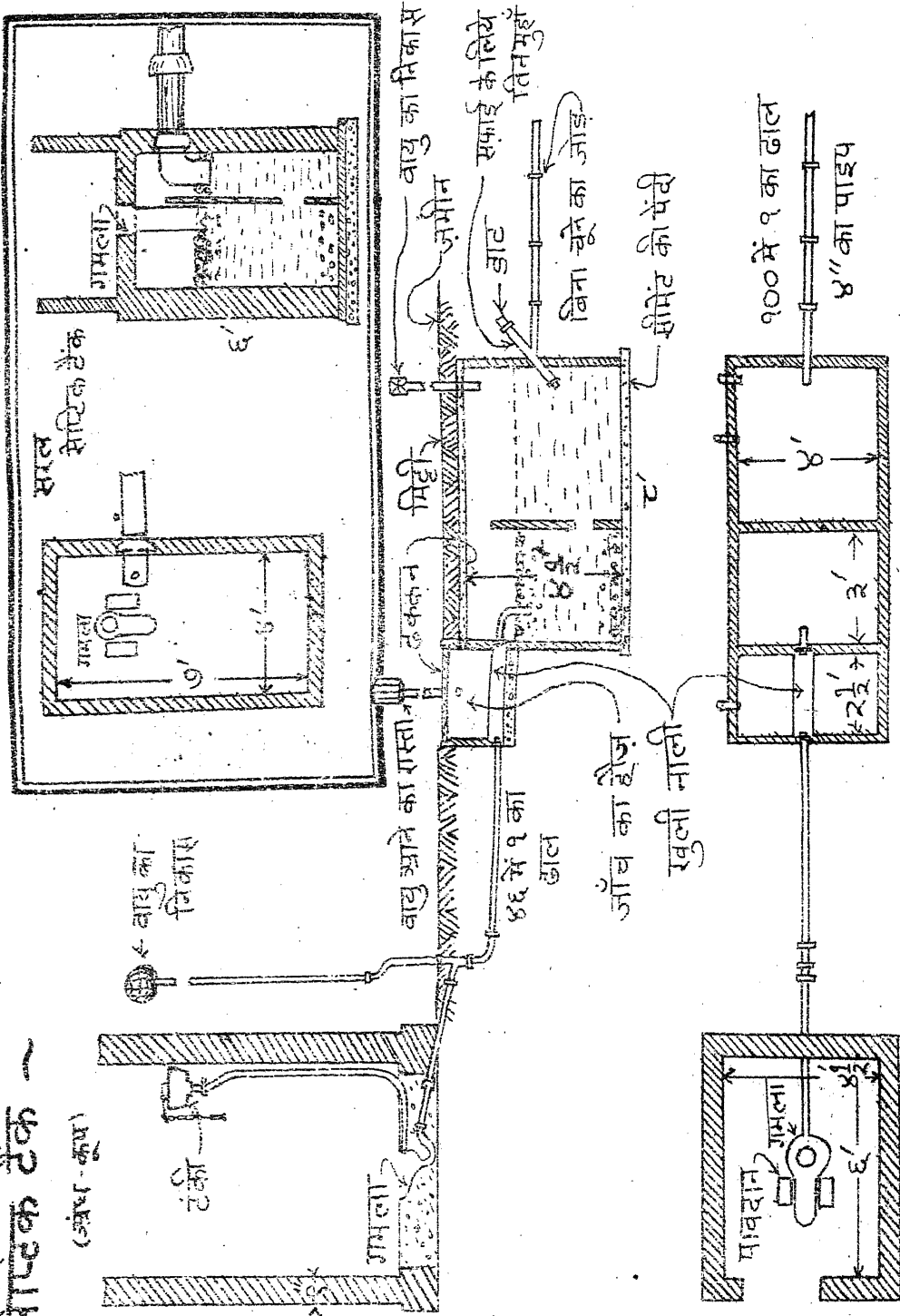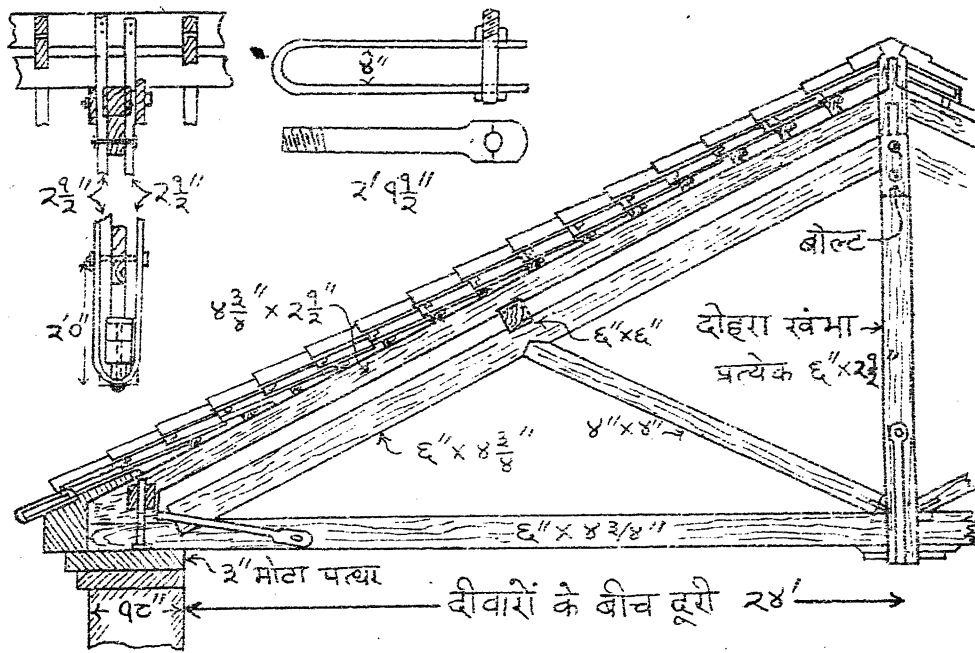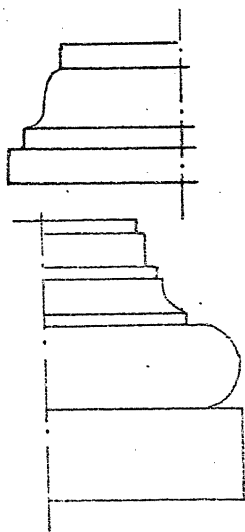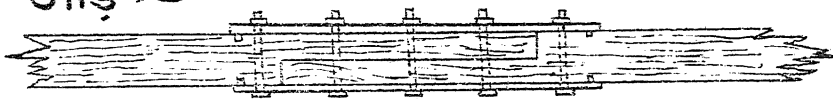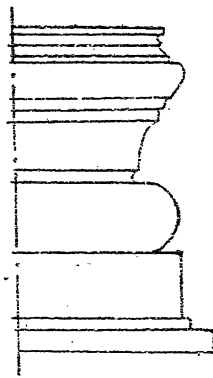
स्वर्गीय श्री रामदास गौड़का स्मारक विशेषांक

विज्ञान

दिसम्बर १९३७

मूल्य ।)

भाग ४६, संख्या ३

प्रयागकी विज्ञान-परिषदका
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-
विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces. for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७३

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।
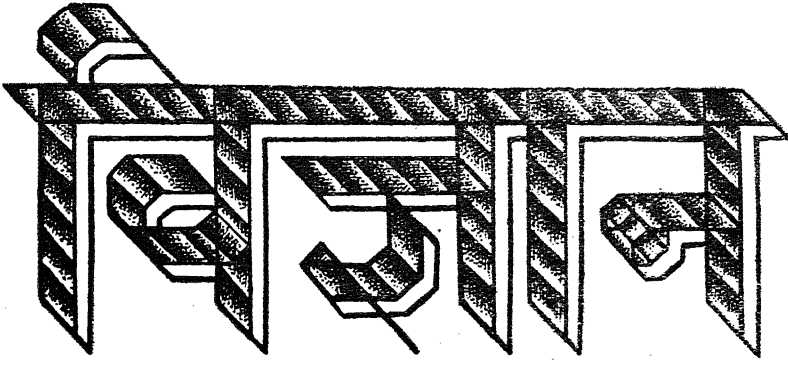
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४६	प्रयाग । तुलार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । दिसम्बर, सन् १९३७	संख्या ३

स्वर्गीय श्री रामदासजी गौड़

[ले० महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल-एल० डी०]

बाबू रामदास गौड़जीसे मेरा परिचय १९०२ में हुआ जब मैं म्योर कॉलेजमें संस्कृतका प्रोफ़ेसर होकर आया। उसी साल रामदासजी हिन्दू कॉलेजसे निकलकर म्योर कॉलेजमें बी० ए० में पढ़ रहे थे। मेरे छोटे भाईका उनका साथ था। गौड़जी संस्कृत नहीं पढ़ते थे। इसलिए घनिष्ट परिचय इनसे मेरा कॉलेजमें न होकर थियोसोफिकल सोसायटीके द्वारा हुआ। इसके अधिवेशन उन दिनों आनन्द-भवनमें होते थे और जवाहरलालजी उसके बाल-विभागके सदस्य थे। उन अधिवेशनोंमें पढ़ा हुआ पहला लेख जो मुझे स्मरण होता है वह रामदासजीका था—तुलसीदासके प्रसङ्ग।

यह सम्बन्ध घनिष्ट होता गया। समय-संस्था इसके अनुकूल थे—क्योंकि रामदासजी भी म्योर कॉलेजके टीचिंग स्टाफ़में नियुक्त हुए और जबतक मैं म्योर कॉलेजमें था—यानी १९१८ तक—वे भी यहीं रहे। इसी सहवासके परिणामका फल-स्वरूप हुआ विज्ञान परिषत्की स्थापना।

यह स्थापना कैसे शुभ मुहूर्त्तमें हुई सो इसीसे स्पष्ट है कि अब तक उत्तरोत्तर उन्नति करती हुई यह परिषत् अपनी पत्रिका द्वारा तत्त्व-बुभुत्सुओंका बड़ा उपकार कर रहा है।

इसी कार्यक्षेत्रमें मुझे यह भी जाननेका अवसर मिला कि रामदासजी कैसे सिद्धहस्त हिन्दी-लेखक थे। मेरा तो दृढ़ संस्कार है कि दो तीन आचार्योंको छोड़कर रामदासजीकी सी स्पष्ट, सरल, सुबोध हिन्दी अभीतक कोई नहीं लिख सका। मिथ्या आग्रह छोड़कर यदि लोग इनको अपना आदर्श बनावें तो हिन्दीका बड़ा कल्याण हो।

असमय-मृत्यु

[ले० कवि-सम्राट पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध']

श्रीमान् गौड़जीके स्वर्गवाससे मैं व्यथित हूँ—वे मेरे आत्मीय थे। गौड़-कायस्थोंका सम्बन्ध मेरे वंशसे घनिष्ठता रखता है। वह इस बातको जानते थे, अतएव मुझसे बड़ी घनिष्ठता रखते थे। जिस श्रद्धा और प्रेमसे मिलते थे, वे मुझसे जैसा सद्भाव रखते थे, उसकी स्मृति ही मुझे व्यथित किए हुए है। अभी हमको और उनको मंगलाप्रसाद-पारितोषिक साथ ही मिला था। उस समय वे प्रफुल्लित होकर मेरे पास बार-बार आये; और मुझसे यही कहते रहे कि मुझको उतना आनन्द अपने पारितोषिक पानेका नहीं है जितना आपके पारितोषिक पानेका। बड़ा सरल उनका हृदय था, वह प्रेममें डूबा हुआ था। रामभक्तिकी सरस धारा उसमें प्रवाहित थी, कभी-कभी उसका उच्छ्वास बड़ा विमुग्ध कर प्रतीत होता था। हिन्दी भाषाके सच्चे प्रेमी थे। तुलसीकृत रामायणपर उत्सर्गीकृत जीवन थे। बड़ी कच्ची गृहस्थी छोड़कर मरे। जब उसका स्मरण होता है, हृदय विदीर्ण हो जाता है। परन्तु हरेरिच्छा बलीयसी।

अद्यैवाब्दशतंते व मृत्युर्वै प्राणिनाम् ध्रुवम् सत्य है, परन्तु असमय मृत्यु हुई। परमात्मा उनकी आत्माको शान्ति दे और उनके निरवलम्ब कुटुम्बको इस महान् दुःख सहन करनेकी शक्ति। और अधिक क्या लिखूँ।

सरलताकी मूर्त्ति स्वर्गीय गौड़जी

[ले०—कविवर श्री विद्याभूषणजी 'विभु' एफ० आर० जी० एस० (लंदन) एम० एन० जी० एस० (अमरीका)]

स्व० गौड़जी साइंस तथा साहित्यके महान सारथी थे। उन्होंने सच्चे रामदासकी तरह दोनोंका उद्धार किया। श्री कृष्णके जीवनकी दो बातें बड़े मार्केकी हैं। गीताके उपदेशसे तो उन्होंने धर्मको अधर्मपर विजय दिलाई थी और गोवर्धनकी कथासे उनका स्वदेश तथा स्वजाति-प्रेम प्रकट होता है। पूज्य गौड़जीने भी साहित्य-सेवासे देश-जातिकी सेवा की और साइंससे किंकर्त्तव्यविमूढ़ मनुष्योंको उत्कर्षोन्मुखी बनाया। जिस स्तंभपर साहित्य और साइंस जैसे दो विशाल सदन खड़े हों उसकी सुदृढ़ताका क्या ठिकाना है। गौड़जीकी गरिमा भी ऐसी ही थी। सरलता उनके जीवनका व्यापक रूप था। सादे वस्त्र, सादी बोलचाल, सरल भाषा और साधारण साइंसके वे पक्षपाती थे।

गौड़जीके मैंने दो बार दर्शन किये थे। उनके प्रसन्न वदनसे विनोदप्रियता और विद्वत्ता झलकती थी। मिलनेवाले सहसा उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे। हिन्दू-हिन्दी-हिन्द त्रिमूर्त्तिकी सेवासे गौड़जीकी स्मृति अमर हो जायगी, ऐसी आशा है।

आचार्य रामदास गौड़

[ले०—श्री महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव]

गत भद्रपद शुक्ल ७ रविवार संवत् १९९४ वि० तारीख १२ सितम्बर १९३७ ई० की मध्यरात्रिके लगभग श्रद्धास्पद आचार्य रामदास गौड़ अपने बाल-बच्चोंको अनाथ करके परलोकको प्रस्थान कर गये। ९ बजे राततक रुग्णावस्थामें भी 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थका सूचीपत्र बनाते रहे और किसीको इस बातकी शंका नहीं थी कि आप दो ही तीन घंटेके मेहमान हैं। पर विधिका विधान विचित्र है। अभी आपकी आयु केवल ५६ वर्षकी थी और जिस संयम-नियमसे रहते थे उससे जान पड़ता था कि आप दीर्घजीवी होंगे और हिन्दी साहित्यके द्वारा संसारका बहुत कुछ उपकार करेंगे। परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम आपके गंभीर अध्ययन और व्यापक ज्ञानसे लाभ न उठा सके और हमारी सब आशाएँ मिट्टीमें मिल गईं।

संक्षिप्त जीवनी

श्रद्धेय गौड़जीका जन्म संवत् १९३८ की मार्गशीर्ष अमावस्या सोमवार तारीख २१ नवम्बर सन् १८८१ ई० को जौनपुर शहरमें हुआ था जहाँ आपके पिता मुंशी ललिताप्रसादजी चर्चमिशन स्कूलके सेकंड मास्टर थे और पीछेसे जजीमें वकालत भी करने लगे थे। यह स्वभावके उग्र और कट्टर सनातनधर्मी थे और अधिकांश समय भजन-पूजन और स्वाध्यायमें व्यतीत करते थे। ६० वर्षकी अवस्थामें चारों धामोंके दर्शन किये थे। संवत् १९६६ की चैत्र अमावस्याको अपनी धर्मपत्नी की मृत्युसे ठीक चार मास पीछे आपका देहान्त हुआ। आपके पितामह मुंशी भवानी बख़्शजी फैजाबाद ज़िलेके बिड़हर स्थानको छोड़कर काशीवास करनेके लिए संवत् १८६६ में काशी चले गए और कायस्थटोलेमें रहने लगे। यहाँसे ३० वर्ष बाद बड़ीपियरीमें घर खरीदकर स्थायी रूपसे बस गये जहाँ गौड़जीका कुटुम्ब अबतक है।

गौड़जीने सात वर्षकी अवस्थामें जौनपुरमें पढ़ना आरंभ किया। संस्कृत, फारसी और अंग्रेज़ीकी शिक्षा पिताजीसे ही पाई। परन्तु दो ही तीन वर्ष पढ़ पाये थे कि घरेलू विपत्तियोंके कारण तीन वर्षतक पढ़ना छोड़ देना पड़ा। १२ वर्षकी अवस्थामें फिर पढ़ना आरंभ किया और संवत् १९५६ में जौनपुरसे ही एन्ट्रेन्स परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की। इसके बाद आप काशीके सेंट्रल हिन्दू कॉलेजमें पढ़ने लगे जहाँ अपनी प्रतिभाके कारण बहुत शीघ्र डाक्टर रिचर्डसन्के प्रेमपात्र बन गये जो कॉलेजके प्रिंसिपल और रसायनके प्रोफेसर थे। एफ़० ए० पास करके आप प्रयागके म्योर सेंट्रल कॉलेजमें पढ़ने लगे जहाँसे संवत् १९६० में रसायन लेकर बी० ए० पास किया। इस परीक्षाके एक ही सप्ताह बाद डाक्टर रिचर्डसन महोदयने आपको रसायनका सहकारी अध्यापक नियुक्त कर लिया। परीक्षाफल निकलनेपर आप वकालत पढ़नेके लिए प्रयाग आये और इधर-उधरकी नौकरियाँ करने लगे। दो तीन महीना वकालत पढ़नेके बाद आपके बड़े भाई जो मिरजापुरके गवर्नमेंट हाईस्कूलमें शिक्षक थे बीमार पड़ गये और उनकी मृत्यु पर आपका वकालत पढ़ना छूट गया। वहाँसे लौटनेपर आप प्रयागके आर० एम० एस० के दफ़्तरमें ४०) मासिकपर नौकर हो गये और अपने मित्र बाबू अवधबिहारीलालके साथ मुहतशिमगंजमें रहने लगे। इसी समय इन पंक्तियोंके लेखकको आपके घनिष्ट सम्पर्कमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय भी आपके विचार बड़े उच्च थे। गीता,

रामायण, मसनवी मानवी, वृहत्स्तोत्र रत्नाकर आदिके ललितपद प्रात:सायं, नहाते-धोते गाया करते थे जिससे इस लेखकके हृदयमें संस्कृत, गीता आदि पढ़नेका अंकुर जमा।

दो ही तीन मास नौकरी करनेके बाद आप बीमार पड़े। दिलकी धड़कन और सिरका चक्कर तभीसे आपके पीछे पड़ गये और अन्ततक पीछा न छोड़ा। अच्छा होने पर कायस्थ पाठशालामें रसायनके अध्यापक नियुक्त हुए। इस समय श्रद्धेय रामानन्द चटर्जी इसके प्रिंसिपल थे। यहाँ दो वर्ष काम करके सम्वत् १९६३ में आप म्योर सेंट्रल कॉलेजके रसायनके डिमॉन्स्ट्रेटर हो गये जहाँ काम करते हुए सं० १९६५ में आपने रसायन-शास्त्रमें एम्० ए० पास किया। उस समय रसायन विभागमें आविष्कार करनेकी इतनी सुविधा नहीं थी जितनी आज कल है। इसलिए आपका ध्यान अन्य लोकोपकारी कार्योंकी ओर गया और सम्वत् १९६९ के अंतमें विज्ञान परिषत् (वर्नाक्यूलर सायंटिफिक लिटरेरी सोसाइटी) की स्थापना करनेमें आपने डाक्टर सुन्दरलाल, डाक्टर गंगानाथ झा, प्रोफेसर हमीदउद्दीन आदिका सहयोग प्राप्त किया और आप केवल सहकारी मंत्री रहकर सब काम करते रहे। विज्ञान परिषद्का काम करनेके कारण आपके अफसर कुछ अप्रसन्न रहते थे जिससे आपकी उन्नतिमें कुछ रुकावट पड़ी। इसलिए १९७५ वि० में ११ वर्षकी सरकारी नौकरीको त्यागकर आप हिन्दू विश्वविद्यालयके प्राच्यविभागमें रसायनके प्रोफेसर होकर चले गये। यहाँ आयुर्वेदके विद्यार्थियोंको रसायन पढ़ना पड़ता था इसलिए उनकी सुविधाके लिए संस्कृतमें रसायन सूत्रोंकी रचना आरंभकी परन्तु अनेक कामोंमें व्यस्त रहनेके कारण पूरी न कर सके। अपनी विद्वताके कारण यहाँ तुरंत ही सीनेटके तथा फैकल्टीज़ ऑफ सायंस और ओरियंटल लर्निंगके सदस्य चुने गये जहाँ आपने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किये और हिन्दी माध्यम द्वारा एंट्रेंसतककी शिक्षा देनेका पाठ्यक्रम बनानेका भार अपने सिरपर लिया जिसकी संक्षिप्त विवरिणी मेरे पास अबतक मौजूद है। परन्तु आपका प्रस्ताव शायद स्वीकृत नहीं किया गया। यहाँ भी आप तीन वर्षसे अधिक नहीं रहे। असहयोग आन्दोलनके आरंभ होनेपर आपने यह नौकरी भी छोड़ दी और कॉंग्रेसका काम स्वतन्त्र होकर करने लगे जिसके लिए आपको एक वर्षके लगभग जेलमें भी रहना पड़ा था। इसके बाद आपने काशीके ज्ञानमण्डल, बिहार विद्यापीठ, तथा गुरुकुल काँगड़ीमें थोड़े-थोड़े दिनतक काम किया था परन्तु स्थायी रूपसे कहीं नहीं रहे। पुस्तक रचना तथा पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख लिखनेसे जो कुछ मिल जाता था उसीसे अपना गुजर-बसर किसी तरह करते रहे। यही आपके जीवनकी संक्षिप्त कहानी है। अब आपकी कुछ सेवाओंकी चर्चा की जाती है:—

लोकसेवा

गौड़ हितकारी—जबसे आप अपने पैरोंपर खड़े होनेके योग्य हुए तभीसे लोकसेवा रूपी यज्ञ नित्य अपनी शक्तिके बाहर होकर करतेरहे। आप चित्रगुप्तवंशीय कायस्थोंकी १२ उपजातियोंकी गौड़ उपजातिके रत्न थे। गौड़ कायस्थों की संख्या बहुत थोड़ी है और वह भी भारतवर्षके दूर-दूर प्रान्तोंमें फैली हुई है जिससे ब्याह-शादीकी कठिनाइयोंके कारण अनेक कुरीतियाँ प्रचलित हो गई थीं इसलिए आपका ध्यान पहले अपनी बिरादरीको ही सुधारनेकी ओर गया। इसलिए संवत् १९६१ में उर्दूमें 'गौड़ हितकारी' मासिक पत्र निकाला जिसके अधिकांश लेख आप स्वयमही लिखते थे और प्रूफ संशोधन आदिक कामभी करते थे। छपाने और बाहर भेजनेमें जो कुछ ख़र्च पड़ता था वही दो चार सज्जनोंसे लेकर शेष सज्जनोंको यह पत्र मुफ़्त भेजा जाता था। जबतक कायस्थ पाठशालामें थे तबतक आप अपने नामसे इसका सम्पादन करते थे परन्तु म्योर सेंट्रल कॉलेजमें जानेपर अपने मित्रों और शिष्योंके नामसे वही आप करते रहे। इस प्रकार यह मासिक पत्र दस वर्षतक चलकर बंद हो गया। इधर कई वर्षोंसे अपने दूसरे

दामाद बा० व्रजबिहारीलाल गौड़की सहायतासे इसका सम्पादन फिर करने लगे थे। प्रथम दस वर्षके सम्पादन-का परिणाम यह हुआ कि गौड़ बिरादरीमें बड़ी जागृति हो गई और अन्तर्-उपजातीय विवाह भोजन आदि समाज-सुधारके कामोंमें बड़े-बड़े बुजुर्ग भी हाथ बटाने-को तैयार हो गये।

संवत् १९६७ में आपने "तज़किरै सुचारुवंशी" नामक गौड़ कायस्थोंके इतिहासको छपवाकर बिरादरी में बिना मूल्य बंटवाया। इस पुस्तकमें गौड़ कायस्थों-का इतिहास, स्थानों, कुटुम्बों और जनोंकी डाइरेक्टरी, ब्याह आदिके रीति-रिवाज और गीत लिखे गये हैं। इससे पता चलता है कि महाभारत, मनुस्मृति, मध्य-कालीन फ़ारसी और अँग्रेज़ीके इतिहासोंसे आपने कितना काम लिया है और इतिहासका भी अध्ययन अपने कितना किया था।

गृहलक्ष्मी—आपके सहपाठी और मित्र पं० सुदर्शना-चार्य प्रयागमें रहकर स्त्री-सम्बन्धी मासिक पत्रिका निकालने का उद्योग करने लगे। गौड़जी ने इसका उत्साह ही नहीं दिलाया, पूरा साथ भी दिया। इसके फलस्वरूप संवत् १९६७ के चैत्र मासमें "गृहलक्ष्मी" का प्रथम दर्शन हुआ। इसके प्रथम चार अंक प्राय: आप ही के हाथ-के लिखे हुये हैं। बादके गृहप्रबन्ध, विज्ञान, कपड़े रँगना, बालाध्ययन, नानीकी कहानी, यूरोपका संक्षिप्त इतिहास, जीवनचरित्र, आतमरामकी कहानी आदि विविध विषयोंपर अनेक लेख रामदास गौड़, एक एम० ए०, विज्ञानबाज, अब्दुल्लाह, नानी, लालबुझक्कड़ आदि नामोंसे बड़े ही मनोरंजक ढंगसे लिखे गये हैं। इसी कालमें आपने इन पंक्तियोंके लेखकको लेखन, कलाकी दीक्षा दी थी और पहला लेख 'रोगी सेवा' पर लिखाया था।

विज्ञान-परिषद्

हिन्दुस्तानी भाषाओं द्वारा सर्वसाधारणमें विज्ञान-का प्रचार करनेके लिए संवत् १९७० (१९१३ ई०) में म्योर सेन्ट्रल कॉलेजके कुछ अध्यापकों और अपने पुराने शिष्योंके सहयोगसे **विज्ञान परिषद्** (वर्नाक्यू-लर साइंटिफिक लिटरेरी सोसाइटी) की स्थापना की। उद्देश यह था कि हिन्दी-उर्दूमें वैज्ञानिक पुस्तकें छपवा-कर तथा लोकप्रिय सचित्र व्याख्यानका प्रबन्ध करके सर्वसाधारणमें विज्ञानका प्रचार और वैज्ञानिक साहित्य-का निर्माण किया जाय। इसकी पूर्तिके लिए १९७२ वि० में लाला सीताराम और पं० श्रीधर पाठक जैसे हिन्दी साहित्यके बूढ़े महारथियोंको सम्पादककी गद्दीपर बिठाकर आपने

विज्ञान

नामक मासिक पत्रका आयोजन किया जिसके सम्पादनका सारा काम आप स्वयम् करते थे। इस कामके लिए आपने जो उद्योग किया उसका अनुमान आपके ६ फरवरी १९१५ ई० के लिखे पत्रसे हो सकता है जिसका आवश्यक उद्धरण नीचे दिया जाता है:—

"I am in extreme difficulties about articles, contributors where-of are rare owing to field being quite new. Except yours I have had to labour much with the few I have received. I cannot write a large number of articles while procuring articles from others ......It is a tremendous task and calls for a real and enormous self sacrifice from a dozen men-devoting the whole of the time spared from purely bread work to this task for at least six months .....We build now and when the edifice is ready then and then only we retire.

"Out of the dozen needed I am one and have the heavy duty of procuring my eleven. The first man in my view is yourself. Now will you give me your whole time of six months—the time you spare after the bare necessities of bread and body (school, taking food and necessary exercise and sleep) are met with. I have issued a circular letter to lots of men before and now with little response. We have to *create literature* and before doing so we have to *create writers* as well and to do so *we have to show them the way.* Hence difficulty. Sacrifice everything—your tuition of Sharada Prasad too; have this work alone and let me have soon your *yea.*"

अर्थात् "लेखोंके लिये बड़ी कठिनाई है क्योंकि विषय की नवीनताके कारण लेखकोंकी बहुत कमी है। तुम्हारे लेखोंको छोड़कर जो थोड़े-से लेख मिलते हैं उनको शुद्ध करनेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। दूसरोंके लेखोंको प्राप्त करने और सुधारनेमें अधिक समय लग जानेके कारण मैं स्वयम् बहुत नहीं लिख सकता। काम भारी है और इसके लिए एक दर्जन सच्चे स्वार्थ-त्यागी सज्जनोंकी आवश्यकता है जो रोटी कमानेके आवश्यक कार्य करनेके बाद अपना सारा अवकाश कम-से-कम ६ महीनेतक इस कामके लिए अर्पण कर दें। इस समय हम नींव डाल रहे हैं और जबतक पूरा महल तैयार नहीं हो जायगा हम इससे नहीं हटेंगे।

"ऐसे एक दर्जन मनुष्योंमें एक मैं हूँ और अपने ग्यारहकी खोजमें हूँ। मेरी निगाहमें तुम पहले आते हो क्या तुम छ:मासतक अपना सारा अवकाश जो रोटी कमाने और स्वास्थ्य-साधनके कार्योंसे (स्कूल, भोजन, व्यायाम, नींद) बचता हो दे सकते हो? पहले और अब भी बहुतसे सज्जनोंको लिखा परन्तु कुछ ही लोगोंने ध्यान दिया। हमको साहित्यका **निर्माण** करना है और इसके पहले **लेखकोंको तैयार** करना है और ऐसा करनेके लिए हमें उनको **मार्ग दिखाना** है, इसीलिए कठिनाई पड़ रही है। प्रत्येक कामका त्याग करो; शारदा-प्रसादका पढ़ाना भी छोड़ दो—और केवल इसी काम-को करो और मुझे तुरन्त अपनी स्वीकृत भेजो।

"इस उद्धरणसे सिद्ध होता है कि आप धुनके कितने पक्के थे और जिस कामको हाथमें लेते थे उसके लिए अपना तन-मन-धन सभी अर्पणकर देते थे और अपने मित्रों तथा शिष्योंको भी अपने साथ चलनेकी प्रेरणा करते थे। विज्ञान परिषद्की स्थापना तथा 'विज्ञान' और स्कूलोंमें पढ़ायी जाने योग्य पुस्तकोंका प्रकाशन करनेमें आपने बड़ी ही दूरदर्शिताका काम किया था। यदि यह काम न हुआ होता तो आजकल भाषामें विज्ञानका पढ़ना-पढ़ाना इतना सुलभ न हो जाता और न इतने लेखक ही दिखलाई देते जैसे आजकल हैं।

इस पत्रसे यह भी पता चलता है कि जो पुरुष औरोंको इस प्रकारका काम करनेकी प्रेरणा करता है वह स्वयम् कितने परिश्रमसे काम करता होगा। इसका फल यह हुआ कि 'विज्ञान' आरंभ करनेके चार ही पाँच मास पीछे इतने अस्वस्थ हो गये कि आपको सब काम छोड़कर कई मासके लिए छुट्टी लेनी पड़ी जैसा कि नीचे लिखे उद्धरणसे प्रकट होता है—

"हमें आशा थी कि जिन महात्माके प्रयत्नसे 'विज्ञान' परिषद्की स्थापना हुई और जिन्होंने परिषत्के मंत्री रूपमें न मालूम उसकी कितनी सेवा की उन्हीं महानु-भाव बाबू रामदास गौड़ एम० ए० की असीम विद्वत्ता और पूर्णानुभवसे हम लोग 'विज्ञान' की इस बाल्य-दशामें बहुत कुछ लाभ उठाते रहेंगे। परन्तु यह आशा दुराशामात्र निकली। साधारण परिस्थितिमें रहकर उन्होंने जिस पांडित्य लाभ और देश-हितैषी कार्योंमें तत्परताके कारण अपने शरीरको भुला-सा दिया था

उसीने गौड़ बाबूके स्वास्थ्यको सत्यानाश कर डाला है। ···आप कोई चार महीनेसे छुट्टीपर हैं परन्तु अभीतक आपकी पीड़ा कुछ भी कम नहीं हुई। अब आप छः महीनेकी छुट्टी लेकर प्रयाग छोड़ बनारस जानेवाले हैं।...जब तक गौड़जीका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक न हो जाय हम प्रार्थना करते हैं कि कोई सज्जन परिषत्-सम्बन्धी पत्र व्यवहार आपसे न करें।" विज्ञान भाग १ संख्या ६ ॥

गौड़ महोदयकी इस तपस्याका यह प्रभाव था कि 'विज्ञान' घाटा उठाते हुए भी २३ वर्षसे अवैतनिक सम्पादकों द्वारा बराबर चल रहा है। पं० गोपाल-स्वरूप भार्गव, प्रो० ब्रजराज, डाक्टर सत्यप्रकाश आदि ने इसके लिए जितना काम किया वह भुलाया नहीं जा सकता। पं० शालिग्राम भार्गव परिषत् तथा विज्ञान-का संचालन आरंभसे लेकर अबतक उसी लगनसे करते आ रहे हैं। आशा है कि आप लोग तथा अन्य नवीन सम्पादकगण गौड़जीके इन दोनों स्मारकोंको और भी उपयोगी तथा लोकप्रिय बनानेका प्रयत्न करेंगे।

आरंभमें कई वर्षतक इस परिषत्की कार्रवाई अंग्रेज़ीमें लिखी पढ़ी जाती थी क्योंकि अधिकांश पदाधि-कारी म्योर कॉलेजके प्रोफेसर थे। जब चार वर्षतक यह काम सफलता पूर्वक चलता रहा तब आपने चाहा कि यह काम अपनी भाषामें हुआ करे परन्तु यह स्वीकार नहीं किया गया। तब आपने अपना त्यागपत्र भेज दिया। इस सम्बन्ध में आप ६।१२।७४ के पत्रमें लिखते हैं:—

"मैंने गत अधिवेशनमें परिषत्की कार्यविवरिणी अंग्रेज़ीमें लिखी जानेपर आपत्ति की थी। यह बात पहले ही तय हो चुकी थी कि हिन्दी वा उर्दू वा दोनोंमें रिपोर्ट लिखी जाय। यह आपत्ति पुरानी है। मुझे इस प्रयत्नमें सफलता नहीं मिली इसलिए निष्क्रिय प्रतिरोध-के रूपमें मैंने त्याग-पत्र भेज दिया है जिसे मैं लौटा सकता हूँ यदि कार्रवाई हिन्दीमें या अन्य किसी देशी भाषामें लिखी-पढ़ी जाने लगे। यह विषय कौंसिलमें और साधारण अधिवेशनमें भी अगली बार उपस्थित होगा, इसपर जो राय उचित समझें सो दें। मैं यह इसलिए नहीं लिख रहा हूँ कि आपको पक्षपाती बनाऊँ। लिखनेकी आवश्यकता यों पड़ी कि मेरे त्याग-पत्रका नोटिसमात्र पढ़कर आप चौंक न उठें और कोई भ्रम न उत्पन्न हो।"

इस संबंधमें आप और अन्य सदस्योंके बीच कुछ मनोमालिन्य भी हो गया था परन्तु आपने कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे परिषद् या 'विज्ञान' के कार्यमें विघ्न उपस्थित हो। आपने सेवाभावसे इस संस्थाको चलाया था और जब देखा कि इसका कार्य योग्य सज्जनोंके हाथ-में रहकर बराबर चलता रहेगा तब प्रत्यक्ष रूपसे इससे अलग होगये परन्तु इसके साथ अपनी सहानुभूति कम नहीं की। दो वर्षके अंदर ही आप परिषत्के सदस्य फिर हो गये जैसा कि १६।८।७६ के पत्रसे प्रकट होता है :—

"·······उन लोगोंने आश्वासन दिया कि अब सभी कार्रवाई हिन्दीमें ही होगी और होती है। इसपर मैंने परिषत्का सदस्य होना स्वीकार कर लिया है।"

इधर चार-पाँच वर्षसे आप 'विज्ञान' के अवैतनिक प्रधान सम्पादक हो गये थे। इस समय भी आपने इसे लोकप्रिय बनानेका पूरा प्रयत्न किया। इसके दो विशे-षांक निकाले और पुराने लेखकोंको फिर लिखनेकी प्रेरणा की। मृत्युसे केवल डेढ़-दो मास पूर्व इस पदसे अलग हो गये थे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयागके निवासकालमें आपने हिन्दी साहित्य-सम्मे-लनका भी काम किया है। सम्मेलनकी परीक्षाओंका आरंभ आप ही के समयमें हुआ था और आप ही इसके प्रथम संयोजक (परीक्षामंत्री) बनाये गये थे। परीक्षा-के नियम और पाठ्यक्रम निश्चय करनेमें आपका बड़ा हाथ था। दो तीन वर्षतक काम करनेके बाद आपने इसका भार प्रो० ब्रजराजजीको सौंप दिया जो कई वर्षतक इसके परीक्षामंत्री रहे और काशी चले आये।

हिन्दू विश्वविद्यालय

काशीमें दो-तीन वर्षतक हिन्दू विश्वविद्यालयमें काम किया और वहाँ भी हिन्दू माध्यम द्वारा शिक्षा देनेका प्रस्ताव उपस्थित किया और एंट्रेंसतकका पाठ्यक्रम निश्चय किया। उस समय तो यह कार्यरूपमें नहीं लाया गया परन्तु वहाँ भी यह सिद्धान्त मान लिया गया है।

ज्ञानमण्डल

विश्वविद्यालयसे अलग होकर आपने 'ज्ञानमण्डल' के प्रकाशन-विभागके अध्यक्षका काम भी दो वर्षके लगभग किया। इसी कालमें आपने पं० हरिमङ्गल मिश्र लिखित प्राचीन भारतका इतिहास अपना वैज्ञानिक 'अद्वैतवाद' तथा पं० पद्मसिंह शर्माजीको काशी बुलाकर और बिहारी सतसईके संजीवन भाष्य प्रथम भागको लिखवाकर प्रकाशित किया। सौर पञ्चाङ्ग और सौर रोज़नामचाका रूप भी आप ही ने स्थिर किया था।

काशी म्यूनिसिपलबोर्डके शिक्षाध्यक्षके पदसे आपने उसके शिक्षा-विभागमें कई उपयोगी सुधार किये और प्राथमिक शिक्षाको बहुत कुछ व्यवहारिक बना दिया। इसी समय आपने 'ईश्वरीय न्याय' नामक नाटककी रचना की थी।

शिक्षा संबंधी विचार

पहले आप उच्च शिक्षाके बड़े पक्षपाती थे। इन पंक्तियोंके लेखकको यदि आपका प्रोत्साहन न होता तो एंट्रेंस पास करनेके बाद आगे पढ़नेका शायद ही विचार होता। आप कहा करते थे कि धार्मिक अथवा सामाजिक सुधार करनेके लिए उच्च शिक्षाकी बड़ी आवश्यकता है। परन्तु पीछे आपके विचार कुछ बदल गये थे। एन्ट्रेंसतकके पाठ्यक्रमके संबंधमें आपने श्रावण कृष्ण १४ सं० १९७४ के पत्रमें अपना संक्षिप्त मत लिख भेजा था जिसका सार यह है :—

गणित—छोटे-छोटे दरजोंमें अधिक है। साधारण भिन्नके बड़े-बड़े प्रश्न अनावश्यक हैं। दशमलव भिन्नसे सब काम चल सकता है। इसका मापन भाग अधिकांशमें विज्ञानका अंग करके कोर्स और भी कम किया जा सकता है।

भूगोल—अपने गाँवमें जिला आदिके सिवा प्रान्तमात्रपर अधिक ज़ोर देनेकी आवश्यकता नहीं है। जिलेके बाद भारतका भूगोल और तदन्तर संसार और प्रकृतिका भूगोल होना चाहिए।

साहित्य—हिन्दी भाषाकी शिक्षा उत्तरोत्तर कठिन होते-होते मिडिलमें साम्प्रतिक मैट्रिकका कोर्स आ जाना चाहिए। प्रथम (एन्ट्रेन्स) के लिए सम्मेलनकी प्रथमासे किंचित कठिन कर देना होगा।

आलेख्य—ड्राइंगपर पहले चार-पाँच दरजोंतक ही जोर दिया जाय। कला सीखनेवालेको इसके आगे आर्टस स्कूलमें सीखना चाहिए। चार दरजोंमें इतनी ड्राइंग हो कि साम्प्रतिक ६ दरजोंके बराबर हो।

अँग्रेज़ी—दूसरी भाषाके स्थानमें पढ़ाई जाय। ऐच्छिक हो। मैट्रिककी अपेक्षा कुछ सरल हो। उद्देश यह कि अपनी प्रथमाको पास करनेवाला व्यवहारिक अँग्रेज़ी जाने। Technical पुस्तक पढ़कर कुछ उद्योगसे समझ सके। उसे अंग्रेज़ीका स्कोलर बनाना अभीष्ट नहीं है।

संस्कृत या विज्ञान अनिवार्य हो। सांप्रतिक इंटरमीडिएटके परिमाणकी वैज्ञानिक शिक्षा प्रथमामें सम्मिलित होनी चाहिए।

इतिहासके छोटे ग्रन्थ छोटे दरजोंमें Rapid reading Course रहें। मिडिलमें भारतवर्षका बड़ा इतिहास और प्रथमामें भारत, इंगलैंड तथा जापानका इतिहास हो।

आवश्यक नहीं कि दस कक्षाओंमें काम बंटे। छः कक्षाओंमें पूर्ण होना चाहिए। प्रथमा छठीं कक्षाकी होगी। Double Promotion तथा

Quarterly और Half yearly-promotions की रीति मिडिलतक रक्खी जाय।

आठ वर्षका लड़का पहलीसे १४ वर्षकी अवस्थातक छठी कक्षा (प्रथमा) में पहुँचे। पर इससे पहले पहुँचनेमें बाधा न हो।

अक्षर, गिनती, पहाड़े, साधारण लिखना आदिकी कक्षा इनसे अलग हो जिसे 'बाल-विलास' कक्षा वा 'Kinder-garten class' कहा जाय जिसमें ५ वर्षके बच्चे भी भरती हो सकें।"

भारतीय सभ्यता संबंधी विचार

आप पाश्चात्य विद्वानोंके इस सिद्धान्तको नहीं मानते थे कि भारतीय-आर्य मध्य एशियासे आकर यहाँ बसे। आप मनुस्मृतिके

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥
(अध्याय २ श्लोक २०)

को सत्य मानते थे और कहते थे कि भारतीय सभ्यता लाखों वर्षकी पुरानी है। पुराणोंकी बहुत-सी कथाओंका विचित्र अर्थ करते थे। मत्स्य, कच्छ, नृसिंह आदि अवतारोंको विकासवादके सिद्धान्तोंसे सिद्ध करते थे। भारतीय सभ्यताकी प्राचीनताको सिद्ध करनेके लिए जितनी पुस्तकें छपती थीं उन्हें बड़े ध्यानसे पढ़ते थे। पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैटको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे क्योंकि शास्त्रीजीने अपने 'वेदकाल-निर्णय' ग्रन्थमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वेदोंका काल बहुत प्राचीन है।

धार्मिक विचार

चार-पाँच वर्षकी अवस्थासे ही आपको हिन्दी तथा रामचरितमानससे अनुराग हुआ क्योंकि आपकी माता और नानी नित्य नियम-पूर्वक रायायणका पाठ किया करती थीं। इसका प्रभाव बालक रामदासपर इतना पड़ा कि दस-बारह वर्षकी अवस्थामें ही आपको रामायणका अधिकांश कंठ हो गया। उसी समय इसका पाठ और अर्थ ऐसा करते थे कि सुननेवाले मुग्ध हो जाते थे। दस वर्षकी अवस्थामें ही आपने पाँच-छः सौ पद्योंकी एक संक्षिप्त रामायण भी लिख डाली थी। इधर तो आप रामचरितमानसके मर्मज्ञ विद्वान समझे जाते थे और इसकी कथा कहते समय कठिन-कठिन दोहों-चौपाइयोंका अनूठा अर्थ करते थे। हिन्दी-पुस्तक-एजेंसीसे प्रकाशित 'रामचरितमानसकी भूमिका' इसका प्रमाण है। आप इसकी अच्छी टीका भी लिखनेकी इच्छा रखते थे और शायद बालकांडकी टीका कर भी चुके थे परन्तु प्रकाशकोंके अभावसे इस अभिलाषाको पूरी नहीं कर सके।

आपका धार्मिक विचार रामचरितमानसके सिद्धांतसे मिलता-जुलता है। आप भक्ति-भाव-समन्वित शुद्धाद्वैतके माननेवाले थे। धम्मपद, बाइबिल, कुरान सबको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। प्रयागमें जबतक थे पूजा-पाठकी ओर बहुत कम ध्यान देते थे, साहित्य-सेवा और स्वाध्यायको ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। जन्माष्टमी, रामनवमी और प्रबोधिनी-एकादशीको व्रत अवश्य रखते थे। हिन्दू-कॉलेजमें शिक्षा पाते तथा डाक्टर रिचर्डसन और एफ० टी० ब्रुक्सके सत्संगके कारण आप भी थियोसोफिस्ट हो गये थे और कुछ दिनतक इनकी साप्ताहिक और मासिक बैठकोंमें शरीक होते थे जहाँ गीता, रामायण और वेदान्त सम्बन्धी विषयोंपर अपने विचार प्रकट करते थे। परन्तु काशीमें आकर घरेलू-रोगोंके सम्बन्धमें आपको कुछ ऐसे अनुभव हुए जिनसे आप पूजा-पाठकी ओर खिंचे और मूर्त्ति-पूजाके कायल हो गये।

आपका विवाह संवत् १९६४ के ज्येष्ठ कृष्णमें हुआ था। तबसे २० वर्षके भीतर संतानें बहुत हुईं परन्तु बची केवल दो। आपकी धर्मपत्नी सदैव बीमार रहा करती थीं, बेहोशीकी बीमारी अक्सर हो जाती थी। दोनों लड़कियाँ भी ऐसे ही रोगोंसे दुखी रहती थीं। इन्हीं आपत्तियोंके निवारण करनेमें आपको अनुभव हुआ कि यह सब प्रेत-बाधाके कारण हो रहा है। आपका विश्वास था कि सूक्ष्म-शरीरमें रहनेवाले प्रेतोंका भी

लोक है। इनमें भी कोई चोर होते हैं, कोई डाकू, कोई दुष्ट और कोई संत। यह भी अपराध करते हैं और दंड पाते हैं। भगवानूका विधि-पूर्वक भजन-पूजा करनेसे, गायत्री, राम-नाम आदिमंत्रोंको जपनेसे, गीता, रामायण दुर्गा सप्तशती आदिका पाठ करनेसे प्रेतबाधाका निवारण होता है। इसीलिए आपने अपने घरमें भगवान् रामचन्द्रकी मूर्त्ति स्थापित की थी जहाँ नित्य नियमपूर्वक पूजा, आरती स्वयम् करते थे और स्वस्थ होने या बाहर जानेपर औरोंसे करवाते थे। आरती करते समय इतने तल्लीन हो जाते थे कि मालूम ही नहीं होता था कि आप विज्ञानके पंडित हैं।

आपके इसी मतके कारण बहुत-से लोग आपको ढोंगी और अवैज्ञानिक समझते थे और आपका उतना सम्मान नहीं करते थे जितनेके आप अनेक विषयोंकी गंभीर विद्वत्ता, निस्वार्थ साहित्य तथा देश-सेवा, अनोखी लेखन-शैली तथा विलक्षण वक्तृत्व-शक्तिके कारण अधिकारी थे। परन्तु आप निर्भीक इतने थे कि जिस बातको समझते थे उसको प्रकट करनेमें तनिक भी संकोच नहीं करते थे चाहे आपकी निन्दा ही क्यों न हो। सच्चे वैज्ञानिकका यही लक्षण है। यह तो अब बहुत-से विद्वान मानने लगे हैं कि इस दृश्य सृष्टिके सिवा अदृश्य सृष्टि भी है और उसका बहुत कुछ अनुसन्धान करना है। प्रेत भी अदृश्य सृष्टिमें हैं और हमारे ग्रन्थोंमें भी इनकी चर्चा अनेक स्थानोंपर है इसलिए इनके संबंधमें भी अनुसन्धान करना अनुचित नहीं है। फिर यह समझ लेना कि गौड़ जी जैसे सच्चे, निर्भीक और स्वार्थ-त्यागी पुरुष निराधार बातें कहते थे उनके प्रति बड़ा अन्याय है। जैसे गणित और भौतिक विज्ञानके कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं कि उनको दो-चार चोटीके विद्वानोंके सिवा बहुत कम लोग समझ पाते हैं वैसे ही प्रेत-लोकके बारेमें भी क्यों न समझा जाय।

सामाजिक विचार

परन्तु उपर्युक्त धार्मिक विचारसे यह न समझ लेना चाहिए कि आप रूढ़ियोंके गुलाम थे। आपके भोजन संबंधी विचार बड़े उदार थे। प्रचलित वर्ण-व्यवस्थामें भी आप कुछ सुधार चाहते थे परन्तु जात पाँतको बिलकुल तोड़ देनेको उचित नहीं समझते थे। ब्याह शादी, मुंडन, छेदन आदि संस्कारोंको आवश्यक समझते थे परन्तु अपव्ययके विरोधी थे। नाच, आतश-बाजी, फुलवाड़ी, दहेजकी ठहरौनी आदिको बहुत बुरा समझते थे और ऐसी बरातोंमें शरीक भी नहीं होते थे जहाँ इनको प्रधानता दी जाती थी। बाल विधवाओंके पुनर्विवाहमें दोष नहीं समझते थे। यदि कोई हिन्दू विधर्मी हो गया हो और वह फिर हिन्दू धर्ममें आना चाहता हो तो उसको शुद्ध कर लेनेमें कोई दोष नहीं समझते थे। पाश्चात्य वेष-भूषा और रहन-सहन अत्यन्त ख़र्चीला समझकर पसन्द नहीं करते थे। म्योर कॉलेजमें नौकरी करते हुए भी घरपर मेज कुरसीका बहुत आडम्बर नहीं रखते थे। लिखने-पढ़नेका काम सदा भूमिपर बैठकर करते थे।

समालोचक

यह तो बतलाया ही जा चुका है कि आप नये लेखकोंको कितना प्रोत्साहित करते थे। पुस्तक और पत्रिकाओंकी समालोचना सहानुभूतिपूर्वक करते थे और उत्साह बढ़ानेके लिए कुछ अधिक प्रशंसा कर दिया करते थे। आपके इस गुणसे कुछ लोगोंने प्रशंसावाली बातका डंका पीटकर अनुचित लाभ भी उठाया है।

वक्ता

गौड़जी वार्तालाप करनेमें बड़े पटु थे। इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व, धर्म, विज्ञान, भाषा, शिक्षा आदि अनेक विषयोंपर आप घंटों वार्तालाप कर सकते थे और व्याख्यान दे सकते थे। लिखने और बोलने दोनोंकी शैली ऐसी थी कि पढ़ने और सुननेवाले मुग्ध हो जाते थे और यही चाहते कि और लिखते या बोलते तो अच्छा था। व्यङ्गात्मक लेख लिखने या शिष्ट मज़ाक करनेमें वह सिद्धहस्त थे। इन पंक्तियोंका लेखक

तो जब कभी एक दिनके लिए आपके दर्शनार्थ काशी जाता था तब उसका अधिकांश समय आपके वचनामृत-का पान करनेमें ही निकल जाता था और वह किसी और सज्जनसे मिल नहीं पाता था। पं० श्रीधर पाठक, पं० पद्मसिंह शर्मा, शारदा-सम्पादक प० चन्द्रशेखर शास्त्री आदि साहित्यके विद्वानोंसे आपकी बड़ी मैत्री थी। आप लोगोंसे जो पत्र-व्यवहार होता था वह बड़ा ही साहित्यिक होता था।

कवि

आप कवि भी थे। आपकी दस या बारह वर्षकी अवस्थामें लिखी संक्षिप्त रामायणकी चर्चा हो चुकी है। स्वप्नादर्शकी रचना भी इसीके लगभग हुई थी जो अप्रकाशित है। १३-१४ वर्षकी अवस्थासे आपकी कविताएँ रसिक 'वाटिका' में छपती रही हैं जिनका संशोधन राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण' करते थे इसलिए आप 'पूर्ण' जी को अपना कविता-गुरु मानते थे। १८, २० वर्षकी अवस्थाकी कविताएँ 'छत्तीसगढ़ मित्र' में छपा करती थीं जिनमेंसे कुछ इंडियन प्रेसकी कविता कुसुम-माला में ली गई थीं, आपका उपनाम 'रस' था। 'गृहलक्ष्मी' तथा 'विज्ञान' में भी आपकी कविताएँ निकली हैं।

स्वास्थ्य-विज्ञान

आयुर्वेद, होमियोपैथी, जलचिकित्सा तथा बायोकेमिक प्रणालियोंके आप अच्छे ज्ञाता थे और इनपर अनेक लेख तथा कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं। काशीके आयुर्वेद-सम्मेलनमें पंचभूत तथा त्रिदोषपर दिये हुए व्याख्यानोंसे विदित होता है कि आप इस विषयके भी कितने पंडित थे।

व्यवहारिक निपुणता

घरके छोटे-मोटे काम स्वयं कर लेनेको बुरा नहीं समझते थे। जो काम करते थे उसे सुन्दरताके साथ करते थे। घरपर स्वयं साबुन तैयार करके उसीसे अपने कपड़े साफ़ कर लेते थे। जल्दी-जल्दी लिखते थे तब भी अक्षर स्पष्ट होते थे। एक तरफ लिखे या छपे हुए रद्दी कागजको भी लेख लिखनेके काममें ले आते थे। इधर रजिस्टरीका खर्च बचानेके लिए पत्र या पैकेट को दो एक पैसेका टिकट कम लगाकर भेजते थे। इस वर्ष कई पत्र और पैकेट मेरे पास आये जिनमेंसे एकमें इस प्रकार बैरंग भेजनेकी सूचना भी दे दी थी।

काम करनेका ढंग

गौड़जी ने जो कुछ साहित्य और देशसेवा की है उसको अधिकांश उस अवकाशमें की है जो जीविकोपार्जनकी मुख्य सेवा करनेके बाद मिलता था। इसलिए इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि आपने अपने सिरपर कितने बोझ उठा रक्खे थे, यह आँखों देखी बात है कि कायस्थ पाठशाला या म्योर कॉलेजमें ६-७ घंटे काम करनेके बाद आप सीधे ही उस प्रेसको चले जाते थे जहाँ आपकी पुस्तकें या पत्रिकाएँ छपा करती थीं और वहाँ घंटे-दो-घंटे प्रूफका संशोधन करके तब घर आते थे। घरपर भी ख़ाली नहीं बैठते थे। काम करने या मित्रोंसे वार्त्तालाप करनेमें अपने शरीरकी आवश्यकताओंको भी भूल जाते थे। और व्यायाम करने या प्रातः सायं टहलनेका समय भी नहीं निकाल सकते थे। हाँ, कभी कभी दिल बहलानेके-लिए सितार या हारमोनियम बजा लेते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि शिरोरोग, दिलकी धड़कन आदि रोगोंने आपपर स्थायी अधिकार कर लिया। परन्तु आप इतने दृढ़ विचारके थे कि साधारण शारीरिक कष्टोंमें भी काम करनेसे चूकते नहीं थे और एकाग्र चित्त होकर लिखने पढ़नेका काम कर लिया करते थे। रेलकी यात्रामें भी लिखने पढ़नेका सामान अपने साथ रखते थे और रेलपर बैठे हुए लेख लिखा करते थे।

परन्तु जबसे आपने नौकरी करना छोड़ दिया और केवल लेख या पुस्तकें लिखकर जीविकोपार्जन करने लगे तबसे शारीरिक कष्टों और पारिवारिक झंझटोंके साथ आर्थिक चिंताओंने भी आपका पीछा कर लिया। फुटकर लेखोंसे स्थायी साहित्यिक निर्माण भी नहीं हो

पाया, बहुत-सी उपयोगी लेख मालाएँ अधूरी रह गईं, परिश्रम अधिक करना पड़ता था, मजदूरी कम मिलती थी क्योंकि हिन्दीमें लेखोंका मूल्य बहुधा पृष्ठ संख्याके अनुसार आँका जाता है, विषयकी गहराईके अनुसार नहीं। प्रकाशक लोग भी उनसे सन्तुष्ट नहीं रहते थे क्योंकि जीविकाका मुख्य साधन होनेके कारण पहलेसे बिना मूल्य ठहराये कोई काम हाथमें नहीं लेते थे। इसीलिए अपने तथा अपने आश्रितोंकी शरीर-रक्षाके लिए स्वास्थ्यप्रद भोजन जुटानेमें भी आप कभी-कभी असमर्थ हो जाते थे। परन्तु स्वाभिमानी इतने थे कि यह बात किसीको प्रकट नहीं होने देते थे। इन्हीं शारीरिक, आर्थिक और मानसिक कष्टोंसे लगातार युद्ध करनेके कारण आपका शरीर जर्जर हो गया था जिससे ५६ वर्षकी ही अवस्थामें आप इस लोकको त्यागकर चले गये।

रचनाएँ

आपकी सबसे पहली रचना सं० १९६२ में काशी नागरी प्रचारिणी सभाके लिए हुई थी। इसमें हिन्दीके समस्त ज्ञान ग्रन्थकारोंकी सूची ग्रन्थके नाम, निर्माण-काल, कविका संक्षिप्त वृत्तसहित वर्णाक्रमसे सं० १९६२ तकके अनेक ग्रन्थों और रिपोर्टों आदिसे संकलित की गई थी। परन्तु यह प्रकाशित नहीं की गई। अन्य ग्रन्थोंमें, (२) तजकिरै सुचारुवंशी, (३) भारीश्रम, (४) यूरोपका संक्षिप्त इतिहास, (५) वनिता बुद्धि विलास, (६) वैज्ञानिक अद्वैतवाद, (७) ईश्वरीय न्याय, (८) रामचरित मानसकी भूमिका, (९) मुखाकृति विज्ञान, (१०) विज्ञान हस्तामलक, और (११) हिन्दुत्व मुख्य हैं।

बालक-बालिकाओंके लिए हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी, इन्डियन प्रेस आदिके द्वारा साहित्य और विज्ञानकी बहुत-सी पुस्तकमालाएँ गुप्त और प्रकट नामोंसे आपने प्रकाशित की थीं। 'आतमरामकी कहानी' में भूगर्भ तथा सृष्टिविज्ञान, 'भुनगापुराण' में कीड़े-मकोड़ेका ज्ञान, 'रसायनसूत्र' में रसायन-विज्ञान आदिका आरंभ बड़ी ही सुन्दरताके साथ किया गया था परन्तु ये सब ग्रन्थ अधूरे रह गये। इनके सिवा आपने अनेक लम्बे-लम्बे और महत्त्वपूर्ण लेख साहित्य सम्मेलनकी लेखमाला, तथा प्राय: सभी वर्तमान मासिक और साप्ताहिक पत्रोंके साधारण तथा विशेषांकोंमें बिखरे पड़े हैं जिनको यदि एकत्र किया जाय तो हिन्दी-साहित्यका महान् उपकार हो सकता है।

उपसंहार

हिन्दीका दुर्भाग्य है कि इसका इतना बड़ा हिमायती और इसके भंडारको भरनेवाला सर्वतोमुखी-प्रतिभा-सम्पन्न-सेवक आर्थिक-सहायताके अभावमें वह स्थायी काम नहीं कर सका जिसके लिए वह सर्वथा योग्य था और जिससे हिन्दी-माताका सिर देश-देशान्तरोंमें भी ऊँचा उठ सकता था। हिन्दीमें भारतकी राष्ट्रभाषा बनानेके बहुत-से गुण हैं परन्तु कुछ प्रान्तीय भाषाओं-की तुलनामें इसका साहित्य अभीतक उस उच्चकोटिका नहीं हो पाया है जिससे यह सब प्रान्तवालोंको सर्वमान्य हो सके। जबतक यह भाषा सर्वाङ्ग-पूर्ण नहीं होगी तबतक इसको वह सम्मान नहीं प्राप्त हो सकता जो राष्ट्रभाषाके लिए अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इसको सर्वाङ्ग-पूर्ण करनेके लिए ऐसे विद्वानोंका आदर करना होगा जो अपनी विशेष प्रतिभाके कारण इसके अधिकारी हों और उनको जीवन-निर्वाहके झंझटोंसे भी मुक्त करना होगा। हमने श्रद्धेय रामदास गौड़का इतना आदर भी तो नहीं किया कि उनको हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका प्रधान सभापति बनाते। वे ऐसे पदोंके लिए लालायित नहीं थे और न इसको महत्वपूर्ण ही समझते थे। वे तो सेवा-भावसे अपना तन-मन-धन होम कर देना जानते थे। परन्तु हम लोगोंका तो कर्त्तव्य था कि हम पत्र पुष्पसे उनका सत्कार करते।

ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे।

मेरे कुछ संस्मरण

[ले०—श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ बी० ए०, सी० टी०]

पहले-पहल सन् १६२३ ई० की गरमीकी छुट्टियोंमें मुझे एक आवश्यक कार्यवश काशी जानेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ। वह मेरा विद्यार्थी-जीवन था। उस समय बिरादरीके कामोंसे मुझे विशेष प्रेम न था; किन्तु अपने उस थोड़े-से जीवनका अधिक भाग बिरादरीके वातावरणसे बाहर व्यतीत करनेके कारण मेरी यह उत्कट अभिलाषा अवश्य थी कि मैं अपनी बिरादरीके प्रमुख व्यक्तियोंसे भेंट करूँ और उनसे शिक्षा ग्रहण करूँ। इस विचारसे प्रेरित होकर मैंने काशीमें दो व्यक्तियोंसे परिचय प्राप्त करना चाहा। श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड़ (बेढब) से मैं पहलेसे परिचित था, किन्तु कभी बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अत: मैं अपने एक मित्रके साथ पहले उन्हींके यहाँ गया। अधिक परिचय होनेके कारण मैंने कुछ संकोच करते हुए उनसे अपनी शिक्षाके सम्बन्धमें सहायताकी प्रार्थना की। आर्थिक सहायता देना उनके लिए कठिन था; किन्तु उन्होंने अपने स्कूलमें मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी फीस माफ करा देनेका वचन दिया। उस समय मेरे लिए यही एक बड़ी सहायता थी। गौड़जीको उनकी इस महान कृपाके लिए धन्यवाद देकर हम लोग श्रद्धेय रामदास गौड़के घरपर गये। मेरे मित्र उनसे भली-भाँति परिचित थे। उस दिन वह अपनी ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती शान्तीदेवीके विवाह-कार्यसे छुट्टी पाकर बैठकमें बैठे हुए अतिथोंसे बरातियोंकी नाज़बरदारीके विषयमें बातचीत कर रहे थे। हम लोगोंको देखकर वह तुरन्त उठ खड़े हुए और गले लगकर मिले। मुझे उन्होंने न पहिचानकर मेरे मित्रसे परिचय प्राप्त करके बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। थोड़ी देरमें जल पान करनेके पश्चात् इधर-उधरकी बातें करके हम लोग अपने घर लौट आये।

गौड़ जातिका इतिहास

रातमें सोते समय मेरे सम्बन्धीने मुझे गौड़जीकी योग्यताके विषयमें बहुत-सी बातें बताईं जिनसे प्रभावित होकर दूसरे दिन मैं उनसे फिर मिलने गया। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने पास बिठाकर मेरी शिक्षाके विषयमें कई बातें मुझसे पूछीं और प्रोत्साहन दिया। इसके बाद वह भीतरसे एक पुस्तक उठा लाये जिसके टाइटिल पेजपर 'तज़किर-ए-सुचारु वंशी' लिखा हुआ था। उस समय मैंने उस पुस्तकके लानेका रहस्य न समझा; किन्तु जब उन्होंने मेरे पिता और अन्य सम्बन्धियोंका नाम बताना शुरू किया तब मैं आश्चर्यमें पड़ गया। अब तो मुझे उस पुस्तकके विषयमें जाननेकी उत्कट इच्छा हुई। मेरे पूछनेपर उन्होंने उसका संक्षिप्त इतिहास बताया जिसे सुनकर मैंने उनके हृदयमें सजातीय भाइयोंके प्रति अगाध अनुरागका होना अनुभव किया। तज़किर-ए-सुचारु वंशीमें उन्होंने गंभीर-अध्ययन एवं बड़ी खोजके पश्चात् गौड़ कायस्थोंका इतिहास लिखा है। इसमें उन स्थानोंका भी भौगोलिक एवं एतिहासिक वर्णन है जहाँ सुचारुवंशी-गौड़-कायस्थोंकी बस्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्थानके लोगोंका ख़ानदानी शजरा भी दिया गया है। सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए जन्मसे लेकर विवाहतकके कुल रीति-रिवाज हिन्दी भाषामें लिखे गये हैं। वास्तवमें यह पुस्तक गौड़ कायस्थोंके लिए Encyclopaedia का काम देती है। इसके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें गौड़जीको कितना कठिन परिश्रम करना पड़ा होगा। जबतक संसारमें गौड़ कायस्थ वंशजोंका नाम रहेगा तबतक उनका नाम बड़े आदर एवं श्रद्धाके

साथ स्मरण किया जायगा। सचमुच उनकी केवल यही कृति उन्हें अमर बनानेके लिए पर्याप्त है।

जातिका बहिष्कार

*तज़किर-ए-सुचारु वंशीका प्रसंग समाप्त करनेके पश्चात उन्होंने कहा कि मैं बहुत दिनोंतक बिरादरीसे ख़ारिज रह चुका हूँ। जिन गौड़ भाइयोंके हितार्थ मैंने यह पुस्तक लिखी है उन्होंने यह कोशिश की कि मैं सदैवके लिए हिन्दू जातिसे प्रथक कर दिया जाऊँ; किन्तु जिसे मैं स्वयं नहीं छोड़ना चाहता था वह मुझे कैसे छोड़ सकता था। उस समय गौड़जीके मुखसे इतना सुन्दर एवं मधुर वाक्य सुनकर उनकी ओर मेरा हृदय खिंच गया। मुझे आये हुए अधिक देर हो चुकी थी। मैं जाना चाहता था; किन्तु उनकी बातोंसे यही प्रकट होता था कि अभी मेरी ओरसे उनका हृदय नहीं भरा है। गौड़जीको बातें करनेमें बड़ा मज़ा आता था। वह एक-एक बातको खूब समझाते हुए बातें करते थे।

राष्ट्रीय भावनायें

बिरादरीकी बातें समाप्त करनेके पश्चात उन्होंने आधुनिक शिक्षा-प्रणालीकी बहुत-सी त्रुटियाँ दिखाकर मुझे राष्ट्रीय शिक्षाकी ओर प्रोत्साहित किया। वह असहयोगका ज़माना था।। गौड़जीके पीछे दिन-रात पुलिस लगी रहती थी। इसलिए वह हर समय अपने मकानमें भीतरसे ताला बन्द करके बैठते थे। इस सम्बन्धमें अभी उन्होंने मुझे कई एक बातें बताईं। खेद है अब मुझे उन बातोंका स्मरण नहीं रहा। थोड़ी देरतक और इधर-उधरकी बातें करनेके पश्चात् मैं घर चला आया। चार घन्टेतक लगातार एक योग्य व्यक्तिके साथ बातचीत करनेके फलस्वरूप मैं अपने-आपमें एक नवीन परिवर्तन अनुभव करने लगा। उसी दिन शामको मैं काशीसे आज़मगढ़ चला गया।

*यह पुस्तक सं० १९६७ में उज्जैन-निवासी श्री प्रभूलाल गौड़ द्वारा प्रकाशित हुई थी। उर्दू-भाषाका विषय अनवार अहमदी प्रेस, प्रयाग और हिन्दी भाषा सुदर्शन प्रेस, प्रयागमें मुद्रित हुआ था।

सादा जीवन

उस दिन श्री बेढब जी को सामयिक सहायता तथा श्री गौड़जीके सत्संगने मुझपर ऐसा जादू कर दिया कि मैं कतिपय कठिनाइयोंके होते हुए भी काशीमें ही पढ़नेके लिए प्रयत्नशील हुआ और उसी वर्ष जुलाईमें अपने छोटे भाई श्री महेन्द्रसिंह गौड़के साथ आकर विद्याभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे सुविधाएँ हो गईं और हमारा कार्य बराबर चलता रहा। उस समय हम दोनों भाई अपने एक सम्बंधीके साथ औसानगंजमें रहते थे। बेढबजी तथा गौड़जी बड़ीपियरीपर रहते थे। यदि रोज़ नहीं तो दूसरे-तीसरे दिन मैं उनके दर्शनोंके लिए अवश्य जाया करता था। दोनों सज्जन मुझपर विशेष प्रेम रखते थे। बराबर आने-जानेका क्रम बने रहनेके कारण मैं उसी ओर खिंचता गया और थोड़े ही दिनोंमें मैंने वहीं एक मकान किराएपर लेकर रहना शुरू कर दिया। अब तो उनके यहाँ रोज़ आना-जाना होता था। मैं उन्हें हर समय हँसते हुए ही पाता था। उनकी रहन-सहन बहुत ही सादी थी। उस समय यद्यपि आर्थिक कठिनाईके कारण उन्हें कष्ट था, किन्तु उन्होंने अपना तथा अपने बालबच्चोंका जीवन इतना सरल बना लिया था कि धनका अभाव खलता ही न था। घरमें सभी लोग मोटा वस्त्र पहनते थे और मोटा खाना खाते थे। मैंने कई बार उनके साथ घरपर खाना भी खाया था। उनका भोजन सात्विक होता था। चटपटे भोजनसे उन्हें अभिरुचि न थी। माँस-मदिरा अथवा इसी प्रकारकी अन्य वस्तुएँ तो उन्होंने अपने जीवनमें कभी खाई न थीं। कई बार मैंने उन्हें दूधके साथ शिलाजीत खाते हुए देखा था। वह नित्य बहुत तड़के उठते थे और अपना सब काम समयपर करते थे। एक बार उन्होंने समयका सदुपयोग बताते हुए मुझसे कहा कि आजकल लोग भारतियोंको समयका दुरुपयोग करनेवाला बतलाकर यह कहा करते हैं कि यह हिन्दुस्तानी टाइम है। वह यह नहीं समझते कि हमारे यहाँ समयकी जितनी पाबन्दी थी उतनी संसारके किसी सभ्य देशमें नहीं थी; किन्तु जहाँ बहुत-सी गालियाँ

खानी पड़ती हैं वहाँ एक यह भी है। उनके राष्ट्रीय विचार बड़े पक्के थे। भारतीय सभ्यताको वह इस गिरी हुई दशामें भी बहुत अच्छा समझते थे। उनके पहनावेके सम्बंधमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वह सादे-से-सादा कपड़ा पहनते थे। मैंने उन्हें कोट तो कभी-कभी, पर कुरता-टोपी पहने हुए और गलेमें मालवीयजीकी भाँति एक दुपट्टा डाले हुए अधिक देखा था। जाड़ेके दिनोंमें वह कनटोप पहना करते थे। उन्हें पुरानी तर्ज़के कपड़ोंका शौक़ था। खद्दरसे उन्हें विशेष प्रेम था। वे स्वयं चरखा चलाते थे और बहुत बारीक सूत निकालते थे। उनके परिवारमें चरखा चलाना सभी जानते थे। मुझे भी उन्होंने सिखानेका प्रयत्न किया, किन्तु दुर्भाग्यवश मैं न सीख सका।

अध्ययनशील व्यक्ति

गौड़जीके पढ़ने-लिखनेका यह हाल था कि वह जिस पुस्तकको हाथमें उठा लेते थे उसे बिना समाप्त किये हुये नहीं छोड़ते थे। २४ घण्टोंमें से लगभग १८ घण्टे अध्ययनमें ही व्यतीत होते थे। उनके पढ़नेकी प्रगति भी अधिक थी। एकबार मैंने उन्हें "साकेत" पढ़ते हुए देखा। लगभग आध घण्टेमें उन्होंने २० पृष्ठ पढ़े और स्थान-स्थानपर लाल पेन्सिलसे निशान भी बनाते रहे। उनका पुस्तकालय बहुत अच्छा था। सभी विषयोंकी कुछ-न-कुछ पुस्तकें उनके पास थीं। अपनी जानकारीके लिए वह छोटी-से-छोटी पुस्तक भी, चाहे उसे किसी साधारण लेखकने ही लिखा हो, व्यर्थ न समझते थे। अपने ज्ञान-कोषको बढ़ानेके लिए वह यह न देखते थे कि अमुक पुस्तकका लेखक कौन है। यही कारण था कि उन्हें प्रत्येक विषयकी बड़ी जानकारी थी। उनकी इस विद्वत्ता पर मुग्ध होकर हम लोग उनके पीठ पीछे उन्हें Living Encyclopaedia कहा करते थे। एक दिन उनसे किसीने यह बात कह दी; किन्तु उन्होंने कुछ न कहकर केवल इतना ही कहा, "मैं इस योग्य नहीं हूँ।" इतना विद्वान होते हुए भी उनमें अभिमान या पाखंड नहीं था। आजकलके लोगोंकी तरह वह अपने-आपको इश्तहारी-दुनियाका खिलौना नहीं बनाना चाहते थे। उनमें अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करनेकी लालसा ज़रा भी नहीं थी।

अपने हाथों अपना काम

कस्तूरीकी भाँति गौड़जी स्वयं महकते थे। उनमें आलस्य न था। वह अपना सब काम स्वयं कर लिया करते थे आवश्यकता पड़नेपर वह अपना कमरा झाड़ूसे साफ करनेमें जरा भी संकोच न करते थे। बहुधा कपड़ा भी अपने हाथसे धो लेते थे। यही हाल उनकी स्त्रीका भी था। एक बार उन्होंने मुझसे एक मिर्ज़ापुरी डंडा मँगवाया। जब मैं बाजारसे लेकर आया तो उसे उन्होंने विशेषरूपसे पसन्द न किया। एक कोनेमें डंडा रख मैं घर चला गया। दूसरे दिन जब मैं शामको आया तब उन्होंने मुझे दिखाकर कहा; बताओ तुम जो डंडा लाये थे वह अच्छा है या मैंने जो लिया है वह?" मैं उसे देखकर चकित रह गया। यह वही डंडा था जिसे मैं लाया था; किन्तु इसे उन्होंने ऐसा सुंदर बना दिया था कि पहचाने न मिलता था। यह तो उनका कला-कौशल प्रेम था। अपने कामकी बहुत सी चीजें वह स्वयं बना लिया करते थे। उन्हें कपड़ा सीना भी आता था। कपड़ोंकी नाप-जोखमें तो वह दर्जियोंके कान काटते थे। उनके पास प्रत्येक बातका हिसाब रहता था। क्या मजाल एक पाई व्यर्थ व्यय हो जाय? आर्थिक संकटमें जीवन व्यतीत करनेपर भी उनमें धनकी लोलुपता न थी। इसके लिए वह किसीके सामने अपना सर न झुकाते थे। आत्म-सम्मानका बलिदान करके धन कमाना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध था। यही कारण था कि वह हिसाब-किताबमें बड़े खरे थे।

सच्चे सरल और निर्भीक

गौड़जीमें किसीके प्रति ईर्ष्या अथवा द्वेषका भाव न था। मैंने उन्हें कभी किसीपर बिगड़ते या रोष करते न देखा। उनमें अद्भुत सहनशीलता और धैर्य था। विपत्तियोंसे वह कभी नहीं घबराते थे। सभाओंमें किसी

विषयपर विरोध होनेपर भी एक वीर सिपाहीकी तरह वह अपने विरोधियोंका सामना करते थे। एक बार गौड़ महासभाके द्वितीय अधिवेशनमें लोगोंने उनके एक प्रस्तावका घोर विरोध किया। बहुत कोशिश करनेपर भी जब वह असफल रहे तब उन्होंने सभाको चेतावनी देते हुए कहा कि मैंने इस प्रस्तावको रखनेका बहुत-से भाइयोंको वचन दिया है इसे पास करना या न करना सभाकी सम्मतिपर है; किन्तु विना इसे उपस्थित किए हुए। तो मैं अपनी जगहसे उठ सकता हूँ और न किसीको उठने दूँगा। इसके लिये असहयोग करूँगा। बिना किसी खास कारणके किसी प्रस्तावको पेश न होने देना अपनी कमजोरीका परिचय देना है। गौड़जीके इतना कहनेपर भी लोगोंने कुछ ध्यान न दिया। अन्तमें सभापतिकी आज्ञासे उन्होंने प्रश्नों द्वारा अपना मतलब सिद्ध कर लिया। उस समय सबने उनके धैर्य, कूटिनीति, एवं बुद्धिकी सराहना की। उस अधिवेशनमें मैंने उनके साथ रात-रात भर काम किया। मुझे आलस्य आ गया, किन्तु उनमें आलस्यका नामतक न था।

सर्वतोन्मुखी प्रतिभा

गौड़जी प्रेसका सभी काम जानते थे। वह मशीन भी चला लेते थे और कम्पोज भी कर लेते थे। वह 'गौड़-हितकारी' के कुछ दिनों पहले सम्पादक भी रह चुके थे। और अब भी थे। उसका सारा काम वह स्वयं करते थे। सजातीय कामोंमें समय देना आजकल लोग व्यर्थ समझते हैं; किन्तु उन्होंने अपने जीवनभर जातिकी सेवा की। उनकी जातीय सेवाएँ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए।नहीं होती थीं; वह अपनी योग्यतासे दूसरोंको उठानेके लिए ही सब काम करते थे। उनमें जातीय-प्रेम भी था और देश-प्रेम भी। वह दोनोंको बड़ी योग्यतासे एकमें मिलाकर अपना काम ऐसी सुन्दरतासे कर लिया करते थे कि किसी प्रकारका दोष न आने पाता था।

गौड़जीमें सर्वतोन्मुखी प्रतिभा थी। उन्हें कई भाषाओंका अच्छा ज्ञान था। तज़किर-ए-सुचारुवंशीमें उन्होंने बिरादरीके सभी व्यक्तियोंकी योग्यताके विषयमें उल्लेख करते हुए अपने विषयमें अँग्रेज़ी, फ़ारसी, बँगला, मराठी, गुजराती, जर्मन, संस्कृत, उर्दू, हिन्दी तथा रसायन-शास्त्रका नाम लिखा है। इतनी भाषाओंकी जानकारी रखते हुए भी गौड़जीने केवल मातृ-भाषाकी ही सेवा की। वह मातृ-भाषाके इतने पक्षपाती थे कि अपना कुल पत्र-व्यवहार इसी भाषामें करते थे। मुझे अँग्रेज़ीमें पत्र लिखते देखकर उन्होंने कई बार टोका और हिन्दीमें ही पत्र लिखनेका आदेश दिया। वास्तवमें यह उनके और श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड़के ही सत्संगका प्रभाव था कि मैंने इस भाषाकी ओर अपना मन लगाया। गौड़जीको अँग्रेज़ी भाषापर पूरा अधिकार था। एक बार उन्होंने मुझसे अनुवाद लिखवानेका काम लिया। काशी विश्वविद्यालयके राजनीति-विभागके प्रोफेसर श्री पुरुवार्थेकरजी द्वारा अँग्रेज़ीमें लिखी हुई पुस्तक 'हाथकी कताई-बुनाई' के अनुवाद करनेका काम महात्मा गांधीने गौड़जी को सौंपा था। गौड़जी अनुवाद बोलते जाते थे और मैं लिखता जाता था। वह इतनी जल्दी अनुवाद बोलते थे कि मैं लिख नहीं पाता था। उनके अनुवादित और मौलिक लेखमें कुछ अन्तर नहीं जान पड़ता था।

गौड़जी बड़े अच्छे निबंध-लेखक थे। उनकी शैली सुन्दर थी और लेखनीमें बड़ा बल था। शुद्ध भाषाके साथ-ही-साथ वह अक्षर भी बड़े सुन्दर लिखते थे। थोड़ी हिन्दी जाननेवाला व्यक्ति भी उनकी लिखावटको बड़ी सरलताके साथ पढ़ सकता था। वह कवि भी थे। उन्होंने मुझे कई स्वरचित कविताएँ भी सुनाई थीं। रामायणसे उन्हें विशेष प्रेम था। राम ही उनके इष्ट देवता थे। जिस समय वह भगवान्‌की आरती करते थे उस समय प्रेमके आवेशमें आकर झूमने लगते थे यह उनका पाखंड नहीं, वरन रामके चरण-कमलोंके प्रति सच्ची लगन थी। वह मंत्रोंके शुद्ध पाठके इतने क़ायल थे कि एक बार उन्होंने एक पंडितजीको जो उनके यहाँ पूजा करने आते थे बहुत फटकारा था।

गौड़जीको ज्योतिष और वैद्यकका भी अच्छा ज्ञान था। कुंडली बनाना, लगन देखना, कुंडली देख-

कर विवाहकी तिथि इत्यादि बताना उन्हें खूब मालूम था। जौनपुर अखिल भारतीय कायस्थ-महासभाके अधिवेशनमें उन्हें कुछ ऐसे बेकार शिक्षित नवयुवकोंको तैयार करनेका कार्य सौंपा गया जो सभी संस्कार यथाविधि करा सकें। इस सम्बंधमें उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी थी। कह नहीं सकता यह प्रकाशित हुई अथवा नहीं।

विनोद और हास्यकी प्रतिमूर्ति

गौड़जीमें हास्य एवं विनोदकी मात्रा भी अधिक थी। कभी-कभी वह हम लोगोंको रामायणकी चौपाइयोंका हास्यजनक अर्थ बतलाकर स्वयं हँसते और हँसाते थे। 'चले सीस धरि राम रजाई' में रजाई (आज्ञा) का अर्थ उन्होंने रज़ाई लगाकर हम लोगोंको खूब हँसाया। एक बार हम लोग बैठे हुए इधर-उधरकी बातें कर रहे थे। इतनेमें उनके एक चिर-परिचित मित्र आ पहुँचे। आते ही उन्होंने कहा, "गौड़जी! कहाँ रहे (कहार है), मैं आपको उस दिन सभामें बड़ी देरतक ढूँढ़ता रहा।" गौड़जीने हँसकर कहा, "मित्रवर! यहीं रहे (अहीर है) और कहाँ रहे (कहार है)।" मित्र महोदय गौड़जीकी हाज़िर जवाबीपर लोट-पोट हो गये।

गौड़जी कभी दाढ़ी रखते थे और कभी साफ़ करा देते थे। एक बार वह गौड़-विधवा अनाथ-कोषके वार्षिकोत्सवके अवसरपर आज़मगढ़ पधारे। इसके पहले मैंने उन्हें दाढ़ी रक्खे हुए देखा था। अब देखा तो दाढ़ी साफ़ थी। मैंने हँसते हुए उनसे पूछा, "बाबूजी! आप कभी दाढ़ी रखते हैं और कभी साफ़ करा देते हैं। इसमें क्या रहस्य है?" उन्होंने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "मेरा नाम रामदास भी है और अब्दुल्ला भी। इसलिए मैं दोनों नामोंको सार्थक करता रहता हूँ।" इसपर खूब हँसी हुई।

प्रेतवादके चक्रमें?

इधर गौड़जीको कुछ वर्षोंसे पिशाच-विद्यापर विशेष अनुराग हो गया था। जहाँतक मुझे ज्ञात है उनकी बड़ी लड़की श्रीमती शान्तीदेवीको विवाहके पश्चात् हिस्टेरियाके चक्कर आने लगे थे। इस रोगका उन्होंने बहुत इलाज किया; किन्तु असफल रहे। अन्तमें ओझाई द्वारा उन्हें सफलता मिली। उसी समयसे उन्होंने इस विद्याका अध्ययन आरंभ किया और इसमें भी आचार्य हो गये। कई बार मैंने उन्हें प्लेनचेट द्वारा प्रश्नोंका उत्तर देते हुए भी देखा था।

पुराना सम्पर्क

गौड़जीसे हमारा सम्पर्क सन १९२१ ई० तक रहा। इसके पश्चात् मैं आजमगढ़ चला गया। जब कभी मैं काशी जाता तो उनसे अवश्य भेंट करता। बिरादरीके कई मामलोंमें हमारा और उनका मतभेद था, किन्तु उनकी योग्यताके आगे मैं सदैव अपना सर झुका देता था। उनसे मेरी अन्तिम भेंट उस समय हुई जब वह अपना मंगलाप्रसाद-पारितोषिक लेनेके लिए प्रयाग पधारे थे। यहाँ आनेपर बहुधा वह श्रीयुत दरबारीके यहाँ ठहरते थे। अबकी बार वह कहाँ ठहरे थे कह नहीं सकता। मेरी उनसे सभामें भेंट हुई थी। वह लोगोंसे बात-चीत करनेमें इतने व्यस्त थे कि मैंने उन्हें वहाँ छेड़ना उचित न समझा। अवकाश न मिलनेके कारण मैं दूसरे दिन भी उनसे न मिल सका। उस दिन वह बड़े कमज़ोर जान पड़ते थे। उनके पुरस्कार पानेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; किन्तु उनकी शारीरिक दुर्बलता ने मुझे चिन्तित कर दिया। उन दिनों मेरे पिताजी भी रोग-ग्रसित थे।

दुःखद समाचार

गत १३ सितम्बरको मैं साहित्य भवनमें बैठा हुआ मैनेजर साहबसे बातें कर रहा था। उन्होंने मुझे गौड़जीके देहावसानकी दुःखद सूचना दी। मैं तुरन्त 'आज' मोल लेनेके लिए चौक गया किन्तु वहां अख़बार न मिला। उस दिन मेरी सारी रात चिन्तामें ही कटी। इस घटनाके आठवें दिन मेरे ऊपर भी दुखद दुखका पहाड़ टूट पड़ा। २० सितम्बरको मेरे पिता श्री लक्ष्मी-

सिंह गौड़ भी स्वर्गवास कर गये। जिस कार्यमें सम्मिलित होनेके लिए मैं काशी जानेवाला था अब उसी कार्यके लिए मुझे घर जाना पड़ा। उस समय मेरे दुखका पारावार न था। जीवनमें ही मृत्युका प्रश्न छिड़ जाता है यह जानते हुए भी सन्तोष न होता था। आज दोनों महान आत्माओंको इस संसारसे विदा हुए एक माससे अधिक हो गया, किन्तु अब भी उस दुखकी चोटसे कविवर 'अकबर' के यही शब्द याद आते हैं :—

ज़ख़्मी न हुआ था दिल ऐसा;
सीनेमें खटक दिन-रात न थी।
आगे भी हुए थे कुछ सदमे;
रोये थे मगर यह बात न थी॥

वैज्ञानिक साहित्यके निर्माता श्रीयुत रामदास गौड़

[ले० श्री श्यामनारायण कपूर]

विज्ञान-सम्पादककी आज्ञा है कि स्वर्गीय श्रद्धेय गौड़-जीके विषयमें विज्ञानके गौड़-स्मारकांकके लिए कुछ लिखूँ। वास्तवमें मुझे तो कभी गौड़जीके दर्शनोंका भी सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। ऐसी स्थितिमें मैं गौड़जीके क्या संस्मरण लिखूँ। हाँ, गौड़जीसे पत्र-व्यवहार अवश्य हुआ था। विज्ञानके पाठकोंकी जानकारीके लिए उनके कुछ महत्त्व-पूर्ण पत्रोंको यहाँ उद्धृत करूँगा।

सम्वत् १९९० (नवम्बर १९३३) में मुझे उनका पहला पत्र मिला था। उससे पहिले गौड़जीका नाम अवश्य सुना था। उनके लेख भी पढ़े थे और उनकी कुछ पुस्तकें भी देखी थीं। इन सबसे गौड़जीके प्रति स्वाभाविक रूपसे श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी और जब कभी गौड़जीका ज़िक्र आता था मैं उन्हें बड़े आदर, सम्मान और प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखता था। इस पत्रके आनेके पूर्व मैं व्यक्तिगत रूपसे कभी उनके सम्पर्कमें न आया था। हाँ, उनके वैज्ञानिक लेखोंको 'विज्ञान' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें बड़े चावसे पढ़ा करता था। वास्तवमें 'विज्ञान' ही के पढ़नेसे मुझे हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके पढ़ने और अपनी योग्यतानुसार हिन्दीमें वैज्ञानिक विषयोंपर लेख लिखनेका शौक भी पैदा हुआ था। 'विज्ञान' द्वारा वैज्ञानिक लेखोंके लिखने-की प्रेरणा पाकर भी मैंने 'विज्ञान' में कोई लेख न भेजा था। अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें मेरे लेख अवश्य प्रकाशित होते थे। वास्तवमें मैं 'विज्ञान' को हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका एक प्रामाणिक-पत्र समझता था और अब भी समझता हूँ। अत: शुरू-शुरूमें वैज्ञानिक लेख लिख-लेपर 'विज्ञान' में उन्हें प्रकाशनार्थ भेजनेकी हिम्मत भी न होती थी। परन्तु गौड़जी कब मानने-वाले थे। 'विज्ञान' का सम्पादन-भार दुबारा ग्रहण करनेपर उन्होंने मेरे कुछ लेख उसमें उद्धृत किये और निम्न लिखित पत्र लिखा :—

श्री सीतारामाभ्यां नम:

बड़ी पियरी, बनारस शहर
२८-७-९०

प्रिय श्री कपूरजी, वन्दे०

आपके वैज्ञानिक लेख मैं बड़े चावसे सामयिक पत्रों-में पढ़ा करता हूँ। वे इतने अच्छे लगे कि मैंने एकाध विज्ञानमें उद्धृत भी किये। हिन्दीमें वैज्ञानिक-साहित्य-प्रचारका उद्देश रखनेवाला एक मात्र एवं सबसे पुराना पत्र 'विज्ञान' है। आपने अपनी छात्रावस्थामें तो इसे अवश्य ही देखा होगा और अब भी देखते होंगे। परन्तु कभी इसपर कृपा न की। आपका पता मुझे अब मालूम हुआ है। क्या हिन्दी-सेवाके नाते आपसे आशा करूँ कि आप औद्योगिक विषयोंपर अपने सुन्दर

लेख देकर हमें अनुगृहीत करेंगे ? पारिश्रमिकके नाम कोरे धन्यवादको छोड़ और कुछ हमारे पास नहीं है। हम सभी अवैतनिक काम करते हैं; पुरस्कार तो दूरकी बात है। मैंने लेखकी आशापर ही अपरिचित होते हुए आपको कष्ट देनेका साहस किया है। मुझे निराश न कीजिएगा। विज्ञानको मैं सर्वोपयोगी और सुबोध बनानेके उद्योगमें हूँ। आशा है कि वैज्ञानिक-क्षेत्रमें काम करनेवाले एक भाईकी तरह आप भी सहायता करेंगे।

सप्रेम रामदास गौड़

उन दिनों मैं कानपुरकी टेकनोलोजिकल इंस्टिट्यूटमें पढ़ता था। आर्थिक कठिनाइयोंमें ग्रस्त रहनेके कारण लेखादि लिखनेका अधिक समय न मिल पाता था। फिर भी मैं गौड़जीके अनुरोधको न टाल सका और उन्हें अपनी कठिनाइयोंका ज़िक्र करते हुए लेख भेजनेका वचन दिया। अगले महीने उन्हें 'बिनौले' पर एक लेख भेजा भी। मेरी कठिनाइयोंको समझकर गौड़जीने २८-८-१० को एक और पत्र लिखा। उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। वास्तवमें गौड़जीके इन दो पत्रोंने मुझे वैज्ञानिक विषयोंपर लेख लिखनेके लिए बहुत प्रोत्साहित किया। जिन पत्रोंमें मैंने उस समयतक लेख लिखे थे उनके सम्पादकोंसे कभी इतना प्रोत्साहन प्राप्त भी न हुआ था। हाँ, लेखोंको प्रकाशित करके उन्होंने मुझे अवश्य प्रोत्साहित किया था। गौड़जीके नीचे लिखे पत्रसे उनकी हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके निर्माण करनेकी आकांक्षा और उसे पूरा करनेके लिए वे कितना दत्त-चित्त होकर काम करते थे इसका भी अच्छा परिचय मिलेगा।

प्रिय श्री कपूरजी, वन्दे०

आपका २९-११ का कार्ड यथा समय मिला था। आज बिनौलेपर आपका लेख भी मिला। धन्यवाद। जनवरीकी संख्यामें जायगा। रिप्रिन्ट्स अवश्य दूँगा।

विद्यार्थी-जीवनकी आर्थिक कठिनाइयोंका जैसा कटु अनुभव मुझको हुआ है मैं ही जानता हूँ। और आज भी मेरी क्या दशा है कहने योग्य नहीं है—मेरे मित्र जानते हैं। आपकी स्थिति समझना मेरे लिए कठिन नहीं है। मैं यह भी जानता हूँ कि लेखोंके लिए पुरस्कार कैसे मिलता है। 'विशाल भारत' से दो-दो सालपर मुझे मिला है, सैकड़ों तकाज़ोंपर और फिर भी आधा। चतुर्वेदीजी जैसे सहृदयोंकी जब यह दशा है तो औरोंकी क्या कहूँ।

१९ बरस हुए 'विज्ञान' का जातकर्म मैंने ही किया था। तब तो सभी काम अवैतनिक ही होते थे, क्योंकि नौकरी करता था। आज तो बिना पैसावाला लेख लिखता ही नहीं, क्योंकि ऐसा करूँ तो बाल-बच्चोंको रूखी रोटियाँ भी न मिलें। परन्तु अपने 'विज्ञान' को मरणासन्न देखकर रहा न गया। यह अवैतनिक काम लेना ही पड़ा। इसके पास है ही क्या कि यह किसीको देगा। ग्राहक हैं कुल ८०। सरकारी सहायता न मिलती होती तो यह कभीका ख़तम हो चुका होता। इसी ममतावश इसे ले लिया कि इसका ढंग बदल दूँगा तो शायद चल निकले। इसलिए स्वयं इस गाड़ीको बिना दाना-घास खींच रहा हूँ और अपने शिष्यों और मित्रोंको भी जोत रहा हूँ। आज यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है कि आप सरीखे सुबोध विज्ञानपर लिखनेवाले लेखक हो गये हैं जो साधारण मासिकोंको भी रोचक वैज्ञानिक लेखोंसे अलंकृत करते रहते हैं। १५-१६ बरस पहले यह दुर्लभ बात थी। क्या टेलीवीज़नपर आप लेख दे सकेंगे ?

भवदीय सप्रेम
रामदास गौड़

इससे पहिले गौड़जी की आर्थिक स्थितिके बारेमें मुझे कोई भी बात मालूम न थी। न मुझे उनकी विद्यार्थी-जीवनकी कठिनाइयों ही का पता था। बादमें यह जाना कि गौड़जीको काशी सेंट्रल हिंदू कॉलेजके इन्टर-

मीडिएट कक्षामें अध्ययन करते समय २) मासिककी फीस देना भी कठिन था और कभी-कभी आठ-आठ महीने-तक वे इच्छा होते हुए भी फीस न दे पाते थे। आज-कलके कॉलिजोंका-सा खर्च होता तो सम्भवत: हम सब लोग गौड़जीके महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्योंके लाभसे वञ्चित ही रह जाते। इस सम्बंधमें गौड़जीने स्वयं एक बार लिखा भी था :—

'हिन्दू कॉलिजमें फीस बहुत थोड़ी थी। २) मासिक आठ मासका बकाया जब चढ़ चुका तो मैंने देनेमें असमर्थता प्रकट की। डाक्टर साहबने (हिंदू कॉलिजके तत्कालीन प्रिंसपल डा० रिचर्डसन) शुरूसे मुझे फ्री कर दिया। बोर्डिंग हाउसमें १०) मासिक छात्रवृत्ति देकर रक्खा। यद्यपि मैं क्लासमें अव्वल रहता था, तथापि अव्वलके लिए कोई छात्रवृत्ति न थी। मेरी निर्धनता-पर डाक्टर साहबने यह छात्रवृत्ति देकर मेरी सहायता की थी। इस तरहके उनके कृपा-पात्र अनेक छात्र थे। आज-कलका-सा हिंदू-विश्वविद्यालयका खर्च होता तो हम लोग ऊँची शिक्षा कदापि न पा सकते।'

गौड़जीके छात्रावासमें जाकर रहनेकी भी एक अलग कहानी है। उसे भी उन्हींके शब्दोंमें सुनाता हूँ :—

'मैं जब पढ़ता था, फर्स्ट ईयरकी वार्षिक-परीक्षाके समय बीमार हो गया। घरपर रहता था अकेला। एक पड़ोसी सहाध्यायी देख जाता था। उसीके हाथ मैंने अर्जी भेजी। डाक्टर साहबने मेरे सहाध्यायीसे कहा कि आज ज्योंही परीक्षासे छुट्टी मिलेगी, हम तुम साथ उसके यहाँ चलेंगे। अप्रैलका महीना था। कोई साढ़े ग्यारह बजेकी धूपमें गंदी गलियोंको पारकर डाक्टर साहब मेरे घर पहुँचे। ज्वर देखा तो १०४ डिग्रीपर था। तुरंत अस्पतालसे बड़े डाक्टरको अपने खर्चसे बुलवाया और उन्हें सहेजा कि नित्य आकर मुझे देखा करें। मेरे लिए दवाका भी बँदोबस्त किया। जब मैं अच्छा हुआ तो उन्होंने गन्दी गलियोंसे घिरे घरको छुड़वाकर हठात् छात्रावासमें रक्खा।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पाठकगण भलीभाँति समझ जायँगे कि गौड़जीको अपनी छात्रावस्थामें कितनी ज़बरदस्त कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा। परंतु इतनी गहन कठिनाइयोंका सामना करते हुए भी वे अपने दर्जेमें बराबर प्रथम रहते थे और इसीलिए अपने अध्यापकोंकी सहानुभूति भी शीघ्र ही पा लेते थे।

अस्तु, इसके बाद मुझे गौड़जीके बारेमें और भी बहुत-सी बातें मालूम हुईं। उनकी कठिनाइयों और उन कठिनाइयोंके होते हुए भी देश-सेवा एवं साहित्य-सेवा करनेकी महत्त्वाकांक्षाओंको जानकर मैं उन्हें और अधिक श्रद्धासे देखने लगा। इसके साथ ही यह जानकर कि गौड़जी सरीखे विद्वान साहित्यसेवीको भी बच्चोंके लिए रूखी रोटीका प्रबंध करना दुर्लभ सिद्ध होता है, अपनी विवशतापर और उसके साथ ही हिंदी-भाषा-भाषियोंकी अपने ग्रन्थकारों और लेखकोंके प्रति उपेक्षा-की भावनापर बड़ा दु:ख हुआ। वास्तवमें यह है भी बड़े ही दु:ख और लज्जाकी बात है कि रामदास गौड़ और प्रेमचंद सरीखे महान साहित्यकार और कलाकार भी नोन-तेलकी चिन्तामें व्यस्त रक्खे जायँ और उन्हें अपने लेखोंके पारिश्रमिकके लिए सैकड़ों तकाज़े करने पड़ें। पर धन्य हैं वे जिन्होंने इतनी ज़बरदस्त दिक्कतोंका सामना करते हुए भी साहित्य-सेवासे मुख नहीं मोड़ा और मृत्यु पर्यन्त बराबर हिंदीका मुख उज्ज्वल करने और उसके ज्ञान-भण्डारको भरपूर बनानेमें लगे रहे।

'विज्ञान' तो गौड़जीकी सेवाओंसे कभी उऋण ही न हो सकेगा। उन्होंने 'विज्ञान' का केवल जात कर्म संस्कार ही नहीं किया वरन् उसे पुनर्जन्म भी प्रदान किया।

× × ×

'विज्ञान' का दुबारा सम्पादन-भार सँभालनेके पूर्व 'विज्ञान' बहुत ही नीरस और शुष्क हो गया था। उसकी ग्राहक-संख्या भी घटकर केवल ८० रह गई थी। गौड़जीने कार्य भार अपने हाथमें लेते ही इसकी काया पलट दी। उन्होंने 'विज्ञान' में ऐसे लेख प्रकाशित किये जिन्हें पढ़कर पढ़नेवाले उनका उपयोग कर कुछ कमाई भी कर सकते हैं। एक बार उन्होंने लेखोंके संबंधमें मुझे लिखा भी था :—

"हमको अधिकांश लेख ऐसे ही विषयोंपर चाहिए—(१) जो बिना मशीनके ग़रीब लोग अपने झोंपड़ेमें अपने हाथसे बना सकें और (२) जिसके द्वारा विदेशी-धन-शोषण घटाया जा सके। आप सामग्री वही दें जो देशमें मिल सके। उन रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग न हो जिससे विदेशोंका लाभ हो। फिर व्यसनकी सामग्रीपर हमारा ध्यान कम होना चाहिए। अधिकांश वही सामग्री तैयार हो जो हमारे जीवन-परिमाणके लिए आवश्यक हो। बस इन बातोंको ध्यानमें रखकर आप छोटे-छोटे लेख दें। बिसातीकी दूकानोंपर जितनी चीज़ें मिलती हैं सभीपर लेख चाहिए। जापान, जर्मनी, अमेरिका, इँगलैण्ड आदि जो चीज़ें भेजकर हमें चूसते हैं उन चीज़ोंका निर्माण हमारा मुख्य उद्देश होना चाहिए। कोई एक लेख छपे चार पृष्ठोंसे अधिक न होने पावे। विषय अधिक लँबाई माँगे तो एकसे अधिक विषयोंमें बाँटकर कई स्वतंत्र लेख कर दीजिये।"

"गौड़जी केवल उपर्युक्त औद्योगिक विषयोंपर लेख ही प्रकाशित नहीं करना चाहते थे किन्तु वे हिन्दीमें औद्योगिक विषयोंका तथा, कुली, मजूर, किसानों तथा मिस्त्रियोंके कामकी एक सरल और सुबोध ग्रंथ-मालामें रोज़मर्राके कामकी सब चीज़ोंके बनानेकी विधियोंका तथा छोटी-बड़ी मशीनोंको चलाने और मरम्मत करनेकी रीतियोंका वर्णन करना चाहते थे। उन्होंने इस सूचीमें क़रीब १५० ग्रंथोंका समावेश किया था। इनमेंसे प्रत्येक पुस्तकका मूल्य वे चार-छः आनेसे अधिक न रखना चाहते थे। क्या ही अच्छा यदि उनकी स्मृतिमें शीघ्र ही इस ग्रंथमालाका प्रकाशन आरंभ कर दिया जाय। अच्छा तो यह होगा कि विज्ञान-परिषत् ही इस कामको अपने हाथमें ले। परंतु परिषत् अपनी आर्थिक कठिनाइयोंके कारण आसानीसे इस कार्य-भारको नहीं सँभाल सकती। अस्तु, उदारचेता हिन्दी-हितैषी महानुभाव इस ग्रंथमालाके प्रकाशनके लिए परिषत्‌को आर्थिक सहायता कर सकें तो बहुत अच्छा हो। इस ग्रंथमालासे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंसे जो आय हो उसमेंसे कुछ भाग गौड़जीके परिवारकी सहायतामें लगाया जाय।

गौड़जीसे एक भेंट

[ले०—श्री रामनारायण कपूर बी० एस-सी० (मेट०)]

प्रोफ़ेसर रामदास गौड़का नाम तो बहुत दिनसे सुन रक्खा था परंतु उनके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ था। काशी विश्वविद्यालयसे 'मैटलर्जी' की अंतिम परीक्षा देनेके उपरांत गौड़जीके दर्शन करनेकी इच्छा प्रबल हो गई। बड़ी-पियरीमें गौड़जीका घर खोजनेमें थोड़ी कठिनाई अवश्य हुई परंतु जब 'प्रेतवाले' गौड़जी-का नाम लिया तो लोगोंने ठीक-ठीक ठिकाना बता दिया। एक पुराने ढंगका मकान था। मकानपर न कहीं गौड़जीका नाम था और न 'विज्ञान' का ही। एक बगलमें एक बैठका था जिसके दरवाज़ेपर एक पुरानी चिक पड़ी हुई थी। गौड़जीकी विद्वत्ताका नाम सुनकर विश्वास तो नहीं हुआ कि यही गौड़जीका निवास-स्थान होगा। दरवाज़ेपर खड़े होकर आवाज़ देनेसे पहिले उधर आने-जानेवाले दो-एक आदमियोंसे जब यह पूर्ण-तया निश्चित हो गया कि मैं गौड़जीके द्वारपर ही खड़ा था—इसमें भूल न थी—तब साहस करके प्रोफेसर साहबको आवाज़ दी।

एक छोटे लड़केने आकर सूचना दी कि प्रोफ़ेसर साहब मकानपर हैं। अपने साथ आनेको कहकर एक छोटे कमरेमें लेजाकर उसने खड़ा कर दिया। जमीनपर एक चटाईपर मैला-सा टाट बिछा था और उसपर काग़ज़-पत्र बिखरे पड़े थे। वहीं पलथी मारे बैठे थे गौड़-जी। नंगे बदन केवल धोती पहने। गलेमें रुद्राक्षकी दो मालाएँ, माथेपर भस्म और सिरपर तथा दाढ़ीपर बड़े-

बड़े बाल। कागज़-पत्रोंके बीचमें घिरे ऐसे बैठे थे जैसे बेलपत्रके बीच महादेव। मुझे विश्वास ही न हुआ कि गौड़जी हैं। उन्होंने सिर उठाकर ऊपर देखा। कुछ लिख रहे थे। मैंने अभिवादन किया और पूछा कि गौड़जीके दर्शन करना चाहता हूँ। "बैठिये, आप गौड़जीसे ही बातें कर रहे हैं।"

पैंट पहने हुए था इसलिए मैले बिछावनपर बैठनेमें संकोच कर रहा था। परंतु गौड़जीको अटल देखकर बैठना ही पड़ा और संकोचरहित होकर। परिचय कराया। भाई साहब (श्यामनारायण कपूर) जी से गौड़जी पत्र-व्यवहार द्वारा बहुत दिनोंसे परिचय स्थापित कर चुके थे। बहुत प्रसन्नतापूर्वक बातचीत की। भाई साहबके संबंधमें बातचीत हुई। मेरा ध्यान औद्योगिक साहित्यकी ओर आकर्षित कराया। विज्ञानका उद्योगांक उसी समय प्रकाशित हुआ था। उन्हीं दिनों गौड़जी नागपुरसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें विज्ञान-परिषद्के सभापतिकी हैसियतसे लौटे थे। औद्योगिक-शिक्षा और उसकी उन्नति सम्बंधी अपना मत बताते रहे।

मैं भी गौड़जीके पास औद्योगिक साहित्यके प्रकाशनके सम्बंधमें परामर्श करने गया था। कहने लगे, "भाई, मैं तो ऐसा साहित्य चाहता हूँ जिससे बेकारोंको पैसे मिलें और भारत जापान हो जाये।" 'उद्योग व्यवसायांक' में आपने औद्योगिक पुस्तकोंके लिए लगभग १४३ विषयोंका निर्देश किया था। नागपुरके अपने भाषणमें भी इस प्रकारके साहित्यके प्रकाशनके लिए आपने एक योजना बताई थी। दोनोंकी एक-एक प्रति आपने मुझे पढ़नेको दी और कहने लगे कि इनमेंसे जितने भी विषयोंपर मैं पुस्तकें लिख सकूँ उन्हें सूचित कर दूँ। 'धातु-कला' (मैटलर्जी) सम्बंधी कुछ विषयोंपर पुस्तकें लिखनेका मैंने वादा किया था और इस संबंधमें मैटर एकत्रित किया भी है।

'विज्ञान' को प्रत्येक हिन्दी जाननेवालेके पास पहुँचाना चाहते थे। उनकी इच्छा थी विज्ञानके गहन विषयोंके अतिरिक्त 'विज्ञान' में घरेलू धंधोंके लिए अच्छी आयोजनाएँ प्रकाशित हुआ करें। स्वयं इस प्रयत्नमें कहाँतक दत्तचित्त थे यह उनके 'उद्योग व्यवसायांक' को देखनेसे भलीभाँति मालूम हो जाता है। इस अंकका अधिकांश उन्होंने स्वयं आप ही लिखा है।

बातों ही बातोंमें समय देखनेकी आवश्यकता पड़ी। गौड़जीने मुझे घड़ी देखते देखकर एक दफ़्तीका टुकड़ा उठा लिया और उसपर बने चित्रको धूपकी ओर करके ध्यानपूर्वक देखने लगे। मेरे समय बतानेसे पहले ही आप बोल उठे। मैंने अपनी घड़ीमें जो समय देखा था उससे एक सेकिण्डका भी अन्तर न था। मुझे चकित देखकर आपने अपनी 'सुलभ, सस्ती, सरल और घरेलू' घड़ी दिखाई। उसका उपयोग समझाया और उसका मूल्य बताया। दो पैसेमें छपा हुआ एक चित्र था जिससे धूपके सहारे समय देखा जा सकता था। घड़ीका निर्माण रायबरेलीके पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद ने किया था। बड़ा उपयोगी आविष्कार था। गौड़जी कहने लगे, "मैं तो ऐसी ही चीज़ें बनवाना चाहता हूँ।"

गौड़जी बातचीत भी करते जाते थे और अपने लड़केको गणित भी समझाते जाते थे। दूसरा लड़का उनके कंधेपर चढ़कर ऊधम मचा रहा था। परंतु गौड़जी शांत थे। बच्चेके लिए सवाल करनेको उन्होंने पत्रोंके रैपर इकट्ठा करके सी दिये थे और उन्हींपर वह पेंसिलसे प्रश्न हल कर रहा था। मितव्ययताके आप बड़े क़ायल थे और पैसेका पूर्णरूपसे उपयोग करनेकी शिक्षा देते थे। पोस्टकार्ड तीन पैसेका हो गया। गौड़जीने बताया था कि शीघ्र ही वे बड़े-से-बड़े आकारका कार्ड व्यवहार करेंगे जिससे अधिक-से-अधिक संवाद उसमें लिखा जा सके। इस बार उन्होंने ऐसे पोस्टकार्डके दर्शन भी कराये। जिस दिन उनका 'बड़ा' पोस्टकार्ड मिला मुझे उनके उस दिनके कथनका ध्यान हो आया। पोस्टल विभाग-अधिक-से-अधिक जिस आकारका पोस्टकार्ड व्यवहार करनेकी आज्ञा देता है गौड़जीने उसका पूर्ण उपयोग किया जान पड़ता है।

'प्रेतोंके' संबंधमें उनसे मैंने प्रश्न किया तो कहने लगे, "आधुनिक विज्ञानको अभी प्रेतोंके संबंधमें अनुसंधान करनेका समय नहीं मिला है। जिस दिन युद्ध संबंधी आविष्कार बंद हो जायेंगे, वैज्ञानिक 'प्रेत-लोक' का अनुसंधान अवश्य करेंगे और प्रेतों-का अस्तित्व उसी प्रकार सत्य प्रमाणित होगा जिस प्रकार मारकोनीके बेतार का।"

चलते समय भी गौड़जीने अपनी 'भारतके शहरी मज़दूरोंके लिए औद्योगिक ग्रंथावली' (विज्ञान, भाग ४३, संख्या १, पृष्ठ ३६) की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। कुछ विषयोंपर निशान भी लगा दिये। 'विज्ञान' का वह अंक अब भी मेरे पास सुरक्षित है। समय आनेपर जो कुछ भी मैं लिख सकूँगा उसको स्मृति-स्वरूप अवश्य प्रकाशित कराऊँगा।

साहित्यकों, प्रकाशकों और लेखकों सभीसे मैं एक विनम्र प्रार्थना करूँगा। ऊपर जिस ग्रंथावलीका मैंने ज़िक्र किया है गौड़जी उसे प्रकाशित देखनेके बहुत ही इच्छुक थे। यद्यपि गौड़जीके स्मारकके लिए हमें अधिक-से-अधिक योग्य चिन्ह निर्माण करना चाहिए, तथापि उपर्युक्त ग्रंथावलीका प्रकाशन भी यदि उनकी स्मृति-स्वरूप किया जाय तो अनुचित न होगा।

गौड़जीसे मेरी अन्तिम भेंट

[ले० श्री रमाशंकरसिंह, विशारद]

पिछली मईके महीनेमें हम लोग एक कमरेमें बैठे बारात जानेकी तैयारी कर रहे थे कि सहसा वहाँ एक खद्दरधारी व्यक्तिका आगमन हुआ। उसके व्यक्तित्वमें एक विशेष आकर्षण था। मुझे भ्रम हुआ कि कोई चिर-परिचित व्यक्ति है किन्तु निश्चय न कर पाया। पीछे पता चला कि आप प्रो० गौड़ हैं जिनके ही शब्दोंमें उनका साइनबोर्ड 'दाढ़ी' का न रहना ही मेरे भ्रमका कारण था।

दस-पाँच मिनटकी बातचीतके पश्चात् ही गौड़जीने दो पुस्तकें निकालीं जिनमें एक पं० विजयानन्द त्रिपाठी द्वारा संपादित रामचरितमानस थी। वे उन्हें समालोचनार्थ अध्ययन कर रहे थे। कमरेमें शोर हो रहा था और वातावरण भी इस गम्भीर अध्ययनके बहुत उपयुक्त न था किन्तु मनुष्यको जब धुन सवार होती है तो उसे विरोधी परिस्थितियोंका ध्यान नहीं रहता। मैंने मन ही मन सोचा कि गौड़जीका सारा जीवन भी तो इन्हीं विरोध अवस्थाओंसे मोर्चा लेनेमें लगा है। अस्तु, इसमें आश्चर्य ही क्या है। उन्हें हिन्दी-साहित्यसे लगन लग गई थी और सदा इसीकी सेवामें अपनेको संलग्न रखना चाहते थे। 'साहित्यिक जीवन' व्यतीत कर रहे थे और जहाँ रहते थे वहाँके वायु-मण्डलको भी साहित्यिक बना देते थे। हमने सोचा कि अच्छा अवसर है गौड़जीसे भिन्न विषयोंपर बातें करनेका; और हुआ भी ऐसा ही। हम लोगोंकी बारात (वर-यात्रा) साहित्यिक-यात्राके रूपमें परिणित हो गई। जब देखिये गौड़जी बैठे दस-पाँच आदमियोंको साहित्यका आस्वादन करा रहे हैं और उनकी शंकाओंका निराकरण कर रहे हैं।

आपकी बातोंसे पता लगता था कि आप 'भारतीयता' के पक्के पुजारी हैं। जीवनके प्रत्येक-अंगको भारतीयतामय देखना चाहते हैं। जीवनमें भाषा एक अपना विशेष स्थान रखती है। अस्तु, इस राष्ट्रीयताके निर्माणमें साहित्य-संबंधी कार्य एक विशेष महत्त्वका है इस सिद्धांतपर आपका सारा जीवन अवलम्बित रहा।

इस सत्यकी खोजमें उन्हें और बातोंकी परवाह न रही और राष्ट्रीय बलिवेदीपर अपनेको समर्पित करनेका यही ढंग आपने अपने लिए उचित समझा। यही कारण है कि गौड़जीकी कीर्तियोंमें हम गुदगुदी पैदा करनेवाली और जन-साधारणके निकट साहित्यकार कहे जानेवाली रचनाएँ नहीं पाते अपितु गम्भीर वैज्ञानिक साहित्य अथवा समालोचनाएँ ही पाते हैं। इस प्रकार गौड़जीकी साहित्यिक-रचनाएँ एक साधन-मात्र हैं। उनका साध्य तो भारतीय जीवनकी पूर्णता है। इस प्रकार गौड़जी भारतीय पहले हैं और बादमें साहित्यकार। मेरे इस कथनकी पूर्ति उस समय होती है जब गौड़जीने सत्याग्रह संग्रामका शंखनाद सुनकर जेल-यात्रा की थी और जेलमें भी रामायणका उपदेश देते रहे थे।

मैंने गौड़जीसे पूछा कि हिन्दीमें यदि सायंसकी तालीम ऊँची कक्षाओंमें हो सके तो उससे लाभ ही क्या है? एक तो इस मार्गमें बड़ी विघ्न-बाधाएँ हैं और फिर मेरी समझमें नहीं आता कि उन कठिनाइयोंसे मोर्चा लेनेकी आवश्यकता ही क्या है। आपने तुरंत उत्तर दिया कि 'बिन निज भाषा-ज्ञानके मिटत न हियके सूल'। यह सब कुछ इसी 'हियके सूल' को मिटानेका प्रयत्न-मात्र था। आपने अपनी एक बीती घटना किसी अँग्रेज़को कह सुनाई जिसमें आपको बहुत तसल्ली इस बातसे हुई कि आपने हिन्दीमें ही उसके साथ वार्त्तालाप किया था। आपने और भी तर्क पेश किये जिनमें एक सायंसका जन-साधारणके लिए सुलभ होना था। हिन्दीमें जिस सिद्धान्तपर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द बनते हैं उनके विषयमें भी काफ़ी बातचीत हुई। आपने बताया कि अँग्रेज़ीके नाम प्रायः लैटिनसे लिये गये हैं जो संस्कृतसे बहुत मिलते हैं। उन्हीं शब्दोंको वे संस्कृतका रूप देना चाहते हैं। एक बड़ा सुन्दर दृष्टांत देकर उन्होंने इस काया-पलटकी यथार्थता सिद्ध की। ऐसा करनेसे विशेष असुविधा भी न रहेगी जैसा मैं सोच रहा था। हिन्दीमें जो नये शब्द बने हैं उनमें आपने विशेष रूपसे हाथ बटाया है। आपने प्रसंगवश यह भी बताया कि बहुत-से स्वीकृत शब्दोंसे वह सहमत नहीं हैं। उनमें एक 'ऑरगैनिक' का हिन्दी रूप है जिसे प्रायः लोग 'कार्बनिक' लिखते हैं। यह अँग्रेज़ी शब्दसे मेल नहीं खाता और इसे वह आंगारिक रखना चाहते थे जो अंग यानी ऑरगनसे मिलता है। यही बात हरिन् (क्लोरीन) के संबंधमें भी आपने बताई।

अब 'रामचरितमानस' पर आइये। मैंने पूछा कि गोसाईंजीकी लिखी रामायण काशीराजाके यहाँ बताई जाती है, इसमें आप कहाँतक सहमत हैं और काशी-नागरी प्रचारिणी सभाने जो शुद्ध पाठ दिये हैं वह क्या ठीक हैं? आपने इसके संबंधमें एक मज़ेदार घटना कह सुनाई। जिस समय काशीमें इस पाठ-संशोधनका कार्य होता था वे सेन्ट्रल-हिन्दू-कॉलेजके विद्यार्थी थे और रामायण उन्हें कंठस्थ थी। लोगोंने इन्हेंभी संशोधन-कमेटीमें रख लिया। डेपुटेशन राजासाहबके यहाँ गया किन्तु वे रामायण देनेपर राज़ी न हुए। अन्तमें स्वर्गीय सुधाकरजीके कहने-सुननेपर उन्होंने रामायण एक तीसरे आदमीको सौंपी जहाँ जाकर कमेटी उसकी नक़ल उतार सकती थी। आपने बताया कि गोसाईंजी द्वारा लिखित वह रामायण है तो ज़रूर किन्तु कुल पन्ने मौजूद न थे, जहाँ-तहाँ पीछेके जुड़े पन्ने जान पड़ते थे और हम लोग सन्देहमें पड़ जाते थे कि कौन पाठ लेना ठीक होगा। अस्तु, जहाँ पन्नोंके बदले जानेका भ्रम था और पाठमें अड़चन होती थी वहाँ हम लोगोंने वही पाठ रक्खा जो जन-साधारणमें प्रचलित था।

रामायणके अर्थपर तो आपको कमाल हासिल था। मैंने अपनी बहुत-सी शंकाएँ पेश कीं जिनका समाधान बड़े सुन्दर ढंगसे आपने किया। बहुत-सी टीकाओंमें जो अर्थका अनर्थ किया गया है उसपर वे चार-आँसू बहाते थे। आपने काफ़ी खोज और अध्ययनके पश्चात प्रत्येक चौपाईका अर्थ निश्चय किया था। मैं गोसाईंजीकी जहाँ-तहाँकी अतिशयोक्तियोंपर बहुत झल्लाया करता हूँ। मैंने आपसे उसकी उपादेयताके विषयमें प्रश्न किया। वे कोई ख़ास चौपाई चाहते थे। मुझे 'भूप सहस दस एकहि बारा' वाली चौपाई याद

पड़ गई। आपने बताया कि पाठमें व्यतिक्रम है, 'भूत सेह सदस' के स्थानपर लोग 'भूत सहस दस' पढ़ते हैं जिसका कारण है कि गोसाईंजी तो सभी शब्दोंको एक ही सतरमें लिखते थे। इस प्रकार इसका अर्थ 'दस हज़ार राजा' न होकर 'राजा अपने आदमियोंके साथ' है। मैं इस अर्थपर आपकी खोजका कायल रह गया।

मैंने सुन रक्खा था कि गौड़जी भूतोंमें विश्वास रखते हैं। चाहता था कि इस संबंधमें पूछ-ताछ करूँ किन्तु मौका न मिलता था। अन्तमें जब हम लोग लौट रहे थे, मैंने अपने इस अरमानको आपके सामने पेश किया। संभवत: गौड़जीसे अब भेंट हो या न हो, यह कहते मैंने आपके सामने अपना प्रश्न रक्खा। समयके अभावसे मैं इस विषयमें पूर्ण वार्तालापसे तो वंचित रह गया किन्तु आपने इतना बताया कि भूत एक योनि है और वे मनुष्यका अनिष्ट कर सकते हैं।

इस प्रकार तीन या चार दिनोंके पश्चात् मैंने आपसे विदा ली। सोचा कि फिर कभी आपसे मिलकर सुख प्राप्त करूँगा। आपमें तर्क और उदाहरण द्वारा किसी मतकी पुष्टि करनेकी विशेष योग्यता थी। स्वभाव इतना सरल था कि किसी बड़े पंडित अथवा दार्शनिकमें पाया जाना कठिन है। मेरे हृदयपर आपके सौजन्य और त्यागकी गहरी छाप पड़ी और मैं समझा कि 'संत-मिलन' के समान और कोई सुख संसारमें नहीं। उस समय मुझे क्या मालूम था कि वे शीघ्र ही एक लम्बी यात्रा करनेवाले हैं। उन्होंने अपने यहाँका 'साइन-बोर्ड' हटा रक्खा था। कौन कह सकता है उनकी यात्रा-तैयारीका यह एक अंग था। एक रोज़ प्रात:काल उनकी इस कूचको सुन अवाक् रह गया। अस्तु।

यह थी आपसे अन्तिम भेंट।

हिन्दी साहित्यमें गौड़जीका स्थान

[ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

'विज्ञान' के यशस्वी सम्पादक और हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक श्री रामदासजी गौड़के अकस्मात् निधनका समाचार सुनकर मैं अवाक रह गया। सन् १९२७ से अप्रैल सन् १९३३ तक 'विज्ञान' के सम्पादनका भार मेरे ऊपर रहा। मैं इस कामसे थक चुका था और कुछ अवकाश चाहता था। परिषत्‌ने मुझे इस कार्यसे मुक्त कर दिया और तबसे इस समयतक श्री रामदासजी गौड़ इस पत्रका सम्पादन करते रहे। सन् १९३३ में 'विज्ञान' का सम्पादन छोड़ते समय मैंने यह लिखा था—'हर्षकी बात है कि अब इसका सम्पादन 'विज्ञान' के एक प्रकारसे जन्मदाता, हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ, प्रेमी, सुयोग्य श्री रामदासजी गौड़के सुकरोंमें जा रहा है। इसके लोक-प्रिय होनेमें अब कोई सन्देह न रहेगा। आशा है कि हमारे योग्य लेखक और पाठक 'विज्ञान' में पूर्वाधिक रुचि लेंगे।' अपने सम्पादित प्रथम-अंक (मई १९३३) से गौड़जीने निम्न शब्दों द्वारा यह भार अपने ऊपर लिया—'सुयोग्य' सबल और युवा कन्धोंसे विज्ञानका सम्पादन-भार अयोग्य, दुर्बल और बूढ़े कन्धोंपर आ पड़ा।

"जब फ़रिश्तोंसे न उट्ठा बारे इश्क,
आदमे खाकीके सरपर रख दिया।"

खैर, जैसी पड़े, परिषत्‌की आज्ञा इसी आशापर शिरोधार्य है कि मित्रगण मेरी परिस्थिति समझकर अवश्य उचित सहायता करेंगे। एक मुद्दतसे मैं 'विज्ञान' और वैज्ञानिक संसारसे दूर रहता आया हूँ। सम्पर्क छूट जानेसे मेरी जानकारी पुरानी हो गई है। जिज्ञासा बनी रहनेपर भी उसकी तृप्तिके साधन दुर्लभ हो रहे हैं।

नहिं विद्या नहिं बाहुबल नहिं खर्चनको दाम ।
मो सम पतित पतंगकी पति राखैं श्रीराम ।।

फिर भी मुझे पूर्ण आशा है कि इसके अवकाश-ग्राही सम्पादक भरसक 'विज्ञान' के काममें अवश्य सहायता करेंगे कि मेरी अयोग्यता और असामर्थ्यके कारण 'विज्ञान' के परिमाणमें पतन न होने पावे।"

मुझ अवकाश-ग्राही सम्पादकने सन् १९३३ से इस समय अक्टूबर सन् १९३७ तक अवकाशका उपयोग किया। मैं नहीं समझता था कि मुझे सम्पादनका पुनः भार उठाना पड़ेगा। एक बार छोड़ देनेपर दुबारा फिर वही कार्य करनेके लिए मुझमें साहस नहीं था।

अकस्मात् संयोग

यह दैवी-संयोगकी बात है कि सितम्बरमें हमारा वर्ष समाप्त होता है, और इस मासतक 'विज्ञानका' सम्पादन श्री गौड़जी करते रहे। अक्टूबर मासका 'विज्ञान' 'फल-संरक्षण' नामका विशेषांक था जो आद्योपान्त मेरे मित्र डा० गोरखप्रसादजीका लिखा हुआ है और वे ही इस अंकके विशेष सम्पादक थे। इस अंकसे ही एक प्रकारसे गौड़जीने सम्पादनका भार हम लोगोंको सौंप दिया था; हम नहीं समझते थे कि इस भारको सौंपकर गौड़जी सदाके लिए हमसे विदा होकर जा रहे हैं। इस सम्बन्धमें एक दुःखद घटना भी हुई, वह थी कतिपय विचारोंके सम्बंधमें मतभेद। हममेंसे कुछका विचार था कि 'विज्ञान' में कुछ अवैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित न हुआ करें, जैसे फलित-ज्योतिष, होमियोपैथी, प्रेतवाद, आदि। गौड़जी इन विषयोंको भी वैज्ञानिक समझते थे। हम लोगोंके अनुरोधपर भी वे अपनी धारणाएँ परिवर्तित न कर सके। वे अपनी धुनके पक्के थे, और इस मतविरोधके कारण 'विज्ञानके' सम्पादनसे पृथक् होना चाहते थे। इधर कुछ दिनोंसे वे बीमार भी रहने लगे थे। अब वे अवकाश चाहते थे। संयोग ही समझना चाहिए कि ये सब कारण इस प्रकार संचित हो गये कि मृत्युसे पूर्व ही विज्ञानके सब लेखादि 'उन्होंने' हमारे पास भेज दिये, और 'विज्ञान' के सम्पादनसे मुक्ति चाही। निधन दिवसतक उनके पत्र हमारे पास आते रहे। सब काम बड़ी शीघ्रतासे किया गया, और इस उतावलीका रहस्य हम तब समझ पाये जब अकस्मात् 'लीडर' में उनकी मृत्युका समाचार हमें मिला। हमें तब ज्ञात हुआ कि वे महायात्राकी तैयारीके लिए उत्सुक हो रहे थे। अब तो उस आत्माने महावकाश ग्रहण कर लिया है।

उनकी इस तत्परताका फल यह हुआ कि उनके निधनके कारण 'विज्ञान' के समयपर प्रकाशित होनेमें कोई बाधा न पड़ी। मेरा तो यह विश्वास था कि गौड़जीका यह भार मेरे मित्र डा० गोरखप्रसादजी उठावेंगे क्योंकि सर्व-रुचिकर साहित्य लिखनेमें वे विशेषज्ञ हैं। पर उनके आग्रहसे और परिषत्की आज्ञासे 'विज्ञान' का सम्पादन-कार्य मैंने स्वीकार किया है। जैसी मुझे आशा थी, गौड़जीके समयमें 'विज्ञान' अधिक रोचक हो गया, उसकी ग्राहक-संख्या भी बढ़ी, और सभी प्रकार उसकी उन्नति हुई। अब हमें उनका अभाव सदा खटकता रहेगा।

संक्षिप्त परिचय

कविता कौमुदीके यशस्वी सम्पादक श्री रामनरेशजी त्रिपाठीने दूसरे भागमें गौड़जीका परिचय इस प्रकार दिया है:—

'बाबू रामदास गौड़का जन्म सं० १९३८ की मार्गशीर्ष अमावस्याको जौनपुर शहरमें हुआ। ये जातिके कायस्थ हैं। वहाँ इनके पिता मुंशी ललिताप्रसाद चर्च मिशन हाई स्कूलके सेकंड मास्टर थे। इनके प्रपितामह मुंशी भवानीबख्शजी फैज़ाबाद ज़िलेके बिड़हर इलाकेकी ज़मींदारी छोड़कर सं० १८६७ वि० के लगभग काशीजीमें आकर रहने लगे थे। इसलिए गौड़जीका वर्त्तमान निवासस्थान काशी है।

"गौड़जीने फ़ारसी, गणित और अँग्रेज़ीकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजीसे पाई। इनकी माता और नानी नित्य नियमपूर्वक रामचरितमानसका पाठ किया करती

थीं। इससे चार ही पाँच वर्षकी अवस्थासे इनको रामचरितमानससे प्रेम हो गया। दस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने एक संक्षिप्तरामायण लिखी, जिसमें पाँच-छ: सौ छन्द हैं। यह पुस्तक बाल-कविता होनेके कारण प्रकाशित करने योग्य नहीं है। इसके बाद इन्होंने स्वप्नादर्शकी रचना की जो अप्रकाशित है। इन्होंने जौनपुर हाई स्कूलसे १९५३ वि० में एंट्रेंस, सेंट्रेल-कॉलेजसे १९५८ वि० में एफ० ए० और म्योर सेंट्रल कॉलेजसे १९६० वि० में बी० ए० पास किया। बी० ए० की परीक्षा देनेके बाद सेंट्रल हिन्दू कॉलेजमें ये रसायनके सहकारी अध्यापक नियुक्त हुए। परन्तु परीक्षाफल प्रकाशित होते ही काशीसे प्रयाग चले आये और एल-एल० बी० क्लासमें पढ़ने लगे। इसी समय मिर्ज़ापुरमें इनके बड़े भाईका देहान्त हो गया, जिससे वकालत पढ़ना छूट गया। सम्वत् १९६१ से १९६३ तक ये कायस्थ पाठशालामें रसायनके प्रोफ़ेसर और सम्वत् १९६३से १९७५ तक म्योर सेंट्रल कॉलेजमें रसायनके डिमांस्ट्रेटर रहे। सम्वत् १९६५ में अध्यापकीकी दशामें रसायनमें एम० ए० पास किया। १९७५ से हिन्दू विश्वविद्यालयके प्राच्यविभागमें रसायनके प्रोफ़ेसर तथा सीनेट और फैकल्टीज़ ऑव आर्ट्स, सायंस और ऑरियंटल लर्निङ्गके सदस्य थे। १९७७ में असहयोग आन्दोलनके कारण विश्वविद्यालयकी नौकरी छोड़ दी। वहाँसे ये मिर्ज़ापुर चले आये और वहाँ राष्ट्रीय विद्यालयमें कार्य करने लगे।

१३ दिसम्बर १९२१ को प्रयागमें प्रान्तीय काँग्रेस कमेटीके ५५ मेम्बरोंमें ये भी गिरफ़्तार किये गये। इनको १॥ वर्षका कठिन कारावास और १००) का अर्थदंड दिया गया। आगरे और लखनऊकी जेलोंमें एक वर्षसे अधिक रहनेके पश्चात् जनवरी १९२३ में सबके साथ सरकारने इनको भी छोड़ दिया। तबसे ये काशीमें रहते हैं। कुछ समयतक वहाँ म्यूनिसिपल बोर्डके मेम्बर और उसकी पब्लिक-वर्क्स-कमेटीके सभापति भी थे। ये विज्ञान-परिषद्के ऑनरेरी फ़ेलो और हिन्दी साहित्य सम्मेलनके स्थायी सदस्य भी हैं।

दस वर्षकी अवस्थामें संक्षिप्त-रामायण और ग्यारह-बारह वर्षकी अवस्थामें स्वप्नादर्शकी रचना इन्होंने की थी। इसके बादकी कविताएँ 'रसिक-वाटिका' में छपती रहीं। १८-२० वर्षकी अवस्थाकी कविताएँ 'छत्तीसगढ़मित्र' में छपती थीं। उस समय इनका उपनाम 'रस' था; अब 'रघुपति' है। बी० ए० पास करनेके बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभाके लिए इन्होंने संवत् १९६२ तकके हिन्दीके ज्ञात ग्रंथोंकी सूची अँग्रेज़ीमें तैयार की थी जिसमें ग्रन्थके निर्माण-काल और कवियोंके संक्षिप्तवृत्त अनेक ग्रन्थों और रिपोर्टोंसे संकलित किये गये थे। यह ग्रन्थ भी अभीतक अप्रकाशित है।"

(कविता कौमुदी १९८३)

हमारा पुराना वैज्ञानिक साहित्य

गौड़जीका नाम हिन्दीसाहित्यमें अमर रहेगा। वैसे तो उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी, पर जिस कामके लिये वे स्मरण किये जायँगे, वह है वैज्ञानिक साहित्य। उनके कार्यका महत्त्व अनुभव करनेके लिए यह आवश्यक है कि हम हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यका थोड़ा-सा सिंहावलोकन कर लें। आधुनिकविज्ञानका पहला ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया था। वह ग्रन्थ था बापूदेव शास्त्रीजीकी त्रिकोणमिति। उसीका अनुवाद उनके एक शिष्य पं० वेणीशंकरने हिन्दीमें किया। यह ग्रन्थ १८५९ में छपा, किन्तु इसके चार वर्ष पूर्व ही आगरेमें पं० कुंजबिहारीलालने लघु त्रिकोणमिति नामका ग्रन्थ छपवाया। पं० मथुराप्रसादजी मिश्रका अनुवादित ग्रन्थ 'बाह्यप्रपंचदर्पण' जिसका विषय भौतिक भूगोल है ऐसा सर्व-प्रथम ग्रन्थ था जिसे गवर्नमेंटने प्रकाशित किया हो। इसके बाद ही दूसरे वर्ष सन् १८६० में एक अनूदित ग्रन्थ 'सिद्ध पदार्थ-विज्ञान' प्रयागसे प्रकाशित हुआ। इसके अनुवाद-कर्त्ता पं० वंशीधर, मोहनलाल और कृष्णदत्तजी थे। यह मेकेनिक्स (यंत्र-विज्ञान) का ग्रन्थ है। इसी वर्ष पं० बालकृष्ण शास्त्री खरडकरकी अनुवाद की हुई 'खगोल-विद्या' प्रयागमें छपी। सन् १८६५ में पं० विजयशंकरने लखनऊसे प्रारम्भिक यंत्र-शास्त्रके सम्बन्धमें एक पुस्तक

लिखी। सन् १८६७ में राजवैद्य कालिनिएस वैलनटाइन-ने 'संक्षेप पाठ' नामक एक पुस्तक जयपुरमें छपवाई जिसमें वायुकी उत्पत्ति और रसायनका संक्षेपमें वर्णन है। सन् १८७४ में पं० वंशीधरजीको 'चित्र-कारी सार' नामकी पुस्तक छपी। विजयशंकरजीकी पुस्तकको छोड़कर ये सब पुस्तकें गवर्नमेंटने प्रकाशित कराई थीं, और सबकी सब किसी-न-किसी अँग्रेज़ी पुस्तककी अनुवाद थीं।

गवर्नमेंटकी बिना सहायताके प्रकाशित और स्वतंत्र-लिखित पुस्तकोंका श्रेय पं० लक्ष्मीशंकर मिश्रको है है जो बनारस कॉलेजमें प्रोफेसर थे। उन्होंने १८७५ में 'पदार्थ-विज्ञान' विटप-नामक ग्रन्थ छापा जिसमें भौतिक विज्ञान और रसायनकी प्रारम्भिक बातें दी गई। मिश्र-जीने और भी कई ग्रन्थ लिखे जैसे 'त्रिकोणमिति' (१८७३) 'प्रकृति-विज्ञान-विटप', 'गतिविद्या' (डायने मिक्स) और 'स्थिति-विद्या' (स्टैटिक्स)। आपने बनारस इन्स्टीट्यूटमें कुछ व्याख्यान भी वैज्ञानिक विषयों-पर हिन्दीमें दिये जिनमेंसे एक व्याख्यान 'वायुचक्र-विज्ञान' के भाग १ और २ छपे भी। आपकी एक पुस्तक 'गणित कौमुदी' भी थी।

संवत् १८८२ में 'रसायनप्रकाश' नामक एक पुस्तक (पं० बद्रीलाल आगरा-निवासी कृत) का दूसरा संस्करण नवलकिशोर प्रेस लखनऊसे छपा। इसका प्रथम संस्करण आगरा स्कूल बुक सोसायटी-की ओरसे कलकत्तेमें संवत् १९०१ वि० अर्थात् सन् १८४४ में संभवतः छपा था। यदि ऐसा है तो हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यकी सर्व-प्रथम पुस्तक यही रही होगी। नवलकिशोर प्रेससे १८८२ में 'सृष्टिका वर्णन' नामकी एक पुस्तक और १८८३ में 'खेतीकी विद्याके मुख्य सिद्धान्त' नामकी एक पुस्तक जो लाला काशीनाथ खत्री, सिरसा, (प्रयाग-निवासी) की (अनुवादित) आर्यदर्पण प्रेस, शाहजहाँपुरमें प्रकाशित हुई।

इसके बाद सन् १८८५ में 'चलन-कलन' और 'चलराशिकलन' नामक दो अति महत्त्वपूर्ण पुस्तकें पं० सुधाकरजी द्विवेदीकी लिखी हुई छपीं जिनका विषय कैलकुलस-गणित था। इस पुस्तकका देश-विदेश सभी जगह मान हुआ। गणितके उच्च साहित्यकी यह पहली पुस्तक थी। गवर्नमेंटने इसका अच्छा सत्कार किया।

बीसवीं शताब्दीमें प्रवेश

बीसवीं शताब्दीके आरंभमें कार्यकी प्रगति ढीली पड़ गई। पर शीघ्र ही नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) ने वैज्ञानिक परिभाषाओंका एक सुन्दर कोष प्रकाशित किया। श्री महेशचरणसिंहने रसायन-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र और वनस्पति शास्त्रपर अच्छे ग्रन्थ लिखे। प्रो० रामशरणदासजीने गुरुकुलकाँगड़ीसे 'विकासवाद' और 'गुणात्मकविश्लेषण' नामक अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित कराये। प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्रने बनारससे 'हिन्दी साय॑स यूनिवर्सिटी माला' नामसे कुछ औद्योगिक रसायनकी पुस्तकें प्रकाशित कराईं। इस मालाकी पहली पुस्तक 'रोशनाई बनानेकी पुस्तक' थी जो सन् १९१५ में प्रकाशित हुई। इसके चार संस्करण हो चुके हैं। आपकी अन्य पुस्तकें ये हैं—। 'साबुन बनानेकी पुस्तक,' 'तेल मोमबत्ती आदि बनानेकी पुस्तक', 'रंगकी पुस्तक,' 'सरल रसायन,' 'वार्निश और पेंट' आदि।

विज्ञान परिषद्‌की स्थापना

सन् १९१३ की बात है। देशी भाषाओंकी परि-स्थितिका प्रश्न तो दूर रहा, सामान्य दृष्टिसे भी विज्ञान-का प्रवेश इस देशमें कम हुआ था। सर जगदीशचन्द्र बसु और आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय अपने कामोंसे कुछ कीर्त्ति अवश्य प्राप्त कर चुके थे। कलकत्तेके प्रेसिडेंसी कॉलेजमें खोजका कुछ काम आरंभ हुआ था। म्योर आदि बड़े-बड़े कॉलेजोंमें गद्दियाँ पाश्चात्योंके हाथमें ही थीं, और उनसे भारतीयोंको प्रोत्साहन मिलनेकी आशा न थी। सन् १९१२ में इण्डियन सायंस काँग्रेसका जन्मभर हुआ था, यह भी शुभ बात थी और एशिया-टिक सोसायटी ऑव् बंगालकी इस कृपाके हम आभारी हैं। पर आज जो इंडियन केमिकल सोसायटी, फिज़िकल सोसायटी, बायलोजिकल सोसायटी, मेथिमेटिकल सोसा-

यटी आदिका जाल-सा बिछा हुआ पाते हैं, वे उस समय थी हीं नहीं। प्रो० सर सी० वी० रमनने अपना थोड़ा-सा कार्य इंडियन एसोसियेशनमें आरंभ ही किया था और उन्हें कोई जानता भी न था। डा० मेघनाद सहा, डा० नीलरत्न धर, प्रो० बीरबल साहनी, आदि व्यक्ति विद्यार्थी-मात्र थे। डा० गणेशप्रसादका प्रभातकालीन उदय हो रहा था। यू० पी० के स्कूलोंमें विज्ञान विषय नया-नया प्रविष्ट किया जा रहा था, जिसको पढ़ानेवाले कठिनतासे मिलते थे। कुछ पुराने कॉलेजोंमें इसकी शिक्षा आरंभ होगई थी। सन् १९१३ में यह परिस्थिति थी।

इस परिस्थितिमें म्योर कॉलेजके कुछ नवयुवकोंका सहयोग प्राप्त करके बाबू रामदासजी गौड़ने 'विज्ञान-परिषद्' की स्थापनाका विचार प्रस्तुत किया। परिषद्का उद्देश्य जो उस समय निर्धारित हुआ, वह यह था:—

"विज्ञान-परिषद्की स्थापना इस उद्देश्यसे हुई है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणत: वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।"

इससे स्पष्ट है कि परिषद्के जन्मदाता और उसके सहयोगियोंका विचार केवल इतना ही नहीं था, कि परिषद् द्वारा कुछ अनुवादित या संग्रहीत पुस्तकें ही हिंदीमें (अथवा भारतीय भाषाओंमें) प्रकाशित की जायँ, प्रत्युत विचार यह था कि विज्ञान-परिषत् विलायतकी एकेडेमियोंकी भाँति एक ऐसी संस्था हो जिससे भारतमें वैज्ञानिकसाहित्यका प्रचार हो, और जिसकी छत्रछायामें यहाँके व्यक्ति मौलिक-खोजोंका भी काम करें। हमारा तो यह परतंत्र देश है, इसीलिए परिषत्के जन्मदाताओंका यह विचार मधुर स्वप्न-मात्र रह गया। मौलिक खोजोंके प्रकाशनके लिए भारतीय भाषाको माध्यम बनाना यहाँके नवयुवक वैज्ञानिकोंको रुचिकर प्रतीत न हुआ। बंगाल और मद्रासने अनेक वैज्ञानिकोंको जन्म दिया, पर उनसे बंगाली या द्राविड़ भाषाओंको कोई लाभ न हुआ। जापान ऐसा स्वतंत्रदेश ही अपनी भाषाके महत्त्वको समझ सकता है।

तबसे और अबतक २४ वर्ष होते हैं, विज्ञान-परिषद्की स्थापना उन पुरानी परिस्थितियोंमें होना कोई साधारण बात नहीं थी। परिषद्की संस्थापना और संचालन बड़े ज़ोर शोरसे किया गया। तबसे अबतक इस परिषद्के सभापति ये व्यक्ति रह चुके हैं—डा० सर सुन्दरलालजी, सर राजा रामपालसिंह, महामना पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीमती एनी बीसेंट, डा० गंगानाथ झा, डा० नीलरत्न धर, डा० गणेशप्रसाद और डा० कर्मनारायण बाहल ? इन प्रमुख व्यक्तियोंके नाम ही परिषद्की महत्ता सूचित करनेके लिए काफ़ी हैं। यू० पी० की गवर्नमेंटके अधिकारियोंने भी आरम्भमें काफ़ी रुचि ली। १८ नवंबर १९१६ के एक अधिवेशनमें इस प्रान्तके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर मेस्टन साहेब सभापति हुए थे।

'विज्ञान' का प्रकाशन

परिषद्के उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए विज्ञान-परिषद्ने अपने जन्मके दो वर्ष पश्चात् ही 'विज्ञान' नामक एक मासिक पत्र निकालनेका विचार किया। एप्रिल १९१५ (मेष सम्वत् १९७२) में 'विज्ञान' का पहला अंक निकला। उसके पहले पृष्ठपर ये शब्द अंकित हैं—

"समयानुसार हिन्दीके जिस अंगकी जितनी उन्नति चाहिए थी, बराबर उसके हितैषी स्वभावत: उसकी ओर दत्तचित्त रहे। पर खेदकी बात है कि और अंगोंकी अपेक्षा हिन्दी-साहित्यका वैज्ञानिक अंग अत्यन्त बलहीन और अपूर्ण है। इस अपूर्णताकी पूर्तिके लिए इस पत्रका जन्म हुआ है। इस अंगकी पूर्ति विज्ञान-परिषत्के उद्देश्यके अन्तर्गत है, इससे आशा की जाती है कि जैसे परिषत् इस सत्कार्यके साधनमें उद्यत हुई है, हिन्दी-हितैषी भी उसके इस सदुद्योगका पूरा आदर करेंगे और तन-मन-धनसे सहायक होंगे।"

इस प्रथम अंकके टाइटिल-कवर (पृष्ठ २) पर परिषत्के संबंधमें यह अंकित है—

"इस परिषद्का मुख्यत: यही उद्देश्य है कि देशी भाषाओं और विशेषत: इस प्रांतकी भाषामें साहित्यके वैज्ञानिक अंगकी पूर्ति ग्रंथानुवाद, निबंधलेखन, और वैज्ञानिक पत्रोंके प्रचार आदि द्वारा की जावे। देशी भाषाकी पाठशालाओंमें विज्ञान-शिक्षाके समाविष्ट न किये जानेका कारण भी प्राय: यही समझा जाता है कि भाषामें इन विषयोंपर उपयोगी पाठ्य पुस्तकोंका अभाव है। यह किसी अंशतक सच भी है, परन्तु इस अभावको दूर करना किसी एक व्यक्तिका काम नहीं है। इसमें सहकारिताके बिना काम नहीं चल सकता। प्रयागके कई विद्वानोंने इसी दृष्टिसे विज्ञान-परिषद्की स्थापना की है।"

'विज्ञान' के प्रथम वर्षके लेखकोंमें मुख्य थे—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, अध्यापक बाबू महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, श्री प्रेमवल्लभ जोशी, श्री जगदीशसहाय माथुर, श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, श्री डा० वि० देवधर, श्री सालिगराम वर्मा, श्री राधामोहन गोकुलजी, पं० गंगाप्रसाद वाजपेयी, श्री अनादिधन वांद्योपाध्याय, श्री मधुमंगल मिश्र, श्री गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, श्री निहालकरण सेठी, श्री सालिगराम भार्गव और श्री ब्रजराज। डा० गंगानाथजीका स्नेह परिषद् और विज्ञान-के प्रति आरंभसे ही रहा। रामदासजी गौड़ तो पत्रके सर्वेसर्वा थे। प्रो० गोपालस्वरूप भार्गवने 'विज्ञान' के आरंभिक दिनोंका चित्रण इस प्रकार किया है—

'पं० श्रीधर पाठक तथा लाला सीतारामने 'विज्ञान' का सम्पादनस्वीकार किया। रामदास गौड़ दिन-रात एक पं० गंगाप्रसाद वाजपेयीकी सहायतासे 'विज्ञान' का संचालन करने लगे। प्रि० हीरालालके उत्साह बढ़ानेसे श्री के० सी० भल्ला 'विज्ञान' का प्रकाशन करने लगे। खन्नाजी नित्य 'विज्ञान' का काम करने विज्ञान-परिषद्के कार्यालयमें आते थे, परन्तु यह प्रबन्ध प्राय: दस महीने चला। गौड़जीको अधिक परिश्रम करनेसे चक्कर आने लगे, वह छुट्टी लेकर हरिद्वार चले गये। वाजपेयीजी लॉ-की परीक्षा देने गये। भल्लाजी प्रयाग छोड़ कानपुर चल दिये। खन्नाजी आगरासेंट जॉन्स कॉलिजके गणित-अध्यापक होकर चले गये। प्रयागके काम करनेवालोंमें रह गये केवल तीन आदमी—प्रो० सालिग्राम भार्गव, प्रो० ब्रजराज तथा यह सेवक।'

'विज्ञान' का प्रकाशन लाला कर्मचन्द्र भल्ला (जो बादको स्टार प्रेसके मालिक और नवजीवनके सम्पादक थे) करते थे और आरम्भमें यह लीडर प्रेस में छपता था। ऐसा प्रबन्ध मार्च सन् १९१६ तक रहा। अप्रैल १९१६ से विज्ञान-परिषद् स्वयं-प्रकाशक हो गई। कहनेको तो सहयोग औरोंका भी था, पर काम गौड़जीको ही करना पड़ता था। लेखोंका लिखवाना, उनका संशोधन करना, प्रूफ देखना—यही नहीं, जितने भी झंझट हैं, सभी गौड़-जीके मत्थे थे। अप्रैल सन् १९१६ से पूर्वतक तो सम्पादकोंमें श्री पाठकजी और लाला सीतारामजीका नाम रहा, पर बादको जुलाई सन् १९१७ तक किसी भी सम्पादकका नाम नहीं दिया गया। अगस्त १९१७से प्रो० गोपालस्वरूप भार्गवका नाम सम्पादकके रूपमें प्रकाशित होने लगा। इस बीचमें सम्पादन गौड़जी ही करते थे पर उन्होंने कभी सम्पादकके रूपमें अपना नाम नहीं दिया। हाँ, मई सन् १९३३ में जब मैंने 'विज्ञान' का सम्पादन छोड़ा तबसे गौड़जीका नाम 'विज्ञान' के प्रधान सम्पादकके रूपमें प्रकाशित होना आरंभ हुआ। परि-षद्के सब कुछ होते हुए भी गौड़जी प्रधान, उपप्रधान, या मंत्री कभी नहीं हुए। जहाँतक मेरा स्मरण है, वे सदा कार्यकारिणी समितिके साधारण अन्तरंगी सदस्य ही रहे। पदाधिकारकी लालसासे वे सदा मुक्त बने रहे।

वैज्ञानिक भाषाके प्रवर्त्तक

सामान्य हिन्दी जगत्में जो स्थान आजकल आचार्य श्री महावीरप्रसादजी द्विवेदीको प्राप्त है, बिलकुल वही स्थान श्री रामदासजी गौड़को हिन्दी-वैज्ञानिक जगत्में मिलना चाहिए। द्विवेदीजीने वर्त्तमान हिन्दी गद्यकी रूपरेखा निर्धारित की और उसी प्रकार श्रीगौड़जीने वैज्ञानिकसाहित्यके लिए जैसी भाषा होनी चाहिए उसका निर्माण किया। उनके निरीक्षण और सम्पादन

में विज्ञानके सभी अंग, जैसे भौतिक-शास्त्र, रसायन, गणित, ज्योतिष, जीव-विज्ञान आदि, हिन्दी भाषामें लिखे जाने लगे। न केवल पारिभाषिक शब्दोंकी ही कमी थी, प्रत्युत विषयोचित भाषाका भी निर्माण करना था। सामान्य साहित्यिक गद्य और वैज्ञानिक-गद्यमें विशेष अन्तर होता है, और जो वैज्ञानिकसाहित्यसे परिचित हैं वे इस बातको समझते हैं कि रसायनज्ञों, गणितज्ञों, ज्योतिषियों, अथवा अन्य वैज्ञानिकोंकी भाषा साधारण गल्प, उपन्यास, या नाटकोंकी भाषासे भिन्न होती है। पद-विन्यास, वाक्य-विन्यास, और पारिभाषिक शब्दमें कुछ पार्थक्य होता ही है। विदेशी शब्दोंके प्रयोगके कारण व्याकरणके नियम (समासके, लिंगके आदि) भी कुछ निर्धारित करने पड़ते हैं। जो व्यक्ति इन सब कठिनाइयोंका अनुभव कर सकता है, वही यह समझने-का अधिकारी है कि गौड़जीने हिन्दी वैज्ञानिक भाषाको क्या-क्या प्रदान किया।

अभी हालकी बात है कि जब उनकी 'विज्ञान हस्ता मलक' नामक पुस्तक मंगलाप्रसाद-पारितोषिकके सम्बन्धमें मेरे पास निर्णयार्थ आई थी, तो मैंने अपनी सम्मतिमें यही भावना प्रकट की थी कि यद्यपि यह पुस्तक विषयकी दृष्टिसे संग्रह-मात्र है, पर फिर भी इसका एक मौलिक महत्त्व है। गौड़जीने आजसे लगभग २५ वर्ष पूर्व एक महान् प्रयोग आरंभ किया था, वह यह कि भाषाको ऐसा सम्पन्न किया जाय कि उसके द्वारा उच्चतम वैज्ञानिक विषय व्यक्त किये जा सकें। 'विज्ञान हस्तामलक' लिखकर उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि हिन्दी भाषा अब इस योग्य हो गई है कि इसमें विज्ञानके सभी अंग ('विज्ञान हस्तामलक' में १८ अंगों-का विवरण है) अब व्यक्त किये जा सकते हैं। 'विज्ञान हस्तामलक' इस प्रकार उनके २५ वर्षके परिश्रमका परिणाम है। इस ग्रन्थकी यह विशेषता है, और यही इसकी परम मौलिकता है। हर्षकी बात है कि गौड़जी-के इस ग्रंथका सम्मेलनने आदर किया और समयपर पुरस्कृत किया। यदि कुछ मासकी ही और देर हो जाती, तो सम्मेलनको आज वही पछतावा होता जो उसे प्रेमचन्दजी जैसे अद्वितीय साहित्यिकको पुरस्कृत एवं सम्मानित न करके हुआ है। साहित्य सम्मेलनके दिल्ली-वाले वार्षिकाधिवेशनमें (१९३४) गौड़जी विज्ञान विभागके सभापति बनाये गये थे।

अनेक युवक लेखकोंके जन्मदाता

वैज्ञानिक साहित्य लिखनेवाले इस समय बहुत नहीं है, पर जो भी कुछ हैं, उन्होंने किसी-न-किसी प्रकारसे गौड़जीसे प्रोत्साहन पाया। आज तो विविध पत्रिकाओंमें सर्वरुचिके कुछ वैज्ञानिक लेख प्रकाशित होते हैं, पर इनके लगभग सभी लेखकोंने 'विज्ञान' पत्रिकासे और गौड़जीकी कृतियोंसे कुछ-न-कुछ सीखा न हो। जिस व्यक्तिमें कुछ भी आशाके चिह्न पाये जाते हैं, गौड़जी उससे लेख लिखवाते, लेखोंका संशोधन करते, और लेखकको प्रोत्साहित करते।

गौड़जीका ऋण किन-किनपर है, यह तो हमारे लेखक स्वयं समझते होंगे। नाम गिनानेकी आवश्यकता नहीं है। काव्य-साहित्यके क्षेत्रमें भी बहुतोंने गौड़जी-से सीखा, और वे उन्हें अपना गुरु आजतक मानते हैं।

गौड़जीके ग्रन्थ

गौड़जीके सभी ग्रंथोंसे मुझे परिचय नहीं है। जो मेरे देखे हुए हैं उनका संक्षिप्तविवरण इस प्रकार है—

१ भारी भ्रम—नार्मन एंजेलके एक राजनैतिक ग्रंथका अनुवाद—ई० सं० ३४४, सन् १९१४ में छपी। प्रकाशक—व्यासाश्रम पुस्तकालय, नं० ७ मंडावल्ली लेन, मैलापुर मद्रास। मूल्य १॥)

२—तजकिर-ए-सुचारुवंशी (छठा भाग)—विवाहादिकी रीति रस्म (गौड़ कायस्थोंकी)—भिन्न-भिन्न संस्कारोंपर गाये जानेवाले प्रचलित गीतोंका इसमें संग्रह है। ग्राम्य और घरेलू गीतोंके साहित्यमें इसे विशेष स्थान मिलना चाहिए। सं० १९६७ वि०

(सन् १९१०) में बाबू प्रभूलाल गौड़, सब्जीमण्डी उज्जैन द्वारा प्रकाशित ।

३—सुचारुवंशीय गौड़ोंका इतिहास— (१९१०) उर्दूमें । अनेक घरानोंका वंशावलियाँ और गौड़ोंकी मर्दुमशुमारी समझनी चाहिए ।

✓४—वैज्ञानिक अद्वैतवाद—प्रकाशक—ज्ञान-मंडल, काशी । सम्वत् १९७७ (सन् १९२०), पृ० सं० २२१. । यह पुस्तक लेखरूपमें जून १९१८ से 'विज्ञान' में छपनी आरम्भ हुई थी। देशकी कल्पना, कालकी कल्पना, जगत्की सृष्टि और लय, वस्तुकी सत्ता, आत्म-अनात्म, वेदान्त, उपासना आदि दार्शनिक विषय वैज्ञानिक पुट लिये हुए लिखे गये हैं। इस पुस्तकमें गौड़जीके मौलिक विचारोंका समावेश है।

✓५—हाथकी कताई बुनाई (अनुवादित)—प्रकाशक—सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, सन् १९२७, मूल-लेखक एस० वी० पुन्ताम्बेकर और एन० एस० वरदाचारी । पृ० सं० २६७

६—बच्चोंकी रक्षा—लूईकूनेकी पुस्तकका अनुवाद । प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजन्सी । सन् १९७८, पृ० सं० ४८

७—कन्याओंकी पोथी—प्रकाशक—गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार, प्रयाग, सन् १९२७, पृ० सं० २२८

८—अन्योक्तिकल्पद्रुम—दीनदयालगिरिकी काव्य पुस्तककी टीका—समालोचना और टिप्पणियों सहित । प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग ।

९—हिन्दी भाषा सार प्रथम भाग—ला० भगवान-दीनके सहयोगमें । गद्य लेखकोंके उद्धरण और जीवनी सहित । प्रकाशक—(संभवतः) हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग ।

✓१०—विज्ञान प्रवेशिका—प्रथम भाग—प्रो० सालिगराम भार्गवके सहयोगमें । प्रकाशक—विज्ञान-परिषत्, प्रयाग । इसका गतवर्ष ही नया संस्करण छपा है । अनेक परीक्षाओंमें स्वीकृत थी ।

११—दियासलाई और फासफोरस—'विज्ञान' में प्रकाशित एक लेखका पुनमुद्रण । छोटा-सा पैम्फ्लेट ।

✓१२—विज्ञान हस्तामलक—सन् १९३६ में, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग द्वारा प्रकाशित, ४७१ पृ० का ग्रन्थ, इसपर साहित्य सम्मेलनने मंगलाप्रसाद-पारितोषिक दिया ।

१३—उद्योग व्यवसायांक—(योगांक-क्षेमांक) (मार्च-अप्रैल १९३६ का संयुक्तांक)—यह 'विज्ञान' का विशेषांक अधिकांशतः श्री गौड़जीका आद्योपान्त लिखा हुआ है । इसमें भारतीय व्यापारी समस्याओंपर अनेक पहलुओंसे प्रकाश डाला गया है । गौड़जीके राष्ट्रीय विचारोंका इसमें सुन्दर चित्र है । बेकारी दूर करनेके सुलभ उपाय बताए गये हैं । पर इन उपायोंके बरतनेका अर्थ है—जीवनकी प्रगतिकी कायापलट ।

✓१४—भुनगा-पुराण—'विज्ञान' भाग ३ (मई १९१६) में गौड़जीने भुनगा पुराणका सर्व-प्रथम अंश दिया । नासिकेतोपाख्यानके समान पौराणिक शैलीपर सृष्टिके विकासकी कथा आरंभ की गई थी । पर यह ९-१० अध्याय निकलकर ही समाप्त हो गया ।

✓१५—पौराणिक सृष्टि और विकासवाद—११ नवम्बर १९३२ को विज्ञान-परिषद्के वार्षिक अधिवेशन में पढ़ा गया निबन्ध । नवम्बर १९३२ के 'विज्ञानका' यह पूरा अंक है । २४ पृष्ठ

✓१६—रामचरितमानसकी भूमिका—प्रकाशक—हिन्दी साहित्य एजेंसी, कलकत्ता । मूल्य ३), प्रथम संस्करण सं० १९८३ वि० । पृ० सं० २३ + १२६ + ७८ + १८१ + ११६ = ५२४

यह पुस्तक पाँच खंडोंमें विभाजित है ।—१—रामचरितमानसकी शिक्षा और व्याकरण, २—मानस शंकावली, ३—मानस कथा कौमुदी, ४—मानस शब्द सरोवर और ५—तुलसी चरित चन्द्रिका । यह पुस्तक गौड़जीकी सबसे उत्तम साहित्यिक कृति है और मानस-सम्बन्धी उनके विशद अनुशीलनका परिणाम

है। यह अकेली पुस्तक गौड़जीकी स्मृति स्थायी रखने-के लिए पर्याप्त है।

गौड़जीकी अन्य साहित्यिक विशेषताएँ

गौड़जीको हिन्दी साहित्यके सभी अंगोंका अच्छा ज्ञान था। वे दूरदर्शी और धुनके पक्के थे। प्रयागके साहित्य सम्मेलन और विज्ञान-परिषद्, काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा और ज्ञानमंडल, भारतवर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन, ज्योतिष सम्मेलन सभीमें गौड़जी रुचिपूर्वक काम करते थे। आपने ज्ञानमंडल और विज्ञान-परिषद्में सौर तिथियोंका प्रचार किया था। अपने पत्र व्यवहारमें वे केवल सौर तिथियाँ ही दिया करते थे। हम लोगोंको, जिन्हें इन तिथियोंके व्यवहार करनेका अभ्यास नहीं है, ये तिथियाँ भूलभुलैयाँ ही प्रतीत होती रही हैं। गौड़जी विभक्तियोंको मिलाकर लिखनेके पक्षपाती थे। वे स्वयं अपने पत्रों एवं लेखोंमें विभक्तियाँ मिलाकर ही लिखते थे। 'विज्ञान' में इस संबन्धमें पहले तो कोई नियम न था पर बादको वहाँ भी यही नियम व्यवहारमें आने लगा और आजतक प्रचलित है। मैं स्वयं विभक्तियोंको पृथक् शब्द मानता रहा हूँ पर इस सम्बन्धमें अभीतक मैंने दृढ़ता अंगीकार नहीं की है। सर्वनामोंके साथ विभक्तियाँ मिलानेका अभ्यास चला आ रहा है, पर मेरा विश्वास यही है कि विभक्तियाँ हिन्दीमें पृथक् लिखी जानी चाहिए।

गौड़जी अच्छे कवि थे, यद्यपि उन्होंने अधिक कविताएँ नहीं कीं। न जाने वे इस युगमें भी खड़ी बोलीको कविताके लिए क्यों नहीं अपनाते थे। 'विज्ञान' में गौड़जी-के मंगलाचरण और श्रीधर पाठकजीके भारत-गीत बहुत छपे। कविताओंका कुछ संग्रह कविता-कौमुदीमें पाठक देख सकते हैं। वैज्ञानिक अद्वैतवादके अन्तमें 'उपासना-सूक्त' के अन्तर्गत बहुत सी उर्दूकी शैलीकी कविताएँ हैं जिनमें सम्भवत: कुछ संग्रह और संकलन हैं, पर कुछ गौड़जीकी अवश्य होंगी।

गौड़जी साहित्यके विशेषज्ञ थे। मुझे याद है कि सर्वप्रथम मंगलाप्रसाद-पारितोषिक जो पं० पद्मसिंहजी शर्माको दिया गया उसके अन्तिम निर्णायकोंमेंसे एक गौड़जी भी थे। अन्य दो व्यक्ति थे पं० श्रीधर पाठक और श्री वियोगीहरि।

गौड़जी अपनी प्रभावशाली टकसाली भाषाके लिए प्रसिद्ध थे और गद्य-शैली उनकी ऐसी परिमार्जित थी कि आचार्य द्विवेदीजीके बाद मैं समझता हूँ कि इस समय उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है।

उपसंहार

गौड़जीके सम्बन्धमें मन चाहता है कि और लिखूँ। सहसा विश्वास नहीं होता है कि वह व्यक्ति जो अबतक हमारे सम्पर्कमें रहा, इस समय परलोकगत हो गया है। नेत्रोंके सम्मुख खद्दरधारी, हाथमें छोटा दण्ड लिये, थोड़ी-सी दाढ़ीवाले, हँसमुख व्यक्तिका चित्र आ जाता है। हमारा विचार आगामी वर्ष विज्ञान-परिषद्-की जयन्ती मनानेका था। गौड़जीने इस सम्बंधमें कई आयोजनाएँ रक्खी थीं, कई बार इस सम्बंधमें हम लोगों-में परस्पर परामर्श भी हुआ था।

'विज्ञान' के सितम्बरका अंक जो गौड़जी द्वारा सम्पा-दित अन्तिम अंक है उसमें आइडियल इन्स्टीट्यूटके बापू वाकणकरजीकी एक आयोजना अखिल भारतवर्षीय रसायन शब्दकोषके सम्बन्धमें निकली थी। वाकणकरजी लिखते हैं—'यदि भिन्न-भिन्न भाषाके लेखक पारस्परिक विचार विनिमयसे समान परिभाषा निर्माण करनेका प्रयत्न करें तो कलको नागरी अक्षरोंमें लिखे बंगाली भाषाके वैज्ञानिक लेख या ग्रन्थका संशोधन-वृत्त बिहार, आंध्र, गुजरात अथवा महाराष्ट्र देशस्थ वाचकको पढ़कर समझ लेना थोड़े प्रयाससे साध्य हो जावेगा। इस कार्यका राष्ट्रीय एकताकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्व है।

इस कार्यका महत्त्व तथा उसकी आवश्यकतापर अधिक लिखनेकी ज़रूरत ही नहीं है। इस महत्त्वपूर्ण तथा साहसयुक्त कार्यका भार हमारी संस्थाने मंगला-प्रसाद-पारितोषिक विजेता प्रो० रामदास गौड़, एम०

ए०, विज्ञान-सम्पादकके मार्गदर्शनमें आज उठाया है। प्रथम रसायन-शास्त्रकी शाखा-उपशाखाओंका काम हाथमें लिया गया है और भिन्न-भिन्न भाषाके विद्वानोंका इस राष्ट्रीय कार्यमें सहकार्य भी है।'

कौन जानता था कि सितम्बरमें प्रकाशित इस विज्ञप्तिके निकलते-निकलते ही गौड़जी साहित्य-संसारसे विलुप्त हो जायँगे। ईश्वर उनकी आत्माको सद्गति दे।

जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ

[लेखक प्रो० चण्डीप्रसादजी]

गौड़जीकी सबसे पुरानी स्मृति मेरी उस समयकी है जब सन् १९०२ में वे हैज़ेसे पीड़ित होकर शय्यापर पड़े हुए थे। बीमारीसे तो उन्हें छुटकारा मिल गया था, पर वे दुर्बल और शिथिल थे। उन्होंने जिन दवाओंसे लाभ उठाया था वे मुझे मालूम हो गई थीं। संयोगकी बात है, एक-दो मासके उपरान्त ही मुझे भी हैज़ा हुआ; और बढ़ता ही गया। जिस दवासे गौड़जी अच्छे हुए थे वह मुझे भी दी गई, पर कोई लाभ न हुआ। मुझे तीन-चार सप्ताह रोगसे युद्ध करनेमें बीते।

× × ×

उसके बाद क्वीन्स कॉलेज, बनारससे बी० ए० और बी० एस-सी० परीक्षा पास करनेके उपरान्त अगस्त १९०४ में मैं सैण्ट्रल हिन्दू कॉलेजकी प्रयोगशालामें कई बार गया क्योंकि मेरा विचार म्योर कॉलेज, प्रयागमें आगे अध्ययन करनेका था, पर आर्थिक सहायता न मिलनेके कारण मैं ऐसा न कर सका। गौड़जी वहाँ डा० आर्थर रिचर्डसनके साथ एक सालसे डिमांस्ट्रेटरका कार्य कर रहे थे। आगे अध्ययन करनेकी मेरी उत्कट इच्छा थी। गौड़जीने मुझसे कहा कि यदि तुम मेरी जगह डा० रिचर्डसनके साथ काम कर सको तो प्रयाग चला जाऊँ। गौड़जीका कहना मैं मान गया और उनके कहनेपर डा० रिचर्डसनने मुझे अपने यहाँ गौड़जीके स्थानमें नियुक्त कर लिया। रिचर्डसन मुझे पढ़ाया भी करते थे। जैसे हैज़ेमें मैं गौड़जीका अनुगामी बना, उसी प्रकार इस नियुक्तिमें भी मैंने उनका पदानुसरण किया।

× × ×

बादको जब कभी गौड़जी बनारस आते तो मेरी उनसे भेंट होती क्योंकि उनका घर और मेरी माँका घर पड़ोस ही में था। यहाँ वे स्व० प्रो० सतीशचन्द्र देव, स्व० डा० अन्नदाप्रसाद सरकार (जो डा० हिलकी सहकारितामें प्रयाग विश्वविद्यालयके रसायनमें प्रथम डाक्टर हुए) आदि व्यक्तियोंके कार्योंके संबंधमें चर्चा किया करते थे। डा० हिलकी आवश्यकताओंके कारण श्री गौड़जीका ध्यान मातृभाषामें वैज्ञानिक साहित्य लिखनेकी ओर आकर्षित हुआ और लेखन-अभ्यासका उन्हें एक सुअवसर प्राप्त हुआ। गौड़जीकी कार्य-शैली अपनी निजी थी, उनमें जीवन-संघर्षकी शक्ति प्रबल हो रही थी। अपने साथियोंमें उनका विशेष स्थान था। जज श्री बैजनाथके यहाँ ट्यूशन करनेसे भी उन्हें आगेके क्षेत्रोंमें काम करनेका अवसर मिला। उनके विचार इतने स्वतंत्र हो उठे थे कि उनको म्योर कॉलेज छोड़ना पड़ा।

× × ×

मुझे प्रयाग उन दिनों वर्षमें दो बार अवश्य ही आना पड़ता था, और कभी-कभी मैं गौड़जीके यहाँ ही ठहर जाता। सन् १९१३ से १८ तक रजिस्टर्ड ग्रेजुएटोंकी ओरसे मैं प्रयाग विश्वविद्यालयका फेलो रहा। इन दिनों मैंने विज्ञान-परिषद्से अपनी सहानुभूति रक्खी और इसके लिए जैसा कुछ मुझसे हो सका मैंने किया।

बादको गौड़जी हिन्दू विश्वविद्यालयमें आ गये। डा० गणेशप्रसादजी इस समय कॉलेजके प्रिन्सपल थे। इन दिनों गौड़जीसे अनेक बातोंमें विचार विनिमय करनेका अवसर मिलता रहा। जब गौड़जी गुरुकुल काँगड़ीमें

रसायनके अध्यापक होकर चले गये थे, मुझे वहाँ भी उनसे भेंट करनेका सौभाग्य हुआ। एक बार तो गरमी-की छुट्टियोंभर मैं गौड़जीके साथ रहा। कनखलके प्रसिद्ध वैद्य श्री योगेश्वर जोशीजी आयुर्वेद-संबंधी एक प्रयोगशाला स्थापित करना चाहते थे। यहाँ गौड़जीको मैंने रातदिन दूरदर्शक और अणुवीक्षण यंत्रोंकी सहा-यतासे रासायनिक प्रयोगोंके करनेमें व्यस्त रहते पाया।

× × ×

अन्तिम घड़ियोंके संबंधमें कुछ शब्द— प्रो० गौड़-जी अपने ठाकुरजीके लिए अत्युत्तम पक्का मन्दिर बनाना चाहते थे। उनके पास जो कुछ रुपया था उसको लगा-कर उन्होंने काम आरम्भ कर दिया। उनकी इच्छा थी कि उनकी इष्ट प्रतिमा जन्माष्टमी दिवसतक नये मन्दिरमें अवश्य पहुँच जाय। समय अधिक न था। कमरा तो बन गया, पर परिश्रम इतना पड़ा कि गौड़जीका स्वा-स्थ्य बिगड़ गया; वे बीमार पड़ गये। खेदकी बात है कि; जहाँतक मुझे पता चला है, वे एक दिन भी पूजा-के लिए इस कमरेका उपयोग न कर पाये। बीमारीमें भी उन्होंने विश्राम न लिया। इसी बीचमें उनके एक निकट संबंधीकी मृत्यु हो गई और शवके साथ उन्हें श्मशान घाट जाना पड़ा। असमय गंगा-स्नानसे उन्हें सर्दी लग गई। इससे उनके शरीरपर सूजन आ गई। बीमारी और बढ़ गई पर उन्होंने परवाह न की। दैव-योगकी बात हैकि उन्होंने पोस्ट ऑफिस सेविङ्ग बैंकसे अपना सब रुपया निकाल लिया और अपनी धर्मपत्नीके पास आकस्मिक उपयोगके लिए जमा कर दिया। यह बात कुछ विचित्र थी, क्योंकि इससे पूर्व उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया था। आधी रातको वे शौचके लिए गये, पर शौचालयसे बाहर आनेमें कष्ट प्रतीत हुआ। सहारा दिया गया। उन्होंने अपने पड़ोसीको और पुरोहितको बुलाया और रातमें ही किसी होमियो-पैथ डाक्टरको बुलानेको कहा। अपनी धर्मपत्नीसे और उन लोगोंसे जो वहाँ उस समय उपस्थित थे उन्होंने राम-नाम जपनेको कहा। इसी बीचमें उनकी आत्मा शरीर परित्यक्त करके अनन्तमें विलीन हो गई।

स्वर्गीय बाबू जयशंकरप्रसादजी

अभी हमको समाचार मिला कि काशीके बाबू जयशंकरप्रसादजीका देहान्त हो गया। प्रसादजी हिन्दी साहित्यकी विभूति थे और अभी हमें आपसे बड़ी आशाएँ थीं। आप सिद्धहस्त नाटककार, अच्छे कवि और पुरातत्त्व-प्रेमी थे। अभी कुछ दिन हुए 'विज्ञान' में प्राचीन भारत संबंधी आपके लेख प्रकाशित हुए थे। बौद्ध कालीन संस्कृतिके आप विशेषज्ञ थे और आपके लेखोंमें इस कालके जीवनका पर्याप्त आभास मिलता है। इस छोटी-सी आयुमें आपका देहावसान हो जाना हिन्दी साहित्यके लिए क्षतिका कारण हुआ है। हम इस अवसरपर सन्तप्त परिवारके साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

स्वर्गीय डा० सर जगदीशचन्द्र वसु

२३ नवम्बर १९३७ को प्रात:काल भारतवर्षके विज्ञानाचार्य और विज्ञान-परिषद्, प्रयागके सदस्य डा० सर जगदीशचन्द्र वसुका शरीरपात हो गया। आपकी आयु इस समय ७९ वर्षकी थी। आप उन इने गिने थोड़े भार-तीयोंमेंसे थे जिनके कारण भारतका मुख देश-देशान्तरोंमें उज्ज्वल हुआ है। आपके संबंधमें विस्तारसे हम फिर लिखेंगे। इस अवसरपर हम लेडी वसु और अन्य पारिवारिक जनोंके साथ समवेदना प्रकट करते हैं। हमारा तो समस्त देश सर जगदीशका ऋणी है और हमें उनपर गर्व है। और क्या लिखा जाय।

—सत्यप्रकाश

कुछ वैयक्तिक स्मृतियाँ

[श्री बापू वाकणकरजी]

स्वर्गीय श्री रामदासजी गौड़के इतने दिनके परिचयके बाद भी मैं यही समझता हूँ कि मैंने उन्हें पूर्णरूपसे कभी नहीं समझा था।

मैं जब १८५७ की स्वातंत्र्य-लक्ष्मी 'झाँसीवाली रानी' के शतसांवत्सरिक जन्मोत्सवके समय उक्त राष्ट्र युद्धके विषयमें युद्ध-शास्त्र-विषयक प्रबंध लिखनेके लिए प्रयत्न कर रहा था उन दिनोंमें मेरा गौड़जीसे परिचय हुआ। 'आज' सम्पादक श्री० बाबूरावजी पराडकरके निर्देशानुसार मैं उनसे मिलने गया था। प्रथम भेंटमें ही मैं गौड़जीके सरल और प्रेममय व्यवहारसे मुग्ध हो गया।

मैं उन्हें इतिहास संशोधक समझता था क्योंकि उनके बैठनेका स्थान मुझे ऐसा ही बताता था—पुराने ग्रंथ, पुराने अलमारियाँ, पुराने ढंगका सारा वातावरण। परंतु वे वैज्ञानिक तथा ज्योतिर्विद भी हैं यह धीरे-धीरे ज्ञात हुआ। परंतु उनके पुराने ढंगकी और सीधीसाधी रहन-सहनपर कौन कल्पना करता था कि आप एक विख्यात वैज्ञानिक होंगे?

× × ×

उनके देहावसानके पश्चात जब उनके एक स्नेहीने यह मुझे बताया कि गौड़जीने भूतविद्याके क्षेत्रमें बड़ा मौलिक और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, तब उसपर मैं अपना मत प्रकट नहीं कर सका। एक दिन कुछ ऐसी ही बातें निकली थीं जब मैंने गौड़जीको स्पष्ट बता दिया था कि ऐसी बातोंपर न तो मैं विश्वास करता हूँ न ऐसे विषयोंको महत्व देता हूँ क्योंकि आजकल जो ज्ञान हमारे समाजके लिए प्रत्यक्ष हितदायी न हो उसका विचार करना सामाजिक अपराध है। तबसे विज्ञानके अतिरिक्त अन्य बातोंपर गौड़जी मुझसे कभी नहीं बोलते थे। जिसका जो विषय हो उससे वे उस विषयकी बातें करते थे।

× × ×

आजकलके कई तथा कथित वैज्ञानिकोंमें अहमन्यता तथा दूसरेके कार्यको उचित श्रेय न देनेका भाव देखा जाता है। उसका स्वर्गीय गौड़जीमें पूर्ण अभाव था। गौड़जी प्रत्येक विषयपर अपना मत अवश्य रखते थे, परंतु जहाँतक मैंने देखा है वे दूसरेका श्रेय स्वयं लेनेका प्रयत्न कभी न करते थे।

× × ×

मेरी मातृभाषा हिंदी नहीं है, परंतु गौड़जीके कारण मैं हिंदी-भाषामें 'विज्ञान' के लिए लेख लिखने लगा। लखनऊ काँग्रेससे लौटनेपर गौड़जीने 'हाथके बने कागज़' यह सचित्र लेख मुझसे लिखवाकर कई उपयुक्त सूचनाएँ दी जो आज भी मेरा मार्गदर्शन करती हैं। गौड़जीका इसपर बड़ा कटाक्ष था कि 'विज्ञान' जनसमाजके लिये मार्गदर्शक बने।

× × ×

उनकी और मेरी आयुमें बहुत अंतर था और वे जिस बराबरीके नाते मुझसे व्यवहार करते थे उसका मैं आज भी अचरज करता हूँ। 'विज्ञान हस्तामलक' ग्रंथने उन्हें बहुत शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक कष्ट दिया। इस ग्रंथकी मेरी की हुई समालोचना हिंदी, बंगाली तथा मराठीमें प्रकाशित हो चुकी है। आपका 'हिंदुत्व' ग्रंथ पूर्ण होनेके पूर्व ही आप चल दिये, पर उसपर भी हमारी चर्चा चलती थी। उक्त ग्रंथमें भूलसे बै० सावरकर कृत 'आसिंधु सिंधु पर्यंता यस्य भारत भूमिका। पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरितिस्मृतः' यह व्याख्या स्वर्गीय

लोकमान्य तिलकजीके नामपर लिखी गई है, यह दोष बतानेपर आपने अपने 'निवेदन' में सुधार कर लेनेको मान लिया था। सर्व-साधारण लोगोंकी कल्पना है कि 'हिंदु' शब्द मुसलमानोंका बनाया है तथा उसका अर्थ 'काला, चोर, डाकू, काफिर' यह है। परंतु इस शब्दके पुरातनत्वके प्रमाण मैंने उन्हें लिखकर दिये थे। मैं नहीं जानता वह ग्रंथ अब कौन और कैसे प्रकाशित करनेवाला है। उपर्युक्त संशोधन उन्हें मान्य हो गये थे। अगर कोई दूसरा होता तो अपनी गलतियोंपर ही डटा रहता।

× × ×

वे हमेशा डा० ऑर्थर रिचर्डसनका गुणगान करते रहते थे। भारतपर मोहित हो डा० रिचर्डसन इंग्लैंड छोड़कर यहाँ आये और डा० बेसेंटके आग्रहपर बनारसके सेंट्रल हिंदू कॉलेजके प्रिंसिपल बन गये थे। गौड़जी एक बार बीमार हो गए थे और धनाभावसे दवा लेना उन्हें संभव न था, यह जानते ही डा० रिचर्डसनने उनके यहाँ डाक्टरको भिजवाया तथा स्वयं आकर उन्होंने गौड़जीकी सुश्रुषा की। डा० रिचर्डसनका गौड़जीपर बड़ा प्रेम था और गौड़जीकी उनके प्रति श्रद्धा। रिचर्डसनने बनारसमें रासायनिक खोजकी प्रथम नींव डाली थी। उनके हाथकी बनी 'इंडक्शन कॉइल' तथा अन्य उपकरण बनारस यूनिवर्सिटीमें कई वर्षतक थे। डा० रिचर्डसनकी मृत्युपर उनकी इच्छानुसार श्री रामदास गौड़ तथा उनके अन्य भक्तोंने उनका हिंदू-पद्धतिसे दाहकर्म किया था।

'विज्ञान' का 'रिचर्डसन अंक' निकालनेकी गौड़जीकी बहुत इच्छा थी। प्रोफेसर एम० बी० राणेजीसे रिचर्डसनके जीवन तथा कार्य-सम्बंधी कागज़ मैंने उन्हें ला दिये; वे अब भी उनके कागज़ोंमें पड़े होंगे।

× × ×

अंतिम स्मृति परिभाषा-संबंधी है। 'अन्नका रक्षण तथा प्रेषण' और 'अन्नका रासायनिक स्वरूप' लिखते समय मेरे ध्यानमें आया कि कई भारतीय भाषाओंकी वैज्ञानिक परिभाषा हिंदीसे मिलती-जुलती हैं। फिर सारे भारतकी वैज्ञानिक परिभाषा एकमुखी करनेका प्रयत्न क्यों न किया जाय। मैंने अपनी योजना जब गौड़जीके सामने रक्खी तो बड़ी सहानुभूतिसे उन्होंने उसकी चर्चा कर मुझे बहुत प्रोत्साहन दिया। स्वयं मार्गदर्शकत्व स्वीकार कर मेरे पत्र 'विज्ञान' में छापे तथा निम्न सम्पादकीय टिप्पणी भी लिखी—

'जहाँ हम राष्ट्रभाषा और एक भारत-व्यापी लिपिके द्वारा देशको एक सूत्रमें बाँधनेकी चिंतामें हैं, वहाँ पारिभाषिक शब्दोंके सम्बंधमें हम कितनी भारी भूल कर रहे हैं और हमारी कितनी उलटी गति है, यह समझनेके लिए किसी विशिष्ट बुद्धिकी आवश्यकता नहीं है। हमने इन कॉलमोंमें इस प्रसंगमें बारंबार लिखा है परंतु किसी ओरसे हमें प्रोत्साहनका अवसर न मिला।... ......हमें यह लिखते हर्ष होता है कि इस ओर हमारे एक उत्साही युवक मित्र श्री बापू वाकणकरका ध्यान गया है। उन्होंने कम-से-कम रसायन-शास्त्रके लिए यह भार लिया है कि सारे विद्वानोंकी सहायतासे ऐसी पारिभाषिक शब्दावली संग्रह करें जो अखिल भारतीय रूपसे सभी भारतीय भाषाओंमें प्रयुक्त हो सके।'

गौड़जी जैसे रत्नोंके चले जानेसे राष्ट्रभाषाका जो अपरिमित नुकसान हुआ है उसका हम वर्णन नहीं कर सकते।

सिद्धांतवादी स्वर्गीय गौड़जी !

[ले० श्री राधेलाल मेहरोत्रा, एम० ए०, एल-एल० बी०]
सहायक मंत्री, विज्ञान-परिषद्

क्या सुक़रात क्या पतंजलि, मेरा तो यह स्वतंत्र विश्वास है कि संसारके इतिहासमें एक भी पंडित या मुनि ऐसा नहीं हुआ जिसने भले और बुरेकी पहचान करनेकी कोई वैज्ञानिक यानी सर्वमान्य रीति बतलाई हो। कोई बतलाता भी कैसे ! अच्छा, बुरा ठीक गलत ये सभी सापेक्षिक शब्द हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अंत:करणकी अन्तर्ध्वनि ही को ठीक मानता है। यही अंतमें भले-बुरेका ज्ञान कराती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि एक मनुष्य दूसरेकी बातको मानता ही नहीं या एक विचारके बहुतसे मनुष्य नहीं होते। मतलब केवल यह है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति-की बातको ठीक समझता है तो वह या तो इसलिए कि वह स्वयं भी उसे ठीक समझता है या कम-से कम ज्ञान या अज्ञानके कारण दूसरे व्यक्तिमें श्रद्धा और विश्वास रखता है। एक ही वस्तुको कोई किसी दृष्टिकोण-से देखता है और कोई किसीसे। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे देखनेके कारण भी एक वस्तुके भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको भिन्न-भिन्न चित्र दिखाई पड़ते हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने चित्रको ठीक समझता है। वास्तवमें संभव है कि सब ठीक हों और यह भी असंभव नहीं कि सभी गलत हों।

इतना होते हुए भी सौभाग्यकी बात है कि सब मनुष्योंमें मानुषिक स्वभाव एक ही होनेके कारण विचार सामंजस्य भी काफी मात्रामें पाया जाता है। इसी नियमपर समाजका अस्तित्व अवलम्बित है। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्योंमें सुमति और मतभेद दोनोंका होना स्वाभाविक और अनिवार्य है। इसलिए कोई व्यक्ति चाहे वह कितना ही विद्वान क्यों न हो किसी दूसरेको तो क्या, स्वयं अपनेको ही निश्चयरूपसे ठीक या गलत नहीं ठहरा सकता। फिर भी जिसने अपने अंत:करणकी वाणी द्वारा मिले हुए सिद्धांतोंका संतोषजनक पालन कर लिया वह अपने जीवनके उद्देश्यको सफल हुआ समझता है, अपने-को धन्य समझता है। ऐसा मनुष्य संसारकी दृष्टिमें भी धन्य है।

स्वर्गीय श्रीरामदास गौड़के संबंधमें तो यह बात सोलह आने ठीक बैठती है। उनके सिद्धांत ठीक थे या गलत यह कौन जाने। परंतु जिनका उनसे थोड़ा भी संपर्क रहा है वे इस बातको जानते हैं कि गौड़जी-ने अपने सिद्धांतोंपर ख़ूब अमल किया। उदाहरणार्थ, मैं एक-दो छोटी-छोटी ही घटनाएँ उनके जीवनकी लेता हूँ। बड़ी घटनाओंकी बात तो जाने दीजिये। गौड़जी मंगलाचरणके बड़े प्रेमी थे। 'विज्ञान' के प्रथम पृष्ठपर मंगलाचरणका होना उनके लिए अत्यावश्यक था। परिषदमें कुछ कार्यकर्त्ता एक वैज्ञानिक पत्रिकामें मंगला-चरण होनेके पक्षमें नहीं हैं। मैं यहाँ यह नहीं कहना चाहता कि कौन लोग ठीक और कौन गलत हैं। मैं स्वयं भी इस बातको नहीं जानता। परंतु हाँ जब गौड़जी से प्रार्थना की गई कि 'विज्ञान' में से मंगलाचरण निकाल दिया जाय तो उत्तरमें गौड़जीने लिखा।

"मैं मंगलाचरणके बारेमें आप लोगोंसे सहमत नहीं हूँ। मेरे इस खब्तको तो जबतक सम्पादकोंमें मेरा नाम है तबतक चलने दें। इस खब्तके लिए परिषतमें मैं अकेला नहीं हूँ।"

स्वर्गवाससे कुछ दिनों पहलेसे गौड़जी बहुत बीमार थे। उनके पत्रोंसे जो परिषद्में आया करते थे स्पष्ट इस बातका पता चलता है। उन्हीं बीमारीके दिनोंमें ही उन्होंने संपादनका कार्य मंत्रीजीको सौंप दिया था। अक्टूबरका अंक प्रयागमें ही प्रकाशित हुआ।

यदि कुछ दिन गौड़जी और जीवित रह जाते तो बिना मंगलाचरणके 'विज्ञान' के भी उन्हें दर्शन हो जाते। परंतु दैवयोगसे लीला कुछकी कुछ हो गई। अक्टूबरका अंक निकलनेसे पहलेही सिद्धांतवादी संसारसे मुँह मोड़ गया और सम्पादकोंमें उसका नाम न रहा। इस घटनासे उपर्युक्त पत्रकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि गौड़जी धन्य थे। उनके जीवनका यह पहला पद-चिह्न है जिसका आश्रय लेकर हम आगे चलें।

वह ग़रीब थे। ग़रीब होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, विशेषकर भारतवर्षमें जो ग़रीबोंका ही देश है। उनका रहन-सहन सादगीसे भरा पड़ा था। इस सादगीका कारण उनकी ग़रीबी न थी। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उनकी ग़रीबीका कारण उनकी सादगी और उनके सिद्धांत थे।

सत्यवादी प्रायः ग़रीब ही होते हैं। कारण यह कि अपने धर्मको निबाहनेके लिए उन्हें सब कुछ त्याग करना पड़ता है। वे किसीसे लड़-झगड़कर या चालाकीसे धन पैदा करना नहीं जानते और बिना माँगे या माँगनेपर भी सीधी तरह किसीको उसके परिश्रमका मूल्य मिलनेकी प्रथा आधुनिक सभ्यतामें प्रचलित नहीं है। परंतु इस बातसे गौड़जीका स्थान नीचा नहीं हो जाता। उनके लिए तो यह बड़े गौरवकी बात थी। हाँ, यदि होता है तो समाजका ही मान भंग होता है। एक व्यक्तिको जो कठिन परिश्रमके साथ समाजकी सेवा करे यदि ग़रीबी उसके रोज़मर्राके कार्यों-में बाधक हो तो समाजका मान-भंग नहीं तो और क्या है?

मुझे तो केवल एक वर्षसे ही गौड़जीको जाननेका सौभाग्य हुआ था। इस बीचमें जितना मैंने उनको जाना है उससे अधिक जानकारीकी आशा भी नहीं की जा सकती थी। आये दिन पत्र-व्यवहार होनेके कारण काफी जानकारी हो जाती है। प्रत्येक सप्ताहमें उनके कम-से-कम दो पत्र तो अवश्य ही मिलते थे। बीमार रहते हुए भी वह 'विज्ञान' का काम बराबर करते थे। एक बार रोग-शय्यापरसे ही आपने लिखा—

श्री सीतारामाभ्यां नमः

विज्ञान बड़ी पियरी, बनारस शहर

श्री रामदास गौड़ सौर १८ मार्गशीर्ष १९९३

...इधर कई दिनोंसे चक्करसे पीड़ित हूँ। आज दफे तो पड़े-पड़े करवट बदलनेमें भी कष्ट होता है। यदि आपके पास 'विज्ञान' न होता तो 'विज्ञान' और मैं दोनों बड़ी मुसीबतमें होते। स्वामीजी (स्वामी हरिशरणानन्दजी) वैद्य हैं, उनके पास सभी मरज़ोंकी दवा है परन्तु मेरी दरिद्रता और शारीरिक पीड़ाओंकी दवा वे नहीं कर सकते। वे कोशिश करते हैं, परन्तु सफल नहीं होते। आनेवाले हैं। इंतज़ारमें हूँ। जाने कब आयेंगे। इस समय भी चक्करमें ही लिख रहा हूँ।

सप्रेम रामदास गौड़

'विज्ञान' के सिलसिलेमें एकबार मुझे बनारस जाना पड़ा। इस अवसरपर गौड़जीके निवास-स्थानपर जानेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। बड़ी पियरीकी छोटी-छोटी गलियोंमें उनके मकानको ढूँढ़ निकालना बड़ी ही मुश्किलका काम था। परन्तु जिससे प्रथम बार पूछा उसी एक राह चलती स्त्रीने बहुत घुमा फिराकर उनके दरवाज़ेपर लाकर खड़ा कर दिया। वे मकानपर नहीं थे। उनके लड़केने बैठक खोल दी। मैं तो उस बैठकको देखकर आश्चर्यमें रह गया। वह बैठक मेज़, कुर्सी, फ़र्श आदिसे सुसज्जित न थी। वह एक सम्पादककी बैठक न मालूम पड़ती थी। उसमें एक पुरानी-सी चारपाई पड़ी थी, एक फटा-सा टाटका टुकड़ा पड़ा था और एक तरफ़ अलमारीमें दस-पाँच अख़बार पड़े थे। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी वह स्थान रुचिकर न मालूम पड़ता था। ख़ैर उनकी प्रतीक्षामें मैं बैठ तो गया। अख़बार पढ़कर समय काटने लगा। बैठे-बैठे मैं सोचने लगा कि शायद अपना पुस्तकालय या ज्ञानालय यह विद्वान अपने मस्तिष्कमें ही रखता है। जब गौड़जी आये तो उनके पीछे उनके

कुछ चेले चपाटी भी थे जिन्हें वे तुरंत ही रामायण पढ़ाने बैठ गये और मुझसे बातें भी करते जाते थे। तब मुझे पहली ही बार मालूम हुआ कि गौड़जी रामायणके भी अच्छे विद्वान् हैं। बड़ी विद्वत्ता-से वह एक-एक चौपाईके बीस-बीस अर्थ कर रहे थे। मेरा ध्यान इसीमें लग गया। आते ही पहले मेरे भोजन-के लिए मेवा और खाना मँगवाया और भूख न होते हुए भी खानेके लिए आग्रह किया। उनके उस प्रेम और आदरको मैं कभी भूल नहीं सकता। उनकी ग़रीबी जितनी सुनी थी उससे भी अधिक पाई। जब मैं उस हालतका स्मरण करता हूँ तो सोचमें पड़ जाता हूँ कि अब कैसे उनके परिवारका पालन होगा।

'विज्ञान' की जितनी उन्होंने सेवा की और जितना 'विज्ञान' से उन्हें प्रेम था उसका अनुमान काफ़ी हद-तक तो उनके पत्रोंपर ही एक दृष्टि डालनेसे हो जाता है। एक बार ग्राहक संख्या बढ़ानेकी बात चली। मैंने मंत्रीजीकी ओरसे उन्हें लिखा कि ग्राहक-संख्या बढ़ाने-की कोशिशमें लगा हूँ और आशा करता हूँ कि कुछ दिनोंमें ही विज्ञानके ५०—६० ग्राहक बढ़ जायँगे। गौड़जीने पत्रके उत्तरमें बड़ा ही मनोरञ्जक पत्र लिखा—

"ग्राहक-संख्या ५०-६० ही और क्यों बढ़ेगी? क्या दुनियाकी सीमापर हम पहुँच गये? यह तो पहाड़ खोदकर चुहिया निकालना हुआ। वि० ('विज्ञान') तो २२ बरसका है। कलके छोकरे हज़ारोंकी ख़बर ले रहे हैं। ख़चियों डाक्टरों-की सम्मिलित कोशिशका बस यही नतीजा! नहीं, हताश मत हूजिये। ज़रा, स्वामी हरिशरणानन्दसे भी काम लीजिये। वह भी ज़ोर मारें। फिर परीक्षाओंके बाद भी सब मिलकर ज़ोर लगावेंगे।

गौड़जीके पत्र हमेशा लम्बे-चौड़े होते थे। एक आनेके लिफ़ाफ़ेमें आठ-दस पृष्ठोंका हल्के काग़ज़पर दोनों तरफ़ खचाखच भरा पत्र मिलता था। प्रत्येक बातका एक पैराग्राफ़ और एक नम्बर होता था जिनका ब्योरेवार उत्तर माँगते थे। वास्तविक बात यह है कि वे स्वयं भी 'विज्ञान' के काममें जुटे रहते थे और औरोंसे भी काम लेना ख़ूब जानते थे। प्रत्येक पत्रमें यही होता था कि यह वस्तु तुरंत भेजिये और यह कार्य तुरंत कीजिये। सब काम रुका पड़ा है। उनकी हिदायतोंके कारण हम लोग भी सुस्त नहीं रह सकते थे। उधर गौड़जी काम लेनेमें चुस्त, इधर मंत्री डा० गोरख प्रसादजी काम लेने और करनेमें न चूकनेवाले। बस फिर क्या था 'विज्ञान' उन्नति-मार्गपर आ निकला। गौड़जीके साकेतवाससे 'विज्ञान' को विशेष क्षति पहुँची है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

सम्मेलन की परीक्षायें

[ले० — प्रो० ब्रजराज जी]

यह तो मैं नहीं कह सकता कि श्री रामदास जी गौड़ने हिन्दी साहित्य सम्मेलनके स्थापना-दिवससे लेकर अप्रैल सन् १९१४ तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन-के लिये क्या काम किया और सम्मेलन द्वारा हिन्दी भाषाकी उन्नतिमें उन्होंने कितना भाग लिया। परन्तु अप्रैल १९१४ के आस-पास ही वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा हिन्दीकी परीक्षाओंके स्थापित करने पर विचार कर रहे थे। यह तो मैं नहीं कह सकता कि उनको इन परीक्षाओंके निर्माणमें किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा और कैसी सफलता प्राप्त हुई क्योंकि इन परीक्षाओंका हाल पहले पहल मुझे उस दिन मालूम हुआ जब मैंने उनको सबसे पहले वर्षकी प्रथमा परीक्षा-का प्रश्न-पत्र बनाते देखा।

इसके बाद कई महीने बीत गये,—विज्ञान परि-षद्की स्थापना हो चुकी थी। गौड़जीके सिरपर अब 'विज्ञान' पत्र प्रकाशित करनेकी योजनाके साथ साथ सम्मेलनकी परीक्षाओंको ठीक ढंगसे संगठित करनेका भारी काम भी आ पड़ा था। परन्तु अपने स्वास्थ्यकी

परवाह न करते हुए भी गौड़ जीने अप्रेल सन् १९१५ तक इन दोनोंही कामों को संगठित कर दिया। अप्रेल सन् १९१५ में 'विज्ञान' पत्र निकला और उसी समय सम्मेलन परीक्षाओंकी पहली नियमावली प्रकाशित हुई। उस समय कोई यह विश्वास नहीं कर सकता था कि हिन्दी भाषाओंमें साधारण परीक्षाओंका निर्माण कोई महत्वका काम है।

गौड़जीका विरोध

सम्मेलनके प्रमुख कार्यकर्ता तक इन परीक्षाओंको गौड़जीकी सनकका नमूना समझते थे। गौड़जीके देश-प्रेम, हिन्दी-प्रेम और साहित्य-प्रेमसे प्रभावित उनके दो एक विद्यार्थी गौड़जीके इस महान् कार्यमें विश्वास करके उनके दिखलाये रास्ते पर चल कर सम्मेलन परीक्षाओंका काम अपने ऊपर न लाद लेते तो हिन्दी भाषा और साहित्यकी इतनी तेज़ उन्नति न हो सकती। गौड़जीमें भविष्यको देख सकनेकी अतीव शक्ति थी। वह अपनी कल्पना द्वारा भविष्यका सच्चा चित्र खींच सकते थे और अपने उत्साह और अथिक परिश्रम द्वारा दूसरे लोगोंमें भी उत्साह उत्पन्न करके अपने काल्पनिक चित्र-को वास्तविक रूप प्रदान करनेकी उनमें विशेष क्षमता थी। तब हिन्दीमें किसी विषयकी किताबें नहीं मिलती थीं, हमारे पुराने कवियोंकी कविताओंके सड़े गले संस्करण ढूंढ़े ढांढ़े मिल जाते थे। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित इत्यादि विषयोंकी पुस्तकोंका नितान्त अभाव था। सन् १९१५ और १९१६ में सम्मेलन परीक्षाओंकी जो विवरण-पत्रिका बनी थी, उसको देखनेसे यह पता चल सकता है कि हिन्दीकी कितनी उन्नति इन २०-२२ वर्षों में होगई है।

विश्वासके आधारपर

गौड़जीका यह विश्वास था कि इन परीक्षाओंके द्वारा हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतोंमें जनतामें हिंदीका ज्ञान फैलेगा, सब विषयोंकी पुस्तकोंकी मांग बढ़ेगी जिससे साहित्य-निर्माणको उत्तेजना मिलेगी, और हुआ भी ऐसा ही सम्मेलनकी परीक्षाओंके लिए प्रायः अंग्रेज़ी विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाये जाने वाले सब विषयोंका पाठ्य क्रम बना कर गौड़जी ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया। यह बात अब समझमें आई है। तबतो सम्मेलनके अधिकांश कार्य-कर्ता इस रायके थे कि हिंदी-साहित्यको छोड़कर अन्य विषयोंकी परीक्षायें लेना सम्मेलनके उद्देश्योंके दायरेके बाहर हैं। पर गौड़जीका खयाल था कि हम अपनी परीक्षायें लेकर सरकारी विश्वविद्यालयोंके सामने एक उदाहरण उपस्थित कर देंगे और हिंदी भाषामें वह शक्ति प्रदान कर देंगे जिसकी अवहेलना करना भारतीयों और विदेशियों दोनोंके लिए असंभव हो जायगा। विदेशी तो हिन्दीकी शक्तिको समझही क्या सकते थे। अन्य भाषा-भाषी भारतीय हिन्दीका मज़ाक़ ही उड़ाते थे। पर जब हिन्दी-भाषा-भाषी अंग्रेज़ी पढ़े लिखे सज्जनोंमें हिन्दीके स्वत्वोंकी चर्चा चलाई जाती थी तो वे यह नहीं समझ सकते थे कि एक शताब्दीसे कमके भीतर वह समय आसकेगा जब भारतवर्षमें हिन्दी को वही स्थान मिलेगा जो तब अंग्रेज़ीको मिला हुआ था। गौड़जी इस बातको देख रहे थे कि हिन्दीमें शक्ति मौजूद है। उसे केवल व्यक्त करनेकी आवश्यकता है। जन-समूहका ध्यान ज़रा भी हिन्दीकी ओर झुका कि हिन्दी आपसे आप अपने जन्म-सिद्ध-स्थानको प्राप्त कर लेगी। हुआभी ऐसा ही। उन दिनोंके वही हँसने वाले आज शायद यह भूल गए होंगे, कि वे हंसते थे और गौड़जीको सनकी समझते थे। यह इन्हीं परीक्षाओंका सफलप्रसाद है जिसके कारण अब सब विश्व-विद्यालयों में एम० ए० तककी परीक्षाके लिए हिन्दी एक विषय स्वीकृत करली गई है।

गौड़जीके शब्द

सम्मेलनकी परीक्षाओंका विरोध आरंभमें बड़ी प्रबलतासे हुआ। सम्मेलनकी निजी 'सम्मेलन पत्रिका' में इनके विरोधमें एक अग्रलेख प्रकाशित हुआ था। इस लेखके प्रत्युत्तरमें 'सम्मेलनके उद्देश्य और उनकी सिद्धिके उपाय' शीर्षकसे गौड़जी ने एक पैम्फलट छपाया जिसमेंसे गौड़जी के कुछ शब्द यहां उद्धृत किये जाते

हैं—(यह लेख परीक्षायें स्थापित होनेके तीन वर्ष बादका है, १९१७ का। सम्मेलन की स्थायी समितिने संवत् १९७१ में परीक्षाओंके नियम बनाये थे)—

"अंग्रेज़ी द्वारा शिक्षा पानेसे शास्त्रोंमें किस प्रकारकी योग्यता होता है किसीसे छिपी नहीं है। शास्त्रोंके गहन विषयोंकी चर्चा तो जाने दीजिये, अंग्रेजीका उपाधिधारी प्राय: साधारण बातचीत में अँग्रेजी बिना काम नहीं चला सकता। बहुधा अँग्रेजीका इतना दास होजाता है है कि अँग्रेजीसे अनभिज्ञ मित्र उसके समझाने पर भी उसके भावोंको यथेष्टरीत्या ग्रहण नहीं कर सकते। उसे ईसाकी बीसवीं शताब्दीमें भी यह बात नहीं सूझती कि जो मनुष्य अपनी मातृभाषाका व्यवहार नहीं कर सकता 'शिक्षित' कहलाने योग्य नहीं, प्रत्युत खेद से कहना पड़ता है कि हम 'शिक्षित' शब्द के जगन्मान्य लक्षणोंसे अनभिज्ञ होकर उसे शिक्षित कहलेते हैं और इसी अनभिज्ञतावश वह अपनेको 'शिक्षित' मान लेता है। भारतवर्षको छोड़कर और किसी देशमें यह भ्रमहो नहीं सकता, परायी भाषामें जिन विषयोंको वह सीख समझ लेता है, इतना सुलभ इतना हृदयंगम नहीं कर सकता जितनी अपनी भाषामें कर लेता है। यही बात है कि उन विषयोंमें उसका हृदय भावसे और मस्तिष्क मौलिकतासे नितान्त शून्य रहता है'।

इन प्रबल हेतुओं द्वारा गौड़जी साहित्यके सम्पूर्ण अंगोंकी शिक्षा-परीक्षा मातृभाषामें ही देने-लेनेका आग्रह करते थे। उनकी 'साहित्य' की परिभाषा विस्तृत थी। साहित्यसम्मेलनके नाममें इस शब्दका क्या अर्थ है उसके संबंधमें गौड़जीके शब्द ये हैं—"साहित्य शब्दका प्रयोग गद्य-पद्य काव्य रीतियों तकही उसके अर्थको सीमित रखना हिंदी-भाषियों वा हिंदी-लेखकोंका उद्देश्य न है, और न हो सकता है। उत्कृष्ट हिंदी भाषामें शिल्प, कला, विज्ञान, इतिहास काव्य आदि जिसही विषयपर लेख और पुस्तकें होंगी हिंदी साहित्यके अन्तर्गत समझी जायँगी।"

मेरी कुछ संस्मृतियाँ

[ले० डा० गोरख प्रसाद]

१

मैं उन दिनों हिन्दू-विश्वविद्यालयमें नया-नया असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हुआ था। गौड़जी भी वहीं रसायन के प्रोफ़ेसर थे परंतु ओरियंटेल (प्राच्य) विभागमें। मैं डाक्टर गणेशप्रसाद साहबके निजी कमरेमें बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गौड़जी भी वहाँ उन्हींकी तलाशमें आये परंतु डाक्टर साहब न मिलनेके कारण वे भी वहीं बैठ गये। बातचीत शुरू हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि हिन्दीमें क्यों नहीं कुछ लिखा करते। मैंने शायद यह कहा कि हिन्दीमें लिखने योग्य कोई उपयुक्त विषय मुझे नहीं सूझता और हिंदीमें लिखनेकी योग्यता मुझमें नहीं है। वहीं सायंशिया नामक एक पत्रिका पड़ी थी, जिसमें विज्ञान-विषयक कई एक मनोरञ्जक लेख थे। उनमेंसे एक लेख चुनकर उन्होंने कहा कि आप इसीका अनुवाद हिन्दीमें करनेकी चेष्टा कीजिए। जो शब्द या वाक्य आप हिन्दीमें न कर सकें, उन्हें ज्यों-का-त्यों रहने दें। मैं हिन्दी कर दूँगा। मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने उस लेखका कोई भाग अनुवाद किया या नहीं परंतु इतना निश्चय है कि उसके कुछ ही दिनों बाद इलाहाबादसे श्रीयुत सालिग्रामजी भार्गव और गोपालस्वरूपजी भार्गव बनारस पहुँचे। उनके जानेका कारण एक विचित्र झगड़ा था। उन दिनों स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदीकी लिखी पुस्तक 'समीकरण मीमांसा' विज्ञान-परिषद्की ओरसे छप रही थी। इसके छपनेके लिए प्रांतीय सरकारने १२००) की सहायता दी थी और शायद काशी-गणित-परिषद् (बनारस मैथेमेटिकल सोसायटी) को उक्त पुस्तकका सम्पादन सुपुर्द किया था। मैथेमेटिकल सोसायटीने मुझे और सुधाकरजीके सुपुत्र पं० पद्माकर द्विवेदीको उक्त पुस्तकका सम्पादक नियुक्त किया। विज्ञान-परिषद्ने यह नियम बना

रक्खा था कि विभक्तियां शब्दोंके साथही छपें। शब्दों और विभक्तियोंके बीच कोई स्थान न छोड़ा जाय। परंतु पं० पद्माकर द्विवेदी इसके बहुत विरोधी थे। मैं इस विषयपर उदासीन था। परंतु पद्माकरजी और परिषद् दोनों अपने-अपने मत पर इस दृढ़तासे डटे थे कि पत्र-व्यवहारसे इसका तय होना असम्भव था। इसी प्रश्नको हल करनेके लिए श्री सालिग्रामजी भार्गव और गोपाल-स्वरूपजी भार्गव काशी पहुँचे। अंतमें विभक्तियोंको पृथक् रखनेकी बात बहाल रही परंतु इस सिलसिलेमें इस अवसरपर गौड़जी और दोनों भार्गव महाशयोंने मुझसे हिन्दीमें वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखनेका विशेष अनुरोध किया। इसे वे 'विज्ञान' के लिए चाहते थे। उन दिनों सालिग्रामजी विज्ञान-परिषद्के मंत्री और गोपाल स्वरूप जी 'विज्ञान' के सम्पादक थे। मैं लेख लिखनेमें तब भी हिचक रहा था क्योंकि मैं समझता था कि मैं हिन्दीमें कुछ लिख न पाऊँगा परन्तु मुझे गौड़जी और गोपालस्वरूपजी दोनों ने आश्वासन दिया कि यदि मुझे कहीं थोड़ी-सी भी कठिनाई पड़े तो मैं उन स्थानोंमें अँग्रेज़ी शब्द या वाक्य लिख सकता हूँ, और वे उन्हें ठीक कर लेंगे। इस प्रकार गौड़जी और सालिग्रामजी के प्रोत्साहनसे ही मैं हिन्दीमें वैज्ञानिक विषयों पर लिखने लगा। मेरा पहला लेख फोटोग्राफी संबंधी था और वह 'विज्ञान' में छपा।

२

उन दिनों सेंट्रल हिन्दू कालिजके प्रिंसिपल स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसाद साहब थे और प्रति-सप्ताह धर्म विषयपर एक व्याख्यान दिलाना प्रिंसिपलका कर्त्तव्य माना जाता था। एक बार डाक्टर गणेशप्रसाद साहबने प्रोफ़ेसर रामदासजी गौड़से यह व्याख्यान दिलवाया। इस पर बहुत शोर-गुल मचा क्योंकि ब्राह्मणोंका कहना था कि धर्मके विषयपर ब्राह्मणको छोड़ कर और किसीसे व्याख्यान दिलाना प्रिंसिपलके लिए अनुचित है और ओरियंटल (प्राच्य) विभागमें ब्राह्मण पंडितोंकी कमी नहीं थी। डाक्टर गणेश प्रसादका कहना था कि उन्होंने जो कुछ किया था वह सर्वथा उचित था। मामला इतना बढ़ा कि उसे अंतमें विश्वविद्यालयकी कोर्ट नामक संस्थामें पेश करना पड़ा। बहुत वादविवादके पश्चात् यह निश्चय हुआ कि धर्मके विषयपर केवल ब्राह्मणही व्याख्यान दे सकते हैं परन्तु विश्वविद्यालयके सभी अध्यापक ब्राह्मण हैं क्योंकि जाति-निर्णयमें कर्म प्रधान है न कि जन्म। पढ़ाने वाले सभी कर्मसे ब्राह्मण हैं और इसलिए रामदासजी गौड़ ऐसे व्यक्तिका धर्म पर काशी विश्वविद्यालयमें व्याख्यान देना सर्वथा उचित है। जहाँ तक मुझे स्मरण है इस निर्णयका श्रेय बाबू भगवानदास जी को मिलना चाहिये। उन्हींके प्रभावसे यह प्रस्ताव पास हो सका था। प्रस्ताव तो पास हो गया परन्तु मामला वहीं तय नहीं हुआ। प्राच्य विभागके प्रायः सभी ब्राह्मण अध्यापक अपना-अपना त्याग-पत्र लेकर पं० मदनमोहन मालवीयके पास पहुँचे और उन्होंने कहा कि जब तक यह प्रस्ताव रद न कर दिया जायगा तब तक वे अपने त्याग-पत्र वापिस न लेंगे। परंतु मालवीयजीने उन लोगोंकी शांति यह वचन देकर कर दी कि प्रस्ताव चाहे जो कुछ हो, भविष्यमें इसपर ध्यान रक्खा जायगा कि ब्राह्मणोंसे इतर जातियाँ धर्मपर व्याख्यान न दें और जहाँ तक मुझे स्मरण है उस दिनके बादसे काशी विश्व-विद्यालयमें धर्मके ऊपर गौड़जीने कभी व्याख्यान नहीं दिया

३

उपर्युक्त घटनाके कुछही दिनों बाद मैं अध्ययनके लिए विलायत जाने वाला था और मुझे रुपयेकी सख्त ज़रूरत थी। मेरे कुछ लेख और कुछ तुकबंदियाँ जो उस समय अप्रकाशित पड़ी थीं लेकर मैं गौड़जीके पास पहुँचा और मैंने उनसे कहा कि मुझे पैसेकी आवश्यकता है; यदि आप कहींसे कुछ पैसे दिलवा सकें तो बड़ी कृपा हो। गौड़जीने मुझे प्रोत्साहन करते हुए लेखोंकी बड़ी प्रशंसा की। एक सिफ़ारिशी चिट्ठीके साथ एक लेख 'माधुरी' में छपनेको भेज दिया जिसके मुझे पैसे मिले और तुकबंदियोंको बेचनेके लिए कुछ पते बतलाये। अंतमें ये नक़द दामपर हिन्दी पुस्तक एजेंसीके हाथ बिकीं और कुछ समय बाद प्रकाशित हुईं।

इस प्रकार जब-जब मुझे हिन्दी-संबंधी कोई काम पड़ा, मुझे गौड़जीसे बराबर सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहा। उनकी और सालिग्रामजीकी उदारताके बिना शायद ही मैं हिन्दीका लेखक बन सकता।

४

जब कभी मैं बनारस जाता था—और मुझे बनारस जानेकी जरूरत अक्सर पड़ती थी क्योंकि मेरा मकान ही बनारस है—तो मैं गौड़जीसे अक्सर मिल लिया करता था। एक बारकी बात है, सुबहका वक्त था। गौड़जी पूजापर बैठे थे। समाचार पाकर कि मैं आया हूँ उन्होंने तुरन्त भीतर बुला लिया। उस दृश्यको मैं कभी न भूल सकूँगा। गौड़जी किस प्रेमसे रामायणका पाठ कर रहे थे! मैंने भी रामायण कई बार पढ़ी है और बहुत-से दोहे चौपाई मुझे कंठस्थ होगए हैं। गौड़जी इस प्रेम और लयसे रामायण पढ़ रहे थे कि अनायास ही मेरे मुँहसे उनके साथ-साथ दोहे और चौपाइयां निकलने लगीं। रामायण-पाठके बाद गौड़जी आरती करने उठे। प्रेमसे मग्न हो झूम-झूम कर वे आरती करने लगे। जब कभी उस दृश्यका स्मरण हो आता है तो आज भी गौड़जीके प्रति श्रद्धा और भक्ति उमड़ आती है।

मैं विलायत चला गया। लौटने पर इलाहाबाद चला आया और इस प्रकार गौड़जीसे विशेष सम्पर्क न रहा परन्तु जब 'विज्ञान'की हालत कुछ खराब हो चली तो 'विज्ञान'का सम्पादन फिर गौड़जीके सुपुर्द किया-तब गौड़जीने अपने पुराने मित्र डा० गणेशप्रसाद साहबको विज्ञान-परिषद्का सभापतित्व स्वीकार करनेके लिए बाध्य किया और उन्हींके विशेष अनुरोधसे मैं विज्ञान-परिषद्का सभ्य और अन्तमें मंत्री बना। तबसे मेरा और गौड़जीका संबंध घनिष्ठ हो चला। दुःख है कि आज न तो डा० गणेशप्रसाद साहब ही रहे, न रामदासजी गौड़ ही।

गौड़जीके असीम उत्साह और परिश्रमका प्रमाण उनके पत्रोंसे मिलता था जो वे मुझे लिखा करते थे। शिकायत भी, डाट भी, प्रेम भी, सभी उनके पत्रोंमें रहते। पिता-तुल्य व्यवहार उनका होता था। उनकी तत्परताका थोड़ा-सा आभास इस बातसे मिलता है कि शरीरान्तके पहले उनकी तीन चिट्ठियां एक ही सप्ताहके भीतर आईं। जब तक मेरा उत्तर काशी पहुँचा, वे संसारको छोड़ चुके थे।

विषय-सूची

विज्ञान

आयुर्वेद विशेषांक

जनवरी, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४६, संख्या ४

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-
विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७४

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर '**मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद**' के पास भेजे जायँ।

पुष्करमूल

पुष्करमूल
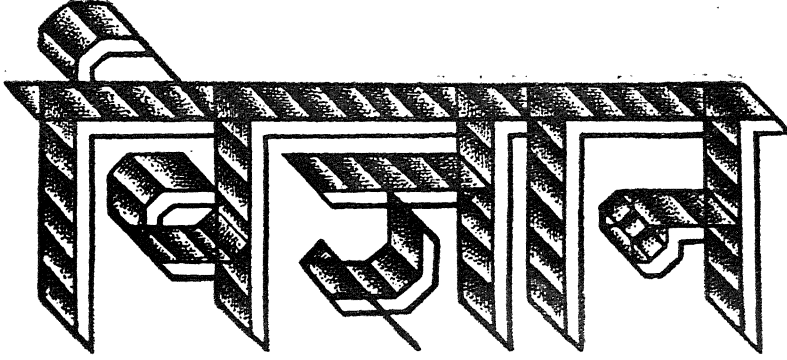
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४६	प्रयाग । तुलार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । जनवरी, सन् १९३८	संख्या ४

मोतियाबिन्द और सतिया

[डा० उमाशंकरप्रसाद, एम० बी०, बी० एस,]

१ हम देखते कैसे हैं ?

मोतियाबिन्दके नामसे बहुत लोग परिचित होंगे। बहुधा हमें बड़े-बूढ़ोंके मुँहसे सुननेमें आता है कि उनकी आँखोंमें पानी उतर आया है जिससे उनके एक अथवा दोनों आँखोंकी ज्योति धुँधली हो गई है या वे प्राय: अन्धे हो गये हैं। आँखोंमें पानी उतर आनेसे उनका आशय मोतियाबिन्द रोगसे है। अँग्रेज़ीमें इस रोगको कैटरेक्ट (Cataract) कहते हैं। इस विशेष रोगको भली भाँति समझनेके लिए हमें नेत्रकी रचनाके बारेमें मुख्य-मुख्य बातें जान लेनी चाहिये।

मनुष्यके नेत्रकी बनावट फोटो खींचनेके कैमरेकी भाँति है। नेत्र गोलाकार है जो अस्थियों द्वारा बने कटोरानुमा गड्ढेमें माँस-पेशियों तथा वसा द्वारा अपने स्थानमें रुका रहता है। यदि हम किसी मनुष्यके खुले नेत्रको देखें तब कुछ सफ़ेद भाग दिखाई देगा। इसे कर्नीनिका कहते हैं। इस सफेद भागके बीचमें एक हलका काला वृत्त दिखाई देगा। कुछ लोगोंमें यह भूरे या हलके नीले रंगका भी होता है। इसका व्यास आधी इंचसे कुछ कम होता है। ध्यानसे देखनेसे इस काले वृत्तके ठीक बीचमें गाढ़ा काला दूसरा वृत्त दिखलाई देगा। इसे पुतली या तारा कहते हैं। पुतलीका आकार अधिक प्रकाशमें छोटा हो जाता है और अन्धकारमें फैलकर बहुत बड़ा। कनीनिकाके पीछे एक परदा है जिसे उपतारा कहते हैं। इस पर्देमें जो छिद्र होता

है उसे ही तारा कहते हैं और अधिक प्रकाशमें यह छिद्र छोटा हो जाता है जिससे आँखोंके भीतर तेज़ प्रकाश जाकर चकाचौंध न पैदा करे। पुतलीके ठीक पीछे नतोदर ताल लगा रहता है। नतोदर तालके पीछे कुछ दूरीपर नेत्र अंत:पटल होता है। कनीनिका पारदर्शक होती है जिससे प्रकाश उसके भीतरसे आ-जा सकता है। भौतिक विज्ञानके साधारण सिद्धान्तके अनुसार प्रकाश या किसी वस्तुकी छाया सीधी रेखामें कनीनिकामें होती हुई उपताराके छिद्र या तारेमें पहुँचती है और नतोदर ताल द्वारा जो पारदर्शी होता है नेत्रके अंत:पटलपर पहुँचकर उस वस्तुकी छोटी और उल्टी मूर्त्ति बनाती है। नेत्रके अंत:पटलपर इस प्रकाशके पड़नेसे कुछ विद्युत धारा पैदा होती है जो नेत्रके अंत:पटलमें लगी सेलों द्वारा मस्तिष्कमें सूचना देती हैं और फलस्वरूप हमें उस वस्तुका ज्ञान होता है।

प्रकाश पहुँचनेके लिए यह आवश्यक है कि नेत्र-अंत:पटलके आगेके सभी भाग पारदर्शक हों। यदि कोई भाग पारदर्शक न होगा तो प्रकाश वहाँ रुक जायगा। यदि हम किसी वस्तुको देख रहे हों और उसी समय आखोंके बीच कोई अपारदर्शक वस्तु आ जाय तब वह वस्तु न दिखाई देगी क्योंकि उस वस्तुसे प्रकाश आनेकी राहमें बाधा आ गई।

जब आँखोंमें किसी कारणसे फूली पड़ जाती है तब उस आँखकी रोशनी कम हो जाती है क्योंकि फूली पड़ा भाग पहलेकी भाँति पारदर्शक नहीं रहता है।

२ मोतियाबिन्द है क्या ?

मान लीजिये कि नेत्रका ताल जो पारदर्शक होता है किसी कारण अपारदर्शक हो जाय। उस अवस्थामें अवश्य ही नेत्र अंत:पटलपर प्रकाश आनेमें बाधा पड़ेगी और फलस्वरूप उस आँखकी ज्योति भी कम हो जायगी। यदि ताल पूर्णरूपसे अपारदर्शक हो जाय तो उस आँखकी पूरी रोशनी चली जायगी। पर यदि ताल कुछ ही अपारदर्शक हो जाय तो आँखकी ज्योति भी उसी अनुसार इतनी घट जायेगी कि मनुष्य या परिचित वस्तु न पहचानी जा सकेगी या उँगलियाँ न गिनी जा सकेंगी, आदि।

मोतियाबिन्द रोगमें नेत्रका ताल अपारदर्शक हो जाता है जिससे प्रकाश नेत्र-अंत:पटलतक नहीं पहुँच पाता है। यदि नेत्रमें और कोई रोग न हो तो बाधा डालनेवाले अपारदर्शक तालके किसी प्रकार हटा दिये जाने पर पुन: देखनेकी शक्ति लौट आनी चाहिये।

अब हम समझ सकते हैं कि इस रोगका नाम मोतियाबिन्द क्यों पड़ा। साधारण आँखमें ताल पारदर्शक होता है। इससे तारा या पुतली काली दिखलाई देती है और उपतारा भूरा। परन्तु मोतिया-बिन्दमें ताल अपारदर्शक हो जाता है इससे बाहरका प्रकाश यहाँ आकर रुकता है जिससे ताल कुछ सफ़ेद रंगका दिखलाई देता है। फल यह होता है कि भूरे उपतारेमें काले तारेकी जगह सफ़ेद रंगका एक बिन्दु मोतीकी भाँति चमकता है; इसीसे मोतियाबिन्द कहलाया। पानी उतर आनेका नाम भी इसी प्रकार पड़ा मानों भूरे उपतारामें पानीकी एक बूँद आ गई हो। अँग्रेज़ीमें कैटरेक्ट (Cataract) शब्दका अर्थ पानीका झरना है। जिस प्रकार गिरते पानीकी धाराके पीछेसे देखा जाय तब सभी वस्तुएँ धुँधली दिखलाई देंगी उसी प्रकार मोतियाबिन्द रोगके रोगी-को सब वस्तुएँ धुँधली दिखलाई देती हैं।

नेत्रके तालके अपारदर्शक हो जानेके कई कारण हैं। अधिकतर लोग यही समझते हैं कि मोतियाबिन्द केवल बूढ़े मनुष्योंको होता है। यह विश्वास ठीक नहीं है। बहुत छोटे बच्चे, जवान तथा बूढ़े स्त्री-पुरुष सभीको यह रोग होता है। पर बूढ़े लोगोंमें यह रोग बहुत अधिक पाया जाता है।

मोतियाबिन्द दो प्रकारके होते हैं। (१) जो अधिकाधिक बराबर बढ़ते जाते हैं और (२) जो बढ़ते नहीं बल्कि जितना हो गये हैं उसी श्रेणीपर स्थिर रहते हैं।

३—मोतियाबिन्द क्यों होता है ?

कुछ बच्चोंको जब वे माँके गर्भमें रहते हैं तभी मोतियाबिन्द हो जाता है क्योंकि उनके गर्भकालमें माताको उचित भोजन न मिल सका था जिससे तालकी रचना ठीक न हुई। इस प्रकारके मोतियाबिन्दकी वृद्धि नहीं होती और ये बहुत छोटे ही रहते हैं तथा विशेष हानिकर नहीं हैं।

मधु-प्रमेह तथा अन्य कुछ रोगोंमें भी नेत्रताल अपारदर्शक हो जाता है। पतली लोहेकी कील या कंकड़ी आँखमें घुसकर तालमें चुभ जाय तब भी ताल अपारदर्शक हो जाएगा। कुछ बूढ़े लोगोंमें ताल बिना किसी प्रत्यक्ष कारणके ही अपारदर्शक हो जाता है। इस प्रकारके अकारण मोतियाबिन्द हो जानेके कई सिद्धान्त हैं। गरम प्रदेशोंमें मोतियाबिन्दके रोगियोंकी संख्या शीत प्रदेशोंसे बहुत अधिक है। संभवतः सूर्यकी तेज तथा कुछ विशेष किरणें जो गरम भागोंमें अधिक होती हैं तालको शीघ्र अपारदर्शक बना देती हों। वृद्ध लोगोंमें तालकी सेलोंका पोषण भलीभाँति नहीं हो पाता है जिससे इन सेलोंमें स्वच्छता नहीं रहती ये सेलें फूल जाती हैं और अपारदर्शक हो जाती हैं।

४—एक ही इलाज

मोतियाबिन्द रोगके रोगीके अंतःपटल कुछ कालतक काममें नहीं आते हैं इससे अंतःपटलकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। पर इस अवस्थातक पहुँचनेके पहले ही यदि ताल हटा दिया जाय तो प्रकाश पुनः नेत्र अंतःपटलपर पहुँच सकेगा और मनुष्यको दिखलाई देने लगेगा। अपारदर्शक तालको अभीतक पुनः पारदर्शक बनानेकी कोई युक्ति या दवा नहीं मालूम है। ऐसी अवस्थामें इस रोगसे मुक्त करनेका एक ही उपाय है कि ताल ही नेत्रसे निकाल फेंक दिया जाय और उसी तालके बदलेमें ऐनकके रूपमें बाहर दूसरा ताल रोगीको दिया जाय जिससे पुनः छाया अंतःपटलपर बन सके। आधुनिक चिकित्सामें कर्नीनिका काटकर अपारदर्शक ताल आँखसे बाहर निकाल दिया जाता है।

सतिया लोग भी अपारदर्शक तालको तारेके पीछेसे हटा देते हैं। इससे नेत्र-अंतःपटलतक प्रकाश पुनः पहुँचने लगता है। परन्तु सतियोंसे बहुत अधिक नेत्र सर्वदाके लिए बेकाम भी हो जाते हैं।

५—सतियोंकी क्रिया

सतिया जाति समस्त भारतवर्षमें पायी जाती है। इनमें पढ़े लिखे कम होते हैं। प्रायः इनका केन्द्र गाँव ही होता है। इनका पेशा मोतियाबिन्दवाली आँखोंको बनाना है। साथ ही आँखमें माँड़ा पड़ने या आँख आने इत्यादिकी भी दवाएँ देते हैं। रोगीकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार आँख खोलनेकी फ़ीस दो आनेसे चार रुपयेतक लेते हैं।

यह सच है कि इन लोगों द्वारा बनाये गये मोतियाबिन्दकी आँखोंमें प्रायः ५% से १०% तक अच्छे हो जाते हैं। परन्तु आधुनिक सरजरीके अनुसार डाक्टर लोग जिस प्रकार मोतियाबिन्दका आपरेशन करते हैं उसमें केवल ४—५% ही खराब होते हैं और बाकी ९५% आँखें ठीक होती हैं। इन अंकोंको मिलानेसे प्रत्यक्ष हो जायगा कि सतियोंसे आँखें बनवाना कितनी बड़ी भूल है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सतिया लोग अपढ़ होते हैं। उन्हें आँखोंकी रचनाका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। अपने बड़ोंसे ही इस विद्याको देखकर सीखते हैं। जब नेत्रकी रचनासे ही वे परिचित नहीं होते तब मोतियाबिन्द रोगके कारण*, सिद्धांत तथा उचित विधिके बारेमें भला क्या ज्ञान होगा! सफ़ाईका भी इन्हें प्रायः कुछ ध्यान नहीं रहता है। कितने तो रोगको भी भलीभाँति नहीं पहचानते; और न टेढ़े और साथ ही दूसरे रोग युक्त नेत्रमें निश्चय करनेके लिये इनके पास किसी प्रकारका यंत्र अथवा साधन ही होता है। यह अवश्य ठीक

---

* कारण और सिद्धान्त तो विज्ञानके क्षेत्रमें भी अभी सुनिश्चित नहीं कहा जा सकता। रा० गौ०

है कि अच्छे सतिये अपने अनुभव द्वारा प्रारम्भमें ही आँख बनानेके लिये ऐसी आँख चुननेमें बड़े सतर्क होते हैं जिसमें किसी प्रकारकी गड़बड़ीका अन्देशा नहीं रहता है।

आँख बनानेके लिये रोगीको फँसा लेनेके बाद उसे मकानमें या पेड़की छायामें जमीनपर ही बैठाकर स्वयं उसकी तरफ मुँह करके ठीक सामने बैठ जाते हैं। कुछ देरतक आँखोंमें अपनी दवाइयाँ लगाकर रोगीका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करते हैं और तब अवसर पाकर बड़ी सफाईसे एक छोटा पतला सूजा जिसे दाहिने हाथमें छिपाये रहते हैं कर्नीनिकामें ताराके सामने चुभो देते हैं। फिर सूजेकी नोक तारेके छिद्रसे चक्षु-तालमें घुसा देते हैं। उसके बाद सूजेके बाहरके भागको झटकेके साथ लेकिन आहिस्तासे इधर-उधर घुमाकर पीछे ठेलते हैं। वृद्ध रोगीके वे बंधन जो तालको अपने स्थानमें रखते हैं बुढ़ापेके कारण स्वयं ही कमज़ोर रहते हैं और सूजेसे घुमाकर झटका देनेसे सरलतापूर्वक टूट जाते हैं। कभी-कभी सभी स्थानोंसे टूट जाते हैं पर प्राय: चारों ओर बराबर ज़ोर न पड़नेसे कुछ स्थानमें बंधन लगा ही रहता है। रोगी बैठा रहता है इसलिये अपने बोझसे चक्षु-ताल नीचे गिरकर नेत्रके पेंदेमें आ जाता है या यदि किसी स्थानपर बन्धन नहीं टूटा है तो उस स्थान-पर लंगरकी भाँति नीचे लटका करता है और रोगीके गर्दन हिलानेसे हिला करता है।

ऊपरकी क्रिया इतनी सफ़ाई तथा जल्दीसे समाप्त कर दी जाती है कि इस कार्यमें केवल कुछ ही क्षण लगते हैं। रोगीको पहले यही विश्वास दिलाते हैं कि केवल दवाइयों द्वारा ही अच्छा कर देंगे। उसे सूजा चुभाये जानेका पता नहीं रहता।

प्रारम्भमें भी जब दवाइयाँ लगायी जाती हैं तब सब निर्दोष दवाइयाँ इसी विश्वासको दृढ़ कर देती हैं। कुछ सतिया कोकेनका भी प्रयोग करने लगे हैं। ज्यों ही सूजा आँखमें डाला जाता है, रोगीको वेदना होती है, मानो आँखोंमें किसीने आग डाल दी हो और वह एक बार चीख पड़ता है। रोगीका सर पीछेसे दूसरा मनुष्य पहलेसे ही पकड़कर रोके रहता है। इतने समयमें तो सतिया अपना कार्य समाप्त करके सूजा निकाल भी लेता है और रोगीको पता भी नहीं रहता कि आँखोंमें सूजा डाला गया था। सतिया दो-चार मीठी-मीठी बातें कहता है। ज्यों ही तारेके सामनेसे अपारदर्शक ताल हटकर नीचे चला जाता है, बाहरकी वस्तुओंकी छाया नेत्र-अंत:पटलपर बनने लगती है और रोगीको धुँधला प्रकाश मालूम होने लगता है। इस धुँधले प्रकाश-मात्रसे ही रोगीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहता। जिस रोगीने अपनी सब ज्योति खो दी थी और संसारकी वस्तुएँ जिसके लिए अन्धकार ही थीं वह अबतक बड़ी आशा और चिंतामें था, पर प्रकाश मालूम होते ही वह सब वेदना भूल जाता है। वह उतने ही से प्रसन्न होता है। ध्यान रखना चाहिए कि जबतक नेत्र-तालके बदलेमें चश्मेके रूपमें रोगीको वैसा ही ताल न दिया जाय तबतक नेत्र-अंत:पटलपर बाहरी वस्तुओंकी छाया ठीक-ठीक नहीं बन सकती और सब वस्तुएँ धुँधली ही दिखलाई देतीहैं।

सतिया रोगीको समझाता है कि अभी तो इतनी ही रोशनी आयी है परन्तु तीन-चार दिन बाद दवाइयोंके प्रयोगसे पूरी रोशनी आ जाएगी। रोगी बेचारा उसकी बातोंपर विश्वास करके आगेके लिए आशा लगाता है। भविष्यमें उसके भाग्यमें क्या होगा, इसका उसे ज्ञान कहाँ?

उस रोगीको प्रकाश वापिस आते देखकर गाँवके और भी बहुत वृद्ध इस रोगके रोगी उत्साहित होते हैं। एक-दो दिनतक सतिया उस गाँवमें रुककर जितने रोगी पा सकता है उनपर अपना हस्तकौशल दिखलाकर धन कमाता है। फिर शीघ्र ही अन्य औषधें देकर उस गाँवसे गायब हो जाता है। फिर तो ढूँढ़नेसे भी उसका पता नहीं लगता। सतिया भली-भाँति जानता है कि दो दिन पहले जिस गाँवमें वह बड़ा आदर पा रहा था उसी गाँवमें अब जानेसे उसकी

बड़ी दुर्गति होगी। इसीसे वह ऐसा अवसर आने ही नहीं देता। *

दो-तीन दिनके बाद सतियाकी बनायी आँखोंमें बड़ी असहनीय पीड़ा शुरू हो जाती है। रोगी भले ही दो दिन पीड़ा सहन करके प्रकाशकी आशा करे पर शीघ्र ही उसे सब आशा छोड़नी पड़ती है। आँखें सूजकर लाल हो जाती हैं। सिरमें असह्य वेदना होती है। आँखोंकी रोशनी भी शीघ्र चली जाती है। कुछ दिनों बाद आँखें बैठ जाती हैं और उनमें कुछ ज्योति नहीं रहती। ऐसी कष्टमय आँखोंका इलाज़ करनेके लिए नेत्र-चिकित्साके विशेषज्ञको भी आपरेशन करके उन आँखोंको बाहर निकाल फेंकनेके सिवा अन्य उपाय नहीं रहता। रोगी बेचारा भी पुनः अपनी अमूल्य नेत्र-ज्योतिको सर्वदाके लिए खोकर अपने भाग्यको दोषी ठहराकर ही मनमें तसल्ली देता है कि बुरे भाग्य थे तभी तो ज्योति आँखोंमें आकर चली गई। सतियों द्वारा बनाई १०० में ९९ आँखोंकी यही शोचनीय कथा है। कुछ अवश्य आराम पाते हैं। परन्तु उनके नेत्रोंमें भी सर्वदा यही डर रहता है कि दर्दका दौरा न आ जाय।

६ उनकी असफलताके कारण

सतियोंकी असफलताके बहुत स्पष्ट कारण हैं। सबसे मोटी बात तो यह है कि उन्हें आधुनिक सरजरीकी स्वच्छताके सिद्धांतोंका आरंभिक ज्ञान भी नहीं होता है। उनके भद्दे औज़ार तथा हाथ आँखके भीतर डालनेके विचारसे बिल्कुल गन्दे होते हैं। रोगीके नेत्रका भी आरम्भिक उपचार नहीं हो पाता है। फल यह होता है कि गन्दे हाथों द्वारा गंदी आँखोंके भीतर गंदे औज़ार डाले जाते हैं जिससे कीटाणु आँखोंके भीतर पहुँच जाते हैं और दो तीन दिनके बाद बढ़कर इतना विकट रूप धारण करते हैं कि रोगीको आँखोंसे हाथ धोना पड़ता है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि सतियोंकी विधिमें नेत्र-ताल तारेके पीछेसे हटकर नीचे या बगलमें सरक जाता है परन्तु रहता नेत्रके भीतर ही है। अपने स्थानसे हटा हुआ नेत्रके भीतर ताल इस प्रकार व्यवहार करता है मानो कोई बाहरी वस्तु आँखोंके भीतर आ घुसी हो। सरके हिलाने डुलानेसे ताल भी आँखोंमें ही इधर-उधर लुढ़कता है, या भीतर ही एक स्थानपर फँसा रहता है। फल यह होता है कि जिस प्रकार किसी बाहरी वस्तुके आँखके भीतर घुस जानेसे आँख सूज जाती है और बादमें अंधी हो जाती है, उसी प्रकार सतियाके आँख बनानेके बाद भी आँख बेकाम हो जाती है। कुछ लोगोंकी आँखमें ताल कहीं कोनेमें फँसकर किसी प्रकारका उपद्रव नहीं करता परन्तु उनकी भी आँखमें सर्वदा यही संभावना रहती है कि साल दो-चार सालमें वह ताल अपने फँसे स्थानसे पुनः हट जाय और आँखमें दौरा शुरू हो जाय। कुछ लोगोंमें तो ताल उपताराके पीछे नीचे गिर जानेकी जगहपर उपतारा और कनीनिकाके बीचमें आ जाता है। तब आपरेशन करके ताल बाहर निकाले बिना आँख बैठ ही जायगी। सतियाके आँख बनानेके बाद समलबाईकी बहुत अधिक संभावना हो जाती है। यदि ताल नीचे गिर जानेके स्थानमें थोड़ा हट जाय परन्तु किसी तन्तुसे लगा रहे तो तारेके सामने तालका कुछ भाग यदि आ जायगा पुनः प्रकाश नेत्र-अंतःपटलपर न पहुँच सकेगा।

ऊपरकी बातोंको समझ लेनेसे यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि होगा सतियोंसे कभी भी आखें न बनवानी चाहिये। सब कुछ होते हुये अंधविश्वास, भाग्यमें विश्वास तथा अज्ञान होनेके कारण सतियों द्वारा बहुत अधिक मोतियाबिन्दकी आँखें सर्वदाके लिये ज्योतिहीन हो जाती हैं। 'दि इंडियन आपरेशन ऑव् काउचिंग' नामक पुस्तकमें स्मिथ साहबने इसी प्रकारकी एक बड़ी दुःखद घटनाका उल्लेख किया है। किसी देहातके मनुष्यकी आँखमें मोतियाबिन्द हो गया। वह सैकड़ों मील चलकर अस्पतालमें आया और आपरेशन द्वारा उसकी एक आँख ठीक हो

---

* यह अकुशल सतियोंकी बात होगी। कुशल सतिये ऐनक स्वयं और अवश्य देते हैं। रा०गौ०

गयी। कुछ दिनों बाद दूसरी आँख बनवानेकी राय दी गयी। वह उचित समयपर फिर अस्पताल आया परन्तु अस्पतालसे कुछ दूरीपर एक मंदिरमें जब थकान मिटाने लगा तब कोई सतिया पहुँच गया और उसे बातोंमें फँसाकर उसी मंदिरमें सूजेसे कोंचकर आँख बनायी और चलता बना। दो दिनके बाद रोगी अपने भाग्यको कोसता हुआ आँखोंमें पीड़ा लेकर आया और उसे अस्पतालमें उस आँखको निकलवाना पड़ा।

मोतियाबिन्दसे आधुनिक आपरेशनमें तालको आँखसे बाहर निकाल दिया जाता है। प्रायः छः सप्ताह बाद उचित चश्मा रोगीको दिया जाता है। सब काम इतनी सफाईसे होती है कि कीटाणु आँखोंमें नहीं पहुँच सकते।

सं० टि०—सतियोंके पास वे ही प्रायः जाते हैं जो अत्यन्त दरिद्र होते हैं, और अत्यन्त देरसे जानेके कारण उनके अन्तःपटलकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी रहती है। इसीलिये सतियोंकी असफलताका अंक बड़ा होता है। डाक्टरोंके पास पहले तो समृद्ध ही जाते हैं जो समय रहते इलाज कराते हैं, और क्षीण अन्तःपटलवालोंकी परीक्षा करके कुशल डाक्टर अपनी विद्याका प्रयोग ही नहीं करता। इसलिये असफलताका अंक छोटा होता है। सतिये पढ़े-लिखे तो कम होते हैं, पर वे अपनी शालाक्य तंत्रकी क्रिया सीना-ब-सीना सीखे हुए होते हैं, उनकी क्रिया वैसी ही आयुर्वेदानुमोदित होती है, जैसी जर्राहोंकी शल्य-क्रिया। दरिद्र भारतके लिये, गाँववालोंके लिये, ये सतिये और जर्राह गनीमत हैं, और इनकी शरण लेना, अन्यगतिके अभावमें, भूल नहीं है। रा० गौ०

पुष्करमूल

[ले० श्री स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

पुष्करमूलका अँग्रेजीमें कोई नाम नहीं मिलता। जो नाम अन्य लेखकोंने तथा मैंने भी पुष्करमूलके वर्णनमें दिया है वह वास्तवमें कुष्ठका नाम है। अँग्रेजीमें Aplotaxis Auriculata कुष्ठका नाम है। पुष्करमूलका लैटिन नाम Inula Racemasa मिलता है। यह सेवती Composita सूर्यमुखी या कुष्ठ वर्गकी ही वनस्पति है। डाक्टर वामनगणेश देसाईने 'ओषधि संग्रह' नामक मराठी ग्रंथमें इसका उल्लेख रास्नाके नामसे दिया है। वास्तवमें रास्ना और चीज है। रास्ना तापीयारी वर्ग Araliaceæ की वनस्पति है। डाक्टर देसाईने इसे वन्दाक वर्गमें स्थान दिया है, यह भी भूल है। पुष्करमूल सेवती वर्गकी वनस्पति है। कौन जाने लोगोंने कैसे इसे रास्ना माना। रास्नाका इनका दिया वर्णन पुष्करमूलके वर्णनसे ठीक मिलता है।

पूर्व ज्ञान

इस वनस्पतिका ज्ञान तो वैद्योंको हजारों वर्षोंसे है। किन्तु, मालूम होता है कि आजसे ५०-६० पूर्व यह कम आता रहा है। इसीलिए पंजाबको छोड़कर अन्य प्रान्तोंमें नहीं पहुँच पाया। जभी इसके संबंधमें भ्रम व भूल होने लगी।

भ्रमका कारण कुष्ठ भी था

कुष्ठ और पुष्करमूल दोनोंकी जड़ें प्रायः बहुत कुछ रूप व गन्धमें समान होती हैं। कुष्ठ तो थोड़ा बहुत देशके कोने-कोनेतक कुछ-न-कुछ पहुँचता था, पर यह शायद ही कभी किसी वैद्यको प्राप्त होता है। क्योंकि हरएक वैद्यका अपने-अपने शहरके पंसारियोंसे ही संबंध रहता है और उन पंसारियोंका अपने प्रान्तके बड़े शहरोंके पंसारियोंसे। बड़े पंसारी जो कुछ छोटे पंसा-

रियोंको दे देते हैं वही छोटे पंसारी वैद्योंके गले मढ़ देते हैं। वैद्योंमें पुष्करमूलकी माँग सदा रही किन्तु जितनी इसकी माँग थी, उतनी इसकी उपज न थी।

खोजोंसे पता चला है कि आजसे ४०-५० वर्ष पूर्व तक वह काश्मीरसे ऊपर कागान इलाकेसे ही आता था। वहाँ यह बहुतायतसे होता था। किन्तु वहाँ इसको प्रतिवर्ष इतनी कसरतसे उखाड़ा गया कि आजसे २० वर्ष पूर्व ही उस प्रान्तमें इसका वंश ही मिट गया। तभी तो इसकी अन्य प्रान्तोंमें खोज होने लगी। परिणामस्वरूप इसके मिलनेका पता निम्न स्थानोंमें लगा—काश्मीरमें जोजपाल, खिलानमर्ग, गुरिज, काठवार, भद्रपोंगी, लाहौल, स्पित्ती, कुलू, व्यासकुंड, चम्बा स्टेटका मनमहेस लटानकी जोन, काली छोकी जोन आदि जबसे इन देशोंमें इसका पता लगा अच्छा मूल्य मिलनेके कारण इन देशोंके निवासियोंने इसे निकालना आरम्भ किया जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे इसका आयात बढ़ता चला गया। इस समय तो यह वर्षमें २००-३०० मनके लगभग निकलकर आने लगा है।

अभावके दिनोंमें इसकी पूर्ति कैसे हुई ?

जब देशमें इसकी माँग बराबर बनी रही, और इसका बहुत कुछ अभाव हुआ, तो पंजाबके व्यापारियोंने कुष्ठकी ऊपरकी लकड़ियोंको, जो ऐरण्डवत् पोली तथा वर्णमें काली भूरी-सी होती हैं, भेजना शुरू कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि समस्त यू० पी० में कुष्ठके ये डण्ठल पुष्करमूलके स्थानपर प्रचलित हो गये। और आज समस्त युक्तप्रान्तमें वैद्य इन्हीं पोली लकड़ियोंको पुष्करमूलके स्थानपर बरतने लगे हैं। धीरे-धीरे कुछ ही समयमें युक्तप्रान्तके वैद्य इस असली पुष्करमूलको भूल बैठे। और आज यह अवस्था हो रही है कि वैद्योंको असलीका ज्ञान करनेपर भी उनका भ्रम दूर नहीं होता। कई वैद्य तो अबतक इसे कुष्ठ ही कह देते हैं। और प्रान्तोंको जाने दीजिये, अभी थोड़े ही दिनकी बात है कि सिंध प्रान्तके एक अच्छे विद्वान् वैद्यने एक सेर पुष्करमूल मँगाया। पुष्करमूल जब उन्होंने देखा तो बिना समझे-बूझे चट उसे एक आदमीके हाथ वापिस कर दिया, और एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखकर शिकायत की कि इतनी बड़ी फार्मेसीवाले भी धोखा देते हैं; पुष्करमूलके स्थानपर कुष्ठ भेज दिया। जब उनको दूसरी बार कुछ गाँठें पुष्करमूलकी, और कुछ गाठें कुष्ठकी साथ-साथ भेजी गईं तो वैद्यजीका भ्रम दूर हुआ।

क्या यह सब स्थानोंमें उत्पन्न नहीं हो सकता ?

हर एक वनस्पति सब देश व सब स्थानोंमें नहीं उत्पन्न होती। जो वनस्पति जहाँ उत्पन्न होती है, वहीं होगी। पुष्करमूल प्रायः ७५०० फुटकी ऊँचाईसे लेकर ६००० फुटतककी ऊँची हिमाच्छादित पर्वतमालाओंमें—जहाँ सदा नमी रहती है या जलके स्रोत समीप हैं—उत्पन्न होती है, और यह लगानेसे लग सकती है। १६३६ में एक लाहौल निवासी जमींदारने—जो इस समय कुष्ठकी खेती करता है इसको भी कुष्ठके साथ बोया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसकी भूमिमें इसके काफी पौधे उत्पन्न हो गये। इससे जाना गया कि यदि कुष्ठवत् इसकी खेती की जाय तो यह आसानीसे हो सकता है।

यह मिल कहाँसे सकता है ?

यह उत्पन्न तो हिमाच्छादित पर्वतमालाओंमें होता है, किन्तु बिकता है अमृतसरमें ही आकर। काश्मीर स्टेटमें प्रति वर्ष ५०-६० मन निकलता है किन्तु उसकी नीलामी अमृतसरमें ही आकर होती है।

रचना या आकृति

इसका क्षुप अषाढ़-श्रावणमें—जब बरफ गलती है—भूमिसे निकलता है। यह बहु-वार्षिक क्षुप है। जब बर्फ पड़ने लगती है तब इसका क्षुप जल जाता है, केवल मूल भूमिमें पड़ा रहता है। जब सर्दी समाप्त होकर भूमि बरफ रहित हो जाती है तो यह अपना सिर भूमिसे बाहर निकालता है और देखते-देखते कुछ ही दिनोंमें इसका ५-६ फुटतकका अच्छा क्षुप तैयार हो जाता

है ; और इसके मूलस्कन्धसे कई शाखायें-प्रशाखायें निकलती हैं। नये तनोंका वर्ण कुछ ललाई-युक्त होता है जो बड़े होनेपर घट जाता है।

पत्तोंकी आकृति लम्बाईमें ८ इंचसे लेकर १८ इंच तक तथा चौड़ाई ४ से ८ इंच तक पाई जाती है। इसका पत्रदण्ड भिन्न नहीं होता प्रत्युत तना मूलसे ही पत्र लगकर बड़ा होता चला जाता है। बहुधा इसके पत्र चन्द्राकृति या ग्रहण स्थितिवत् कटे गावदुमाकार बनते हैं ; कुछ पत्ते आगे जाकर दो-दो तीन-तीन हिस्सोंमें फटकर विभक्त हो जाते हैं। पत्तोंके किनारे कँगूरेदार तथा उनपर सूक्ष्म लोम कंटक होते हैं। पत्रका निचला भाग भी लोम या रोयेंसे पूर्ण होता है। पत्ते वृक्षपर घने और विषम होते हैं। फूल सूर्यमुखीके फूलवत् पीले रंगकी पंखडियोंसे युक्त होता है जिसमें प्राय: ७ पुष्प पत्र होते हैं। बीचमें कमल-फूलवत् केसरकी नीलाभायुक्तकेसरी झालर बनी हुई होती है। बीजकी-आकृति सूर्यमुखीके बीजवत् या कुसुम्भ बीजवत् होती है। फूल सुगन्धित होता है।

मूल भाग व संग्रहका समय

आश्विन कार्त्तिकमें इसका संग्रह करना चाहिये किन्तु लोग भाद्रपदसे ही इसे उखाड़ना आरम्भ कर देते हैं। इसकी जड़ें ही काममें आती हैं। पत्र व तने फेंक दिये जाते हैं।

मूलकी रचना

उखाड़ते समय मूल कई शाखोंमें विभक्त मूली जैसा होता है। सूखनेपर उसमेंसे सफ़ेद व हमनवत् मोटी-मोटी झुर्रियाँदार हो जाती है। इसकी जड़से सदा मीठी-मीठी कुष्ठसे मिलती-जुलती कपूरकी-सी कुछ गन्ध लिये बास आती रहती है। यह बास कई वर्षोंतक बनी रहती है। इसे कीड़ा नहीं लगता।

मूलका रूप

इसकी शकल कुछ कुछ कुष्ठसे मिलती है किन्तु, सर्वांशमें नहीं। एक तो यह टूटनेमें सख्त व चटखदार टूटता है। टूटनेपर इसका तोड़ बिलकुल नया हो तो सफेदीयुक्त मटमैला सर होता है। कुष्ठका तोड़ नरम भुरभुरा होता है ; इसका तोड़-स्थान सफेद-पीत होता है। इसके तोड़-स्थान कुछ मसामदार दिखाई देते हैं। इसलिये ये दोनों जल्दी पहचाने जाते हैं। दूसरे कुष्ठकी जड़पर झुर्रियाँ भी पतली-पतली पड़ती हैं। वह प्राय: गोल, कुछ पीतता लिये भूरे वर्णका होता है यह सफेद भूरा-सा। फिर इसकी गन्ध भी कुष्ठकी गन्धसे कुछ भिन्न होती है।

गुण-धर्म

यह स्वादमें कुछ चरपरी, कटु गन्धयुक्त होता है और कंठमें लगता है। पशु-चिकित्सामें इसका काफी उपयोग पशु-चिकित्सिक करते हैं। आयुर्वेदमें तो इसे पात-ज्वर, कफरोग, श्वास, अरुचि, कास पार्श्वमूल, ऊर्ध्ववात्, हिचकी, शोथ तथा पाण्डु रोगमें अन्य औषधोंके साथ मिलाकर देते हैं।

प्रयोगोंसे देखा गया है कि इसका प्रभाव फुफ्फुस व श्लेष्मिक ग्रन्थियों तथा मुख व गलेकी ग्रन्थियोंपर विशेष होता है। पाचक ग्रन्थियाँ भी प्रभावित होती हैं, और स्नायु मण्डल इसके सेवनसे कुछ उत्तेजित हो जाता है। यह श्लेष्मको निकलता है तथा उसको साम्य-रूप देता है। गलग्रन्थि व श्लेष्म ग्रन्थियोंके शोथको कम करता है। साधारण निर्बलता या स्नायविक निर्बलतामें इसका अच्छा प्रभाव देखा जाता है। इसके सेवनसे भूख बढ़ने लगती है तथा उदर शूल—जो अपचके कारण होता है जाता रहता है। यह कृमिघ्न है।

शरीरकी रासायनिक सूचना

[ले० श्री हीरालाल दुबे, एम० एस-सी०, मेरठ]

हिन्दुओंके अनुसार यह संसार पाँच तत्वोंसे मिलकर बना है। ये पाँच तत्व पानी, हवा, मिट्टी, अग्नि और आकाश हैं। इन पाँच चीज़ोंके बिना पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मनुष्य कोई भी जीवित नहीं रह सकते। हमारा शरीर भी इन पाँच चीज़ोंपर निर्भर है। परन्तु रासायनिक दृष्टिसे ये पाँच चीजें कई चीजोंकी मिलावटसे बनी हुई हैं और जो चीज़ें मिलावटसे बनती हैं उन्हें तत्व नहीं कहते। तत्व उसे कहते हैं जो कि और दूसरे पदार्थोंमें विभाजित न किया जा सके। पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन गैससे मिलकर बनता है। हवामें ऑक्सीजन और नाइट्रोजन गैस हैं। मट्टीमें तो कई तत्व हैं जैसे ऑक्सीजन, लोहा, एल्युमिनियम, केलशियम, सिलीकीन आदि-आदि। अग्नि कोई वस्तु नहीं है परन्तु शक्ति है और आकाश शून्य है। वैज्ञानिक कहते हैं कि आकाश 'ईथर' है जिसके द्वारा सूर्यसे पृथ्वीतक सूर्यकी रोशनी आती है। जिस चीज़को हम खाली कहते हैं वह असलीमें खाली नहीं होती है। परन्तु उसमें यही पदार्थ जिसे ईथर कहते हैं भरा रहता है। यह एक बड़ी ही अद्भुत चीज़ है और इसके बारेमें वैज्ञानिकोंको भी ठीक-ठीक पता नहीं है। तो अब रसायनके अनुसार हमारे शरीरकी रचना कई चीज़ोंपर निर्भर है।

शरीरका तापमान

सबसे पहले हमें विचार करना चाहिये कि हमारे शरीरमें अग्नि या गर्मी कहाँसे आती है। हमारे शरीरकी गर्मी ९८·६° फा० या ३७° सेण्टीग्रेड है। (गर्मीके दो नाप हैं एक फारेनहेट और दूसरा सेण्टीग्रेड। फारेनहेटमें ३२° पर पानी जमता है और सेण्टीग्रेडमें ०° पर पानी जमता है।) यह गर्मी हमें खानेसे मिलती है। जो हम खाते हैं वह पेटमें पचकर हमारे शरीरको गर्मी और शक्ति देता है जिसके द्वारा हम चल फिर सकते हैं और जो चीज़ें हम पचा नहीं सकते या जो हमारे शरीरके लिए बेकाम हैं वे कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस और मलमूत्र आदिके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाती हैं।

माँसल भाग—प्रोटीन

हमारे शरीरका माँस 'प्रोटीन' से बना हुआ है। दूसरे पशुओंका माँस भी इसी वस्तुसे बनता है। प्रोटीनमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन होते हैं। हमारे शरीरकी खालका बाहरी भाग भी प्रोटीनका होता है परन्तु इसमें मामूली प्रोटीनसे कुछ अन्तर रहता है और इसके रेशे ज़्यादा कड़े रहते हैं। हमारी खालके दो उपयोग हैं एक तो वह हमारे शरीरके लिए कम्बलका सा काम देती है। इससे बाहरकी गर्मी न तो शरीरके अन्दर ही आ सकती है और न शरीरके अन्दरकी गर्मी बाहर ही जा सकती है; इसलिये वह हमारे शरीरकी गर्मी एकसी रखनेमें मदद पहुँचाती है। दूसरे हमारे शरीरकी रक्षा करती है जैसे रगड़ या चोट आदि लगनेमें। जब यही प्रोटीन थोड़ा और कड़ा हो जाता है तब नाख़ून और बालोंके रेशे बन जाते हैं। इन रेशोंको 'केराटिन' कहते हैं। इनमें गरम और सर्द सहनेकी ताक़त क़ाफ़ी बन जाती है। इन रेशोंपर तेज़ाबका उतना असर नहीं होता जितना कि क्षारका। हलके तेज़ाब जैसे इमली, नीबू, या सिरके आदिका असर खाल, नाख़ून या बालोंपर बिलकुल नहीं होता परन्तु हल्का अमोनिया या सोडियम हाइड्रॉक्साइडका असर होता है और यदि तेज़ सोडियम हाइड्रॉक्साइड होवे तो उसमें खालकी ऊपरी परत जल्दी ही घुल जाती है। नाख़ून और बाल भी इसमें फूल जाते हैं और कुछ समयमें घुल भी जावेंगे। हलके किस्मके क्षार जैसे सुहागेका असर खाल आदिपर ख़राब नहीं होता।

शरीरका विकार—पसीना

पसीना खालसे निकलता है और इसमें करीब-करीब पानी ही होता है। सौ हिस्से पसीनेमें करीब एक हिस्सा चर्बी, तेज़ाब और कुछ यूरिया भी होता है। हमारी खालमें छोटे-छोटे छेद हैं जिनके द्वारा पसीना निकलता है और इन्हीं छेदोंसे हम कुछ साँस भी लेते हैं। इन छेदों द्वारा हमारे शरीरमें बहुत ही थोड़ी मात्रामें वायु जाती है और ख़राब वायु जिसे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड कहते हैं बाहर निकलती है। परन्तु यह थोड़ी मात्रा भी बहुत ही ज़रूरी है। जब हमारे पसीना निकलता है तब चर्बी आदि छेदोंको बंद कर देती हैं और इस कारण हमें इन छेदोंको हमेशा साफ़ रखना चाहिए।

दाँत और हड्डी

हड्डियाँ दो पदार्थोंसे बनी हुई हैं। एक पदार्थमें कोयला या कार्बन बिलकुल नहीं रहता जिसे रसायनज्ञ 'केलशियम फॉसफेट' या चूनेका फॉसफेट कहते हैं। दूसरे पदार्थमें कार्बन भी रहता है और उसे 'कानड्रिन' कहते हैं। इसको उबालनेसे जेलेटिन बनता है। बुढ़ापेमें कानड्रिनकी मात्रा बहुत ही अधिक रहती है और इस कारण बुढ़ापेमें हड्डी सरलतासे कड़क जाती है।

दाँतोंमें भी करीब-करीब वही चीज़ें हैं जो कि हड्डियोंमें। केवल इनके घनत्वमें और कार्बनिक पदार्थकी मात्रामें अन्तर रहता है। इनमें एक पदार्थ और भी रहता है जिसपर तेज़ाबका असर नहीं होता। यह केलशियम क्लोराइड है। हम बहुधा खट्टी चीज़ें खाया करते हैं जो कि हलके किस्मके तेज़ाब होते हैं जैसे इमली, नीबू, सिरका आदि। परन्तु इनसे हमारे दाँतोंपर कोई असर नहीं होता। हमारे मुखसे जो रस निकला करते हैं वे क्षारीय होते हैं और ये हमारे दाँतोंकी रक्षा करते हैं। यदि हम खानेके बाद दाँतोंसे अन्नके छोटे छोटे टुकड़े निकाल दिया करें और उन्हें अच्छी तरहसे साफ़ रक्खा करें जिससे कि कीटाणु जमा न होने पावें तो हमारे दाँत जल्दी ख़राब नहीं हो सकते। परन्तु शक्कर मिठाई और ऐसी चीज़ें जिनसे माँड़ निकल सकता है और जिन्हें रासायनिक भाषामें 'कार्बोहाइड्रेट्स' कहते हैं यदि दाँतोंके बीचमें रह जावें तो उनके सड़नेसे लेक्टिक एसिड बनता है और यह दाँतोंके मीनापर असर करता है और फिर दाँतके अन्दरका भाग जो कि इससे मुलायम रहता है ख़राब होने लगता है। हमारे दाँतोंकी बीमारियाँ कीटाणुओं द्वारा होती हैं और इस कारण हमें उन्हें अच्छी तरहसे साफ़ रखना चाहिए ख़ासकर रातको सोते समय क्योंकि—इस समय हमारे मुखसे रस निकलना भी बंद हो जाता है और कई घंटोंतक कीटाणुओंको या अन्नके टुकड़ोंको दाँतोंपर ख़राबी करनेका मौका मिल जाता है।

हमारे यहाँपर खाना खानेके बाद मुख साफ करनेके लिए सुपारी या इलायची आदि खाते हैं। यह अच्छी प्रथा है क्योंकि इससे दाँतोंके बीचका अन्न निकल जाता है और यदि उनके बदले सुपारी आदि रह भी जावे तो हमें उतना नुक्सान नहीं हो सकता क्योंकि सुपारी आदिमें कार्बोहाइड्रेट्स् नहीं होते जो कि हमारे दाँतोंपर बहुत जल्दी असर करते हैं। दूसरे दाँतोंको दातौनसे साफ करना ज़्यादा वैज्ञानिक है। यदि दातौन न होवे तो उँगली से ही साफ कर लेना चाहिए। यह यूरोपके वैज्ञानिकोंका भी मत है क्योंकि ब्रुशसे दाँतोंको साफ करके यदि ब्रुशको अच्छी तरहसे साफ न किया जावे तो उससे भी दाँतोंको नुकसान पहुँचता है। हमारे देशमें नीम या बबूलकी दातौन बहुत प्रचलित है और दातौनकी बराबरी ब्रुश कभी नहीं कर सकता। हमारे शरीरको अच्छा रखनेमें दाँतोंका बहुत बड़ा हिस्सा है। दाँतकी बीमारियोंसे और कई बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं इस कारण हमें दाँतोंकी काफ़ी हिफाज़त करनी चाहिए।

रुधिरका प्रवाह

ख़ून हमारे शरीरका आधार है और जिसके द्वारा हमारे शरीरकी बनावट निर्भर है। यह पदार्थ पानीका बना हुआ है और इस पानीमें प्रोटीन पदार्थ जिन्हें फिब्रिनोजन, सीरोग्लोब्युलिन, सीराएलबुमिन कहते हैं

घुले हुए हैं और कुछ नमकीन पदार्थ भी हैं। इस घोलमें लाल और सफेद रंगके छोटे-छोटे कण रहते हैं। इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ही देख सकते हैं। हमारे ख़ूनका रंग इन्हीं लाल कणोंके कारण लाल दीखता है। ख़ूनमें सैकड़ों लाल कणोंमें एक आध सफेद कण रहता है। इन लाल कणोंमें लोहा भी रहता है इसी कारण ख़ून कम या कमज़ोर होनेपर डाक्टर दवामें लोहा भी देते हैं। जिस चीज़में लोहा रहता है उसे हेमोग्लोबिन कहते हैं। यह हेमोग्लोबिन फेफड़ोंमें ऑक्सीजन गैसको ले लेता है और तब इसे ऑक्सीहेमोग्लोबिन कहते हैं। बादमें यह ऑक्सीजन भोजनके सतसे मिलकर हमें शारीरिक गर्मी और शक्ति देती है।

सफेद कण लाल कणोंसे बिलकुल स्वतंत्र हैं और ये सजीव पदार्थ हैं। ये हमारे शरीरकी सफाई और रक्षा करते हैं। यदि ख़ूनमें किसी पदार्थका टुकड़ा आ जावे तो ये फ़ौरन ही उसे घेर लेंगे और स्वाहा कर डालेंगे। इसी प्रकार यदि किसी बीमारीका कीटाणु ख़ूनमें पहुँच जावे तो वे फौरन ही उस पर धावा करते हैं। इस लिहाज़से बीमारी सिर्फ सफेद कणोंकी और कीटाणुओंकी लड़ाई है। इसमें यदि सफेद कण जीत गए तो बीमार अच्छा हो जावेगा और यदि हार गए तो मर जावेगा।

नमकका अंश

हमारा खून खारा होता है। ऐसा मालूम होता है कि जो नमक आदि हम भोजनके साथ खाते हैं इसका तेज़ाबका हिस्सा तो पेटके रसमें मिल जाता है। और खारा भाग खूनमें मिल जाता है। खूनका खारा होना हमारे लिये बड़े ही फ़ायदेका है क्योंकि ख़राब वायु जिसे कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस कहते हैं इसी खारेपनके ही कारण हमारे शरीरसे बाहर निकलती है। खूनके खारेपनके कारण कार्बन-डाई-ऑक्साइड इसमें घुल जाती है और जब यह खून फेफड़ोंमें आता है तब कार्बन डाई-ऑक्साइड अलग होकरके साँस द्वारा बाहर निकल जाती है। अब हम समझ सकते हैं कि हमारे भोजनमें नमक आदिकी थोड़ी मात्रा बहुत ही आवश्यक है क्योंकि नमकका तेज़ाबवाला हिस्सा पेटमें पाचन शक्तिमें मदद करता है और खारा भाग खूनमें कार्बन-डाई-ऑक्साइडको लाकर बाहर निकालनेमें मदद करता है।

हमारे शरीरमें एक बहुत ही आवश्यक पदार्थ 'लेसिथिन' है। इस चीज़में फॉसफोरस रहता है। भेजा और नाड़ियोंके केन्द्रकी क्रिया इसी वस्तुपर निर्भर है। यद्यपि यह पदार्थ इतना ज़रूरी है फिर भी हमारे भोजनमें इसकी मात्रा काफी रहती है और हमें ऐसे पदार्थोंके खानेकी ज़रूरत नहीं है जिनमें कि फॉसफोरसकी मात्रा अधिक होवे।

शरीरमें क्या-क्या है ?

मनुष्य-जीवनके लिए बहुत ही कम तत्वोंकी आवश्यकता मालूम पड़ती है परन्तु मनुष्य-शरीरकी बनावटमें तत्वोंकी मात्रा इस प्रकारसे है :—

	प्रतिशत		प्रतिशत
कार्बन	६५	सोडियम	०·१५
हाइड्रोजन	१८	क्लोरीन	०·१५
नाइट्रोजन	१०	मेगनीशियम	०·०५
केलशियम	३	लोहा	०·००४
फॉसफोरस	१·५०	आयोडीन	अंशमात्र
पोटेशियम	०·३५	फ्लोरीन	अंशमात्र
गन्धक	०·२५	सिलीकन्	अंशमात्र

इन्हीं तत्वोंपर प्राणीमात्र अवलम्बित है और शायद दूसरे तत्वोंकी भी बहुत ही थोड़ी मात्रामें आवश्यकता होती होगी। ये सब तत्व हमारे शरीरमें यौगिक अवस्थामें वर्त्तमान हैं और इनमेंसे पानी सबसे अधिक मात्रा में है।

स्वास्थ्यके प्राकृतिक साधन

हमने अपने शरीरकी रासायनिक रचनाका कुछ विचार किया है। अब हमें देखना है कि हमारी तन्दुरुस्तीमें रसायनका क्या हाथ है। जब हमारी तन्दुरुस्ती बिगड़ती है तो हम दवाइयोंका आसरा लेते हैं और ये दवाइयाँ रसायन द्वारा तैयार की जाती हैं।

परन्तु इस विषयपर यहाँ कुछ न लिखकर हम केवल उन बातोंपर ध्यान देंगे जिनका कि हमारी तन्दुरुस्तीपर स्वाभाविक रूपसे असर पड़ता है। हमारी तन्दुरुस्तीपर सूर्यकी रोशनी, शुद्ध वायु, कसरत, प्रसन्नचित्त, स्वच्छता, पवित्र पानी और पवित्र भोजनका स्वाभाविक रूपसे असर पड़ता है। हमें देखना है कि इनसे रसायनका क्या सम्बन्ध है।

सूर्योपासना

हिन्दुओंमें सूर्यकी पूजा होती है और वह हमारा देवता है। इसका कारण शायद यही है कि हमारा जीवन बहुत हदतक सूर्यपर निर्भर है। हमारा भोजन भी सूर्य-पर ही निर्भर है। जो हम अन्न और साग-भाजी आदि खाते हैं उनकी उपजमें सूर्यकी बहुत मदद है। यदि सूर्य न होता तो हमारे खेत और बाड़ी इस प्रकार हरे-भरे न दिखाई देते। पेड़ और पौधोंमें कई रासायनिक क्रियाएँ सूर्यके प्रकाशपर ही अवलम्बित हैं। दूसरे हमारे भोजनके पचानेमें भी सूर्य काफी मदद करता है। सूर्यकी रोशनीमें कीटाणु नहीं जी सकते और ख़ासकर बीमारीके कीटाणु। इसी कारण जिस घरमें सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँचता वह रोगका घर समझा जाता है। यह कीटाणु अँधेरेमें और बिना वायुके जीवित रह सकते हैं परन्तु सूर्यकी रोशनीमें शक्तिहीन हो जाते हैं। यदि सूर्यकी रोशनीमें कीटाणुओंको मारने-की ताकत न होती तो शायद आज पृथ्वीपर मनुष्य-जाति न दीख पड़ती क्योंकि सैकड़ों कीटाणु वायुमें हैं और वे हवा द्वारा बीमारीकी जगहसे दूसरे घरोंमें व शहरोंमें इन कीटाणुओंको ले जाकर मनुष्य-मात्रको स्वाहा कर देते। परन्तु धन्य हैं सूर्यदेव हमारे बिना जानेही हमें कई बीमारियोंसे बचाते हैं और हमारे शरीरको स्वस्थ रखते हैं। आज हम कई बीमारियोंसे बचे हुए हैं और वही बीमारियाँ दूसरे देशोंमें जहाँपर सूर्यकी इतनी कृपा नहीं है मनुष्योंको कष्ट दे रही हैं। सूर्यकी रोशनी जो कि हमें दीखती है वह सात रंगोंसे मिलकर बनी हुई है। इसमें लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, बैंजनी और कासनी रंग रहते हैं। कासनी रंगके बादकी किरणें दिखाई नहीं देतीं और इन्हीं किरणों द्वारा रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। ये किरणें सूर्यकी रोशनीके साथ पृथ्वीतक आती हैं और दिनकी रोशनीमें जहाँपर धूप न भी हो वहाँपर भी ये किरणें वर्त्तमान रहती हैं। पहाड़ोंपर इन किरणोंकी मात्रा और भी अधिक रहती है और इसी कारण पहाड़ स्वास्थ्यके लिए अच्छे होते हैं। सूर्यकी रोशनीसे हममें जान-सी आ जाती है और शारीरिक शक्ति बढ़ती है। आजकल पाश्चात्य देशोंमें भी सूर्यकी महिमा मानी जा रही है। वहाँपर लेम्प बनाए गए हैं जिन्हे 'सन लेम्प' कहते हैं और इनसे सूर्यके समान प्रकाश निकलता है। दूसरे किस्मके लेम्प बने हैं जिनसे 'अलट्रावायोलेट रेज़' या कासनी रंगके बादकी किरणें निकलती हैं। ये किरणें आजकल बहुत उपयोगमें आ रही हैं और इनसे कई बीमारियाँ भी अच्छी की जा सकती हैं।

व्यायामकी आवश्यकता

हमारे शरीरको कसरतकी आवश्यकता होती है। जिस प्रकारसे कई रासायनिक क्रियाओंमें हिलाने-डुलाने-की जरूरत होती है जैसे कि दहीको मथकर मट्ठा और मक्खन बनाते हैं उसी तरहसे हमारे शरीरकी रासायनिक क्रियाएँ भी बिना कसरतके जल्दी और ठीक तौरसे नहीं होतीं। कसरतसे रासायनिक क्रियाएँ ही अच्छी तरहसे नहीं होतीं परन्तु साथ ही मल-मूत्र आदि भी सरलता से बाहर निकल जाते हैं और कसरतमें जल्दी-जल्दी सांस लेनेसे फेफड़ोंको भी कसरत होती है जिनपर हमारा जीवन बहुत कुछ निर्भर है।

सदा प्रसन्न रहो

प्रसन्नता हमारे शरीरको अच्छा रखनेके लिए बहुत ही जरूरी है। परन्तु प्रसन्नताका रसायनसे क्या सम्बन्ध? हमारा शरीर प्रयोगशालाके समान है और इसमें कई रासायनिक क्रियाएँ बराबर होती रहती हैं। जिस प्रकारसे कारखानेमें ठीक प्रकारसे हुक्म न दिया

जावे या हुक्म न माना जावे तो वहाँकी चीजें अच्छी नहीं बन सकतीं और कारखाना भी खराब हो सकता है उसी प्रकार यदि कोई मनुष्य भोजन करते समय गुस्सेसे उत्तेजित हो जावे या अप्रसन्न होवे तो उसकी नाड़ियाँ ठीक तौरसे काम नहीं करेंगी और खूनकी दौड़में भी बाधा पहुँचेगी। जहाँपर जितना खून चाहिये उतना खून न पहुँचेगा और इस कारण भोजन पचानेकी रासायनिक क्रियाओंमें बाधा पहुँचेगी। हमारे शरीरके भीतरके रस मामूली हालतमें ठीक मात्रा निकला करते हैं परन्तु यदि नाड़ी-मण्डलमें किसी प्रकारका विघ्न होता है तो फिर ये ठीक मात्रामें नहीं निकलते और न वे सब अङ्गोंमें ही ठीक तौरसे पहुँच सकते हैं।

स्वच्छतामें ही सुख

स्वच्छताके लिए रसायनने बहुत कुछ किया है। जहाँपर सफाई है वहींपर सुख है। हमारे शरीरकी तन्दुरुस्ती सफाईपर बहुत निर्भर है। गन्दगीमें कीटाणु छिपे रहते हैं और वहाँपर वे सुरक्षित भी रहते हैं। इन्हींसे कई बीमारियाँ होती हैं। रसायनने सफाई और तन्दुरुस्ती बनाए रखनेके लिए कई पदार्थ बनाए हैं जैसे साबुन, मंजन, पोटेशियमपर-मैंगनेट, टिंक्चर, आयोडीन फिनायल आदि-आदि।

पवित्र पानी

हम कभी-कभी देखते हैं कि जिस बरतनमें पानी उबला करता है उसमें सफेद रंगकी चीज जम जाती है। ऐसे पानीको भारी पानी कहते हैं और इसमें चूना और मेगनीशिया होता है। इनके अलावा करीब-करीब हमेशा कार्बनिक पदार्थ और कीटाणु भी रहते हैं। पीनेके पानीमें कार्बनिक पदार्थोंका होना हानिकारक है और उससे यह मालूम होता है कि पानीमें शहर आदिका गन्दा पानी जिसमें बहुत-से कार्बनिक पदार्थ होते हैं मिला हुआ है। रासायनिक परीक्षासे सरलता द्वारा मालूम हो सकता है कि पानीमें कार्बनिक पदार्थ मिले हुए हैं या नहीं और यदि हैं तो ऐसे पानीको बिना स्वच्छ किए हुए पीना तन्दुरुस्तीके लिए बहुत ही नुक्सान पहुँचा सकता है। पानीके बहुत कम कीटाणु मनुष्य शरीरको नुक्सान पहुँचाते हैं। इनमेंसे सबसे ख़राब कीटाणु विषमज्वर या मोतीझराके होते हैं। पानीके कीटाणु सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे देखे जा सकते हैं और यदि इसमें विषमज्वर के कीटाणु होवें तो पानीको स्वच्छ करके पीना चाहिए।

अक्सर पानी रेतासे छानकर साफ़ किया जाता है। रेता इस तरहसे जमाया जाता है कि सबसे बारीक़ ऊपर रहे और नीचेकी ओर मोटा होता जाता है। इसमें ऊपरसे धीरे-धीरे पानी डाला जाता है और चीज़ोंके छोटे-छोटे कण जो पानीमें रहते हैं वे रेतामें रुक जाते हैं। ये ही नहीं परन्तु कीटाणु भी रेतामें रह जाते हैं। कीटाणुओंको मालूम नहीं किस प्रकार रेतासे आकर्षण होता है और वे उसीमें रह जाते हैं। एक और अच्छी बात यह है कि नुकसान पहुँचानेवाले कीटाणु दूसरे कीटाणुओंकी अपेक्षा सरलतासे मर जाते हैं। इस प्रकार हमें काफ़ी साफ़ पानी मिल जाता है। इसके अलावा यदि पानीको और साफ करना होवे तो क्लोरीन गैसका उपयोग करते हैं। यह गैस कीटाणुनाशक है। घरोंमें पानी उबालकर सरलतासे साफ किया जा सकता है। पानीको उबालकर और छानकर उसी समय ठंडा करके पीनेसे बेस्वाद मालूम होता है परन्तु यदि मट्टीके घड़ेमें ठंडा करनेके लिए रख दिया जावे तो करीब एक दिनमें वायुसे उतनी ही ऑक्सजिन गैस घुल जावेगी जितनी कि उबालनेसे निकल गई थी और पानीका स्वाद अच्छा हो जावेगा। आजकल पाश्चात्य देशोंमें पानीको ओज़ोन गैस और 'अल्ट्रा वायोलेट रेज़' या कासनी रंगके बाद की किरणों से साफ़ करते हैं।

यदि दौरे या सफरमें साफ़ पानी न मिले तो ऐसे मौकेमें हमेशा टिंकचर आयोडीन पासमें रखना चाहिए। मामूली टिंकचर आयोडीनको एक बूँद करीब एक सेर पानीमें डालकर आध घंटेतक रखनेसे वह पानीको साफ़ कर देगी।

क्या कैलेमिनका नाम खर्पर है?

खर्परपर मेरे विचार

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

खर्परके सम्बन्धमें इस समयतक दो मत पाये जाते हैं। एकका कथन है कि खर्पर नाग रजतकी किट्ट है। दूसरेका कथन है कि खर्पर यशदकी मिट्टी या यशदका यौगिक खनिज एक द्रव्य है। मैं खर्परके सम्बन्धमें अपने विचार भिन्न-भिन्न पत्रों द्वारा कई बार प्रकट कर चुका हूँ। मैं इस अवसरमें इस बातको जानने-का प्रयत्न भी करता रहा कि कहीं मैं भूलपर तो नहीं हूँ। मैंने इसपर काफी प्रयोग किये; अनेक प्रकारके यशद धातुकी मूल मृत्तिका व पाषाणोंको मँगाकर उन्हें परीक्षा द्वारा देखता रहा कि कहीं शास्त्रीय कथनोंसे, गुणों-से इसका मेल तो नहीं खाता। किन्तु, जहाँतक मैंने प्रयत्न किया है—खर्परसे इन समस्त अंशोंकी पूर्ति होती दिखाई नहीं दी। यहाँ उनकी प्रायोगिक चर्चा दूँगा।

यशद खनिज

इस समयतक संसारमें यशदके निम्नलिखित २१ खनिज पाये गये हैं।

१ एडेमाइट — २ औरिकेलसाइट
३ कैलेमिन — ४ कैलशम लारसेनाइट
५ चेलकोफेनाइट — ६ डेस्क्लोइज़ाइट
७ फाडलेराइट या रौडोनाइट — ८ फ्रेंकलिनाइट
९ गारनाइट — १० गोसलेराइट
११ हार्डी स्टोनाइट — १२ हिटोरोलाइट
१३ होजकिन्सोनाइट — १४ हाइड्रोजिंकाइट
१५ निकोलसोनाइट — १६ स्मिथसोनाइट
१७ स्पेन्सराइट — १८ स्फेलेराइट
१९ टारबोटाइट — २० विल्लेमाइट
२१ ज़िंकाइट

उक्त खनिजोंमें ये जिंकेट नामका खनिज केवल ओषजन (द ओ) का यौगिक है, दूसरा कैलेमिन यशद शैलिका और उदजन और ओषजनका यौगिक है, यथा ($उ_2 द_2 शै ओ_6$)। कैलेमिन वास्तवमें एक प्रकारकी गुलाबी वर्णकी मिट्टी है, जैसे गेरू या राम रज (पीली मिट्टी)। कैलेमिन हर एक केमिस्टकी दुकानसे पाँच-छः आने पौंडके भाव मिल जाती है। अभीतक यशद खनिजों-मेंसे कैलेमिन ऑफ-प्रेपरेटाको ही वैद्य समाजने खर्पर स्वीकार किया है। अन्योंको नहीं। सबसे पूर्व डाक्टर प्रफुल्लचन्द्रजी रायने रसार्णवका सम्पादन करते समय उसके इण्डेक्समें खर्परके आगे = रसक (खर्परी तुत्थक) लिखकर 'a Sort of calamine or zinc ore' लिखा है। हिस्ट्री ऑफ हिन्दू कैमिस्ट्रीमें भी आपने इसीका वर्णन दिया है। 'हिस्ट्री ऑफ हिन्दू कैमिस्ट्री' आपने १९०४ में लिखी और रसार्णवका सम्पादन १९१० में किया। इसके पश्चात १९१९ में श्रीयुत यादवजी त्रिविक्रमजी आचार्यने 'आयुर्वेद मार्त्तण्ड' नामक मासिक पत्र निकालकर स्वयम् उसमें यह सिद्ध किया कि कैलेमिन ऑफ प्रेपरेटा ही खर्पर है। इसके बाद १९२८ में डाक्टर दुलकरोंने अपने भारतीय रसशास्त्रमें इसका अच्छी तरह समर्थन किया और

अब भी पं० घनानन्दजी पंत आदि विद्वान् इसका समर्थन कर रहे हैं। इतने बड़े माननीय, रसायनाचार्य, डाक्टर तथा प्रख्यात वैद्यकी जब किसी ओर सम्मति हो तो उसके आगे अन्य वैद्योंका सिर झुका देना कोई बड़ी बात नहीं। डाक्टर गणनाथ सेनजी तथा कविराज प्रतापसिंहजीने भी उक्त पक्षका ही समर्थन किया। यही नहीं, कविराज प्रतापसिंहजीने हिन्दू विश्व विद्यालयमें रहते यशदके अनेक खनिजोंको मँगाकर 'भारतीय रस शास्त्र' के आधारपर भिन्न-भिन्न खनिजोंमेंसे किसीको दर्दुर किसीको कारवेल्लक और किसीको मृत्तिका गुड़, पाषाण सिद्ध करनेकी चेष्टा की।

इस भ्रमका निर्णय कैसे हो ?

जब कोई वस्तु लुप्त या अप्राप्य हो गई हो और नये सिरेसे उसकी जानकारी प्राप्त करनी हो तो उसके सम्बन्धमें जो भी रूप, गुण, वर्ण, आकृति, प्रकृतिका वर्णन मिलता हो उन समस्त बातोंमें इसका मेल मिल जाय तो उसे स्वीकार करनेमें किसीको संकोच नहीं होना चाहिये। इसके लिये परीक्षा ही एक मार्ग है।

परीक्षामें यशद खनिज पूरे नहीं उतरते

रूप— प्रथम तो उसके बाह्य रूपका ही संतुलन करिये। शास्त्रमें लिखा है 'मृत्तिका गुड़ पाषाण भेद तो रसकस्त्रिधा।' रसका तीन प्रकारका है—मृत्तिका सदृश्य, गुड़ सदृश्य, और पाषाण सदृश्य। 'पीतस्तु मृत्तिकाकारो मृत्का रसको वरः पीली मिट्टीके आकारका खपर श्रेष्ठ है। 'क्षीयते नापि वह्निस्थः सत्व रूपो महाबलः।' यह अग्निपर धमन करनेसे नष्ट नहीं होता अर्थात् उड़ता नहीं, दूसरे सत्वरूप होता है। अर्थात इसमें धातु सत्वका भाग अधिक होता है।

(१) इसके रूपसे कैलेमिनका रूप नहीं मिलता। शास्त्र तो पीली मिट्टी बतलाता है किन्तु इस समय जितनी भी कैलेमिन नामकी मिट्टी आती है या बाजारमें मिलती हैं ये सबकी सब गुलाबी हल्की या गूढ़ी होती हैं।

(२) जब इसका सत्वपातनार्थ प्रयोग करें तो इसमेंसे सत्व नहीं निकलता। रसार्णवकारने जिस विधानसे इसका सत्व पातन विधान बनवाया है उस विधानसे कैलेमिन मिट्टीसे कोई कुटिल संकाश सत्व प्राप्त नहीं होता। यह कई बार देखा जा चुका है।

सौ रुपयेका पुरष्कार

जो व्यक्ति शास्त्र लिखे विधानसे कैलेमिन मृत्तिका द्वारा वंग सदृश्य सत्व पातन करके निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलनके समक्ष दिखा देंगे वह मुझसे उक्त पुरस्कार प्राप्त करेंगे।

और रूप विधान— शास्त्रमें ही आगे चलकर लिखा है—

सदलो दर्दुर इति निर्दलः कारवेल्लकः।

एक सदल होता है, दूसरा दलरहित। सदलकी आकृति दर्दुर (मेढ़क) जैसे रूपकी और दलरहितकी करेले जैसी। यह दोनों आकृतियाँ भी कैलेमिनमें नहीं घटती। यही नहीं यशदके कोई खनिज प्रकृतिमें न तो दर्दुराकार पाये जाते हैं नकारवेल्लक आकारके। फिर और देखिये कि सत्व पातनके लिये तथा औषधमें लेनेके लिये शास्त्रोंने इन्हीं सदल और निर्दलको स्वीकार किया है। कैलमिन तो किसी तरह भी खर्परसे संतुलित नहीं होता।

यशद भस्मके उपयोगकी बात

इसके स्थानपर हमारे माननीय वैद्योंने यशद भस्म डालनेकी सम्मति दी है। पहिली बात तो यह है कि हमारे किसी भी प्राचीन ग्रन्थमें यशदका उल्लेख नहीं मिलता। रसकामधेनुकार वैद्यवर चूड़ामणिजीने सर्व प्रथम अपने ग्रन्थमें खर्परके नामोंमें जसद नामका उल्लेख किया है यथा—

रसके जसदं चौरं रीतिकाकार संज्ञकम्।
खर्परं स्यात्खर्परिका किटिभं हेमतारजम्।

यह जसद भी उस जस्तके नामोंके लिये नहीं प्रयुक्त हुआ है—जो एक भिन्न धातु है। यदि यशदकी ओर

संकेत होता तो यहाँ इसका नाम वह यशदज लिखते। फिर यदि उस समयका पता लग जाता तो वह अवश्य इसका उल्लेख करते और "सात धातुओंके स्थानपर आठवें धातु यशदको अवश्य स्थान देते क्योंकि रसार्णवके समय छः धातु थे बादमें सात हुए।

इन डाक्टरों वैद्योंको भ्रम कैसे हुआ ?

रसार्णवमें खर्परकी उत्पत्ति, गुण, स्वभावके सम्बन्धमें एक श्लोक आया है—

गोभट्टो रसकस्तुत्थ: क्षिति किट्टो रसोद्भव:।
खर्परो नेत्र रोगारि रीति कृत्ताम्र रञ्जक:॥

रीतिकृत्‌का यहाँपर अर्थ लेते हैं पित्तल निर्माण करनेवाला। पर हमने तो जहाँतक खोज की है उससे इस परिणामपर पहुँचे कि उस समयके ग्रंथकारोंको पित्तल किन-किन धातुओंके मिश्रणसे बनता है उसका ज्ञान न हो पाया था। यदि होता तो पित्तलके नामोंमें इसका उल्लेख होता हैं जैसा कि कांस्य व सिन्दूरके नामोंमें आया है। कांस्य किस तरह बनता है, ग्रंथकारोंको इसका पता था। तभी तो कांस्यनोयामें 'वंगताम्र भवं' उल्लेख आया है। इसी तरह सिन्दूरके नामोंसे भी सिद्ध होता है कि ग्रंथकारोंको सिन्दूर कैसे बनता है इसका पता था। तभी तो नागगर्भजम्, नागजम् आदि नाम दिये। किन्तु उन्हीं ग्रंथकारोंने पित्तलके वर्णनमें या उसके नामोंमें कोई ऐसा संकेततक नहीं दिया जिससे ज्ञान हो कि उन्हें पित्तलकी रचना कैसे होती है इसका ज्ञान था। हाँ, यह वह अवश्य जानते थे कि पित्तल धातुसंकर है। पर किस-किस धातुका संकर है यदि उन्हें यह ज्ञान होता तो वह रीति भेद लिखते समय इसको 'त्रिलोहकम्' न लिखते। यह हमारे देशमें नहीं बनता था। उस समय विदेशसे आता था तभी तो ग्रंथकारोंने 'तत्स्रात् सिंहलकाख्यं' सिंहल देशमें होती है—ऐसा लिखा।

जब यशद और पित्तल हमारे देशकी वस्तुएँ नहीं तो इनके संबंधमें भ्रम व भूल होना साधारण बात थी।

जब रसार्णवकारके समय यशदका ज्ञान नहीं था, पित्तलका ज्ञान नहीं था तो 'रीतिकृत्' पाठका अर्थ पित्तल बनानेवाली यशदकी मिट्टी या यशदका खनिज यह अर्थ कैसे निकाल लिया गया ? श्रीयुत पी० सी० रायजीने रसार्णवके संशोधनमें भिन्न ग्रंथोंके पाठ भी दिये हैं। वहाँपर एक ग्रंथमें 'रतिकृत' भी पाठ दिया है। मेरे विचारके अनुसार तो रसार्णवकारका रतिकृत् या रीतिकृत् शब्दसे 'पित्तल बनानेवाला' अभिप्राय नहीं था। पीला या रंजन करनेवाला ऐसा अभिप्राय ज्ञात होता है; क्योंकि ग्रन्थकारने उसी श्लोकमें आगे ताम्र रंजक:का समास किया हुआ है। और यदि खर्पर पित्तल बनानेवाला ही माना जाय तो 'करोतिशुल्वं त्रिपुटेन कांचनम्' खर्पर तीन पुटमें ताम्रको सोनेमें कैसे बदल सकता है ? क्या पीतल भी सोना बन सकता है ? इसपर किसी वैद्यने विचार किया है ? इस तरह प्राचीन ग्रन्थोंमें दिये खर्पर वर्णनसे तो यह स्पष्ट है कि यशद या यशदके कोई भी खनिज खर्पर सिद्ध नहीं होते।

तो खर्पर कौनसी चीज़ है ?

रसार्णवकार तो खर्परके सम्बन्धमें स्पष्ट लिखता है—

गोभट्टो (ट्टः) रसकस्तुत्थं क्षिति किट्टो रसोद्भव:।

और 'किट्टभं हेम तारजम्' भी तो यही सिद्ध करता है कि खर्पर न तो खनिज सदृश्य द्रव्य है न बिलकुल भुरभुरी मिट्टी सदृश्य। यहाँपर रसार्णवकारने 'गोभट्टो रसकस्तुत्थं क्षिति किट्टो रसोद्भवम्' लिखकर खर्परकी उत्पत्तिका स्पष्टतया वर्णन किया है। गोभट्ट मिट्टी या ईंटें पकानेवाले भट्टेसे ग्रन्थकारका अभिप्राय स्पष्ट है। आगे क्षिति रसोद्भव: धातोद्भव: किट्ट: भी स्पष्ट है। अर्थात् खर्पर धातु मैल है, धातुका अवशेष भाग है। किट्टभं हेमतारजं तो बिलकुल ही स्पष्ट है। यशद भस्मया यशद खनिज धातु किट्ट नहीं हो सकते न हैं, न किसीने माना ही है। दूसरे सदल और निर्दल दर्दुर और कारवेल्लक रूपोंका वर्णन भी स्पष्ट करता है कि मेंढकके आकार या करेले जैसा आकार देना कृत्रिम विधि द्वारा ही हो सकता है। एक तो ग्रन्थकारोंका खर्परके लिये धातु यह कहना इस बातको सिद्ध करता है कि खर्पर न तो कोई खनिज द्रव्य है, न

स्वयम् मूलधातु, प्रत्युत धातुका अवशेषांश है। यदि धातुओंका मैल हुआ तो यह न तो केलेमिन है न यशद् फिर केलेमिन या यशद भस्म किस आधारपर और कौनसे रूप, गुण, वर्ण, आधारपर अवलम्बित मानकर लिया जाय। यह किसी वैद्य व डाक्टरने बतानेका कष्ट नहीं किया।

खर्पर साधारण सोने चाँदीका मैल नहीं

सोना-चाँदी गलाने या साफ करनेवाले न्यारिये हमारे देशमें काफी समयसे हैं। ये लोग सोना-चाँदी गलानेके बाद बची हुई घरिया या कुठालीको एकत्र करते रहते हैं। इन कुठालियोंको फिर निखादिये खरीद करके ले जाते हैं और उसमेंसे फिर कुछ न-कुछ सोना-चांदी निकाल लेते हैं। उनकी वह मिट्टी जो बच जाती है उसमें कोई धातु-अंश रहने नहीं पाता। इसलिये, उसे किट्ट-से आप सत्वपातन करें तो आपको कुछ भी हाथ नहीं आवेगा। इसलिये चिति किट्ट या किट्टभं हेमतारजं से ग्रन्थकारका अभिप्राय उस किट्टसे दिखाई देता है, जिस खनिजसे यह धातुएँ प्राप्तकी जाती हैं। क्योंकि, पिछले समयोंमें जिन धातु-खनिजोंसे प्राचीन विधि द्वारा धातुयें निकाली जाती थीं वे इतनी परिष्कृत नहीं थीं जिससे समस्त धातु दूर हो जाय। प्रत्युत खनिजोंमें बहुत सा धातु-अंश रह जाता था। ऐसे ही धातु किट्टकी ओर ग्रन्थकारका संकेत दिखाई पड़ता है।

चूंकि इस धातु किट्टका उपयोग चल पड़ा था इसीलिए इसकी आकृति बन गई, अथवा धातु-गात नार्थं बनाई गई आकृतियोंको नष्ट नहीं किया गया, जैसा कि मैं इससे पूर्वके लेखोंमें सिद्ध कर आया हूँ।

सत्वों द्वारा धातुका अनुमान

खर्परके नामोंमें इसका एक नाम सीसकाकार भी आया है। दूसरे इसके सत्वोंका रूप भी 'सत्वं कुटिल संकाशं, सीसकाकार सत्वकं' सत्व वंग या सीसाकी आकृतिका निकलता है। यदि खर्पर स्वर्ण-चाँदीका ही मैल होता तो उसका सत्व चाँदी-सोनेकी आकृतिको लिये हुये होता। किन्तु, नहीं। ग्रन्थकार वंग, नागवत् बतलाता है। जो ग्रन्थकार वंग और नागके अन्तरको बतला सकते हैं, वे चाँदीको वंग या नाग कह दें यह सम्भव नहीं। चाँदी और वंग नागसे काफी अन्तर रखती हैं। दूसरे इनकी ज्वालायें भी भिन्न हैं जिससे इनको पहिचाना जा सकता है। यदि खर्पर सत्व यशद होता तो भी उसे वंग, नागसे अलग न समझ पाते यह विश्वासके योग्य बात नहीं।

खर्पर सत्वको किसी ग्रन्थकारने वंगाकृति, किसीने सीसकाकृति बतलाया है। इससे स्पष्ट होता है कि खर्पर सत्वमें एक धातु ही नहीं प्रत्युत मिश्रित रूपमें कई धातुएँ होती थीं।

हम बतला चुके हैं कि खर्पर नाग चाँदी खनिजकी अवशिष्ट मृत्तिका या किट्ट है। इस समय प्रायः देखा जाता है कि किसी मुख्य धातु खनिजके साथ कई-कई अन्य गौण धातुयें भी मिश्रित होती हैं। प्रायः नाग खनिज एगडोराइट, फिज़ेलाइटमें चाँदी मिली हुई होती है। कई ऐसे भी नाग खनिज हैं जिनमें चाँदी अधिक और नाग कम होता है यथा—पाइरा रज़ीराइट आदि। इन खनिजोंसे जब धातुयें अलग की जाती थीं तो प्रायः जो धातुयें उसकी किट्टमें रह जाती थीं वही धातुयें सत्वपातनमें प्राप्त होती थीं। इसीलिये खर्परमें भी इन्हीं धातुओंका अवशेष प्राचीन वैद्योंको मिला। वह चाँदी नाग मिश्रित था। उन्होंने उसको नाग-वंगके अनुरूप बतलाया।

यह हो सकता है कि कुछ भाग खनिज ऐसे हों जिनमें यशद भी हो, यथा कैलशम-लारसेनाइट, या डेस्क्लोइज़ाइट आदि इन खनिज किट्टोंसे ताम्रका रंजन हो सकता और ताम्र पित्तलके रूपमें आ सकता है। जिस किसी वैद्यने इसको देखा हो उसने रीतिकृत् नाम दे दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

यशदका ताम्रसे संमिश्रण करनेसे पित्तल बनता है इसका विशेष ज्ञान मध्ययुगका है, प्राचीन नहीं। जब इस बातका विद्वानोंको बोध हुआ और यह भी पता चला कि सिवाय यशदके अन्य किसी धातुके मिश्रणसे ताम्र

पित्तलमें नहीं बदलता तो उन्होंने यह धारणा बनाली कि यशदके खनिज ही खर्पर हैं। वास्तवमें यह भयंकर भूल थी क्योंकि खर्पर हमारे देशकी उपज नहीं थी। इसके उत्पत्ति स्थानको केवल नागार्जुनने ही प्राचीन काल-में जाना था। जभीतो यह प्रमाण दिया कि—

' नागार्जुनेन संदिष्टौ रसश्च रसकस्तथा '

पारा और खर्पर कहाँसे आते हैं? इसको नागार्जुनने ही देखा है।

खनिजोंके स्थान

नाग और चाँदीके खनिज प्रायः काबुल, ईरान फारिश, धोरबन्द स्वेत पर्वत, मर्करा पर्वत, आदि भारत-के पश्चिमीय देशोंमें ही अधिक पाये जाते हैं। इतिहास भी बतलाता है कि पूर्व कालमें इन्हीं प्रान्तोंसे खर्पर आता था। यूनानी पुस्तकोंमें संगवसरी या तूतिया ये किरयानी जिसका उन्होंने हिन्दी नाम खपरिया दिया है उन्होंने किरयान (यरकत) पर्वत व इसके आसपास उत्पत्ति-स्थानोंका उल्लेख अपने ग्रन्थोंमें स्पष्ट किया है। जब हमें इसके सम्बन्धमें ऐतिहासिक साक्षी भी मिलती हो तथा अनेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे विद्यमान खर्परकी रूपाकृति भी मिलती हो तो ऐसी दशामें एक ऐसी वस्तु-का खर्पर सिद्ध करना वैद्य-समाजको भ्रममें डालना है। मैं अबतक इस विषयपर तीन-चार लेख पत्रोंमें प्रका-शित करा चुका हूँ। मैं जिन आधारोंपर उनके विचारों-का खण्डन करता हूँ उनके पास प्रमाण हों तो मेरे लेखोंका प्रतिवाद क्यों न करें।

घायलोंकी सेवा

सिरमें पट्टी बाँधना

कहीं भी चोट लगी हो, या डाक्टरने किसी भी स्थानपर चीरा दिया हो, यह आवश्यक है कि घावको भरनेके लिए तीन काम किये जायँ। पहला काम है घावको अच्छी तरह धोकर और पोंछकर साफ़ करना। दूसरा काम घावपर उचित औषधिका लगाना है। अब तीसरा काम रहा, घावपर जाली, रुई, आदि रखकर पट्टी बाँधना। वैद्यों और कम्पाउण्डरोंको पट्टी बाँधनेमें चतुर होना चाहिए। पट्टी अच्छी बँधी तब कही जायगी जब इसमें दो गुण हों। एक तो पट्टी इस प्रकार ऊट-पटाँग और अधिक कसकर न बँधी हो जिससे रोगीके अन्य अंगोंकी स्वतंत्रतामें बाधा पड़े, या घाव दबे या छिल जाय। दूसरा परमावश्यक गुण यह है कि पट्टी इस प्रकार बाँधी जाय कि अपने स्थानसे खिसक न जाय या खुल न जाय।

पट्टियाँ कैसी हों?

बनी बनाई पट्टियाँ दवाखानोंमें मिलती हैं। घरपर भी साफ़ कपड़ेकी पट्टियाँ तैयार की जा सकती हैं। एक बार व्यवहारमें लाई हुई पट्टी दोबारा तब तक न बाँधो जबतक वह शुद्ध न कर ली गई हो। शुद्ध करनेकी आसान विधि यह है कि साबुनसे धोकर उबलते पानीमें छोड़ो। पानीमें थोड़ासा बोरिक ऐसिड डाल दो। पाँच मिनटमें निकाल लो और निचोड़कर सुखाने फैला दो।

दवाखानोंमें पट्टियोंको 'ओटोक्लेव' नामक यंत्रमें भी रक्खा जाता है? इस यंत्रमें ये पट्टियाँ अति दबाव-की भापके संसर्गमें आती है। यहाँ तापक्रम अधिक होता है, अतः पट्टियोंके विषाणु मर जाते हैं।

पट्टियाँ बेगरी-बुनाईवाले सूती कपड़ोंकी बनाई जाती हैं, न कि गफ़ कपड़ेकी। इन्हें दवाखानोंमें 'एबसोर्बेण्ट बैण्डेज' कहते हैं। ये ठंढी होती हैं और खींचनेपर थोड़ा-बहुत बढ़ सकती हैं। इस लचकदार गुणके कारण पट्टियाँ अच्छी तरह कसकर बाँधी जा सकती हैं।

पट्टियाँ सात गज़ या इससे भी अधिक लम्बाईकी बनाई जाती हैं। इनकी चौड़ाई भिन्न-भिन्न उपयोगोंके हिसाबसे कम-अधिक रक्खी जाती है। साधारणतया ढाई या तीन इंच चौड़ी होती हैं।

पट्टियोंको कसकर पर्त एकपर एक ठीक बिठाते हुए लपेटना चाहिए। लपेटकर बेलन-सा बना लो। यदि पट्टी ठीक न लपेटी जायगी तो बाँधनेमें कठिनाई पड़ेगी। वैद्यों और डाक्टरोंके दवाख़ानोंमें यह काम मशीनसे किया जा सकता है। ऐसी एक मशीनका चित्र हम यहाँ देते हैं।
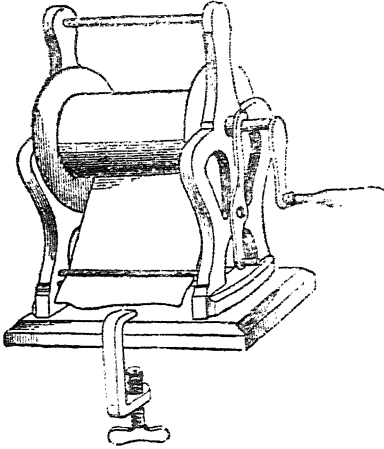
चित्र नं० १

पट्टी लपेटनेकी मशीन

यह मशीन नीचेके पेंच द्वारा किसी मेज़ या बेंचमें कसकर लगाई जा सकती है। हेंडल (मूठ) को घुमाकर पट्टी लपेट सकते हैं।

शरीरके प्रत्येक अंगपर पट्टी बाँधनेकी विधि पृथक्-पृथक् है। हम इस समय सिरमें पट्टी बाँधनेकी कुछ रीतियाँ यहाँ देंगे।

सबसे सरल विधि

चित्र नं० २ में सिरमें बाँधनेकी सबसे सरल विधि दिखाई गई है। माथे और सिरके पीछे हिस्सेको लेते हुए

चित्र नं० २

चित्र नं० ३

दो लपेट लगाओ। कानके पास लपेटमें एक सेफ्टीपिन लगा दो। अब लपेटको ठुड्डीके नीचेसे निकालकर सिर के ऊपर ले आओ। ठुड्डीके नीचेसे एक बार निकालकर एक लपेट और दे दो।

चित्रमें देखने से पता चल जायगा कि पिन लगाकर नीचे ठुड्डीकी ओर पट्टी घुमानेपर पट्टी उलट जाती है। पहले जो हिस्सा नीचे था वह ऊपर आ जाता है।

यदि घाव सिरके ऊपर हो तो इस विधिको उलट देना चाहिये। पहले सिरके ऊपर और ठुड्डीके नीचेसे दो-दो लपेट दो। फिर कानके पास पिन लगाकर, माथे और सिरके पीछे हिस्सेके चारो ओर लपेट देकर पट्टी बाँध दो।

दबाववाली पट्टी

कभी-कभी आवश्यकता होती है कि सरके किसी भागपर दबाव डाला जाय। इसके लिये गोलाकृतिमें पट्टी बाँधी जानी चाहिये। चित्र ३ में यह विधि दिखाई गई है। माथे और शिर-पृष्ठके चारो ओर दो-तीन लपेट साधारण विधिसे दे दो। अब हर एक आगेके लपेटमें पट्टीको उस स्थानपर जहाँ दबाव डालना हो एक बार कुछ नीचे और दूसरी बार कुछ ऊपर खिसका दो। इस प्रकार पाँच-छः लपेट दो।

चित्रमें देखनेसे ऐसा आभास होगा मानो पट्टी प्रत्येक-बार दबावके स्थानपर उलटकर बाँधी गई हो,

पर ऐसा नहीं है। पट्टी एकसी ही बँधी है। ऊपर और नीचे खिसका देनेके कारण ऐसा लग रहा है।

एक और विधि

चित्र सं० ४ में पट्टी लपेटनेकी एक और विधि दिखाई गई है। मुँहपर या सरपर लगे घावोंमें यह
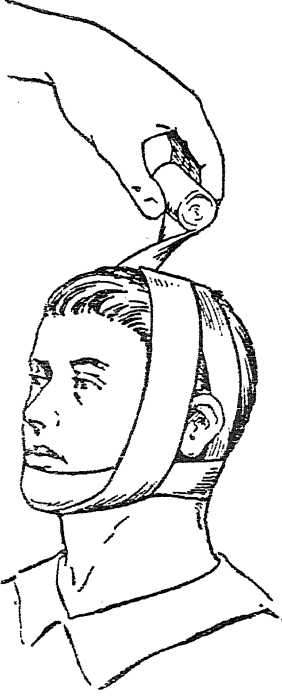
चित्र नं० ४

विधि उपयोगी है। सिरके ऊपरसे आरंभ करो। अब दाहिने कानके आगेसे निकालते हुए ठुड्डीके नीचेसे लपेट कर बायें कानके आगेसे निकालकर सरके ऊपर ले आओ। अब छुट्टल सिरके ऊपर दोहराकर पट्टीको दाहिने कानके पीछेके भागकी ओरसे नीचेकी ओर लाओ। छुट्टल सिरके ऊपर होते हुए शिर-पृष्ठपर लपेट-कर बायें कानके पीछेके भागसे होते हुए ठुड्डीको दबाते हुए गलेके चारो ओर एक चक्कर दे दो। अब पट्टीको फिर सिरके ऊपर शिर-पृष्ठके बाईं ओरसे ले जाओ।

इस प्रकार लपेटको आवश्यकतानुसार दो-तीन बार और दोहराओ।

एलियट-ब्लेककी रीति

चित्र सं० ५ में सिरमें पट्टी बाँधनेकी जो विधि दिखाई गई है वह एलियट-ब्लेककी विधि कही जाती है।

पट्टीका सिरा सिरके ऊपर रक्खो। इसे टेढ़ा करते हुए बायें कानके पीछेसे शिर-पृष्ठके नीचे लाओ और गर्दनके दाहिनी ओरके आधे हिस्सेपर लपेटकर टेढ़ा करते हुए ठुड्डीके नीचेसे निकालो। फिर बायें गालकी ओर पट्टीको टेढ़ा ले जाते हुए ऊपर ले आओ जहाँसे आरंभ किया था। अब एक लपेट पूरा हुआ। दूसरा लपेट भी अब इसी प्रकार दो पर वह अबकी दाहिनी
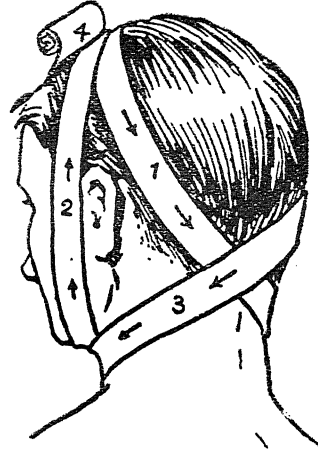
चित्र नं० ५

ओरसे नहीं, गर्दनकी बाईं ओरसे जावे अर्थात् सिरके ऊपरसे आरंभ करो। सिरके पीछे नीचेकी ओर टेढ़ा करते हुए दाहिने कानके पीछेसे पट्टीको निकालो। शिर-पृष्ठके नीचेसे ले जाओ। पहले लपेटको काटते हुए गर्दनके बायें भागपर होकर ठुड्डीके नीचेसे निकालो। यहाँ फिर पहलेवाला लपेट कटेगा। अब दाहिने गालकी ओर होते हुए (दाहिने कानके सामने-से) ऊपर ले जाओ। इस प्रकार दूसरा लपेट भी पूरा हो गया। आवश्यकतानुसार घावके स्थानकी दृष्टिसे लपेट दोहराये भी जा सकते हैं।

टेबलॉयड विधि

यह विधि सरल भी है और विश्वसनीय भी। नीचेके चार चित्रोंमें (६-९) यह दिखाई गई है। इस कामके लिये पट्टीके सिरेपर दो चीरें बाँधनेके लिये होती हैं, और चीरोंके पास पट्टी अधिक चौड़ी होती है फिर बादको मामूली चौड़ी। इस अधिक चौड़े भागको टोपीनुमा भाग कह सकते हैं। यदि यह चौड़ा भाग न भी हो तो कोई बात नहीं, पर हो तो अच्छा ही है।
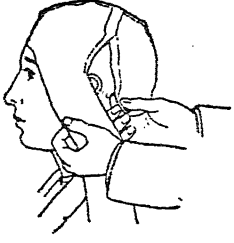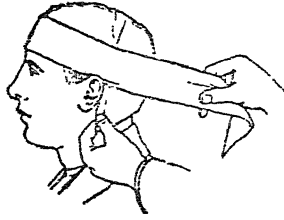
चित्र नं० ६　　चित्र नं० ७

पट्टीका टोपीनुमा भाग सिरपर रक्खो, और शेष पट्टीके बाईं ओरसे निकालो। चीरोंको पकड़कर यथेच्छ कसो। पट्टीको इन चीरोंपर होते हुए (चित्र ७)
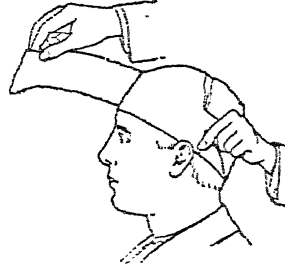
चित्र नं० ८
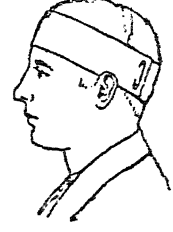
चित्र नं० ९

खूब कसके पीछेकी ओर ले जाओ और घुमाकर माथेपर ले आओ जहाँसे आरंभ किया था (चित्र ८)। चीरोंको ऊपर उठाकर फिर लपेटकर दबा दो। पट्टीमें सेफ्टीपिन लगा दो।

त्रिदोष पद्धति द्वारा निदानकी निस्सारता

[ले० श्री अच्युतानन्द वैद्यराज, बी० ए०]

वायु-प्रकोप ही शूलका एक-मात्र कारण नहीं

किसी व्यक्तिको कोई भी कष्ट उत्पन्न हो रहा हो, उसे किसी वैद्यको दिखाया जाय। वैद्य न तो उस रोगके स्थानको देखता है न शरीर-विज्ञानके आधारपर समझनेकी चेष्टा करता है, न शरीर-धर्म-विज्ञानके आधारपर ही देखता है। उसके पास आयुर्वेद द्वारा निश्चित एक सिद्धान्त होता है। वह क्या ?

' विकारो धातु वैषम्यं, या रोगास्तु दोष वैषम्यं '

धातु या दोषोंकी विषमतासे रोग होता है। वह इसी आधारको लेकर रोगीमें नाड़ी द्वारा, प्रश्न द्वारा, व विद्यमान् लक्षणों द्वारा यह जाननेकी चेष्टा करता है कि कौनसे दोषका कोप हो रहा है।

अभी थोड़े दिनोंका ज़िक्र है, एक स्त्रीके पेटमें यकृत भागकी ओर रह-रहकर शूल उठने लगा। उसका शूल शान्त होनेमें न आया। रोगीके परिवारवाले आयुर्वेद-युक्त थे। उन्होंने कई प्रतिष्ठित वैद्य एकत्रित् कर लिये। परस्पर विचार विनिमय होने लगा। कोई वैद्य कहे इसके पेटमें वायु विगुणित हुआ है अर्थात् वायु उलट गया है; विमार्गी हो रहा है इसलिये उसके कोपसे यह शूल है। कोई दूसरा श्लोक द्वारा समर्थन करता। यथा—

कुपितानांहि दोषाणां शरीरे परिसर्पणात्।
यत्र संगः स्ववैगुण्यात् व्याधि स्तत्रोप जायते॥

और कहा, "न वाते विना शूलः"। तीसरा वैद्य कहने लगा कि है तो यह शूल किन्तु कौनसा शूल है ? इसका नाम धरिये। चौथा बोला—'पक्वाशय गतं शूलं पंक्ति शूल मथोच्यते। यह पक्तिशूल है। दूसरा कहने लगा यह तो अन्नद्रव शूल है क्योंकि इसमें

रुध्वाश्च रस वाहीनां मुखानि रस दूषणम्।
दुष्टंच कुरुते सर्वं अतः सर्वं च दूषयेत्॥
वातात्प्रकोपो जायेत पित्त युक्ताश्चनैपुन।
तैतान्ने च गृग्हन्ति अन्नपान पराङ्मुखाः॥
तत्र शूलं प्रकुर्वन्ति मार्गं रोधाद्रस दुष्टितः।
अन्त द्रवाख्यं शूलं च उच्येत वै भिषग्वरैः।

इन सबोंने बाह्य लक्षणों व नाड़ी आदि द्वारा ही रोग विनिश्चयका अधिक प्रयत्न किया। शूल स्थानको साधारणतया ही देखने व समझनेका प्रयत्न किया। क्योंकि त्रिदोष पद्धतिके आधारपर निदानके लिये शरीर स्थानोंके किस अंगमें शूल है इतना अधिक जाननेकी आवश्यकता ही नहीं होती। दोषकोपका सिद्धान्त व कारण तो उनके समक्ष होत है। तीन दिन चिकित्सा करते करते जब शूल न गया, तो रोगीके एक सम्बन्धीने डाक्टरको दिखानेका परामर्श दिया "और कहा" चिकित्सा तो आप चाहे वैद्योंकी ही कराइये, किन्तु परामर्श तो ले लेने दीजिये।

डाक्टर आया उसने सबसे पूर्व रोगीके शूल स्थानको ठेपन विधि, स्पर्शन विधिसे निश्चित करने लगा। साथ साथ में अन्य रोगोत्पादक कारणोंके सम्बन्धमें पूछता भी जाता था। देख-दाखकर कहने लगा रोगीके पित्ताशयमें अश्मरी है और बड़ी अश्मरी ज्ञात होती है। इससे पित्तस्रावका मार्ग अवरुद्ध हो गया है। इसको लाहौर बड़े अस्पताल ले जावो। शल्य क्रिया द्वारा ही इसका उपचार सम्भव है। और यदि जल्दी न ले जाया गया तो केसके बिगड़ जानेकी सम्भावना है। डाक्टर अपनी फीस लेकर चला गया। वैद्योंने डाक्टरकी बात सुनी "कहने लगे" हमारे ग्रन्थोंमें तो कहीं भी पित्ताश्मरीका वर्णन नहीं मिलता। जो बात ग्रन्थोंमें नहीं, वह हो नहीं सकती। रोग अवश्य असाध्य है। स्रोत अवश्य अवरुद्ध हैं किन्तु वे तो बात पित्तके विगुणित होनेसे हैं। यदि ये अपने सीधे मार्गमें गतिमान् हो जायँ तो स्रोत का मार्ग खुल सकता है वरना मृत्युका भय है।

डाक्टरके कहनेपर रोगीके सम्बन्धी घबराये। एक बड़े डाक्टरसे परामर्श लेनेका विचार हुआ। ३२) फ़ीस देकर बड़ा डाक्टर बुलाया गया उसने भी देखदाखकर पित्तश्मरी निश्चितकी और शल्यकर्मके लिये शीघ्र ले जानेका परामर्श दिया। रोगीको लाहौर ले जाया गया, शल्य क्रिया करनेपर पित्त प्रणालीमें एक तो १॥ माशेकी तथा चनेके बराबर और पथरी निकलीं।

दूसरा उदाहरण—वृक में अश्मरी

इसके कुछ दिन बाद एक रोगीके कुक्षिस्थानपर शूल उठा। शूल भयंकर था। वैद्योंको दिखाया गया। शूल कुक्षिसे ज़रा ऊपर निचली पार्श्विकाओंके पश्चात् भागसे उठकर वस्ति स्थानतक आता था। एक वैद्यने उसे कुक्षि-शूल बताया और प्रमाण दिया।

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः।
तदास्य भोजनं युक्तं दोषस्तब्धं न पच्यते॥
मुहुः श्वसिति चात्यर्थं शूले नाहन्यते मुहुः।
नैवाशने न शयने तिष्ठवा लभने सुखम्॥
कुक्षि शूलमिति ख्यातं आमवात समुद्भवम्।

दूसरा वैद्य कहने लगा, यह कुक्षि-शूल नहीं, यह मूत्र शूल है। देखो वृन्दने लिखा है—

नाभ्यां वंक्षण पार्श्वेषु कुक्षौ समुनवर्त्तते।
मूत्रमावृत्य गृह्णति मूत्रशूलः स उच्यते॥

तीसरा वैद्य कहने लगा, यह शूल तो निम्नलिखित शास्त्रीय लक्षणोंसे मिलता है यथा—

वायु प्रकुपितो यस्य देहिनो रूक्ष भोजनैः।
वातो ख्वान्धितत्कोष्ठं मन्दी कृत्वा तु पावकम्॥
शूलं संजनयेच्छीघ्रं स्रोतः प्रावृत्य मारुतः।
दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षि मादाप जायते॥
पिपासा वर्धते तीव्रा प्रयो मूर्छा च जायते।
उच्चारितोमूत्रिस्तय न शान्ति यधि गच्छति॥

शूलयेतद्विजानीयाद्भिषक् परम दारुणम् ॥

यहाँपर वैद्योंकी परस्पर राय न मिली। रोगीके परिवारवाले डाक्टरको बुला लाये। उसने शूल स्थानको देखकर कह दिया कि यह तो वृकशूल है, और शूलके लक्षणोंसे प्रतीत होता है कि इसके वृकमें पथरी है। इसलिए सबसे पूर्व इसका एक्स-रे कराओ।

एक्स-रे करानेपर वृककोषमें पथरी फँसी हुई दिखाई दी और रोगीको लाहौर मेयो अस्पताल ले गए। शल्य कर्मसे उसके वृक्कोंमें ७ कँकड़ियाँ एग्जलेटस् यौगिककी निकलीं। रोगीका जीवन बच गया। जब उस रोगीके पड़ोसी वैद्योंको पता लगा तो वे परस्पर विचार विनिश्चित करते समय कहने लगे, हमारे ग्रंथोंमें तो कहीं भी वृकमें अश्मरीका होना नहीं लिखा। यह या तो इस नये युगमें आकर होने लगी या डाक्टरोंका कुछ प्रपञ्च होगा। क्योंकि आयुर्वेदके कर्त्ता त्रिकालज्ञ थे, उनसे ऐसी कोई बात अनजानी नहीं रह सकती थी। इसे डाक्टरोंकी माया ही कहना चाहिये।" इस तरहकी बातोंसे मनको सान्त्वना देने लगे।

वातशूल या हर्निया

ये तो बातें कुछ समयकी थीं। अभीकी बात है। एक सनातन-धर्मी वकीलका छोटा भाई एकाएक शूलकी व्यथासे व्यथित हुआ। परिवार आयुर्वेदका भक्त था। वकील साहब स्वयम् भी आयुर्वेदका अध्ययन कर चुके थे। कई वैद्योंसे आपकी घनिष्टता थी। वैद्योंको दिखाया गया। कोई वैद्य तो उसे तूणी प्रतितूणी कहता था, किसीकी सम्मति थी कि वातही विकुपित हो गई है। इसीलिये रह-रहकर शूल उठता है। एक डाक्टरको भी दिखाया गया। साधारण डाक्टर था, मार्फिया का इन्जेक्शन कर दिया। रोग क्या है? या तो उसने समझा नहीं, या अपना उल्लू सीधा करनेके लिये रोग न बताया।

चौथे दिन मुझे भी उन वैद्योंके समक्ष बुलाया गया शूल वङ्क्षण सन्धिसे उठकर ऊपर नाभिकी ओर फैलता था। मल चार दिनसे नहीं उतरा था। शूल रह-रहकर पाँच पाँच चार मिनिटके बाद उठता था। मैंने रोगीके रोग लक्षणोंको देखकर अन्त्र वृद्धि या अन्त्ररोध निश्चित किया। और साथ ही सम्मति दी कि एक किसी योग्य डाक्टरकी सम्मति होनी चाहिये। यह शल्य-कर्मसे ठीक होनेवाला रोगी है। मेरे कहनेपर डाक्टर बुलाया गया। डाक्टरने देखदाखकर निश्चित किया कि इसे हर्निया है और इसे शीघ्र अस्पताल ले जाइये। इसका आपरेशन होगा। उस दिन तो फिर भी चिकित्सामें ही बिताया। अगले दिन मुझे भी साथ शल्य-कर्मार्थ लाहौर ले गये। सुबह ही रोगीको ज्वर होगया। ज्वरको देखकर मेरा हृदय भयभीत था। एक तो मलको रुके तीन दिनसे अधिक हो चुके थे। शास्त्रमें भी इसके बिगड़नेकी अवधि तीन दिनके पश्चात् मानी है 'त्रिदिनाद्वा मरणं भवेत्'। इस समय भी यह सर्ववादि सम्मत है कि तीन दिन मल न उतरे तो वह ऐसे भयंकर विषमें परिणत हो जाता है जिसके प्रभावसे ज्वर और हृदयावसादसे मृत्यु हो जाती है। यही बात हुई। शल्य-कर्म ६ दिन दोपहरके पश्चात् हुआ। उस समयतक ज्वर तो था, किन्तु हृदयावसादके कोई चिह्न न थे। जभी डाक्टरोंने शल्य-कर्म कर डाला। शल्य कर्म हुआ भी ठीक। रोगीकी फँसी अन्त्र निकालकर अपने स्थानपर कर दी गई। वंक्षण-सन्धि को ठीक सी दिया गया। रातको ११ बजे-तक तो रोगीकी हालत ठीक रही। पश्चात् एकाएक हृदयावसाद उत्पन्न हो गया; और अस्पतालके अधिकारियोंने उसकी स्थितिको देखकर बाहर निकाल दिया। उसे वापस लाया गया। सुबह मुझे फिर दिखाया गया। स्थिति बिगड़ चुकी थी। मुझसे पूर्व किसी वैद्यने रेचन औषध दी हुई थी। उससे एक रेचन आया। दूसरे रेचनके समय ही स्थिति बिगड़ गई। जो रेचन उसे उस समय आये इतने दुर्गन्ध-पूर्ण थे कि वहाँ खड़ा होना असह्य था। उस रेचनसे रोगीकी स्थिति बिगड़ गई और कुछ देरमें ही संसारसे चला गया—जिसका मुझे अत्यंत दुःख हुआ।

दुःखका कारण केवल उस लड़केसे स्नेह ही नहीं था। प्रत्युत त्रिदोषपद्धतिकी न पहुँचके कारण वैद्योंने जो उसकी चिकित्सा करनेमें ही समयको नष्ट कर

डाला, इससे अत्यन्त दुःख हुआ। वैद्य अपने ग्रन्थोंको भी तो अच्छी तरह नहीं देखते। निदान-दीपिकामें अन्त्ररोधका निदान बहुत ही स्पष्ट रूपमें दिया है, यथा—

मले शुष्के तथाचाये वद्ध लिप्त मुखेऽथवा।
स्थानान्तर गते चान्त्रे स्थूले सूक्ष्मावगुंठिते॥
अन्त्ररोधो मलस्तम्भो मलानां संचयो भवेत्।
पूर्वरूपं मलस्तम्भ शूला जीर्णानि च क्रुद्:॥
अरुचिर्मल वद्धत्व हिक्का छर्दिस्तथैवच।
अग्निमान्द्यं ज्वरस्तीव्र: पूर्वे पश्चान्द्दुर्भवेत्॥
अन्त्रे शोथोमलस्यापि छर्दि: स विषः स्मृत:।
अन्त्ररोधानिलो ज्ञेय: साध्मानो न रुजं विना॥
मलोत्सर्गोऽन्वकांचा च त्रिदिनाद्वा मरणं भवेत्।

यह अन्त्ररोधका निदान माधौके पश्चात्का किसी वृद्ध वैद्यका दिया हुआ है, किन्तु प्राचीन समयमें वैद्योंने इस रोगको ही अंत्रवृद्धिके नामसे पुकारा है। वहाँ भी स्पष्ट कहा है कि

अन्त्र वृद्धि रसाध्योऽयं वातवृद्धि समाकृति:।

फिर न जाने क्या समझकर रोगीके परिवारवालेको अन्त तक सान्त्वना देते रहे कि चिकित्सा करो।

त्रिदोष पद्धतिसे इन्हीं रोगोंकी नहीं अन्य बीसियों रोगोंके समझनेके सम्बन्धमें कोई सहायता नहीं मिलती, यथा—शीर्ष प्रदाह, शीर्षमण्डल प्रदाह, वृक्क प्रदाह, वृक शोथ, गर्भाशय शोथ, फुफ्फुस प्रदाह, फुफ्फुसाऽऽक्षेप, शीर्षाम्बु, धकच्युति, रक्त-चाप वृद्धि या ह्रास, बेरीबेरी इत्यादि।

बाज़ारकी ठगीका भण्डाफोड़

नकली चीजोंकी रचनाका रहस्य

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

१ सत-ईसवगोल

पेटमें ऐंठन हो, रही हो मरोड़ हो गये हों या आंतोंमें पेटमें जलन हो तो ऐसी स्थितिमें यूनानी हकीम ईसवगोलका लवाव _ सत-ईसबगोलका इस्तेमाल कराते हैं। सत ईसवगोलमें मलको बाँधकर तनि व आँतोंमें फिसलन (पिच्छलना) उत्पन्न करदेनेका गुण है। इसीलिये इसका व्यवहार बहुत बढ़ता जा रहा है। प्राय: आयुर्वेदज्ञ भी इसको काफी उपयोगमें लाते हैं। यह भारी मात्रामें विलायत जाता है इसलिये इसकी माँग बहुत अधिक है।

उत्पत्तिस्थान

ईसवगोल काठियावाड़ गुजरातके तरिपाद ज़िलेमें सिद्धपुर नामक स्थानके आसपास बहुत होता है। वहीं से देशदेशान्तरको जाता है। अमृतसर इसकी बहुत बड़ी बस्ती है। इसकी माँग अधिक होनेके कारण इसकी भूसीमें मिलावट की जाती है।

ईसवगोल या ईसवगोल गारतंग वर्गकी बनस्पति है। इसके बीज़ोंपर श्वेतवर्णकी एक तह चढ़ी हुई होती है जिसको चक्कियों द्वारा दलकर उतार लेते हैं। अब तो इसका छिलका उतारनेकी मशीन भी बन गई है, जिससे दो भागोंमें विभक्त बहुत साफ छिलका उतरता है।

इसके छिलकेकी रचना छोटे छोटे कटे हुये हाथके नाखूनकी आकृतिकी होती है। इन छिलकोंको ही सत-ईसवगोल कहते हैं।

मिलावट

इन छिलकोंका वर्ण भुजिया चावलकी भुनी खील या मुरमुरा वत् होता है। यदि भुजिया चावल या चिड़वाको भूनकर उसको मोटा-मोटा चूर्ण रूप करके ईसवगोलके छिलकेसे मिला दिया जाय तो यह मिल जाता है। इस

समय दुकानदार मनमें ५ सेरसे लेकर १० सेरतक इसी चावलका मुरमुरा कूटकर इसमें मिला देते हैं। यद्यपि यह कोई हानिकर चीज नहीं तथापि रुपये सेर-की चीजमें दो आने सेरकी चीज मिलाकर बेचना ठगी और बदमाशी है।

मिलावटकी परीक्षा

ईसबगोलके सतमें चावलोंकी खीलको कूटकर मिलाया गया है कि नहीं—इसकी परीक्षा आप दो विधियोंसे कर सकते हैं। एकतो देखकर दूसरी पानीमें डालकर।

सत-ईसबगोलकी रचना

जब उसे ईसबगोलसे पृथक् करते हैं, तो इसकी पत्तियाँ कटे नाखूनके छोटे-छोटे टुकड़ों वत्, ज़रा लम्बाईमें नोंकदार, बीचमें कुछ चौड़ी होती हैं। इसका बारीक चूर्ण यद्यपि कोई आकृति नहीं रखता तथापि उसकी मात्रा बहुत कम होती है। जिस सत-ईसबगोलमें चूरा अधिक हो उसे मिलावट समझना चाहिये। दूसरे, सब-से आसान पहिचान है पानीमें डालकर देखना। किसी कटोरीमें पानी डालकर उसमें छिलका या सत-ईसब गोलका कुछ चूर्ण धीरे-धीरे जलपर छिड़क दीजिये। यदि चावलका मुरमुरा होगा वह भीगकर नीचेकी ओर चला जायगा दूसरे गलकर मिलने या घुलने लगेगा। ईसब-गोलका सत धीरे-धीरे पानीमें फूलेगा और फूलता हुआ विलीन होगा। हिलानेपर यह जहाँ होगा वहाँ लवाव-की तरह बन जायगा, चावलोंके मुरमुरेसे ऐसा नहीं बनेगा। मिश्रित ईसबगोल-सतकी परीक्षा जलमें इसे डालकर सूक्ष्मताके साथ देखते रहनेपर हो जाती है। दूसरे, इस सतके रवोंको अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखनेपर दोनोंकी रचनाका विभेद बिलकुल ही स्पष्ट हो जाता है।

२—उसवा

उसबा एक अच्छा रक्त शोधक द्रव्य है। इसीलिए इसका उपयोग वैद्य, डाक्टर तथा यूनानी सब ही करते हैं, और इसकी इतनी माँग है कि कोई हिसाब नहीं।

आता कहाँसे है—जमेका व जर्मनसे आता है। और नकली तने ढाका, जिला २४ परगना और आसामसे आते हैं।

मार्केट—अमृतसर ही एक-मात्र इसका सबसे बड़ा मार्केट है। यहाँ इसकी मूल शाखायें जैसीकी तैसी मट मैली, बड़ी बदशक्ल, लम्बी-लम्बी सुतलियाँ-सी सैकड़ों बोरीमें आती हैं। यहाँ इसे साफ किया जाता, रँगा जाता तथा लम्बी-लम्बी गुच्छियोंमें बाँधा जाता है। यहीं इसमें मिलावट की जाती है।

इसको किस तरह बनाते, रँगते व मिश्रण करते हैं? उसवाके पाँच-पाँच सात-सात फुट लम्बे तने होते हैं। इनकी मोटाई ⅛,¼ इंच तककी होती है अर्थात् बोरा सीनेकी सुतलीसे चौगुने मोटे तन्तु होते हैं जिन-पर छोटे-छोटे और बारीक-बारीक और भी मूलवाले तंतु लगे होते हैं जो प्रायः मूललोप कहाते हैं। इनको प्रथम झाड़कर निकाल दिया जाता है। फिर इसको बड़े कढ़ाहोंमें भिगोकर रख देते हैं। अगले दिन मिट्टी धोकर गेरू या मजीठा रंगसे भरी कढ़ाहीमें इनको डुबो देते हैं। कई दिन इस रंगयुक्त पानीमें पड़े रहनेपर इन तन्तुओंपर भी रंग चढ़ आता है। उस समय इन्हें निकालकर गीले ही लम्बे दो-दो सवा दो-दो फुटके बण्डलोंमें बाँधा जाता है। बँधाई इसी उसवेके तन्तुसे करते हैं।

मिलावट—जिस समय इसको रँगकर बाँधा जाता है उसी समय इसमें मिलावट की जाती है। कई बेलोंके बेलसेन लेकर उन्हें रँग लेते हैं। एक गुन्द्रा जातिका जलज क्षुप ढाकाके, आसामके अनूप देशोंमें जलके किनारे होता है। उसकी जड़ें भी उसवाकी जड़ोंसे मिलती-जुलती होती हैं। इनको रँगकर उसके बीचमें ठोंककर ऊपरसे उसवेके तनेसे बाँध देते हैं। इस तरह केवल एक तह ऊपर उसवेकी लपेटी होती है, बाकी बीचमें अन्य लताओंके तन्तुओं या जड़ोंके तन्तु भरे होते हैं। कई व्यक्ति जो समझदार हैं, वह अन्दरके तन्तुको तोड़-कर चख लेते हैं। स्वादसे फौरन पता लग जाता है कि वह उसवा है कि नहीं। उसवाके तन्तुओंका स्वाद इससे भिन्न होता है इसीलिये चट पहिचाना जाता है। दूसरे,

जैसा रंग उसवाके तन्तुओंपर चढ़ता है ऐसा रंग अन्य तन्तुओंपर नहीं चढ़ता, किन्तु यह नकली तने उस उसवाके तनोंसे ढके रहते हैं इसलिये साधारणत: दिखाई नहीं देते। खोलकर देखनेसे ही इसका पता चल सकता है।

सबसे अच्छा उसवा—सबसे अच्छे उसवाके तने जो जैमेकासे आवे हैं, उसपर तो स्वभावत: बादामी हलका गेरुआ रंग चढ़ा होता है, किन्तु जर्मनसे आनेवाले उसवापर रंग नहीं होता; उसको यहाँ रँगते हैं। यह पहिलेसे घटिया होता है। इन दोनोंके मिश्रणसे ही अधिक उसवेके मुट्ठे जो असलीके नामसे बिकते हैं बाँधे जाते हैं। जर्मनका उसवा उससे सस्ता होता है। किन्तु मिश्रित मालमें तो अन्दर अन्य लकड़ी तथा ऊपर जर्मनवाला उसवा चढ़ा होता है।

इस देशका एक भयानक रोग काला-अज़ार

[ले०—डा० सत्यप्रकाश]

कौन कह सकता है कि यह रोग हमारे देशमें कितना पुराना है, फिर भी यह बात नहीं है कि अति प्राचीन कालसे यह हमारे देशमें वर्त्तमान रहा हो। हमारे देशमें इस रोगके कई नाम प्रचलित हैं जैसे काला-अज़ार अर्थात् काली बीमारी; सिरकारी रोग; साहेबका रोग; बर्धवान-ज्वर; दमदम-ज्वर आदि।

लोगोंका मत है कि यह बीमारी बंगालसे पैदा हुई। रोजर्स साहब ऐसा ही मानते हैं। इस बीमारीका आक्रमण हुआ साहेब लोगोंपर। बंगाल आनेसे पूर्व अँग्रेजोंमें यह बीमारी न थी। सन् १८७० में आसाममें इसका विशेष दौरा हुआ, और तभीसे आधुनिक डाक्टरोंका ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। ब्रह्मपुत्र नदीके तटस्थ देशोंमें यह फैलने लगा। ७ बरसमें १०० मीलके आसपासमें यह फैल गया। इस बीमारीमें ग्रसित लोग एक गाँवसे दूसरे गाँवमें जाते, और उनकी छूतसे उस गाँवमें भी यह रोग फैल जाता। जो गाँव किसी अलग निर्जन स्थानमें थे वे इस रोगसे बचे रहे। यह एक संक्रामक बीमारी थी। जिस गाँवमें यह लगती वहाँ छ: वर्षके लगभग इसका डेरा रहता, और फिर अपने आप ही लुप्त हो जाती। जिस घरमें यह बीमारी आती, वहाँ कई महीने रहती। लोगोंका यह कहना था कि एक बरसतक वह मकान रहने योग्य न रहता। जब कभी इस संक्रामक रोगके आक्रमण हुए, पहाड़ी प्रदेश इससे मुक्त रहे। पहाड़के नीचे तराईके देशवालोंमें ही यह बीमारी फैली। यों समझिये कि ४००० फुटसे ऊँचे स्थान इससे सदा बचे रहे। सन् १९२२ तक ब्रह्मपुत्रके तटपर ऊपर बसे हुए डिब्रूगढ़में यह बीमारी कभी नहीं पायी गई थी, पर सन् १९२३ में यह वहाँतक पहुँच गई।

आजकल तो काला-अज़ारका प्रचार उत्तरी भारतमें भी फैला जा रहा है। आसामसे बंगाल में, बंगालसे बिहार-उड़ीसामें, और वहाँसे लखनऊतक संयुक्त-प्रान्तमें यह बीमारी आ चुकी है। बंगाली व्यक्तियोंको यह बीमारी अधिक होती है, और वे अपने संसर्गमें आनेवाले अन्य व्यक्तियोंमें भी इसकी छूत फैलाने लगे हैं।

काला-अज़ार भयानक बीमारी है। गाँवके लोग इससे बहुत डरते हैं। जिस किसीको यह बीमारी हुई, गाँवमेंसे उसको लोग निकाल देते थे। पहले तो यह भी प्रथा थी कि इस रोगसे ग्रसित व्यक्तिको गाँववाले मादक द्रव्य पिलाकर मूर्च्छित कर देते थे, और बेहोशीकी हालतमें उसे ले जाकर जंगलमें जला आते थे। जिस गाँवमें यह बीमारी होती, उसे छोड़कर भाग जाना तो लोगोंके लिये साधारण बात थी। प्लेग या हैज़ेका जो भय हम लोगोंको रहता है, उसी प्रकारका भय काला-अज़ारसे भी लोगोंको लगता था।

इस रोगका आक्रमण नम जलवायुवाले और जहाँ वर्षा अधिक होती हो ऐसे प्रदेशोंमें विशेष रूपसे होता है। एक आदमीको यह रोग लगा तो धीरे-धीरे उसके सभी संबन्धियोंमें यह रोग फैल जाता है, और घरके घर इससे तबाह हो जाते हैं।

हमारे देशमें ही नहीं, यह रोग चीनमें यांगट्सिके उत्तरमें समुद्र-तटसे लेकर पेकिंग और हानकाउ तक; सूडानके कस्साला और ब्लू-नाइल प्रान्तोंमें, पश्चिमी एबीसीनियामें; केन्यामें, फ्रेंचगिनीमें; ट्यूनिस, ट्रिपोली, मोरक्को, अलजीरिया, सिसिली, इटली, क्रीट, स्पेन, पुर्तगालमें, दूसरी ओर कैसपियनके पूरब, पश्चिम रूस प्रदेशमें, तुर्किस्तानमें, दूर-दूरतक फैला हुआ है।

रोगके लक्षण

काला-अज़ार बहुत दिनोंतक चलने वाला रोग है। अनियमित रूपसे रोगीको ज्वर आता रहता है। इसमें प्लीहा बढ़ जाती है और कभी-कभी यकृत भी। शरीरके इन अंगोंमें और अन्य अंगोंमें भी एक संक्रामक कीटाणु पाया जाता है जिसे 'लाइशमेनिया डोनोवानी' कहते हैं।

यह रोग स्त्री-पुरुष दोनोंको होता है। नये रोगियों-की अपेक्षा पुराने रोगियोंको यह बार-बार हुआ करता है। इस बातमें यह मलेरियासे भिन्न है। यदि किसी-को एक बार मलेरिया हो जाय तो दुबारा उसके शरीर-पर मलेरियाके रोगाणुओंका प्रभाव कम पड़ता है, पर काला-आज़ारको पुराने रोगी ही अधिक प्रिय हैं।

भूमध्यसागरके तटस्थ प्रदेशोंमें तो यह रोग अधिक-तर पाँच माससे अधिक आयुवाले बच्चोंमें ही होता है पर हमारे देशमें तो किसी भी आयुके व्यक्तिको यह रोग हो सकता है।

हट्टे-कट्टे आदमीको छूत लगनेके दस-बारह दिन बाद इस रोगके लक्षण प्रकट होने आरंभ होते हैं। किसी-किसीमें तो यह रोग कई मासतक गुप्त बना रहता है। कभी-कभी तो प्रौढ़ व्यक्तियोंमें यह देखा गया है कि मृत्युसे कुछ पूर्व रोगके कीटाणु विलीन हो जाते हैं। यह कहना चाहिये कि रोगीकी मौतके साथ-साथ रोगाणुओं-की भी मौत आ जाती है।

कभी तो यह बीमारी धीरे-धीरे आरंभ होती है और कभी-कभी अचानक एकदम बढ़ जाती है। जब धीरे-धीरे बढ़ती है तब तो तापमान लेनेसे कुछ परिवर्तन प्रतीत नहीं होता, पर दूसरी हालतमें जोरोंका ज्वर आता है। कभी-कभी वमन भी होता है। बुख़ार बीच-बीचमें छूट जाता है। अधिकतर चौबीस घंटेमें दो बार बिलकुल उतर जाता है, पर आता है बड़े ज़ोरोंसे, (अधिकतर १०२° तक जाता है, पर कभी-कभी १०४° तक पहुँच सकता है।) ज्वर दो से छ: सप्ताहतक रहता है, कभी-कभी और अधिक भी। ज्वरके साथ-साथ प्लीहा और यकृत भी बढ़ने लगते हैं। आरंभमें तो ये ज्वरके घटनेपर घट भी जाते हैं, और बढ़नेपर फिर बढ़ आते हैं। इसके बाद ज्वर उतर जाती है, और रोग अच्छा होता प्रतीत होता है। इसके बाद एक बार फिर ज्वर आता है और प्लीहा बढ़ जाती है। कुनीन देने-से ज्वरमें कोई लाभ नहीं होता; ज्वरका घटना और बढ़ना कई मासतक बना रहता है। बादको आगे चलकर रोगीको १२० डिग्रीके लगभगका ज्वर स्थायी रूपसे बना रहता है। ज्वर जब कभी उतरता है, तो ख़ूब पसीना देकर। अंगोंमें ऐसा दर्द मालूम होता है जैसे गठिया हो गई हो। भूख कम हो जाती है, शरीर दुबला पड़ जाता है और ख़ूनकी कमी हो जाती है। प्लीहा और यकृतकी वृद्धिके समय रोगीकी अजब सूरत निकल आती है। पैरोंमें पानी भरनेके कारण सूजन आ जाती है। शरीरकी त्वचा मटमैली या काली पड़ जाती है। इस रंगके आधारपर ही इस बीमारीका नाम 'काला-अज़ार' पड़ा है। रंगकी यह श्यामता अँग्रेज़ोंके शरीरपर (पैर, हाथ, और उदरपर) विशेष व्यक्त होती है। सिरके बाल सूखेसे खुरखुरे हो जाते हैं, टूटने भी अधिक लगते हैं। मसूड़ोंमें ख़ून आने लगता है। ऐसी अवस्था एक-दो वर्ष रहती है। या तो रोगी इसमें समाप्त हो जाता है या फिर बीमारी अच्छी होने लगती है। अधिक लोगोंको रोगान्तमें पेचिश हो जाती है।

इन सब लक्षणोंके होते हुए भी, रोगीको भूख अच्छी लगती है, जीभ भी साफ़ रहती है, और १०२ डिग्रीके ज्वरमें भी रोगी बिना ज्वरका अनुभव किये हुए ही भले-चंगोंके समान अपना काम करता रहता है। इस बातमें काला-अज़ार मलेरिया या टायफॉइड ज्वरसे भिन्न है।

रुधिरकी परीक्षा करनेपर पता चलता है कि इस बीमारीमें रुधिरमें स्थित श्वेताणुओं (ल्यूकोसाइट) की संख्या बहुत कम हो जाती है। स्वस्थ अवस्थामें प्रति १२५ रक्ताणुओंकी अपेक्षासे एक श्वेताणु होता है, पर काला-अज़ारसे ग्रसित व्यक्तिके रुधिरमें प्रति २००० या ४००० रक्ताणुओंके पीछे १ श्वेताणु होता है।

रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) साधारणतः रोगीका कम होता है। सिस्टोलिक संख्या १०० मिलीमीटर पारेके दबावसे कम ही होती है।

रोगका उपचार

इस रोगकी सबसे अच्छी दवा एण्टीमनी टारट्रेट (सोडियम एण्टीमनी टारट्रेट) समझी जाती है जिसे सूई द्वारा रक्त वाहिनी शिराओंमें प्रविष्ट कराया जाता है। यह इस रोगकी अचूक दवा है, और यदि रोग निराशाजनक होनेसे पूर्व ही यह दे दी जाय तो रोगी अवश्य अच्छा हो जायगा।

काला—अज़ारसे पीड़ित दीन भारतीय कुली

इस देशमें साधारण व्यवहारके लिये टाटरि-एमेटिकका २ प्रतिशत घोल तैयार रखते हैं। पहली ख़ुराक ½ ग्रेनकी होती है, जो धीरे-धीरे बढ़कर अधिकसे अधिक १ ¾ ग्रेन (४·८ घशम घोलका) तककी जा सकती है। अँग्रेज़ लोग इसकी अधिक मात्रा २ ½ ग्रेन तक भी सहनकर सकते हैं। दो-तीन मासतक बराबर हर तीसरे दिन इसकी सुई देनी चाहिये। बच्चों, और बूढ़ोंको दवाकी मात्रा कम ही देनी चाहिये। किसी भी हालतमें प्रति ५ सेर शरीरके बोझपर ½ घ·श·म· घोलसे अधिक न दिया जाय। अतः ६ वर्षके बच्चेके लिये पहली ख़ुराक घोलका १ घ·श·म· है, और आधा आधा घ·श·म· बढ़ाते हुए अधिकसे अधिक ३ घ·श·म· बढ़ाते हुए अधिकसे अधिक ३ घ·श·म· की दी जानी चाहिये।

सुई लगानेका काम चतुर डाक्टरका ही है। वही जान सकता है कि किस स्थानपर और कैसे सुई लगाई जाय।

एण्टीमनी टारट्रेटके स्थानमें और एण्टीमनीके लवण इस रोगमें दिये जाते हैं। एक दवा है स्टिब-एसेटिन (अर्थात् एसीटाइल-पेरा-एमीनो फिनायल स्टिबियेट ऑव् सोडियम) जिसे फ़ॉन हाइडनकी कंपनी बेचती है इसके १½ ग्रेनसे ४½ ग्रेन तककी ख़ुराककी सुई माँस पेशियोंमें लगाई जाती है।

एक दवा है स्टिबोसन जिसे "फ़ॉनहाइडन ४७१" भी कहते हैं। इसकी ख़ुराक १½ ग्रेनसे ३ ग्रेन तक है।

हमारे देशमें सर उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारीने एक दवा निकाली है जिसका नाम 'यूरिया स्टिबेमीन' है जो यूरिया और स्टिबेमीनका संयुक्त यौगिक है। आसाम, बंगालमें इसका बड़ा प्रचार है। पूर्णतया नीरोग करनेके लिये इसके २½ ग्रामसे लेकर ३½ ग्राम (३७ ग्रेनसे लेकर ५२ ग्रेनतक) तक कुल देने होते हैं। अन्य औषधकी अपेक्षा इसकी अधिक मात्रामें रोगी सहन

कर सकता है। अतः अन्य दवाओंसे जहाँ अच्छे होनेमें तीन महीने लगते हैं, वहाँ इससे एक महीनेमें ही आराम मिल जाता है। अधिकतर ११ बार सुइयाँ लगाना काफ़ी होता है।

सन् १९२५-२६ में ६०९४० रोगियोंको यह दवा दी गई और उसमेंसे २४७०० अच्छे हो गये।

यूरिया-स्टिबेमीन बच्चोंको ०·१५ से १·२० ग्रेन तक १-२ घ·श·म· स्त्रवित पानीमें मिलाकर प्रति बार देना चाहिये। १० ग्रेन मात्राके सेवन कर लेनेपर बच्चे अच्छे हो जावेंगे।

कुत्तोंको काला-अज़ार

काला-अज़ारकी बीमारी मनुष्योंको ही नहीं, कुत्तोंको भी होती है। यह कहना अधिक ठीक होगा कि मनुष्योंमें कभी-कभी इस बीमारीकी छूत कुत्तोंसे ही फैलती है। कुछ विद्वान् डाक्टर ऐसे भी हैं जो कुत्ते-वाली बीमारीको मनुष्यवाले काला-अज़ारसे भिन्न समझते हैं। हर जगहकी बीमारियोंमें कुछ भेद है। भूमध्यसागरके तटस्थ प्रदेशोंमें यह बीमारी प्रौढ़ व्यक्तियोंको उतनी ही अधिक होती है जितनी बच्चोंको। पर भारतवर्षमें बच्चेही इससे अधिक ग्रसित पाये जाते हैं। मोरक्कोमें कुत्ते अधिकतर इस रोगसे पीड़ित पाये गये हैं, पर मनुष्योंका पीड़ित होना नहीं सुना गया। अभी हालमें ही कुछ इक्का-दुक्का लोगोंमें यह बीमारी पाई गई है। मार्सलेमें भी कुत्तेही बीमार पड़ते हैं और तेहरानकी भी यही हालत है, वहाँ कुत्तोंको तो काला-अज़ार है पर मनुष्योंको नहीं।

निम्न अंकोंसे कुछ पता चल जायगा कि कुत्ते इस रोगसे कितने ग्रसित रहते हैं --

देश या स्थान	प्रतिशत रोगी
एलजियर्स	७·१
लिसबन	३·७
एथेन्स	१३·७५
माल्टा	१४
रोम	१६
मेसीना	८१

किसी भी आयुके कुत्तोंमें यह रोग हो सकता है, और उनकी यकृत और प्लीहा ख़ूब बढ़ जाती है।

हमारे देशमें कुत्तोंको यह बीमारी नहीं होती है।

काला-अज़ारसे मिलता-जुलता रोग

एक और रोग है जो लगभग वैसेही रोगाणुओंसे फैलता है जैसे काला-अज़ार। इसे हम 'त्वचा-का काला-अज़ार' या 'डेरमल लाइश मेनोइड' कहेंगे। इसमें रोगाणु त्वचामें रहते हैं जिनके कारण शरीरमें दाने उभर आते हैं। सन् १९०९ में सूडानमें टामसन और बालफोरने इसकी ओर ध्यान आकर्षित किया था। भारतमें डा० ब्रह्मचारीने इसे पहले पहल देखा। काला-अज़ारसे पीड़ित रोगियोंको असली रोगसे मुक्त होते समय यह रोग हो जाया करता है। मुँहपर काले-काले धब्बे निकलने आरंभ होते हैं। धीरे-धीरे ये धब्बे समस्त शरीरमें फैल जाते हैं। छोटे धब्बे फिर बड़े होने लगते हैं, और कहीं-कहींपर आधी इंच व्यासके हो जाते हैं। काला-अज़ारसे मुक्त होनेके दो बरस बाद ये धब्बे दानोंमें परिणित होने लगते हैं। ये दानेदार धब्बे श्लेष्मिक कलातक पहुँच जाते हैं, और कोढ़के समान प्रतीत होने लगते हैं। इस रोगकी एक-मात्र दवा एण्टीमनी है, पर कभी-कभी इस दवासे भी कोई असर नहीं होता है।

समालोचना

(ले० —स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

भारतीय वनस्पतियोंपर विलायती डाक्टरोंका अनुभव

संग्रहकर्त्ता व ले० —डाक्टर विश्वपाल शर्मा; अनुवादक—पं० मदनमोहन शर्मा; प्रकाशक –पं० क्षेत्रपाल शर्मा, सुख संचारक कम्पनी मथुरा, आकार २०×३० = १६, पृष्ठ संख्या ४१२, मूल्य २)

पुस्तक ८ भागोंमें विभक्त की गई है। प्रथम भागमें अडूसा, अजवायन आदि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध १०६ वनस्पतियोंका विवरण, अँग्रेज़ी नाम व उनका डाक्टरी क्रमसे कैसे उपयोग किया गया—इन सबकावर्णन है।

दूसरे भागमें बदहज़मी, गर्भपात आदि १४० रोगोंके नाम हिन्दी व अँग्रेज़ीमें देकर उनपर कौन-कौनसी वनस्पतिका कैसे उपयोग किया गया—इसका वर्णन है।

तीसरे भागमें पुन: ८३ ऐसी वनस्पतियों व फल-फूलोंका अँग्रेज़ी नामसहित वर्णन व विशेष उपयोग दिया है, जिनका साधारणतया लोग उपयोग करते ही रहते हैं जैसे केला, ओदागुलाब, आलूबुखारा आदि।

चौथे भागमें फीरनी, अरारोट, साबूदाना आदि कुछ चीज़ोंका वर्णन है जो प्राय: पथ्य व्यवस्थामें डाक्टर वैद्य रोगीको देते हैं।

पंचम भागमें पानीमें डूबे हुएकी चिकित्सा।

षष्टम भागमें सर्व विष उपचार।

सप्तम भागमें सीतलाका आयुर्वैदिक व डाक्टरी निदान और चिकित्सा तथा अष्टम भागमें चिकित्साके लिए आवश्यक उपकरणोंका वर्णन देकर पुस्तक समाप्त की गई है।

इसमें कोई संशय नहीं कि यह पुस्तक अपने ढंगकी पहिली पुस्तक है, और वैद्यही क्या साधारण जनताके भी बड़े कामकी है। वनस्पतियाँ हर जगह कुछ-नकुछ मिल जाती हैं। छोटी-छोटी तक़लीफ़ोंके मौक़ोंपर तो हर एक व्यक्ति इस पुस्तकमें वर्णित विधिसे उन औषधियोंका उपयोग आसानीसे कर सकता है।

वैद्य अबतक आयुर्वैदिक निघण्टुओंमें वर्णिवित त्रिदोष पद्धतिसे संयुक्त औषधियोंके गुणावगुण पढ़ते चले आए हैं और उन्हें प्रत्येक वनस्पतियाँ दोषघ्न ही दिखाई देती हैं, कोई वात-नाशक, कोई पित्त-नाशक, कोई श्लेष्म कारक, कोई विरुद्ध, और कोई दर्पक। किन्तु डाक्टरोंके वनस्पतियोंपर दिये अनुभवमें वैद्योंको दोषोंसे कोई सम्बन्ध नहीं मिलेगा। यहाँ उन्हें इस ग्रन्थमें रोगानुसार सीधे ही रोग और उसके लक्षणोंपर वनस्पतिका क्या प्रभाव होता है, इसका उल्लेख मिलेगा। वास्तवमें यदि पुस्तक त्रिदोष-पद्धति-रहित चिकित्साका बीजारोपण करनेवाली है, और वैद्य इस ढंगके बने किसी निघण्टुको पढ़ें तो अवश्य ही उनकी चिकित्सा-पद्धतिमेंसे त्रिदोष-वादका मूलोच्छेद हो सकता है। मालूम होता है कि डाक्टरोंने जिन-जिन भारतीय वनस्पतियोंका पुस्तकमें उपयोग दिया है, वे प्राय: बाजारसे पंसारियोंके यहाँसे ही ली गई हैं। इसीलिये कई वनस्पतियोंके विवरण व नाममें या तो पंसारियों द्वारा कुछका कुछ दे देनेके कारण भूल हुई है या उसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हुई।

हम एक दो उदाहरण देंगे—पृष्ठ ६ पर अतीस (Atis) का विवरण देखिये "अतीस भारतीय बाजारोंमें ऐसी गठीली जड़ोंके रूपमें मिलता है जो नीचेको नुकीली होती है और डेढ़ या दो इंच लम्बी और आध इंच या उससे कम मोटी होती है, ऊपरसे इसका रंग भूरा होता है,

जड़ें झुर्रीदार होती हैं और उनमें छोटी-छोटी शाखाओंके अंकुरसे निकलते हैं। ये सुगमतासे भूनी जा सकती हैं, भीतरसे ये जड़ें सफेद रंगकी होती हैं, इनमें किसी तरहकी गन्ध नहीं होती, आसानीसे पीसी जा सकती है, और स्वाद इनका एकदम चरपरा होता है। खटाई किसी तरहकी नहीं होती, और स्वाद ही से इसकी परीक्षा की जा सकती है, क्योंकि बाजारवाले कभी-कभी इसके स्थानपर और चीज भी दे दिया करते हैं। ये जड़ें यदि बीचसे तोड़नेमें लसदार या लचीली न हों और स्वादमें चरपरी न हों तो वह अतीस नहीं वरन् उसके स्थानपर और ही कुछ है। फिर जीभ-पर रखनेसे यदि झनझनाहट और एक खास तरहकी सनसनी न उठे जिससे कि जीभ सुन्न हो जाय तो भी इसे अतीस मानकर काममें नहीं लाना चाहिये।"

उक्त विवरणमें जो अतीस चरपरा युक्त लसदार और लचीली बतलाई गई है, ये तीनों बातें अतीसमें नहीं होतीं। अतीसखानेमें कुनैन जैसी कड़वी, टूटनेमें विना लहेसके बिना लचक खाये ही टूट जाती है। फिर अतीस जबानपर रखनेसे कोई झनझनाहट नहीं देती, न जिह्वा ही सुन्न होती है।

हाँ इसी वर्गका मीठा तेलिया या शृंगिक विष अवश्य, है जो जीभपर रखनेसे सनसनाहट देता है तथा जीभ को सुन्न कर देता है। विषाक्त वनस्पतिमें यह गुण होता है किन्तु अतीस निर्विष है।

दूसरा उदाहरण इससे आगे अनन्तमूलको ही लीजिये अनन्तमूलको अँग्रेजीमें देसी अपीका कोपना नाम दिया है। प्रथम तो अनन्तमूलका अँग्रेजी नाम ही गलत है। इसका लैटिन नाम Hemidesmus Indicn है। अंग्रेजी नाम नहीं मिलता। दूसरे वर्णनमें डा० विश्वपालजी ने लिखा है, "इसकी जड़ें और पत्तियाँ दोनों वमन लानेवाली होती हैं। इसकी जड़ें मोटी ऐंठी हुई-सी पीले रंगकी बाजारोंमें मिलती हैं, जो कड़वी और मितली पैदा करनेवाली होती हैं। वमनकारी और अतिसार नाशक तो यह प्रसिद्ध है ही।" अनन्त मूलकी जड़ें न तो मोटी होती हैं न पीले रंगको प्रत्युत पतली-पतली हल्के मजीठिया रंगकी होती हैं। दूसरे यह वामक भी नहीं है। हम अपनी ओरसे इसपर कुछ न लिखकर डाक्टर देसाई-के औषध संग्रहसे कुछ गुण धर्म देते हैं। अनन्तमूल मूत्र विरेचक, स्वेदजनक, क्षुधावर्द्धक, उत्तेजक, बलवर्द्धक त्वचादोष नाशक और रक्तशोधक है। यह मूत्र अधिक लाता है, साधारण स्वेद जनक है। मेटाबोलिज्म व केटा-बोलिज्म नामक शरीरकी क्षयपूर्तिप्रद क्रियाओंको इससे काफी सहायता पहुँचती है। क्षुधा बढ़ानेका धर्म मध्यम है। अच्छा सुगन्धपूर्ण द्रव्य है। उपयोग मूलका करते हैं।

मालूम नहीं डाक्टर टी० जी० वुडवर्ड-को पंसा-रियोंसे अनन्तमूलके नामपर कौनसी चीज मिली जिसका गुणावगुण उन्होंने अन्तमूलके नामसे किया। अनन्तमूल वामक नहीं है, न फेफड़ोंकी बीमारीमें काम आती है। वह तो प्रसिद्ध रक्त-शोधक है। इसी तरह अनेक चीजोंके विवरण व नाममें—मैं जहाँतक समझता हूँ—पन्सारियोंकी कृपासे भूल हुई दिखाई देती है। पुस्तककी भाषा भी शिथिल है। तथापि पुस्तक उपादेय है। अनेक जानकारीकी उपयोगी बातें दी गई हैं। वैद्योंके पढ़ने योग्य है।

(२) सिद्धौषध मणिमाला—लेखक—महामहो-पाध्याय रसायनशास्त्री भागीरथ स्वामी आयुर्वेदा-चार्य। प्रकाशक—वैद्य पं० नथमलगोस्वामी श्री गोस्वामी, आयुर्वेदभवन, न० ७३, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता। साइज २०×३०/१६, पृष्ठ संख्या ३०७, मूल्य २)

संस्कृतमें 'सिद्धभैषज्य- मणिमाला' नामकी एक उपयोगी पुस्तक श्री कृष्णराम भट्टजीने लिखी है, जिसमें उन्होंने अपने जीवनके समस्त उपयोगोंका संग्रह किया है। भट्टजी संस्कृतके उद्भट पंडित और काव्यके मर्मज्ञ थे।

उनकी पुस्तक रचना करते समय क्लिष्ट हो गई। दूसरे, कितनी ही औषधियोंके नाम उन्होंने स्वयम् गढ़कर अपने उस ग्रन्थमें दे दिये उन श्लोकोंको पढ़ जानेपर-वे किस तरह बनते हैं—मूल पुस्तकसे कोई पता नहीं चलता। इन बातोंको उनके सम्प्रदायवाले या शिष्य बता सकते हैं। इसी त्रुटिको देखते हुये रसायन शास्त्री स्वामी भागीरथजीने उक्त ग्रन्थके क्लिष्ट अंशोंकी गुत्थी को सुलझानेके अर्थ सिद्धौषध मणिमालाकी रचनाकी है और आपने कुछ श्लोकोंको यथास्थान रखकर उसका खूब खुलासा किया है। यही नहीं जैसा पुस्तकका आपने नाम दिया है उसको सार्थक बनानेके लिये आपने अनुभूत अनेक योग भी यथास्थान दिये हैं।

पुस्तकका क्रम आपने वही रक्खा है जो आयुर्वेद ग्रन्थोंमें रोगोंका दिया गया है। अर्थात् रोग क्रमानुसार औषधियोंका क्रम दिया है। इसमें कोई संशय नहीं कि पुस्तकमें दिये कितने ही योग, कितनी ही बातें ऐसी हैं जो वैद्योंके बड़े कामकी हैं। किन्तु, पुस्तककी भाषा सचमुच रसायन-शास्त्रकी भाषा बन गई है जिसे स्वामीजी कलकत्तामें रहते हुये भागीरथ प्रयत्न करके भी हिन्दी-सागरमें न मिला सके। हम उसके कुछ उदाहरण देंगे—

घोरातिसारहर—वटांकुर ३ पिचु, मिश्री तीन पिचुका कल्क कपड़ेमें निबद्ध जलरहित दधिमें मिलाकर खानेसे घोर रक्तातिसार, आमातिसार मिटता है। पिचु क्या प्रचलित शब्द है ! वृक्षाम्ल चटनी—वृक्षाम्ल फल, इमली १ पल, मिश्री ६ पल, लवण २ पल, अजाजी (अजवायन) ३ पिचु खानेसे संग्रहणी-हर है। वृक्षाम्ल फल और इमली लिखनेसे क्या मतलब ?

हरीतिक्यादि चूर्ण—"हरीतकी, आमलक, विषमुष्टि ७ नग ६ गद्याणतला। गोधनमें मर्दन कर चूर्ण करे। यह साप्ताहिक है।" इस लेखन शैलीको कितने समझ सके होंगे। न कोई मात्रा न मर्दन विधान। ७ नग ६ गद्याणका क्या अर्थ बना ? गोधनसे दूध बना, दधि बना या गोमूत्र ? यह साप्ताहिक है। क्या पत्र ? या खानेकी मात्रा।

और देखिये; पोदीनादि पाचक पानीय—पोदीना स्वरस, अदरक स्वरस, बिम्फ स्वरस, घृतकुमारी स्वरस, लवणकाला, सोंठ, मिर्च, पीपल डालकर अर्क बना लेवै। यहाँ अर्कसे मतलब क्या अग्निपर चढ़ाकर अर्क खींचना या फिर सोंठ आदि इसी तरह डालना चाहिये या कूटकर। मात्रा कोई नहीं जितना जीमें आवे पीओ।

मयूरपुच्छ तैल —"मयूरकी पूँछसे निकाला हुआ तेल खञ्जबात (वापटा) अङ्गकी ऐंठन हर है।" क्या मयूरकी पूँछसे भी तेल निकला करता है ? पूँछके चँदोवे न हुए, सरसोंकी धानी हुई। फिर निकलेगा किस तरह, इसको स्वामीजी ने पेटमें ही धर लिया।

शितजीरकपानम् —शितिजीरक (कृष्णजीरक) १ गद्याण शरीजीर (लामज्जक शरीजीरकम्) १ गद्याण जल चतुर्गुण शेष चतुर्थांश रखकर कपड़ेसे-छान कर आधाकर्ष चीनी डाले। दो-तीन बारके पीनेसे कोठ उदर्द शान्त होता है। प्रथम तो शितजीरकका अर्थ आप ने कालाजीरा ब्रेकटमें रखकर किया, फिर शरीजीर ऐसा शब्द रक्खा है जिसके ब्रेकटमें दिये लामज्जक शरीजीरकम् का अर्थ हम भी नहीं समझ सके। फिर तीन बारमें पीना कितना, कितना? कोई पता नहीं।

और देखिये, गर्दभ विट् स्वेदप्रताञ्जकम्—"कुछ गोली सूखी है पीछे जुती, गधेकी विष्टा एक गड्ढेमें गेर आग लगा देवै।" ऊपरकी पंक्तिका अर्थ तो आप ही पढ़ने वालेके सिरहाने बैठकर समझा सकते हैं।

और देखिये, दन्त-पवन भक्षण—सर्वदा वाय दष्ट्रया से दन्त पवनका भक्षण करे। इससे नेत्रोंके रोग मिटते हैं। निस्सन्देह परीक्षा करके देखना।" परीक्षा करके तो तभी वह देखेगा जब आप उसके पास बैठकर बतलावेंगे वरना आपकी इस ज्ञान गोष्ठीको कौन समझेगा ?

कहांतक बताऊँ, इस तरहकी अटपटी भाषासे तो सारी पुस्तक ही भरी पड़ी है। पुस्तक लिखनेके कारणमें आपने लिखा है 'पेटेण्ट शब्दोंकी अधिकता और मनमानी कल्पनायुक्त शब्दोंकी विशेषताके कारण बिना ग्रन्थ-कर्त्ताके साधारण विद्वानोंके समझमें नहीं आती।' पर

आपकी यह पुस्तक आपके पास बैठे बिना क्या कोई समझ लेगा? तुहके समयकी भाषामें आपने सैकड़ों ऐसे योग लिखे हैं जिन्हें समझनेके लिये कोई आपका शिष्य इस सिद्ध मणिमालाका खुलासा लिखेगा, तभी वे समझमें आ सकते हैं, इस तरह नहीं।

इसमें कोई संशय नहीं कि इस पुस्तकमें दिये योग इतने छोटे-छोटे और सरल हैं जो यदि अनुभूत हों, तो उनसे वैद्य महान् लाभ उठा सकते हैं। बहुत-सी उपयोगी बातें भी बताई हैं जो शायद बहुत कम वैद्योंको मालूम हैं। इन्हीं कारणोंसे पुस्तककी उपादेयता बढ़ गई है।

आसवारिष्ट-संग्रह

तीसरा संस्करण। लेखक—कविराज जगदीशप्रसाद गर्ग, अध्यक्ष—भारत आयुर्वेदिक औषधालय, बिजनौर; साइज २२ × २९, पृष्ठ संख्या १२६, मूल्य १।)

इस पुस्तकमें आपने जितने भी आयुर्वेदिक आसव अरिष्ट हैं सबोंका संग्रह एक स्थानपर ही कर दिया है।

आसव अरिष्टोंकी निर्माण-विधिको कविराजजीके गुरु आयुर्वेदाचार्य लाला हरदयालजी वैद्यवाचस्पति, अध्यापक डी० ए० वी० आयुर्वेदिक कॉलेज, ने लिखा है। इस पुस्तकमें दी हुई निर्माण-विधि कहाँतक ठीक है इसका उत्तर तो आसव-विज्ञानके दूसरे संस्करणमें दिया है, जो छप गई है। किन्तु, आपका यह संग्रह हर तरहसे उपादेय है। आसवारिष्ट देखनेके लिये किसी ग्रन्थकी आवश्यकता नहीं। मूल पाठके साथ ही आपने उसपर भाषा-टीका भी कर दी है जो समयके योग्य है। मान-तोलका झगड़ा भी आपने बहुत कुछ ठीक किया है। किन्तु, पहिले दूसरे संस्करणसे इस तीसरे संस्करणमें सिवाय पुस्तक-साइज बदलनेके और कुछ परिवर्तन व परिवर्द्धन करनेकी आपको शायद आवश्यकता नहीं दिखाई दी।

रक्त-चाप या ब्लड-प्रेशर

तथा

रक्त-संचारके अंगोंकी क्रियाएँ

[ले०—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० एस-सी०]

शरीरके अन्दर हृदय और रक्त-वाहिनी रुधिरके स्थान हैं। मुख्यत: हृदय-पेशियोंके संकोचसे (सिकुड़नेसे) ही रक्त निरन्तर शरीरमें घूमा करता है। लेकिन परिक्रमा-चक्रके विभिन्न स्थानोंमें इन नलियोंके मुँह, जिनमें होकर खून बहता है, छोटे-बड़े होते हैं; और बड़ी नलियोंकी अपेक्षा पतली केशिकाओंमें खूनके बहनेमें अधिक रुकावट पड़ती है। अतएव रक्त-संचारके मार्ग जगह-व-जगह छोटे-बड़े होनेके कारण रुधिर एक ही गतिसे सारे शरीरमें नहीं घूमता; और वाहिनीकी शाखाओं-प्रशाखाओंमें रक्त-चाप और गति आदि भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न होते हैं। इस भिन्नताका एक कारण तो रक्त-संस्थानके अपरिवर्तनशील भागोंपर निर्भर है और दूसरा जिस सजीव-पदार्थका यह रक्त-संस्थान बना है उसके गुणोंका निरन्तर बदलते रहना है।

रक्त-प्रवाहकी गति तथा दबाव

यदि सूक्ष्मदर्शक द्वारा किसी जीवित जन्तुकी पतली खालकी जगहको देखा जाय तो आसानीसे रक्त-प्रवाहकी कुछ महत्त्वपूर्ण बातोंका पता लगेगा। अगर यह जगह ठीक चुनी गई हो तो एक साथ ही धमनियाँ, केशिकाएँ और शिराएँ दीख जायँगी। तब मालूम होगा कि धमनियोंमें रक्त-प्रवाह तीव्र-गतिसे तथा कुछ रुक-रुक-

कर होता है— अर्थात् हृदयकी प्रत्येक धड़कनपर गतिमें यकायक वेगान्तर और एक झटका-सा (धमनी-स्पन्दन) होता है। इसके प्रत्युत् केशिकाओंमें प्रवाह अपेक्षाकृत बहुत मन्द गतिसे होता है; और वास्तवमें धमनीकी तीव्र धारासे एकदम केशिकाकी धीमी धारामें परिवर्तन हो जाता है। केशिकाके बहावमें साधारणतया हृदयकी धड़कनके अनुकूल स्पन्दन नहीं होता लेकिन यह प्रवाह थोड़ा-बहुत अनियमित होता है—अर्थात् कुछ केशिकाओंमें प्रवाह कभी-कभी बंद हो जाता है और फिर यह स्पष्ट और नियमित हो जाता है। शिराओंमें प्रवाह-गति काफी बढ़ जाती है और जितनी बड़ी शिरा होती है उतने ही वेगसे इसमें खून बहता है। साधारणतया इस प्रवाहमें स्पन्दनके और रुक-रुककर चलनेके कोई लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते। गति बिल्कुल एकसी रहती है।

धमनियों और केशिकाओं दोनोंमें यह बात दीखेगी कि वाहिनीके बीचोबीच रक्त-कणोंका एक ठोस-सा तार तथा कणों और अन्दरकी दीवारके बीच रक्त-वारिकी एक तह है जिसमें सामान्य दशाओंमें श्वेताणु भी सम्मिलित रहते हैं। रक्त-कणोंके बीचमें इकट्ठा हो जानेसे एक अक्षीय धारा-सी बन जाती है और रक्तवारिकी स्वच्छ तहका 'अक्रिय स्तर'। भौतिक सिद्धांतों द्वारा इस घटनाका स्पष्टीकरण किया जा सकता है। जब खून छोटी वाहिनी-में वेगपूर्वक बहता है तो दीवारोंके पासकी तहें संसक्ति (चिपकाव) के कारण धीमी पड़ जाती हैं जिससे सबसे तीव्र गति वाहिनीके बीचमें अर्थात् इसके अक्षके सहारे होती है; और रक्त-कण रक्तवारिसे अधिक भारी होनेके कारण धाराके इस तीव्र भागमें आ पड़ते हैं। प्रयोगों द्वारा यह दिखलाया जा सकता है कि यदि किसी नलीमें तीव्र गतिसे बहते हुए द्रवमें भिन्न-भिन्न घनत्वके कण हों तो भारी कण बीच-धारामें और हल्के कण नलीके छोर पर (यानी दीवारके सहारे) होंगे। इस नियमके अनु-सार श्वेताणु जो रक्त-कणोंसे हल्के होते हैं अक्रिय स्तरमें मिलेंगे।

यह तो बतलाया ही जा चुका है कि रक्त-धाराकी गति स्थान-स्थानपर भिन्न है। प्रयोगों द्वारा बरटॉन ऑपिज़ने निम्नलिखित आँकड़े प्राप्त किये हैं जो प्रति १०० ग्राम अंगमें प्रति मिनट बहते हुए रक्तकी मात्रा सी० सी० में देते हैं (लगभग १०० सी० सी० पानीका वज़न १ सेर होगा)—

कंकालकी पेशी	१२	प्लीहा	५८
शिर	२०	यकृत (शिराओंका)	५६
आमाशय	२१	यकृत (कुल)	८४
यकृत (धमिनियोंका)	२५	मस्तिष्क	१३६
		वृक्क	१५०
अंत्र	३१	चुल्लि ग्रन्थि	५६०

धमनियों, केशिकाओं व शिराओंमें रुधिर प्रवाहकी औसत गति

प्रयोग द्वारा रक्त-गति नापनेपर घोड़ेकी शिरोधीया धमनीमें ०·३३ गज़ प्रति सेकिण्डकी गति निकली। जैसे और बड़ी धमनियोंमें वैसे शिरोधीया धमनीमें भी प्रवाह एकसा नहीं होता। प्रत्येक हृत्संकोचपर धमनी-स्पन्दन होता है और रुधिरकी गति काफ़ी मात्रामें बढ़ जाती है। वस्तुत: घोड़ेकी शिरोधीया धमनीमें हृत्संकोचके समय रुधिरकी गति बढ़कर ०·५७ गज़ और हृदय-प्रसार-के समय घटकर केवल ०·१६ गज़ प्रति सेकिण्ड रह जाती है। साथ-साथ यह भी मालूम हुआ है कि हृत्संकोच और हृप्रसारके समयकी गतियोंका अन्तर ज्यों-ज्यों धमनियाँ छोटी होती जाती हैं वह भी कम होता जाता है और, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, केशिकाओंमें यह अन्तर बिल्कुल ही नहीं होता क्योंकि उनमें हृदयकी धड़कनसे पैदा हुआ स्पन्दन नहीं होता। अतएव जितनी छोटी धमनी होगी उतनाही एकसार इसमें रुधिरका प्रवाह होगा।

बड़ी शिराओंमें प्रवाह लगभग समान होता है और ज्यों-ज्यों हृदयके निकट आते हैं त्यों-त्यों यह बढ़ता जाता है यद्यपि हृदयके निकट बड़ी शिराओंमें उसी स्थानकी बड़ी धमनियोंकी अपेक्षा प्रवाह-गति कम होती है क्योंकि शिराओंका कुल क्षेत्र धमनियोंके क्षेत्रसे बड़ा है।

केशिकाओंमें गति अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। सूक्ष्म-दर्शक द्वारा किये गये प्रयोगोंसे मनुष्यकी केशिकाओंमें गति ·०२ और ·०४ इंच प्रति सेकिंडके बीचमें निकलती है।

धमनियोंमें औसत गति ज्यों-ज्यों हम हृदयसे दूर चलते जाते हैं (यानी धमनियाँ छोटी होती जाती हैं) त्यों-त्यों वह कम होती जाती है और जब धमनियोंकी केशिकाएँ हो जाती हैं तो गति न्यूनतम हो जाती है। यही बात शिराओंके बारेमें है।

गतिमें भिन्नताके कारण

मुख्यत: नलियोंके छोटे-बड़े होनेसे गति बढ़ती-घटती है। संस्थानीय परिभ्रमणमें महाधमनीकी शाखाएँ होती जाती हैं और प्रत्येक नई शाखा मूलधमनी-से छोटी होती जाती है यहाँतक कि हम केशिकाओं-तक आ पहुँचते हैं। किन्तु प्रत्येक बार जब दो प्रशाखाएँ होती हैं तो दोनों शाखाओंकी मिलाकर मोटाई मूल शाखासे अधिक होती है। अत: रुधिर जैसे केशिकाओं-की ओर जाता है तो एक निरन्तर बढ़ते हुए क्षेत्रमें होकर बहता है और जब शिराओंमें हो वापिस आता है तो निरन्तर घटते हुए क्षेत्रमें बहता हृदयकी ओर आता है। वीरोर्टका अनुमान है कि सब केशिकाओंका क्षेत्र मिला-कर महाधमनीके क्षेत्रसे ८०० गुना बड़ा है। यदि रक्त-संचार समान रूपसे हो रहा हो तो किसी परिमित समय-से रुधिरकी एक ही मात्रा संस्थानके किसी भी भागमें होकर बहनी चाहिए चाहे वहाँ यह पतला हो या मोटा—अर्थात् महाधमनी या महाशिराके किसी एक विन्दुपर प्रति मिनट उतना ही रुधिर निकलना चाहिए जितना कि केशिकाओंके क्षेत्रमें होकर बहता है। अत: जहाँ कहीं क्षेत्र विस्तृत हो जाता है गति कम हो जाती है।

हृदयकी धड़कन व वाहिनियोंके परिमाणका गतिपर प्रभाव

क्षेत्रके बदलनेके अलावा जब भी रुधिर-प्रवाहकी परि-स्थितियोंमें परिवर्तन होगा तो गतिका परिमाण भी बदल जाएगा। बड़ी धमनियोंमें, जैसा कहा जा चुका है, हृदयकी धड़कनसे रुधिरकी गतिमें कितने ही घटाव-बढ़ाव होते हैं। लेकिन यदि हम केवल औसत गतिपर ही ध्यान दें तो कहा जा सकता है कि सारे संस्थानमें यह हृदय-धड़-कनकी तीव्रता और उसके वेगपर अवलम्बित रहेगी या छोटी धमनियोंके परिमाण-परिवर्तनपर और धमनियोंमें फल-स्वरूप रक्त-चापके परिवर्तनपर।

रक्त-संचारमें पूरी परिक्रमाका समय

वास्तवमें यह प्रश्न संदेहास्पद है। इस बातका निश्चित उत्तर दें। कि कितने समयमें रक्त घूम-फिरकर अपने पूर्व स्थानपर आ जायगा कुछ कठिन है क्योंकि यह तो परिक्रमाके मार्गसे निर्धारित होगा—आया वह बड़ा है या छोटा। हाँ, मोटे प्रयोगों द्वारा पता चला है कि हृदयकी करीब २८ धड़कनोंमें एक स्थानपर घुसा हुआ विष समस्त शरीरमें फैल जायगा।

माँसल संस्थानके विभिन्न भागोंमें रुधिर भिन्न-भिन्न चाप पर होता है—इसे लोग बहुत पहलेसे जानते हैं और इसे आसानीसे देख भी सकते हैं। जब एक धमनी कटती है तो रुधिरकी एक तीव्र धारा निकलती है और हृदयकी धड़कनके अनुकूल इसमें झटके-से होते हैं। इसके प्रतिकूल जब एक बड़ी शिरा कटती है तो यद्यपि रक्त तेज़ीसे बहता है लेकिन उसमें इतनी शक्ति नहीं होती। प्रयोग द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि घोड़ेकी जंघाओंकी धमनीका रुधिर ८½ फुट ऊँचा रुधिरका खम्भा अपने चापसे थाम सकता है और शिराका रुधिर केवल १ फुट ऊँचा।

हृत्संकोच (सिस्टोलिक), हृत्प्रसार (डायस्टोलिक) और औसत धमनियोंका रक्त-चाप

यदि हम धमनीके रक्त-चापका कुछ समयतकका माप-चिह्न लें तो हमें एक बहुत छोटी-छोटी लहरोंकी टेढ़ी रेखा मिलेगी जो कि हृदयकी धड़कनके कारण हुए चापके घटाव-बढ़ावको सूचित करेगी। हृत्संकोचसे जो अधिक-तम चाप होता है और जो स्पन्दन-तरंगके उच्चतम

विन्दुपर होता है उसे हृत्संकोच-चाप कहेंगे और जो चाप हृदय-प्रसारके कारण न्यूनतम होता है उसे हृत्प्रसार-चाप। मनुष्यकी कूर्परनमनी धमनीमें हृत्संकोच-चाप करीब ११० से ११६ मि०मी० तक होता है और हृत्प्रसार-चाप ६५ से ७५ मि०मी० तक। (वायुका चाप करीब ७६० मि०मी० होता है अर्थात् वायु चारों ओरसे हमारे शरीरपर प्रति वर्ग मि०मी० उतना दबाव डाल रही है जितना कि १ वर्ग सें०मी० के आधारपर ७६० मि०मी० ऊँचा पारेका रेशा १ वर्ग सें०मी० के क्षेत्रपर डालता है यानी लगभग् सेरभर बोझ प्रति वर्ग सें० मी० पर।) इन दोनों चापोंके अन्तरको हम स्पन्दन-चाप कहेंगे।

उपरोक्त आँकड़ोंसे स्पष्ट है कि स्पन्दन-चाप औसतन ४५ मि०मी० (पारा) है। प्रत्येक हृत्संकोचपर यह धमनी ४५ मि० मी० ऊँचे पारेके दबावसे फूलती है। धमनियों-की शाखा-प्रशाखाओंकी ओर जैसे हम आगे बढ़ते जाते हैं यह स्पन्दन-चाप कम होता जाता है और प्रत्येक हृदय की धड़कनके कारण हुआ रक्त-चापका कम्पन (घटाव-बढ़ाव) कम होता जाता है यहाँतक कि छोटी धमनियों तथा केशिकाओं और शिराओंमें स्पन्दन-तरंग बिल्कुल नहीं होती और हृत्संकोच-चाप तथा हृत्प्रसार-चापमें कोई अन्तर नहीं होता। रक्त वाहिनियोंके चापसे तात्पर्य औसत चापसे होता है। शरीर-विज्ञान संबंधी निरीक्षणमें किसी निश्चित कालतकके औसत चापको सूक्ष्मतासे नहीं नापा जाता— केवल उच्चतम चाप और न्यूनतम चापके जोड़का आधा ले लेते हैं।

मनुष्यकी बड़ी धमनियोंके रक्त-चापकी निर्णय-विधि

कॉर्टकौफने १९०५ में स्टेदसकोप द्वारा व कान द्वारा फेफड़ोंकी दशा जाननेकी विधिका प्रवर्तन कर इन निर्णय-विधियोंको सुधार दिया जिससे हृत्संकोच-चाप और हृत्प्रसार-चाप सुविधापूर्वक जाने जा सकते हैं।

इस विधिमें कूर्परसे ऊपरकी बाहुके चारों ओर हवा-वाले थैले समेत (आगे चित्र देखो) कफ (अ) लगाया जाता है और लट्टू द्वारा या पम्प द्वारा इस थैलेका चाप बढ़ाया जाता है यहाँतक कि कूर्परनमनी धमनी बिल्कुल लुप्त हो जाती है। धमनीकी जगहपर अब एक स्टेदसकोप कफके अधो-भागके नीचे ही लगाया जाता है; और एक सुईके वाल्व द्वारा धमनीपरका चाप धीरे-धीरे गिरने दिया जाता है। जिस क्षण चाप इतना गिर जायगा कि स्पन्दन-तरंग संकुचित क्षेत्रमें होकर निकल ही जायेगी तो स्टेदसकोप-में एक स्पष्ट आवाज सुनाई देगी। पारेके दबावमापक-को पढ़कर हृत्संकोच-चाप मालूम हो जायगा। जैसे-जैसे बाहरी दबाव घटता जाता है, ध्वनि भी दूसरे प्रकारकी होती जाती है। इसकी पाँच कलाएँ होती हैं—१, आर-म्भिक स्पष्ट तीव्र ध्वनि; २, मरमराहटकी मिली हुई; ३, स्पष्ट और ज़ोरकी; ४, मन्द; ५, धीरे-धीरे बंद होती हुई। कुछ लोगोंका कहना है कि पाँचवीं कलापर अर्थात् ध्वनिके बंद हो जानेपर हृत्प्रसार-चाप होता है, और कुछ लोग तीसरी कलासे चौथी कलाके परिवर्तनके समयके चापको हृत्प्रसार-चाप मानते हैं। प्राय: इन दोनों मापोंमें अन्तर बहुत कम होता है। यदि कभी अन्तर बहुत हो तो स्फिग्मोमैनोमीटर द्वारा ये चाप जाने जा सकते हैं।

एरलैंगरका इस प्रकारका यंत्र सम्पूर्ण एवं अत्युत्तम है यह चित्रमें दिखलाया गया है। जब कफमें दबाव हृत्सं-कोच-चापकी मात्रासे अधिक हो जाता है तो कूर्परनमनी धमनी बिल्कुल बंद हो जाती है। लेकिन बंद क्षेत्रके ऊपर-के भागका कम्पन (स्पन्दन आदि) कफमें जुड़े हुए ढोल द्वारा अंकित होता रहता है एक उपयुक्त डाट द्वारा कफमें दबाव पाँच-पाँच मि० मी० के हिसाबसे घटाया जाता है और हर बार नाड़ीकी परीक्षा की जाती है। हृत्संकोच-चाप विन्दु नाड़ीके यकायक बढ़ जानेसे या स्पन्दन-तरंगकी भुजाएँ फैल जानेसे जाना जा सकता है। जब चाप इस विन्दुसे भी नीचे गिरेगा तो स्पन्दन-तरंग अधिकतम विन्दुतक पहुँच जायेगी और फिर गिरने लगेगी। यह विन्दु हृत्प्रसार-चापका माप देगा। कुछ विशेष विचारोंके कारण कूर्पर धमनीको हृदयकी ऊँचाईपर रक्खा जाय जिससे हाइड्रोस्टैटिक दबावका हिसाब न लगाना पड़े।

एरलैंगरके यंत्रकी प्रयोग-विधि

(अ) रबरका थैला है जो बाहुपर चमड़ेकी पट्टीसे कस दिया जाता है। इस थैलेका संबंध पारेके दबाव-मापक (ब) से, दबावके थैले (स) से द्वि-मार्गी डाट (इ) द्वारा और शीशेके गोले (फ) में रक्खे रबरके थैले (ई) से डाट (ड) द्वारा है। इस शीशेके गोलेका संबंध ऊपर एक स्पर्शशील ढोल (ह) से है और यह डाट (ग) द्वारा वाह्य-वायुसे मिलाया जा सकता है। हृत्संकोच-चापके निर्णयकी दो विधियाँ हैं। पहिलीमें केवल पारेके दबावमापककी आवश्यकता होगी। दबावके थैले
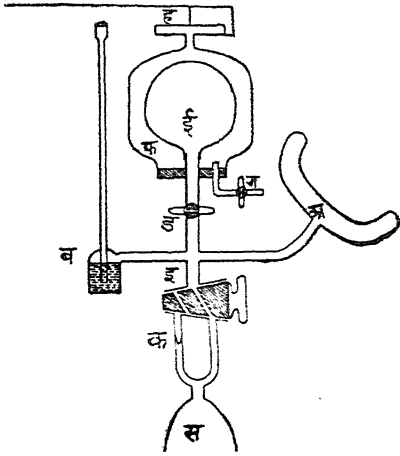
(स) द्वारा बाहुपरका थैला (अ) फुलाया जाता है यहाँतक कि दबाव हृत्संकोच-चापसे बढ़ जाता है और नीचे बहि: प्रकोष्टिका नाड़ी लुप्त हो जाती है। डाट (इ) को उचित रीतिसे घुमाकर सूचिका-खोल (क) द्वारा यह संस्थान हवासे मिलने दिया जाता है। परिणामत: धमनीपरका दबाव धीरे-धीरे घटता है और प्रकोष्टिका नाड़ीको छूकर जिस दबावपर नाड़ी आने लगती है उसका पता पारेके भारमापको पढ़नेसे तुरंत लग सकता है। यह हृत्संकोच-चाप होगा।

दूसरी रीतिसे कुछ ऊँचे और निस्संदेह अधिक विशुद्ध माप आयेंगे। इस विधिमें पहिले डाटें (ड और ग) के खुले रहते चाप हृत्संकोच-चापसे ऊँचा किया जाता है। (अ, ई, और ब) एक ही चापपर हैं। यदि (ग) अब फेर दी जाय तो (अ) के स्पन्दन (ई) में जाते हैं और वहाँसे ढोल (ह) में; और ढोलका लीवर इन स्पन्दनोंको किमोग्रैफ्यनपर अंकित करता है। यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि धमनीपर नाड़ीको बन्द कर देनेवाले दबावसे भी अधिक दबाव होनेपर भी स्पन्दन अंकित होते रहेंगे क्योंकि तब बचे भाग (धमनीके अलावा) के स्पन्दन तो थैले (अ) में आते ही रहेंगे — लेकिन ये बहुत छोटे होंगे। अब डाट (इ) को फेरकर संस्थानका दबाव कम किया जाय तो एक विन्दुपर स्पन्दन यकायक बढ़ जाएँगे। इस विन्दुसे हृत्संकोच-चापका अनुमान होगा।

लेकिन प्राय: ये स्पन्दन धीरे-धीरे बढ़ते हैं या सम्भवत: कभी एक साथ कई विन्दुओंपर अधिकतम हो जाते हैं इसलिये यह विधि इतनी संतोषजनक नहीं है। ऐसी दशामें एरलैंगरकी बतलाई हुई रीति (हॉवेलका शरीर-विज्ञान पृ० ५१२) का अनुसरण किया जाय। हृत्प्रसार-चापके लिए जैसा पहिले लिखा जा चुका है वैसे कीजिये। विशेष जानकारीके लिए उपरोक्त पुस्तक देखें।

मनुष्यमें सामान्य धमनीय चाप और उसके परिवर्तन

हृत्संकोच-चापके निर्णय करनेमें एक कठिनता यह होती है कि प्राय: जिन मनुष्य के रुधिरको परीक्षा होती है उन्हें यह क्रिया नई-नई होनेके कारण उनका ध्यान इसकी ओर आकर्षित हो जाता है जिसके कारण मस्तिष्कपर ज़ोर पड़नेसे ये चाप कुछ ऊँचे ही नापनेमें आते हैं। जब बार-बार परीक्षा होनेसे मनुष्य इसका आदी हो जाता है तो उसे इस क्रियामें विशेष रुचि न होनेके कारण रक्त-चापका ठीक-ठीक अनुमान हो जाता है। इस दशामें कूर्पर धमनीमें बीससे पचीस वर्षतककी आयुके युवकमें रक्त-चाप लगभग ११० मि०मी० हृत्संकोचीय और ६५ मि० मी० हृत्प्रसारीय होता है। यह कभी एक ही अंकपर स्थिर नहीं रहता, वरन् काल, देश, लिङ्गके अनुसार बदलता रहता है और पेशीय या मास्तिष्किक मुख्यकर उद्वेगपूर्ण क्रियाओंपर यह बढ़े

अंशतक निर्भर है। प्रात:काल रक्त-चाप न्यूनतम और दोपहरके पश्चात् तीसरे पहरके समय यह अधिकतम होता है।

शिराओं और केशिकाओंके रक्त-चापकी निर्णय-विधि

शिरा-चापके निर्णयकी सबसे सरल रीति यह है कि रोगी अपने आगे फैलाये हुए हाथको धीरे-धीरे ऊपर उठाता जाय जबतक कि हाथके पीछेकी शिराएँ लुप्त न हो जायँ। इस स्थितिमें हाथोंकी हृदयसे ऊपरकी ऊँचाई शिरा-चापका माप देगी।

एक साधारण यंत्र शिरा-चाप नापने के लिए हूकरका बनाया हुआ है। इसमें शीशेका एक छोटा कोष कोलॉडियनके घोल द्वारा शिराके ऊपरकी त्वचासे कस दिया जाता है। इस कोषका अन्तर्भाग रबरकी नली द्वारा चायलट्टू और पानीके दबावमापकसे जुड़ा रहता है। चायलट्टू द्वारा कोषके अन्दरका दबाव इतना बढ़ाया जाता है कि शिरा दीखनेमें न आवे। यह दबाव भारमापकमें आसानीसे पढ़ा जा सकता है।

रक्त-चाप शिराकी स्थितिपर बहुत कुछ निर्भर है। ज्यों-ज्यों हाथ ऊपर हृदयकी ओर उठेगा यह रक्त-चाप कम होता जायगा। जिन परिस्थितियोंमें हृदयकी ओर रुधिरका प्रवाह बढ़ जाता है उनमें शिरा-चाप भी बढ़ जाता है। लेकिन यदि हृदय पुष्ट हो तो वह इस बढ़ी हुई माँगको पूरी करता है और धमनियोंमें रुधिरके आधिक्यको बढ़ाता रहता है और शिरामें रक्त-चाप केवल अस्थायी रूपसे ही थोड़ी देरको बढ़ पाता है। यदि हृदय रोग ग्रसित होनेके कारण इस कार्यके अयोग्य है तो साधारण अवस्थामें भी शिराओंका रक्त-चाप बढ़ सकता है और एक स्थायी चापाधिक्य रहे तो हॉर्टफेलकी सम्भावना रहती है। शिरा-चापकी दशा हृदय-पेशीके सुचारु रूपसे क्रियावंत होने न होनेका अच्छा परिचय देती है। अत: इसका मापन वैद्यकके लिए परमावश्यक है।

केशिका-चाप

केशिकाओंमें रक्त-चापके निर्णय करनेकी कई रीतियाँ हैं। सामान्य सिद्धांत जो इसके लिये प्रयुक्त हुआ था वह यह मालूम करना है कि किस दबावपर त्वचाका रक्त रंग दब जाता है। यह मान लेना कि त्वचाका रंग केशिकाओंमें रक्त-संचारके कारण है नितान्त निर्विवाद नहीं है। हूकरने इसके पक्के प्रमाण दिये हैं कि त्वचाका रंग पृष्ठतलपरके शिराके नाड़ी-सूत्र-जालके कारण होता है। इसलिए उपरोक्त विधिसे केशिकाओंका चाप नहीं वरन् छोटी शिराओंका चाप मालूम होगा। इस कारण भिन्न-भिन्न परीक्षणों द्वारा भिन्न-भिन्न आँकड़े प्राप्त हुए हैं। डेंज़र और हूकरने दूसरे सिद्धांतपर एक और यंत्र बनाया है। त्वचाकी केशिकाओंपर तेल मलकर उन्हें तेज़ रोशनीमें सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखा जाता है और यंत्र इस प्रकार बना है कि त्वचापर वायुका दबाव डाला जा सकता है जब कि रक्त-प्रवाहका निरीक्षण कर रहे हों। जब दबाव किसी खास अंशतक बढ़ जाता है तो केशिकाकी धारा रुक जाती है। फिर जब दबाब कम करते हैं, प्रवाह आरम्भ हो जाता है। बादका दबाव केशिकाका दबाव है। यह दबाव भी मनुष्यकी आयुपर तथा उसकी खड़े, बैठे या लेटे हुए आदि स्थितियोंपर निर्भर है। १७·५ और २६·५ मि०मी०के बीचमें केशिका-चापका अनुमान है।

स्वस्थ व्यक्तिका

हृत्प्रसार-चाप (डायस्टोलिक) लगभग ६० होता है।

हृत्संकोच-चाप (सिस्टोलिक) लगभग १२० होता है।

कन्नड भाषाके 'लोकमत' 'संयुक्त कर्नाटक' तथा 'तरुण कर्नाटक' ने हमारे परिपत्रक प्रकाशित कर इस विषयमें जागृति की है। इस भाषामें केवल विज्ञान संबंधी कोई मासिक देखनेमें नहीं आता। तामिल तथा मल्याल प्रांतके लेखकोंसे हमारा पत्र-व्यवहार प्रारंभ हो गया है।

हमारे सहायक मित्रोंमें श्री वसंत विश्वनाथ केलकर, साउथ केन्सिगटन, लंडन, का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप हमें इंडिया ऑफिस तथा ब्रिटिश म्युज़ियमके ग्रंथालयोंसे आवश्यक साहित्य ढूंढ़कर भेजा करते है।

हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा तथा विज्ञान-परिषद्का कार्य तो सर्वख्यात है हीं।

मासिक 'विज्ञान' में परिभाषा चर्चा सम्बन्धमें लेख प्रकाशित करनेका हमारा विचार है। अंतमें विश्वकवि श्री रवींद्रनाथ ठाकुरका शुभ-संदेश देकर यह त्रैमासिक विवरण समाप्त करता हूँ :—

"Rabindranath sends you his blessings and hopes you will continue the good work you are at present engaged in."

दि आयडिअल इंस्टिट्यूट, लंका
बनारस ता० १५-११-३७, } —बापू वाकणकर, मंत्री

हिन्दी प्रचार

पुरानी हिन्दी पुस्तकें चाहिये

हिंदी-प्रेमियोंको स्मरण होगा कि कुछ दिन पहले हमने समाचार पत्रोंके द्वारा अपीलकी थी कि हमें अहिंदी प्रांतोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके विद्यार्थियोंको देनेके लिये पुरानी पुस्तकोंकी आवश्यकता है। महाराष्ट्र, गुजरातमें कई ऐसे स्थान हैं जहाँपर हिन्दी प्रेमी मण्डल स्थापित हो रहे हैं और लोग चाहते हैं कि उन मंडलोंकी तरफ़से पुस्तकालय स्थापित हो और वे उनके द्वारा अपनी हिंदी भाषाकी उन्नति करें। महाराष्ट्रकी लिपि तो नागरी है ही और गुजरात भी साधारणतया नागरी लिपिसे परिचित है। इन दोनों भाषाओंके हिन्दीसे नजदीक होनेके कारण लोग साधारणतया हिंदी पढ़ लेते हैं और समझ भी सकते हैं। इन लोगोंकी सहायताके लिये यह आवश्यक है कि उन्हें सरल हिन्दी पुस्तकें दी जायें।

हमें मालूम है कि हिंदी प्रांतोंमें कई ऐसे हिन्दी भाषा-भाषी हैं जो अहिन्दी प्रांतोंके हिन्दी प्रचार कार्यमें मदद पहुँचाना चाहते हैं। ऐसे सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे अपने यहाँसे और मित्रोंसे अच्छे मासिक पत्रोंके अङ्क तथा उत्तम श्रेणीकी पुस्तकें इकट्ठी करें और हिन्दी प्रचारके उपयोगार्थ हमारे पास भेजनेकी कृपा करें। अगर वे रेलभाड़ा भी देकर भेजें तो हम बड़े कृतज्ञ रहेंगे। अन्यथा हम रेलभाड़ा वर्धामें दे देंगे। पुस्तकोंके भेजनेके पहले उनकी सूची भेजना आवश्यक है। हमारी पहली अपीलका आदर कई सज्जनोंने किया है। हम उनके कृतज्ञ हैं। हरिद्वारके निवासी श्री किशोरीदास बाजपेयीजीने कई मासिकपत्रोंके पुराने अंक भेजे हैं। इनका उपयोग वर्धाके राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिरमें हो रहा है।

वर्धा
१६-११-२७

निवेदक
सत्यनारायण
प्रचार मंत्री: हिन्दी सा० सम्मेलन

विषय-सूची

फरवरी, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४६, संख्या ५

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-
विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७२

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४६	प्रयाग, संवत् कुंभार्क, १९९४ विक्रमी	फरवरी, सन् १९३८	संख्या ५

आचार्य सर जगदीशचन्द्र वसु

[ले०—श्री गौरीशङ्कर तोषनीवाल]

सदाकी भाँति २३ नवम्बरको भी मैं कालिज गया हुआ था। लौटते समय घरमें ज्येष्ठ भ्राता डाक्टर गोविन्दरामजी तोषनीवालसे भेंट हो गई। घरमें पैर रखते ही आप एक ऐसे करुण हृदय-विदारक स्वरमें मुझसे कहने लगे, "आचार्य वसुका निधन हो गया।" मुझे तो इस बातपर एक रत्तीभर भी विश्वास नहीं हुआ, परन्तु मेरे हृदयकी गति अवश्य तेज़ हो गई। मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर भाईसाहिबने बतलाया कि यह ख़बर उन्हें विश्वविद्यालयमें रेडियो द्वारा मिली है। इनके इन दृढ़ वाक्योंको सुनकर इस घटनापर मुझे विश्वास करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। कलेजा 'धक' हो गया। हृदय भर आया। इतनेपर भी मनमें कुछ सन्देह रह ही गया। सोचने लगा, जबतक यह सूचना समाचार-पत्रोंमें न देख लूँगा, तबतक इसपर पूर्णरूपसे विश्वास न करूँगा। ख़ैर, जैसे तैसे करके रात्रि व्यतीत हुई। उस दिन और रातभर तो काफ़ी बेचैनी रही। न खाना ही अच्छा लगा और न पीना ही। प्रातःकाल होते ही 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मिला। उसपर मैं भूखे सिंहके समान कूद पड़ा। उसमें भी वही दुःखद समाचार मिला। मनकी शान्तिके लिए 'हिन्दुस्तान स्टेण्डर्ड' भी खरीदा। दुर्भाग्यसे उसमें भी वही बात मिली। यद्यपि सब जगह आचार्य वसुके महाप्रयाणका ही समाचार मिला, परन्तु फिर भी न कानोंको विश्वास होता था और न हृदयको ही।

बचपन तथा शिक्षा

संसारमें सबसे पहले अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करनेवाले भारतीय, वैज्ञानिक जगतमें अपने अद्भुत आविष्कारों द्वारा खलबली मचा देनेवाले, बेतारकी तारवर्की आकाश वाणीके प्रथम आविष्कारक, भौतिक-पदार्थ और आत्माका सामंजस्य सिद्ध करनेवाले, भारतके सबसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक, सर जगदीशचन्द्र वसुका जन्म ढाका प्रान्तके रारीखाल नामक ग्राममें बङ्गालके मध्य श्रेणीके एक प्रतिष्ठित कुलमें ३० नवम्बर सन् १८५८ ई० को हुआ था। आपके पिता बाबू भगवानचन्द्र वसु उन दिनों फरीदपुर प्रान्तमें सब-डिविज़नल-अफ़सर थे। भगवानचन्द्रजी एक सच्चे सुधारक, देश-प्रेमी, सरस्वती-उपासक तथा बड़े दयालु थे। आपके (जगदीश बाबूके) पिताका विश्वास था कि एक भारतवासीको अपने संस्कारोंको उन्नत बनानेके लिए अपनी मातृ-भाषा द्वारा प्राचीन प्रचलित पाठशालाओंमें ही शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। ये थे एक अप-टू-डेट डिप्टी-कलेक्टरके विचार। अतएव जगदीश बाबू भी अध्ययनके लिए एक देहाती पाठशालामें भेजे गये। यही कारण है कि आपपर भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी गहरी छाप पड़ी तथा प्रकृतिदेवीके निकट सम्पर्कमें आनेसे आप अपने जीवनभर उसीके पेड़-पौधोंमें लीन रहे। आपकी माताजी भी बड़ी सहृदया तथा सरल स्वभावा थीं। वे अपने पुत्र जगदीशको बहुत ही प्रेम करती थीं , और उसकी उन्नतिके लिए दिन-रात परमपिता परमात्मासे प्रार्थना किया करती थीं। यह वही माता थी जिसने जगदीशको विलायतमें उच्च शिक्षा ग्रहण करनेके लिए, अपने चमचमाते हुए आभूषण तक बेच दिए थे —इसीसे आपके पुत्र-प्रेमका पता लग सकता है।

प्रारम्भिक शिक्षाके पश्चात् आपने कलकत्तेके सेंट जेवियर कालिजियेट स्कूलसे सन् १८८० में बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। इन्हीं दिनों आपको कालेजके मुख्याध्यापक, रेवरेन्ड ई० लेफन्ट एस०, जे० सी० आई० सी० से विज्ञानमें अन्वेषण करनेकी प्रेरणा मिली। अतएव स्वाभाविक ही था कि आपकी विलायतमें अध्ययन करनेकी इच्छा प्रबल हो उठी। पहले तो आपने सिविल सर्विसकी परीक्षा पास करनेकी ठानी, परन्तु आपके पिताजी इस प्रस्तावसे सहमत नहीं हुए। बहुत मननके पश्चात् आपने वहाँ चिकित्सा-शास्त्र पढ़ना तै किया।

पूर्व निश्चयानुसार आप विलायत भेजे गए और वहाँ आप चिकित्सा-शास्त्र पढ़ने लगे। लेकिन कुछ दिन पश्चात् इस पढ़ाईमें आपका मन नहीं लगा। इसके दो कारण थे। प्रथम तो यह कि आपकी स्वाभाविक रुचि प्रकृति-विज्ञानकी ओर थी और द्वितीय आप चीर-फाड़के कमरेकी दुर्गन्धसे बहुत घबड़ा गए। इसका परिणाम यह हुआ कि आपने खटिया पकड़ली। बहुत दिनों बाद आपने स्वास्थ्य लाभ किया। इस शास्त्रकी ओर घृणा हो जानेसे आपने केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें प्रकृति-विज्ञान पढ़नेके लिए नाम लिखवा लिया। यहाँसे आपने बी० ए० की उपाधि ली। आपकी योग्यता देखकर आपको छात्रवृत्ति भी दी गई। सन् १८८३ में आपने लण्डनके विश्वविद्यालयसे बी० एस-सी० (भौतिक, रसायन तथा वनस्पति-शास्त्र) की डिग्री आनर्सके साथ पास की। परीक्षाएँ पास करनेके साथ-साथ आप वहाँके प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके अन्वेषणोंके तरीक़ोंको भी बड़ी सूक्ष्मताके साथ अध्ययन करते जाते थे। यहाँपर आपको लार्ड रेले, लिविङ्ग, माइकेल, फ्रांसिस डारविन, डेवार, वाइंस् जैसे महापुरुषोंकी अध्यक्षतामें शिष्य रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन सज्जनोंने बादमें जब कि वसु महोदय अपने आविष्कारोंका प्रदर्शन करनेके लिए विलायत गए बहुत सहायता की।

भौतिक विज्ञानके आचार्य

जब आप अपनी शिक्षा समाप्त करके स्वदेश लौटे, तब आप केवल २५ वर्षके थे। लौटते समय आप वहाँके अर्थशास्त्रके प्रसिद्ध आचार्य श्रीयुत फासेटसे लार्ड रिपनके नाम एक परिचय-पत्र लेते आए थे। अतएव कलकत्तेकी प्रेसीडेन्सी कालेजके भौतिक विज्ञानके

आचार्यकी जगहपर आपको नियुक्त किया गया। इम्पीरियल एज्यूकेशन सर्विसमें भी आप चुन लिए गए। यह बात सन् १८८५ ई० की है। यहाँपर आपको एक और कठिनाईका सामना करना पड़ा। भारत सरकार उस समय अन्यायके रवैयेमें अंधी थी। काले-गोरेका बड़ा भारी सवाल था। गोरे लोगोंको हमेशा बड़ी-बड़ी जगहें ऊँचे-ऊँचे वेतनोंपर मिला करती थीं। बेचारे काले भारतवासियोंके कर्मोंमें तो केवल क्लर्कों-का-सा ही काम था। बहुत ही सौभाग्यशाली भारतीय बड़ी कठिनाइयों पश्चात् बड़ी-बड़ी शिफारिशों द्वारा कोई ऊँची जगह पाता था और तिसपर भी तुर्रा यह था कि उसे पूरा वेतन नहीं दिया जाता था। यही प्रश्न आचार्य जगदीशके सन्मुख भी प्रस्तुत हुआ। आप एक काले आदमी थे, अतएव आपको उसी पदके एक अँग्रेज़ आचार्यका दो-तिहाई वेतन दिया जाना निश्चय हुआ। वह भी आपको न मिला, क्योंकि आपका पद अभी स्थाई नहीं था। इस अन्यायसे आपके आत्म-सम्मान तथा स्वदेशाभिमानपर बड़ी गहरी ठेस लगी। सरकारकी इन नीच भावनाओं-का प्रदर्शन करनेका आपने प्रण कर लिया। आपने उसी समय यह निश्चय किया कि मैं आचार्यके पदपर तो काम किए जाऊँगा, पर तबतक वेतन न लूँगा, जबतक सरकार काले-गोरेका विचार न करके मुझे पूरा वेतन न देगी। लगातार तीन वर्षतक आप अपने निश्चयानुसार अपने वेतनके 'चैक' लौटाते रहे। इसी बीचमें आपने बड़ी तत्परताके साथ अपना कार्य किया। ३ वर्ष बाद हमारी अंधी सरकारकी आँखें खुलीं। उसने जगदीश बाबूको पहिचाना। शीघ्र ही आप आचार्यके स्थाई पदपर नियुक्त कर दिए गए तथा आपको पूरा वेतन देनेका आश्वासन दिया गया। इतना ही नहीं, आपको गत ३ वर्षका भी पूरा वेतन दिया गया।

चित्र १—क्रेस्कोग्राफ—यह सर जगदीश वसुका आविष्कृत महत्त्वपूर्ण यंत्र है जिससे पेड़ोंकी थोड़ी-सी भी वृद्धि १०००० गुना होकर अंकित होती है।

सन् १८८९ में आपने स्वर्गीय दुर्गामोहनदासकी सुपुत्री कुमारी अबलासे विवाह कर लिया, जिसकी स्वर्ण जयंती इसी २७ जनवरी सन् १९३७ को मनाई जा चुकी है। आपके श्वसुर ब्रह्म समाजके संस्थापकोंमें थे। इसका असर अबलाजीपर बहुत पड़ा। बङ्गालके प्रमुख राजनैतिक नेता, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, उनकी पत्नीके चचेरे भाई थे। उनके बहनोई स्वर्गीय आनन्दमोहन वसु अपने समयमें काँग्रेसके एक प्रमुख नेता थे और उसके सभापति भी रह चुके थे। उनकी पत्नी लेडी अबला बोस बड़ी पति-परायण, सती-साध्वी, सुशिक्षिता महिला हैं। आपके कोई सन्तान न थी और इसकी आपको तनिक भी चिन्ता न थी। आप अपने शिष्योंको ही अपनी सन्तानसे अधिक प्यार करते थे और उन्हें उससे भी बढ़कर शिक्षा देते थे। यही कारण है कि आपके शिष्योंमें प्रो० मेघनाद सहा, प्रो० बीरबल साहनी, प्रो० जे० सी० घोष जैसे हीरे विद्यमान हैं और उनकी कीर्त्ति-पताका अपने आविष्कारों द्वारा सारे विश्वमें फहरा रही है। विवाहके समय जगदीश बाबूको आर्थिक सङ्कटने बुरी तरह घेर रक्खा था क्योंकि, जैसा कहा जा चुका है, आप उस समय बिना वेतनके आचार्यका काम कर रहे थे। अतएव आपने चन्दनगरमें एक छोटा-सा मकान

ठीक किया। वहाँसे आप हमेशा अपनी धर्मपत्नीके साथ एक नावपर बैठकर कालेज जाया करते थे और लौटते समय ख़ाली नावको श्रीमती अबला ले आया करती थीं। कुछ काल पश्चात् आप कलकत्ता चले आए। वहाँ आप डा० ए० एम० वसुके साथ रहने लगे।

इन्हीं दिनों आप कई आविष्कारोंमें भी तल्लीन रहे। इस समय आपको विशेषकरके फोटोग्राफी तथा साउंड रिकार्डिङ्गसे बहुत प्रेम था। आपके प्रयत्नोंसे कालेजने कर्मवीर एडीसनके कुछ यन्त्र ख़रीद लिये। अब आप इन्हींमें मग्न रहने लगे। आपने अपने गृह ही में एक स्टूडिओ बनवा लिया तथा उसे सब आवश्यक सामानसे सुसज्जित कर दिया। अब आपने अवकाशमें फोटोग्राफीके लिए इधर-उधर घूमना शुरू किया। इन प्रयोगोंके साथ-साथ हर्ट्ज़ महोदयके कार्यों-की ओर भी आपकी काफ़ी रुचि थी। ३० नवम्बर सन् १८९३ में अपनी ३५ वीं वर्ष-गाँठके उपलक्षमें आपने इस ओर अधिक धूम-धामसे कार्य करनेका विचार किया।

चित्र २—रेज़ोनेण्ट रिकार्डर—इससे पौधोंको बिजलीका धक्का दिया जाता है, और पौधोंपर जो प्रभाव पड़ता है वह यंत्रमें अंकित हो जाता है।

आजसे लगभग ३५ वर्ष पूर्व आचार्य वसुने जिस समय अपनी विज्ञान-साधना आरम्भ की थी, उस समय उनको वैज्ञानिक गवेषणाका कोई भी साधन या सुविधा प्राप्त नहीं था। इस देशमें न कहीं अनुसन्धान-भवन था और न कोई उल्लेखनीय प्रयोगशाला परन्तु आचार्य वसु इन सब कठिनाइयोंसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। असीम और अज्ञातकी चाहने उनको असफलताओंको पैरों तले रौंदकर आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहित किया। गत ३५ वर्षोंमें उन्होंने अपनी तपस्यामें परिस्थितियों-के विरुद्ध जो युद्ध किए हैं, वे भारतके सभी वैज्ञानिकों-को युगों-तक साहस और आशाओंसे उद्दीप्त करने वाले हैं। कहाँ एक वह समय था, जब कि पाश्चात्य विद्वान प्राच्य देशोंको बिल्कुल मूर्ख समझते थे; हमारे देश से किसी भी नई बातकी आशा ही नहीं रखते थे। लेकिन अब वह ज़माना गया। सर जगदीशचन्द्र वसुने अपने अद्भुत आविष्कारों द्वारा पाश्चात्य विद्वानोंको आश्चर्य-सागरमें डुबो दिया। उनकी उस उज्जड धारणाको उन्होंने बिल्कुल निर्मूल कर दिया। अब उनके कट्टर विरोधी उनके अनुयायी और प्रशन्सक बन गए। बड़ी-बड़ी पाश्चात्य विज्ञान संस्थाओंने उनको उच्चतम सम्मानोंसे विभूषित किया। प्रसिद्ध कवि बर्नार्ड शा आपसे बहुत प्रसन्न हुए। आपके आविष्कारोंके चमत्कारको देखकर कविने अपने सब ग्रन्थोंका एक 'सैट' आपको उपहारके रूपमें भेंट किया तथा साथ ही उनपर यह भी लिख दिया—"एक क्षुद्र द्वारा एक महान प्राणी-शास्त्र-वेत्ताको अर्पित।" श्रीयुत रोमाँ रोलांने भी अपनी पुस्तक 'जान क्रिस्टोफर' उपहार देते हुए लिखा—"नये जगतके प्रदर्शन-कर्त्ता को।" प्रसिद्ध पत्रिका फोर्टनाइटलीने तो इतनातक कह डाला—"तीस शताब्दियोंकी सांस्कृतिक साधना आचार्य जगदीशचन्द्रमें एक ऐसे वैज्ञानिक मस्तिष्कके रूपमें विकसित हुई है जिसका जोड़ा पाश्चात्य जगत उत्पन्न नहीं कर सकता।" अतएव, जैसा कि कहा जा चुका है, जब आपने अपना अनुसन्धान-कार्य शुरू किया, आपके पास कोई प्रयोगशाला नहीं थी। लेकिन धीरे-धीरे अपने प्रयत्नों द्वारा आपने लगभग १० वर्ष

पश्चात् कालेजमें एक छोटी-सी प्रयोगशाला खुलवा दी और जब कि आपने इस कालेजसे अवकाश ग्रहण किया, वहाँ एक बहुत बड़ी, सब साधनोंसे सम्पूर्ण, प्रयोगशाला दिखलाई दी। यह आप ही के कठिन परिश्रमका फल था।

तीन मासमें आपने उस यंत्रका आविष्कार किया, जिससे विद्युत-चुम्बकीय-विकिरण संबन्धी खोज हो सकती थी। आपने ऐसा यंत्र बनाया, जिससे विद्युत-किरणका ध्रुव-भवन देखा जा सकता था। आपने अपारदर्शक पदार्थोंमें अदृश्य विकिरणकी वक्रांश संख्याओंकी खोज भी की। सन् १८९५ में आपने अपने इन प्रयोगोंके परिणामोंको प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंमें छपवाना शुरू किया। इनमें बङ्गालकी एशियाटिक सोसाइटीकी एलेक्ट्रीशियन तथा एशियाटिक जर्नल पत्र मुख्य हैं। आपके इन प्रारम्भके अन्वेषणोंसे ही वैज्ञानिक जगत्में तहलका-सा मच गया। लंदनकी रायल सोसाइटी भी आपके लेखोंसे बहुत प्रवाहित हुई। उसने आपको अपना सदस्य बनाया तथा वार्षिक 'ग्रांठ' देना भी स्वीकार किया। यह आपके लिए बहुत बड़े सम्मानकी बात थी। उधर केम्ब्रिज तथा लंदनके विश्वविद्यालयोंने आपको एम० ए० तथा सायंसके डाक्टरकी उपाधियोंसे विभूषित किया। इस प्रकार वसु महोदयका मान विदेशोंमें होने लगा, परन्तु अभीतक हमारी सरकार कुम्भकर्णकी नींद सो रही थी। यह बात सत्य है कि अभीतक सरकारने आपको भारतीय शिक्षा-विभागकी निम्न कोटिमें ही स्थान दिया था। परन्तु जब उन्होंने अपने कार्यसे असाधारण योग्यता तथा प्रतिभाका परिचय दे दिया और विदेशोंके विज्ञानवेत्ताओंमें भी उनका बड़ा सम्मान होने लगा, तब भी उन्हें केवल प्रांतीय कोटि ही में बनाए रखना तो सरकारका एक अक्षम्य अन्याय ही कहा जा सकता है। सन् १८९६ की कलकत्ता काँग्रेसमें सरकारके इस अन्यायकी कड़ी शब्दोंमें आलोचना की गई। यही नहीं, वसु महोदयके पश्चात् आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय तथा आचार्य जदुनाथ सरकारके साथ भी सरकारका इसी प्रकार अन्याय हुआ। खैर, अन्तमें रो-धोकर हमारी सरकारने अनुचित विलम्बके पश्चात् उन्हें शिक्षा-विभागकी उच्चकोटिमें स्थान दिया। उधर बङ्गाल सरकारने भी आपको वैज्ञानिक अन्वेषणकी थोड़ी-बहुत सुविधाएँ दीं।

अब आप बेतारकी आकाशवाणीके आविष्कारकी ओर जुट पड़े। इसी समयसे इटलीके स्वर्गीय मार्कोनी तथा अमेरिकाके सर आलिवर लाजने भी इस ओर कार्य करना आरम्भ कर दिया था। संसारभरमें आप ही पहले व्यक्ति थे जिन्हें बेतारकी तारबर्कीमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। आपने अपने आविष्कारका कलकत्ता टाउन हालमें बङ्गालके तत्कालीन गवर्नरके सन्मुख सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया। आपके चन्द दिनों पश्चात् मार्कोनी भी इस ओर सफल हुए। परन्तु मार्कोनी तथा वसुमें एक बड़ा भारी अन्तर था। मार्कोनी साहब एक स्वतंत्र देशके नागरिक थे और उन्हें सर्व प्रकारके साधन और सुविधाएँ प्राप्त थीं। उधर भारत उस समय आजके समान जागृत नहीं था, उसकी आवाज़ भी निर्बल थी। फलतः पराधीनताके अभिशापका शिकार सर जगदीशको होना पड़ा। बेतारकी तारबर्कीके आविष्कारका श्रेय आपको न मिला, हालाँ कि आप ही उसके प्रथम आविष्कारक थे। इस पाश्चात्य जगतके महान् अन्यायसे आप ज़रा भी हताश न हुए। फिर भी आपकी विद्युत्-संबन्धी खोजपर संसारके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंने तथा बड़ी-बड़ी संस्थाओंने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जब आप १८९६ में लंदन गए तो आपको 'फ्राइडे ईवनिंग कोर्स' नामक व्याख्यान-मालाके व्याख्यान देनेके लिए निमंत्रित किया गया। यह एक वैज्ञानिकका बहुत बड़ा सम्मान है। इस आविष्कारके अतिरिक्त आपने विद्युत-तरङ्ग-ग्राहकका आविष्कार किया। इस यंत्रसे तो आपका नाम संसारके कोने-कोनेमें पहुँच गया।

अब आपका ध्यान पेड़-पौधोंकी ओर आकर्षित हुआ। आपने बेतारकी तारबर्कीका आविष्कार करते समय यह अनुभव किया था कि धातुओंके नन्हे-नन्हे परमाणुओंपर भी उनसे काम लेनेकी गतिका प्रभाव पड़ता है। यदि उनसे अधिक काम लिया तो वे थक जाते हैं

और थोड़ी-सी उत्तेजना देनेसे उनमें स्फूर्ति आ जाती है। यह बात तो उन्होंने धातुओंमें पाई। अब आपका पेड़-पौधोंकी ओर भी ध्यान गया। अभीतक वनस्पतियोंको निर्जीव समझा जाता था। पाश्चात्य देशोंके कूट विद्वान हमारे ऋषियोंकी इस समझपर कि पेड़-पौधोंमें भी मनुष्य तथा पशु-पक्षियोंकी भाँति सजीवता तथा सचेतनता है, बड़ी खिल्ली उड़ाया करते थे। इस समयतक हमारे पास कोई ऐसे साधन भी नहीं थे जिससे इस बातको सिद्ध किया जा सकता। स्वाभिमानी आचार्य जगदीशको पाश्चात्य विद्वानोंका यह भद्दा मज़ाक बहुत खटका। उन्होंने अपने पूर्वजोंके वाक्योंको क्रियात्मक रूपमें प्रमाणित करनेकी ठान ली। बस फिर क्या था, आप इस ओर तन-मन-धन सहित जुट पड़े।

बहुत खोज और परिश्रमके बाद आप इस निष्कर्षपर पहुँचे कि क्षुद्र-से-क्षुद्र वनस्पतिमें भी संज्ञा-ग्राहक है। आपने एक ऐसे यंत्रका आविष्कार किया जिससे भलीभाँति प्रकट हो जाता है कि उसमें (वनस्पतिमें) अन्य जीवोंकी भाँति मज्जा और तन्तु है और जीवधारियोंसे उनका इतना साम्य है कि उनकी विभिन्नताका पता लगाना कठिन है। शीतसे आकुंचन, मादक द्रव्यसे नशा तथा विषसे उनकी भी मृत्यु होती है। इसके अतिरिक्त उनकी वृद्धिका स्वतः लेखन, उनकी सम्वेदना आदि देखे जा सकते हैं और उनके दुःखके समयवाली रुलाई भी सुनाई पड़ती है। इससे उनके सोने-उठनेके घंटोंका भी पता लग सकता है। वाह्योत्तेजनका उनपर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। पौधोंमें भी हृदयकी-सी धड़कन, उनकी नाड़ियों द्वारा नीचेसे ऊपरकी ओर रस-प्रवाह, स्वाँसके साथ कारबोनिक गैसका खींचना, आदिका भी इस यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष प्रदर्शन होता है। आपने यह भी बतला दिया कि लाजवन्ती पौधेमें भी स्नायु होते हैं। आपके इस अद्भुत यंत्रका नाम 'रेज़ोनेण्ट रिकार्डर' है। आपके इस प्रसिद्ध यंत्रने भारतका स्थान संसारके बौद्धिक जगत्में ऊँचा कर दिया और वैज्ञानिक क्षेत्रमें भारतको स्थान दिला दिया। यही नहीं, इसके कारण प्राचीन पुस्तकें केवल कपोलकल्पित ही न रहकर ज्ञान और सत्यका अंश मानी जाने लगी हैं। सर वसुने सचमुच अपने इस आविष्कारसे ऋषि-ऋण उतार दिया और भारतीय सभ्यताकी नींव मजबूत कर भारतको सदा अपना ऋणी और चिर-कृतज्ञ बना लिया।

इसके अतिरिक्त आपने पेड़ोंके सम्बन्धमें अन्य कई बातोंकी भी खोज की। आपने इन प्रयोगोंसे कई पाश्चात्य विद्वानोंकी धारणाओंको निर्मूल साबित कर दिया। आपने पता लगाया कि पेड़ अपना भोजन वायु और मिट्टीसे लेता है। कुछ मिट्टी पानीमें घुलकर वृक्षोंकी जड़ोंमें पहुँचती है जहाँपर मिट्टी तो वहीं रह जाती है तथा जल ऊपर चढ़कर हवामें उड़ जाता है और इस प्रकार वृक्षोंके आस-पासवाला वायुमंडल नम रहता है। इस प्रकार एक बड़े वृक्षसे दिनभरमें सवा मन जल उड़ जाता है। यही हाल उन वृक्षोंका भी है जो ४००-५०० फुट ऊँचे होते हैं। अब प्रश्न समयका उपस्थित होता है कि वृक्षोंमें जड़ोंसे लेकर चोटीतक इतनी जल्दी पानी कैसे पहुँच जाता है, जब कि वायुके प्रभावसे केवल ३४ फुट तथा निःसारक दबाव (ओस्मोटिक) से केवल एक इंच ही जल ऊपर चढ़ पाता है। इस बातकी जाँचके लिए आपने एक विशेष विद्युत-यन्त्र बनाया तथा उससे मालूम किया कि अनुकूल परिस्थितियोंमें जल वृक्षों द्वारा १०० फुट प्रति घंटा चढ़ सकता है। इसके पश्चात् आपने यह भी मालूम किया कि पौधोंके भीतर ही सेलोंकी किसी स्वतंत्र क्रियासे पानी ऊपर चढ़ता है। इसके लिए कोई बाहरी कारण नहीं है। यह प्रयोग आपने एक गेंदेके पौधेपर किया था।

अब आप जीवनके छोटे-से-छोटे परमाणुओंके जीवनके विविध भेदोंको समझनेका प्रयत्न करने लगे। इसके लिए वृक्षोंकी छाल और विशेषकर सेलोंका जान लेना आवश्यक था। अभीतक इसके लिए कोई साधन भी नहीं था, लेकिन इससे आप किंचित् मात्र भी हताश नहीं हुए। आपने एक ऐसे यंत्रका आविष्कार

किया जिससे एक इंचका करोड़वाँ भाग भी सरलता-पूर्वक नापा जा सकता है। इस यंत्रका नाम मैग्नेटिक क्रेस्कोग्राफ़ है। फिर आपने एक और ऐसा यंत्र बनाया जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वृक्षोंके सेलोंमें भी स्पन्दन होता है। वे बारी-बारीसे फूलते और सिकुड़ते हैं। प्रत्येक सिकुड़नमें सेल पानी ऊपर फेंकता है तथा प्रत्येक फैलनेमें पानी ऊपर खेंचता है। यही सेलरूपी पिचकारियाँ अपनी सिकुड़न-फैलनसे जड़ोंमेंसे जल खींचती हैं तथा उसे ऊपर फेंक देती हैं और क्रिया काफी शीघ्रतासे होती रहती है।

आपका सबसे विचित्र यंत्र तो 'अति सूक्ष्म क्रेस्को-ग्राफ' है। इस यंत्र द्वारा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु भी १० लाख गुनी बड़ी दिखलाई देती है। इससे पौधोंकी प्रति मिनटकी वृद्धि देखी जा सकती है। इसके अलावा कौन औषध या खाद किस पौधेके लिए उपयोगी है—यह भी मालूम हो जाता है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण आपका अभी हाल ही का संजीवनी बूटी नामक जड़ीका आविष्कार है। इस बूटीके द्वारा आपने सिद्ध किया कि छातीकी धड़कन बन्द होनेसे मृत्यु प्राप्त मनुष्य पुनर्जीवित किया जा सकता है। प्रयोगकी सिद्धिके लिए आपने इस बूटीका प्रयोग मनुष्य तथा पेड़-पौधोंपर किया है और परिणाम भी ठीक पाया है।

वसु महोदयकी देश-विदेशोंमें ख्याति

आपकी इन अपूर्व खोजोंसे वैज्ञानिक जगत अचम्भे-में आ गया। देश-विदेशसे आपको अपनी खोजोंपर व्याख्यान देनेके लिए सैकड़ों निमंत्रण आने लगे। लंदनकी प्रसिद्ध रायल सोसाइटीने भी निमंत्रित किया।

अतएव आप विलायत गए। वहाँ आपने कई व्याख्यान दिए जिनसे वहाँके बड़े-बड़े वैज्ञानिक प्रवाहित हो गए। एक अँग्रेज़ी समाचार-पत्रने आपके आविष्कारों तथा व्याख्यानोंपर टीका-टिप्पणियाँ करते हुए लिखा था कि, "भौतिक विज्ञानके एक बहुत ही कठिन विषय-पर एक बङ्गाली महाशयको येरपके बड़े-बड़े विद्वानोंके सन्मुख व्याख्यान देते हुए देखकर बड़ा आनन्द आता है। लार्ड केल्विन भी आपके प्रयोगोंसे बहुत प्रसन्न हुए। फ्रांसकी एकेडेमी आव सायंसके अध्यक्षने तो यहाँतक कह डाला कि, "दो हजार वर्ष पूर्व जो देश सभ्यताके उच्च शिखरपर था और जिसने अपनी विद्वत्ता और कला-कौशलसे तमाम संसारको चकित कर दिया था, आपने (वसु महोदयने) उसी गौरव शालिनी जातिकी कीर्त्तिको फिरसे उज्ज्वल किया है। हम फ्रांसके लोग आपकी जयजयकार करते हैं।" इस यात्रामें आप 'पूर्वके जादूगर' के नामसे विख्यात हो गये।

सन् १९०० ई० में आप भारतके प्रतिनिधि बनाकर पेरिसकी सायंस काँग्रेसमें भेजे गये। वहाँसे रवाना होकर आपने आक्सफोर्ड और केम्ब्रिजके विश्वविद्यालयों-में व्याख्यान दिये। फिर आप वियेना गये। इसी समय आपको अमेरिकाकी ओरसे भी निमंत्रण-पत्र मिला। आपने अमेरिकामें भी भ्रमण किया। वहाँ आपको इतनी संस्थाओंने निमंत्रित किया कि यदि आप प्रतिदिन दो व्याख्यान देते, तो भी आपका काम वहाँ एक वर्षमें भी समाप्त न हो पाता। इसके बाद आप स्वदेश लौट आए। यहाँपर आते ही आपको कई मानपत्र भेंट किए गए। कलकत्ता विश्वविद्यालयने आपको साइन्स के डाक्टरकी उपाधिसे विभूषित किया। पञ्जाबके विश्व-विद्यालयने आपको व्याख्यान देनेके लिए निमंत्रित किया और उसके लिए १२००) रुपया भी देना चाहा। आप वहाँ गए परन्तु इस कामके लिए एक कौड़ी भी ग्रहण नहीं की। आपने यह रुपया एक रिसर्च स्कालरको दिलवाना उचित समझा। भारत-मंत्रीने आपकी अपूर्व खोजोंके लिए २००००) रुपयेकी ५ वर्ष तक रिकरिंग ग्रांट दी। प्रथम भ्रमणके बाद स्वदेश लौटनेपर सरकारने आपको सी० आई० ई० तथा १९११ में सम्राट के राज्याभिषेकके समय सी० एस० आई० की उपाधियाँ दीं। इसी वर्ष आप 'सर' भी बनाए गए। १९१६ में बङ्गाल सरकारने आपको एक अभिनन्दन-पत्र दिया।

आचार्य वसुका विज्ञान-मन्दिर

सन् १९१३ में आप ५५ वर्षके होनेसे सरकारी नौकरीसे अवकाश ग्रहण करनेवाले थे, परन्तु सरकारके विशेष अनुरोधसे आप दो वर्षतक कालेजमें और कार्य करते रहे। अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् भी आपने अपना काम जारी रखना चाहा। वैज्ञानिक जीवन आरम्भ करनेके समय आपके पास कोई ढंगकी प्रयोगशाला न थी। अब इसका अभाव आपको और भी खटका। दो वर्षतक तो आप दो छोटी-छोटी प्रयोगशालाओंमें कार्य करते रहे। उनमेंसे एक तो दार्जिलिंगमें थी तथा दूसरी कलकत्तेमें आपके घरके पास सरकुलर रोडपर। इन स्थानोंपर आपको बारबार आने-जानेका बड़ा कष्ट होता था। अतएव अब आपने अपनी स्वयं एक प्रयोगशाला स्थापित करनेका निश्चय किया। अंतमें ३० नवम्बर सन् १९१७ ई० को अपनी ५९वीं वर्षगाँठके अवसरपर आपकी यह हार्दिक इच्छा फलवती हुई। आपने ९३, सरकुलर रोड, कलकत्तेमें एक विज्ञान-मन्दिर (बोस रिसर्च इन्स्टीट्यूट) की स्थापना की। भगवान्की असीम कृपासे भारत हितैषी स्वर्गीय मि० मान्टेगूके उद्योगोंसे इस संस्थाको एक लाख रुपया वार्षिककी सहायता सरकारसे मिलने लगी और कुछ सहायता विज्ञानका महत्व समझनेवाले दानी सज्जनोंसे भी मिली। इधर आचार्य जगदीशने सीधा-सादा रहन-सहन व्यतीतकर जो रुपया बचाया था उसे संस्थाके निमित्त अर्पण कर दिया। बादमें आपने इस विज्ञान-मन्दिरको देशको दान दे दिया। इस मन्दिरमें आपके सभी खोजों और आविष्कारोंका संग्रह है जो दर्शनीय है। कलकत्ता जाकर इस संस्थाका दर्शन न करना कलकत्ता नहीं जानेके बराबर है। मैं भी जब बड़े दिनकी छुट्टियोंमें कलकत्ता गया तो इसे देखना न भूला। देखते ही मैं आश्चर्य-सागरमें गोते लगाने लगा।

फिर विश्व-भ्रमण

कुछ समय पश्चात् वसु महोदय एक दफ़ा फिर विश्व-भ्रमणके लिए निकले। आप जहाँ कहीं भी गए, आपका पूर्ण सम्मान किया गया। मिश्रमें तो स्वयं बादशाह अपने दरबारियों सहित आपको लिवाने आए।

जब आप अपनी यात्रासे स्वदेश लौटे, आपको सैकड़ों मानपत्र दिए गए। आपने जो उनका उत्तर दिया वह बहुत मनन करने योग्य है। आपने दो बातोंपर विशेष ज़ोर दिया। आपने एक वैज्ञानिकके नातेसे कहा, "मैं किसी पुरस्कार या ख्यातिकी परवाह नहीं करता। मैं हमेशा सत्यकी खोजमें रहता हूँ। जो कुछ भी मैंने वनस्पति-शास्त्रमें नई बातोंकी खोज की है, वह इसी सिद्धान्तपर की है। लोगोंको हमारे पूर्वजोंके इस ओरके विचारोंको सिद्ध कर दिया है।" दूसरी ओर आपने एक अध्यापकके नातेसे कहा, "मैंने अपने शिष्योंको सरल कार्य करनेकी कभी सलाह नहीं दी। जहाँतक मेरेसे बन पड़ता है उनसे कठिन कार्य ही कराता हूँ। इस तरह मैंने उनमें यह मंत्र फूँक दिया है कि अध्ययनका ध्येय केवल परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होना ही नहीं है, बल्कि इस जगतमें कुछ अच्छा कार्य कर दिखलाना है।" बम्बईमें एक अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए आपने कहा, "दूसरोंपर किसी बातका कलंक लगाना व्यर्थ है। यदि किसीसे कुछ ग़ल्ती हो जाय, दूसरेको उलहना देनेके बजाय स्वयंको उसका कर्त्ता-धर्ता समझना चाहिए। कुछ लोग समयको भी कलंकित करते हैं। यह सब कुछ नहीं होना चाहिए। साहसके साथ उस काममें फिरसे लग जाना चाहिए। सफलता निश्चय ही होगी।"

नवम्बर सन् १९२८ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालयने आपको सायंसके डाक्टरकी उपाधि दी। तत्कालीन गवर्नर सर हेलीने चांसलरकी हैसियतसे आपका छात्रोंको परिचय देते समय आपकी कवीन्द्र रवीन्द्र तथा महात्मा गाँधीजीकी कोटिके महापुरुषोंमें गणना की।

१ दिसम्बर सन् १९२८ को आपकी ७० वीं वर्षगाँठ बड़ी धूम-धामसे मनाई गई। उस रोज़ बोस इन्स्टीट्यूट देखते ही बनता था। नाना प्रकारके फूल-

आपका अन्तिम समय

पत्तियों तथा बिजलीके लट्टुओंसे वह सजाया गया। रातमें तो उसके आसपासकी भूमि दिन-सी लगती थी। उस समय आचार्य वसुके पास कई बधाईके पत्र आए। उनमें बर्नाड शा, नेचरके संपादक रोमें रोलां, चीनके शिक्षा-मंत्री जैसे व्यक्तियोंके भी पत्र थे। भारत ही नहीं तमाम विश्वमें आपकी दीर्घायुके लिए परमपिता परमात्मासे प्रार्थना की गई।

आचार्य वसु ऐसे महान् वैज्ञानिक तो थे ही, साथ ही वे एक पूर्ण दार्शनिक भी थे। फैशनमें तो आप बिल्कुल समझते ही नहीं थे। इस बीसवीं शताब्दीमें वे एक सच्चे भारतीय ऋषि थे और जो कोई भी उनके संसर्गमें आता था, उनके महान व्यक्तित्व और तपस्यामय जीवनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। सर वसु सच्चे देशभक्त तथा पक्के राष्ट्रीयतावादी थे। ब्रह्म समाजके नाते आप एक बड़े सुधारक भी थे। यह सच है कि आपने सामाजिक या राजनैतिक क्षेत्रमें अधिक भाग नहीं लिया। आप विज्ञान ही में इतने उलझे रहे कि आपको उससे तनिक भी अवकाश न मिला। मातृ-भूमि भारतसे बहुत ही प्रेम था। इसके अलावा आप एक सफल अध्यापक भी थे। आचार्य मेघनाद (आचार्य वसुके एक शिष्य) के शब्दोंमें आपके शिष्य ही नहीं, शिष्योंके भी शिष्य, आपको बराबर याद रक्खेंगे। भारतको उनपर गर्व था और रहेगा।

आपका महाप्रयाण इसी २३ नवम्बर को गिरीडीहमें हृदयकी गति अचानक बन्द हो जानेसे हो गई। यह दुःखद समाचार सुनकर भारत ही नहीं, सारा विश्व रो उठा। चारों ओर शोक-सभाएँ हुई। लेडी अबलाके साथ समवेदना प्रकट करते हुए दिवङ्गत आत्माके लिए परमात्मासे शांतिकी प्रार्थना की गई।

आचार्य जगदीशचन्द्र वसु अपने पीछे कई लाख रुपया छोड़ गए हैं। इसमेंसे २०,०००) रु० तो उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अबला बोसको नक़द दिया गया तथा उनको ८००) रुपया मासिक जीवन पर्यन्त मिला करेगा, इसका भी प्रबन्ध हो गया। इसके अलावा बाकीका सब रुपया आचार्य भिन्न-भिन्न सार्वजनिक संस्थाओं तथा शिक्षा प्रचारके लिए वसीयत कर गए हैं। यह घटना आपकी कीर्त्तिको और भी उज्ज्वल कर देती है।

सरेसका नया ज़माना

[ले०—श्री रावेलालजी मेहरोत्रा, एम०ए०,]

वे दिन अब निकट हैं जब कि बढ़ई लोग हथौड़े और कीलोंको तजकर सरेस और ब्रुशसे जुड़ाईका काम किया करेंगे। सम्भव है अब हम लोगोंको काग़ज़ या लकड़ी और सरेससे बने मकानोंमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होवे। जब हम ऐसे मकान बनानेमें सफल हो जायेंगे तो इसमें संदेह नहीं कि वे मकान आजकलके मकानोंकी बनिस्बत अधिक मज़बूत और सस्ते होंगे और उनमें आग, आँधी, मेंह आदिसे हानि पहुँचनेका डर न रहेगा।

२

सरेसका नया ज़माना तो निर्माण-कलाका ही एक नया ज़माना है। पिछले पाँच वर्षके भीतर ही मकान आदि बनानेके काममें सरेसका प्रयोग पहलेसे तीन गुना हो गया है।

चिपकनेवाली वस्तुओंके रासायनिक गुणोंका रहस्य जो कि सैकड़ों वर्षोंसे अज्ञानताके सागरमें छिपा हुआ था आज विज्ञानने खोल दिया है और अब कई प्रकारके ऐसे सरेस तैयार किये गए हैं जिनपर गर्मी, सर्दी आदि ऋतुओंका असर तो होता हीं नहीं; इसके

अतिरिक्त एक विशेषता यह है कि वे किसी भी अन्य जोड़नेवाले पदार्थसे अधिक मज़बूत होते हैं। इन सरेसोंका और अन्य ऐसे पदार्थोंका जो मकान आदि बनानेमें काम आते हैं प्रसार-गुणक बराबर ही होता है।

हवाई जहाज़में सरेस

सरेससे सर्वप्रथम मामूली लकड़ीपर बढ़िया लकड़ीकी पतली चपटी चिपकानेका काम लिया गया। 'सरेस-विज्ञान' का इसी क्रियासे श्रीगणेश हुआ। जब हवाई जहाज़ोंका ज़माना आया तब तो सरेस-विज्ञानने बहुत ही उन्नति की। हवाई जहाज़ बनानेमें इस बातपर विशेष ध्यान देना पड़ता है कि कम-से-कम वज़नका मज़बूत-से-मज़बूत जहाज़ बनाया जा सके। महायुद्धके ज़मानेमें अमरीकाके वैज्ञानिकोंने दूधकी मलाईसे एक ऐसा सरेस तैयार किया जो हवाई जहाज़ बनानेके लिए उस समय सबसे मज़बूत चीज़ तैयार करनेवाला पदार्थ समझा जाता था। महायुद्धके बाद तो आधुनिक जहाज़ोंके लिए सरेस बड़ा ही उपयोगी हो गया है और बहुत-से कामोंमें अब इसका प्रयोग किया जाने लगा है।

सरेससे पुलोंका निर्माण

इधर सरेसकी उन्नतिके कारण बहुत-सी नवीन वस्तुएँ तैयार की गई हैं, जैसे लकड़ीके चौड़े-चौड़े चौरस तख्ते, बड़ी-बड़ी मज़बूत कड़ियाँ, शहतीर, डाटें, खैरातें और अनेक प्रकारकी वस्तुएँ जो मनचाहे आकारकी सरलतासे छोटे-छोटे टुकड़ोंको सरेस द्वारा आपसमें जोड़कर बनाई जा सकती हैं। ऐसी-ऐसी चीज़ोंके बन जानेसे अब हर तरहका तिज़ारती सामान खालिस लकड़ीसे ही बनाया जा सकता है। कैलीफोर्निया नामक देशमें एक २६४ फुट ऊँचा रेडियो गुम्बज और एक १६० फुट लम्बा केडो नदीका पुल लकड़ी और सरेससे ही बनाया गया है।

इस नये प्रकारके निर्माणके कारण अब तीनसे दस पौंडतक सरेस मोटरकार बनानेमें खर्च हो जाता है और कागज़ और लकड़ीकी बनी वस्तुओंमें सरेसका प्रयोग पहलेसे दूना तो हो ही गया है। रेडियो-व्यवसायको भी सरेससे बहुत लाभ पहुँचा है। हमारा ख्याल है कि सरेसका सबसे अधिक प्रयोग अब फैक्ट्रियोंमें होता है जहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने, और मशीनें लगानेमें सरेस और लकड़ीसे अधिक मज़बूत और सस्ता सामान तैयार किया जा सकता है।

नाजसे सरेस तैयार किया जावेगा

इस वैज्ञानिक खोजका असर निर्माण-विद्यापर तो जो पड़ा है सो पड़ा ही है, इसके अतिरिक्त सरेसका भोज्य पदार्थोंसे इतना संबन्ध बढ़ गया है कि अब कृषि, दुग्ध व्यवसाय और माँस व्यवसायके लिए भी सरेसका नया ज़माना बड़े महत्वका है। अबतक बहुत-से देशोंमें जो हज़ारों-मन नाज ख़राब जाता है इससे उसका सरेस तैयार कर लिया जा सकता है और इससे लाखों रुपयेका नुक़सान होनेसे बच जाता है। सरेस तीन प्रकारके होते हैं। एक तो वह सरेस है जो रक्त, हड्डी, मछली और गोश्त आदिसे तैयार किया जाता है; दूसरा दुग्ध-सरेस है और तीसरा वह है जो वनस्पतियों द्वारा तैयार किया जाता है जिसमें माँड़ और प्रोटीन भी सम्मिलित हैं।

माँस और दूधसे सरेस

रक्त और माँस आदिसे तैयार किया हुआ सरेस बहुत ही मज़बूत होता है और इसके बनानेमें कोई विशेष खर्च भी नहीं करना पड़ता क्योंकि माँस-व्यवसायमें बचेकुचे रद्दी मालसे ही, जो साधारणतया कूड़ेमें फेंक दिया जाता है, ऐसे सरेस मुफ़्तमें ही तैयार किये जा सकते हैं और पिछले कई वर्षोंमें माँसके व्यापारियोंने सरेस बनाकर अपनी आमदनीको बातकी बातमें बढ़ा लिया है। दुग्ध अब सरेस तैयार करनेके लिए एक विशेष वस्तु बन गया है। प्रशान्त महासागरके किनारे बसनेवालोंने वनस्पतियोंसे सरेस तैयार करनेकी रीति निकाली और इसीसे प्लाईवुड नामक लकड़ीके व्यवसायमें बड़ी उन्नति की है।

सरेससे प्लाईवुड तैयार करना

प्लाईवुड तैयार करनेकी रीति यह है कि लकड़ीके पतले तख्ते एकके ऊपर एक इस प्रकार रखकर सरेससे जोड़े जाते हैं कि यदि नीचेके तख्तेकी नसें पूरबसे पश्चिमकी ओर रहें तो उसके ऊपर रक्खे तख्तेकी नसें उत्तरसे दक्षिणकी ओर रहें। इस प्रकार शहतीरों और मोटे तख्तोंसे भी अधिक मज़बूत और हलका प्लाईवुड तैयार किया गया है और ऐसा करनेमें भी बचेकुचे रद्दी सामानका ही प्रयोग किया जाता है जो पहले फेंक दिया जाता था। इससे पता चलता है कि सरेस-युगने रद्दी कूड़ा-सामानको काममें ले आनेकी भी भारी समस्या हल कर दी है। एक बहुत ही उपयोगी सरेस सोयाबीन और मटरके दानोंसे तैयार किया गया है। ये दो पदार्थ इतने सस्ते और इतने काफ़ी तादादमें मिलते हैं कि आजकल अमरीकामें अधिकतर केवल इन्हीं दो पदार्थोंसे वनस्पति सरेस बनाया जाता है।

वनस्पति सरेस

अबतक तो वनस्पति सरेस अधिकतर कैसेवा नामक वनस्पतिकी जड़से माँड़ निकालकर ही बनाया जाता था। परन्तु यह वनस्पति न तो अमरीकामें बहुत पैदा होती है और न पैदा की ही जा सकती है। इस लिए वे लोग आलू, गेहूँ, चावल और अन्य अनाजों द्वारा सरेस तैयार करनेकी चेष्टा कर रहे हैं और इस कार्यमें वे काफ़ी सफलता प्राप्त कर चुके हैं। वर्तमानमें सफेद आलूका स्टार्च अति उत्तम पदार्थ जान पड़ता है और आलूके सरेसका व्यवसाय आज बहुत ही बढ़ गया है।

अबतक जो वनस्पति सरेस बने थे उनमें यह ख़राबी होती थी कि न तो वे पानीकी चोट सहन कर सकते थे और न शीघ्र चिपकते ही थे। उनके धब्बे पड़ जानेका भी डर रहता था परन्तु अब वैज्ञानिकोंने इस दोषको दूर करनेमें भी सफलता प्राप्त कर ली है।

अब तो प्रत्येक अनाज और वनस्पतिसे सरेस तैयार किया जा सकता है। कागज़ चिपकानेवाले गोंद अधिकतर मीठे आलूके माँड़से ही तैयार किये जाते हैं। आजकल लिफ़ाफ़ों और टिकटोंपर गोंद लगा रहता है। वह लगभग ८०% आलूके माँड़से ही तैयार किया जाता है।

इन दिनों सरेस बनानेवाले ऐसा सरेस बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं जिनपर न पानीका असर हो और जो न लकड़ी, शीशा या धातुओं आदिके सुकड़ जानेपर ख़राबी ला सकें। दुग्ध सरेसमें ऐसी ख़ूबिया अधिकतर पाई गई हैं। लगभग १½ मन दूधसे कम-से-कम तीन पौंड सरेस, चार पौंड चरबी और पाँच पौंड दुग्ध शक्कर तैयार होती है।

चरबी निकाल देनेके कारण दुग्धके उस रासायनिक पदार्थके गुणपर जिससे सरेस बनता है कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता और इसीलिए दुग्धशालाओंके लिए सरेसका व्यवसाय बड़ा उपयोगी है विशेषकर ऐसी दुग्धशालाओंके लिए जो खास तौरपर मक्खन, पनीर आदि तैयार करती हैं। जिससे सरेस बनता है उस रासायनिक पदार्थ 'केसिन' को गरम करके एक मलाई-की-सी तह जमा ली जाती है, फिर उसे धोकर और उसपर दबाव डालकर उसे ज़मीनपर पीस लिया जाता है। पानीसे कागज़पर चिपकानेके लिए यह बहुत ही उम्दा गोंद होता है। गंधकका तेज़ाब मिलाकर इससे बहुत अच्छे चमकीले बटन, कंघे आदि बनाये जाते हैं। इससे नक़ली कपड़ा, नक़ली चमड़ा और दीवारोंपर करनेवाले वार्निश भी तैयार किये जाते हैं। यदि इसमें कोई क्षार पदार्थ मिला दिया जाय जैसे चूना तो इससे ऐसा मज़बूत सरेस बनता है जिससे यदि एक लकड़ीके टुकड़ेमें दूसरा जोड़ दिया जाय तो चाहे लकड़ी टूट जाय पर जोड़ न खुलेगा।

सरेससे लकड़ी चिपकाना

आम तौरपर सख़्त लकड़ियाँ कठिनतासे जुड़ पाती हैं और मुलायम लकड़ियोंका जोड़ना आसान होता है।

अमरीकाके वैज्ञानिकोंने यह खोज की है कि ७५ डिग्रीके तापक्रमपर सरेस गरम करके लकड़ीपर लगानेसे अच्छा फल होता है। ७० डिग्रीसे ९० डिग्री तापक्रमतक सरेस अच्छा चिपकता है। इन वैज्ञानिकोंका यह भी कहना है कि जो लकड़ी आसानीसे न चिपकती हों उनको यदि १० प्रतिशत कॉस्टिक सोडाके घोलसे धोकर और दस मिनट सुखाकर सरेस लगाया जाय तो जुड़नेमें कठिनाई नहीं होती। यह आवश्यक है कि सरेस लगानेसे पहले तख्तोंको ख़ूब साफ़ और चिकना कर लेना चाहिए। इस कार्यके लिए रेगमालसे साफ़ कर लेना अच्छा रहता है।

साधारण घरेलू लकड़ीमें उसके वज़नका ७ प्रतिशत भाग पानी होता है। बाहरी सूखी लकड़ियोंमें १२ प्रतिशत भाग नमीका होता है। जिस लकड़ीमें सरेस लगाया जाय उसमें इतनी नमी रहनी चाहिए कि सरेस लगनेके बाद तैयार मालकी नमीके निकटतम ही हो और सरेसके कारण अधिक घट या बढ़ न हो जाय। एक इंच मोटे तख्ते जोड़नेमें सरेस लगभग लकड़ीके वज़नका १ प्रतिशत नमी सोख लेता है। पतले प्लाई बोर्ड बनानेमें जहाँ लकड़ीका अंश तो कम हो जाता है और सरेसकी मात्रा पहलेकी अपेक्षा बढ़ जाती है वहाँ कभी-कभी सरेससे नमी ४० प्रतिशत बढ़ जाती है। इसलिए पतले बोर्ड बनानेके लिए तो लकड़ी जितनी अधिक सूखी होगी उतना ही अच्छा है। लेकिन एक इंच या अधिक मोटी लकड़ी अधिक सूखी न होनी चाहिए। यदि लकड़ी आवश्यकतासे अधिक सूखी हो तो उसे पानीमें कुछ देर भिगोकर गीली कर लेना ठीक होगा।

सरेस कैसे लगाया जाय ?

सरकारी जानकारोंका अनुमान है कि एक हज़ार वर्ग फ़ुटके बोर्डपर यदि ७५ पौंड सरेस लगाया जाय तो जोड़ अच्छा चिपकता है या कम-से-कम ३७ वर्ग फ़ुटपर एक पौंड सरेस लगाया जाय तो भी अच्छा माल तैयार होगा। यदि सरेस सूखा हो तो एक हिस्से सरेसमें दो हिस्से पानी मिलाकर घोल तैयार करके लगाना चाहिए। पानी ठंढा और साफ़ होना चाहिए। अच्छा जोड़ लगानेके लिए यह भी आवश्यक है कि सरेस ठीक मात्रामें चौरस और शीघ्रतासे लकड़ीकी उस सतहपर फैलाया जाय जहाँ जोड़ लगाना हो। भारी सरेसको छोड़कर अन्य सरेस हाथसे भी अच्छे लग जाते हैं। पतले सरेस जो रक्त, माँस या दुग्धसे बनाये गये हों, ब्रुशसे अच्छी तरह लग सकते हैं। गाढ़े सरेसको लगानेके लिए लकड़ीकी कमची या लोहेकी छुरीसे काम लेना चाहिए। क्षारमय सरेसको लगानेके लिए तारका ब्रुश सस्ता पड़ता है और बहुत दिनतक चलता है।

सरेस लगानेके लिए कई प्रकारके यंत्र काममें लाये जाते हैं। एक दोहरा रोलर लगे हुए यंत्रसे तख्तेके दोनों तरफ़ एक ही साथ सरेस लगाया जा सकता है। एक ही रोलरवाला यंत्र भी होता है जिससे केवल एक ही तरफ़ सरेस लगता है। लकड़ियोंके सिरोंपर सरेस लगानेके लिए ऐसी सूराख़दार तश्तरियाँ बनाई गई हैं जो सरेसमेंसे भरी हुई निकलती हैं और सूराख़मेंसे सरेस टपककर लकड़ीके सिरेपर आसानीसे लगता चला जाता है। कुछ ऐसी मशीनें भी बनी हैं जिनसे सरेस खोखली चीज़ोंके अन्दर भरकर अन्दर ही अन्दर ब्रुश घुमाकर फैलाया जा सकता है, चाहे वे चीज़ें किसी भी आकारकी क्यों न हों।

लकड़ियोंको सरेससे जोड़नेके बाद उनपर दबाव डालनेकी आवश्यकता पड़ती है जिससे कि वे अच्छी तरह चिपककर एक हो जायँ और इस दबावके असरसे वायु और अनावश्यक सरेस भी बाहर निकल जाय। दबावसे ही सरेस चौरस होकर फैल भी जाता है और लकड़ीपर सब जगह एक मोटाईकी तह जम जाती है। यदि दबाव न पड़े तो तख्ते इधर उधर सरकनेका डर रहता है। पर दबावके कारण जबतक सरेस सूख न जाय एक तख्ता दूसरे तख्तेपर ठीक उसी जगह जमा रहता है जहाँ लगाया गया हो। इससे जोड़ बिल्कुल सही लगते हैं। यदि सरेस काफ़ी लगाया गया हो तब तो थोड़े ही बोझ ऊपर रख देनेसे संतोषजनक दबाव पड़ जाता है और यदि सरेसकी तह पतली हो

तो एक वर्ग इंच लकड़ीकी सतहपर १००० पौंडका वज़न रखनेसे ठीक दबाव पड़ता है। दबाव डालनेके लिए चूड़ीदार प्रेसमें भी दबाकर काम लिया जा सकता है। मोटी लकड़ियाँ चिपकानेके लिए एक आध घंटे ही दबाव डालना काफ़ी होता है परन्तु पतली लकड़ियोंको, जैसे प्लाईवुड, जोड़नेके लिए तीनसे बारह घंटेतक दबाव डालनेकी ज़रूरत पड़ जाती है।

अमरीकाके वैज्ञानिकोंका कहना है कि सबसे उत्तम सरेस वही होता है जिससे जोड़ अच्छा लगे, शीघ्र लगे, धब्बा न पड़े और जो सरलतासे बह सके और ऊँचा-नीचा न फैले। कभी-कभी खाँचेदार सतहमें जोड़ लगाना पड़ता है। ऐसी जगहके लिए इसी प्रकारके उत्तम सरेसकी आवश्यकता पड़ती है। दुग्धके केसिन नामक पदार्थसे जो सरेस बनता है वह ठंढा ही लगाया जाता है और इसमें यह विशेषता होती है कि इसका जोड़ पानीसे खुल नहीं जाता। सूखते ही इसके रासायनिक गुणोंमें परिवर्तन हो जाता है और फिर इसपर पानी असर नहीं करता। यदि इसमें बुझा हुआ चूना और मिला दिया जाय तो ऐसा बढ़िया घोल तैयार होगा कि पानी बिल्कुल ही असर न करेगा और जोड़को पानीसे कोई हानि न पहुँचेगी। तूतिया, हरिद, सैन्धक प्लविद, शैलेत, उदौषिद आदि रासायनिक पदार्थोंके मिला देनेसे केसिन सरेसकी जीवन-शक्ति तथा आयु और भी बढ़ जाती है। सोयाबीन और मटरसे बने सरेस दुग्धके केसिन सरेससे मिलता-जुलता ही होता है। आजकल यूरोपमें रक्त-एलब्युमेनका सरेस सबसे अधिक प्रयोगमें आता है क्योंकि पानीके असरकी सहन-शक्ति इसके बराबर शायद ही किसी अन्य प्रकारके सरेसमें पाई जाती हो।

जानकारोंका कहना है कि एक तख्तेको दूसरेपर चिपकानेकी उत्तम रीति यह है कि पहले दोनों तख्तोंपर एक पतला कोटिंग दिया जाय जिसके लिए एक भाग सरेसमें पाँच भाग, या सरेसके गुणानुसार कम अधिक, पानी मिलाकर घोल बनाया गया हो। फिर पहले कोटिंगको सूख जाने दिया जाय। इसके बाद दोनों तख्तोंपर गाढ़ा कोटिंग दिया जाय। अबकी बार घोलमें पहलेकी अपेक्षा १० प्रतिशत पानी कम रहे। जोड़ लगानेपर प्रति वर्ग इंच लकड़ीपर २०० पौंडका दबाव डाला जाय।

जन्म-कालके अङ्ग-विकार

(डा० उमाशंकरप्रसाद, एम० बी०, बी० एस०)

कभी-कभी हमें ऐसी घटना देखनी पड़ती है कि किसी घरमें नव शिशुके उत्पन्न होनेकी प्रसन्नता शीघ्र ही दुखमें परिणित हो जाती है क्योंकि बालकके किसी अंगकी रचनामें विकार मिलता है। सभी माता-पिताओंकी हार्दिक इच्छा होती है कि उनके बालक सुन्दर तथा स्वस्थ हों। शरीर-रचनामें इस प्रकारके विकार रहनेसे न केवल बालक कुरूप हो जाता है बल्कि कभी इस अंग-विकारके कारण उसके जीवित रहने न रहनेकी समस्या उपस्थित हो जाती है। यदि अभाग्यसे कोई विकार किसी लड़कीके शरीरमें रह जाये तब तो उस लड़कीका भविष्य ही बिगड़ जाता है और उसके माता-पिताको भी आगे चलकर बेचारीके लिए उपयुक्त पात्र ढूँढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती है। बहुधा उसके गले कोई अयोग्य पात्र बाँध दिया जाता है। बालकको भी कम कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। बचपनसे ही अपने सहपाठियोंके आगे विकारयुक्त अंगके कारण बालक अपनेको तुच्छ गिनने लगता है। इससे उसके मनमें दुर्बलता आ जाती है। ऐसे लोगोंको बड़े होनेपर नौकर

इत्यादि मिलनेमें भी बड़ी कठिनाई होती है। इससे प्रायः ऐसे लोग अपने परिवारपर भार हो जाते हैं। यदि उनके माता-पिता बाल्यकालमें ही अज्ञान या झूठा वात्सल्य प्रेम छोड़कर उपयुक्त डाक्टरकी राय लें तो कितने ऐसे बालकोंके विकार दूर किए जा सकते हैं और वे समाजके उपयोगी अंग बन सकते हैं। आजकल शल्य-शास्त्र बहुत उन्नतिपर है और प्रत्येक माता-पिताका कर्तव्य है कि अपने विकारयुक्त बालकोंको ईश्वरीय विधान समझकर न छोड़ दें बल्कि उनके दोषको दूर करनेका उचित प्रयत्न करें। इस छोटे लेखमें कुछ ऐसे विकार दिये जायँगे जिन्हें हम मामूली तौरपर प्रायः देखा करते हैं और जो बाल्यकालमें उचित उपचारसे ठीक किये जा सकते थे। कुछ विकार ऐसे भी हैं जिनमें कुछ नहीं हो सकता है पर फिर भी सुधारके लिए सभीका उचित इलाज करना ही ठीक है।

शरीर-रचनामें इस प्रकारके उत्पन्न विकारोंके कई कारण हैं। गर्भ-कालमें माताके विचारोंका प्रभाव गर्भके बालकपर बहुत अधिक पड़ता है और अंग-रचना भी उसी अनुसार होती है। गर्भाशयमें गर्भकी स्थितिका भी गर्भपर प्रभाव पड़ता है। अंतमें, माता-पिताके शुक्राणु तथा डिम्बका भी प्रभाव पड़ता है जिसके कारण बालक अपने माता-पिताका स्वभाव पाता है। भ्रूणकी रचनामें ये सब बातें अपना असर लाती हैं। फल-स्वरूप बालक उत्पन्न होनेपर हम सुन्दर बालक भी देखते हैं, या इसके विपरीत ऐसे आकृतिहीन माँस-पिंड भी देखते हैं जिनका रूप विकराल होता है। बहुधा ऐसा बालक मृत पैदा होता है या शीघ्र मर जाता है। कभी-कभी ऐसा बालक भी उत्पन्न होता है जिसमें अधिकांश अंग तो साधारण होते हैं पर कुछ असाधारण भी। हमें अंतिम जातिसे ही यहाँ मतलब है।

(१) साधारणसे अधिक अंग—इस जातिमें ऐसे शिशु आते हैं जिनमें कुछ अंगोंकी बनावट दोबारा हो गई है पर यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे अंग साधारण हों। प्रायः, उँगलियाँ पाँचकी जगहपर छः होती हैं और ऐसे लोग 'छाँगुर' कहलाते हैं। छठी उँगली साधारण होगी या उसमें नाखून न होगा और वह लटकी रहेगी। इसीलिए हमें कभी-कभी सरकसके तमाशोंमें ऐसे बालक देखनेमें मिलते हैं जिनके दो धड़ और दो सिर होते हैं। इस प्रकारके विकारमें साधारण नम्बरसे अधिक तायदादवाली उँगलियाँ काटकर आसानीसे निकाल दी जा सकती हैं।

(२) अंगकी बनावटमें कमी—ऐसे विकारोंमें किसी विशेष अंगका विकास पूर्णरूपसे नहीं होता। पंगु या लूले इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार मस्तिष्कका कोई भाग, या हाथ-पैरकी कोई हड्डी नहीं बन पाती है। ऐसे लोगोंमें कुछ नहीं किया जा सकता।

(३) जुड़नेकी कमी—शरीरके कुछ भाग आपसमें जुड़कर पूर्ण होते हैं। यदि उनमें कोई भाग पूरे आकारका बने ही नहीं या उसपर चमड़ेकी झिल्ली पड़ जाय जिससे दोनों भाग न जुटें तब ऐसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बालकोंमें ऊपरके ओंठ कटे प्रायः दिखलाई देते हैं। ये एक ही ओर या दोनों तरफ कटे होते हैं। ऐसे बच्चे माँका स्तन-पान भलीभाँति नहीं कर पाते। शल्य-चिकित्सासे इसमें पूर्ण सफलता मिलती है। कुछ बच्चोंके तालुओंमें भी इसी कारण छेद रह जाता है जिससे वे जब दूध पीते हैं तब उनकी नाकसे दूध बाहर निकल आता है। बड़े होनेपर शुद्ध उच्चारण भी नहीं हो पाता है। शल्य-चिकित्सा यहाँ भी उपयोगी है। कभी रीढ़ और कपालकी बनावटमें भी इसी प्रकारका विकार होता है जिससे सिरपर या रीढ़पर नीचे गोलाकार पिंड निकला रहता है और बच्चेके रोने या चिल्लानेसे यह पिंड और अधिक बड़ा हो जाता है। ऐसे बच्चे प्रायः मर जाते हैं। कुछ बच्चोंके नाभिके नीचे उदरकी बनावट पूरी नहीं होती है जिससे पेशाबकी थैली उदरकी दीवारसे ढकी नहीं रहती और थैली बाहरकी ओर खुलती है। ऐसी हालतमें मृत्यु हो जाती है पर शल्य-चिकित्साकी आज़मायश अवश्य की जाय लड़कोंकी मूत्रेन्द्रियमें पेशाब करनेका सूराख़ भी कभी-

कभी ठीक स्थानपर नहीं बना होता। कभी तो नीचे जड़के पाससे पेशाब निकलता है या कभी गुदामागके कुछ आगे एक छोटा छेद रहता है जिससे पेशाब निकलता है। शल्य-विशेषज्ञ इस प्रकारकी असाधारण रचनाको प्रायः ठीक कर देते हैं।

(४) भ्रूणके रचना-कालमें साधारणतः कुछ अंग धीरे-धीरे सूखकर गायब हो जाते हैं पर यदि किसी कारणवश ये अंग बालकके उत्पन्न होनेके समयतक बने रहें तो अंग-विशेषमें विचित्रता आ जाती है। किसी बालकके पैदा होनेपर गुदा-द्वार नहीं होता है। ऐसे बालकको यदि शीघ्र ही उचित शल्य-चिकित्सा न मिले तो वह शीघ्र ही मर जायगा पर चिकित्सा द्वारा बहुधा बालक बच जाता है। कभी-कभी गुदा-मार्ग और मूत्र-मार्ग एकमें ही मिले रहते हैं।

(५) कुछ बच्चोंके अंड पैदा होनेपर अंडकोषमें नहीं उतर पाते बल्कि पेटमें रह जाते हैं। चार-पाँच वर्षकी अवस्था होनेपर सरजनकी राय लेनी चाहिए क्योंकि यदि ऑपरेशन करके अंडोंको अंडकोषमें न रक्खा जायगा तो आँत उतरनेका डर, पुरुषत्व नष्ट होनेका डर तथा बुढ़ापेमें विषैला फोड़ा निकलनेका डर रहेगा। कभी-कभी हड्डियोंके बीचमें संधियाँ ही नहीं बन पातीं जिससे हाथ या पैर नहीं मोड़ा जा सकता।

बहुत-से बच्चोंके पैरके तलवे आगे, पीछे, अन्दर या बाहरकी ओर मुड़े रहते हैं जिससे बच्चा बड़ा होनेपर पैर सीधा करके नहीं चल सकता। यदि बचपनमें ही ऐसे बालकका उचित उपचार किया जाय तो बहुत कुछ सुधार हो सकेगा।

कभी-कभी बालकके उत्पन्न होनेपर देखा जाता है कि कंधे या कूल्हेकी हड्डी अपने स्थानसे हटी हुई है। यदि उसी समय हड्डी पुनः अपने स्थानपर लगाकर बाँध दी जाय तब तो ठीक है नहीं तो बालकके उस अंगमें दोष आ ही जायगा। इसी प्रकार हड्डियाँ मुड़ी हुई भी मिलती हैं। गर्भाशयमें बच्चे इस प्रकार रहते हैं कि जब किसी दुर्बल अंगपर अधिक दबाव पड़ता है या बच्चेका कोई दूसरा अंग उस अंगको दबाता है तब ऐसे दोष उत्पन्न होते हैं।

कभी-कभी कोई अंग (जैसे हाथ या पैर) साधारण अंगोंसे बहुत अधिक पतले रहते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि वे मानों रस्सीमें बाँध दिये गये हों। इनका भी कारण यही गर्भाशयका दबाव या किसी बन्धन (लिगमेंट) का खिंचाव होता है।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि बालक उत्पन्न होनेपर उसके प्रत्येक अंगकी परीक्षा सावधानीसे कर ली जाय। किसी असाधारण बातको पानेपर योग्य सरजनकी राय लेनेमें पिछड़ना नहीं चाहिए।

कृत्रिम मनुष्य या बोलती चालती मशीन

[श्री यमुनादत्त वैष्णव]

कृत्रिम मनुष्यके विषयमें लोग प्राचीन कालसे ही सोचा करते थे। जैसे वायुयानोंके विषयमें चार-पाँच हज़ार वर्ष पहिलेसे ही लिखते आए हैं किंतु वायुयानोंको बनाना और कार्य-रूपमें परिणित करना इसी शताब्दीमें सम्भव हुआ है उसी प्रकार कृत्रिम मनुष्यके विषयमें प्राचीन दन्तकथाओंमें तथा ऐसी ही अन्य पुस्तकोंमें अनेक उदाहरण हैं। आख्यानोपन्यासमें अलीबाबा और चालीस डाकुओंकी कहानीमें एक ऐसे फाटकका वर्णन है जो 'खुल समसैम' कहनेपर स्वयं, बिना किसी आदमीकी सहायताके, खुल जाता था। एक और कहानीमें एक पीतलकी मूर्त्तिका वर्णन है जो अनेक प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर दे देती थी। पर वास्तविक कृत्रिम

मनुष्यको थोड़ा ही समय हुआ। १९२२ में पहला कृत्रिम मनुष्य बना, और तभीसे ऐसे यंत्रोंको रोबट कहने लगे। रोबट जेक भाषाके 'रोबि' शब्दसे बना है जिसका अर्थ 'कार्य' करना है।

रोबट या कृत्रिम मनुष्य वास्तवमें अब ऐसी मशीनको कहते हैं जो आज्ञाओंको ठीक पालन कर सके। ऐसा तो सम्भव नहीं हो सकता कि एक रोबट सभी प्रकारके काम कर सके, किंतु ऐसे स्थानोंमें जहाँ मनुष्यको बड़ी देरतक बिलकुल व्यस्त होकर एक ही प्रकारका कार्य करना होता है और जी ऊबने लगता है उन स्थानोंमें रोबटसे काम लिया जाता है। सन् १९२७ में वेनस्लेने टेलीबाक्स नामक एक कृत्रिम मनुष्यका आविष्कार किया था। यह टेलीफोनके केन्द्रोंमें काम कर सकता है मनुष्यके लिए रात-दिन उन तारोंके बीचमें बैठकर फोन करनेवालोंके लिए प्रति क्षण ठीक-ठीक नम्बर मिला देना बहुत कठिन होता है, रोबटके लिए यह कोई कठिन बात नहीं। फोन देनेवाला अपना नम्बर कहता है। रोबट तुरंत उत्तर देकर बतला देता है कि आपको कितनी देर रुकना पड़ेगा। यदि लाइन साफ हो तो वह नम्बर मिलाकर बातचीत करनेके लिए कहता है। ऐसे ही रोबट बिजलीके कारखानों और छोटे स्टेशनोंमें काम करते हैं। वे मीटरको पढ़कर बड़े स्टेशनमें समाचार भेजते हैं। कौन 'स्विच' कहाँपर है, गैसका क्या दबाव है, पानीकी क्या सतह है, सुइयें किन-किन अंकोंपर हैं—इन सब प्रश्नोंका उत्तर वे पूछनेपर बतला देते हैं।

बोलती-चालती मशीन या नकली आदमी

उपरोक्त टेलीबॉक्स नामक कृत्रिम मनुष्यकी रचना ध्वनि-तरंगोंके सिद्धान्तपर हुई है। टेलीबॉक्ससे प्रश्न पूछनेवाला एक निश्चित स्वरकी ध्वनिका प्रयोग करता है। स्वरकी समानता दुसूलोंसे (ट्यूनिंग फार्कसे) की जाती है जो विद्युत धारासे
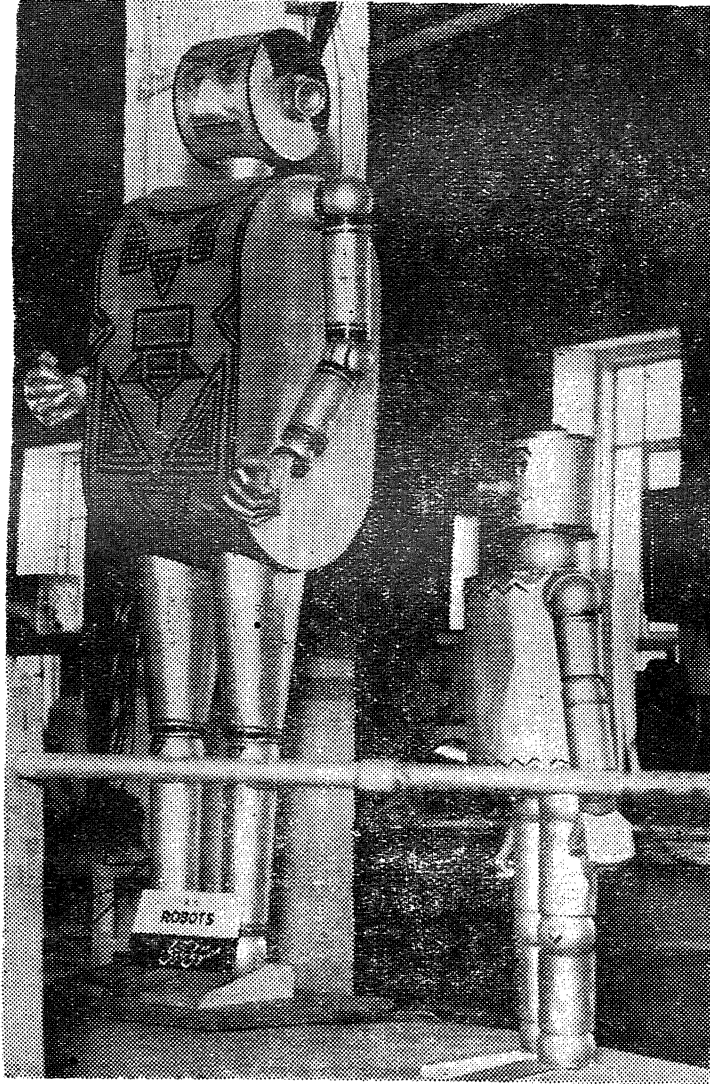
बजाये जाते हैं। जब किसी अन्य स्वरकी ध्वनिका प्रयोग किया जायगा तो रोबटतक समाचार न पहुँच सकेगा।

वाशिंगटन शहरमें एक ऐसा ही कृत्रिम मनुष्य है। इसे 'दि ग्रेट ब्रास ब्रेन' कहते हैं क्योंकि वह पीतलकी एक मूर्त्ति-सा है। यह भविष्यमें होनेवाले समुद्रोंके ज्वार-भाटाओंके तथा तूफानोंके विषयमें ठीक-ठीक बता सकता है। इसकी रचना ध्वनि-तरङ्गों और गणितकी आवर्तिक गतियोंके सिद्धांतपर हुई है। यह तरङ्गोंका आवर्तिक विश्लेषण करके पाँच-छः वर्षमें होनेवाले तूफानोंकी भी गणना कर सकता है।

अमेरिकाके एक औद्योगिक कार्यालयमें एक दूसरा कृत्रिम मनुष्य है, जो स्वयं मशीनका संचालन और निरीक्षण करता है। जब मशीनका कोई पुर्जा खराब हो जाता है तो वह मशीनको एकदम बन्द कर देता है ताकि संचालक या प्रबन्धक आकर देखे। जबतक कोई आकर मशीनको ठीक नहीं करता तबतक वह लाल रोशनीसे ख़तरेकी सूचना दिये रहता है। जब मशीन सब सामान बना चुकती है तो वह स्वयं मशीनको रोककर हरे प्रकाशसे कमरेको भर देता है ताकि प्रबन्धक आकर तैयार किए हुए सामानको उठानेकी आज्ञा दे। जब मैनेजर आकर बनी हुई वस्तुओंका निरीक्षण कर चुकता है, तो रोबट स्वयं सामान उठाकर उसे यथास्थान रख देता है।

ऐसे भी बहुत-से रोबट हैं जो बिना दिग्-दर्शक यंत्रके वायुयानोंका संचालन करते हैं। सबसे पहले १९२७ में आर्कलेण्डसे सेनफ्रेंसिसकोतक एक जहाजको एक रोबट ही ले गया, किसी मनुष्यने यंत्रोंको छुआतक नहीं। ऐसे रोबटको 'जाइरोस्कोप' कहते हैं। बहुत-से रोबट रासायनिक वस्तुओंको छूकर, चखकर, या सूँघकर ठीक-ठीक बतला सकते हैं। शशिम् (सेलेनियम) के प्रकाश-विद्युत सेलसे ऐसे रोबट भी बन गये हैं जो केवल देखकर ही रासायनिक विश्लेषण कर सकते हैं।

गणितज्ञोंने एक ऐसे इंटीग्राफ नामक रोचक यंत्रकी रचना की है जो कठिन-कठिन चलन-समीकरणोंको, जिन्हें मनुष्यका मस्तिष्क एक सप्ताहसे लेकर महीनोंतकमें हल नहीं कर सकता, क्षणोंमें हल कर देता है। इसकी रचना भी आवर्तिक विश्लेषण (हारमॉनिक ऐनेलेसिस) के सिद्धांतपर हुई है।

विज्ञानका उद्देश्य मनुष्यकी कठिनाइयोंका निवारण करना और उसे खूब अवकाश देना है और कृत्रिम-मनुष्य इन दोनों बातोंमें बड़े सहायक हैं।

परोंका रंग उड़ाना और उनका रँगना

[ले०—श्री लोकनाथ बाजपेयी, बी० एस-सी०]

परोंको रङ्गनेके पहिले यह ज़रूरी है कि पहले उनके ऊपरकी गर्द और उनकी चिकनाहट अच्छी तरहसे दूर कर दी जाय। इसके लिए उनको गुनगुने (या कुनकुने) साबुन और पानीके घोलमें धोना चाहिए। उसके बाद केवल गरम पानीसे और फिर ठंडे पानीसे धो डालना चाहिए। परोंका तेल रासायनिक विधिसे भी साफ़ किया जा सकता है। इसके लिए उनको (बानजावीन) बेनजीनसे धोना चाहिए और हो सके तो उनको एक आध घंटेतक उसीमें डुबो रखना चाहिए।

अब उनपर रङ्ग उड़ानेकी क्रिया करनी चाहिए। उदजन-पर-औषिद (हाइड्रोजन-पर-ऑक्साइड) में डुबानेसे उनका रङ्ग बिल्कुल उड़ जाता है और वे किसी तरहसे खराब भी नहीं होते। इस तरहसे रङ्ग उड़ानेके लिए खास तरहके बने हुए काँचके तसले आते हैं जिनकी लम्बाई क़रीब-क़रीब एक शुतुर्मुर्गके पंखकी लम्बाईके बराबर होती है और उसमें पन्द्रह या बीस ऐसे पर आ सकते हैं। ऐसे तसलेमें तीस प्रतिशत उदजन-पर-औषिदका घोल लेकर उसमें काफी अमोनिया

मिलानी चाहिए ताकि घोल शिथिल हो जाय। इसकी पहचान यह है कि जब नीला लिटमस कागज़ उसमें डुबोया जाय तो वह लाल न हो और जब लाल लिटमस कागज़ उसमें डुबोया जाय तो उसका रङ्ग पीला-सा बैङ्गनी हो जावे। जब ऐसा घोल तैयार हो जाय तब उसमें पहिलेसे साफ़ किये हुए परोंको डुबो देना चाहिए और तसलेको किसी काँचके टुकड़ेसे ढककर अँधेरेमें रख देना चाहिए। वक्तन-फवक्तन उनको उलटते-पलटते रहना चाहिए और अगर आवश्यकता हो तो थोड़ी-थोड़ी उदजन-पर-औषिद उसमें और मिलाते रहना चाहिए। इस तरहसे दस या बारह घंटेमें परोंका रङ्ग बिलकुल साफ़ हो जाता है। उनको तसलेसे निकालकर शुद्ध पानीसे धोनेके बाद हवामें हिलाते हुए सुखाना चाहिए। कभी-कभी इस तरहसे रङ्ग उड़ानेके बाद यह देखा जाता है कि परमें लगी क़लमका जो हिस्सा है वह अच्छी तरह साफ़ नहीं होता है इसलिए उस हिस्सेको भिगोकर अमोनियम कार्बनेतसे रगड़कर साफ़ कर लेना चाहिए।

ऐसे साफ़ किये हुए पर तरह-तरहके रंगोंमें रँगे जा सकते हैं। जितना गाढ़ा या हलका रंग रँगना हो उस हिसाबसे रंगका घोल तैयार करना चाहिए और खौलते हुए घोलमें पर छोड़कर बराबर हिलाते रहना चाहिए पर रँगनेके लिए अधिकतर विलायती रंगोंका इस्तेमाल किया जाता है जैसे क्राइसोडिन ए० सी०, फुकशिन, सैफ़नीजको मिथिलीन वायलेट, मिथिलिन ग्रीन इत्यादि।

कुछ ऐसे भी रंग हैं जो कि गंधकके तेजाबमें घुलते हैं और पर घोलमें डालकर रँगे जाते हैं जैसे फुकशिन, एसिड मैरूनओ, ओयल ब्लू, काटन ब्लू नैप्थलीन ग्रीनओ, फास ब्लू ओ आर, ऐज़ो यलो। इस तरह रँगनेके बाद उन्हें हलके-से पानीमें धोकर हवामें हिलाते हुए सुखाना चाहिए।

जब एक परमें कई तरहके रंग देने हों तो फौवारेवाली पिचकारीमें अलग-अलग रंग भरकर परके ऊपर छिड़कने चाहिए।

छपाईका एक सरल और सस्ता तरीका

'ससामिमो' प्रिंटर

[मूल लेखक— श्रीश्याम बिहारीलाल श्रीवास्तव, सोनकछ; संशोधक— श्री ओंकारनाथ शर्मा]

जिन पाठकोंको छपाईके काममें दिलचस्पी है, उन्होंने स्टीर्यो टाइपका नाम तो सुना ही होगा। जब कि किसी प्रकाशकको किसी भी प्रकाशनकी हज़ारों प्रतियाँ छापनी होती हैं उस समय स्टीर्यो टाइपसे काम लिया जाता है। स्टीर्यो टाइप तैयार करनेके लिए साधारण टाइपसे पहिले 'मैटर' को कम्पोज करके टाइपके उस ब्लाकसे एक साँचा तैयार कर लेते हैं और उस साँचेमें पिघला हुआ स्टीर्यो टाइपके धातुका मिश्रण डालकर उसी मैटरके कई प्लेट तैयार कर लिये जाते हैं। इस प्रकारके एक ही प्लेटसे पाँच-छः हज़ार प्रतियाँ छापी जा सकती हैं। इस प्रकारके प्लेट अगले संस्करणोंके लिए भी बनाकर सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं, जिससे अगले संस्करणोंपर कम्पोजिंगका खर्चा बच जाता है।

स्टीर्योके प्लेट ढालनेके लिए साँचे या तो काग़ज़के बनाये जाते हैं या प्लास्टर आफ पैरिसके। काग़ज़के एक साँचेसे कई प्लेट ढाले जा सकते हैं, लेकिन प्लास्टर आफ पैरिसके एक साँचेसे केवल एक ही प्लेट ढाला जा सकता है, लेकिन वह होता है बहुत शुद्ध और साफ़।

जिस तरीक़ेका वर्णन हम इस लेखमें करनेवाले हैं, वह प्लास्टर आफ पैरिसके साँचेसे स्टीर्यो तैयार करनेकी तरकीबसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। भेद केवल इतना ही है कि प्लास्टर आफ पैरिसका साँचा तो कम्पोज़ किये हुए टाइपसे ढालकर तैयार किया जाता है, लेकिन प्रस्तुत लेखमें जिस विधिका वर्णन हम करने जा रहे हैं, उसका साँचा साइक्लोस्टाइलके स्टेंसिलकी भाँति स्पातकी नोंकदार क़लमसे हाथसे खोद-कर तैयार किया जाता है। इसकी छपाई उसी प्रकार होती है जैसे कि स्टीर्योंके प्लेटको किसी हेन्डप्रेसमें लगाकर उसपर रोलरसे स्याही लगा-लगाकर छापें। स्टीर्योंके एक ब्लाकसे तो हजारों प्रतियाँ छापी जा सकती हैं, लेकिन इस विधिसे उसके मुकाबिलेमें बहुत कम। जब दोनोंके खर्चका मुकाबिला करते हैं तो इस तरीक़ेको आश्चर्यजनक मात्रामें सस्ता पाते हैं।

मूल लेखकका दावा है कि इस विधिसे "केवल ३ पैसेमें ५०० प्रतियाँ बड़ी आसानीसे छापी जा सकती हैं।" छपाई आदिके कामके लिए एक कापी प्रेस अर्थात् दाब मशीनकी जरूरत पड़ेगी। मूल लेखकके अनुमानसे इस प्रकारकी मशीन २) या २॥) में लकड़ीकी तैयार हो सकती है। एक अच्छी दाब मशीन हर एक प्रसमें होना जरूरी है। उसका जिल्दसाजी आदिमें भी उपयोग हो सकता है। इस प्रकारकी मशीनें कापी प्रेस कहलाती हैं। मूल लेखकने जिस प्रकारकी दाब मशीन तजवीज की है वह मेरी रायमें बहुत कमजोर है। इस लेखके साथमें लकड़ीके कापी प्रेसका एक बड़ा मजबूत डिजाइन दिया है जो लगभग ५–७ रुपयेमें तैयार हो सकता है। असली खर्चा इसमें चौकोर चूड़ी-वाले बड़े पेचका ही है, जो बड़े शहरोंमें किसी मिस्त्रीसे खराद मशीनपर बनवाया जा सकता है अथवा मौकेपर कबाड़ियोंसे भी सस्तेमें मिल सकता है। इस पेचके सम्बन्धकी विशेष बातें जाननेके लिए, देखिये 'यांत्रिक चित्रकारी—प्रथम भाग' पृष्ठ सं० ७८ (विज्ञान-परिषद्से प्राप्य)। इस लकड़ीके कापी प्रेसका वर्णन लेखके अन्तमें किया जायगा। लोहेका साधारण कापी प्रेस लगभग ५०) में मिल सकता है।

ससामिमो प्रेस तैयार करनेकी विधि

साँचा बनानेका मसाला—यह मसाला मोम और साबुनको मिलाकर बनाया जाता है इसका नाम हम 'मोसोसा' रख सकते हैं। मोम पानीमें कड़ा हो जाता है, और गरमीसे पिघलकर पानी या तेलकी भाँति पतला हो जाता है। पतली हालतमें किसी चीज़-पर पुते हुए मोमको क़लमसे खुरचकर लिखाई और नक्क़ाशी भी की जा सकती है। यदि मोमकी गहरी तह जमाकर उसपर किसी सुई या क़लमसे नक्क़ाशी की जावे तो वह अक्सर चटख भी जाया करता है। इस ऐबको मिटानेके लिए उसमें ज़रा-सा सोडा मिला दिया जाता है, जिससे उसके कण कुछ बड़े हो जाते हैं, वह चटखता नहीं और खोदते समय आसानीसे कटता है। साबुन मिलानेसे मोमके कण जुड़े रहते हैं।

मोसोसा तैयार करना—

मोम (बड़ी मोमबत्तीका)	१० तोला
सोडा (साधारण, कपड़ा धोनेका)	१ तोला
साबुन (सनलाइट)	½ तोला

पहिले मोमको पिघलाकर उसमें सोडा और साबुन डाल दीजिये। जब सब मिल जाय तब उसे उपयोगके लिए रख छोड़िये। यह मसाला ५० प्लेटके लिए काफी होगा। प्लेटका साइज़ साधारण पुस्तकोंके नापका समझना चाहिए।

साँचा बनानेकी विधि—एक चिकना पट्टेका टुकड़ा लीजिये अथवा उसके स्थानपर डबलटीनका टुकड़ा। जितना बड़ा प्लेट बनाना हो उसीके नापका टुकड़ा लेना चाहिए और उसपर निम्नलिखित क्रियाएँ करनी चाहिए।

क्रिया १:— पहिलेसे तैयार किये हुए मोसोसा नामक मसालेको आगपर रखकर इतना गरम करना चाहिए कि उसमेंसे धुआँ निकलने लगे। फिर उसे

उतारकर मंदी आँचपर रखना चाहिए। जब धुआँ बन्द हो जाय तब उसे किसी प्रकारके मुलायम बालोंके ब्रुशसे, अथवा उसके अभावमें कपड़ेका पोता बनाकर उससे, उस पट्टे अथवा टीनके टुकड़ेपर पोत दीजिये। पोतनेके बाद लगभग २ मिनिटमें वह काफी कड़ा हो जावेगा। फिर उसपर इसी प्रकारसे दो-दो मिनटके अन्तरपर दो-तीन दफे एकसार और पोतिये। इस प्रकारसे जब $\frac{1}{16}$ इंचके लगभग मोटी मसालेकी तह जम जावे, तब समझना चाहिए कि प्लेट तैयार हो गया है। मसाला इस प्रकारसे पोतना चाहिए कि जिससे प्लेट-पर ऊँची-नीची धारियाँ न पड़ें।

क्रिया २:— मसाला पोतते समय यदि धारियाँ पड़ ही जायँ तो उन्हें बराबर करनेके लिए किसी सिगरेटके डिब्बेके ढक्कनसे खुरच देना चाहिए।

क्रिया ३:— खुरचनेके बाद जब मसाला समतल हो जावे तब उसपर लिखाईका काम करना चाहिए। लिखनेके लिए क़लमकी जैसी लकड़ीकी एक डंडी बना लेनी चाहिए और उसके सिरेपर आवश्यकतानुसार मोटी या पतली सुई लगा लेनी चाहिए और उसकी मोटी नोंकसे मसालेमें खोदकर लिखना चाहिए।

क्रिया ४:— मज़मूनकी लिखाई पूरी कर चुकनेपर हाशियेमें कुछ आड़ी टेढ़ी लकीरें खींच देना जरूरी है। इन लकीरोंके कारण, रोलरसे स्याही लगाते समय, अक्षरोंकी जड़में स्याही नहीं लगने पावेगी।

क्रिया ५:— मज़मूनकी खुदाई करते समय मोसोसाकी खुरचन अक्षरोंके आसपास फैल जाया करती है, उसे साफ करनेके लिए प्लेटपर थोड़ा-सा सोडा डालकर किसी मुलायम कूँचीसे झाड़ देना चाहिए। ध्यान रहे कि वह अक्षरोंकी लकीरोंमें फिरसे न भरने पावे।

क्रिया ६:— खुरचनको झाड़कर साफ कर देनेपर खुदे हुए मज़मूनको एक बेर फिर ध्यानसे देखना चाहिए और जहाँ कहीं लिखाईमें कसर रह गई हो उसे ठीक गहराईतक खोदकर, अथवा ग़लत हिस्सेपर फिर मोसोसा पोतकर और बराबर कर गलतीको ठीक कर लेना चाहिए।

क्रिया ७:— जब मज़मून बिल्कुल ठीक और साफ हो जाय तब उसपर तेलका एक पोता इस प्रकार फेरना चाहिए जिससे तेलकी चिकनाई हरूफोंकी जड़तक पहुँच जाय।

अब समझना चाहिए कि यह साँचा छपाईके लिए प्लेट ढालनेके योग्य हो गया है।

छपाईके लिए प्लेट तैयार करनेका मसाला

यह मसाला सरेस, साबुन और पीली मिट्टीके मेलसे तैयार होता है, इसीलिए इसका नाम सूत्र रूपसे हम 'ससामि' रखते हैं।

सरेसकी खासियत यह होती है कि वह पानीके साथ पकाया जानेपर पतला, लसदार और ढलाई करनेके योग्य हो जाता है और सूखनेपर बहुत कड़ा हो जाता है। लेकिन इसके बने हुए अक्षर गेल्वनाइजके प्रेसके अक्षरोंसे कम मजबूत होते हैं अर्थात् उतना दबाव नहीं सह सकते। साथ ही में सरेसमें एक गुण और है, वह यह कि लीथोके अक्षरोंकी भाँति प्रेसकी स्याहीको वह पकड़ता और छोड़ता भी रहता है। यदि सरेसके साथमें कुछ साबुन भी मिला दिया जावे तो उसका यह गुण और बढ़ जाता है। सरेसमें एक ऐब भी है, वह यह कि गीला होनेके बाद सूखनेपर वह सिकुड़ता और ऐंठता है।

यदि सरेसके साथ कुछ बारीक छनी हुई पीली मिट्टी मिला दें तो वह सूखनेपर सरेसको बिना सुकड़े और ऐंठे बहुत कड़ा बना देगी, जिससे वह काफी दबाव सहने योग्य हो जावेगा, और साथ ही में अपना लस और चिकनाहट भी छोड़ देगा। यदि इस मिश्रणमें थोड़ी-सी मैथेलेटेड स्प्रिट भी डाल दी जावे तो उससे सरेसकी बदबू जाती रहेगी और सारा मिश्रण जल्दी सूखने योग्य हो जावेगा।

ससामि तैयार करनेकी विधि

सरेस (साफ सफेदी लिए हुए, पिसा हुआ)— १० तोला

साबुन (सनलाइट)......... २ तोला
मिट्टी (पीली, कपड़छनी)...... ८ तोला

सरेसको किसी डिब्बेमें डाल दीजिये और उसमें ऊपरसे इतना पानी डाल दीजिये कि सरेस बिल्कुल डूब जावे। फिर उसे कम-से-कम १२ घंटेतक गलने दीजिये और गल जानेपर उसमें साबुनका बारीक छीलन और मैथेलेटेड स्प्रिट आवश्यकतानुसार मिला दीजिये और डिब्बेके ढक्कनको कसकर बन्द कर दीजिये। ढक्कनको बन्द इस प्रकार करना चाहिए कि डिब्बेको आँचपर चढ़ानेसे भाप बिल्कुल न निकले। यदि शक हो तो आटे वग़ैरः किसी भी चीज़से ढक्कनके जोड़को खाम देना चाहिए। फिर गरम करनेके लिए उस डिब्बे-को औटते हुए पानीमें रखकर लगभग आध घंटेतक गरम करना चाहिए। जिस प्रकारकी दोहरी बाल्टीमें सरेस पकाया जाता है, वैसा यदि प्रबन्ध हो जाय तो सबसे अच्छा, नहीं तो मंदी आँचपर गरम करना ही काफी होगा। काफी समयतक गरम हो चुकनेपर उसे उतार लीजिये और ढक्कन खोलकर, गरम-गरममें ही, थोड़ी-थोड़ी मिट्टी हल करते जाइये। असलमें मिट्टी इतनी मिलानी चाहिए कि जिससे वह मिश्रण खिलौने बनानेवालोंकी लुगदी या गाढ़े दहीके समान हो जावे। वह भी ऐसी कि कूँचीसे किसी चीज़पर गाढ़ा-गाढ़ा पोतने-से दो-तीन हाथमें ही सूखनेपर लगभग $\frac{1}{16}''$ मोटाई-की तह जम जावे। इस प्रकारकी लुगदीको किसी चौड़े मुँहके डिब्बेमें भरकर इस्तेमालके लिए रख छोड़िये। यदि काममें लाते समय यह समामि बहुत कड़ी मालूम पड़े तो उसमें स्प्रिट या गला हुआ सरेस मिला-कर आवश्यकतानुसार मुलायम कर लेना चाहिए। जिस प्रकारसे गला हुआ गोंद रक्खा जाता है उसी प्रकार पानीमें गला हुआ सरेस भी रखना चाहिए।

छपाईके लिए प्लेट ढालनेकी विधि

क्रिया ८: —क्रिया ७ के कर चुकनेपर जो साँचा तैयार होता है, उसके ऊपर किसी मुलायम कूँचीसे खूब गाढ़ी-गाढ़ी ससामि पोत देनी चाहिए। ध्यान रहे कि समामिकी लुगदीमें गाँठ न रहें। यह पुताई ऐसी होनी चाहिए कि साँचेमें खुदे हुए हरूफोंमें समामि खूब भर जानेके बाद, मोसोसाकी तहके ऊपर भी लग-भग $\frac{1}{16}''$ की तह जम जावे और हरूफोंके गड्ढे बेमालूम हो जावें। यदि एक बेरमें $\frac{1}{16}''$ की तह न जमें तो दो-तीन हाथ फेरनेसे तो जम ही जानी चाहिए। जब यह तह बिलकुल सूख जावे तब उसके ऊपर कुछ खालिस सरेस चुपड़ देना चाहिए।

क्रिया ९ :—जब कि ऊपर चुपड़ा हुआ सरेस कुछ चिपकना हो जावे तब उसपर काग़ज़के पट्टेकी एक खुर-दरी दफ़ती उसी फरमेके नापकी काटकर चिपका देनी चाहिए।

क्रिया १० :—ऊपरकी सब क्रियाएँ करनेके बाद हमारे पास एक ऐसा प्लेट तैयार हो जाता है कि जिसके एक तरफ तो काग़ज़की चिकनी दफ़ती अथवा डबल टीनका टुकड़ा है, उसके ऊपर मोसोसाकी सतह है, जिसमें मजमून खोद रक्खा है, उसके ऊपर ससामि-की सतह है जो खुदे हुए हरूफोंमें भी भरी हुई है, उसके ऊपर सरेसकी सतह है और सबके ऊपर एक खुरदरे काग़ज़की दफ़ती है और यह सब सूखकर एक जिगर हो गया है।

अब इस सबको लोहेके किसी चौरस तवेपर इस प्रकार हल्के-हल्के सेंकना चाहिए कि जिससे दफतियाँ तो जलने न पावें, लेकिन मोसोसा जो कि मोम, सोडा और साबुनका मिश्रण है गल जावे। इसके गलते ही वह चिकनी दफ़ती अथवा टीन, जो फरमा (साँचा)बनाने-के लिए सबसे पहिले ली थी, अलहदा हो जावेगी; यह दुबारा भी काममें आ सकती है।

क्रिया ११:—अब जो हमारे पास शेष रह जाता है वह खुरदरी दफ़तीके ऊपर चिपका हुआ ससामिका एक प्लेट है जिसमें उभरे हुए उल्टे हरूफ बने हुए हैं। इन हरूफोंके पास थोड़ा-थोड़ा मोसोसा लगा हुआ रह जायगा। इसे हटानेके लिए यदि गरम-गरम प्लेटपर थोड़ी-सी छनी हुई गरम-गरम राख डाल दी जावे, तो वह उस मोसोसाको अपने अन्दर जज्ब कर लेगी।

फिर उस राखको किसी कपड़ेसे, हलके हाथसे, पोंछ देना चाहिए। अब उस प्लेटपर ज़रा-सा तेल चुपड़कर पोंछ डालना चाहिए जिससे वह बिल्कुल साफ और चिकना हो जावे।

क्रिया १२ :—अब यह प्लेट बिल्कुल ऐसा ही हो गया है जैसा कि स्टीरियोका प्लेट अथवा चित्र छापनेका लाइन ब्लाक। इस प्लेटपर रोलरसे स्याही लगाकर एक प्रूफके कागजको बीच-बीचमेंसे, जहाँ मजमून छपा हुआ है, काटकर निकाल देना चाहिए और केवल हाशिएको रख लेना चाहिए। यह एक प्रकारका सेफर बन जावेगा जैसा कि अक्सर दाब प्रेसोंसे छापते समय काममें लाया जाता है। यदि ब्राउन पेपरके कुछ बँधे हुए नापके सेफर बनाकर तारकी चौखटोंमें लगाकर रख दिए जावें तो सबसे अच्छा रहे, क्योंकि उन्हें उठानेरखनेमें भी आसानी पड़ेगी और बारबार नया सेफर बनानेकी झंझट भी मिट जावेगी।

छपाईका तरीका

पहिले रोलरसे प्लेटपर स्याही लगानी चाहिए फिर उसपर सेफर लगाकर और छपनेवाला कागज सही-सही रखकर और तब सबको दाब प्रेसमें रखकर एकसा दबाव पहुँचाना चाहिए। दाब प्रेसके अभावमें साइक्लोस्टाइलके जैसे रबरके रोलरको फेरना चाहिए, इसके भी अभावमें केवल हाथसे इकसा दबाव देनेसे ही काम चल जायगा। हाथसे इकसाँ दबाव पहुँचानेके लिए यह आवश्यक होगा कि प्लेटके नापकी सागवानकी लकड़ीकी एक चौरस पटिया बना ली जावे और उसके एक तरफ पतली फलालैनकी गद्दी चिपका दी जावे। जब हाथसे दबाव पहुँचाना हो तब फलालैनको कागजकी तरफ रखते हुए पटियाके ऊपर बीचमें हाथ रखकर आवश्यकतानुसार दबाव दे दिया जाय। पटियाकी लकड़ी ऐसी होनी चाहिए कि जिससे वह ऐंठने न पावे। यदि उसे ड्राइंग बोर्डकी तरह खाँचे डालकर और कुस्तीयान लगाकर बनाया जायगा तो वह नहीं ऐंठेगी।

'ससामिमो " प्रिंटरसे चित्र छापना

यदि मोसोसाके प्लेटपर हरूफ खोदनेके बदले, चित्र खोद दिया जावे तो वह भी छप सकता है। यदि लिखनेवालेको खुले हाथ चित्र खोदनेका अभ्यास हो तो अक्षरोंकी खुदाईकी भाँति चित्र भी खोद सकता है; यदि अभ्यास न हो तो नीचे लिखी तरकीब काममें लानी चाहिए।

क्रिया सं० २ के बाद जब मोसोसाका समतल प्लेट तैयार हो जावे तब उसपर कपड़ेसे छना हुआ खड़ियाका चूर्ण किसी बारीक कपड़ेसे छानकर एकसा फैला देना चाहिए और फिर उस प्लेटको उबलते हुए पानीके बरतनके ऊपर रखकर भापसे हल्काहल्का गरम करना चाहिए। ऐसा करनेसे मोसोसा कुछ-कुछ पिघलकर चिपचिपा-सा हो जायगा और ऊपर फैलाई हुई खड़ियाको पकड़ लेगा। इस प्रकारसे उसके ऊपर खड़ियाकी बहुत पतली सतह जम जावेगी। भापपर गरम करते समय यह ध्यान जरूर रखना चाहिए कि मोसोसा कहीं गलकर अधिक पतला न हो जावे, जिससे वह बह निकले। जब खड़ियाकी सतह उसपर जम जावे तब थोड़ी खड़िया और फैलाकर प्लेटको ठंढा होनेके लिए नीचे उतार लेना चाहिए।

जो चित्र मोसोसाके प्लेटपर बनाना हो उसका उल्टा किसी पतले कागजपर कापिंग स्याहीसे बना लेना चाहिए। फिर प्लेटपर लगी हुई खड़ियाकी सतहपर उस चित्रको उल्टा चिपकाकर और कुछ नमी देकर रबड़के रोलरको उसपर खूब फेरना चाहिए जिससे वह चित्र प्लेटपर सीधा उतर आवेगा। यदि इस चित्रमें कहीं अशुद्धि रह गई हो तो उसे ठीक भी कर देना चाहिए। इस प्रकारसे जब सीधा चित्र खड़ियाकी सतहपर साफसाफ बन जावे तब उस चित्रकी लकीरोंके ऊपर खुदाई करनी चाहिए। इस प्रकारसे चित्रकारीका थोड़ा अभ्यास रखनेवाले भी अच्छा चित्र खोद सकते हैं।

'ससामिमो' प्रिन्टर द्वारा टाइपके जैसे सुन्दर अक्षर छापना

जिस प्रकारसे रबड़के स्टाम्प बनानेके लिए पहिले

सीसेके टाइप द्वारा मैटरको कम्पोज कर लिया जाता है उसी प्रकार मजमूनको सीसेके टाइपों द्वारा इस कार्यके लिए बनी हुई फ्रेममें कम्पोज़ कर लेना चाहिए। फिर जिस प्रकारसे कम्पोज किये हुए टाइपोंकी सहायतासे प्लास्टर आफ पैरिसका मोल्ड अर्थात् साँचा। बना लिया जाता है उसी प्रकार टाइपोंपर तेल चुपड़कर पिघला हुआ मोसेसा डालकर जमा लेना चाहिए और टाइपोंको सावधानीसे बाहर निकाल लेना चाहिए। इस काममें बड़े अभ्यासकी जरूरत है। इस प्रकारके बनाये हुए साँचेमें भी गलतियाँ और टूट-फूट ठीक हो सकती हैं। आवश्यकता है सावधानी और अभ्यासकी। बनाया जाता है जो बड़ा महँगा पड़ता है। यहाँ-पर जिस कापी प्रेसका डिजाइन दिया है वह किसी भी प्रकारकी सख्त लकड़ीसे बनाया जा सकता है। चित्रमें सब हिस्सोंके खास-खास नाप तो दिखा दिये गये हैं और अन्य नाप उन्हें बनानेवाला बढ़ई अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार निश्चय कर सकता है।

(क) २८ इंच लम्बा, १० इंच चौड़ा और ६ इंच मोटा लकड़ीका टुकड़ा है। १०" की चौड़ाईके बीचमें पेच (ज) की बुशको फँसानेके लिए गोल छेद कर दिया है। बुशकी कालर नीचेकी तरफ रक्खी गई है।
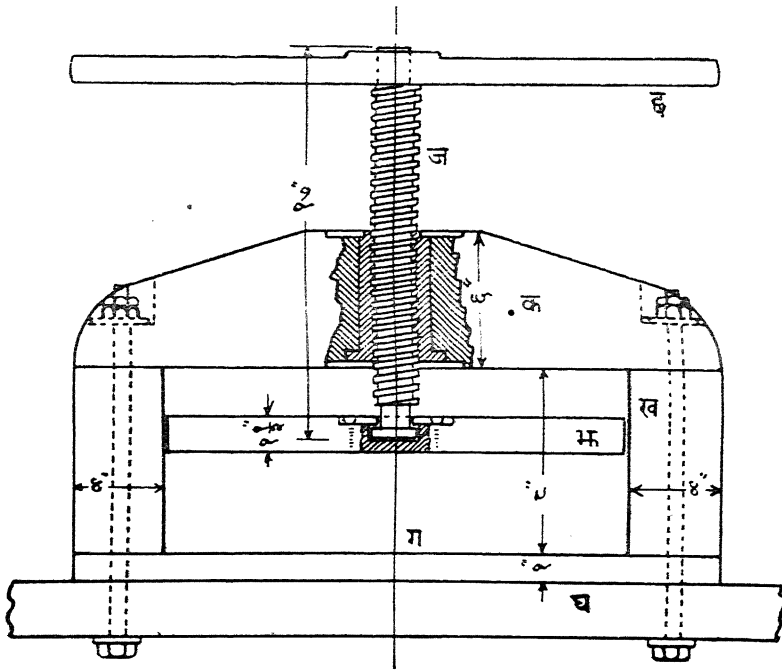
कापी प्रेसका सामनेका दृश्य (फ्रंट ऐलीवेशन)

जब साँमा सही तैयार हो जावे तब उसमें गला हुआ ससामि यथाविधि कर देना चाहिए।

लकड़ीके कापी प्रेसका संक्षिप्त वर्णन

कापी प्रेसका ढाँचा अक्सर ढले हुए लोहेका उसके ऊपर और नीचे लोहेके ६" चौकोर और ¼" मोटे प्लेट (बीचमें पेचके लिए गोल छेद कर करके), बोल्टों-से कस दिये गये हैं जिससे कि बुश निकलने न पावे। इस कामके लिए ½" मोटे या ¾" मोटे बोल्ट काफी

होंगे। इस लकड़ीका छँटाव यदि जैसा 'सामनेके दृश्य' में दिखाया है, वैसा बना दिया जावे तो वह सुन्दर भी जँचेगा और मजबूत भी रहेगा।
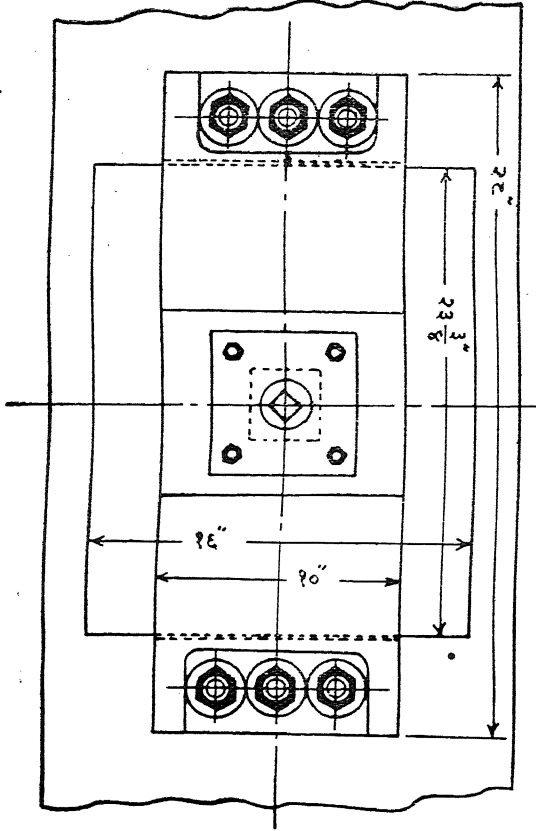
कापी प्रेसके बगलका, लम्बाईके सहारेका दृश्य

(ख) १० इंच लम्बे, ४ इंच चौड़े और ८ इंच ऊँचे लकड़ीके २ पाये हैं जो कापी प्रेसके 'सिर' (क) और 'पेंदे', (ग) के बीचमें लगाये गये हैं। (क, ख और ग) तीनों, तीन-तीन लम्बे बोल्टों (स) द्वारा एक बड़ी मजबूत मेज (घ) के साथ कस दिये गये हैं। ये बोल्ट लगभग १६" लम्बे और १" मोटे होने चाहिए। इनके साथ, ऊपर और नीचे, एक-एक वाशर भी लगाना जरूरी है। यह ढीले न होने पावें इसलिए साधारण नटके ऊपर एक-एक चेक-नट भी लगाना चाहिए।

(ज) लगभग $१\frac{१}{४}$" व्यास और कुल १७" लम्बाईका चौकोर चूड़ीवाला पेच है। इसके ऊपर चौकोर चूल बनी हुई है जिसमें एक लम्बा हेन्डिल (छ) लगा हुआ है। इस पेचके नीचेके सिरेपर एक कालरदार चूल बनी है जो पटरे (झ) के बीचोंबीच बने हुए गोल छेदमें बैठ जाती है। यह पेच इस पटरेमें से निकल न जाय और घूमता भी रहे इसलिए लोहेकी प्लेटोंके दो टुकड़े, जिनमें पेचकी चूलके नापके दो आधे-आधे छेद कटे हुए हैं, अपने स्थानपर बैठाकर लकड़ीके पेचोंसे जड़ दिये हैं।

(झ) यह पटरा $२३\frac{३}{४}$" लम्बा, १६" चौड़ा और $१\frac{१}{२}$ इंच मोटी लकड़ीका होना चाहिए। लकड़ी ऐसी होनी चाहिए कि जो ऐंठे नहीं। (ख) चिन्हित पायोंके भीतरके सिरे और इस पटरेके बाहर के सिरे जो आपसमें रगड़ खाया करते हैं लोहेकी पत्ती लगाकर मज़बूत बनाये जा सकते हैं।॰

॰टिप्पणी:—श्री श्यामबिहारीलालजीने बड़ी कृपा करके यह लेख 'विज्ञान' के लिए लिखा जिसमें उनके मौलिक कार्यका भी उल्लेख है। हमारी प्रार्थनापर श्री ओंकारनाथजीने इस लेखमें आवश्यक संशोधन कर दिए हैं, जिससे मूल लेखका रूप कुछ परिवर्तित हो गया है। लेखकके कुछ चित्र भी इसमें नहीं दिए गए हैं। आशा है कि हमारे प्रेमी श्री श्यामबिहारीलालजी इस धृष्टताके लिए हमें क्षमा करेंगे।

स० प्र०

विज्ञान और उद्योग-धन्धे*

[ले०— प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा]

आधुनिक वैज्ञानिक युगमें विज्ञानके महत्त्वपर कुछ कहना आवश्यक नहीं है। विज्ञानके द्वारा प्रस्तुत आज सैकड़ों ऐसी वस्तुएँ हैं जो हमारे जीवनके अत्यावश्यक अङ्ग बन गई हैं और जिनके न रहनेसे आज हम शायद सभ्य भी न कहे जाते। पर हमारे देशमें कुछ लोग ऐसे हैं जो विज्ञानके अध्ययनके महत्त्वको अब भी नहीं जानते और यह समझते हैं कि विज्ञानके अध्ययनसे देशको कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा है और विज्ञानकी पढ़ाई और अन्वेषणमें जो धन व्यय हो रहा है वह व्यर्थ है। ऐसे लोगोंके विचारमें विज्ञानकी पढ़ाईसे देशकी आर्थिक दशाके सुधारमें कोई विशेष सहायता नहीं प्राप्त हो रही है। आजकल बेकारीका प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिसकी ओर देशके शासकोंसे लेकर एक साधारण नागरिकतकका ध्यान आकर्षित हुआ है। वास्तवमें बेकारीका प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिसके न सुलझनेसे देशमें जबर्दस्त क्रान्ति होनेकी सम्भावना है। जो ऐसी क्रान्तिको रोककर नियमित रूपसे देशकी प्रगति चाहते हैं, जो समाजको बिना किसी विशेष उथल-पुथलके आगे बढ़ानेकी इच्छा रखते हैं उनका कर्तव्य है कि इस बेकारीके प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करें और इसे हल करनेकी चेष्टा करें। इस बेकारीके प्रश्नके हल करनेमें विज्ञानका क्या योग हो सकता है इसपर मैं यहाँ विचार करना चाहता हूँ।

भारतमें वैज्ञानिक अध्ययायनका प्रारम्भ

इस देशमें विज्ञानका अध्ययन अपेक्षाकृत बहुत पीछे प्रारम्भ हुआ। १९०६ ई० से पहले इस देशके विश्वविद्यालयोंमें विज्ञानकी जो पढ़ाई होती थी वह बहुत कम थी। उस समय प्रयोगशालाएँ नहीं थीं और कहीं-कहीं थीं भी तो वहाँ छात्रोंको केवल कुछ प्रयोगमात्र दिखलाये जाते थे। छात्रोंको स्वयं किसी प्रयोगके करनेका प्रबन्ध नहीं था। विज्ञानके छा ोंके लिए कोई अलग डिप्लोमा वा डिगरियाँ नहीं थीं। उस समय सब ही बी० ए० व एम० ए० पास करते थे। भेद केवल यही था कि कोई 'ए' कोर्स लेकर पास करता था तो कोई 'बी' कोर्स लेकर। इसके बाद विश्वविद्यालयोंका पुनर्निर्माण हुआ और सायंस डिगरियाँ—बी० एस-सी०, एम० एस-सी० और डी० एस-सी०—देनेका आयोजन हुआ। उस समय इन्टरमीडियेटके छात्रोंसे कुछ प्रयोग तो कराये अवश्य जाते थे पर परीक्षाएँ उनमें न होती थीं। प्रायः इसी समय कलकत्ता विश्वविद्यालयमें एम० एस-सी० परीक्षामें अनुसन्धानका समावेश हुआ। वहाँके छात्र साधारण परीक्षाके साथ-साथ अन्वेषण भी कर सकते थे। इसके प्रायः साथ ही साथ व कुछ वर्षोंके बाद अन्य विश्वविद्यालयोंमें भी आधुनिक ढंगसे विज्ञानकी पढ़ाई शुरू हुई और प्रयोगात्मक कार्य भी आरम्भ हुए। इस प्रकार प्रायः २०, २५ वर्षोंसे ही इस देशमें विज्ञानके वास्तविक अध्ययनका आयोजन हुआ। प्रारम्भमें दस-पन्द्रह वर्षोंतक विज्ञान-विषयक जो शिक्षाएँ दी जाती थीं वे बिल्कुल तात्त्विक थीं। व्यावहारिक विज्ञानका उनमें लेशमात्र भी नहीं था। जैसे-जैसे विज्ञानका अध्ययन इस देशमें बढ़ता गया वैसे-वैसे उन वैज्ञानिक साधनों और रासायनिक द्रव्योंके निर्माणकी ओर लोगोंका ध्यान गया जिनकी खपत इस देशमें बढ़ती जाती थी। इससे ऐसी संस्थाओंकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ जिनमें व्यावहारिक विज्ञान व रासायनिक शिक्षा दी जा सके। इस काम-

---

* विज्ञान परिषद् प्रयागके वार्षिक अधिवेशनपर दिये गए व्याख्यानका कुछ अंश— सम्पादक

के लिए सबसे पहली संस्था प्रायः १९११ ई० बँगलोरमें स्थापित हुई। बङ्गलोरके इन्डियन इंस्टीव्यूट आफ सायंसके संस्थापक सुप्रसिद्ध पारसी व्यवसायी सर जमशेदजी नसेरवानजी ताता थे जिन्होंने देशके नवयुवकोंको वैज्ञानिक शिक्षा देनेके लिए—कि वे अपने ज्ञानको उद्योग-धन्धोंके स्थापित करनेमें लगा सकें-तीस लाख रूपएका दान दिया था। उद्योग-धन्धोंके स्थापित करनेमें इस संस्थासे जैसी आशा की जाती थी, उसकी पूर्ति नहीं हुई। इसका कारण यह था कि इस संस्थाके सञ्चालक ऐसे वैज्ञानिक नियुक्त हुए जो स्वयं उद्योग-धन्धे सम्बन्धी वैज्ञानिक विषयोंसे अपरिचित थे और जिन्हें इस देशके उद्योग-धन्धेकी उन्नतिमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। पर तो भी मैसूर और मद्रास प्रान्तमें कुछ कारखानों— मैसूरके साबुन बनानेके कारखाने, चन्दन-तेलके तैयार करनेके कारखाने, लोह-निर्माणके कारखाने, चमड़ेके कारखाने, लकड़ीके विच्छेदक, स्रवणके कारखाने, कालीकटके साबुनके कारखाने इत्यादि — के स्थापित करनेमें इस संस्थासे बहुत सहायता मिली। इसके पश्चात् प्रायः १९१४ ई० में लाहौरके फोर्मैन क्रिश्चियन कालेज (अमेरिकन पादरियोंका एक कालेज) ने व्यावहारिक रसायनके अध्ययनके लिए क्लास खोले। इसका परिणाम यह हुआ कि आज पंजाब उद्योग-धन्धोंमें अन्य कई प्रान्तोंसे आगे बढ़ा हुआ है। इसके बाद १९२१ ई० में काशी विश्वविद्यालयने औद्योगिक रसायन विभाग खोला जहाँसे सैकड़ों छात्र शिक्षा पाकर भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धोंमें लगे हुए हैं। प्रायः इसी समय संयुक्त-प्रान्तके कानपुरमें व्यावहारिक विज्ञानकी शिक्षा देनेके लिए सरकारी संस्था, सर हारकोर्ट बटलर इंस्टीव्यूट, खुली। इसमें पहले तेल और चमड़ेके व्यवसायोंकी शिक्षा दी जाती थी पर पीछे चमड़ेकी शिक्षा यहाँसे हटाकर चमड़ेके कारखानोंमें कर दी गई और चीनीके व्यवसायकी शिक्षाके लिए समुचित प्रबन्ध हुआ। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालयने व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाके लिए एम० एस-सी० क्लास खोली। अभी कुछ ही वर्ष हुए कि बम्बई विश्वविद्यालयने औद्योगिक शिक्षाके लिए संस्था खोली है। आंध्र विश्वविद्यालयने भी चीनीके व्यवसायके सम्बन्धमें शिक्षा देनेका आयोजन किया है और नागपुर विश्वविद्यालयने ऐसी शिक्षा देनेका आयोजन तैयार करनेके लिए एक कमेटी नियुक्त की है।

अनुसंधानका महत्त्व

इस प्रकार थोड़ा बहुत प्रयत्न होनेपर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि देशमें उद्योग-धन्धोंके स्थापनमें इस देशके वैज्ञानिकोंसे बहुत कम सहायता मिली है। इसके अनेक कारण हैं। पहले तो हमारे विश्वविद्यालयोंमें जो अध्यापक हैं उन्हें पढ़ाईका काम इतना अधिक करना पड़ता है कि इन विषयोंके चिन्तनका उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। यदि वे किसी प्रकार अन्य कामोंसे कुछ समय बचा भी लेते हैं तो उसे वे ऐसे विषयोंके अनुसंधानमें लगाते हैं जो कम खर्चमें हो सकें। एक समय था जब उच्च-से-उच्च कोटिके अन्वेषण एक छोटे कमरेमें बैठकर एक-दो सामान्य उपकरणोंसे किये जा सकते थे। पर आज वह बात नहीं रही। बिना एक अच्छे-से-अच्छे सूक्ष्मदर्शकके, अच्छे-से-अच्छे दूरदर्शकके, अच्छे-से-अच्छे रासायनिक तराजूके, अच्छे-से-अच्छे सुग्राहक वर्णपटमापकके, बिना एक्स किरण उत्पादक यंत्रके उच्च कोटिके अनुसंधान नहीं हो सकते हैं। कितने ऐसे विश्वविद्यालय हैं जो इस प्रकारकी सुविधाएँ देनेके लिए तैयार हैं? केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय ही एक ऐसा विश्वविद्यालय है जहाँ केवल अन्वेषण कार्यके लिए अध्यापक नियुक्त हैं और उन्हें इसके लिए अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त होती हैं। इसका सारा श्रेय स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जीको है जिनकी दूरदर्शिताने ऐसा कार्य करनेके लिए उन्हें उत्साहित किया। उसका फल यह हुआ है कि कलकत्ता विश्वविद्यालयके छात्र आज सारे भारतमें फैलकर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। उद्योग-धन्धोंके स्थापनमें भी कलकत्ता विश्वविद्यालयके छात्र आज अग्रसर हैं। इसमें अन्य विश्वविद्यालयोंका व उनके सञ्चालकोंका कोई दोष नहीं है। यह तो

सरकारका कर्तव्य होना चाहिए कि वह इन विश्वविद्यालयोंको इतना धन दे कि वे अपने अध्यापकोंको अधिक अवकाश और यन्त्रोंके लिए अधिक धन दे सकें।

अपनी भाषामें शिक्षा

वैज्ञानिक विषयोंपर हमारे विश्वविद्यालयोंमें जो शिक्षा दी जाती है उसमें प्रधानतः दो दोष हैं। एक तो हमारी शिक्षा ऐसी भाषाके द्वारा दी जाती है जो हमारी अपनी भाषा नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश छात्र यद्यपि परीक्षा पास कर जाते हैं पर वैज्ञानिक सिद्धांतोंको ठीक-ठीक समझनेमें असमर्थ होते हैं। मुझे करीब आधे दर्जन विश्वविद्यालयोंके छात्रोंकी परीक्षा लेनेका अवसर प्राप्त हुआ है और यह मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि अधिकांश छात्र भाषाके कारण वैज्ञानिक तथ्योंको समझनेमें असमर्थ होते हैं। जबतक हमारी शिक्षा मातृभाषाके द्वारा न दी जायगी तबतक वैज्ञानिक विषयोंका ठोस ज्ञान हमें नहीं होगा। विशेषकर व्यावहारिक विज्ञानकी शिक्षा तो अपनी भाषामें देनी ही चाहिए।

फिर जो शिक्षा विश्वविद्यालयमें प्राप्त होती है यह प्रयोगात्मक होनेपर भी व्यावहारिक नहीं होती। हमें अनेक प्रकारके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण करनेका प्रयोजन क्लासेमें रहता है। पर कितने ऐसे बी० एस-सी० वा एम० एस-सी० उत्तीर्ण छात्र हैं उन्होंने प्रतिदिन व्यवहार होनेवाली वस्तुओं— क्रुशेन साल्ट, इनोज़ फ्रूट साल्ट, दन्त मंजन, लिखनेकी स्याही, फिनायल, धातुओंके पालिश इत्यादि— के विश्लेषण किये हैं या जो बता सकते हैं कि उनमें क्या-क्या चीज़ें हैं? कितने ऐसे छात्र हैं जो प्रतिदिन व्यवहार होनेवाली वस्तुओं—बिजलीके बल्ब, बिजलीके पंखे, मोटर गाड़ियाँ, हवाई जहाज, रेडियो इत्यादि—के सिद्धान्तोंसे ठीक-ठीक परिचित हैं और वे कैसे कार्य करती हैं यह जानते हैं? इसका कारण यह है कि हमारे विज्ञानकी पढ़ाईमें व्यावहारिक झुकावका बिल्कुल अभाव है। वैज्ञानिक विषयोंका हमारा ज्ञान केवल किताबी होता है और हमारे विश्वविद्यालयोंके अध्यापक इस अभावके दूर करनेमें सहायता नहीं करते। हमारी चारों ओर दीख पड़नेवाली वस्तुओंके रहस्यके समझानेका हमारे अध्यापक प्रयत्न नहीं करते, क्योंकि वे क्लाससे बाहर छात्रोंके संसर्गमें नहीं आते और इससे परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेमें छात्रोंको कोई सहायता नहीं मिलती। इसका सारा दोष उस अध्ययनकी परिपाटीका है जो हमारे स्कूलों और कालेजोंमें प्रचलित है। जब अँग्रेज अध्यापक थे तब अध्यापकोंका छात्रोंके निकटतम संसर्गमें न आना समझमें आ सकता था। पर जब हमारे अध्यापक भारतीय हैं तब यह बात मेरी समझमें नहीं आती, सिवाय इसके कि भारतीय अध्यापक अँग्रेज अध्यापकोंका पदानुसरण कर रहे हैं।

देशके उद्योग-धंधेकी उन्नतिके लिए पूँजी-पतियों और वैज्ञानिकोंके बीच सहयोग होना आवश्यक है। पर आजकल इसका सर्वथा अभाव है। जहाँ पाश्चात्य देशोंमें वैज्ञानिकोंके सहयोगसे नयी-नयी विधियोंका आविष्कार कर वहाँके व्यवसायी अपने व्यवसायकी उन्नति कर मालामाल हो रहे हैं, वहाँ हमारे देशके पूँजीपति १९ वीं सदीकी विधियोंका ही प्रयोग कर इस २० वीं सदीमें पाश्चात्य देशोंसे मुकाबिला करना चाहते हैं। क्या यह कभी संभव है? केवल एक चीनीके व्यवसायको ले लीजिये। चीनीके व्यवसायके सम्बन्धमें अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनका हल होना वैज्ञानिकोंकी सहायता बिना संभव नहीं। ईखमें चीनीकी मात्रा कैसे बढ़े, ईखसे अधिक-से-अधिक चीनी कैसे निकाली जाय, शीरेसे अधिक-से-अधिक चीनी कैसे निकाली जाय, चेंफुलका क्या प्रयोग हो, इत्यादि अनेक प्रश्न हैं जिनपर देशके सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिकोंके दिमाग लगानेकी जरूरत है। ऐसी गहन समस्याएँ कारखानोंके रसायनज्ञोंसे हल नहीं हो सकतीं। उन्हें विश्वविद्यालयोंके रसायनज्ञ ही हल करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

अब मैं दो-चार उदाहरण देकर यह बतलाना चाहता हूँ कि संसारके वैज्ञानिकोंने उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें किस प्रकार सहायता की है।

रंगका व्यवसाय

पचास-साठ वर्ष पहले जितने रंग हमें मालूम थे वे सब ही ऐसे थे जो या तो पौधों व कीड़ोंसे व मिट्टीसे प्राप्त होते थे। साधारणतया नील, मजीठ, किरमज़ी, लौग वूड, कुसुम, केसर, हल्दी और गेरूके थे। वे ही रंग प्रयुक्त होते थे जिनमें

(१) वस्त्रों वा रेशोंपर स्थित होनेके गुण होते थे और जो धूप, वर्षा व निरन्तर व्यवहारसे नष्ट नहीं होते थे,

(२) पक्के होते थे और प्रकाशसे उड़ते नहीं थे तथा

(३) जो धोने और रगड़नेसे छूटते नहीं थे।

ऐसे गुणवाले रंग प्रकृतिमें अनेक प्राप्य नहीं हैं। हजारों वर्षोंसे मनुष्योंने इन रंगोंकी तलाश की है और पौधों, कीड़ों तथा मछलियोंतकसे प्राप्त करनेकी चेष्टा की हैं। इनमें नील और मजीठके रंग सबसे उत्तम पाये गए हैं। नील पहले पहल भारतमें ही उत्पन्न हुआ। इसके अँग्रेज़ी नाम--इन्डिगो--का इन्डियासे बहुत निकटतम संबंध है। यहाँके सौदागरोंके द्वारा यह मिश्र देशको गया जहाँ हजारों वर्ष पुराने मृतक शव--ममी--के कपड़े इस रंगसे रँगे हुए पाये गए हैं। मिश्र देशसे यह यूनान और रोम गया और वहाँसे फिर सारे यूरोपमें फैला। मजीठ भी इसी देशमें उपजता था जिसकी जड़से मजीठका रंग निकाला जाता था। नील जलमें घुलता नहीं है पर कुछ क्रियाओंके द्वारा यह ऐसे रूपमें परिणित किया जाता है कि वस्त्रोंको इसमें डुबाकर हवामें रखनेसे वस्त्रोंपर नील रंग चढ़ जाता है। यह रंग धोनेसे छूटता नहीं। प्रकाश-किरणका भी इसपर कोई असर नहीं होता। यह पक्का होता है। पक्का होनेके कारण ही नीलकी इतनी कदर है। कुछ रसायनज्ञोंने इस रंगके संगठनका ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा की और १८८० ई० में इसके संगठनका पूरा ज्ञान हो गया। फिर इसे कृत्रिम रीतिसे प्रस्तुत करनेकी चेष्टा हुई और इसमें सफलता भी मिली। और तब इसे बड़ी मात्रामें व्यवसायोंकी दृष्टिसे कम मूल्यमें तैयार करनेकी चेष्टा हुई। आज बड़ी सस्ती विधिसे कृत्रिम नील तैयार होकर बाज़ारोंमें बिकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जिस पौधेसे यह रंग निकाला जाता था उसका बोना बिलकुल बन्द हो गया। जिस नीलके व्यापारसे अँग्रेज़ नीलहे मामामाल हो जाते थे और जिसे बोनेके लिए भारतीय किसानोंपर एक-से-एक जघन्य अत्याचार वे करते थे और जिस अत्याचारको बन्द करानेके लिए महात्मा गाँधीको चम्पारणमें सत्याग्रहतक करना पड़ा था उस नीलके कृत्रिम रीतिसे संगठनके कारण वे पुराने नीलहे आज नेस्तनाबूद हो गये और उनकी अधिकांश कोठियाँ बिक गईं और उन्होंने इस व्यापारको बिल्कुल छोड़ दिया। केवल यही नहीं, इस नीलके संगठनमें इधर-उधर कुछ परिवर्तन कर नाइट्रोजन तत्त्वके स्थानमें गन्धक और हाइड्रोजनके स्थानमें ब्रोमीन रखकर अनेक रंग बन गये हैं जिनसे एक-से-एक सुन्दर आभावाले रंग प्राप्त हो सकते हैं। ये सब रंग पक्के, नीलसे भी पक्के, होते हैं। मजीठके रंगके सम्बन्धमें भी अन्वेषण हुए। इसके संगठनका १८६८ ई० में पता लगा। शीघ्र ही इसे कृत्रिम रीतिसे तैयार करनेकी चेष्टा भी सफलतापूर्वक हुई। आज मजीठका रंग भी कृत्रिम रीतिसे तैयार होकर बाजारोंमें बिकता है। ये दोनों ही रंग पत्थरके कोयलेसे तैयार होते हैं जो प्रचुर मात्रामें इस प्रान्तमें विद्यमान हैं। कोयलेसे एक लसीला दुर्गन्धमय पदार्थ कोलतार प्राप्त होता है जिससे नैप्थलीन और अंथ्रसीन नामक द्रव्य प्राप्त होते हैं और इनसे ये दोनों रंग बनते हैं।

धातुओंका व्यवसाय

आजकल इन्जीनियरिंग कलाने आश्चर्यजनक उन्नति की है और उसके चमत्कारों-- मोटर गाड़ियों, हवाई जहाजों, बड़े-बड़े पुलों और टनेलों-- पर हम चकित होते हैं। पर यह सोचनेका कष्ट नहीं उठाते कि इन चमत्कारोंका श्रेय किसे है। ये सब ही उन वैज्ञानिकोंके

अन्वेषणके फल हैं जिन्होंने एकान्तमें, प्रयोगशालाओंमें, बैठकर संसारके अन्य सब सुखोंको त्यागकर धातु और मिश्र-धातुओंकी खोजमें अपना जीवन बिताया है।

धातुओंका व्यवसाय बहुत प्राचीन है। यह अवश्य ही उस समय आरम्भ हुआ जिसका कोई उल्लेख इतिहासोंमें नहीं मिलता। जहाँ-तहाँ प्राचीन खंडहरों और कब्रोंके खोदनेसे धातुओंके शस्त्र और गहने प्राप्त होते हैं। जब पहले पहल मनुष्यको हथियारोंकी जरूरत पड़ी तब उसे जो वस्तुएँ प्राप्त हो सकीं— पत्थर, लकड़ी, हड्डी और बाँस— उन्हींसे काम लिया। उस समय धातुएँ ज्ञात नहीं थीं। इसका कारण यह है कि धातुएँ साधारणतः ऐसी अवस्थामें पाई जाती हैं जिनसे शस्त्र नहीं बन सकते। पीछे, खोज करनेपर, जहाँ-तहाँ शुद्ध धातुएँ पाई जाने लगीं। अनेक स्थानोंमें आज भी बहुत कुछ शुद्ध रूपमें ताँबा पाया जाता है। उल्कापात रूपमें जहाँ-तहाँ लोहा पाया जाता है। ऐसे प्राप्त धातुओंसे अच्छे शस्त्र नहीं बनते थे। ताँबा और टीन पहली धातुएँ हैं जो शुद्ध रूपमें प्राप्त हो सकती थीं, क्योंकि ये खनिजोंसे सरलतासे प्राप्त हो सकती हैं। ताँबा और टीनसे काँसा तैयार हुआ। काँसा पर्याप्त कठोर होता है। उससे काटनेके हथियार बन सकते थे। काँसे से और भी अनेक सुन्दर घरेलू बरतन तैयार होते थे। मिश्रदेशवाले काँसेसे तेज हथियार बना सकते थे जो पत्थरोंको भी काट सकते थे। काँसेके बाद लोहेका युग आया। अनेक स्थानोंपर लोहे पाए गए जो हजारों वर्ष पुराने हैं। पर ये उतने अच्छे नहीं होते थे। उस समय अच्छे लोहे और इस्पातका निर्माण कठिन था। इससे लोहेके प्राप्त होनेके बादतक भी काँसेके हथियार बनते रहे। धीरे-धीरे लोहे और इस्पात बनानेकी कलामें उन्नति हुई और १७४० ई० में बात भट्ठी (ब्लास्ट फर्नेस) का आविष्कार हुआ। इससे लोहेका बनना सरल हो गया। इस भट्ठीसे ढालवाँ लोहा आसानीसे पिघलाकर ढाचोंमें ढाला जा सकता है। इसे पीटकर [illegible] आवश्यक आकारमें परिवर्तित कर सकते हैं। ढालवाँ लोहा कोमल होता है। कठोर इस्पात बनानेके लिए इसमें कार्बनका कुछ अंश निकालना आवश्यक है। प्रायः ८० वर्ष पहलेतक यह कार्बन ऐसी विधिसे निकाला जाता था जिसमें अधिक परिश्रम और समय लगता था। १८५६ ई० में एक वैज्ञानिक (बेसेमरने) ऐसी विधि निकाली जिससे इस्पातका बनना बड़ा सरल हो गया। केवल वायुके प्रवाहसे ढालवाँ लोहा इस्पातमें परिणित हो जाता है। इसके बाद भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी भट्ठियोंका आविष्कार हुआ जिससे विशेष विशेष लाभोंके लिए विशेष-विशेष इस्पात बन सकते हैं। ऐसी भट्ठियाँ अब बिजलीसे जलती हैं।

शुद्ध लोहा कोमल होता है। उसमें थोड़ा कार्बन या कोयलेके रहनेसे यह कठोर हो जाता है। तब इसे इस्पात या फौलाद कहते हैं। इस्पातको गरम कर एक-ब-एक ठंडा करनेसे यह और भी कठोर हो जाता है। इस क्रियाको 'पानी चढ़ाना' कहते हैं। कुछ इस्पात चिमड़े होते हैं, कुछ कठोर, कुछमें चुम्बकत्वका गुण होता है और कुछमें नहीं, कुछ इस्पातपर समुद्र-जलका कोई असर नहीं होता और कुछपर अम्लोंका भी प्रभाव नहीं पड़ता। मैंगनीज इस्पातमें अद्भुत गुण यह होता है कि इसे गरम कर जलमें बुझानेसे यह चिमड़ा हो जाता है और तब इसमें चुम्बकत्वके गुणका भी अभाव हो जाता है। इस प्रकार लोहेके एक छड़में ही आवश्यकतानुसार आधे भागको कठोर और चुम्बकीय और आधे भागको चिमड़ा और अचुम्बकीय बना सकते हैं जो आसानीसे पीटा भी जा सकता है। यह रेलोंके क्रौसिंगके बनानेमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

एक दूसरे प्रकारका इस्पात 'स्टेनलेस' इस्पात है। लोहेमें क्रोमियमके मिलानेसे यह तैयार होता है। इसमें प्रति सैकड़ा १४ भागतक क्रोमियम रहता है। इसपर जलकी कोई क्रिया नहीं होती। छुरी और काँटोंके बनानेमें यह प्रयुक्त होता है। इसमें दोष केवल यही है कि सामान्य इस्पातके हथियारोंके सदृश इसे रगड़कर तेज़ नहीं बना सकते। यदि क्रोमियमके साथ थोड़ा निकेल मिला हो तो इसकी चमक और अन्य

गुण और भी बढ़ जाते हैं। यह चिमड़ा हो जाता है और सरलतासे दबाया और काटा जा सकता है। इससे इसके प्याले, चमचे, बटन, घड़ीके केस इत्यादि अनेक सुन्दर पदार्थ तैयार हो सकते हैं।

एक और विशेष प्रकारका इस्पात होता है जो बहुत तीव्र गतिसे चलनेवाले यंत्रोंके निर्माणमें प्रयुक्त होता है। इसमें इतनी कठोरता होती है कि बहुत अधिक संघर्षणसे उच्च तापक्रमतक—१३००°श० तक —गरम होनेपर भी यह घिसता नहीं है। यह मोटर गाड़ियोंके ढाँचों और धुरीके बनानेमें काम आता है। टंगस्टेन इस्पात-चुम्बकके बनानेमें प्रयुक्त होता है।

अन्य धातुओंकी भी अनेक मिश्र-धातुएँ बनी हुई हैं जिनके प्रयोगों और उपयोगिताओंपर आश्चर्य होता है। अलुमिनियम और मैंगनीजकी मिश्र-धातुएँ हल्की पर मज़बूत होती हैं। इससे ये वायुयानों और मोटर गाड़ियोंके इंजिनोंके कुछ भागोंके बनानेमें काम आती हैं। डायनेमों, घन्टों, चक्रों इत्यादिके लिए भिन्न-भिन्न मिश्र-धातुएँ बनी हुई हैं।

मिट्टीके बरतनका व्यवसाय

मिट्टी क्या है? इस प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर अबतक भी नहीं दिया जा सका है। भिन्न-भिन्न पुस्तकोंमें इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ मिलती हैं पर हम सब कोई जानते हैं कि मिट्टी क्या चीज है। कुम्हार हमसे भी अधिक मिट्टीके बारेमें जानते हैं। वे देखकर और छूकर ही मिट्टीके सब गुणोंको हमसे अधिक समझ जाते हैं। हम सब मिट्टीके सर्वप्रधान गुण 'नम्रता' से परिचित हैं। इस गुणके कारण ही अनेक रूपों और आकारोंमें बनाई जा सकती है। जिस रूपमें हम मिट्टीको रख देते हैं उसी रूपमें वह रह जाती है। जब मिट्टी पकाई जाती है तब वह कठोर हो जाती है। उस अवस्थामें ताप व शीत व जलसे उसका आकार शीघ्र नष्ट नहीं होता। इन गुणोंके कारण ही मिट्टी सब प्रकारके बरतनों, ईंटों, खपड़ों और नलों इत्यादिके बनानेमें प्रयुक्त होती है। मिट्टीकी नम्रता क्या है? हम जानते हैं कि बनाई मिट्टी को अंगुलीसे दबानेसे उसपर निशान पड़ जाता है पर अंगुली मैली नहीं होती और न भीजती ही है। किसी मिट्टीमें नम्रता कम होती है और किसीमें अधिक। किसी मिट्टीमें थोड़ा-सा अम्ल व क्षारके कारण ही उसकी नम्रता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। यह क्यों होता है? ये प्रश्न ऐसे हैं जिनका सन्तोषजनक उत्तर अभीतक दिया न जा सका है। मिट्टीमें अलुमिनियम, सिलिकन और आक्सिजन होते हैं। मिट्टी वस्तुतः अलुमिना और सिलिकाकी बनी होती है। अलुमिना मणिमीय सफेद रूपमें कोरण्डम और रङ्गीन रूपमें मानिक और नीलम है। सिलेका स्फटिक रूपमें पाया जाता है। मिट्टीमें अलुमिना और सिलिकाके अतिरिक्त कुछ जलका अंश भी वर्तमान है। पर ये सब वस्तुएँ किस रूपमें संयुक्त हैं इसका ठीक-ठीक ज्ञान हमें नहीं है।

साधारणतया जो मिट्टी प्राप्त होती है वह शुद्ध नहीं होती, उसमें रेत, अभ्रक, पत्थर इत्यादिके छोटे-छोटे कण विद्यमान रहते हैं। इनमें कुछ तो केवल जलसे धोनेसे दूर हो जाते हैं पर सब अपद्रव्य इस प्रकार दूर नहीं होते। मिट्टी संसारके सब भागोंमें पायी जाती है। कहींकी मिट्टी अच्छी होती है और कहींकी बुरी। इन मिट्टियोंमें सफेद मिट्टीको 'केओलिन' कहते हैं। इसका प्रयोग पहले पहल चीन देशमें हुआ। इससे इसका नाम 'चीनी मिट्टी' और इसके बने बरतनोंको चीनी मिट्टीके बरतन कहते हैं। यह चीनी मिट्टी इस देशके अनेक स्थानोंमें, इस बिहार प्रांतमें भी पर्याप्त मिलती है। यह शीघ्र गलती नहीं है। इसके गलनेके लिए बड़े उच्च तापक्रमकी आवश्यकता पड़ती है। पर इसमें कुछ और पदार्थ-द्रावकोंके मिला देनेसे यह शीघ्र गल सकती है। इस प्रकार आजकल चीनी मिट्टीके बरतन और अन्य अनेक सामान— चायके प्याले, तश्तरियाँ, खिलौने, मूर्त्तियाँ, बिजलीके पृथग्न्यासक (इन्सुलेटर्स) इत्यादि बनते हैं। इन बरतनोंका प्रयोग दिनोंदिन बढ़ रहा है। ये स्वच्छ, सुन्दर और टिकाऊ होते हैं। मिट्टी खानेके भी काममें आती है। केवल बच्चे ही मिट्टी नहीं खाते वरन् युवा पुरुष व स्त्रियाँ

भी मिट्टी खाती हुई पाई गई हैं। इङ्गलैंडमें एक बड़े घरानेकी महिला पकाये हुए मिट्टीके बरतनोंको खाती थी और उसके पतिको आश्चर्य होता था कि उनके बरतन क्या हो रहे हैं। मिट्टी औषधोंमें भी व्यवहृत होती है। बिहारमें पर्याप्त मात्रामें अच्छी केओलीन मिट्टी विद्यमान है पर उसका अभीतक कोई उपयोग नहीं हो रहा है।

वस्त्र बनानेका व्यवसाय

जब हम वस्त्र बनानेके व्यवसायकी ओर दृष्टिपात करते हैं तब हमें मालूम होता है कि आज हम उन्हीं वस्तुओं— रूई, ऊन, सन और रेशम—का व्यवहार कर रहे हैं जिन्हें हम हजारों वर्षोंसे करते आ रहे हैं। भेद केवल यही है कि पहले हम उन्हें हाथसे कात और बुनकर वस्त्र बनाते थे, जैसे आज खद्दर तैयार करते हैं पर अब यंत्रोंका प्रयोग अधिकाधिक कर रहे हैं। ये यंत्र अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। १७८५ ई० में पहले पहल बैलसे चलनेवाला करघा प्रयुक्त हुआ था। ४ वर्ष बाद बैलके स्थानमें भापका प्रयोग हुआ। तबसे आजतक भिन्न-भिन्न प्रकारके अनेक यंत्र बने हैं जिनसे शीघ्र-से-शीघ्र और कम परिश्रम और व्ययसे वस्त्र तैयार होते हैं। इन यंत्रोंके आविष्कारके अतिरिक्त केवल दो दिशाओंमें वस्त्रके निर्माणमें वैज्ञानिकोंके द्वारा उन्नति हुई है। साधारण वस्त्रोंके स्थानमें आज रूईके मर्सिराइज्ड वस्त्र अधिकाधिक प्रयुक्त हो रहे हैं। साधारण वस्त्रोंकी अपेक्षा ये अधिक चमकीले और मुलायम होते हैं। इससे इन्हें लोग अधिक पसन्द करते हैं। एक दूसरी दिशा— केलेके रेशमके निर्माण—में उन्नति हुई है। इसे बनावटी व नकली रेशम भी कहते हैं। यह वास्तवमें रेशम नहीं है पर रेशमके कुछ गुण इसमें विद्यमान हैं। देखनेमें यह असली रेशम-सा सुन्दर होता है, इसपर रंग सरलतासे चढ़ जाता है। इसपर एक-से-एक सुन्दर छापे व नकशे बन सकते हैं। यह शीघ्र मैला नहीं होता। यह मुलायम और टिकाऊ भी होता है। अपेक्षाकृत यह सस्ता भी होता है। इससे इसका व्यवहार दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है। १५, २० वर्षोंसे इसके व्यवसायकी बड़ी उन्नति हुई है। यह सस्ती रूई व लकड़ी व घाससे—सेल्युलोज़से -रासायनिक क्रियाओं द्वारा तैयार होता है। इस देशमें भी इस बनावटी रेशमका व्यवहार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है और पर्याप्त मात्रामें यह विदेशोंसे आता है। अभीतक इसे तैयार करनेकी चेष्टा यहाँ नहीं हुई है क्योंकि इसके निर्माणमें यंत्रोंके अतिरिक्त रसायनके विशेष ज्ञानकी आवश्यकता है और वह ज्ञान पूँजीपतियों और वैज्ञानिकोंके सहयोगके अभावसे प्राप्त नहीं हो रहा है। उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिकोंकी सहायता बिना देशके उद्योग-धंधे न स्थापित हो सकते हैं और न पनप सकते हैं।

भारतीय बाग़वानी

[ले०—श्री० डबल्यू बी० हेज़]

'बाग़वानी' शब्दके साथ-साथ हमारा ध्यान कभी-कभी मुग़लोंके लगाये हुए बाग़ों, कभी-कभी हिमालय प्रान्तके प्राकृतिक बग़ीचों, कभी-कभी अपने इन प्रदेशोंमें घरोंमें लगी हुई फुलवाड़ियोंकी ओर आकर्षित हो जाता है। बाग़में हमारा अभिप्राय वृक्ष, लता, कुंज, फल, फूल, मूल आदि सभीसे होता है। पर इस लेख में हम केवल फल-विज्ञानके सम्बन्धमें कुछ लिखेंगे। यह लिखनेसे पूर्व कि किस प्रकारकी विधियाँ काममें लानेसे फलोंकी उपज अच्छी हो सकती है, हम फल-विज्ञानके पूर्व-इतिहासका थोड़ा-सा वर्णन यहाँ दे देना आवश्यक समझते हैं।

फल-विज्ञान कितना पुराना है, यह कहना कठिन है। कौन कह सकता है कि सर्वप्रथम फलदार वृक्षोंके लगानेकी प्रथा किस प्रकार चल पड़ी। "मेरी संस्कृत

आदि प्राचीन भाषाओंमें इतनी योग्यता भी नहीं है, कि मैं पुराने ग्रंथोंसे उद्धरण देकर फल-विज्ञानकी प्राचीनताका कुछ दिग्दर्शन करा सकूँ। जहाँतक मुझे पता चला है, इसका पहला उल्लेख बृहत् संहितामें आया है जिसका काल ६०० से २०० वर्ष ईसासे पूर्व समय है। ईसासे पूर्व चौथी शताब्दीमें लिखे गये अर्थ-शास्त्रमें द्राक्षोंका उल्लेख मिलता है। पुराण तो ईसाके बाद कई शताब्दियोंतक बनते रहे। इनमें बहुत-से फलोंका उल्लेख आता है। मत्स्य पुराणमें १७ फलोंके नाम आये हैं।

इन सब बातोंसे केवल इतना ही पता चलता है, कि उन अतीत समयोंमें भी फल उगाये जाते थे। पर बृहत् संहितामें पेड़ लगानेकी विधियोंका भी उल्लेख है जिनसे पता चलता है कि उस समय लोगोंको क़लम लगाना या चश्मा लगाना भी आता था। इससे स्पष्ट है कि बाग़बानीकी कला उस समय अच्छी उन्नत हो चुकी थी। पर यह पता लगाना कठिन है कि उस समय कौन-कौनसे फल उगाये जाते थे। यदि किसी फलका उल्लेख इन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता है, तो इससे यह नहीं कहा जा सकता कि लोगोंको उस समय इन फलोंका ज्ञान ही न था। यह भी कहना कठिन है कि फलोंके जो नाम मिलते हैं, उनसे सचमुच उन्हींसे अभिप्राय है जिनसे हम आजकल परिचित हैं। सम्भव है वे नाम किन्हीं और फलोंके हों।

फलोंकी जो नामावली उक्त प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलती है वह अधिक सन्तोषजनक नहीं है। जिन-जिन फलोंको इस समय देशी माना जाता है वे सब उनमें वर्णित नहीं हैं। बहुत-से फल तो अभी हालमें ही विदेशोंसे यहाँ आये हैं, पर फिर भी देशी माने जाते हैं। बृहत् संहितामें इमली, जंगली सेब, आँवला, और केलेका उल्लेख है। पर ऐसा मालूम होता है कि आम तो इस देशमें अति प्राचीन कालसे लगाया जाता रहा है। संभव है यह पूर्वके किसी अन्य देशसे यहाँ आया हो। इसके अतिरिक्त ईसाके समयसे बेल, नारियल, अंजीर, जामुन, अनार, नीबू आदिका भी यहाँ व्यवहार होता रहा है।

चीन देशके यात्रियोंने अपने विवरणमें कुछ भारतीय फलोंका उल्लेख किया है। ह्युनशाँग सन् ६२९ से ६४५ तक भारतमें रहा, और उसने अपनी यात्राका पूरा विवरण दिया है। बाबर और अन्य मुग़ल लेखकोंके लेख इस विषयपर और भी अधिक प्रकाश डालते हैं। बाबरने २७ फलोंका उल्लेख किया है, और यहीं नहीं, कुछ फलोंके सम्बन्धमें उसने जो टिप्पणियाँ दी हैं वे बड़े महत्वकी हैं।

आमके सम्बन्ध में वह लिखता है कि 'अच्छे आम बड़े स्वादिष्ट होते हैं। कुछ तो खाये जाते हैं, पर अभी अच्छे नहीं होते, लोग आमोंको पेड़परसे कच्चा तोड़ लेते हैं और फिर घरमें (पालमें) पकाते हैं। कच्चे आमकी चटनी, अचार और मुरब्बा अच्छे बनते हैं। संक्षेपमें, यह भारतका सर्वोत्कृष्ट फल है। बहुत-से तो इसके समान और किसी फलको मानते ही नहीं हैं पर मुझे आपकी ये अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसाएँ ठीक नहीं जँचतीं कटहलके विषयमें यह लिखकर कि यह शाखोंपर, तनेपर, और जड़ोंमें भी फलता है, बाबर लिखता है कि मुझे न तो इसकी आकृति ही अच्छी लगती है, और न इसका स्वाद ही। यह तो मानों भेड़का पेट कसकर बन्द कर दिया गया है।

वे फल जिनका सर्वप्रथम उल्लेख मुग़लोंके लेखोंमें ही मिलता है ये हैं :—

खजूर, तरबूज और संतरा आदि नीबूकी जातिके फल। इस समय सेब, नाशपाती आदि फल अफ़गानिस्तानमें ही पाये जाते थे। शीघ्र ही उनका काश्मीर और कुछ हिमालय प्रान्तोंमें व्यवहार अवश्य होने लगा होगा, पर इस बातका उल्लेख नहीं मिलता है। सबसे पहला उल्लेख उन्नीसवीं शताब्दीमें ही मिलता है।

यूरोपीय लोगोंके आगमनतक इस देशमें बहुत-से फल प्रचलित हो गये थे। पीट्रो डेल्ला वाल्ले, जो सन् १६२२-२३ में भारतमें रहा, लिखता है कि निम्न फल ब्रेज़िलसे इस देशमें आये— पपीता, जामुन, आम और

अनन्नास पर आमके सम्बन्धमें उसका कथन ठीक नहीं है। संभव है, कि अन्य फलोंके विषयमें उसका कहना ठीक हो, क्योंकि वे सब अमरीकन अंशके हैं। १७ वीं शताब्दीके अन्य लेखकोंने अमरूद, केले (प्लैंटेन) से भिन्न 'बनाना' का उल्लेख किया है। डा० जॉन फ्रायर लिखते हैं कि 'बनाना' केलोंसे छोटे होते हैं, और अधिक अच्छे होते हैं। अमरीकावासी केले और 'बनाना' में भेद करते हैं पर अँग्रेज़ लेखक दोनोंमें कोई भिन्नता नहीं मानते।

जॉन फ्रायरका निम्न अवतरण उल्लेखनीय है। "आम जिसके सम्बन्धमें भारतीयोंने बड़ा ज्ञान प्राप्त किया था ओषधिके रूपमें भी बड़ा मूल्यवान है।... बच्चे आममें तारपीनकी भी गन्ध आती है। इसके अचार बड़े पाचक हैं। जब पक जाते हैं तो हिस्पेराइड के सेबोंकी भी उनके सामने कोई गिनती नहीं। स्वादमें ख़ुबानी, शफतालू या आड़ू इसकी समता नहीं कर सकते। आम रक्त-शोधक है। लाला-ग्रन्थियोंको विशेषतया प्रचलित करता है और सब प्रकारसे आरोग्य-प्रद है।

अनन्नास विशेष खट्टे स्वादका बड़ा ही उपयोगी और अतिप्रिय फल है।"

जबसे यूरोपवासी भारतमें रहने लगे, उन्होंने यहाँकी बाग़वानीमें रुचि लेनी आरम्भ की। प्रसिद्ध ईसाई प्रचारक विलियम कैरीने सन् १८२० में 'एग्रीकल्चरल एण्ड होर्टीकल्चरल सोसायटी आफ इन्डिया' की स्थापना की। इस सोसायटीकी पत्रिकाके प्रथम भागमें प्रयाग-निवासी डा० रोबर्ट टाइटलरका लिखा एक लेख है जिसमें प्रयागवालोंको विशेष रुचि होनी चाहिए। उसने इस प्रान्तकी कृषिका विवरण दिया है। वह लिखता है कि इस प्रान्तमें आम और जामुनके बाग विशेष रीतिसे थे, और बेल और शहतूत भी लगाये जाते थे। अमरूदका व्यवसाय शायद बादको आरम्भ हुआ। टाइटलरके निजी बागमें निम्न फलदार पेड़ थे—नीबू, नारंगी, मीठा नीबू, अनार, अंजीर लीची, अमरूद, आड़, सेब, अंगूर, शरीफा, पपीता, केला, जामुन, बेर या उन्नाव और आम। सौ वर्ष बाद भी बागोंमें इनसे अधिक फलदार वृक्ष कदाचित् ही लगाये गये हों।

बागवानीके सम्बन्धमें जितनी पुस्तकें लिखी गईं उनमें सबसे अधिक महत्त्वकी रेवरेण्ड टामस ए० सी० फर्मिञ्जरकी 'मेनुअल आव् गार्डनिंग' है जिसके इस समयतक सात संस्करण निकल चुके हैं। सन् १८९० ई० में बोनेविया, ब्रिगेड सर्जनने, एक बड़ी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी जिसका इस देशमें तो कम प्रचार है, पर बाहर अन्य देशोंमें यह बड़ी प्रमाणिक मानी जाती है। इसका नाम है—'दी कल्टीवेटेड ऑरेञ्जेज़ एण्ड लेमन्स इटसेटरा आफ इण्डिया एण्ड सीलौन, विद रिसर्चेज़ इण्टु देयर ओरीजिन एण्ड डेरीवेशन आव् देयर नेम्स एण्ड अदर यूसफुल इनफोर्मेशन'।

इस देशकी वर्तमान अवस्थाके संबंधमें मैं विशेष तो नहीं कह सकता क्योंकि आप सभी लोग परिचित हैं। बिल्कुल प्रमाणिक बातों और ज्ञातव्य अंकोंका संग्रह करना तो कठिन है। इस प्रश्नका ही उत्तर देना कठिन है कि इस देशमें कुल कितना फल पैदा किया जाता है। पूरे देशकी तो बात अलग रही, संयुक्त-प्रान्तमें कितना पैदा होता है, यह भी नहीं बताया जा सकता। मैंने कुछ अंक ऐसे संग्रह किए हैं जिनसे कितने एकड़ अमुक फल पैदा होता है उसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। मद्रासमें सन् १९३४-३५ में फल और तरकारियोंके लिए ७६५००० एकड़ जमीन काममें लाई गई जिसमेंसे २७८००० एकड़ आमके लिए, १५४००० केलोंके लिए और लगभग १५००० एकड़ नीबूकी जातिके फलोंके लिए थी। इसके बाद बङ्गालकी गिनती है जहाँके व्यापारिक-अध्यक्ष श्री ए० आर० मलिकके अनुसार २५५००० एकड़ भूमि फलोंके लिए काम आती है जिसमेंसे ११०००० एकड़ केलोंके लिए है। बम्बई और पंजाबमें भी काम बढ़ रहा है पर वहाँ भूमि कम व्यवहारमें लाई जा रही है। सन् १९३२-३३ में बम्बईमें ६५००० एकड़ और पञ्जाबमें ६२००० एकड़ फलों-

के लिए थी। प्रति वर्ष २००० एकड़की इसमें आजकल वृद्धि हो रही है।

संयुक्त-प्रान्तके लिए अंक उपलब्ध नहीं है, और यहाँ अनुमान लगाना भी कठिन है। सब चीज़ोंकी शुमारी तो यहाँ की जाती है, पर न जाने इस बातके अङ्क सरकारी कर्मचारी अपनी रिपोर्टोंके लिए क्यों संग्रह नहीं करते। कुछ दिन हुए इस प्रान्तके मार्केटिंग आफिसरका ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया था। व्यापारकी दृष्टिसे ऐसा होना बड़ा उपयोगी है। उसने प्रत्येक ज़िलेके लिए अलग अङ्क प्राप्त करनेकी अनुमति दी। पर इस प्रान्तमें व्यापार और कौशलकी ऐसी अव्यवस्था है कि यह काम निकट भविष्यमें होता प्रतीत नहीं होता है।

इस देशके बागोंकी दृष्टव्य बात तो यह है कि यहाँके बाग छोटे-छोटे और दूर-दूर छितरे हुए हैं। उदाहरणत: पञ्जाबमें कुछ दिन हुए ३१९४ बाग़ ऐसे थे जिनका क्षेत्रफल ३ एकड़से अधिक था। इसके संपूर्ण क्षेत्रका आधेसे कम ही हिस्सा फलोंके लिए था। इनमें ४१३ ऐसे थे जिनका क्षेत्र १० एकड़से अधिक था और केवल ९ ऐसे जिनका क्षेत्र ५० एकड़ होगा। तीन एकड़से कमका बाग़ व्यापारिक दृष्टिसे लाभदायक हो ही नहीं सकता। यदि कई समीपस्थ बाग़ोंको मिलाकर १०-१० एकड़के लिए सहयोगी संस्थाएँ कर ली जायँ जो मिलकर बाग़वानीकी मशीनें मँगा लें, तो सबका काम सस्तेमें निकल सकता है। पर खेदकी बात यह है कि इस देशमें सहयोग होना संभव नहीं दीखता है।

प्रयाग विश्वविद्यालयके एक रिसर्च स्कालर श्री महेशप्रसादने प्रयागके अमरूदके व्यवसायके अंक संकलित किये थे। उनसे यहाँकी परिस्थितिका पता चल सकता है। यह तो सभी मानते हैं कि समस्त भारतमें अमरूदोंको लिए प्रयाग सबसे प्रसिद्ध नगर है। महेशप्रसादजीने बड़ी कठिनतासे १७९४ एकड़ भूमिके संबंधमें अंक प्राप्त किए हैं। चार तहसीलोंका विवरण लिया गया। इनसे पता चलता है कि औसतन बाग़ोंका क्षेत्रफल आधे एकड़से कम ही है, और प्रति ग्राम पीछे ३$\frac{1}{5}$ एकड़ भूमि अमरूदोंके लिए आती है।

बहुत ही कम बाग़ व्यापारिक दृष्टिसे लगाये गए हैं जिनसे यह आशा की जा सके कि बाग़का मालिक अपनी पूर्ण आयके लिए केवल बाग़पर निर्भर रहे। सामाजिक अवस्थापर भी यह बात आश्रित है। जिस आदमीका नगरसे बाहर कहीं एक बाग़ है तो वह धनी-संपन्न समझा जाता है। उसने बाग इस दृष्टिसे लगाया है कि अवकाशके समय वह शहरसे दूर वहाँ जाकर विश्राम कर सके। वह बाग़में एक मकान भी बना लेता है और मित्र-मंडलीके विहारके लिए उपवनमें वह छोटे-छोटे पथ भी बनाता है। परिणाम यह होता है कि फलदार वृक्षोंके लगानेके लिए बहुत थोड़ी ज़मीन बचती है, और बाग़ोंकी व्यापारिक उपयोगिता जाती रहती है। बड़े मानी लोग पेड़ोंके फलोंको बेचना या ठेकेपर उठाना प्रतिष्ठाके प्रतिकूल भी समझते हैं। इसीलिए इस देशमें केवल छोटे-छोटे बाग़ोंकी संख्या तो बढ़ गई है, पर ये व्यापारिक लाभके कामके नहीं हैं।

बाग़की देखरेखका काम या तो उनपर छोड़ दिया जाता है जिनको बाग़ उठाये जाते हैं, अथवा उन मालियोंपर जिन्होंने कुछ परम्परागत ज्ञान ही प्राप्त किया है, और जिनमें बहुत-सी भ्रान्तियाँ भी फैली हुई हैं। इन मालियोंको आधुनिक विज्ञानकी बातोंका तो कुछ पता है ही नहीं। वे लोग नये प्रयोगोंके करनेमें भी संकोच करते हैं, और पुरानी रूढ़ियोंपर ही दृढ़ रहते हैं। इनका उद्देश्य बागका अच्छी अवस्थामें विकास करना भी नहीं होता। थोड़े-से खर्चेसे अधिक से-अधिक लाभ उठानेकी उन्हें चिन्ता रहती है।

रेखाचित्र खींचनेकी विधि

[मूल लेखक—एल० ए० डाउस्ट; अनु०—श्रीमती रत्नकुमारी, एम० ए०]

हमारी भाषा आरंभमें चित्रमयी थी। अर्थात् मनुष्यने अपने विचारोंको प्रकट करनेका सबसे आसान ढंग भावोंके अनुकूल चित्र खींचना ही निकाला था। वास्तवमें चित्रकारी मनुष्यके भावों और वातावरणका चित्रण करनेकी अत्यंत स्वाभाविक प्रक्रिया है। हम लिखने अथवा बोलनेमें उतनी शीघ्रता और पूर्णतासे प्रवीण नहीं हो सकते जितने सीधी रेखाओं द्वारा चित्र खींचनेमें। विज्ञापनोंके साथ चित्र देनेका कारण यही है। केवल अक्षरोंके द्वारा विज्ञापन उतना प्रभावशाली नहीं हो सकता जितना चित्रोंसे। यदि विज्ञापनदाता अपने मञ्जनकी प्रशंसामें अनेकों पृष्ठ रँगकर रख दे तो भी वह हमें उतना आकर्षित नहीं करेगा जितना एक छोटा-सा चित्र जिसमें सुडौल सुन्दर दाँतोंके कारण मुखका सौंदर्य-वर्धन दिखाया गया हो।

इसके अतिरिक्त इस प्रकारकी चित्रकारी जिसमें पेंसिल अथवा क़लमसे सीधी रेखाएँ खींचकर आकृतियाँ बनाई जाती हैं मनोरंजनका उत्तम साधन भी हैं। इसमें न तो अधिक समय लगता है और न कोई बखेड़ा ही है। एक पेंसिल और थोड़ा-सा सादा काग़ज़ पर्याप्त है। जहाँ कहीं भी बैठनेको स्थान मिल गया वहीं चित्रशाला बन गई। चलती हुई ट्रेनमें, जहाज़में मेलोंमें, पार्कोंमें, सभी स्थानोंमें इस प्रकारकी चित्रकारी हो सकती है। क्योंकि चित्रकारको इस बातकी आवश्यकता नहीं होती है कि वह रंग, चित्रपट, तूलिका, पात्र इत्यादि लादे-लादे फिरे और एकांत स्थानकी अपेक्षा रक्खे।

प्रत्येक कार्यमें पटुता प्राप्त करनेके लिए निरंतर अभ्यासकी आवश्यकता होती है। उसी प्रकार चित्रकारीके लिए भी अभ्यास परम आवश्यक है। निरंतर अभ्यासके द्वारा ही चित्रकार इतनी योग्यता प्राप्त कर सकता है कि साधारण रेखाओंके द्वारा सुन्दर और भावपूर्ण आकृतियाँ बना सके।

विषय

चित्रोंके विषय खोजनेके लिए कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। चतुर चित्रकार अपने चारों ओरके जीवित व्यक्तियोंमेंसे ही किसीको अपने चित्रका आधार बना सकता है। कोई भी प्रवीण चित्रकार स्टेशनपर ट्रेनकी प्रतीक्षाके दस मिनटोंमें शीघ्रतापूर्वक एक चित्र बना सकता है और उन साधारण रेखाओंसे उत्पन्न हुए प्रभावको देखकर स्वयं प्रसन्न हो सकता है।

स्मरणीय बातें

(१) नौसिखिये चित्रकारको अपना काग़ज़ नष्ट होनेकी चिंता नहीं करनी चाहिए। उसका ध्येय तो प्रवीण चित्रकार बनना है। उसके लिए चाहे जितना काग़ज़ लग जाय चिन्ता न होनी चाहिए। इस प्रकारका अपव्यय तो आवश्यक है।

(२) रेखाएँ खींचते समय सावधानीसे काम लेना चाहिए। सोचनेमें समय अवश्य लगाना चाहिए। जिस व्यक्तिकी आकृति खींचनी हो उसे ध्यानपूर्वक देखना उचित है और तब अच्छी तरह समझकर चित्र खींचना चाहिए। ऐसा करनेसे मनोवांछित प्रभाव उत्पन्न किया जा सकेगा।

(३) रेखाएँ खींचते समय किसी प्रकारकी हिचक न होनी चाहिए। साथ ही आरम्भमें रेखाएँ बहुत गहरी नहीं होनी चाहिए। हलके हाथसे खींचना चाहिए।

(४) चित्रोंकी पूर्णता और शुद्धताकी ओर उतना ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है जितना रेखाओंकी

स्वच्छताकी ओर । यदि आरम्भमें चित्र भद्दे होते हों तो निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है । अभ्यास करते रहना चाहिए ।

(५) कुशल चित्रकारोंके खींचे हुए चित्रोंकी नक़ल करना आरंभमें अच्छा होता है । किसी चित्रकी नक़ल करो और देखो कि ऐसा करनेमें तुम्हें कितना समय लगता है । कुछ दिनोंके बाद फिर नकल करो और तब देखो तुम्हारी नक़ल कितनी ठीक और शीघ्रतापूर्वक होती है । परंतु चित्रोंकी नकलसे यदि असली वस्तुकी ही नक़ल की जाय तो अधिक लाभ होगा ।

(६) बड़े चित्रकारोंके रेखाचित्रोंको देखते रहना चाहिए । उनकी कृतियोंकी विशेषताओंको मनन करना चाहिए ।

(७) चित्र बनाते समय हिचकना अथवा सकुचाना नहीं चाहिए । चाहे जो स्थान हो, चाहे जितने व्यक्ति हों, चित्रकार उन सबका ध्यान छोड़कर केवल अपनी इष्ट वस्तुपर ध्यान रक्खे ।

(८) इन सबके अतिरिक्त चित्रकारको चित्रकी ओर अधखुली आँखोंसे देखनेका अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार देखनेसे अनावश्यक बातें दूर हो जायँगी और आकृति और छायाकी सीमाएँ साफ़-साफ़ दीख पड़ेंगी ।

आवश्यक वस्तुएँ

प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धिके द्वारा अपनी चित्रकारीके लिए आवश्यक वस्तुओंका प्रबंध कर सकता है। किस प्रकारका और कितना सामान उसके लिए पर्याप्त हो सकता है यह थोड़े अभ्याससे जाना जा सकता है । परंतु प्रारम्भ करनेवालोंके लिए इसका बताना आवश्यक है । यदि चित्र पेन्सिलसे बनाना हो तो साधारण काग़ज़ जो न बहुत चिकना हो और न बहुत खुरदुरा अच्छा होता है । अच्छे प्रकारकी 'बी' पेन्सिल होनी चाहिए ।

कलमसे बननेवाले चित्रोंके लिए अपेक्षाकृत चिकना और अच्छा काग़ज़ होना चाहिए । ब्रुशसे बननेवाले चित्रोंके लिए भी यही काग़ज़ उपयुक्त है । क़लमके लिए गिलोटका ३०३ नं० का निब और ब्रुशके कार्यके लिए नं० १ वा नं० २ का सैबेलके बालका 'वाटर कलर' ब्रुश अधिक योग्य होता है ।

सिर, हाथ, और पैरोंके चित्र खींचनेके लिए कुछ खुरदुरा काग़ज़ होना चाहिए । पेन्सिल भी अधिक नरम प्रयोगमें लानी चाहिए । कोण्टे क्रेयन या कारबन
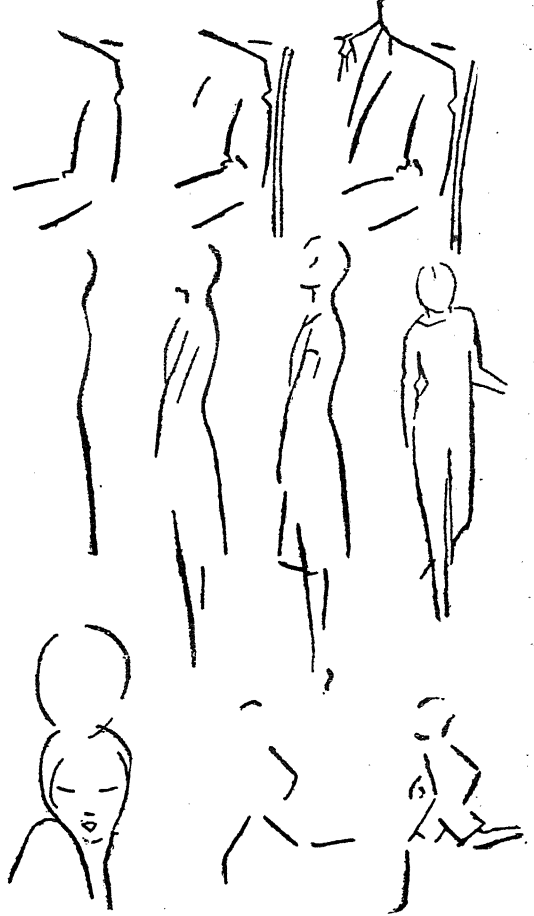
चित्र नं० १

पेन्सिल अच्छी रहती है । इनसे रेखाएँ गहरी काली हो जाती हैं जो अधिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाली होती हैं ।

बड़े चित्र जो कारतूस काग़ज़पर बनाये जाते हैं तथा विशेषकर जो वक्र पद्धतिके (cramped) हों कोयलेसे अच्छे बनते हैं। चित्रोंकी शैली भी सुन्दर हो जाती है। कोयले दो प्रकारके होते हैं—रशियन और वाइन। वाइनका ही प्रचार अधिक है। चित्रोंके अशुद्ध भाग मिटानेके लिए वस्त्र या रबरका व्यवहार करना चाहिए। चित्रके चारों ओर कालिमाको फैलनेसे बचानेके लिए फिक्सिटिव और स्प्रेयर काममें लाने चाहिए।
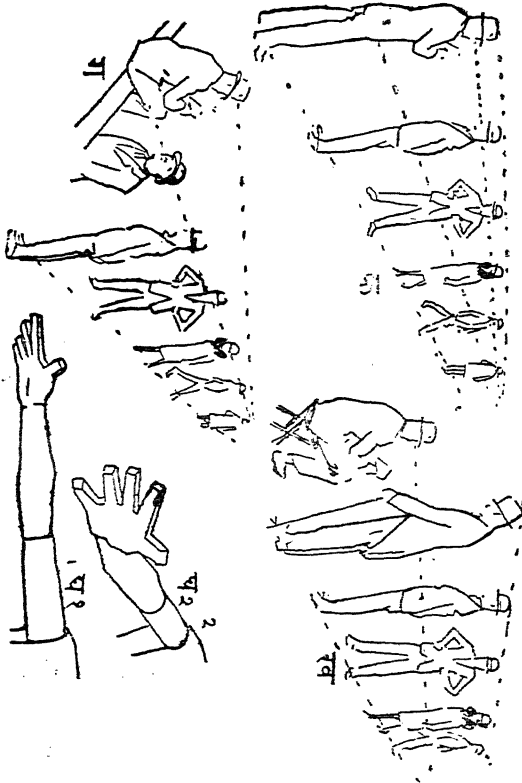
चित्र नं० २

ये सब चीज़ें चित्रकारीके समान बेचनेवालोंकी दूकानोंपर मिल जायँगी। आवश्यक सामग्रीकी ओर यहाँ संकेत-मात्र किया गया है। चित्रकार अपने अनुभव से स्वयं यह पता लगा लेंगे कि कौन-कौन सामान उनके लिए अधिक उपयुक्त है।

दृष्टिपटल

इस लेखमें केवल व्यक्तियोंकी आकृतियोंको खींचना ही बताया गया है। अतः दृष्टिपटलमें उनका आकार कैसा दीखता है इसीका वर्णन किया जायगा।

हम सबका अनुभव है कि आकृतियाँ जैसे-जैसे दूर होती जाती हैं छोटी होती दीख पड़ती हैं। दो समानान्तर रेखाएँ दूरपर आपसमें मिलती हुई-सी जान पड़ती हैं। चित्रकारको इस बातका ध्यान रखना चाहिए। यदि वह दूरकी वस्तुओंको भी उतना ही बड़ा रखता है जितना पासकी वस्तुओंको अथवा समानान्तर रेखाओंको दूरपर मिलती हुई नहीं दिखाता है तो चित्र वास्तविक नहीं रह जायगा। दूसरी प्लेटमें यह स्पष्ट करके दिखाया गया है। उसमें देखनेसे वे काल्पनिक मिलती हुई समानान्तर रेखाएँ दिखाई गई हैं जो मनुष्योंकी एक पंक्तिके खींचनेमें सहायता देती हैं। प्रत्येक चित्रमें एक सीधी आड़ी रेखा दीखती है। यह चित्रकारके दृष्टिपथकी सतह है और अन्य रेखाएँ इसीकी ओर झुकती हैं। इस सतहका ध्यान प्रत्येक चित्र खींचते समय रखना चाहिए। चित्रोंके समस्त-अनुपात इसीसे निकाले जा सकते हैं।

व्यक्तियोंके अवयवोंको खींचते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उसका दूरवाला सिरा अनुपातमें छोटा दीखता है। उसीके अनुसार उसको खींचना चाहिए। दूसरी प्लेटके 'घ' चित्रमें इस बातको स्पष्ट किया गया है। तुम्हारी ओर फैलाया हुआ हाथ अधिक बड़ा है और कंधेकी सीधमें फैलाया हुआ हाथ उससे छोटा है। दृष्टिपथको समझनेमें खिड़कीसे अच्छी सहायता मिल सकती है। उसके चौखटेसे बाहरकी वस्तुओंकी रेखाओंके कोणोंकी तुलना करो। अपने कागजकी सीमाको वह चौखटा समझो और उतने ही बड़े कोण बनाओ।

रूप (form)

चित्रकारको इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि आकृतियोंमें रूप होता है अर्थात् प्रत्येक आकृति-

में जिसे वह खींचना चाहता है मुटाई और वाह्य-सीमा होती हैं। इसका चित्रण होना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि केवल रेखाचित्रमें यह कैसे दिखाया जाय क्योंकि यहाँपर छायाका प्रयोग नहीं हो सकता है। इसका चित्रण उन छोटी-छोटी रेखाओं द्वारा किया जाता है जो वाह्य-सीमामें न होकर शिरमें, तहमें, कालरमें, कफ़में अथवा शिकनमें होती हैं। इनको वाह्य-सीमाकी अपेक्षा अधिक सावधानीसे खींचना चाहिए।
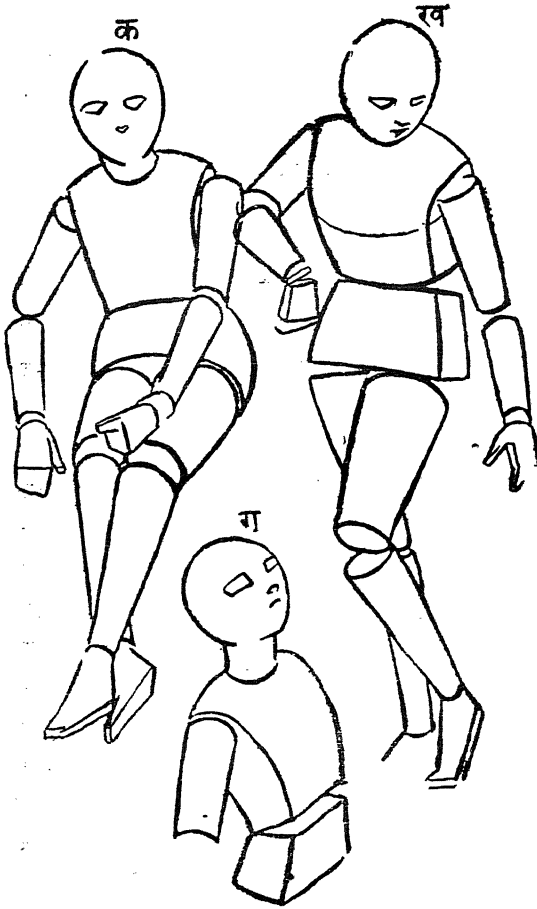
चित्र नं० ३

आगे दसवीं प्लेटके 'च' चित्रमें इस बातको स्पष्ट किया गया है। टोपका प्रकार, मोटाई और आकृति सबका स्पष्ट चित्रण उन छोटी-छोटी रेखाओंसे हो गया है जो मस्तकके सन्मुख खींची गई हैं। इसी प्रकार आगे सातवीं प्लेटके 'ख' चित्रमें नेत्र इत्यादिके खींचनेके ढंगसे मुखका आकार गोल हो गया है। प्रत्येक व्यक्तिको इस बातका
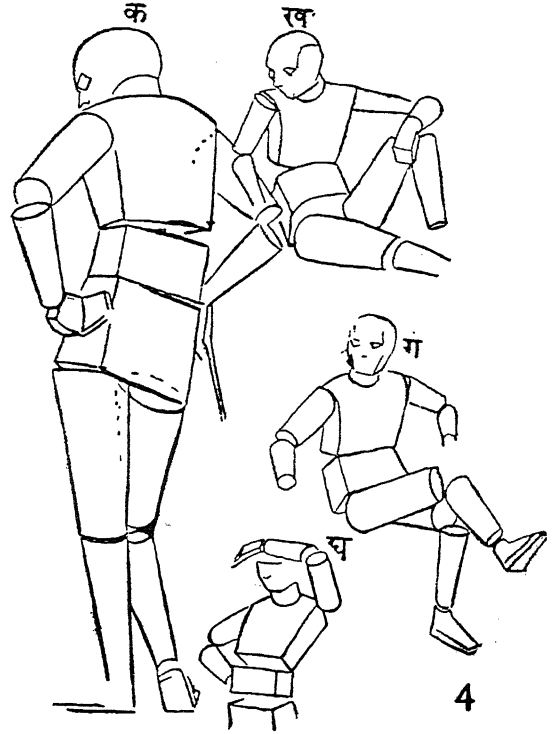
चित्र नं० ४

पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि वह एक ऐसी आकृति खींच रहा है जिसमें घनत्व है।

तीसरी और चौथी प्लेटमें जो चित्र दिये हुए हैं उन्हें ध्यानपूर्वक देखो। इनमें केवल मुटाई दिखानेकी ही चेष्टा की गई है। जल्दीमें खींची हुई अपनी आकृतियोंको इसी ढंगसे फिरसे खींचो। उस समय ऐसा विचार करो कि तुम्हारे खींचे हुए चित्र लकड़ीकी बनी हुई मूर्त्तियाँ-मात्र हैं जिनके शरीरके जोड़ आसानीसे घुमाये जा सकते हैं। अच्छा तो यह होगा कि दिये हुए चित्रोंकी नकल की जाय और उसे स्वाभाविक रूप देनेकी चेष्टा

की जाय। सबसे अधिक ध्यान देनेकी वस्तु सिर और गर्दनकी व गर्दन और कंधेकी जुड़ाई है।

अनुपात

जैसा हम सभी जानते हैं स्त्री और पुरुषमें केवल लम्बे बाल, डाढ़ी, इत्यादिका ही भेद नहीं होता है—ये तो ऊपरी भेद हैं। उनके शरीरके अनुपातमें भेद होता है। पुरुषोंके कंधे स्त्रियोंसे चौड़े और कूल्हे पतले होते हैं। स्त्रियोंका कंधेसे लेकर कूल्होंतकका भाग पुरुषोंकी अपेक्षा लम्बा होता है। परन्तु टाँगें पुरुषोंकी लम्बी होती हैं। सब शरीर मिलाकर पुरुष अधिक लम्बे होते हैं। आगे पाँचवीं प्लेटको देखनेसे यह अच्छी तरह समझा जा सकता है।

स्त्री-पुरुषके शारीरिक अनुपातका यह एक साधारण नियम है। परन्तु चित्रकारको इसका अंधाधुंध अनुकरण नहीं करना चाहिए। अपनी आकृतिके विषयको देखकर अनुपात लेना चाहिए क्योंकि कभी-कभी इस विषयका उल्टा भी पाया जा सकता है। (क्रमशः)

सम्पादकीय

इण्डियन सायंस काँग्रेसकी जुबली

अखिल भारतवर्षीय वैज्ञानिक महासभाकी स्थापना को अब २५ वर्ष हो गये हैं। इस उपलक्षमें एक जयन्ती इस वर्ष कलकत्तेमें बड़े समारोहसे मनाई गई है। इस जयन्तीके अवसरपर सभापतित्वके लिए लार्ड रथरफोर्ड मनोनीत हुए थे,पर दैवयोगसे उनकी मृत्यु अधिवेशनसे पूर्व ही हो गई। उनके स्थानमें सर जेम्स जीन्सने सभापतिका आसन ग्रहण किया।

३ जनवरी १९३८ को कलकत्ता विश्वविद्यालयकी भूमिपर भारतके वायसराय लार्ड लिनलिथगोने जयन्ती उत्सवका उद्घाटन किया। स्वागत समितिकी ओरसे कलकत्ता विश्वविद्यालयके वायसचैन्सलर श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जीने लोगोंका स्वागत किया।

इस जुबलीके अवसरपर विलायतसे 'बृटिश एसोसियेशन फॉर दी एडवान्समेंण्ट आव् सायंस' के प्रतिनिधि भी यहाँ आये थे। उन्होंने जुबलीके साथ अपने एसोसियेशनका सम्मिलित अधिवेशन किया। कैनाडा, आस्ट्रेलिया आदि बृटिश साम्राज्यके प्रदेशोंमें इस प्रकारके अधिवेशन पहले भी हो चुके थे, पर भारतमें इस सम्मिलित अधिवेशनका यह पहला ही अवसर था। अतः जनतामें इस बातको विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

जुबलीके इस अवसरपर भिन्न-भिन्न १३ वैज्ञानिक विभागोंकी बैठकें हुईं, और १६०० के लगभग सदस्योंने भाग लिया। ८०० लेख पढ़े गए। इन बातोंसे पता चल सकता है कि भारतीयोंमें विज्ञानकी ओर रुचि किस प्रगतिमें बढ़ रही है।

सायंस काँग्रेसके तीन उद्देश्य हैं जिनकी ओर वायसरायने ध्यान आकर्षित किया—(१) वैज्ञानिक अनुसंधानको प्रोत्साहन देना, और इन अनुसंधानोंके भारतमें प्रकाशित करनेके साधन उपस्थित करना, (२) भारतीय वैज्ञानिकोंमें कौटुम्बिक संबन्ध स्थापित करना और (३) विज्ञानके प्रति जनताकी रुचि बढ़ाना।

यह जुबली बड़ी सफलतासे मनाई गई। इस संबन्धमें हमें दो ही बातें खटकती हैं। एक तो भारतीयोंकी इस वैज्ञानिक संस्थामें भारतीय भाषाओंका कोई स्थान नहीं है। यदि इस देशके वैज्ञानिक देशकी भाषाको अपनावें तो जनताका वे अधिक लाभ कर सकते हैं। दूसरी बात, इस अवसरपर विदेशी व्यक्तिका सभापतित्व ग्रहण करना है। जिस देशमें सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन जैसे नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक हों, उसमें बाहरसे बुलानेकी क्या आवश्यकता थी? रमनका गौरव जीन्ससे अधिक ही है। अस्तु, हमारी यही

इच्छा है कि भविष्यमें सायंस काँग्रेस अधिक राष्ट्रीयताकी भावनाओंसे संपन्न हो।

लेखकोंके प्रति

श्रद्धेय श्री गौड़जीकी मृत्युके उपरान्त परिषद्ने 'विज्ञान' के संपादनका कार्य मुझे सौंपा है। अपने कृपालु लेखकोंकी सहायताके बिना मैं इस कार्य्यको अच्छी तरह कभी निभा नहीं सकता। मेरा अपने पुराने सहयोगियों और 'विज्ञान' के लेखकोंसे यह विनम्र आग्रह है कि वे पूर्ववत् 'विज्ञान' पर दया बनाये रक्खें। हम चाहते हैं कि 'विज्ञान' के लेख जनताकी रुचिको ध्यानमें रखते हुए लिखे जायँ। अतः लेखकोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे ऐसे लेख प्रकाशनार्थ हमारे पास भेजें जिनसे सामान्य जनताका लाभ हो सके।

अपने पाठकों और ग्राहकोंके प्रति

'विज्ञान' हिन्दी भाषाका एकमात्र वैज्ञानिक पत्र है। हमारे पाठकोंका इस ओर विशेष कर्त्तव्य है, और हम उन्हींकी शुभ कामनाओंपर सदा निर्भर रहते हैं। पाठकोंसे हमारी प्रार्थना है कि समय-समयपर हमें सूचित करते रहें कि वे किस प्रकारके लेखोंमें रुचि लेते हैं, और वे 'विज्ञान' में कैसी सामग्री प्रकाशित होना अधिक आवश्यक समझते हैं। यदि हमें यह पता चलता रहे, तो हम 'विज्ञान' को अधिक उपयोगी बनानेमें समर्थ होंगे।

विषय-सूची

नमूना

विज्ञान

मार्च, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४६, संख्या ६

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

(इसका वर्णन आगामी अंकमें पढ़िये ।)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces. for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७६

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४६	प्रयाग, मीनार्क, संवत् १९९४ विक्रमी	मार्च, सन् १९३८	संख्या ६

डायनेमाइट—मनुष्यका बलिष्ट सेवक

[ले०—डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

डायनेमाइट नामक बारूद मनुष्यकी कृतियोंमें सबसे अधिक तीव्र और बलिष्ट वस्तु है। इसने केवल एक अर्ध-शताब्दीमें सारे संसारके इतिहासको बदल डाला है। आज फ़ौलादसे भी यह बढ़कर उपयोगी है क्योंकि किसी-न-किसी तरहसे यह प्रायः सभी वस्तुओंके बनानेमें प्रयुक्त होती है। लगभग ४० लाख मन डायनेमाइट केवल अमरीकामें पिछले वर्षोंमें खानोंसे पत्थर या खनिज पदार्थोंके निकालनेमें, पुल या बन्दरगाह बनानेमें और खेतीके कामोंमें लगी थी।

यदि डायनेमाइट न हो तो न तो मोटरें बन सकेंगी और न सड़कें, न बिजलीकी मशीन, न पेट्रोल और न घड़ी जैसी सीधी-सादी वस्तुएँ। डायनेमाइटसे ही लोहप्रद खनिज पदार्थ तोड़ा जाता है और इसीसे कोयला और पत्थर भी निकाला जाता है जो लोहा बनानेके काममें आता है। फिर डायनेमाइटसे ही वह कोयला निकाला जाता है जिससे जहाज़ और रेल गाड़ियाँ चलती हैं और कच्चे मालको लोहेके कारखानोंमें पहुँचाती हैं।

जिस बिजलीको आप अपने घरमें इस्तेमाल करते हैं वह शायद इसी कोयलेसे बनी होगी जो डायनेमाइटसे तोड़ा गया था और जिस तारसे बिजली आपके घरमें

आती है उसके तैयार करनेमें भी कभी-न-कभी डायनेमाइट इस्तेमाल की गई होगी।

अमरीकामें नई सड़कोंके बनानेके लिए जिस मिट्टी, पत्थर और सीमेंटकी आवश्यकता पड़ती है उसके लिए प्रति मील सड़क दस मन डायनेमाइटकी आवश्यकता पड़ती है। सन १९३६ ई० में दस लाख मन डायनेमाइट कोयला निकालनेके लिये खर्च की गई और इतनी डायनेमाइटसे १५ अरब मन कोयला पैदा हुआ। इसके अलावा पाँच लाख मन लोहेकी खानमें लगी जिससे १½ अरब मन लोहा पैदा हुआ। लगभग १५ लाख मन डायनेमाइट सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, जस्ता, एल्यूमिनियम और अन्य लोहरहित धातुओंके निकालनेमें खर्च हुई। १५ करोड़ पीपा सीमेंटके लिए पत्थर डायनेमाइटसे ही तोड़ा गया और दो लाख मन डायनेमाइट किसानोंने नहर खोदने या पुराने पेड़ोंकी जड़ उखाड़नेके लिए काममें ली। मच्छरोंके मारनेके कामसे लेकर बड़ी-बड़ी चट्टानोंको तोड़नेतकमें डायनेमाइटका प्रयोग किया जाता है। पहाड़ीके पत्थर काटकर मूर्त्ति बनानेके लिए अमरीकाके एक मूर्त्तिकारने नन्हे-नन्हे सूराख़ कर उसमें डायनेमाइट भरकर और पलीता लगाकर पत्थरकी छोटी-छोटी चिप्पियाँ आसानीसे तोड़ ली थीं और दूसरी ओर दस हज़ार मन डायनेमाइट एक बारमें दागी गई थी जिससे लाखों मन पत्थर क्षणभरमें चूर-चूर हो गया।

एक उदाहरण लीजिये। अमरीकाकी कोलेरेडो नदीसे लास एन्जिलसतक जब नहर बनाई थी तो यह आँका गया कि इसके बनानेमें यदि हाथसे काम किया जाय तो लगभग १००० वर्ष लगेंगे क्योंकि नहर १६ फुट व्यासकी बनी थी और इसकी लम्बाई ९० मील थी परन्तु डायनेमाइटकी सहायता लेनेसे कुल काम ६ वर्षमें समाप्त हो जायगा।

एक बार नदीकी स्थिति बदलनी थी। सुरंग खोदकर और उसमें डायनेमाइट भरकर दाग देनेसे क्षणभरमें २८ फुट चौड़ी और १२ फुट गहरी और तिहाई मील लम्बी नहर खुद गई। यदि यही काम हाथ और मशीनसे किया जाता तो महीनों लगते। डायनेमाइट पानीके नीचे भी दागी जा सकती है और इसीकी सहायतासे कई एक बन्दरगाह इतने गहरे बनाये जा सके हैं कि उसमें आजकल बड़े-बड़े जहाज़ आ-जा सकें।

कई सौ मन एक साथ दाग करके भी कृत्रिम भूकम्प पैदा किया जा सकता है और तब भूकम्पमापक सूक्ष्म यंत्रसे यह पता लगाया जाता है कि भूमिमें मिट्टीका तैल कहाँ-कहाँ पाया जा सकता है। बहुत-सी डायनेमाइट बड़ी-बड़ी इमारतोंमें नींव खोदनेके सिलसिलेमें दागी जाती है और ज़मीनके नीचे-नीचे चलनेवाली रेलोंके लिए सुरंग भी इसीसे खोदी जाती है। हज़ारों मन डायनेमाइट मनुष्य और उसकी सम्पत्तिकी रक्षामें खर्च की जाती है। आग लगनेपर जब आगको शीघ्र रोकनेका कोई अन्य प्रबन्ध नहीं किया जा सकता तो डायनेमाइटकी सहायतासे आसपासके दो-चार मकान उड़ा दिये जाते हैं जिससे आग आगे न बढ़े। मिट्टीके तैलकी खानोंमें और जंगलोंमें भी आगके फैलनेको रोकनेके लिए केवल एक ही उपाय है। मकान गिराने, बड़ी-बड़ी चिमनियाँ उतारने, पुराने पुलों और जहाज़ोंको तोड़ने, नहर खोदने आदिमें डायनेमाइट बराबर खर्च की जाती है।

परन्तु यद्यपि डायनेमाइटसे इतना उपयोगी काम लिया जाता है अधिकांश लोग इसके महत्वको नहीं समझते और इससे घृणा करते हैं। डायनेमाइटकी बत्ती लोगोंको साँपसे भी अधिक ज़हरीली जान पड़ती है। परन्तु इससे घृणा करनेकी और डरनेकी कोई बात नहीं है। आग लगनेपर अवश्य ही यह फट पड़ेगी परन्तु पैट्रोलमें भी तो यही गुण है। उससे तो किसीको चिढ़ नहीं होती। बाज़ लोग डायनेमाइट और पिक्रिक ऐसिड या टी० एन० टी० के अन्तरको नहीं समझते परन्तु डायनेमाइट इतने ज़ोरसे उड़ती है कि यदि इसे बन्दूक या तोपमें इस्तेमाल किया जाय तो अवश्य ही वह फूट जायेगी। तोप या बन्दूकवाली बारूदकी जितनी खपत होती है उससे कहीं अधिक डायनेमाइट-

की खपत होती है। पिछले दस वर्षोंका पता लगानेसे यह पता चलता है कि डायनेमाइटकी खपत-का कुल ३ प्रतिशत ही अन्य बारूदोंकी खपत है।

लगभग १०० वर्ष हुए इटलीके एक रसायनज्ञने ग्लिसरीनमें नाइट्रिक और सलफ्यूरिक ऐसिड मिलाई और इस क्रियासे जो तैल-सी और बारूदकी तरह उड़ने-वाली वस्तु मिली उसका नाम नाइट्रोग्लिसरीन पड़ गया। शीघ्र ही यह दवाके काममें आने लगा पर कुछ दिनों बाद इससे डायनेमाइट बनने लगी।

बरसोंतक नाइट्रोग्लिसरीन बेकार-सी चीज़ थी और तब एल्फ्रेड नोबेलने जिसके नामसे कई एक पारितोषिक आजकल दिये जाते हैं इसमेंमिट्टी मिलाई। तब वह बारूद बनी जिसे डायनेमाइट कहते हैं और जो बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई।

बिजली और प्रकाशको छोड़कर शायद डायनेमाइट ही सबसे अधिक तीव्र वस्तु है। यदि डायनेमाइटकी बत्तियाँ एकसे एक सटाकर लगा दी जायँ और एक सिरे-पर आग लगा दी जाय तो यह लौ करीब १८००० फुट प्रति सेकिंडके वेगसे आगे बढ़ेगी।

डायनेमाइट इतनी बलिष्ट नहीं है जितनी कुछ लोग समझते हैं। कुछकी तो यह धारणा है कि दो बत्ती डायनेमाइटसे एक मोहल्लेका मोहल्ला उड़ जायगा परन्तु सेन्फ्रान्सिसकोमें जब ज़बरदस्त आग लगी थी और मकानोंके गिरानेकी ज़रूरत हुई तो प्रत्येक मकान-को गिरानेमें ३०० से लेकर ६०० बत्तियोंकी आवश्य-कता पड़ी। खानोंमें १ सेर डायनेमाइटसे करीब २५० मन पत्थर टूटा तो समझा जाता है कि काम ठीक हुआ। मिट्टी खोदनेमें १ सेर डायनेमाइटसे करीब ५० घन फुट मिट्टी दूर होती है।

मिट्टीके बदले आधुनिक डायनेमाइटमें कई तरहकी चीज़ें पड़ती हैं। एक कम्पनी करीब १५० तरहके डायने-माइट बनाती है जिनमें बल, शीघ्रता और पानीमें जल सकनेकी शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। बाज़ जातिकी डायनेमाइट गुँधे आटेकी तरह होती है और कुछ रवा-दार और कुछ इतनी तरल होती है कि वह छेदोंमें आसानीसे डाली जा सकती है। पुराने डायनेमाइटमें यह अवगुण होता था कि वह जाड़ेमें जम जाती थी। आँच दिखलाकर पिघलानेमें कई बार अचानक दुर्घट-नाएँ हो गई थीं। अब तो ऐसी डायनेमाइट भी बनती है जो शून्यसे पचास या साठ डिग्री अधिक ठंढे वाता-वरणमें नहीं जमती।

डायनेमाइट कैसे बनती है ?

डायनेमाइट बनानेकी रीति बहुत पेचीदा नहीं है परन्तु इसके लिए काफी मैशीनरी और लम्बे अनुभव-की ज़रूरत पड़ती है। आधुनिक कारखानोंमें फौलादकी टंकियोंमें नाइट्रोग्लिसरीन बनाया जाता है। इनके भीतर पाइप लगे रहते हैं जिनमें बरफसे भी ठंढा नमक-का पानी बराबर पम्प किया जाता है जिससे तापक्रम बढ़ने न पाये। नाइट्रिक और सलफ्यूरिक ऐसिड टंकीमें पहिलेसे छोड़ दी जाती हैं और उसमें धीरे-धीरे ग्लिसरीन छोड़ा जाता है। मशीनसे संचालित कई एक कलछियाँ टंकीमें चला करती हैं जिससे ग्लिसरीन तेज़ाबमें ख़ूब अच्छी तरह मिल जाय। आधुनिक कारखानोंमें करीब ६००० सेर ग्लिसरीन और ३५०० सेर तेजाब एक बारमें मिलाया जाता है और इससे करीब १५०० सेर नाइट्रोग्लिसरीन तैयार होता है। तेजाब और ग्लिसरीन-का मिश्रण सीसेकी बनी टंकीमें डाल दिया जाता है और वहाँ कुछ समय पड़े रहनेसे बचा हुआ तेजाब नीचे बैठ जाता है और नाइट्रोग्लिसरीन ऊपर तैरने लगता है। इस नाइट्रोग्लिसरीनको धीरेसे पाइप द्वारा निकाल लेते हैं और पानीसे धोकर बचे हुए तेज़ाबको दूर कर देते हैं। अब रबड़के पहियेवाली टंकियोंमें जिनके भीतर ताँबेका पत्तर जमा रहता है नाइट्रो-ग्लिसरीनको डालकर उसे दूसरी कोठरीमें ले जाते हैं जहाँ इसमें मिट्टीकी जातिकी वस्तुएँ मिलाई जाती हैं। या उसमें शोरा, लकड़ीका चूर, आटा, गंधक, मैदा, खड़िया आदि आवश्यकतानुसार मिलाये जाते हैं। मशीनमें डालकर इसे खूब गूँधते हैं। गूँधनेवाली कल छुरीपर रबड़ मढ़ी रहती है जिससे धातुके धातुपर

रगड़ खानेसे आग लगनेका कोई डर न रहे। इस प्रकार बनी हुई वस्तुको डायनेमाइटका चूरा समझना चाहिए। लकड़ीके फावड़ेसे उसे निकालकर लकड़ीके कठौतोंमें रक्खा जाता है। इसे तब दूसरी कोठरीमें ले जाते हैं जहाँ यह मशीनके द्वारा कागज़के चोंगोंमें भरा जाता है जिनके भीतर मोमी कागज़ लगा रहता है। एक आधुनिक मशीनसे ५०० मन डायनेमाइट ८ घंटेमें इस प्रकार चोंगोंमें भर दी जाती है। इस प्रकार बनी हुई बत्तियाँ दूसरी कोठरियोंमें भेज दी जाती हैं जहाँ उन्हें कागजके बक्सोंमें भरा जाता है और उन बक्सोंके ढक्कनोंकी कीलें मशीनसे ठोंकी जाती हैं। इस प्रकार बंद किए बक्स रेलसे या जहाज़से बाहर भेज दिये जा सकते हैं।

शायद आप समझते हों कि डायनेमाइटके कारखानोंमें जान बराबर जोखममें रहती होगी और बहुत कम लोग अधिक दिन जी पाते होंगे परन्तु यह बात ठीक नहीं है। प्रत्येक छोटी-से-छोटी बातपर इन कारखानोंमें ध्यान रक्खा जाता है और ऐसी दुर्घटनाएँ ऐसे-ही कभी होती हैं। जब डायनेमाइट पहले-पहल कारखानोंमें बनने लगी तो अक्सर दुर्घटनाएँ होती थीं परन्तु अब तो शायद ही कभी दुर्घटना होती है। क्योंकि लापरवाह कारीगरोंसे अच्छे-से-अच्छा कारखाना खतरनाक हो सकता है इसलिए कारीगरोंके चुनावमें भी बड़ी सावधानी रक्खी जाती है और बरसोंतक सिखानेके बाद उन्हें काम करने दिया जाता है।

डायनेमाइटके कारखाने शहरों और गाँवोंसे बहुत दूर बनाये जाते हैं और कारखानेका प्रत्येक मकान दूसरे मकानोंसे काफी दूर रक्खा जाता है। एक-एक तरहका काम अलग-अलग मकानमें किया जाता है और जिन मकानोंमें भयानक काम किये जाते हैं उनके ऊपर खूब मिट्टी लदी रहती है जिससे कोई दुर्घटना होनेपर आग तुरंत बुझ जाय।

अवश्य ही सबसे अधिक दुर्घटना होनेका डर नाइट्रोग्लिसरीनके बनानेमें रहता है। इसलिए इसकी दीवारें बड़ी-मोटी होती हैं। फर्शपर रबड़ बिछी रहती है और कारीगर रबड़के जूते पहिनते हैं। दरवाजे सब बाहरकी ओर खुलते हैं और छतमें भी दरवाजे रहते हैं। अक्सर बाहर निकलनेके लिए ढालू रास्ते भी बने रहते हैं जिनपर फिसलकर लँगड़ा आदमी भी बाहर निकल जा सकता है।

केवल सबसे अधिक अनुभवी कारीगर ही इस विभागमें काम करते हैं और यहाँ बहुत थोड़े-से आदमी रहते हैं। एक आदमी सिर्फ़ थर्मामीटरपर टकटकी लगाये रहता है क्योंकि यदि तापक्रम कहीं बढ़ जाय तो अवश्य ही नाइट्रोग्लिसरीन उड़ जायेगा। टंकियोंमें मिलानेकी कलुछियोंका एक समूह फालतू रक्खा जाता है जिससे यदि पहिली मशीन बिगड़ जाय तो तुरंत दूसरी चलाई जा सके।

और फिर यदि कोई चीज़ ग़लत हो जाय तो एक हैंडिल लगा रहता है जिसे खींचते ही टंकीका कुल मसाला पानीके भीतर डुबाया जा सकता है। कारीगर ऐसे चतुर हो जाते हैं कि भारी गलती हो जानेपर भी इस हैंडिलके खींचनेके कारण दुर्घटना नहीं होने पाती।

सब जगह जहाँ नाइट्रोग्लिसरीन आ सकता है रबड़, ऊन या लकड़ीसे काम लिया जाता है। धातुकी टोंटी लगानेके बदले रबड़के ऊपर लकड़ीका शिकंजा लगा रहता है जिसके कसनेसे रबड़का पाइप बंद हो जाता है। तौलनेके बटखरे भी रबड़से मढ़े रहते हैं और घिरनियोंपर पट्टा लगाकर मशीन चलानेके बदले उनमें हवा-चक्की लगी रहती है और उसे दाबमें रक्खी गई हवासे चलाया जाता है।

नाइट्रोग्लिसरीनमें मिलाई जानेवाली मिट्टी अच्छी तरह चाल ली जाती है और एक बड़े विद्युत चुम्बकसे लोहेके सब कण खींच लिए जाते हैं। सब जगह लकड़ी और रबड़से ही काम लिया जाता है यहाँतक कि कारीगर धातुके बटनतक नहीं लगाने पाते।

इस प्रकार बराबर सावधानी रखनेसे और कड़े नियमोंका निरन्तर पालन करनेसे दुर्घटनाएँ प्रायः मिट-सी गईं। लाखों मन डायनेमाइट प्रतिवर्ष केवल बनती ही नहीं है परन्तु दूर-दूरतक भेजी भी जाती है और

कोई दुर्घटना नहीं होने पाती। पिछले १४ वर्षोंमें केवल अमरीकामें ही १,५०,००,००,००० सेर डायनेमाइट बनी और लाखों मील रेलपर लादी गई परन्तु एक भी व्यक्ति घायल नहीं हुआ और कोई भी वस्तु टूटी-फूटी नहीं। और उधर अनुभवी कारीगरोंके हाथमें डायनेमाइट वैसी ही साधारण-सी वस्तु है जैसे आरी या बसूला यहाँतक कि एक बूढ़ा कारीगर, जिसने हज़ारों मन डायनेमाइट अपने जीवनमें दागी होगी और सेरों प्रतिदिन दागता था शबेरातके दिन अपने लड़केके पड़ाके दागनेसे साफ इन्कार कर गया कि न जाने पड़ाका फूटकर उसे घायल न कर दे। "मैं यह ठीक-ठीक जानता हूँ कि डायनेमाइटमें आग लगानेसे क्या परिणाम होता है" उसने कहा, "परन्तु पड़ाकेके पलीतेमें आग लगानेका परिणाम क्या होगा यह कौन जाने ?"

बीसवीं शताब्दीकी सहायक शक्तियोंमेंसे डायनेमाइट सबसे अधिक बलवान है। प्रतिदिन इसके लिए नये-नये काम निकलते आते हैं और इसके बिना हमारी आधुनिक सभ्यता अधूरी ही रह जाती है।

अन्तिम प्रयोग

(एकांकी नाटक)

[ले०— श्री हरिकिशोरजी, बी० एस-सी०]

पात्र

पुरुष-पात्र

डाक्टर कान्त— एक वैज्ञानिक (अन्वेषणमें संलग्न)

डाक्टर खन्ना— बार-एट्-ला एडवोकेट् (जो रजनीसे ब्याहका इच्छुक है।)

प्रकाश— डाक्टर कान्तकी प्रयोगशालाका सहायक

बिहारी— डाक्टर खन्नाका नौकर

स्त्री-पात्र

रजनी— एक एम० एस-सी० युवती जो डाक्टर कान्तको प्यार करती है। (उनकी भावी पत्नी)

दृश्य १

(एक वैज्ञानिककी प्रयोगशाला। एक ओर एक बड़ी-सी टेबिल जिसपर एक परिवर्तक (ट्रान्सफॉर्मर) रक्खा है। उसमेंसे दो तार निकलकर एक नलीमें जा रहे हैं। पास ही एक टबमें जलके भीतर एक पौधा रक्खा है। एक कोनेमें एक टेबिलपर किताबें, जर्नल आदि। बीचमें एक मेज जिसपरका सारा सामान अस्त व्यस्त पड़ा है; सामनेकी कुरसीपर वैज्ञानिक बैठा है। वस्त्र, वेश अजीब तरहसे व्यस्त—कुछ लिख रहा है। लिखते-लिखते इधर-उधर देखकर सिर खुजलाने लगता है। फिर उठकर नलीके पास जाकर उसे हिलाकर देखता है, उसे रख देता है और फिर वोल्टमापकके पास जाकर देखता है।)

वैज्ञानिक— एक लाख वोल्ट ! ओफ इतनेपर भी विश्लेषण नहीं, कुछ ठिकाना है ?.........अभी उस जर्मन मूलरने लिखा था कि अधिक शक्तिकी विद्युत् जब ईथरके माध्यममें सूक्ष्मतम तरङ्गोंमें कम-से-कम दबावके बीच प्रवाहित होती है तो वह अपने सामनेकी वस्तुको पारदर्शी बना देती है और वह वस्तु अदृश्य दिखाई देती है। और.................. । ... (नलीके पास जोरकी कड़कड़ाहट और विद्युत् विसर्जन)

(वैज्ञानिक चौंक पड़ता है; इधर-उधर देखता है।) एँ,...यह क्या हुआ ? ...आह,...विसर्जन ! डिसचार्ज ! डिसचार्ज !! ओफ, (सिर पकड़ता है।) सब मेहनत बेकार गई।

(वैज्ञानिक नलीके पास जाता है। सहसा नली छूते ही हाथ हटाता है और पासकी एक कुरसीपर जा गिरता है। नली जमीनपर गिरकर चूर-चूर हो जाती है।)...

वैज्ञानिक — शौक !!! एक लाख वोल्टपर......(सिर हिलाता है। दरवाजेपरका परदा हिलता है; वैज्ञानिक उधर देखता है।)

वैज्ञानिक— कौन ?...कौन वहाँ खड़ा है ? भाग जाओ। हट जाओ। इस समय कमरेमें एक लाख वोल्टकी बिजली बह रही है। हटो, भीतर न आना।

आगन्तुक— (भीतर झाँकते हुए) मैं, रजनी।

वैज्ञानिक— रजनी ? रजनी तुम हो। भीतर न आना, मैंने सोचा कोई और है। भीतर एक यंत्रके टूट जानेसे करेण्ट लीक कर रही है।......ज़रा मेनको ऑफ़ कर देना। (ठहरकर) मैं बच गया ! (अपनेको ऊपरसे नीचेतक देखकर) शायद इन्सुलेटेड रहनेके कारण...

रजनी— अच्छा।

[जाती है

वैज्ञानिक— सारी मेहनत बेकार। सारे प्रयत्न व्यर्थ—खैर, दूसरी बार सही।......हाँ तो क्या करना होगा ? (सोचता है।) मैं सोचता हूँ कि किसी वस्तुके अदृश्य होनेके लिए एक्सरेज़से भी सूक्ष्म तरङ्गोंकी आवश्यकता है। वहाँ भी एक डार्क-स्पेसकी ज़रूरत है जैसा कि एक्स-रेज़के उत्पन्न होनेके पहले क्रुक्स डार्क-स्पेस होता है। इस स्थानके बीच हमारे प्रयोगमें कोई वस्तु एक घण्टेतक पड़ी रहनेके बाद पूर्णतया अदृश्य हो सकती है। खैर, अबकी दफ़े सही...

(दरवाज़ेपर खटखटकी आवाज़)

वैज्ञानिक— कौन ? रजनी ? मेन ऑफ़ कर दिया ?

रजनी— ऑफ़ कर दिया, कान्त।

[वैज्ञानिक उसकी ओर देखता है।]

रजनी— अभी कबतक ऐसे ही चलेगा, कान्त ?

कान्त— प्रयोग ? वाह ! अब पूरा ही होना चाहता है।

रजनी— नहीं जी, मैं...तुम...

कान्त— कहो न रजनी, लजा क्यों गईं ?

रजनी— [नीचेकी ओर देखते हुए ठहरकर] कान्त, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।

कान्त— करती ही होगी। ... मेरा प्रयोग...

रजनी (बीच ही में)— फिर वही प्रयोग। कुछ देरके लिए तो उसे छोड़ो। (ठहरकर) तुम मुझसे विवाह अब तो करोगे न कान्त ?

कान्त— ज़रूर ही करूँगा। एक्सपेरीमेंट ही कुछ ऐसा है। अच्छा रजनी, जब मैं तुम्हें अदृश्य कर लूँगा तो क्या होगा ?

रजनी— पहले मेरी बातका उत्तर दो।

कान्त— हाँ, ज़रा एक ट्यूब लेता आऊँ। वह तो टूट गया। .... हाँ, रजनी, मैं तुमसे ज़रूर विवाह करूँगा।

[हँसता हुआ जाता है।
रजनीका प्रस्थान।

कान्तका प्रवेश]

कान्त इधर-उधर देखकर पुकारता है, "रजनी ! रजनी !! वाह ! खूब !! हमें बुलाकर आप चली गईं। खैर, अब इस ट्यूबको फिरसे फिक्स करके और भी लो प्रेशर और माईन्यूट वेवपर देखूँ क्या होता है।

[यन्त्रोंकी ओर जाता है]

(पट-परिवर्तन)

—०—

दृश्य २.

(समय प्रभात। बिलकुल अपटूडेट फैशनमें सजा एक ड्राइंग रूम। बगलमें एक दरवाजा। बीचमें एक छोटी सी टी टेबिल जिसके चारों ओर कुर्सियाँ लगी हैं। एक ओर प्रातःकालके वस्त्रमें डा० खन्ना अन्यमनस्क भावसे बैठे एक कागजपर कुछ लिखनेकी चेष्टा कर रहे हैं। बिहारी नौकर आकर टेबिलपर टी-ट्रे रख एक कप टी बनाकर और देकर चला जाता है पर डा० खन्ना वैसे ही बैठे रहते हैं। फिर एक घूँट चाय पीकर वैसे ही लिखते हुए पढ़ते हैं।)

डा० खन्ना-- (मन ही मन) आई लव रजनी । (कागज और पेंसिलको मेज़पर रखकर सीधे बैठते हैं ।)

रजनी भी क्या पागल हो गई है ? भौतिक विज्ञान-में एम० एस-सी० क्या कर लिया कि उसे खब्त हो गया है कि विवाह करेगी तो एक वैज्ञानिकसे और वह भी 'प्रेफ़-रेब्ली' डा० कान्तसे । मानता हूँ कि डा० कान्त उसके बचपनके साथी रहे हैं और अच्छे स्कॉलर हैं, पर हैं तो ख़फ्ती ही । देखो न, एक लाख वोल्टपर आपका प्रयोग होता है और किस चीज़पर ? लोगों को अदृश्य करनेके लिए ! इसका भी कुछ ठिकाना है । (हँसते हुए कमरेमें टहलते हैं ।) बट आई लव रजनी— रजनीको मैं प्यार करता हूँ । रजनीसे मैं कह भी चुका पर, वह हँसती ही है, मानती ही नहीं । उसे भी क्या पागलपन सूझ गया है । ऐसी पगली तो मैंने देखी ही नहीं । खैर, अभी भी वक्त है ; वह उस पागलसे ऊबकर मेरे पास आ सकती है । एनी वे, बट आई लव हर लव हर (कुरसीपर बैठते हुए चाय पीता है । रजनीका प्रवेश ।)

रजनी—हलो डाक्टर खन्ना, गुड मॉर्निङ्ग ।

खन्ना—(दरवाज़ेकी ओर देखकर) हलो रजनी, कम इन । (उठते हुए) गुड मॉर्निङ्ग, बैठो । (ठहरकर) चाय पीयो । (चाय बनाते और मुस्कराते हुए) कैसे आज सुबह चाँद उग आया ?

(चाय देता है ।)

रजनी—डाक्टर, क्या न आना चाहिए था ? भूल हो गई । अच्छा जाती हूँ । (मुस्कराते हुए उठने का प्रयत्न)

खन्ना — हुआ ही करता है; बैठो तो । यह तो तुम्हारी पुरानी आदत है । मैं कितनी दफे कह चुका...

रजनी— (बीच ही में) आज तुम्हें एक खबर सुनाने आई हूँ । जानते हो कल शामको मैं डाक्टर कांत-के यहाँ गई थी । हज़रत अपने 'एपरेटस' तोड़े मुँह बनाए बैठे थे । कमरेमें एक लाख वोल्टकी बिजली बह रही थी......

खन्ना— अरे ! बच तो गए न ?

रजनी— हाँ, बच तो गए ही पर एक शौक् खाकर । अजीब हैं । किसीको पुकारा भी नहीं । मैं गई तो 'मेन ऑफ' किया ।

खन्ना— (हँसते हुए) तुम भी तो उसी चक्करमें पड़ी हो । खैरियत हुई मियाँ बच गए नहीं तो सारी 'इनविज़ीबिलीटी' याद आ जाती । अच्छा हुआ । (ठहर-कर) और सुनाओ (गौरसे रजनीके चेहरेकी ओर देखते हुए और मुस्कराते हुए) क्यों, तुम्हें आजकल कोई प्रयोग नहीं याद पड़ रहा है । क्यों, तुम भी तो उसी सिनिकसे विवाहके चक्करमें पड़ी हो । (गम्भीर भाव से) हटाओ, तुम्हें भी क्या पागलपन सूझ पड़ा है ।

रजनी— डाक्टर खन्ना......(नौकरका लिफाफा लिए प्रवेश)

नौकर— हजूरके लिए एक आदमी यह पत्र लाया है । (पत्र रजनीको देता है । रजनी पत्र खोलकर पढ़ती है ।) बैठनेको कहूँ ?

खन्ना— किसका पत्र है, रजनी...?

रजनी— एँ...किसीका नहीं (पत्रका पढ़ना खतम कर उसे जेबमें रखती है । डाक्टर खन्ना, यू विल एक्स-क्यूज़ मी । मेरा अभी जाना ज़रूरी है । गुड बाई । (नौकर और रजनीका प्रस्थान)

खन्ना— अजीब लड़की है । पता नहीं क्या इसकी हालत होती जा रही है । डा० खन्ना, यू विल एक्स-क्यूज़ मी और गायब ! इतनी बेतमीज़ यह कभी न थी । यह भी उस पगलेके साथ पागल होती जा रही है । खैर, यह तो मैं देखूँगा...(पुकारता है ।) बिहारी !! बिहारी !!!

[नौकर का प्रवेश

चाय हटाओ । (नौकर चाय हटाकर जाता है ।) मेरे सामनेका रोड़ा केवल कान्त है । खैर, अगर वह वैज्ञा-निक है तो मैं भी बार-एट-लॉ, एल० एम० डी० हूँ, उससे अधिक दुनियाको जानता हूँ । देख लूँगा किस-की होती है । (आवेशमें टहलते हुए) रजनी किसकी

होती है ? रजनीसे शर्त लिखानी होगी और उसका प्रयोग ? वह अनहोनी-सी बात है; देखा जायगा।

[प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

—०—

दृश्य—३

(सजा हुआ ड्राइंग रूम। एक कोनेमें एक टेबिल-पर हारमोनियम। कुर्सियोंके बीच एक छोटी-सी टेबिलपर एक एश-ट्रे और एक सुन्दर गुलदस्ता कमरेके बीचमें रक्खा है। रजनी एक कुर्सीपर बैठी कुछ सोच रही है। फिर उठकर टहलने लगती है।)

रजनी—(मन ही मन) डाक्टर खन्ना मेरे और डाक्टर कान्तके बीचमें एक पत्थर हैं, एक चट्टान हैं, एक पहाड़ हैं। पितासे कहकर उसने प्रॉमिज़ लिया है, एक तरहसे शर्त लिखाई है। आह ! कैसी कड़वी वह घूँट थी ! उससे तो मरना अच्छा। (ठहरकर) कान्त ..कान्त मुझे प्यार करता है पर वैज्ञानिक है न। प्रयोगोंमें मस्त कभी कुछका कुछ बक जाता है। कितना सरस बच्चों-सा ! (ठहरकर) शर्तनामेमें लिखाया गया है "रजनी डाक्टर खन्नाके साथ विवाह करनेको बाध्य होगी अगर डाक्टर कान्तका यह अन्तिम प्रयोग भी असफल रहा। आह ! यही अवधि है। यहीं अन्त है। स्वर्ग या नरक, मेरा यहीं भाग्य-निर्णय होगा। भगवान, यह प्रयोग सफल रहे। (घुटना टेकती है !) आजसे यह नास्तिक, भगवान, तेरी दासिनी होगी। (हाथ जोड़ती हुई) यदि प्रयोग सफल रहा— [प्रार्थना शान्त..., उठते हुए] सफल होगा और अवश्य सफल होगा—यही ईश्वरीय आदेश है। भगवान मेरी रक्षा करेंगे। प्रेम अचल है।

[गाती है।]

शून्य हृदयमें प्रेम-जलद-माला, कब फिर घिर आवेगी ?
वर्षा इन आँखोंसे होगी, कब हरियाली छावेगी ?
लम्बी विश्व कथामें, सुख निद्रा समान इन आँखोंमें
सरस मधुर छवि शान्त तुम्हारी कब आकर बस जावेगी ?

(नेपथ्यसे)—रजनी ! रजनी !!

रजनी— आई, पिताजी (प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

—०—

दृश्य—४

[दृश्य १ की डाक्टर कान्तकी प्रयोगशाला।]

प्रयोग हो रहा है। डाक्टर कान्त काले वस्त्रोंमें।)

डाक्टर कान्त --अरे, यह क्या ? यह क्या ? ऐं... इस जारका पौधा क्या हो गया। अरे ऐं...क्या डिजॉल्व हो गया ? अरे ! या अदृश्य हो गया ? लेट मी सी। जाकर मेन ऑफ करके तो देखूँ।

[दरवाज़ेसे बाहर जाकर फिर लौटकर आता है।]

गुड लॉर्ड, यह पौधा तो यहीं इसी जारके अन्दर है पर मुझे दिखाई ही न दिया। (अपना सर ठोंकते हुए हँसता है ; रुककर) पर...(कमरेके बाहर जाकर भीतर लौटकर आते हुए) स्विच ऑन कर दिया। अब देखूँ। (यंत्रोंके पास जाता है। (आश्चर्यसे) अहा हा ! यह बात है ! अदृश्य !! इन्विज़ीबिल !!! गायब !!!! वंडर !!!!! खूब !!!!!! (कूदता है) आज मेरा रिवार्ड मिल गया। सक्सेस ! आज मेरा प्रयोग सफल हो गया !! वंडर !! (चिल्लाता है।) रजनी ! रजनी !! प्रकाश ! प्रकाश !! खन्ना !! यूरेका !!!

[चिल्लाते हुए प्रस्थान

हाँफते हुए कान्तका प्रवेश। दौड़कर इधर-उधर यंत्रोंको देखता है। फिर आकर अपने टेबिलके पास खड़ा होकर जल्दी-जल्दी कुछ लिखता है। फिर घूमने लगता है। रजनी और प्रकाशका प्रवेश

रजनी--प्यारे, कौंग्रेचुलेशन्स, मेरी पहली बधाई।

प्रकाश— डाक्टर, बधाई !

कान्त— रजनी, प्रकाश, बधाई ! (चिल्लाकर) यूरेका !! (ठहरकर) आज मैंने वह काम पूरा किया है जिसको संसार झूठा समझता था, जिसकी किसीको स्वप्नमें भी कल्पना न थी। आज मेरा प्रयोग सफल है।

[प्रकाश जाकर स्विच ऑन करता है ।]
रजनी ! रजनी !! यह देखो इस पौधेको एक, दो ! यह देखो अदृश्य हो गया......प्रकाश ऑफ, हाँ...ाँ...ाँ यह देखो दृश्य ।

रजनी—(अवाक्) वंडरफ़ुल

प्रकाश— वं ड र

(दोनों एक दूसरेका मुँह देखते हैं । कान्त अपने प्रयोगमें व्यग्र)

कान्त— अरे, प्रकाश ! प्रकाश !! जल्दीसे वह इनसुलेटेड स्टैण्ड ले आओ और छोटी इनसुलेटेड मेज भी । देखूँ, आदमी अदृश्य हो सकता है या नहीं... .. लाना ..हाँ ।

(प्रकाश मेज लाता है ।)

इसपर खड़े होओ—(प्रकाश हिचकिचाता है ।) ओ, नो ? हटो, अच्छा मैं ही खड़ा होता हूँ । तुम परिवर्तकसे वोल्टेज़ बढ़ाते हुए स्विच ऑन करो ।

(कान्त मेजपर खड़े होकर अपने पैरोंके नीचे नली-के तारके एक कोनेको दबाते हैं और दूसरेको हाथमें पकड़ लेते हैं । नलीके भीतर विद्युत् विसर्जन । स्टेजकी रोशनी धीमी हो जाती है । धीरे-धीरे नीचेसे ऊपर कान्तके सामने एक काला परदा (छोटा-सा) उठता है और वह अदृश्य हो जाते हैं ।)

रजनी— (चिल्लाकर) डा० कान्त ! कान्त !!

कान्त— रजनी, हा हा हा हा (हँसता है ।) मैं यहाँ हूँ । यह लो मैं अदृश्य हो गया, बिलकुल ?

रजनी — कान्त, बिलकुल, कान्त, ! मेरे प्यारे नाथ......

[खन्नाका प्रवेश

खन्ना—रजनी ! पागल हो गई ? यहाँ कोई भी तो नहीं है ! क्या बक रही हो ? ऐं......

(कान्तका ज़ोरसे हँसना—रजनीका खन्नाका मुँह देखना—खन्ना हँसना सुनकर चुपका जाते हैं ।)

खन्ना— रजनी, यह कौन यहाँ हँसा ? डाक्टर कांत ? (ठहरकर) हलो डा० कान्त । अन्दर आओ, गुड ईवनिंग ।

कान्त— गुड ईवनिंग, डा० खन्ना । हाउ डू डू ? मैं यहाँ हूँ, यहाँ अदृश्य । शेक हेण्ड—उस सफेद चौकीके ऊपर खड़े होकर...यस !

(खन्ना चौकीपर खड़े होकर हाथ बढ़ाते हैं पर जल्दीसे हाथ खींच लेते हैं ।)

खन्ना— ओफ ! बरफसे भी ज्यादा ठंढा !!

(सिरका पसीना रूमालसे पोंछते वहाँसे दूर हट जाते हैं । प्रकाश जाकर स्विच ऑफ करता है । उसकी खट आवाज । परदा हट जाता है । डाक्टर कान्त फिरसे खड़े दिखाई देते हैं । सब उनकी ओर देखते हैं ।)

कान्त— खन्ना, रजनी, तुम जानते होगे कि जब बिजलीकी बहुत सूक्ष्म किरणें एक नलीपरसे विश्ले-षित कर रिफ्लेक्ट की जाती हैं तो वे एक्स-रेके रूपमें अपने सामनेकी वस्तुओंको कुछ अंशतक पारदर्शी बना देती हैं । उसी प्रकार ये मेरी किरणें उनसे भी अधिक सूक्ष्म होनेके कारण कहीं भी नहीं रुकतीं और अपने सामनेकी विद्युत् आवेशित वस्तुओंपरसे परावर्तित न होनेके कारण उस वस्तुको पूर्णतया पारदर्शी अथवा अदृश्य बना देती हैं । इसी प्रयोगसे मैं अभी अदृश्य हुआ था । बँधे नियमोंके अनुसार इस किरणमें स्नान करके मनुष्य कुछ समयके लिए भी अदृश्य हो सकता है......

खन्ना— (चिल्लाकर पागल-सा) झूठ, सब झूठ, धोखेबाज़, पाजी, यह भी कभी हो सकता है ? कभी किरणें भी किसीको अदृश्य कर सकती हैं ? धोखा ! इन्द्रजाल ! ......रजनी मेरी है (हँसता है ।) मे—री — है । तुम्हारा अन्तिम प्रयोग भी असफल रहा-रहा ... धोखा — धोखा — धो — खा — ; झू — ठ —

(पागलों-सा दौड़ता बाहर जाता है । सब उसकी ओर देखते हैं । प्रकाश साथ ही बाहर जाता है ।)

रजनी और कान्त एक दूसरेकी ओर देखते हैं ।

कान्त— पागल तो नहीं हो गया है !

रजनी— जाने दो ...(ठहरकर) कान्त, अब तो तुम्हारी मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। अब तो तुम मेरे हुए न, ... नाथ ...

कान्त— (आगे बढ़ते हुए) रजनी। (नेपथ्य-में पिस्तौलकी आवाज़। दोनों उस ओर देखते हैं। प्रकाशका प्रवेश।)

प्रकाश— डाक्टर खन्नाने पिस्तौलसे आत्महत्या कर ली।

रजनी } — खन्नाने ...हत्या कर ली। आत्म—
कान्त } ह—त्या—

रजनी — बेचारा ———

(सबका बाहरकी ओर जाना)

(यवनिका)*

मिट्टीके बर्तन

(ले०— प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस)

पूर्व इतिहास

बर्तन बनानेमें मिट्टीका उपयोग कबसे शुरू हुआ इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। वैदिक मंत्रोंमें मिट्टीके बर्तनोंका ज़िक्र है पर मनुस्मृतिमें जो ईसाके जन्मके आठ-नौसौ वर्ष पूर्वकी लिखी गई समझी जाती है यह स्पष्ट रूपसे वर्णित है कि धातुओं वा मिट्टीके बर्तनोंको अशुद्ध हो जानेपर कैसे शुद्ध किया जा सकता है। हालमें सिन्ध घाटीके महेञ्जोदारो और हरप्पामें जो खोदाई हुई है उसमें उच्चकोटिके अनेक रङ्गोंसे रञ्जित और चित्रोंसे सुशोभित मिट्टीके बड़े सुन्दर बर्तन पाये गये हैं जिनसे इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ईसवी सनके ३००० से ४००० वर्ष पूर्वमें मिट्टीके सुन्दर बर्तन बनानेकी कला ज्ञात थी। प्राचीन मिश्र-वासी भी अपने कामोंके लिए मिट्टीके बर्तन इस्तेमाल करते थे। ईसवी सदीके ३००० से ५००० वर्ष पूर्वकी कब्रोंमें शवोंके रखनेके लिए मिट्टीके पात्र प्रयुक्त होते थे। मिस्रकी नील नदीकी घाटियोंमें प्रायः १० हज़ार वर्ष पुरानी ईंटें मिली हैं। बादमें मिस्रवासियोंने ही बर्तनोंपर लुक फेरनेकी कलाका आविष्कार किया जिसके चिह्न आज भी उस देशके पिरैमिडों और मन्दिरोंपर देखे जाते हैं।

ऐसीरिया और बेबीलोनके प्राचीन अधिवासी भी मिट्टीके बर्तनोंको भिन्न-भिन्न रङ्गोंसे रङ्गना जानते थे। उनकी दीवारें अनेक रङ्गोंसे रङ्गी गई हैं। प्राचीन ऐसीरियाके खंडहर खोरासाबादमें जो खोदाई हुई है उसमें २१ फुट लम्बी और ५ फुट ऊँची एक दीवार मिली है जो बिलकुल रङ्गी हुई ईंटोंसे बनी है और जिसपर मनुष्य, पशुओं और वृक्षोंके चित्र बने हुए हैं। प्राचीन जिनेवा और बेबीलोनमें जो बर्तनके नमूने प्राप्त हुए हैं वे ईसाके ५०० वर्ष पूर्वके बने हुए समझे जाते हैं।

ऐसीरियावासियोंसे फ़ारसवालोंने इस कलाको सीखा और इसमें उन्होंने बहुत कुछ तरक्की की। प्राचीन

---

*टिप्पणी— वैज्ञानिक विषयोंसे संबन्ध रखनेवाला हिन्दीमें यह प्रथम एकांकी नाटक है। आशा है कि हमारे पाठकोंको रोचक लगेगा। 'विज्ञान' में इसके प्रकाशित होनेपर संभवतः कुछ पाठकोंको आश्चर्य भी हो। यदि हमारे पाठक वैज्ञानिक गल्प या वैज्ञानिक नाटकोंके प्रकाशित होनेको अनुचित न समझेंगे, तो हम आगे भी इस प्रकारके लेखोंके प्रबन्ध करनेका प्रयास करेंगे।

— सत्यप्रकाश

फ़ारसवालोंके बर्तन अच्छे सामानों और पारदर्शक लुक़ोंसे बहुत सुन्दरतासे बने होते थे। वे बहुधा पीले रङ्गोंसे रङ्गे होते थे। अरब और मूर लोगोंके द्वारा यह कला स्पेन देश गई और वहाँ इसके निर्माणमें बहुत कुछ उन्नति हुई। स्पेनवालोंके बर्तन फ़ारसवालोंसे बहुत भिन्न होते थे। उनपर धातुओंकी-सी चमक होती थी। इनके नमूने अब भी स्पेनकी प्राचीन मसजिदोंकी दीवारोंपर देखे जाते हैं। मूर लोगोंसे ही इटलीवालोंने इस कलाको सीखा।

१५ वीं सदीमें इटली-निवासी एक चतुर व्यक्ति लुकाडेलारोवियाने एक नये प्रकारके मिट्टीके बर्तन बनानेमें सफलता प्राप्त की। ये बर्तन बहुत उच्च कोटिके लुक़से रञ्जित होते थे। ऐसे बर्तनोंको 'मेजोलिका' कहते थे। यह मेजोलिका शब्द स्पेनके एक टापू 'मेजोरिका' से बना है। इटलीसे मेजोलिका-निर्माणका ज्ञान अन्य यूरोपीय देशोंमें फैला।

इङ्गलैण्डमें ऐसे बर्तनोंका निर्माण कबसे शुरू हुआ इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। पर ऐसा मालूम होता है कि १७ वीं सदीमें इसका व्यवसाय बहुत कुछ उन्नत था। आज इङ्गलैण्डका स्टैफोर्डशायर नगर इस व्यवसायका प्रमुख केन्द्र है। मिट्टीके बर्तनोंके निर्माणके लिए दो चीज़ें आवश्यक हैं। एक मिट्टी और दूसरी जलावन। ये दोनों ही चीज़ें संसारके अनेक भागोंमें प्रचुरतासे पाई जाती हैं। अतः इस व्यवसायके सञ्चालक कुम्हार प्रत्येक देश और स्थलमें पाये जाते थे और अपना व्यवसाय चलाते थे पर जबसे पत्थरके कोयलेका व्यवहार ईंधनके रूपमें शुरू हुआ तबसे इसका व्यवसाय प्रायः उन्हीं स्थानोंपर केन्द्रीभूत होने लगा जहाँ कोयला और उत्कृष्ट कोटिकी मिट्टी प्राप्त हो सकती थी।

अँग्रेज़ी पुस्तकोंमें जिन कुम्हारोंका ज़िक्र आता है उनमें सबसे पहले नाम टॉमस और राल्फ टॉफ़्टके हैं जिनके नाम उनके बर्तनोंपर पाये गए हैं। १६६० से १६८० ई० के बीचमें इन लोगोंने अपने बर्तन बनाये थे। टॉफ़्टके नामसे ही कुछ मिट्टीके बर्तनोंको 'टॉफ़्ट बर्तन' कहते हैं। इनके बाद १६९० ई० में डेन्स-वार्सी दो कुम्हार भाइयोंने जिनके नाम 'एलर्स' थे इङ्गलैण्डके ब्राडवेल स्थानमें आकर बर्तन बनानेका व्यवसाय खोला और इनका व्यवसाय चमक उठा। ये लाल मिट्टीके बर्तन बनाते थे और उन्हें धातुओंकी छापसे सुसज्जित करते थे। इन लोगोंने ही मिट्टीके बर्तन बनानेमें पहले पहल कुछ उपकरणोंका जैसे कैल्शियम सल्फेटके ढाँचे और धातुओंके ठप्पेका प्रयोग किया था।

१८ वीं सदीमें इस व्यवसायकी बड़ी उन्नति हुई। १७२० ई० में सफ़ेद मिट्टीका प्रवेश हुआ और फ्लिंटके प्रयोगसे सफ़ेद बर्तन बनने लगे। १७५० ई० में राल्फ डैनियल द्वारा पेरिसके प्लास्टरके ढाँचे तैयार हुए जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकारके बर्तन सरलतासे ढाले जा सकते हैं। इसी वर्ष इनोक बूथ नामक व्यक्तिने मिट्टीके बर्तनोंको द्रव लुक़में डुबाकर फिर आगमें पकाया। इस व्यवसायका एक दूसरा प्रमुख व्यक्ति टॉमस वील्डन हुआ जिसके साझेदार वेजवुड थे। १७४० से १७८० ई० तकको 'वील्डन काल' कहते हैं। वेजवुडने पीछे स्वतन्त्र रूपसे एक कारखाना खोला जिसमें कुछ पीलापन लिये हुए सफ़ेद बर्तनका निर्माण होता था। इनका प्रचार बहुत अधिक बढ़ा। पीछे इन्होंने १७६९ ई० में इट्रूरीयामें एक कारखाना खोला जो अबतक इनके वंशजोंके हाथमें चल रहा है। इसके बाद यूरोप और अमेरिकामें अनेक कारखाने खुले।

भारतमें मिट्टीके बर्तनोंका निर्माण

इस देशमें जो मिट्टीके बर्तन बनाये गये हैं वे तीन विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। एक ऐतिहासिक कालके पूर्वके बर्तन, दूसरे बौद्ध और हिन्दू कालके बर्तन, तीसरे मुसलमानी कालके बर्तन।

ऐतिहासिक कालके पूर्वके बर्तन महेञ्जोदारो और हराप्पाकी खोदाईमें पाये गये हैं जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। ये कैसे बनाये गये थे इसका कुछ ज्ञान हमें नहीं है। बौद्ध और हिन्दू कालके बर्तन सारनाथ

और अन्य वैदिक खंडहरोंमेंकी खोदाईमें पाये गये हैं। चूँकि हिन्दुओंमें मिट्टीके बर्तन कुछ समयके प्रयोगके बाद अशुद्ध समझे जाते हैं और तब वे फेंक दिये जाते हैं इससे उस कालमें ऐसे बर्तन बहुत कम बनते थे जिनपर नक्काशी रहती थी। पीछे अनाज और अचारोंके रखनेके लिए मर्तबान और अन्य सुन्दर चित्रित बर्तन बनने लगे। पर ऐसे बर्तनोंका प्रयोग बहुत परिमित था। ऐसे बर्तन दक्खिन भारत और पेशावरके खंडहरोंकी खोदाईमें पाये गये हैं।

मुसलमानी कालमें मसजिदों और कब्रोंके बनानेके लिए रंगीन और चमकीले टाइल बनने लगे।

आजकल अधिकांश कुम्हार हिन्दू हैं पर दिल्ली और सिन्धके हैदराबादके आसपास कुछ काशीगार व कुज़ागार हैं जो मुसलमान हैं और मिट्टीके बर्तनोंपर बहुत कुछ केवल नक्काशीका काम करते हैं। जब चित्रित टाइलोंकी माँग कम हो गई तब ये लोग बर्तनोंपर चमक देने और चित्र बनानेमें लगे और ऐसे बर्तनोंका व्यवसाय अब भी थोड़ा बहुत चलता है।

सफ़ेद मिट्टीके बर्तनोंका व्यवसाय भारतमें १८६० ई०से शुरू होता है जब राजमहल पहाड़ियोंमें सफ़ेद मिट्टीका, जिसे चीनी मिट्टी कहते हैं, पता लगा। उस समय भागलपुर ज़िलेके कौलगंग स्थानमें एक कारखाना खुला था जिसमें उच्चकोटिके बर्तन तैयार होते थे। इसके बाद दूसरा कारखाना कलकत्तेमें इस बीसवीं सदीके आरम्भमें खुला। इस कारखानेके संस्थापक और सञ्चालक श्री देव थे जिन्होंने इस विषयकी शिक्षा जापान, इङ्गलैण्ड और अमेरिकामें पाई थी। श्री देवका अब इस कारखानेसे कोई सम्बन्ध नहीं है पर यह कारखाना सफलतापूर्वक चल रहा है और इसमें उत्कृष्ट कोटिके बर्तन और अन्य सामान तैयार होते हैं। इसके बाद ग्वालियरमें और फिर दिल्लीमें मिट्टीके बर्तन और अन्य चीज़ें बनानेके कारखाने खुले और वे चल रहे हैं। लाहौरका फोर्मैन क्रिश्चियन कालेज पहली शिक्षा-सम्बन्धी संस्था है जिसने इस विषयकी शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया। इसके पश्चात् हिन्दू विश्वविद्यालयने 'सिरेमिक' विभाग खोला जिसमें इस सम्बन्धकी शिक्षा दी जा रही है। इस शिक्षाके साथ-साथ यहाँ अर्द्ध-व्यापारिक पैमानेपर बर्तन, खिलौने, मूर्त्तियाँ, बिजलीका सामान, और स्वास्थ्य-सम्बन्धी चीजें भी तैयार होती हैं। यहाँ कुम्हारके बालकोंको भी उत्कृष्ट कोटिके बर्तन बनानेकी शिक्षा दी जाती है और कुछ बालकोंको इसके लिए संयुक्त-प्रान्तकी सरकारसे छात्र-वृत्ति भी मिलती है।

आजकल मिट्टीके बर्तन और अन्य सामान पर्याप्त मात्रामें बाहरसे यहाँ आते हैं। इनके प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। १९३५ ई० में प्रायः दो करोड़ रुपयेके ऐसे सामान यहाँ आए। अतः ऐसे सामानोंके निर्माणका यहाँ पर्याप्त क्षेत्र हैं। यह आवश्यक है कि ऐसे कारखाने शीघ्र ही इस देशमें खुलें ताकि देशका धन बाहर जानेसे बच जाय।

सिरेमिक क्या है ?

मिट्टीके सामान तैयार करनेसे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग-धन्धोंको 'सिरेमिक' उद्योग-धन्धे कहते हैं। यह 'सिरेमिक' शब्द यूनानी शब्द 'किरेमोस' से निकला है। किरेमोसका साधारण अर्थ कुम्हार, कुम्हारकी मिट्टी व मिट्टीका बर्तन है। ऐसा समझा जाता है कि यह यूनानी किरेमोस शब्द संस्कृत धातुसे निकला है जिसका अर्थ जलाना है और यूनानियोंके द्वारा पहले पहल पकाये हुए पदार्थोंके लिए प्रयुक्त होता था। मिट्टीके बर्तन बनानेकी कलाको एक समय 'सिरेमिक' कहते थे। पर आज इस शब्दमें दो विचार अन्तर्हित हैं। सिरेमिक शब्दसे यह ज्ञात होता है कि इनके तैयार करनेमें उच्च तापक्रमका प्रयोग हुआ है। दूसरे सिरेमिक उन सामानोंको कहते हैं जो बिलकुल नहीं तो प्रधानतः मिट्टी सदृश कच्चे पदार्थोंसे बने हैं। सिरेमिक उद्योग-धन्धेके अन्तर्गत निम्नलिखित पदार्थोंके निर्माण आते हैं :—

गृह-निर्माणके सामान— नाना प्रकारकी ईंटें, पीनेके पानीके नल, गन्दे पानीके नल, खपड़े, नरिये और दीवार व गचपर लगानेके टाइल।

अगालनीय सामान— आग-ईंटें, सिलिका-ईंटें, क्रोमाइट-ईंटें, इत्यादि।

बर्तन— प्याले, तश्तरियाँ, प्लेट, पकानेके बर्तन, नाना चित्रोंसे चित्रित सौंदर्यके बर्तन और मूर्त्तियाँ, स्वास्थ्य-सम्बन्धी बर्तन, पत्थरके बर्तन, रसायनशालामें प्रयुक्त होनेवाले पोरसीलेन और पत्थरके सामान।

काँच— बोतल, शीशियाँ, काँचके घरेलू बर्तन, खिड़कीके काँच, बिजलीमें प्रयुक्त होनेवाले काँच, प्रकाश-सम्बन्धी काँच, स्फटिक काँच, लुक़, इनेमल, कृत्रिम पत्थर इत्यादि।

धातुओंके इनेमल बर्तन— घरेलू बर्तन, रासायनिक बर्तन और विज्ञापनके पट्ट इत्यादि।

चूना, सीमेंट और प्लास्टर— चूना, पोर्टलैण्ड सीमेंट, दाँतके सीमेंट, मैगनीशिया सीमेंट, जला हुआ जिप्सम इत्यादि।

पृथग्न्यासक— बिजली और तापके पृथग्न्यासक।

उपर्युक्त सामानोंको तीन प्रधान श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं।

१:—एक वे सामान जो गरम करनेपर द्रवित हो जाते हैं और तब सान्द्र द्रव रूपमें विभिन्न आकारोंके सामानोंमें ढाले जा सकते हैं। ठंढा करनेसे इनमें बल आता है। ये काँचके सामान हैं।

२:—दूसरे वे पदार्थ जो चूर्ण रूपमें रहते हैं। जल देनेसे इनमें जुड़नेकी शक्ति आती है। ये चूना, सीमेंट और प्लास्टर हैं।

३:—तीसरे वे पदार्थ जो पानी देनेसे ऐसी नम्र अवस्थामें आ जाते हैं कि उन्हें आवश्यक आकार देकर उच्च तापक्रमपर गरम कर कुछ अंशमें द्रवित होनेसे उनमें बल आ जाता है। ये प्रधानतः मिट्टीके बर्तन, गृह-निर्माणके सामान, अगालनीय चीज़ें, पृथग्न्यासक इत्यादि हैं। इस स्थानपर इन तीसरे प्रकारके पदार्थोंका ही वर्णन होगा।

मिट्टीके बर्तनोंका वर्गीकरण

मिट्टीके बर्तनों और अन्य सामानोंको लोगोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्गीकरण किया है। किसीने ऐसे सामानोंको ऐसे दो विभागोंमें विभक्त किया है जो लोहेसे खुरचे जा सकें और जो लोहेसे न खुरचे जा सकें। लोहेसे न खुरचनेवाले सामानोंको फिर पारदर्शक और अपारदर्शक दो भागोंमें विभक्त किया है। एक दूसरे व्यक्तिने ऐसे सामानोंको लुक़वाले और बिना लुक़वाले विभागोंमें विभक्त किया है। एक तीसरेने ऐसे सामानोंको प्रवेश्य और अप्रवेश्य सामानोंमें विभक्त किया है। मिट्टीके सामान आजकल निम्नलिखित पाँच भागोंमें विभक्त किये जाते हैं:—

(१) अगालनीय सामान— ये वे सामान हैं जो शीघ्रतासे गलते नहीं हैं। ये साधारणतया १४००° श० से ऊपर तापक्रमपर पकाये जाते हैं। या तो ये मिट्टीके बने होते हैं जैसे आग-ईंटें या ग्रेफाइटके जैसे ग्रेफाइट घरिया। इनपर लुक़ नहीं फेरा जाता।

(२) पोरसीलेन— ये सफ़ेद और अप्रवेश्य होते हैं। इनपर सफ़ेद लुक़ फेरा रहता है। पर्याप्त पतले होनेपर ये अल्प पारदर्शक होते हैं।

(३) पत्थरके सामान— ये अपारदर्शक और अप्रवेश्य, सफ़ेद व रंगीन होते हैं। इनपर पोरसीलेन-के ऐसा लुक़ फेरा हुआ होता है या ये केवल नमकके लुक़से रञ्जित होते हैं। कभी-कभी ये बिना लुक़ फेरे हुए भी होते हैं।

(४) मिट्टीके सामान— ये सफ़ेद या रंगीन मिट्टीके बने होते हैं। इनपर बराबर लुक़ फेरा हुआ होता है।

(५) टेराकोटाके सामान— ये रंगीन मिट्टीके बने होते हैं। इनपर लुक़ फेरा हुआ नहीं होता। ऊपर-वाले सामानोंकी अपेक्षा बहुत निम्न तापक्रमपर ये पकाये होते हैं। साधारण ईंटें, खपड़े, गमले इत्यादि इनके उदाहरण हैं।

पागलों और साँपसे काटेके लिए अमोघ औषध

इसरौल

[ले०— बा० दलजीतसिंहजी वैद्य, आयुर्वेदीय विश्वकोपकार]

यह एक दीर्घ लता है जो वृक्षादिके आश्रयसे प्रतान विस्तार करती है। पत्र-भेदसे यह चार प्रकारकी देखनेमें आई है। प्रथम वह जिसकी पत्ती २॥ इंचसे ५ व ६ इंचतक लंबी, मसृण, अनीदार और विशिष्ट-गंधि होती है। दूसरीकी पत्ती पहिले प्रकारसे किंचित् छोटी और गहरे हरे रंगकी होती है। इसकी डाली आदि भी कालापन लिये हरे रंगकी होती हैं। इन दोनों जातियोंके पत्रमें केवल उक्त भेदके सिवा और कोई फर्क नहीं होता। पर तीसरी जातिकी पत्ती गंधके सिवा अन्य सभी बातोंमें इनसे भिन्न होती है। इस जातिकी पत्ती अनीदार नहीं, अपितु शीर्षकी ओर कचनारकी पत्तीकी तरह होती है। शेष सभी बातोंमें ये तीनों जातिके इसरौल समान होते हैं। इसरौलकी एक चौथी जाति भी है जिसकी पत्ती उपर्युक्त तीनों प्रकारके इसरौलकी पत्तियोंसे भिन्न होती है। यह स्मरण रहे कि उक्त चारों प्रकारके इसरौलमें केवल पत्र-भेद एवं कतिपय अन्य साधारण भेदोंके कारण ही जाति-भेद होता है; और सब बातोंमें ये प्रायः समान होते हैं। इनमें क्वार कार्तिकमें एक विचित्र आकृतिके गुड़चियाए हुए गहरे बैंगनी रंगके पुष्प आते हैं। फूलोंके झड़ जानेपर इनमें सतपुतियाकी तरहके, पर उससे किंचित् छोटे, फल लगते हैं। बीज चपटे और सूखनेपर काले रंगके होते हैं। इसकी जड़ अशाखी, बहुत लंबी, उँगलीसे लेकर अंगुष्ठसे भी अधिक मोटी होती है। यह ऊपरसे देखनेमें बादामी रंगकी होती है। काटनेपर मोटाईके रुख उसमें चक्राकार मंडल पाये जाते हैं। इसका प्रत्येक अंग, विशेषकर बीज, बहुत ही कड़ुआ एवं झालदार होता है। पत्तीको मलनेसे वा यूँ ही सूँघनेसे उसमेंसे एक विशेष प्रकारकी तीव्र गंध आती है।

शिम्बी वर्ग

उत्पत्ति-स्थान— भारतवर्षके उष्ण-प्रधान प्रदेशों, विशेषकर पर्वती भूमिमें, इसरौलके पौधे आपसे आप उगते हैं। चुनारके अनेक स्थलोंमें इनमेंसे तीन प्रकारके इसरौलकी बेलें प्रचुर परिमाणमें हम लोगोंके देखनेमें आई हैं।

औषधीय व्यवहारार्थ— इसके पत्र, फल तथा जड़ादि प्रायः सभी अंग काममें आते हैं।

गुणधर्म तथा प्रयोग

इसकी जड़ वातज्वर नाशक, फोड़ेको बिठानेवाली और सर्प-विषघ्न है।

फोड़ा उभड़ते ही इसकी जड़ काली मिर्चके साथ पीसकर गरमकर फोड़ेपर बाँधनेसे अवश्य फोड़ा बैठ जाता है। पत्र और बीज भी इसी प्रकार व्यवहारमें आते हैं। पर जड़की अपेक्षा ये निर्बल पड़ते हैं।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह आक्षेपमें भी लाभकारी प्रमाणित होगा। परीक्षा प्रार्थनीय है।

इसकी जड़ काली मिर्चके साथ पीसकर पिलानेसे साँपका विष* दूर होता है।

यह जड़ी पागल-दीवानेके लिए अतीव गुणकारी एवं परीक्षित है। इसके उपयोगसे अंडबंड व्यर्थ बकवाद करना कम हो जाता है। इससे नींद खूब आती है। यह प्रवर्त्तनकारी भी है। इसके प्रयोगसे प्रायः १५ या २० दिनमें स्पष्ट लाभ प्रतीत होता है। रोगकी उत्कट दशामें दिनमें एक व दो बार दिया जाता है। योषापस्मार (इख्तिनाकुर्रहम) में इसरौलकी जड़ ६ मा० ९ दाने गोल मिर्चके साथ पानीमें पीसकर पिलानेसे लाभ होता है। दूसरे वक्त मनोल्लासकारी ख़मीरे इस्तेमाल कराएँ। पर पूर्ण लाभ इसीसे होता है।

---

* सर्पदंश-चिकित्साकी हमारी लिखी सर्प-विष-विज्ञान नामी पुस्तिकाका अवश्य अवलोकन करें।

सर्वसम्पन्न भोजन

[ले०— डा० बद्रीनाथप्रसाद, पी-एच० डी०, डी० टी० एम०, एफ० आर० एस० ई०]

आधुनिक विज्ञानके आधारपर मनुष्यके भोजनमें किन-किन तत्वोंकी आवश्यकता है, इसका वर्णन करना इस लेखका उद्देश्य है। आजकल प्रत्येक देशमें स्वास्थ्य और भोजनकी चर्चा प्रायः हो रही है। भारतवर्षमें भी इस प्रश्नपर विशेष रूपसे विचार हो रहा है। इस प्रश्नको हल करनेके लिए वैज्ञानिक, डाक्टर और राजनैतिक नेता सभी बड़े उत्साहसे आजकल विचार कर रहे हैं। जबतक भोजनकी समस्यापर भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक पहलुओंसे विचार न कर लिया जाय तबतक वर्तमान जनताकी स्वास्थ्यहीनताका निवारण होना भी कठिन है। पाश्चात्य देशोंमें जनताके स्वास्थ्यपर राज्यका बहुत अधिक ध्यान रहता है। वैज्ञानिक आविष्कार जिन भोज्य पदार्थोंको उचित बताते हैं यदि वे चीज़ें उस देशमें न भी होती हों, तब भी राज्य उन चीज़ोंके प्राप्त करनेका पूरा प्रबन्ध कर देता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके अनुसार जो वस्तुएँ अच्छी समझी जाती हैं वे बाजारमें काफी तौरसे मिलने लगती हैं और जनता उनको स्वास्थ्यकर समझकर अपने दैनिक भोजन का एक अंग बना लेती है। इस प्रकार नए आविष्कारोंको प्रति दिनके जीवनमें व्यवहारके लिए इस बातकी आवश्यकता है कि जनताको समझाया जाय कि आविष्कार और छानबीनसे जानी गई बातें हितकर और लाभदायक हैं। उनकी हँसी उड़ाना उचित नहीं है। यदि यह विचार माननीय है तो आजकलकी जाँच-पड़तालसे भोजन-सम्बन्धी जो बातें निश्चित हो चुकी हैं उनका प्रचार साधारण जनतामें अवश्य होना चाहिए। इसी उद्देश्यसे यहाँ इस बातका उल्लेख किया जायगा कि किन-किन चीज़ोंके खानेसे बच्चे, युवक, बूढ़े और गर्भवती मातायें सभी शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकती हैं। नवीन वैज्ञानिक खाद्य पदार्थोंमें निम्न ६ तत्वोंका होना आवश्यक मानते हैं —

(१) प्रोटीन (२) मज्जिक या तैल पदार्थ
(३) कार्बोहाइड्रेट या शर्करा पदार्थ (४) खनिज लवण
(५) पानी (६) विटेमिन

स्वास्थ्यकर भोजनमें इन सब पदार्थोंका निश्चित परिमाणमें रहना आवश्यक है। यह परिमाण भिन्न-भिन्न अवस्थाके लिए भिन्न-भिन्न है।

प्रोटीन

यह बहुत परिमाणमें दूधके छेना, अंडा, माँस और मछलीमें पाया जाता है। अन्नोंमें ज्यादा प्रोटीन दालमें, उससे कम गेहूँ और जौमें और उससे भी कम चावल और चिउड़ेमें होता है। तौलके हिसाबसे माँस, मछली और दालके प्रोटीन प्रायः प्रति शत एकसे ही हैं। कुछ लोग उपयोगितामें जन्तुओंसे प्राप्त प्रोटीनको* मनुष्यके लिए बहुत उत्तम बताते हैं।

प्रोटीनका शरीरमें काम — हवा-गाड़ीका इञ्जन और मनुष्य-शरीरका इञ्जन कई अंशोंमें मिलता-जुलता है। यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता चलेगा कि हवा-गाड़ीमें चलनेकी शक्ति पेट्रोलियमसे मिलती है और इंजनके कल-पुर्ज़े जो धातु, स्टील, एल्युमिनियम ताँबे आदिसे बने हैं, यदि घिस या टूट जायँ तो पेट्रोलियम इन क्षतियोंको पूरा नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि पेट्रोलियम खतम हो जाय तो चलनेकी शक्ति धातुओंसे नहीं मिल सकती। शरीर-इञ्जनमें चलने-फिरनेकी सामर्थ्य दूसरे पदार्थोंसे और

* वनस्पति-प्रोटीनकी तुलनामें पशु-प्रोटीनको पहले अधिक प्रधानता दी जाती थी। पर आधुनिक अनुभवोंके आधारपर दोनोंकी उपयोगिताओंमें कोई भेद नहीं है। स० प्र०

इस इंजनके घिसे हुए पुर्ज़ोंको बनानेका काम किसी और पदार्थसे होता है? प्रोटीनका प्रधान काम इन घिसे हुए कल पुर्ज़ोंकी मरम्मत करना है। शरीर-इंजनमें एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बढ़नेकी भी शक्ति है। यह इंजन आरंभमें बड़े ही सूक्ष्म आकारका होता है। तबसे लेकर बीस वर्षकी अवस्थातक इसमें ख़ूब ही वृद्धि होती रहती है। फिर ४० वर्षकी अवस्थातक अनेक अंगोंका विकास होता रहता है। तत्पश्चात् प्रायः ह्रासकी अवधि आरम्भ होती है। अतएव भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें प्रोटीन तत्वके परिमाणकी उपयोगिता भी भिन्न-भिन्न है। वृद्धि और विकासकी उम्रोंमें इसका ज़्यादा ख़र्च होता है और ह्रासवाली अवस्थामें इसका ख़र्च मामूली रहता है। फिर जिस इंजनसे ज़्यादा काम लिया जाता है स्वभावतया उसके पुर्ज़े ज़्यादा घिसते हैं और उसमें प्रोटीन तत्वकी ज़्यादा आवश्यकता पड़ती है।

गर्भवती मातामें प्रोटीन तत्वकी विशेष आवश्यकता बच्चेकी बनावटके लिए होती है। प्रौढ़ व्यक्तिके लिए प्रति किलोग्राम शारीरिक वजनके निमित्त एक ग्राम प्रोटीन तत्वकी आवश्यकता प्रतिदिन होती है। इस हिसाबसे डेढ़ मन वजनवाले व्यक्तिके लिए रोज़ाना ६ तोला प्रोटीन चाहिए। यह छः तोला प्रोटीन, छः छटाँक चोकरदार आटे, या १० छटाँक चावल, व डेढ़ सेर गायके दूध या १ पाव गोश्तसे मिल सकता है। यदि कोई व्यक्ति ख़ूब शारीरिक परिश्रम करनेवाला हो तो यह परिमाण उसीके अनुसार बढ़ाना पड़ेगा। बढ़नेवाले बच्चे और गर्भवती माताओंमें भी इस तत्वका ख़र्च ज़्यादा होता है। उक्त बातोंपर ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि यदि प्रोटीन तत्त्व आवश्यकतासे कम मिले तो घिसे हुए अवयवोंकी मरम्मत न हो सकेगी, बढ़नेवाले बच्चोंकी बाढ़ ठीक न होगी और गर्भवती माताके पेटका बच्चा सुचारु रूपसे न बनेगा। परिणामपर ध्यान देते हुए उपयोगी प्रोटीनपर भी ध्यान देना जरूरी है। अतएव अच्छा तो यह है कि यह तत्व केवल एक प्रकारकी भोजन सामग्रीसे न प्राप्त किया जाय; बल्कि मिश्रित भोजन-सामग्रियोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रोटीन प्राप्त किए जायँ। जापानी सेना जो कुछ दिन पहले मछली-भातके भोजनपर ज़्यादा रहती थी, उस सेनाकी सैनिक उपयोगिता पाश्चात्य सेनाकी उपयोगितासे न्यूनतर पड़ती थी। किन्तु जबसे जापान सरकारने भोजन बदलकर पाश्चात्य प्रणालीपर कर दिया तबसे जापानी सैनिक-उपयोगिता भी यूरोपियन सैनिककी-सी हो गई है।

यदि प्रोटीन आवश्यकतासे ज़्यादा खा लिये जाएँ तो शरीरकी यह निरन्तर चेष्टा होगी कि इसे खंडित करके इसके अनावश्यक भागको गुरदे द्वारा बाहर फेंक दे। यदि मनुष्य बराबर आवश्यकतासे बहुत ज़्यादा प्रोटीन खाय तो गुरदे और अन्य अवयवोंको बहुत ज़्यादा काम करना पड़ेगा। इससे भी इन अवयवोंके अल्प आयुमें ही थक जानेका भय रहता है।

सबसे अच्छी बात यही है कि प्रोटीन मिश्रित भोजनसे प्राप्त किया जाय और आवश्यकताके अनुसार ही खाया जाय। मिश्रित भोजन वनस्पति और जानवर दोनोंसे प्राप्त पदार्थों, जैसे वनस्पतिमें दाल, आटा इत्यादि और जानवरसे दूध, दही, अण्डा, गोश्त इत्यादि, से बनता है।

मज्जिक या तैल पदार्थ

मक्खन, घी, मावा, तैल, और चर्बीमें मज्जिक पदार्थोंका अंश बहुत विशेष है। साधारणतया मनुष्य

आजकल प्रति किलोग्राम तौलके लिए यह न्यूनतम संख्या ०·७५ ग्राम मानी जाती है। ६ तोलाके स्थान ४–४॥ तोला काफ़ी होगा। स० प्र०

प्रोटीन अधिक खानेसे अनावश्यक मूत्रिकाम्ल शरीरके अंगोंमें संचित हो जायगा जिससे गठिया, पथरी आदि रोग भी हो जायँगे। स० प्र०

मज्जा इन्हीं चीज़ोंसे प्राप्त करता है। इसके अलावा यह तैलवाले बीज, जैसे बादाम, अखरोट आदि, से भी मिलता है। मक्खन, जो कच्चे दूधसे बनता है, मनुष्यके लिए बहुत स्वास्थ्यकर है।

मज्जिकका शरीरमें काम :— इसके दो प्रधान काम हैं —प्रथम तो कार्यकारिणी सामर्थ्य प्रदान करना और दूसरा शरीरमें कई स्थानोंपर संचित होकर आवश्यकताके अनुकूल कार्यकारिणी-सामर्थ्य प्रदान करते रहना। जब मनुष्यके भोजनमें मज्जिक तत्व ज़्यादा रहता है तब उसकी आकृति चर्बीली हो जाती है। पहले पहल इसके संचयका चिन्ह उदरपर दिखाई देता है। साधारणतया मनुष्यके शरीरपर थोड़ी चर्बी रहना आकृतिको सुन्दर बनाता है किन्तु इसका आधिक्य आकृतिको बिलकुल भद्दा कर देता है। बीमा कम्पनियोंकी रिपोर्टोंसे यह पता चलता है कि बहुत मोटा मनुष्य अल्पायु होता है। उपवासकी अवस्थामें, चाहे बीमारीके कारण हो चाहे और किन्हीं वजहोंसे, शरीरकी संचित मज्जा कार्यकारिणी सामर्थ्यके लिए काममें आती है अतएव मोटा मनुष्य उपवासको अच्छी तरह सहन कर सकता है और दुबले-पतले मनुष्यको इससे ज्यादा कष्ट होता है।

कार्बोहाइड्रेट या शकरायें

ये आलू, चीनी, मधु, अंगूर, गन्ना और मीठे फलोंमें बहुतायतसे पायी जाती हैं। चावल और आटेमें भी इनका परिमाण काफी है। सुविधाके अनुसार शकरदार पदार्थोंको दो श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है। एक तो वह जिसे शरीर पचाकर अपनेमें जज़्ब कर सकता है और दूसरा वह जिसे मनुष्य पचा ही नहीं सकता। जो नहीं पचता उसे सेलुलोज़ कहते हैं। मनुष्यके भोजनमें इसकी प्रधानताकी जरूरत इसलिए है कि कब्ज़ न होने पावे। यह हरे फल, सब्जी और चोकरदार आटेमें विशेष मात्रामें रहता है। इन चीज़ोंको ज्यादा खानेसे कब्ज़ नहीं रहता। यही कारण है कि माँसाहारीको कब्ज़ रहता है और शाकाहारी बहुत बार शौच जाते हैं।

शकरका शरीरमें कार्य

यह सबसे प्रधान कार्यकारिणी-सामर्थ्य देनेवाला तत्व है। यह बहुत कम मात्रामें मनुष्यके जिगर या यकृतमें संचित रहता है और जब उपवास किया जाता है उस समय यह संचित शकर बहुत ही शीघ्र खर्च हो जाती है। यदि यह उचित मात्रासे अधिक खाई जाय तो मनुष्य चर्बीला हो जाता है। इसका एक बहुत साधारण प्रमाण यह है कि गौएँ जब अच्छी काफ़ी हरियालीपर रक्खी जाती हैं तब खूब तैयार हो जाती हैं। पण्डे जो मिष्ठान्न बहुत खाया करते हैं उनकी आकृति खूब स्थूलकाय हो जाती है। मनुष्य जिनकी आकृति चर्बीदार है यदि वे चुस्त होना चाहते हैं तब उन्हें अपने भोजनसे शकर तत्त्वका अंश कम कर देना पड़ता है। आजकल पाश्चात्य देशमें चुस्त आकृतिके होनेका फैशन खासकर महिलाओंमें बहुत है। इसमें संदेह नहीं कि क्षीणकाय स्त्रियाँ स्थूलांगनाओंकी अपेक्षा बहुत सुन्दर दीखती हैं और उनमें स्फूर्ति भी विशेष होती है। किन्तु बिल्कुल चर्बीहीन शरीर कंकालसा दीखता है और उसमें आवश्यकताके लिए बहुत कम संचित शक्तिदायक तत्त्व रह जाता है।

खनिज तत्व

यों तो ये बहुत तरहके हैं किन्तु इनमें चार बहुत प्रधान हैं :

(क) खटिकम् या चूनेका अंश
(ख) नैलिन या आयोडिन
(ग) लोहा
(घ) नमक

इन पदार्थोंकी कमी-बेशीसे शरीरमें नाना प्रकारके उपद्रव हो जाते हैं और स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

(क) खटिकम् या चूनेका अंश— हड्डीमें यह तत्व विशेष है। खूनमें इसका निश्चित मात्रामें रहना बड़ा

जरूरी है। यदि ख़ूनमें इसकी मात्राकी कमी हो जाती है तब चिड़चिड़ापन, पेशियोंका विशेष कड़कना इत्यादि कई उपद्रव दीख पड़ते हैं। एक प्रायोगिक उदाहरण यह है :— गाय जो एक बार बहुत दूध दे सकती है उसमें यह पाया गया है कि एक बार बहुत दूध निकाल लेनेसे वह काँपने लगती है और बेहोश होकर गिर जाती है। यदि ऐसी अवस्थामें खटिकम्का इनजेकशन खूनकी नलीमें दे दिया जाय तो उसे शीघ्र होश आ जाता है और वह झट खड़ी हो जाती है। एक ब एक खूनमें खटिकम्की काफी कमी हो जानेसे थरथराहट और बेहोशी हो जाती है।

यदि खटिकम्की विशेष वृद्धि खूनमें हो जाय तो कै-दस्त होने लगते हैं। ख़ूनमें निश्चित परिमाणमें इसका रहना स्वास्थ्यके लिए अच्छा है। ख़ूनका खटिकम् दो स्रोतोंसे प्राप्त होता है— प्रथम, भोजन सामग्रियोंसे और दूसरा हड्डियोंसे-कुछ खटिकम्की मात्रा चालू-रूप-में है और आवश्यकताके अनुसार यह हिस्सा वहाँसे ख़ूनमें आता रहता है। यदि बहुत मात्रामें हड्डीका खटिकम् घुलता रहे तो हड्डी कमज़ोर हो जायगी ; कभी-कभी टूट भी जाती है। खटिकम्का अंश शरीरमें उचित मात्रा-में हो इसके लिए आवश्यक है कि रोज़ाना भोजनमें इसकी मात्रा यथोचित रहे। प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्तिके लिए प्रतिदिन प्रायः एक आनाभर खटिकम्की आवश्यकता है जो एक सेर अच्छे दूधसे प्राप्त किया जा सकता है। कुछ खटिकम् साग-सब्जी और गोश्तसे भी प्राप्त होता है किन्तु इसका परिमाण बहुत ही कम है। बढ़नेवाले लड़के, गर्भवती तथा दूध पिलानेवाली माँको इसकी विशेष जरूरत होती है। पूरी मात्रामें न मिलनेसे बढ़ने-वाले बच्चेकी हड्डी कमज़ोर बनती है और माँके पेटके बच्चेका हाड़ अच्छा नहीं बनता।

(ख) नैलिन या आयोडिन— इसकी आवश्यकता बहुत कम मात्रामें होती है और यह साधारणतः रोज़ाना खाद्य सामग्रीसे शरीरको प्राप्त हो जाता है। इसकी कमीसे एक प्रकारकी घेघाकी बीमारी हो जाती है और जब ऐसे रोगी नैलिन् मिला हुआ नमक खाते हैं तब घेघा दब जाता है।

(ग) लोहा— यह खूनमें पाया जाता है। इसकी कमीसे रक्त-न्यूनता (एनीमिया) की बीमारी हो जाती है। प्रति दिन शरीर इसे हरे साग-सब्जियोंसे प्राप्त करता है। यदि दूध पिलानेवाली माताके बदनमें रक्तकी कमी हो तो उसके दूधमें लोहेका अंश कम रहता है और बच्चा रक्त-न्यूनतासे पीड़ित हो जाता है।

(घ) खानेका नमक—शरीरमें जो पानीका अंश है उसमें नमक मिला हुआ है। यदि नमक ज्यादा खाया जाय तो पानीका अंश बदनमें ज्यादा हो जाता है। नमक कम खानेसे पानीका अंश कम हो जाता है। शारीरिक कार्रवाईके लिए नमकका निश्चित परिमाण-में रहना बड़ा जरूरी है। रोजाना खाद्य पदार्थ और भोजन बनाते समय नमकका प्रयोग जो होता है उससे यह शरीरको मिलता है। माँसाहारी नमक कम खाते हैं और शाकाहारी ज्यादा।

पानी

रुधिर और शरीरके अन्य तरल पदार्थोंमें यह विशेष रूपमें पाया जाता है। यदि मनुष्यकी मुख्यतम् आवश्यकताओंका क्रमशः वर्णन किया जाय तो प्रथम स्थान वायुका आता है, जिसके बिना मनुष्य कुछ मिनटोंतक भी नहीं जी सकता। दूसरा स्थान पानीका आता है। जिस समय पसीनेसे पानीका बहुत अंश शरीरसे निकल जाता है उस समय मनुष्यकी दशा अजीब हो जाती है। पानीके उचित सेवनसे शरीरके अन्दरकी गन्दगी साफ होती रहती है। यदि प्रातः काल बिछौनेसे उठते ही एक गिलास पानी पी लिया जाय तो कब्ज नहीं रहता। शरीरको पानी तरल भोज्य पदार्थों जैसे पीनेके पानी, दूध, तरकारियों आदिमें प्राप्त होता है। विटेमिनोंका वर्णन अगले अङ्कमें किया जायगा।

उक्त पाँच तत्वोंकी जरूरत शरीरमें क्या है और

ये तत्व साधारणतया भोजनकी किन-किन चीजोंमें पाये जाते हैं, यह सब जान लेनेसे पता चलता है कि सामान्य खाद्यके लिए मनुष्यको भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें तरह-तरहकी भोजन-सामग्रियोंकी आवश्यकता है। सिर्फ दो खाद्य पदार्थ दूध और अंडा ऐसे हैं जिनमें ये सब तत्व प्रायः पूर्ण परिमाणमें हैं। प्रमाण इसका यह है कि नवजात शिशु केवल माँके दूधपर ही छः महीनेतक जीता और बढ़ता है। इसी प्रकार अंडेमें चिड़ियोंकी शरीर-रचना अंडोंके अन्दर स्थित सफेदी और जर्दीसे हो जाती है। हृदय, हड्डी, पेशी, मस्तिष्क आदि सब इन्हींसे तैयार हो जाते हैं। प्रश्न यह उठता है कि केवल दूध या केवल अंडा मनुष्यकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंकी सब कमियोंको पूरा कर सकता है या नहीं? संक्षिप्त उत्तर यह है कि पूर्णरूपसे सब आवश्यकताएँ उनसे पूरी नहीं हो सकतीं। इसीलिए मिश्रित भोजन करना अनिवार्य है।

फलोंकी खेती और व्यापार

[ले०— श्री डबल्यू० बी० हेज़]

क़लमी पौधे लगाओ

फलोंके संबन्धमें भारतवर्षमें दो विशेष ग़लतियाँ की जाती हैं। सबसे बड़ी असावधानी तो यह है कि उचित पौधा नहीं लगाया जाता। लगभग सभी फल क़लमदार लगाए जा सकते हैं। बीजसे निकले पौधोंकी अपेक्षा क़लमोंमें यह लाभ है कि एक पेड़से जितनी क़लमें लगेंगी उन सबमें एकसे ही फल निकलेंगे। बीजमें यह बात नहीं है। एक ही पेड़के फलोंके बीजोंसे भिन्न-भिन्न तरहके अच्छे-बुरे फलवाले पौधे निकलेंगे। बीजोंसे चाहे कभी अच्छे फल भी निकलें पर क़लमी या चस्मा लगाए पौधोंसे एक और लाभ है। इनमें फल जल्दी निकल आते हैं। उदाहरणतः, पाँच वर्ष पहले अंगूरका चस्मा बाँधा था। उसमेंकी लतामें अबतक तीन बार फल लग चुके हैं। पर अंगूरके बीजसे जो लता उसी समय उगाई गई उसमें अबतक फल नहीं लगे हैं।

अधिकतर पौधोंके लिए बीज ही काममें लाए जाते हैं। इसका एक कारण भी है। क़लमी पौधे तेज़ पड़ते हैं क्योंकि कठिनतासे उगाए जाते हैं। अपने बाग़में स्वयं क़लमें लगाई जायँ तो सस्ती पड़ेंगी, नहीं तो पौधालयों (नरसरियों) से मोल लेनेमें दाम बहुत देने पड़ेंगे। इसके लिए बहुत धनकी आवश्यकता होगी। दूसरी बात यह है कि औरोंके यहाँसे पौधे लेनेमें अनुमान या विश्वासपर निर्भर रहना होगा क्योंकि अधिकतर यह देखा जाता है कि इन ख़रीदकर लगाए गए पौधोंमेंसे बहुत अधिक मर ही जाते हैं। दूसरी बात यह है कि पौधालयोंमें जिस सावधानी या कुशलतासे वे पौधे लगाई जाती हैं, उसी प्रकारकी सावधानी उन पौधोंके लिए बाग़ोंमें नहीं रक्खी जाती। परिणाम यह होता है कि पौधे ठीक नहीं उगते। पौधालयोंमें बेईमानीकी गुंजायश बहुत है। ख़राब-से-ख़राब पौधे भी अच्छी जातिके दामपर बहुत अधिक मूल्यमें बेचे जा सकते हैं। जब कई वर्ष उपरान्त पौधा मोल लेनेवालेको धोखेका पता चलता भी है, तब उसे यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि वह अमुक पौधालयसे ही ख़रीदा गया पौधा है। किसी भी पौधालयका व्यापार धोखा देते हुए भी ५ वर्षतक तो बेखटके चल सकता है। इसके बाद धोखा देनेवाले व्यापारी पहले पौधालयको तोड़कर किसी दूसरे नामसे पौधालय चलाने लगते हैं। ऐसी धोखेधड़ियाँ नित्यप्रति देखनेमें आती हैं। फिर भी सन्तोषकी बात है कि कुछ पौधालय बहुत पुराने और विश्वसनीय हैं।

क़लमी पौधे लगानेमें भी सावधानीसे काम नहीं लिया जाता। अधिकतर तो लोगोंकी रुचि यह होती है कि बाग़में कई जातिके पौधे लगाए जायँ। कम-से-कम आमके सम्बन्धमें तो यह बहुत होता है। आमकी कई सौ जातियाँ पाई जाती हैं। मेरीज़ महोदयको इस बात-का गर्व था कि उनके बाग़में ५०० प्रकारके आम हैं। वैज्ञानिक अध्ययनके लिए तो यह अच्छा है पर व्यापा-रिक दृष्टिसे लाभ इसीमें है कि तीन-चार प्रकारके ही आम अति सावधानीसे चुनकर लगाए जायँ। छोटे बाग़ों-में २०-२५ प्रकारके आम लगानेसे कोई लाभ नहीं है। अपनी परिचित मित्र-मंडली पर जातियोंकी संख्या गिना-कर रोब जमाना हो तो और बात है।

दूर-दूर पौधे लगाओ

दूसरी बड़ी भारी ग़लती जो इस देशमें की जाती है, वह है एक ही स्थानपर अति घने वृक्षोंको लगा देना। इस कारण पौधोंका ठीक विकास नहीं हो पाता। इस असावधानीका कारण दीर्घदृष्टिका न होना है। पौधे लगाते समय लोगोंका ध्यान यह नहीं रहता है कि १०-१५ वर्ष बाद ये पौधे कितनी जगह घेरेंगे। २५-२५ फुटपर लगे हुए अमरूदके पौधे आरंभमें तो बहुत छितरे-छितरे लगेंगे, पर कुछ वर्षोंमें ही यह मालूम हो जायगा कि इतनी दूरी अनुपयुक्त नहीं थी। इसीलिए यह होता है कि जिस पेड़ने आरंभके वर्षोंमें चाहे ख़ूब फल दिए हों आगे जाकर वह फल देना कम कर देता है।

अभी हमने कुछ दिनों एक बाग़का निरीक्षण किया। यह व्यापारिक दृष्टिसे लगाया गया है, और २ बीघेका है। जिस प्रकारके पेड़ इसमें थे वैसे इसमें १००—१५० लगाये जाने चाहिए थे। इस समय कुछ पौधे छोटे ही थे, कुछ अभी अंकुरित हो रहे थे इसलिए गिनना कठिन था, पर हमारे विद्यार्थियोंने जो संख्या गिनकर हमें बताई वह इस प्रकार थी :—

३८१ कस्टर्ड एपिल (शरीफ़ा)	४ बेल
	४ कटहल
८४ अमरूद	२ पपीता
२३ नीबू	२ कैथा
८ आम	१ करौंदा
४ अनार	कुछ अन्य

कुल ५२९ पेड़ थे। क़लमी आमके बहुत-से पौधे मर चुके थे। उनके थाँवले पुरानी याद दिला रहे थे। यदि कुआँ और घर वहाँ न होता तो पेड़ोंकी संख्या और भी अधिक बढ़ जाती।

वैज्ञानिक पद्धतिका व्यवहार

इस लेखमें बाग़वानीकी सभी बातोंका विस्तार-पूर्वक उल्लेख नहीं किया जा सकता। यहाँ बहुत-से बाग़ों-में पौधोंकी देख-रेखका कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं है। जुताई, सिंचाई और खादकी भी कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है। कीटाणुओं और रोग कृमियोंसे पौधोंकी रक्षा करनेकी जो आधुनिक वैज्ञानिक विधियाँ हैं, वे तो इस देशमें कहीं भी काममें नहीं लाई जाती हैं।

प्रसन्नताकी बात है कि अब कुछ लोगोंकी रुचि वैज्ञानिक पद्धतियोंकी ओर बढ़ रही है। पर इन लोगों-को भी यह कठिनाई पड़ती है कि उन्हें बहुत-सी आवश्यक बातोंके संबन्धमें जानकारी प्राप्त करनेका कोई साधन सुलभ नहीं है। इस देशमें बाग़वानीके विज्ञानकी ओर तो लोगोंका बिलकुल भी ध्यान नहीं गया है।

जब मैं इस देशमें नया-नया आया तो मैंने एक कृषि कालेजसे फलोंकी उपजके संबन्धमें कुछ बातें पूछीं, पर वहाँसे तो यह उत्तर मिला कि बाग़वानीको वे कृषिका अंश नहीं समझते रहे हैं, और इसलिए इन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें असमर्थ हैं। संतोषकी बात है कि अब उसी कृषि कालेजमें बाग़वानी भी एक विषय निर्धारित किया गया है।

कभी-कभी तो सरकारी विज्ञप्तियोंमें बेअजमाई सम्मतियाँ ही दे डाली जाती हैं जिनको देखकर आश्चर्य होता है। एक विज्ञप्तिमें एक वर्षके पौधेके लिए निम्न खाद देनेका आदेश किया गया है :—

०.९ पौंड	सुपर फ़ॉस्फ़ेट
०.४८ पौंड	पोटाश सलफ़ेट
१.३२ पौंड	खली
०.३ पौंड	अमोनियम सलफ़ेट

मुझे इनमेंसे दोकी उपयोगिताके संबन्धमें सन्देह होता है। मुझे यह भी सन्देह है कि जो मात्राएँ निर्धारित की गई हैं वे प्रयोग-गत हैं या काल्पनिक ही।

सौभाग्यकी बात है कि इस देशमें बाग़वानीके संबन्धमें अनुसन्धान करनेवाली कुछ संस्थाएँ भी खुल गई हैं। कुछ वर्षोंके उपरान्त इन संस्थाओंसे अनेक आवश्यकीय ज्ञातव्य बातोंका पता चल सकेगा। पर इनमेंसे कई संस्थाओंमें उचित व्यवस्था नहीं है। संयुक्त-प्रान्तमें तो केवल एक संस्था है जो पर्वतीय फलोंसे संबन्ध रखती है।

फलोंका व्यापार

फलोंको बेचने और खरीदनेकी व्यवस्था भी यहाँ कोई सन्तोषजनक नहीं है। अधिकांश बाग़ तो बड़े-बड़े नगरोंके निकटमें हैं और इन नगरोंमें ही लगभग सारेके सारे फल बिक जाते हैं। गाँवों और क़स्बोंमें तो फलोंकी पहुँच ही नहीं है। नगरोंमें लोगोंको उतने फल नहीं मिल पाते जितने आवश्यक हैं। बंबईमें प्रतिदिन प्रति मनुष्यके हिसाबसे चौथाई छटाँक फलका औसत पड़ता है, जब कि लन्दनमें यह औसत सवा दो छटाँक और न्यूयार्कमें आधा सेर है। छोटे शहरोंकी अवस्था कुछ अच्छी है, पर फिर भी पता ऐसे नगरमें प्रतिदिन प्रति मनुष्यके भागमें आधी छटाँक फल आते हैं।

बागके स्वामी इस देशमें वृक्षके फलोंको ठेकेपर उठा देते हैं। ये ठेकेदार बड़ी असावधानीसे फल तोड़ते हैं। शहरमें फल बेचनेके लिए तो फलोंको 'पैक' करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, पर दूर नगरोंमें भेजनेके लिए जो व्यवस्था की जाती है, वह संतोषजनक नहीं है। लकड़ीके उपयुक्त सन्दूक़ तो यहाँ मिलते नहीं हैं। टोकरियोंसे काम लिया जाता है जिनमें फलोंकी भले प्रकार रक्षा नहीं हो सकती। प्रयागमें अमरूद भी बाहर इन्हीं टोकरियोंमें जाते हैं। इन टोकरियोंमें ऊपर-नीचे सूखी पत्तियाँ रख दी जाती हैं। 'बोम्बे मार्केटिंग कम्पनी' ने १९२५ में हिसाब लगाया था कि वहाँ जो आम पहुँचे उनमें २०% तो किसी कामके नहीं थे क्योंकि वे कच्चे भर दिये गये थे और २०% आम सड़े निकले।

रेलका सदुपयोग

रेलवेपर यह अधिकतर दोष आरोपित किया जाता है कि फलोंका किराया अधिक लिया जाता है, और फलोंको ठंढा रखनेकी रेलमें कोई व्यवस्था नहीं है। अधिक किराया लिए जानेका एक कारण यह है कि रेलके डिब्बोंमेंकी सब जगह उचित रूपसे काममें लानेकी कोई व्यवस्था नहीं है। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारकी टोकरियाँ डिब्बोंमें ठीक तरहसे नहीं रक्खी जा सकती हैं। ये टोकरियाँ इतनी मज़बूत भी नहीं होतीं कि एक पंक्तिके ऊपर टोकरियोंकी कई पंक्तियाँ लगाई जा सकें। एक स्टेशनसे इतना फल भी नहीं लादा जाता कि पूरा डिब्बा भर जाय। अमरूदके संबन्धमें कुछ आँकड़े इस प्रकार हैं जिन्हें श्री महेशप्रसादने प्रयागके लिए जमा किया।

१६ नवम्बर १९३४ से २८ फर्वरी १९३५ तक १६८० मन अमरूद रेलद्वारा भेजे गए। इसमेंसे १०१४ मन बंगालको, विशेषतया हावड़ाको, भेजे गए। दिसम्बरके दूसरे पक्षमें सबसे अधिक अमरूद भेजे। इस समय ३०९ मन बंगालको गए। हावड़ाके लिए अधिक-से-अधिक एक दिनमें ४१ टोकरियाँ गईं, और भीड़के समय औसत २४ टोकरियाँ प्रतिदिनकी थी।

अब इन आँकड़ोंकी तुलना पश्चिमी देशोंसे क्या की जा सकती है, जहाँ फ़सलके दिनों गाड़ियोंकी गाड़ियाँ फलोंसे लदी दूर-दूर जाती हैं।

रेलपर यह भी दोष आरोपित किया जाता है कि फल सावधानीसे नहीं पहुँचाए जाते हैं, धक्कम-धक्कामें

पिस जाते हैं। यह ठीक है कि शिकायतोंमें कुछ सचाई अवश्य है, और रेलके अधिकारियोंका ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित होना चाहिए। पर लोगोंका भी कर्त्तव्य है कि फलोंको मज़बूत टोकरियों और सन्दूकोंमें भेजें जो मार्गमें खोले न जा सकें, और कर्मचारी लोग फलोंको मार्गमें ही हड़प न कर सकें। मज़बूत होती हुई भी ये टोकरियाँ हलकी होनी चाहिए जिससे ढोनेमें कठिनाई न हो।

फलाहारका प्रचार बढ़ाओ

इन सब बातोंको दृष्टिमें रखते हुए मैं कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूँ। यह मैं पहले कह चुका हूँ कि क्षेत्रफल और फलोंकी उपजसे संबन्ध रखनेवाले आँकड़ोंको इकट्ठा करनेका प्रयत्न करना चाहिए। यह न भी हो तब भी उपजकी मात्रा बढ़ानेकी ओर ध्यान होना चाहिए। फलोंके आहारकी भोजनमें बड़ी आवश्यकता है। हम यह तो नहीं कहते हैं कि केवल फलाहारपर रहनेसे सब रोगोंसे मुक्ति मिल सकती है, पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि फलाहारसे मनुष्यके स्वास्थ्यको बहुत लाभ होता है, और सभी व्यक्तियोंको फल अवश्य खाने चाहिए। सर जॉन रसेलने भारतीय कृषिके संबन्धमें प्रकाशित अपनी रिपोर्टमें यह लिखा है कि "तैलीय पदार्थ और गुड़की मात्राका ध्यान रखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीयोंके भोजनमें नोषजन और कलारीतापकी मात्रा उपयुक्त ही है। पर कमी विटेमिनोंकी है, विशेषतया विटेमिन ए और बी की। इसीलिए 'हीनतोत्पन्न रोग' यहाँ पाए जाते हैं जैसे विटेमिन-ए की कमीके कारण केरेटोमेलेशिया; विटेमिन-बी की कमीके कारण स्टोमेटिटिस; लोहेकी कमीके कारण रक्तमें हीमोग्लोबिनकी (रक्ताणुओं) कमी। खटिकमूकी भी भोजनमें न्यूनता है। यह कमी तभी पूरी हो सकती है जब लोग दूध, तरकारी और फल अधिक खायें।"

इस बातके लिए सर जॉन रसेल लिखते हैं कि "यह आवश्यक है कि गाँवोंके पासकी सड़कोंके दोनों ओर आमके पेड़ बहुत लगाए जायँ गाँवोंके निकट तरकारियाँ अधिक उगाई जायँ। गाँवोंके नालोंके निकट, और जहाँ कहीं भी संभव हो सके, बाग़ उगाए जाने चाहिए।" आप आगे लिखते हैं कि "फल और तरकारियोंकी उपज इतनी आवश्यक है कि शीघ्र-से-शीघ्र इस ओर लोगोंका ध्यान जाना चाहिए।"

वे उत्साही कृषक जो इन आदेशोंको माननेके लिए तैयार हैं कभी-कभी यह आपत्ति उठाते हैं कि आधुनिक कठोर नियमोंके होते हुए ऐसा करना बहुत कठिन है। राज्य-नियमोंका मुझे भी ज्ञान नहीं है, पर यह कह सकता हूँ कि यदि इन कामोंमें राज्य-नियम बाधा डालते हैं, तो उन्हें परिवर्तित कर डालना चाहिए। यदि सर जॉन रसेलके आदेशोंसे कुछ लाभ उठाना है तो सरकारको इस प्रश्नकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

फल सस्ते हों

फलोंकी उपज चाहे कितनी भी बहुलतासे क्यों न हो, आर्थिक दृष्टिसे जबतक यह लाभकर न होगी, तबतक इसका प्रचार न हो सकेगा। सौभाग्यकी बात है भोजनकी दृष्टिसे ही नहीं आर्थिक दृष्टिसे भी यह लाभकर है। इस समय भारतवर्षमें आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, जापान, पेलेस्टाइन, और संयुक्तराज्यसे बहुत फल आ रहे हैं। इनमें कुछ तो ऐसे हैं जो केवल कुछ थोड़े-से पर्वतीय प्रान्तोंमें ही यहाँ उगाए जा सकते हैं। यह कहना कठिन है, कि इन फलोंकी इतनी अधिक मात्रा यहाँ पैदा की जा सकती है, जिससे ये विदेशी फलोंकी अपेक्षा सस्ते बिक सकें। पहाड़ी लोगोंको इस काममें विशेष कठिनाइयाँ भी उठानी पड़ती हैं जैसे मुख्यतः लाने-ले जानेका अधिक व्यय। उदाहरणतः, यह कहा जाता है कि जापानसे बम्बई सेब लानेका जितना मार्ग-व्यय पड़ता है, उसका लगभग तिगुना कूलू घाटीसे बम्बई लानेका लगता है। एक और भी बात है; वह यह कि पहाड़ी फल उतने अच्छे भी नहीं होते जितने कि विलायती। पर तब भी यदि पहाड़ी प्रदेशोंके फलों-

की उपजकी मात्रा बढ़ाई जाय और उनकी जाति एवं गुण अच्छे किए जायँ तो विलायती फलोंके ये स्थानापन्न हो सकते हैं। विदेशी फलोंका व्यापार बहुत कुछ छीनकर अपने हाथमें ले सकते हैं। यही बात अन्य उष्ण और उपोष्ण प्रान्तीय फलोंकी भी है। यदि ये बाज़ारमें सस्ते और उचित मूल्यपर मिलने लगें तो ये बहुत-से विदेशी फलोंका स्थान ले सकते हैं। देशमें इस समय नीबू या शंतरा बाहरसे जो बहुत आ रहा है, वह ऐसा होनेपर रुक सकता है। भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तके लिए यदि इसी प्रकारके फलोंकी उत्कृष्ट जातियाँ प्राप्त करनेका प्रयास किया जाय, और निकृष्ट जातियाँ तिरस्कृत कर दी जायँ, तो कोई कारण नहीं है, कि उत्कृष्टताकी दृष्टिसे भारतीय फलोंको भी वही सम्मान न मिले जो विदेशी फलोंको मिल रहा है। विदेशी फलोंको जो विजय मिल रही है उसका कारण उनकी ऊपरी रूप-रङ्गत भी है। यहाँके लोगोंको भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। पर सबसे अधिक आवश्यकता तो इसी बातकी है, कि प्रति बीघा उपजकी मात्रा बढ़ानी चाहिए जिससे फलोंका दाम कम रक्खा जा सके। कुछ वर्षोंके लिए फलके व्यापारको राज्य-संरक्षण मिलना चाहिए जिससे फलोंका भारतीय व्यापार बढ़ सके, पर यह संरक्षण सर्वदाके लिए नहीं होना चाहिए। यदि भारतीय कृषक बराबरीके दर्जेपर माल सस्ता नहीं पैदा कर सकते हैं तो इसकी वजहसे ख़रीदनेवाले क्यों घाटा सहें। यदि फलोंके उपयोगका प्रचार बढ़ाना है तो इनका मूल्य अनुचित रूपसे अधिक नहीं रक्खा जा सकता है। पर मेरी तो यह निश्चित धारणा है कि भारतवर्ष बराबरीके दर्जेपर भी व्यापारमें प्रतियोगिता कर सकता है, कम-से-कम भारतीय बाज़ारोंमें अवश्य ही। आर्थिक दृष्टिसे आवश्यक है भी कि वह ऐसा करे।

फलोंकी खेतीमें अधिक लाभ

मनुष्यके जीवनका आदर्श तभी बढ़ सकता है जब कि देशमें प्रति मनुष्य उपज बढ़ जाय। अन्नोंकी अपेक्षा भूमिकी प्रति बीघा उपज-शक्ति तरकारी और फलोंके लिए अधिक है। यदि बाग़वानीका प्रचार अधिक हो जाय तो इस समयकी अपेक्षा कम बीघे ज़मीनकी पैदायशसे ही लोगोंका पेट भर सकता है। बहुत-सी भूमि इस योग्य बच जायगी कि यहाँकी उपज विदेशोंमें भेजी जा सके। यदि श्रमकी समुचित व्यवस्था हो तो अन्न बोनेकी अपेक्षा कृषकको फल और तरकारियाँ बोनेसे उतनी ही ज़मीनमें अधिक लाभ हो सकता है। भारतवर्षमें समस्या यह नहीं है कि श्रमकी कमी है, समस्या कृषक-जन-संख्याको सदा उचित और लाभकर कामोंमें लगाए रखनेकी है। कुछ वर्ष हुए, प्रो० राधाकमल मुकर्जीका एक लेख किसी समाचार-पत्रमें निकला था जिसमें उन्होंने लिखा था कि "फलकी खेती और फलका व्यापार, ये दो बातें ऐसी हैं जो पूर्वीय प्रान्तोंकी शोचनीय अवस्थाको बहुत कुछ सुधार सकती हैं। बनारस, बस्ती या जौनपुरमें प्रति बीघा गेहूँसे जितनी आय हो सकती है, उसकी १५ गुनी आम, तरकारी या फल लगानेसे होगी अतः उस स्थानमें जहाँ अन्न उगानेसे आर्थिक लाभ नहीं होता है, यदि तरकारी और फल लगाए जायँ तो लाभ बहुत अधिक होगा।" पर इसका ध्यान रखना चाहिए कि खेतोंकी अपेक्षा बाग़ोंके पौधोंके लिए अच्छी खाद, अधिक पानी, और व्यवस्थित बाज़ारकी आवश्यकता है।

छोटे कृषक फल लगानेसे इसलिए भी हिचकिचाते हैं कि आरम्भके कुछ वर्षोंमें फलके वृक्षोंसे उन्हें कुछ प्राप्ति नहीं होती है। पर यह कठिनाई इस प्रकार कुछ दूर की जा सकती है कि कुछ शीघ्र फलनेवाले पपीतोंके समान वृक्ष लगाए जायँ, और दूसरे यह कि जबतक पौधे छोटे रहें उनके बीचकी भूमिमें तरकारी बोनेका प्रबन्ध कर दिया जाय, जो बड़े कृषक अपनी भूमिकी उपजको बढ़ाना चाहते हैं, उनके लिए तो फलोंकी खेती बहुत ही लाभप्रद होगी। जिस व्यक्तिमें कुछ शिक्षा और बुद्धि है, उसके लिए तो बाग़वानीसे बढ़कर और खेती हो ही क्या सकती है। मुझे तो फलोंकी खेती गन्नेकी उस खेतीसे तो अधिक निश्चित लाभ-

की प्रतीत होती है जिसके लाभप्रद होनेकी आशा तभीतक है जबतक उसे राज्यकी ओरसे व्यापारिक संरक्षण मिला हुआ है। यह संरक्षण सदा तो बना नहीं रहेगा।

जिस रिपोर्टका पीछे उल्लेख किया गया है, उसीमें सर जॉन रसेल इस बातको स्वीकार करते हैं कि गाँव-वालोंको फल देनेकी समस्या शहरके बाज़ारोंमें फल बेचनेकी समस्यासे बिलकुल भिन्न है। गाँवोंमें तो छोटे-छोटे और बहुत-से बाग़ होने चाहिए जिनसे गाँववालों-को सस्ते और ठोस फल जैसे अमरूद मिल सकें। देशी आम भी ठीक हैं, पर जहाँ क़लमी पौधे अधिक और अच्छी तरहसे लगाए जा सकते हों वहाँ भी देशी ही लगाये जायँ, इसका कोई कारण नहीं है। बात यही है कि क़लमी पेड़ आसानीसे सब जगह प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

फल-व्यापार केन्द्रीभूत करो

इस समय तो फलका व्यापार नगरोंके ही आश्रित रहेगा। इसकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि बहुत अधिक भूमि फलोंकी खेतीके लिए काममें लाई जाय और प्रति बीघा उपज भी बढ़ाई जाय। जो स्थान किसी विशेष फलके लिए उपयुक्त है, वहाँ केवल उसी फलके व्यापारपर विशेष ध्यान रक्खा जाय। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हर शहरके चारों ओर स्थानीय बाज़ारोंके लिए फल न उगाए जायँ। पर दूसरे शहरोंमें फल बेचनेके लिए यह आवश्यक है कि विशेष उपयुक्त स्थानोंमें ही विशेष फलोंका व्यापार केन्द्रीभूत कर दिया जाय। जबतक एक स्टेशनसे डिब्बेके डिब्बे फलोंसे लदे बाहर न भेजे जायँगे, तबतक रेलका कोई सन्तोषजनक उपयोग न होगा और रेल भाड़ा अधिक पड़ेगा। इस व्यापारके केन्द्रीभूत होनेसे यह भी होगा कि सहकारी व्यापारी सभायें भी अच्छी तरह संगठित की जा सकेंगी जिनकी प्रत्येक बड़े व्यापारमें बड़ी आवश्यकता है।

अच्छी जातिके पौधे

प्रतिबीघा उपज बढ़ानेके लिए यह आवश्यक है कि अच्छी जातिके फल लगाये जायँ और खेती अच्छी रीतिसे की जाय। बहुत-से फलोंकी अच्छी जातियाँ सुप्राप्य हैं, अतः उनकी अधम और मध्यम जातियोंको तिरस्कृत कर दिया जाय तो बड़ा लाभ होगा। यदि यत्न और सावधानी-से पौधोंकी नस्लें ठीक की जायँ, तो अन्य फलोंकी भी अच्छी जातियाँ प्राप्त हो सकती हैं। संसारके अन्य देशोंसे भी फलोंकी उत्कृष्ट जातियाँ प्राप्त करके यहाँ लगानेका भी प्रयत्न होना चाहिए। संयुक्त राज्य अमरीकाके कृषि-विभागमें विदेशी बीज और फलोंके प्रचलित करनेका भी एक उपविभाग है। गत वर्ष इसका एक प्रतिनिधि प्रयागमें भी आया था। यह प्रतिनिधि कई वर्षसे भारत-में भ्रमण कर रहा था और ऐसे बीजों और पौधोंके संग्रह में व्यस्त था जिनकी खेती अमरीकामें सफलतापूर्वक की जा सके। भारतवर्षके लिए भी इसी प्रकारकी सहायता की आवश्यकता है। विदेशी फलोंकी खोज करने और उनको इस देशमें प्रचलित करनेके लिए एक छोटी-सी संस्था कम-से-कम अवश्य होनी चाहिए।

अनुसंधान-क्षेत्र खोलो

खेती करने और पौधे उगानेकी कौन विधियाँ सर्वो-त्कृष्ट हैं, यह जाननेके लिए वैज्ञानिक अनुसंधानोंकी आवश्यकता है। इस देशके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें आजकल अनुसंधानका कार्य बहुत कुछ किया जा रहा है। संयुक्त प्रान्तमें पहाड़ी फलोंके लिए चौबट्टियामें एक प्रयोगशाला है। उष्ण और उपोष्ण फलोंके संबन्धका सबसे बड़ा प्रयोग-क्षेत्र बिहारमें है। पर एक ही जगहका प्रयोग-क्षेत्र चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो भारतके सब प्रान्तोंकी समस्याको नहीं सुलझा सकता है। उस प्रयोग-क्षेत्रके फल वहाँकी भूमि और जलवायुके अनुकूल होंगे, और संभव है वे हमारे संयुक्त-प्रान्तके सब स्थानोंके अनुकूल न हों जहाँकी जलवायु और भूमि प्रत्यक्षतः भिन्न हैं।

दूसरी कमी हमारे यहाँ जो है, वह यह कि यहाँके अनुसन्धान-कर्त्ताओं, अध्यापकों और अन्य लोगोंमें

जिन्हें फल-विज्ञानमें रुचि है, कोई भी परस्पर सहयोग नहीं है। ऐसा न होनेसे दो कठिनाइयाँ आती हैं, एक तो ऐसी बहुत संभावना रहती है कि जो काम एक जगह किया जा रहा है, वही काम दूसरी जगह भी हो रहा है, और दूसरे यह कि वर्षोंतक प्रयोग-परिणामोंका किसीको पता भी नहीं चल पाता है। परस्पर विचार-विनिमय और आलोचनाओंसे सबको लाभ हो सकता है। असंगत और अनुपयुक्त बातें छोड़नेमें इनसे सहायता मिलती है। फल-विज्ञानवालोंकी यदि कोई सुसंघठित संस्था हो, जिसका चाहे वर्षमें एक ही अधिवेशन हो, तो भी भिन्न-भिन्न पारिभाषिक शब्दावलियोंकी उलझनोंसे बचा जा सकता है।

व्यापारकी बेईमानी दूर करो

बाज़ारकी उन्नतिके लिए भी बहुत कुछ किया जा सकता है। यदि बहुत फल बाहर भेजा जाय तो रेलका प्रबन्ध भी ठीक किया जा सकता है। यदि अच्छी सड़कें बन जायँ तो जिन अच्छे स्थानोंमें फल नहीं लगाये जा रहे हैं, वहाँ फ़लोंकी खेती की जा सकती है और फल बाज़ारोंमें लाकर बेचे जा सकते हैं। नगरोंमें फलोंके लिए शीत-संग्रहालयोंकी, और रेलमें बर्फ़के डिब्बोंकी व्यवस्था अब होने लगी है; इनका प्रचार और बढ़ाया जा सकता है। शहरके बाज़ार बड़े ही ख़राब हैं, जिनमें बेईमानीकी भरमार है। सन्तोषकी बात है कि आजकल देखभाल रखनेके लिए अफ़सर नियुक्त किये गये हैं जिन्होंने अच्छा काम आरंभ कर दिया है। उनकी सुविधाके लिए यह आवश्यक है कि नियामक सभाएँ उपयोगी नियमोंके निर्धारित करनेमें उनकी सहायता करें; उन्हें फल उगानेवालोंका भी सहयोग मिलना चाहिए जिससे वे फलोंके वर्गीकरण, और फलोंके लगानेके संबन्धमें अच्छी व्यवस्था कर सकें। यह काम 'यू० पी० फ्रूट डेवलेपमेंट बोर्ड', और स्थानीय 'फ्रूट ग्रोअर्स एसोसियेशन' कर सकती हैं।

फल-संरक्षण और डिब्बाबन्दीका प्रचार भी फलोंकी उन्नतिके साथ-साथ बढ़ना चाहिए। पर इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया जायगा।*

नवयुवकोंकी जीविकाका साधन

जिन बातोंका इस लेखमें उल्लेख किया है, यदि उनको व्यवहारमें लाना है तो ऐसे व्यक्तियोंको इस व्यवसायमें अवश्य भाग लेना चाहिए जो बुद्धि-संपन्न और जानकर हों। उचित सम्मतिदाताओंकी ही केवल आवश्यकता नहीं है, बल्कि ये पढ़े-लिखे लोग बड़े-बड़े बाग़ोंको जोतें बोयें और इस प्रकार कार्य करें कि वे इतना लाभ उठा सकें कि उनकी जीविका इसपर चल सके, और वे अपना सब समय इसपर लगा सकें; उनको अपने परिश्रमका पूरा-पूरा लाभ मिल सके। दूसरे देशोंमें तो सर्वोत्कृष्ट बुद्धिवाले कृषक फलोंकी ही खेती करते हैं और अन्य लोगोंकी अपेक्षा वे अधिक लाभमें रहते हैं। भारतमें भी ऐसा ही हो सकता है। सर जान रसेलके इस वाक्यके साथ मैं यह लेख समाप्त करूँगा— "फलोंकी खेतीसे अन्य पदार्थोंकी खेतीकी अपेक्षा अधिक लोगोंका श्रम उपयोगमें लाया जा सकता है। कृषि-कालेजके ग्रेजुएटोंके लिए तो यह बहुत ही उपयुक्त है क्योंकि उनकी इच्छा साधारण खेतिहरकी अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठावान कार्य करनेकी रहती है।"

---

* फल-संरक्षणके संबंधमें विज्ञान-परिषद्‌से प्रकाशित 'फल-संरक्षण' नामक पुस्तक देखिये। —स० प्र०

धातुओंपर क़लई करना और रंग चढ़ाना

[ले०—पं० ओंकारनाथ शर्मा]

ताँबेकी क़लई करनेका घोल

नीला थोथा	८ भाग
भपकेका पानी	३० भाग

इन चीजोंको मिलानेसे घोलमें कुछ गरमी पैदा हो जायगी इसलिए जब घोल कुछ ठंढा पड़ जाय तब उसमें थोड़ा-सा लिकर एमोनिया मिलाना चाहिए जिससे घोल-में मिला हुआ ताँबा नीचे जम जावे। फिर थोड़ा-सा लिकर एमोनिया इसमें और मिलाना चाहिए जिससे, पहिले जो ताँबा हरे रंगके कीचड़के रूपमें नीचे जम गया था फिर दुबारा पानीमें घुल जाय और सारा घोल चमकीले आसमानी रंगका हो जाय। इतना करनेके बाद पोटेशियम सायनाइड और भपकेके पानीका थोड़ा-सा घोल आसमानी घोलमें मिला देना चाहिए जिससे उस-का आसमानी रंग कटकर मटिया रंग हो जाय। फिर इस घोलको १२ घंटेतक हवामें खुला हुआ छोड़ देना चाहिए। बादमें उसे बारीक मलमलके कपड़ेसे छान लेना चाहिए। इतना कर चुकनेके बाद उस घोलमें तिगुना भपकेका पानी और मिला देना चाहिए।

यह सोल्यूशन गरम और ठंढा दोनों प्रकारसे काम दे सकता है। यदि इसे १६०°फ तक गरम कर काममें लाया जावे तो इससे बहुत अच्छा ताँबा चढ़ाया जा सकता है। इसके साथमें एनोड खालिस ताँबेका होना चाहिए।

ताँबेकी कलईके लिए दूसरा घोल

नीला थोथा	४ औंस
पोटेशियम सायनाइड	१२ औंस
एमोनिया लिकर	४ औंस
भपकेका पानी	४ गैलन

चाँदीकी कलईके घोल

थोड़ी मात्रामें तैयार करने योग्य :—

सोल्यूशन नं० १—

सिलवर नाइट्रेट	२ औंस
भपकेका पानी	१ क्वार्ट

सोल्यूशन नं० २—

पोटेशियम सायनाइड	२ औंस
भपकेका पानी	१ पाइंट

सोल्यूसन नं० २ को नं० १ में थोड़ा-थोड़ा मिलाइये और काँचकी डंडीसे चलाते जाइये जबतक कि सफेदा बनना बंद न हो जाय।

अब सफेद तलछटको नीचे बैठ जाने दीजिये और ऊपरके निथरे हुए पानीको निकालकर फेंक दीजिये।

इस प्रकार प्राप्त हुई सफेद तलछटमें बारबार पानी मिलाकर उसे बैठ जाने दीजिये और फिर निथरे हुए

पानीको सावधानीसे फेंकते जाइये। इस तरहसे वह बिलकुल घुल जायगी।

इस घुली हुई तलछटमें सोल्यूशन नं० २ फिर थोड़ा-थोड़ा डालकर मिलाते जाइये जबतक कि सारी तलछट फिर उसमें अदृश्य न हो जाय।

इस प्रकार चाँदीकी कलई करनेका घोल थोड़ी मात्रामें तैयार हो गया।

अधिक मात्रामें घोल तैयार करनेकी विधि

मान लीजिये हमें १५० गैलन चाँदीकी कलई करनेका घोल तैयार करना है, और प्रति गैलन ३ औंस चाँदी मिलानी है तो हमें ४५० औंस चाँदीकी जरुरत पड़ेगी। १७० भाग सिलवर नाइट्रेटमें अकसर १०८ भाग चाँदी रहा करती है। इस हिसाबसे हमें ४५ पौंड एवर्डोपाईज तोलकी चाँदी, ३० पौंड पोटेशियम सायनाइड और साथ ही में २३० गैलन भपकेका पानी भी चाहिए।

अब कलई करनेकी हौदीको भली भाँति धोकर साफ कर लीजिये और उसे आधी भपकेके पानीसे भर लीजिये। उधर एक बड़ी कूँड़ी लीजिये जो पत्थर या चीनीकी हो और उसे आधी भपकेके पानीसे भर लीजिए और उसमें एक पौंड प्रति गैलन पानीके हिसाबसे सिलवर नाइट्रेट घोल दीजिये। अब उसमें, एक गैलन पानीमें एक पौंड पोटेशियम सायनाइडके हिसाबसे तैयार किया हुआ, पोटेशियम सायनाइडका घोल थोड़ा-थोड़ा मिलाइये, जबतक कि उसमें सफेद तलछट बनना बंद न हो जाय। अब सफेदीको जम जाने दीजिये और निथरे हुए पानीको फेंक दीजिये। अब इस तलछटको शुद्ध पानीसे खूब धोइये और सावधानीसे पानी निथार लीजिये। अब इस सफेद तलछटको पोटेशियम सायनाइडके तेज सोल्यूशनमें घोल दीजिये, यहाँतक कि यह तलछट बिलकुल दिखाई न पड़े। अब इस सोल्यूशनको कलई करनेकी हौदीमें बारीक कपड़ेसे छानकर डाल दीजिये। जब इस प्रकारसे सब सोल्यूशन तैयार हो जाय तब हौदीमें ५ पौंड पोटेशियम सायनाइडका घोल और मिला दीजिये।

सोनेकी क़लईके घोल

पहिली तरकीब :— पोटेशियम सायनाइडके तेज़ घोलमें सिंगल साइनाइड आफ गोल्ड मिला देना चाहिए। सिंगल साइनाइड आफ गोल्ड एक हल्के पीले-रंगका चूर्ण होता है, जिसके २२३ भागमें १९७ भाग सोना होता है। इस घोलको पतला करनेके लिए भपकेका पानी काममें लाना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि एक अच्छे सोनेकी कलई करनेके सोल्यूशनमें ५ ग्रेन ट्रॉयसे लेकर १५ पेनीवेट ट्रॉयतक प्रति गैलन सोना होना चाहिए। यह सोल्यूशन १६०°फ की गरमीपर काम देता है।

सोनेकी क़लई करनेका ठंढा घोल

३½ औंस पोटेशियम सायनाइडको इतने पानीमें पहिले घोल लिया जाय जितनेमें कि वह आसानीसे पतला-पतला घुल सके और पेंदेमें नहीं जमे; और फिर ३½ औंस गोल्ड क्लोराइडको भी इसी प्रकार अलहदा पानीमें घोल लिया जाय। फिर दोनों घोलोंको मिला लिया जाय। इसके बाद आधे घंटेतक सारे घोलको उबाला जाय। उबालनेका काम किसी काँचके बरतनमें करना चाहिए।

बिना बिजलीके धातुओंपर रंग चढ़ाना और कलई करना

लोहे, पीतल अथवा किसी भी धातुके सामान को, जिसपर कलई अथवा रंग चढ़ाना है, खूब अच्छी तरहसे पालिश कर साफ करना जरूरी है, उसपरसे चिकनाईके सारे धब्बे हटा देने चाहिएँ, यहाँतक कि हाथसे भी उसे न छूआ जाय; अक्सर उँगलियोंके निशान पालिश की हुई चीज़पर पड़ जाया करते हैं। साफ करनेकी तरकीब यहाँ भी वही समझनी चाहिए जैसी कि बिजलीसे कलई करनेके लिए होती है।

लोहेपर काँसेका रंग चढ़ाना :—

घोल सं० १—	बिस्मथ क्लोराइड	१ भाग
	कॉपर क्लोराइड	१ भाग
	मरकरी क्लोराइड	२ भाग
	हाइड्रोक्लोरिक एसिड	६ भाग
	बरसाती पानी	५० भाग
घोल सं० २ —	फैरिक क्लोराइड	१ भाग
	एलकोहल	८ भाग
	बरसाती पानी	८ भाग
घोल सं० ३—	नीला थोथा	२ भाग
	हाइड्रोक्लोरिक एसिड	३ भाग
	नाइट्रिक एसिड	७ भाग
	परक्लोराइड आफ आयरन	८८ भाग

रंग करनेकी तरकीब :—

ऊपर दिये हुए घोलोंमेंसे कोईसा भी घोल तैयार कर किसी ब्रुशसे सामानपर उसको पतला लेप लगाना चाहिए। फिर उस सामानको किसी संदूक या कमरेमें बंद कर देना चाहिए जिससे किसी पाइपसे वाष्प आती हो, और उस वाष्पके जरियेसे सामान को १००°फ तक गरम रखना चाहिए। जब कि सामानपर थोड़ी जंग लगनेके लक्षण दिखाई देने लगें तब उसे निकालकर १५ मिनटतक साफ पानीमें उबालकर सुखा देना चाहिए। सुखानेके बाद सामान काला-सा नजर पड़ेगा लेकिन जब उसे तारोंके ब्रुशसे मशीनपर साफ किया जायगा तब वह काँसेके रंगका दिखाई देगा।

लोहेकी वस्तुओंपर मटिया रंग चढ़ाना

बंदूक और तमन्चोंके पुर्जोंपर नीचे लिखी तरकीबसे रंग चढ़ाया जाता है।

पहिले नीले थोथेके घोलमें सामानको डुबो देना चाहिए जिससे उसपर कुछ ताँबा चढ़ जावे, फिर उसे पोंछकर एमोनियम सलफाइडके घोलमें लगभग ३० सेकिन्डतक डुबोना चाहिए।

नीले थोथेका घोल :—

नीला थोथा	२५ भाग
बरसाती पानी	७५ भाग
म्यूरिएटिक एसिड	१ भाग

एमोनियम सलफाइडका घोल :—

अमोनियम सल्फाइड	३० भाग
बरसाती पानी	७० भाग

संयुक्त राज्य अमेरिकाकी सरकारी बन्दूक बनानेकी फैक्ट्रियोंमें नीचे लिखा घोल काममें लाया जाता है।

एलकोहल	१½ औंस
टिंचर आफ आयरन	१½ औंस
कोरोसिव सब्लिमेट	१½ औंस
स्वीट स्प्रिट आफ नाइटर	१½ औंस
नीला थोथा	१ औंस
शोरेका तेजाब	¾ औंस
गरम पानी	१ कार्ट

ऊपर दी हुई दवाइयोंसे घोल तैयार कर किसी काँचके बरतनमें रख लिया जाता है और जब आवश्यकता पड़ती है तब उसे किसी ब्रुशसे लगाया जाता है, और फिर उसे २४ घंटेतक हवामें सूखने दिया जाता है। सूखनेपर जो कुछ जंग-सा लगा दिखाई देता है उसे तारोंके ब्रुशसे साफ कर दिया जाता है। फिर उसपर इसी प्रकार कई बेर रंग लगाकर उसे साफ़ किया जाता है और अन्तमें गरम पानीसे धोकर और जल्दीसे खूब पोंछकर या तो उसे उबाले हुए अलसीके तेलसे चुपड़ देते हैं या लाखकी वारनिश चढ़ा देते हैं।

लोहेपर पीतलका रङ्ग चढ़ाना:—

१—लोहेके जिस सामानपर रङ्ग चढ़ाना हो उसे, शोरे और नमकके तेजाबको गरम करनेसे जो धूआँ निकलता है, उसमें रखना चाहिए। कुछ देर इस धूएँमें रखकर फिर उसे पिघली हुई वैसलीनमें डुबो देना चाहिए और फिर उसे बाहर निकालकर गरम करना चाहिए जबतक कि उससे लगी हुई वैसलीन जलकर उड़ने न लगे। जब सब तरफसे वैसलीन जलकर उड़ जावे तब उसे किसी मुलायम कपड़ेसे पोंछ डालना चाहिए।

२—एन्टीमनी-क्लोराइड और पानीको मिलाकर लेई-सी बना लेनी चाहिए और फिर किसी ब्रुशकी सहायतासे उसे उस सामानपर एक-सा पोत देना चाहिए। पोतनेके पहिले उस सामानको थोड़ा-सा गरम करना आवश्यक है। जब इच्छानुसर रङ्ग आ जावे तब उसे गरम पानीसे धोकर साफ कर देना चाहिए। यदि इस लेईमें थोड़ा-सा नाइट्रिक एसिड और मिला दिया जाय तो वह खूब अच्छा काम करेगी।

लोहेपर भूरा रङ्ग चढ़ाना

एन्टीमनी क्लोराइड	१० ग्रेन
गेलिक एसिड	१० ग्रेन
फेरिक क्लोराइड	५०० ग्रेन
जल	५ औंस

ऊपर दिये हिसाबसे घोल तैयार कर उसे गरम करना चाहिए और फिर उसमें सामानको डुबो देना चाहिए। पहिले तो सामान हलका आसमानी रङ्गका दिखाई देगा; फिर गहरा होना जायगा, फिर बैंजनी रङ्गका और अन्तमें भूरे रङ्गका हो जायगा।

नोटः— यदि इस घोलको ठंडा काममें लाया जाय तो लोहेके ऊपर पीतलका-सा रंग चढ़ जायगा।

गरम कर लोहे और इस्पातके सामानपर रङ्ग चढ़ाना

१— किसी एक बड़ी कड़ाहीमें बजरी अथवा बालू मिट्टी लीजिए और फिर उसे भट्टीपर रखकर तेज़ गरम कीजिए। फिर जिस सामानपर रङ्ग चढ़ाना हो उसे पहिले खूब चमका लीजिए और फिर किसी चिमटे या सँड़सीसे पकड़कर उसे गरम मिट्टीमें दबा दीजिये, और उस सामानको घुमाते और लौटते-पौटते रहिये। जिस प्रकार आबदारी लगाते समय इस्पातपर रङ्ग दिखाई देते हैं उसी प्रकार इसपर भी रङ्ग दिखाई देते हैं उसी प्रकार इसपर भी रङ्ग दिखाई देंगे। जब इच्छानुसार रङ्ग चढ़ जावे तब उसे अंडीके तेलमें बुझा दीजिये।

रङ्ग नीचे लिखे क्रमसे दिखाई पड़ेंगे :—

हल्का पीला, गहरा पीला, मटिया, बैंजनी, नीला और हरा।

इस प्रकारसे चढ़ाए हुए रङ्ग टिकाऊ नहीं होते, लेकिन इन रङ्गोंपर वारनिश (लिकर) चढ़ा दी जावे तो ये रङ्ग कई बरसोंतक नहीं बिगड़ते।

२—लैड एसीटेट	५० ग्रेन
सोडियम थायो सल्फेट	५० ग्रेन
जल (बरसाती)	५ औंस

ऊपर लिखे हिसाबसे लेई बनाकर यदि उसे गरम किया जावे और उसमें सामानको डुबोकर कुछ देरतक रख दिया जावे तो उसपर तरह-तरहके सुन्दर रङ्ग चढ़ सकते हैं। आधे घंटेतक सामानको रखनेसे काला रङ्ग हो जाता है और कम समयतक रखनेसे आबदारीके-से तरह-तरहके रंग आ जाते हैं। ऊपर दिए हुए घोल को ७००° फ तक गरम किया जा सकता है।

३— ऊपर दिए हुए दो तरीकोंसे यदि इस्पातके किसी सामानपर रङ्ग चढ़ाया जाता है तो आबदारी लगाये हुए सामानकी आबदारी उतरनेका डर रहता है, इसलिए आबदारी लगे हुए सामानपर रङ्ग चढ़ानेके लिए नीचे लिखी तरकीब काममें लानी चाहिए।

एक लकड़ीका बकस बनाना चाहिए जिसमें एक तरफ एक पाइप लगा हो जिसमेंसे किसी भपकेके द्वारा वाष्प आती रहे, जिससे उसकी हवा तर रहे। फिर उस बकसमें एक तरफ तो वह सामान रख दिया जाय और दूसरी तरफ किसी प्यालीमें नीचे लिखा घोल रख दिया जाय। इस घोलमेंसे निकली हुई वाष्प उस सामानपर जायेगी। जिससे तरह-तरहके रंग पैदा होंगे। जितनी ही अधिक देर तक सामानको संदूकमें रक्खा जायगा, रंग गहरा होता जायगा।

घोल इस हिसाबसे तैयार करना चाहिए

आयरन क्लोराइड	१ औंस
एलकोहल	१ औंस
करोसिव सब्लिमेट	$\frac{१}{४}$ औंस
तेज़ शोरेका तेज़ाब	$\frac{१}{२}$ औंस

नीला थोथा	½ औंस
पानी (बरसाती)	१ क्वार्ट

रँगनेवाले सामानको हल्का गरम कर इस घोलमें बुझाना चाहिए।

ताँबेके सामानको काला रँगना

एमोनियम सलफाइड	१ भाग
बरसाती पानी	१० भागसे ४० भागतक

सामानको इस घोलमें आवश्यकतानुसार रखकर एलकोहलमें डुबाकर निकाल लेना चाहिए और फिर उसपर लगे एलकोहलको दियासलाई लगाकर जला देना चाहिए। रंगको पक्का करनेके लिए फिर उसपर वारनिश फेर देनी चाहिए।

दूसरी तरकीब :—

कॉपर नाइट्रेट	१ भाग
बरसाती पानी	३ भाग

इस घोलमें आवश्यकतानुसार सामानको डुबाकर निकाल लेना चाहिए और फिर उसे गरम करना चाहिए। गरम करनेसे वह काला पड़ जायगा।

ताँबे और पीतलको हरा रँगना

एमोनियम कारबोनेट	२ औंस
एमोनियम क्लोराइड	⅓ औंस
बरसाती पानी	१६ औंस

इस घोलसे ताँबे और पीतलके ऊपर हल्का और गहरा हरा रंग इच्छानुसार चढ़ाया जा सकता है। सामानको घोलमें डुबोकर बाहर निकाल लेना चाहिए और सूखने देना चाहिए। बारबार ऐसा करनेसे रंग गहरा होता चला जायगा।

ताँबे और पीतलको काला रँगना

आजकल ताँबे और पीतलके सामानको काला रँगनेका अधिक रिवाज़ है। यदि घोलको हल्का बनाया जाय और सामानको उसमें अधिक देरतक रक्खा जाय तो उससे चढ़ा हुआ रंग अधिक टिकाऊ होता है।

संखिया	½ औंस
म्यूरिएटिक एसिड	जितनेमें संखिया घुल सके
चाँदी	२ ग्रेन

पीतलको सुनहरी रँगना

पीतलको सुनहरी रँगनेके लिए उसे नीचे लिखे घोलमें उबालना चाहिए।

साल्टपीटर	२ भाग
साधारण नमक	१ भाग
फिटकरी	१ भाग
बरसाती पानी	२४ भाग
नमकका तेजाब	१ भाग

पीतलको सफेद रँगना :—

२ औंस चाँदीको शोरेके तेजाबमें गलाइए और फिर उसमें एक गैलन भपकेका पानी डाल दीजिए। इसे मिलाकर उसमें फिर थोड़ा-थोड़ा सोडियम क्लोराइडका तेज घोल डालना चाहिए जिससे उसमें सफेदा जमने लगेगा। जब सारा सफेदा जम चुके तब उसको निथारकर साफ़ पानीसे खूब धोना चाहिए यहाँतक कि तेजाबका सारा असर गायब हो जावे। तेजाबी असर गायब हो गया है या नहीं यह बात लिटमस कागज़से परख लेनी चाहिए। फिर सफेद तलछटमें पोटैशियम-बाइ-टार्टरेट और पानी मिलाकर दूधके जैसा गाढ़ा घोल तैयार कर लेना चाहिए।

अब, जिस सामानको सफेद रङ्गना हो उसे इस घोलमें डुबो देना चाहिए, और जब कि काफी सफेदी चढ़ जावे तब उसे साफ़ पानीसे धोकर लकड़ीसे बुरादे-में दबाकर सुखा देना चाहिए।

पीतलपर चाँदी चढ़ानेका चूर्ण

क्लोराइड आफ सिलवर (सूखा)	१ औंस
पोटैशियम-बाइ-टार्टरेट	२ औंस
साधारण नमक	४ औंस

उपरोक्त सब चीज़ोंको खरल कर लीजिए और चूर्ण-को काले अथवा गहरे लाल रङ्गकी बोतलमें भरके रख दीजिए। जब जरूरत हो थोड़ा-सा चूर्ण लेकर और उसमें

पानी मिलाकर लेई-का-सा गाढ़ा बना लीजिए और सामानपर रगड़िए। ऐसा करनेसे बड़ी अच्छी चाँदी-की पालिश हो जावेगी। यदि इसपर वारनिश (लिकर) फेर दी जाय तो यह पालिश टिकाऊ हो सकती है।

पीतलको आसमानी रङ्गना

एन्टीमनी क्लोराइड	१ औंस
बरसाती पानी	२० औंस
हाइड्रोक्लोरिक एसिड	३ औंस

सामानको हल्का गरम कर ऊपर दिये हुए घोलमें डुबा देना चाहिए जबतक कि इच्छानुसार आसमानी रङ्ग न चढ़ जाय। फिर उसे साफ पानीमें धोकर लकड़ीके बुरादेमें सुखा देना चाहिए। यह रङ्ग कच्चा रहता है।

पीतलको पक्का काला आसमानी रँगना

नीला थोथा	२ औंस
बरसाती पानी	६ औंस
एमोनिया	½ औंस

इस घोलमें सामानको गरम कर डुबा देना चाहिए जबतक कि तबियतके मुआफिक रङ्ग न चढ़ जावे। फिर पानीसे धोकर लकड़ीके बुरादेमें सुखा देना चाहिए।

पीतलको बैंजनी, हरा और आसमानी रँगना

घोल (क)—	सोडियम हाइपो-सल्फेट	४ औंस
	बरसाती पानी	१ क्वार्ट
घोल (ख)—	शुगर आफ लैड	१ औंस
	बरसाती पानी	१ क्वार्ट

दोनों (क) और (ख) घोलोंको अलहदा-अलहदा तैयार कर आपसमें मिला देना चाहिए और फिर उस मिश्रण को १७५° फ तक गरम करना चाहिए। जब वह गरम हो जाय तब उसमें सामानको डुबो देना चाहिए। पहिले तो सामानका रङ्ग सुनहरी हो जायगा, फिर बैंजनी, फिर आसमानी और फिर हरा।

आकृति-लेखन

[ले०—श्री एल० ए० डाइस्ट ; अनु०—श्री रत्नकुमारी, एम० ए०]

अवयवोंका पूर्ण विवरण

स्वाभाविक चित्रके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न अवयवोंके स्थान और आकृति ठीक-ठीक दिखाये जायँ। बहुत-से व्यक्तियोंके चित्रोंमें मुखकी आकृति आ तो जाती है, परन्तु उसमें और पेशेवर कलाकारकी बनाई हुई आकृतिमें बहुत अंतर होता है। इसका कारण यही है कि उन्हें मुखकी बनावटका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता है। नीचे इन सबका विवरण दिया जाता है।

नेत्र

नेत्रोंकी बनावटपर ध्यान दो। मुखपर दो गोलक होते हैं, उनमें गोलियाँ बिठाई होती हैं। उनके ऊपर पलक होते हैं। प्लेट ८ के 'क' चित्रमें इन गोलकोंकी आकृति और गड्ढा दिखाया गया है। 'ख' चित्रमें गोलककी आकृति दिखाते हुए नेत्रोंकी गोलियाँ इस प्रकार दिखाई गई हैं कि उनका उभार साफ दीखता है, और नाकके पास एक गड्ढा दीख पड़ता है। नेत्रके बाहरी कोनेमें मांसका ज़रा-सा उभार होता है। आठवीं प्लेटके 'ख', 'ग', और 'च' चित्रोंको देखो। स्वयं अपने नेत्रोंको शीशेमें देखकर समझनेकी चेष्टा करो। नेत्रके पलक काफ़ी मोटे होते हैं। ऊपरके पलक और बरौनीसे नेत्रकी गोलियोंपर छाया पड़ती है। नीचेके पलकमें कुछ सिकुड़नें पड़ी रहती हैं।

नासिका

नासिकाओंमें बहुत अधिक भिन्नता होती है। बहुत-से जीवित व्यक्तियोंकी नासिकाओंकी नक़ल करते-करते उसकी बनावटका नियम जाना जा सकता है। नाकको इस प्रकार खींचना चाहिए कि वह आगेको निकली रहे, चपटी न दिखाई दे। 'झ' चित्रमें नासिका की साधारण आकृति दिखाई गई है। नासिकाके बीच-में ज़रा-सा उभार होता है जो हड्डीके कारण है। यह तो तुम छूकर आसानीसे मालूम कर सकते हो। नासिका-का अग्र भाग कोमल होता है पर तो भी कभी-कभी
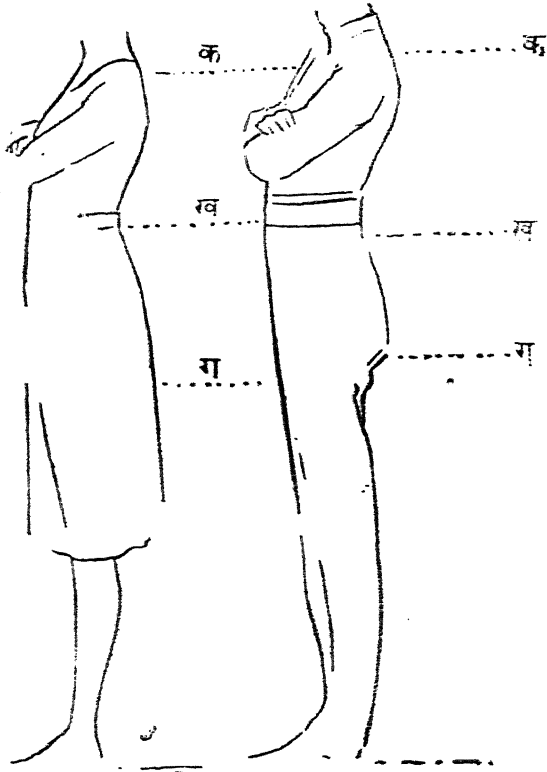
चित्र १

बिलकुल स्पष्ट होता है। इस बातको कभी न भूलो कि मस्तक और नासिकाके जोड़पर ज़रा-सा गड्ढा होता है।

प्लेट १४ की 'ग' आकृति देखो। सिरका थोड़ा-सा भी हटाव नाककी आकृतिसे भली प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

मुँह

मुँह की बनावटमें इतनी भिन्नता नहीं होती है जितनी कि नाकर्कीमें पर इसमें शीघ्र-शीघ्र परिवर्तन रहते हैं होते। मुखकी आकृति खींचनेमें उसकी इस अस्थिरताके कारण बड़ी कठिनाई होती है। प्लेट ८ के चित्रोंमें सभी मौलिक आकृतियाँ दे दी गई हैं जिनके आधारपर तुम किसी भी मुँहका चित्र खींच सकते हो। जिस समय मुँह स्थिर है उस समय ऊपर-का ओष्ठ धनुषाकार होता है और नीचेका ओष्ठ उसमें अच्छी तरह चिपटा रहता है। यह ऊपरके ओष्ठसे छोटा और मोटा होता है। 'ट' और 'ड' चित्रोंको देखो। बग़लसे देखनेमें ऊपरका ओष्ठ नीचेवाले ओष्ठसे आगे-को निकला दिखाई देता है। 'ढ' और 'ण' चित्रोंको देखो। बच्चोंके ओष्ठोंमें यह बात अधिकतासे पाई जाती है। नीचेवाले ओष्ठके ठीक नीचे एक छोटा गड्ढा होता है। सबसे गहरी छाया मुँहके दोनों कोनोंमें होती है। जिस समय सिर नीचेकी ओर झुका रहता है ऊपरका ओष्ठ पतला और नीचेका मोटा दीखता है। सिर ऊपर उठे रहनेमें इसका उल्टा होता है। प्लेट ७ चित्र 'ख' देखो।

कान

कानोंमें कुछ अपनी ही विशेषता है। वे न तो हिलते-डुलते हैं, न इनमें हड्डी ही होती है, इनकी-आकृति विचित्र है। किसी भी और अन्य अंगकी आकृतिमें इतनी भिन्नता नहीं मिलती है जितनी कान-में। मैंने प्लेट ८ में तीन साधारण अति प्रचलित कानों-के चित्र देनेका प्रयत्न किया है, जिनका महत्व तुम तभी समझ सकते हो जब तुम लोगोंके कानोंको देख-देखकर बार-बार चित्र खींचोगे और उनकी तुलना 'त', 'थ', और 'द' चित्रोंसे करोगे। यद्यपि अन्य अंगोंकी अपेक्षा कानोंका बहुत कम महत्व है, तथापि कानोंकी आकृति-

का खींचना सबसे कठिन काम है। कान ही केवल वे अंग हैं जिनको पीछेसे भी देखा जा सकता है। चित्र 'थ' देखो।

इस चित्र-पटमें इन चार अंगोंकी अनेक स्थितियोंमें थोड़ीकी ही आकृतियाँ यहाँ दी गई हैं, इसलिए मैं तो यह सलाह देता हूँ कि तुम इनका निरन्तर अध्ययन करते रहो, दर्पणमें देख-देखकर अपने अंगोंकी आकृतियाँ खींचो, और जब किसी गलीमें जाओ या गाड़ीमें
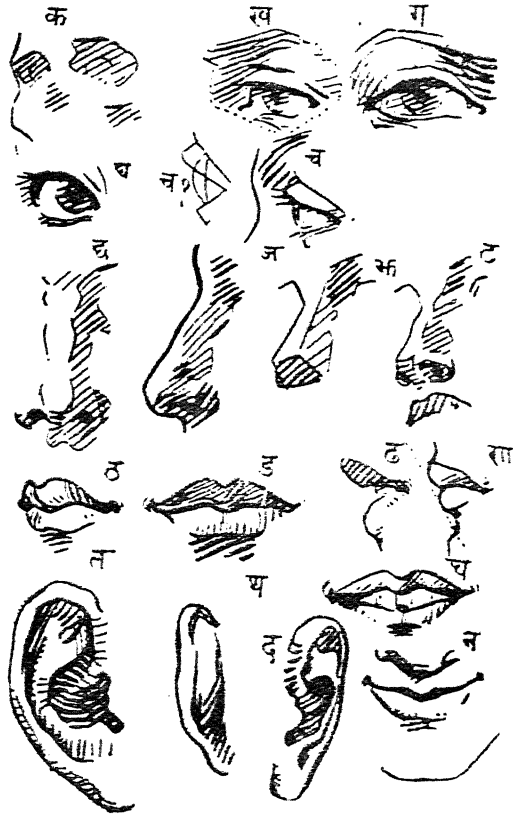
चित्र-पट ६

सवार हो, या कहीं भी जाओ, इस बातपर तुम्हारी दृष्टि रहे कि भिन्न-भिन्न लोगोंकी आँखों, नाकों, मुँह और कानोंमें क्या-क्या समानता या भिन्नता है।

हाथ

यह कहा जाता है कि यदि कोई हाथकी आकृति खींच सकता है तो वह सब कुछ खींच सकता है। यह बिलकुल ठीक है कि बहुत-से चित्रकार अन्य अंगोंकी अपेक्षा हाथके सुन्दर स्वाभाविक चित्र खींचनेमें असफल रहते हैं।
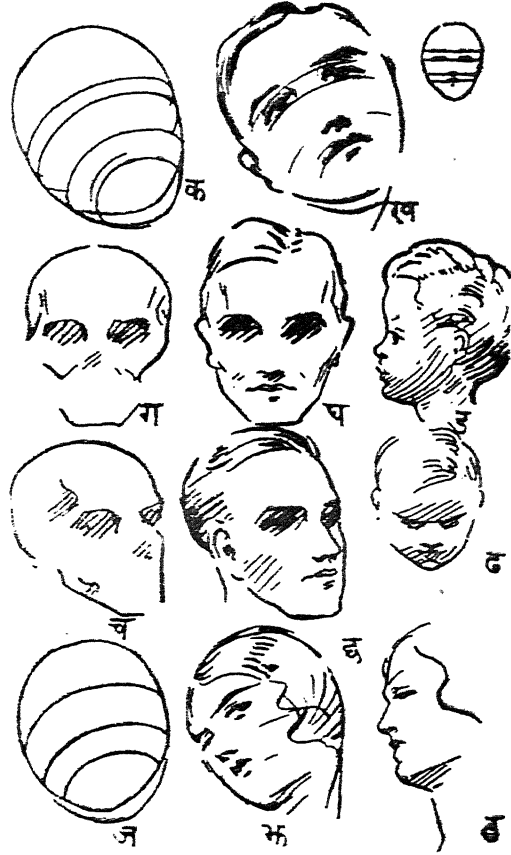
चित्र-पट ७

शरीरका कोई भी अन्य अवयव हाथके समान अस्थिर और चलायमान नहीं है। हथेलीका पश्च भाग चौरस भी रहता है और गोलाकार भी हो जाता है। अँगूठेका घुमाव अन्य उँगलियोंके घुमावसे सर्वथा भिन्न होना

है। सम्पूर्ण हथेली जिस लचकदार स्थानपर भुजासे जुड़ी रहती है वह स्थान— पहुँचा — घुमाया-फिराया जा सकता है; इसमें गेंद और सॉकेटके सभी गुण होते हैं। भिन्न-भिन्न काम करते समयकी हाथकी आकृतियोंके लिए कई साधारण नियम बनाये जा सकते हैं जिनसे सहायता मिलेगी। नवें चित्र-पटके 'क' चित्रको देखो। इसमें ऊपर उठे हुए हाथका चित्र है। यह देखो कि कैसे प्रत्येक
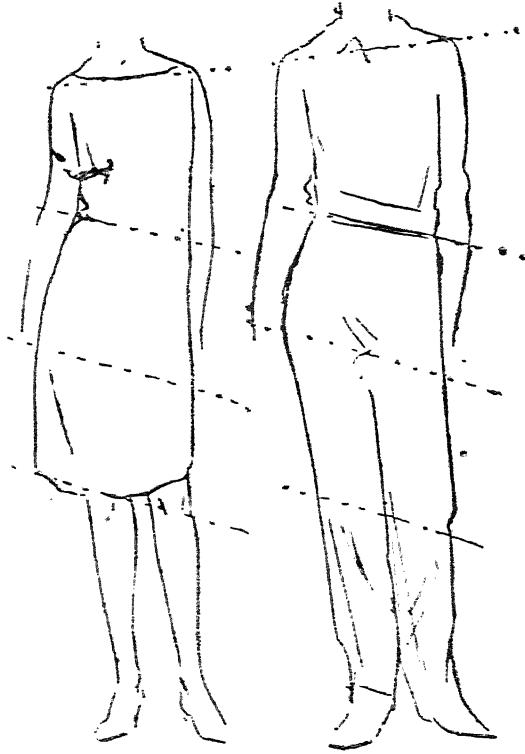
चित्र-पट ८

उँगली अपने पासवाली उँगलीसे आगेको अधिकाधिक झुकती जाती है। चित्र 'छ' और 'ठ' में भी यही बात है। ढीले छोड़े हुए हाथकी स्वाभाविक आकृति यहाँ दिखाई है। शायद कोई कहे कि चित्र 'क' या 'छ' में कनिष्ठिका प्रायः बंद होती-सी दीखती है। मुट्ठी बँधे हाथमें यह बिलकुल बंद हो जाती है और हथेलीके बीचमें सट जाती है। अन्य उँगलियाँ क्रमशः ढलावमें आकर बैठ जाती हैं। अँगूठेके जोड़पर जो बड़ी पेशी है कुछ-कुछ उसके कारण ही ऐसा होता है।

'च' और 'झ' चित्र देखो। तुम देखोगे कि चाहे हाथ खुला हो या बँधा, यह सदा तर्जनीके पाससे आगेकी
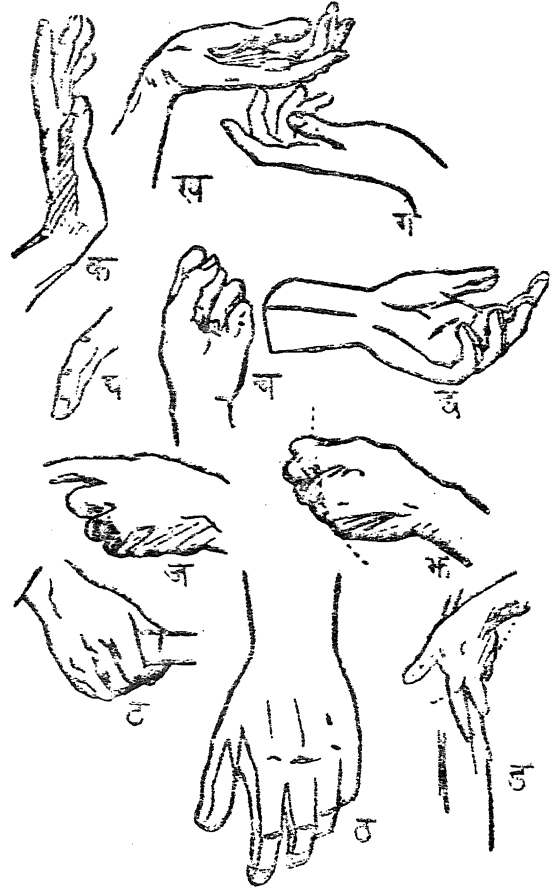
चित्र-पट ९

ओर छोटा होता जाता है। चित्र 'ख' में कनिष्ठिका अन्य उँगलियोंकी अपेक्षा अधिक सीधी है। यह सामान्य आकृति है — जब चायके प्यालेको हाथपर रखते हैं

तब ऐसा विशेष होता है। चित्र 'झ' और 'ड' में बिन्दु-दार रेखाओंको भी देखो। ये पोरुओंकी स्थिति वक्र रेखा-पर बताती हैं। जब मुट्ठी बँधी होती है, या हाथसे कोई चीज पकड़ी होती है, तो पोरुओंकी अस्थियाँ बाहर निकल आती हैं।

साधारण-से-साधारण चित्रमें भी यह बात व्यक्त होनी चाहिए। चित्र 'ट' देखो। यह याद रखना चाहिए कि बुढ़ापे, अस्वस्थ अवस्थाको छोड़कर उँगलियाँ सदा छोटी की जा सकती हैं। ये कानके समान माँसल और नाकके समान अस्थिमय होती हैं। इनका माँसल भाग अन्दरकी ओर होता है। 'ध' में जो रेखा खिंची है, उस-से दो बातें व्यक्त होती हैं, एक तो उँगलीकी माँसल गद्दी, और दूसरे उँगलीका ठोसपन। हड्डीके ढाँचेके ऊपर माँसल गद्दी होनेकी बात तो समस्त हाथपर लागू है। इसको हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए। हाथ दायें-बायें इतना गतिमान नहीं होता है जितना कि आगे-पीछे। 'झ' चित्रकी तुलना 'ख' और 'ग' से करो। चित्र 'छ' और 'ठ' हाथकी सापेक्ष मोटाई व्यक्त करनेके लिए ही हैं। इन दिये हुए चित्रोंकी नकल तुम कर सकते हो परंतु यह और भी अच्छा होगा कि तुम अपने संपर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंके हाथोंको सावधानीसे अध्ययन करते रहो। जब तुम्हें किसीकी आकृति शीघ्रतासे खींचनी होगी, तो तुम इन नमूनोंके आधारपर आवश्यक संशोधन ठीक प्रकार कर सकोगे।

टोपी

दसवें चित्र-पटमें टोपियोंके साधारण चित्र दिए गये हैं। वैसे देखनेमें तो टोपीका खींचना बड़ा सहज जान पड़ता है, परंतु कम-से-कम पहनी हुई टोपीका चित्र बनाना कठिन काम है।

सबसे पहली बात है कि चित्रमें टोपी सिरपर ठीक-से पहनी हुई दीखे अथवा यह कहिए कि टोपीमें सिर ठीकसे लगा हुआ दीखे। इसके चित्रसे स्पष्ट ज्ञात होना चाहिए कि टोपी खोखली वस्तु है और जब पहनी जाय तो ऐसा लगे कि यह एक गोल वस्तु अर्थात् सिरको घेरे हुए है। यदि चित्रसे ऐसा आभास न मिलेगा, तो यह समझना चाहिए कि तुम न केवल टोपीकी आकृति खींचनेमें ही असफल रहे हो बल्कि तुमने सिरके "रूप" को भी बिगाड़ दिया है।

चित्र-पट १०

अच्छी खींची हुई टोपी शिरके गोल आकारको बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त कर देती है। उदाहरणके लिए 'ख' चित्रको देखो। माथेको चारों ओरसे घेरे हुए टोपीके किनारेकी रेखा इसका अच्छा उदाहरण है। 'च' चित्र-में टोपीके ताजमें 'शेड' दिखाई गई है जिससे टोपीका रूप और आकृति दोनों ही प्रदर्शित हो जाती हैं। इसपर पहले ही लिखा जा चुका है। एक चित्र 'ग' में बिंदुदार रेखासे शिरकी बाह्य रेखा दिखाई गई है। यह बहुत

अच्छा होगा कि तुम इन सब उदाहरणोंमें ही बाह्य रेखाओंको हलकेसे खींचो।

आरम्भमें तो तुम्हें चित्र द्वारा प्यालेदार हैट और नरम या फेल्ट हैटमें भिन्नता व्यक्त करनेमें कदाचित् आसानी नहीं होगी। चित्र 'क' और 'ग' में इस प्रकारके दो हैट दिये हैं। कृपा करके यह देखो कि दोनोंमें कितना कम पर कितना उपयोगी अन्तर है। इसपर ही ये दोनों हैट निर्भर हैं — फेल्ट हैटके ताजके सिरमें एकपर एक रक्खी कुछ भग्न रेखा (चित्र 'क'); और कटोराकृतिका पतला और मज़बूत किनारा, चौरस चोटी, और अधिक गोलाकृत रेखा (चित्र 'ख' और 'ग')। सभी कठोर हैटोंके किनारोंके सामने चौरसता है। चित्र 'ख', 'ग' और 'छ' देखो। चित्र 'क' में हैटके ऊपर जो लहरिया है उससे फेल्ट हैटकी थोड़ी-सी पिचकाहट व्यक्त होती है (चित्र 'क$_1$')। इसकी तुलना कटोराकृत हैटोंके समानान्तर भागोंसे करो (चित्र 'ग$_1$') जो चित्र 'ग' में नियमित रेखासे व्यक्त किये गये हैं।

नरम हैटोंके ताजको आवश्यकतासे अधिक झुका न दो।

टोपी (कैप) का खींचना आसान है क्योंकि इसकी आकृति निश्चित नहीं होती है। इसमें ध्यान देने योग्य बातें ये हैं—(१)चोटीकी गहराई (२)चोटी टोपीके पूरे ऊपर होती है और (३) टोपी सिरपर गहरी नीचे तक बैठ जाती है।

तुम्हें इस प्रकार अभ्यास अच्छी तरह हो सकता है कि तुम हर टोपीका सूक्ष्म निरीक्षण करो, और किताब बन्द करके अपनी स्मृतिके आधारपर इन्हें खींचो।

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

व्यायाम द्वारा नेत्र-विकार दूर करना

शरीरके और अंगोंके समान नेत्र भी व्यायाम द्वारा पुष्ट होते हैं। तिर्यक-वक्र-दृष्टि (भेंड़ेपन) को दूर करनेके लिए और नेत्रोंके व्यायामके लिए एक विद्युत-संचालित यंत्रका हालमें ही आविष्कार हुआ है। रोगी नेत्र-तालमें होकर मशीनके सामनेके चित्रोंको जिनपर तेज़ रोशनी पड़ी रहती है देखता है।

बर्फपरके पद-चिन्होंसे जंगली जानवरोंकी संख्याका पता लगना

जंगली जीवोंकी गणनाके लिए, और विशेषतया उनकी जिनपर समूर होता है, ऐसे मनुष्योंकी आवश्यकता होती है जो बर्फके मार्गोंको अच्छी तरह समझते-पहचानते हों। बर्फपरके ताज़े रास्तोंको देखकर गणनाकार गुफाओं और कन्दराओंका पता लगा सकता है और आसपासके भिन्न-भिन्न चिन्होंकी परीक्षा करके यह बतला सकता है कि वहाँ कितने जानवर रहते हैं और करीब किस-किस आयुके। बायोलॉजिकल सरवे (वानस्पितिक मापन) विभागने इस बातमें सुविधा पाई है कि हिरणों और बारहसिंघोंकी गणना वायुयानोंपरसे उनकी स्थिति पता लगाकर की जाय। इस प्रकारसे झीलोंमें जलपक्षियोंकी गणना करनेमें भी सफलता मिली है।

पत्थरके फर्शमें रबड़की पत्तियोंका प्रयोग

सड़कों और गलियोंके फर्शोंमें रबड़की पत्तियोंका प्रयोग किया जाय तो गरमीमें बढ़नेसे और जाड़ेमें सुकड़नेसे कोई नुकसान नहीं होने पाता। रबड़ उनमें ठीक फिट रहती है और इससे जोड़ोंमें नमी नहीं घुसने पाती। पत्तियाँ आसानीसे लगाई जा सकती हैं और सस्ती भी रहती हैं।

सेफमें रक्खी शीशेकी नली तेज़ गैस छोड़कर लुट जानेसे बचाती है

डाकुओंसे बचनेके लिए सेफके अन्दर एक सील की

हुई शीशेकी नलीमें एक खास तरल रख दिया जाता है। जब डिब्बा तोड़ा जाता है तो यह तरल एक तेज गैस-में परिवर्त्तित हो जाता है जो आँखोंको और शरीरके दूसरे भागोंको हानि पहुँचाती है। जब सेफको बाहरसे या किसी और प्रकार तोड़नेकी चेष्टा की जाती है तो सेफमें छिपी यह नली टूट जाती है।

एल्युमिनियमका लेप किये हुए इस्पातका गलावसे बचाव

अगर इस्पातपर एल्युमिनियमकी कोटिङ्ग हो जाय तो इसपर तेज़ाबोंका, खरोंचका और गलावका असर नहीं होने पाता और फिर इसके तार, छड़ें और पत्तियाँ आसानीसे बन सकती हैं। इस प्रकारके इस्पात-से मशीनके और भी अधिक छोटे और हल्के भागोंके पुर्जे बन सकते हैं क्योंकि इसमें अब इस्पातकी तो खिंचाव शक्ति और एल्युमिनियमका गलावसे बचनेका गुण होता है। इस इस्पात को १००० डिग्री सें० पर लगा-तार १००० घंटे गरम रक्खा जाय तो यह बिगड़ता नहीं और जब यह धातु-संबन्धी क्रियाओंमें काम आता है तो कोटिङ्ग तड़कती या छूटती नहीं।

धूल-चुम्बकसे हवाकी धूल, धुआँ और पालिन साफ हो जाते हैं

निकट भविष्यमें ही 'धूल-चुम्बक' का प्रयोग कर घरों, फैक्ट्रियों और अस्पतालों आदिमें सूक्ष्म-दर्शकमें ही दीख पड़नेवाली धूल और बैक्टीरियोंसे ९९ प्रति शतकी मात्रातक स्वच्छ वायु मिल सकेगी। इस विद्युतीय यंत्रकी प्लेटोंके उच्च वॉल्टेजसे धूलके वे कण-तक खिंच आते हैं जो सामान्य फिल्टरमेंसे निकल जाते हैं। ये प्लेटें स्वयं महीने डेढ़ महीने पीछे साफ़ की जाती हैं। भविष्यके धूलहीन घरोंमें, दीवारोंके काग़ज़को और परदों आदिको इतनी जल्दी-जल्दी साफ करनेकी आवश्यकता न रहेगी। विशेष रोगोंके रोगि-योंको तो यह खास तौरसे लाभदायक होगा क्योंकि इससे हवामेंसे पालिन और बैक्टीरिया तो प्रायः निकल ही जाते हैं। एक प्रयोगमें ५८ करोड़ प्रति १०० घ० सें० के हिसाबसे दो प्रकारके बैक्टीरिया छोड़े गए और इस यंत्र द्वारा साफ होनेपर परीक्षामें केवल १ कीटाणु निकला। इस यंत्रमें बिजलीका खर्च कम है। लगभग छः वॉटकी शक्तिके लट्टूके बराबर बिजली चाहिए। सिगरेटके धुएँके एक कणका व्यास १ इंचके ८० लाखवें भागके करीब होता है। प्रत्येक फुंकारेमें अरबों कण हवामें चले जाते हैं लेकिन धूल-चुम्बकके लिए इन सबोंको सोख लेना कोई कठिनाकी बात नहीं।

प्रकाशके लिए चोटसे न टूटनेवाला शीशा

भारी-भारी चोटोंसे भी न टूटनेवाले शीशेपर जो औद्योगिक प्रकाशकी वस्तुओंके बनानेके लिए तैयार किया गया था एक हथौड़ेसे चोटोंपर चोटें दी गईं लेकिन उसपर कुछ भी असर न हुआ। यही नहीं किन्तु गर्मीके आक्रमणसे भी यह विचलित नहीं हुआ। एक ओर सूखा बर्फ और दूसरी ओर पिघला हुआ सोल्डर डाला गया तब भी शीशा ज्योंका त्यों ही बना रहा।

पम्प जलती हुई इमारतमेंसे सब धुएँको खींच लेता है

फायरमैनको अग्निसे लड़नेके वास्ते रास्ता साफ करनेके लिए एक वैकुअम पम्प द्वारा जलती इमारतके अन्दरका धुआँ सोख लिया जाता है। मशीनका लम्बा मुँह धुएँसे भरे कमरेमें कर दिया जाता है और पम्प चलाकर सब धुआँ निकाल लिया जाता है जिससे फायरमैनको धुएँ और गैसोंसे दम घुटनेका डर नहीं रहता।

कपड़ोंको अग्नि-सुरक्षित (अग्निसे न जलनेवाले) बनाना

जहाँ कहीं कपड़ोंमें आग लग जानेका भय हो वहाँ इस विधिसे कपड़े ऐसे बनाए जा सकते हैं कि उनमें

आग न लगने पाये। पहिले कपड़ोंको सोडियम स्टैनेट-के ३ पौंड प्रति गैलनके घोलमें डुबो दो। उनको खूब निचोड़कर फिर एमोनियम सलफेटके ३/४ पौंड प्रति गैलन के घोलमें डुबाओ। फिर निकालकर निचोड़ लो और सुखाओ।

सुईमें डोरा पिरोनेके लिए काली सतहसे लाभ

सुईके पीछे काले कपड़े या काले काग़ज़को रख सुईमें डोरा आसानीसे पिरोया जा सकता है। पश्चाद्-भूमि काली होनेसे सुई अपेक्षाकृत साफ दिखाई देगी।

सनईकी खेती और सन बनानेकी कुछ फ़ायदेमन्द बातें

१— सनई हलकी, दोमट और पानीसे न भरने-वाली ज़मीनमें बोना चाहिए।

२— उत्तम जातिका बीज बोटेनिकल रिसर्च फ़ार्म, कानपुरसे मँगाकर बोना चाहिए।

३— अच्छी साफ सनई ३० या ४० सेर प्रति एकड़ रेशेके वास्ते और १५ या २० सेर प्रति एकड़ बीजके वास्ते बोना चाहिए।

४— सनईके काटनेका सबसे उत्तम समय बोनेके ११ सप्ताह बाद होता है जब कि फलियाँ आना शुरू हो जाती हैं। यदि फसल शीघ्र काट ली जाये तो रेशा निर्बल रहता है ; यदि बीज पड़नेके बाद काटी जाये तो रेशा हरा और मोटा रहता है।

५— सनई सड़ानेके पहिले उसे एक सप्ताह सुखा लेनेसे रेशा मज़बूत और रंगका अच्छा हो जाता है लेकिन अगर सनई सुखाते समय अचानक बारिशके पानीसे भीग जाये तो रेशा काला और निर्बल हो जाता है।

६— सनईकी जड़ें और पुंछियाँ सनई सड़ानेसे पहिले काट देनी चाहिए।

७— सनई अधिकतर अक्टूबर (कार सुदी और कातिक बदी) के महीनेमें ४ या ५ दिनमें पूरे तौरसे सड़ जाती है। सनई ज़रूरतसे ज़्यादा न सड़नी देनी चाहिए।

८— अगर पानी साफ़ है तो सनई सड़ानेके लिए तालाब अच्छा काम देते हैं लेकिन उसी पानीमें या रुके हुए पानीमें सनई धोनेसे रेशा मैला हो जाता है इस कारणसे आहिस्ता बहनेवाला पानी सबसे उत्तम होता है हालाँ कि इसमें सनई सड़नेसे एक-दो दिन ज़्यादा लग जाते हैं।

९— सनई धोते समय पानीमें खड़ा करके घुमाना नहीं चाहिए क्योंकि इससे रेशा उलझ जाता है।

१०— बनिस्बत कई डंठलोंसे एक साथ रेशा निकालनेके एक-एक डंठलसे अलग-अलग रेशा निका-लना चाहिए।

११— सड़ी हुई सनई को सोंटेसे पीटनेमें रेशा टूट जानेका भय रहता है। इसके अलावा रेशेको कमज़ोर और न हमवार भी बना देता है।

१२— रेशेको सिर्फ़ दो सिरोंपर बाँधना चाहिए या थोड़ी-सी ऐंठ देनी चाहिए। मजबूतीसे ज्यादा ऐंठ लगाकर लच्छियाँ नहीं बनानी चाहिए।

१३— सनईके रेशेमें लकड़ियाँ और मिट्टी नहीं मिलानी चाहिए; इसको भिगोना भी नहीं चाहिए।

१४— इन सब दोषोंसे रहित रेशा कोऑपरेटिव सोसाइटी बनाकर बेचना चाहिए जिससे अच्छी क़ीमत हाथ आये।

सम्पादकीय

विज्ञान-परिषद्‌की रजत जयंति

इस अंकके साथ विज्ञानका ४६ वाँ भाग समाप्त होता है। विज्ञान-परिषद्‌की संस्थापना सन् १९१३ में हुई थी। अब सन् १९३८ है। विज्ञान-परिषद्‌को स्थापित हुए इस वर्ष २५ वर्ष हो जायँगे। इन पचीस वर्षोंमें परिषद्‌ने हिन्दी साहित्यकी जो सेवा की है, वह किसीसे छिपी नहीं है। हमारा प्रस्ताव है कि इस अवसरपर विज्ञान-परिषद्‌की रजत जयंती समारोहके साथ मनाई जाय। इस काममें हम अपने पाठकों, प्रेमियों और परिषद्‌के सदस्योंसे सहयोग चाहते हैं।

स्वर्गीय श्री रामदासजी गौड़ भी इस जयंतीको धूमधामसे मनाना चाहते थे। खेद है कि वे इस समय परलोकगत हो चुके हैं।

इस अवसरपर क्या हो—

इस प्रश्नका उत्तर हमारे सभी प्रेमी दें। हमारा अपना विचार इस प्रकार हैः—

१—विज्ञान-परिषद्‌का एक छोटा-सा इतिहास तैयार किया जाय जिसमें हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यका विकास भी निरूपित किया गया हो।

२—'विज्ञान' पत्रका एक विशेषांक निकाला जाय।

३—समस्त प्रमुख साहित्यज्ञों (हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओंके भी) एवं माननीय व्यक्तियों-की शुभ कामनाएँ एकत्रित की जायँ।

४—हिन्दीकी समस्त पत्रिकाएँ अपने किसी अंकमें वैज्ञानिक साहित्यके संबंधमें विशेष चर्चा करें।

५—प्रयागमें उपयुक्त तिथिपर तीन दिन विशेष समारोह हो जिसका उद्‌घाटन कोई नृप-नरेश, या इस प्रान्तके शिक्षा सचिव या बिहारके प्रीमियर करें। इस अवसरपर विशेष व्याख्यानोंकी आयोजना की जाय।

६—हिन्दीके प्रमुख केन्द्रोंमें एक विशेष दिन विशेष अधिवेशन हों जिनके आयोजनमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति आदि सहायता करें।

७—विज्ञान-परिषद्‌के स्थायी कोषकी वृद्धि की जाय।

८—विज्ञान-परिषद्‌की भूमिपर जो कार्यालयका भवन दीन अवस्थामें पड़ा हुआ है, उसके संबंधमें उचित कार्य्य किया जाय।

इन सब बातोंके लिए आर्थिक सहायता नितान्त आवश्यक है। हमारा अपने पाठकोंसे निवेदन है कि वे बतावें कि हमारी वे स्वयं क्या सहायता कर सकते हैं और दूसरोंसे क्या सहायता दिला सकते हैं? विज्ञान-परिषद् तो अपनी ही संस्था है, अतः विज्ञानके पाठकोंको स्वयं इसमें रुचि लेनी चाहिए। आशा है कि हमारे पाठक हमें उचित परामर्श देंगे।

—सत्यप्रकाश

विषय-सूची

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

(जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है)

भाग ४७

मेषार्क—कन्यार्क, संवत् १९९५ विक्रमी

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य ३)] [इस जिल्दका १॥)

विषयानुक्रमणिका

आरोग्य और चिकित्सा

उद्योग और रसायन

खेती और बाग़वानी

भौतिक विज्ञान

मिस्त्रीकी नोटबुक

ले०—पं० ओंकारनाथ शर्मा

विविध

अप्रैल, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४७, संख्या १

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

सबसे बड़ा रेडियो

अमेरिकामें यह विशाल रेडियो रिसीवर बनाया गया है जो संसारका सबसे बड़ा और पूर्ण रेडियो है। इसमें २७ ट्यूब और ६ लाउड स्पीकर लगे हैं।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces.
for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २७७ | वार्षिक मूल्य ३)

विषय-सूची

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७ | प्रयाग, मीनार्क, संवत् १९९४ विक्रमी | अप्रैल, सन् १९३८ | संख्या १

युद्ध-गैसका कल्पित हौआ

आदर्श युद्ध-गैस कदाचित् ही सुलभ हो !

[ले०— श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० एस-सी०]

भारतके प्राचीन इतिहासमें युद्धके अनेक शस्त्रास्त्रों-का उल्लेख आता है। आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र तो प्रचलित थे ही जिनसे प्रकाण्ड अग्नि उत्पन्न हो जाया करती थी, अथवा जिनसे जलकी वर्षा होने लगती थी। इसी प्रकार नागफाँसका वर्णन दिया गया है 'जो शत्रुपर छोड़नेसे उसके अंगोंको जकड़कर बाँध लेता है। वैसे ही एक मोहनास्त्रका भी वर्णन है जिसमें नशेकी चीज़ पड़ी होती थी जिससे उसका धुआँ लगते ही सब शत्रुकी सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित हो जाय'।

(दयानन्द— सत्यार्थप्रकाश)

इधर गत यूरोपीय महायुद्धमें मित्र और शत्रु दोनोंके राज्योंकी ओरसे युद्ध-गैसोंका उपयोग किया गया। युद्धकी भयंकरता इन गैसोंके कारण बहुत बढ़ गई है, और इन गैसोंके आविष्कारके लिए विज्ञान काफ़ी बदनाम भी हो चुका है। आजकल युद्ध वीरता-का परिचय नहीं रहा है। इसका मुख्य आधार वे रसायनशालाएँ हैं जो इन गैसोंको बड़ी मात्रामें तैयार करनेके बड़े-बड़े कारखाने यूरपके अनेक देशोंमें खोले हुए हैं। इटलीने एबीसीनियाके निवासियोंपर इन्हीं गैसोंके कारण विजय पाई। चीनके ऊपर जापानके जो

आक्रमण हो रहे हैं, उनमें भी रासायनिक द्रव्योंकी सहायता ली जा रही है। भविष्यमें जिस महासमर होनेकी आशंका की जाती है उसमें भी यही आशा है कि प्रमुख स्थान इन युद्ध-गैसोंको मिलेगा।

इन गैसोंके प्रभावसे बचनेके लिए भी आयोजनाएँ की गई हैं। ऐसे मुखावरण तैयार किये गये हैं जिनको पहिनकर इनके दूषित प्रभावोंसे बचा जा सकता है। सुना जाता है कि भारतवासियोंको सचेत रहनेके लिए बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानोंमें इन मुखावरणोंके प्रयोग-की शिक्षा दी जानेवाली है जिससे आपत्तिके समय नागरिक इनसे बच सकें। इन गैसों द्वारा केवल युद्धके सैनिकोंपर ही आक्रमण नहीं होता है, ये तो शान्त नाग-रिक प्रजापर भी छोड़े जाते हैं। अतः इनका डर सब-को है।

ये गैसें कई प्रकारकी होती हैं। वायुसे मिश्रित हो श्वासके साथ शरीरमें प्रविष्ट होकर घातक प्रभाव डालती हैं। कुछ ऐसी हैं जिनसे आँखोंमें जलन पैदा हो जाती है और कुछ अपना दूषित प्रभाव और तरह दिख-लाती हैं।

खाईमें सुरक्षित एक सिपाही

यों तो संसारमें सहस्रों विषैली वस्तुएँ ज्ञात हैं पर युद्धके कामकी थोड़ी-सी ही हैं। लोगोंको संभवतः यह भ्रान्ति हो कि हरेक शत्रु-मित्र जातिके पास ऐसे सहस्रों

अज्ञात नुसख़े मौजूद हैं जिनका प्रयोग युद्ध आरंभ होते ही किया जाने लगेगा पर बात ऐसी नहीं है। ऐसी बहुत ही कम गैसें ज्ञात हैं जिनका युद्धमें सफलता-से प्रयोग किया जा सकता है। युद्धमें प्रयोग वे गैसें ही की जा सकती हैं जिनमें कुछ विशेष गुण हों। ये गैसें तीक्ष्ण और कटु तो होनी ही चाहिए जिससे अति सूक्ष्म मात्रामें प्रयुक्त होनेपर भी ये अपना घातक या विषैला प्रभाव दिखा सकें।

इनमें कुछ वांछित भौतिक और रासायनिक गुण भी होने चाहिए और वे आर्थिक दृष्टि-कोणसे भी उप-युक्त हों। एक ऐसे पदार्थका मिलना तो जिसमें केवल इतने गुण ही पाये जायँ कि उससे कार्य सिद्ध हो सके केवल कठिन ही है, लेकिन ऐसे पदार्थका, जिसमें सभी गुण विद्यमान हों, पाना तो असम्भव-सा है। आदर्श युद्ध-पदार्थ न अभीतक मिला है न सम्भवतः भविष्यमें मिले।

सन् १९१५ से (जब बेल्जियममें यपर्सके पास सर्व प्रथम गैसका आक्रमण हुआ) सन् १९१९ तक (जब युद्ध-कालीन खोज किये जानेवाले स्थानोंमें शान्ति स्थापित हो गई) ३००० से अधिक यौगिकों-की परीक्षा की गई। उनमेंसे ३० से कम युद्धमें प्रयोग किये जाने योग्य थे, और केवल १०-१५ ऐसे थे जो अधिक परिमाणमें प्रयोग किये जा सकें। इन वर्षोंमें विद्वान रसायनज्ञोंका प्रयत्न यही रहा कि किसी ऐसी वस्तुका आविष्कार हो जिससे उनके साथियोंको हार माननी पड़े। तभीसे बराबर खोज होती रही है, यद्यपि अब इस काममें कुछ काम उत्साह दिखाई देता है। समाचारपत्रोंमें अद्भुत गैस बन जानेकी अनेकों सूचनाओंके होते हुए भी ऐसे किसी यौगिकके प्राप्त होनेका कोई वास्तविक प्रमाण नहीं है। इन समाचारों-की छानबीन करनेपर मालूम पड़ जाता है कि यह कोई नई गैस नहीं है। इसकी तो पहले ही परीक्षा की जा चुकी थी। उसमें कुछ कमी पाई गई या युद्धमें सफल प्रयोगके लिए आवश्यक गुण न मिले थे।

युद्ध-गैस क्या है ?

अब कुछ इस विषयपर विचार करना चाहिए कि युद्ध-गैस क्या वस्तु है; इसमें क्या गुण होने चाहिए और किस रूपमें। विषैली-गैस शब्द ही एक मिथ्यानाम है। अधिकतर रासायनिक-पदार्थ सामान्य दशामें द्रव या ठोस होते हैं। वे वायुमें भिन्न-भिन्न विधियोंसे फैलाये जाते हैं। कुछ पदार्थ तो कंबुओंमें या बम्बके गोलोंमें भर दिये जाते हैं जो फूटनेपर द्रव या ठोस पदार्थको सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणोंमें फुव्वारेके समान फेंकते हैं। कुछ ठोस पदार्थ तापसे वाष्पीभूत हो जाते हैं और इस प्रकार वायुमें वाष्प रूपमें या सूक्ष्म मेघ बनकर फैलते हैं। कुछ बड़े पीपोंमें वायुयानों द्वारा भेजे जाते हैं और ऊपर हवामें छोड़ दिये जाते हैं; जिससे वे पृथ्वीपर सूक्ष्म बिन्दु रूप हो या कुहरा बनकर गिरते हैं। ये पदार्थ प्रायः द्रव होते हैं यद्यपि बारीक पिसे हुए ठोस भी इसी प्रकार प्रयोगमें लाये जा सकते हैं।

कुछ ही वाष्पशील पदार्थ जो गैसीय दशामें सरल-तासे परिणत हो जाते हैं ऐसे हैं जो सीधे पीपों-से या सिलिण्डरोंसे वाल्व खोलकर छोड़ दिये जा सकें। उनसे एक घना मेघ बनता है जो तुरन्त वायुके प्रवाहमें बह जाता है। चाहे तो हम इन पदार्थोंको रासायनिक प्रतिकारक कहें चाहे यौद्धिक रासायनिक पदार्थ या विषैली गैस कहें— ये सब नाम केवल युद्धोपयोगी पदार्थोंका बोध कराते हैं जो सामान्य या विशेष रासाय-निक क्रियाओंसे शरीरपर जलन या शरीरको चारों ओरसे आच्छादित करता हुआ धुआँ पैदा करते हैं।

युद्ध-गैसके आवश्यक गुण और उनका वर्गीकरण

प्रत्यक्षतः यदि यौद्धिक रासायनियोंकी खोज की जाय तो उन्हें एक सैनिक आवश्यकता भी पूर्ण करनी चाहिए। वह पदार्थ छाँटा जाय जिसके लिए यौक्तिक माँग हो अर्थात् वह युद्ध-युक्तिका एक साधन हो। उसपर भी वह पदार्थ इस आवश्यकताको और सुलभ पदार्थोंकी अपेक्षा

अच्छी तरह पूरी करता हो। इसलिए हमें यौद्धिक रासायनिकोंकी परीक्षा करते समय उन्हें उनके यौद्धिक और यौक्तिक गुणोंके अनुसार विभाजित करना पड़ेगा। बहुत-से एकसे अधिक वर्गमें आयेंगे। मृत्यु प्रतिकारक वे पदार्थ हैं जिनमें ऐसे गुण हैं जिनके कारण मुख्यतः वे हत्याके अभिप्रायसे प्रयोगमें लाये जायँ। उनका कार्य जिस मनुष्यपर वे पड़ें उसे अस्पताल भेजना और अंतमें परलोक भेजना ही है। तंग करनेवाले प्रतिकारक वे हैं जो सैनिकोंको गैस-कवच पहिनना अनिवार्य कर सेनाकी शक्तिको कम कर देते हैं। परदेकी तरह चारों ओरसे ढकनेवाले प्रतिकारक अपारदर्शक धुआँ पैदा करते हैं जिससे अवलोकनमें बाधा पड़े। जलनशील प्रतिकारक जिस वस्तुपर वे पड़ते हैं उसका सर्वनाश कर देते हैं।

युद्ध-यौक्तिक प्रयोजन शरीरपरकी क्रियासे पूर्ण होता है; अतः विवेचनार्थ युद्ध-गैसोंका अत्यन्त सुविधाजनक वर्गीकरण उनके शरीर-सम्बन्धी क्रियाओंके अनुसार होगा। फुप्फुस-उत्तेजक वे पदार्थ हैं जो केवल श्वास-उपकरणपर ही आक्रमण करते हैं। वस्तुतः वे मृत्यु प्रतिकारक ही हैं। फोसजीन इस वर्गका एक सजीव उदाहरण है। सर्पिष गैस जैसे त्वचा-उत्तेजक (फफोले डालनेवाले प्रतिकारक) शरीरके सब भागोंपर असर करते हैं; त्वचा, नेत्र और श्वास-नलीमें उत्तेजना और जलन करते हैं। त्वचा-उत्तेजक प्रधानतः घातक होते हैं, साथ ही असुरक्षित सेनाके पैर उखाड़नेमें और उन्हें न जमने देनेमें सहायक होते हैं। अश्रु-गैस जैसे नेत्रोत्तेजक केवल परेशान करनेमें सहायक होते हैं और थोड़े-से ही समाहरणमें नेत्रोंमें बड़ी तेज़ उत्तेजना करते हैं जिससे आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। हरसिरकोदिव्योन इस वर्गका एक उदाहरण है। नासिका-उत्तेजक अर्थात् छींक लानेवाले प्रतिकारक छींक लाते हैं, जी मचलाते हैं और अत्यधिक मास्तिष्किक नैर्बल्य पैदा करते हैं। इस वर्गका ज्वलंत उदाहरण द्विदिव्यीलामिन हरसंक्षीणिन् है जो अश्रु-गैसके मानिन्द, लेकिन उससे अधिक तंग करनेके लिए, प्रयोग किया जाता है। नासिकोत्तेजक केवल अस्थायी प्रभाव रखते हैं, उनसे मृत्यु नहीं होती। अंतमें, नाड़ी-विष अर्थात् पक्षाघातक भी हैं जैसे उदश्यामिकाम्ल गैस जो सीधी नाड़ी-मण्डलपर असर करती है और हृदय-क्रियाको रोक देती है। कर्बन-एकौषिद् गैसके मानिन्द और भी विष हैं जो रक्तपर असर कर इसके तन्तुओंको ओषजन देनेकी क्रियामें बाधा डालते हैं। रक्त-विषोंको एवं नाड़ी-विषोंको युद्ध-गैसके रूपमें प्रयोग करनेकी अभीतक कोई प्रायोगिक रीति उनकी भौतिक और रासायनिक कमियोंके कारण खोज नहीं हो पाई। विस्फोटनोत्पादित कर्बन एकौषिद गैसके बहुत-से शिकार हुए हैं लेकिन ये मृत्युएँ रासायनिक युद्ध प्रणालीके कारण हुई नहीं समझी जा सकतीं।

रासायनिक प्रतिकारकोंकी विशेषताएँ

रासायनिक प्रतिकारकोंके गुण जो उन्हें विशेष लाभकारक बनाते हैं वे ये हैं कि वे कोनेपर मुड़ते हुए चले जायँ और कालाकाशमें अविरत हों यानी जितने क्षेत्रपर और जितने समयतकके लिए उनका प्रयोग किया जावे, उनका असर बराबर एकसा हो। गोली और तेज़ विस्फोटक गोला मार्गमें गतिशील हो आगे बढ़ते ही चले जाते हैं या बीचमें ही फट जाते हैं और तुरन्त ही उनकी शक्ति नष्ट हो जाती है। यदि मार्गमें कोई पड़ जाये तो उसकी मृत्यु हो जाय, यदि नहीं, तो कोई परिणाम नहीं। वरन् गैस वायुमें व्याप्त होती है जिससे कि गोली अथवा बम्बकी अपेक्षा एक बड़े क्षेत्रफलपर और अधिक समयतक यह प्रभावशील रहती है। नीची जगहोंमें यह भर जाती है और दरारोंमें घुस जाती है।

इसका यह अर्थ नहीं कि गैस वशीभूत नहीं हो सकती या यह कि बम्ब या कंडुसे एक बार छूटा हुआ कोई रासायनिक प्रतिकारक मीलोंतक अलक्षित मनुष्योंका संहार करता हुआ चला जायेगा। इसके विपरीत भेदनेवाले हथियारोंके अतिरिक्त, गैस और किन्हीं भी यंत्रोंकी अपेक्षा अधिक वशीभूत हो सकती है। यह
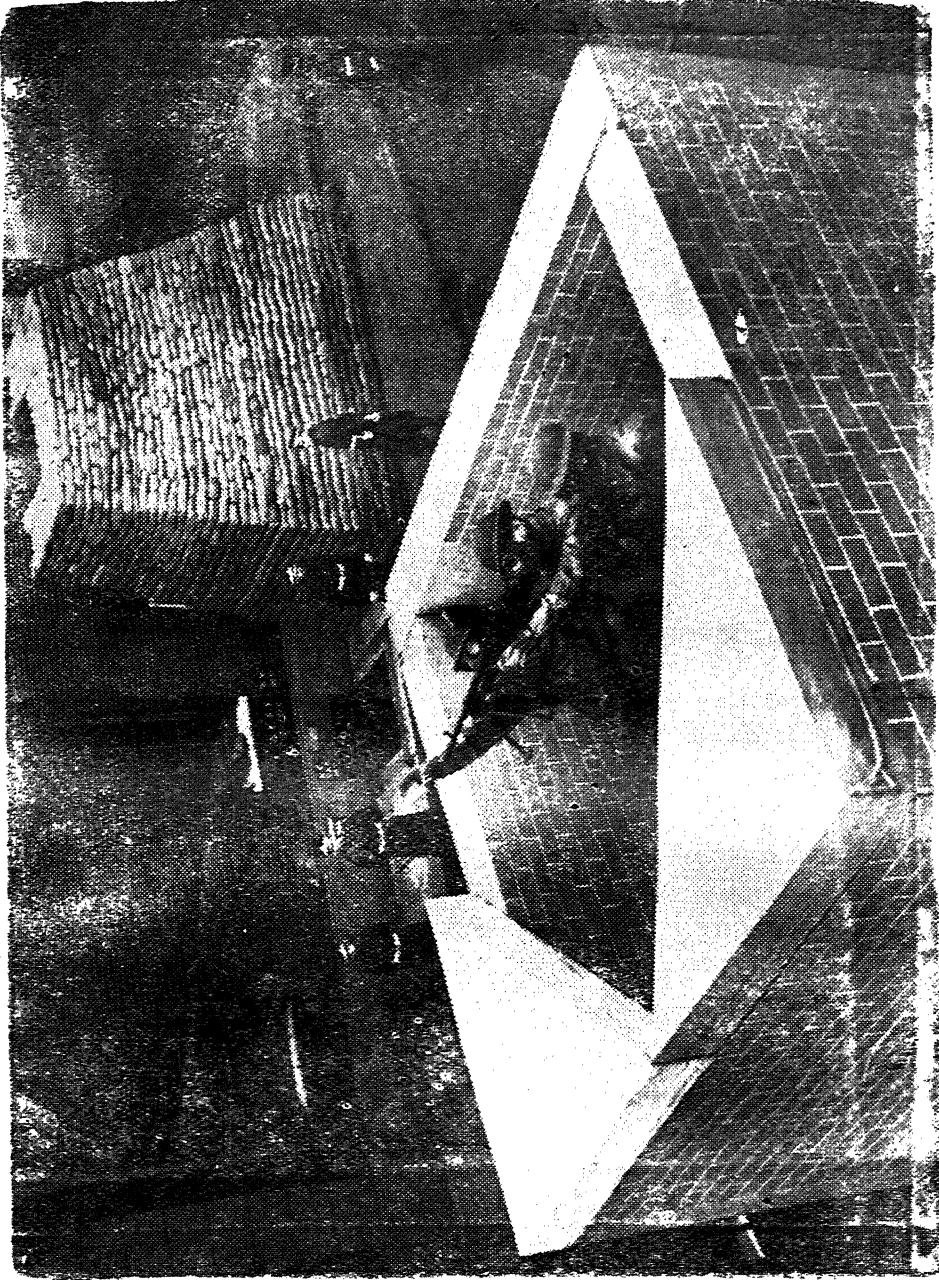
युद्धमें रक्षाके लिए गैस-मास्कोंका प्रयोग

अत्यन्त लचकदार प्रतिकारक है कि चाहे इसे घोर संहार करनेके लिए बना लिया जाय या केवल तंग करने-को और रुकावट डालनेको। यह काल और स्थान दोनोंमें निश्चित रूपसे नियंत्रित हो सकती है, छोटे या

बड़े मनमाने क्षेत्रफलपर यह और जितने समयतक चाहें उतने ही समयतक फैलाई जा सकती है। यह पृथ्वीपर इस इस रूपमें रह सकती है कि इसका प्रभाव सामान्य ऋतु दशाओंमें कई घंटे या दिनोंतक रहा आवे और इस रूपमें भी कि प्रभाव थोड़े ही मिनटोंमें समाप्त हो जाय। यह सब गैसके स्थैर्य और प्रसरण-विधिपर निर्भर है। वह गैस अस्थिर कहलाती है जो भूमिपर छोड़नेके लगभग १० मिनटमें हल्की, मन्द वायुके वेगसे धरातलपर फैल जाय। यदि अधिक समय यानी कई घंटोंतक प्रभावोत्पादक रहे तो गैस स्थिर कहलाती है। फॉसजीन अस्थिर गैस है। क्षेत्रपर छोड़ते ही वाष्प बन सवेग फैल जाती है। सर्षिप गैस स्थिर गैस है जो कई घंटों और दिनोंतक प्रभावशाली बनी रहती है। प्रतिकारककी उपयोगिताके लिए स्थैर्य एक अत्यन्त आवश्यक गुण है।

आदर्श युद्ध-गैसकी आवश्यकताएँ

अतः आदर्श युद्ध-गैसकी खोज युद्ध-चातुर्य, शरीर-विज्ञान, भौतिक और रसायन-विज्ञानपर निर्भर रहकर हो सकती है। और क्योंकि धन एवं मनुष्यों दोनों ही द्वारा युद्ध होता है, इसलिए इसे आसानीसे प्राप्य बनानेके लिए अर्थशास्त्रपर भी विचार-युक्त दृष्टि डालनी पड़ेगी। प्रत्यक्षतः रुचिकर मध्यस्थावलम्बन यानी बीचकी बात मानना आवश्यक है क्योंकि आदर्श-का सम्भवतः प्रत्यक्षीकरण न हो सके। तब भी आदर्श तो सामने रख ही सकते हैं यद्यपि यह अनुपलभ्य हो। इससे सैनिक-रसायनज्ञको एक लक्ष्य तो मिल ही जाता है।

पहिले तो रासायनिक-यौगिक पदार्थ थोड़े ही समाहरणमें प्रभावात्मक होने चाहिए। 'थोड़े' शब्दके विषयमें कोई भ्रान्ति न रहने पावे इससे यह कह देना उचित है कि यहाँ १०० या हज़ार भाग वायुमें १ भाग पदार्थके मिलानेके आशय नहीं लेकिन लाखों भाग वायुमें अल्प-भाग पदार्थ मिलानेसे है। जबतक कि ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म समाहरणमें गैस काम न कर सके वह युद्धोपयोगी नहीं। कंबु या पीपे केवल थोड़ी ही संख्या-में आगे रणभूमिमें लाये जा सकते हैं। उसपर भी हवा थोड़े ही परिमाणमें उसे बहा ले जा सकती है। रासायनिक इतना तेज़ होना चाहिए कि शत्रुके पास जो थोड़ा-सा भी पहुँचे वह इच्छित कार्यको पूरा कर दिखाये अर्थात् संहार कर सके, क्लेश पहुँचा सके और उन्हें क्षेत्रमें ठहरने न दे।

डाक्टर रुडोल्फके मतानुसार ०·०४ औंस प्रति सहस्र घन फुटके समाहरणमें फॉसजीन श्वास-अंग और नेत्रोंमें तीक्ष्ण उत्तेजना पैदा करती है अर्थात् एक भाग फॉसजीन १००,००० भाग वायुमें। यदि इससे भी अति-लघु परिमाणमें कुछ देरतक श्वासके साथ सूँघ ली जाय तो यह गैस विष-हत्याकी दुर्घट-नाओंका कारण बन जाय।

अश्रु-गैस

अश्रु-गैस और भी कम समाहरणमें अपना प्रभाव ले आती है। हैंसिलियनका कथन है कि नेत्रोंमें जलन पैदा करनेसे लघुतम समाहरण ०·०००३ औंस प्रति सहस्र घन फुट वायु है। अरुण-बानजील-श्यामिदके ०·०००८ औंस प्रति सहस्र घन फुट समाहरणसे ३ मिनट बाद ही नेत्रोंमें उत्तेजना होने लगती है। क्षण-भर इन अतिसूक्ष्म परिमाणोंपर विचार कीजिये। सोचिए कि इस रासायनिक पदार्थका १ औंसभर १०००० भागोंमें विभाजित किया जाता है और उनमें से ८ भाग १० फुटकी भुजाके घनमें समाई हुई वायुमें सम-विक्षिप्त किया जाता है। उस घनमें साधा-रण मनुष्य केवल ३ मिनट ही खड़ा रह सकता है, तत्पश्चात् अश्रु-गैसका नेत्रोंपर इतना प्रबल प्रभाव पड़ेगा कि उन्हें बंद करना पड़ेगा। इसी कारणसे अश्रु-गैसें युद्धमें इतनी उपयोगी हैं। यद्यपि इनसे कोई भीषण या स्थायी संहार नहीं होता, लेकिन थोड़ेसे ही मनुष्यको मुख-ढकन पहिनना पड़ता है जिससे वह थोड़ा-बहुत असमर्थ हो जाता है। कुछ कार्योंके लिए और अधिक उत्तेजनशील गैसोंकी अपेक्षा जिन्हें अधिक

परिमाणमें प्रयोग करना पड़ता है ये सम्भवतः सस्ती पड़ें। यदि यौक्तिक आवश्यकता विलम्ब पैदा करनेकी, तंग करने अथवा वैरीके कार्योंमें रुकावट डालनेकी हो तो एक तेज़ अश्रु-गैससे भरा हुआ कंबु कम-से-कम १० सर्पिष गैसके कंबुओंका काम करेगा। इस बातकी महत्तापर कुछ राष्ट्रोंका अपने तेज़ विस्फोटक कंबुओंमें ठोस अश्रु-गैसकी थोड़ी-सी मात्रा मिला देनेका विचार है। रूसवालोंका ध्यान ऐसे जलनशील रासायनिक कंबु प्रयोग करनेकी ओर है, जिनका फूटनेपर विस्फोटन प्रभाव पड़ता है लेकिन मनुष्यके सामर्थ्यमें कुछ अन्तर नहीं आता और साथ-साथ वायुमें अश्रु-गैस व्याप्त हो जाती है।

सर्पिष गैस

दूसरी सर्पिष गैस है जिससे आदर्श गैस स्पर्धा करती हो। ·००६ से ·२ औंसतक (जितने समयतक सूँघी जाय उसके अनुसार) प्रति सहस्र घन फुटके समाहरणमें यह घातक सिद्ध होती है। नेत्रोत्तेजनके लिए १ भाग प्रति १४,०००,००० भाग समाहरण पर्याप्त है लेकिन अधिक समयतक उसमें रहनेपर सर्पिष गैसकी गंध १ भाग प्रति १ करोड़ भाग वायु जैसे कम समाहरणमें भी स्पष्टतया आ जाती है। तब भी इस पदार्थसे दूषित भूमिपर बैठनेसे, जहाँ इसकी गंध बिल्कुल नहीं आती थी, शरीरपर जलनेके चिन्ह हो गये।

उपर्युक्त विषयके सम्बन्धमें यह ज्ञात रहे कि समाहरण ऐसी मृत्युके कारणोंमेंसे केवल एक है। इसके अतिरिक्त प्रतिकारक जितने समयतक अपना प्रभाव करे वह समय भी ध्यानमें रखने योग्य है।

आदर्श युद्ध-गैसकी कुछ और आवश्यकताएँ

अस्तु, हमारा आदर्श प्रतिकारक ऐसा हो कि जिसके विरुद्ध रक्षा करना दुर्लभ हो अर्थात् शत्रुके रक्षा-साधनको पार कर जाय या कम-से-कम उसको भारी हानि तो पहुँचा ही दे।

प्रत्येक आधुनिक राष्ट्रने गैससे रक्षा करनेके प्रथम श्रेणीके साधन कर लिये हैं। यदि आदर्श नई गैस इस रक्षा-साधनमें होकर अन्दर न घुस सके तो गैस निरर्थक है जबतक कि अनायास सैनिकको न घेर लिया जाय और वह गैस-रक्षाके साधनोंसे पूर्णतया सुसज्जित न हो। यदि हम यह ध्यान रक्खें कि संसारभरके राष्ट्र गैससे रक्षाके साधनोंमें अपने सैनिकोंको किस अंशतक शिक्षा दे रहे हैं तो ऐसी बातका होना साधारण बात नहीं मालूम पड़ती है। सचमुच प्रतिपक्षीको शिरोत्राण (मुखका कवच) पहिनवानेमें कुछ तो लाभ है ही लेकिन हमारे पास पहिले ही बहुत-से ऐसे प्रतिकारक हैं जो इस अभिप्रायको भलीभाँति और कम दामोंमें पूरा कर देंगे।

नई गैसको मुखावरण चढ़वानेसे अधिक काम करना चाहिए। इसे शरीरके सभी अंगोंपर प्रभावात्मक होना चाहिए अर्थात् फुप्फुस, नेत्र, त्वचा, नासिका, सबोंमें उत्तेजना पैदा करनी चाहिए, और फिर वह सर्पिष गैसकी स्पर्धा करती हो जो कि तरल और वाष्प दोनों अवस्थाओंमें फुप्फुस, नेत्र और त्वचापर असर करती है। त्वचापर फफोले करना सर्पिष गैसके प्रयोगमें लानेका प्रधान कारण था। प्रायोगिक रूपमें सिरसे पैरतक रक्षा आसान नहीं है। वायुमें तरल सर्पिष गैसके फुव्वारेसे बचे रहनेके लिए सैनिकको एक प्रकारके अभेद्य वस्त्रमें लिपटा रहना होगा जो पहिननेमें असुविधाजनक होगा और जिसके थोड़े मिनटोंसे कारण अधिक देरतक लड़ना असम्भव हो जायगा।

यदि नई गैस शरीरके सब अंगोंपर आक्रमण न करे तो शिरोत्राणको भेदकर पार ही हो जाय। इसके लिए वह प्रतिक्रियाहीन हो अर्थात् वह दूसरे पदार्थोंमें शीघ्रतापूर्वक संयुक्त न हो जाय।

इसके अतिरिक्त, यह सक्रियकृत (एक्टीवेटेड) काष्ठ-कोयलेसे (जो शिरोत्राणके कनस्तरका प्रधान अंग है) अपशोषणमें न आवे और धूम-निःस्यन्दकसे (जो सूक्ष्म ठोस अथवा तरल कणोंको हटानेमें काम आता है) रुक न जावे। जितनी अधिक प्रतिक्रियाहीन गैस होगी उतना ही कठिन ऐसे पदार्थका मिलना है जो उसे गैस कवचके कनस्तरमें प्रविष्ट होकर

जानेसे रोके यद्यपि प्राचीन युद्ध-गैस क्लोरीन बहुत तेज़ उत्तेजनाशील गैस है पर यह अत्यधिक सक्रिय रासायनिक है और अनेकों दूसरे पदार्थोंसे तुरन्त रासायनिक संयोगमें आ जाती है। परिणामतः इससे रक्षा करना सदैव आसान रहा है। कॉस्टिक सोडाके घोलमें या केवल कपड़ेके गद्देसे ही यह वायुमेंसे सोख ली जाती है। एक और यौद्धिक क्लोर्पिक्रिन नामक गैस-से युद्धमें भय रहेगा क्योंकि यह रक्षा-साधनपर आक्रमण करती है। केवल अत्युत्तम गैस कवच ही इस गैसके घन समाहरणमें रक्षा कर सकते हैं क्योंकि यह गैस अक्रिय है। अतः आदर्श गैसके लिए यह आवश्यक गुण है कि वह शरीरके सभी अंगोंपर असर करे। पूर्णतया सुरक्षित रहनेके लिए सैनिकको एक ऐसा कवच पहिनना पड़ेगा जो गैसको बाहर ही रक्खे और साथ-साथ जीवन-निर्वाहके लिए ओषजन दे और सैनिक अभेद्य वस्त्र शिरसे पैरतक पहिने।

युद्ध-गैसका अधिक मात्रामें प्राप्त हो सकना

सम्भव है कि रसायनज्ञकी परीक्षानलिकामें ऐसा रासायनिक पदार्थ विद्यमान हो परन्तु परीक्षानलिकासे निकल एक बड़ी मात्रामें उत्पादन हो सकना एक ऐसी कसौटी है कि उसपर बहुत-से रासायनिक पदार्थ न उतर सके। युद्ध-गैसका किफ़ायतसे दीर्घ मात्रामें आसानीसे निर्माण करना आवश्यक है। यद्यपि केवल ३ बूँदोंसे ही आदमीका काम तमाम होता हो लेकिन यह निश्चय करनेके लिए कि उसतक ३ बूँदें पहुँच तो गईं १ टनभर गैसकी आवश्यकता हो जाती है। सम्वेदना-दर्शीको यह वर्णन करनेमें ही आनन्द आता है कि किस प्रकार थोड़े-से बम्ब और फुव्वारोंसे सुसज्जित वायुयानों द्वारा कई शहर एक साथ उड़ गये। वास्तवमें ऐसा वर्णन नितान्त निर्मूल है। एक जहाज एक टैंकमें इतना विष ले जा सकता है कि एक शहरके प्रत्येक निवासीको मार दे यदि उसका प्रत्येक अणु अपने शिकारतक पहुँच जाय। लेकिन यह केवल कल्पना मात्र है। अधिकांश तो मनुष्य-मात्र तक पहुँचेगा ही नहीं। इसलिए यह निश्चय करनेके लिए कि प्रतिकारक पर्याप्त मात्रामें अपने लक्ष्यपर पहुँच गया है उसे सैकड़ों पौंडकी मात्रामें प्रयोग करना पड़ेगा, जिस प्रकार सहस्रों एच० ई० गोलियाँ थोड़ी-सी हत्याओंके लिए छोड़नी पड़ती हैं—भले ही पौंड प्रति पौंड गैस तेज विस्फोटक पदार्थकी अपेक्षा सैनिकोंको असमर्थ बनानेमें अधिक उपयोगी हो।

अस्तु, कितनी ही प्रबल गैस क्यों न हो, इसे बहुत बड़ी मात्रामें प्राप्त होना चाहिए। इस बातका कि रसायनज्ञ प्रयोगशालामें थोड़े पौण्ड पदार्थ तैयार कर सकता है यह अर्थ नहीं कि रासायनिक विधि-से वह उस पदार्थके टनों बना सकता है। कुछ रासायनिक पदार्थोंको अधिक मात्रामें तैयार करने-की किसी विश्वसनीय और प्रायोगिक रीतिका निकालना एक लम्बा और दुर्लभ कार्य है। महा-युद्धमें जर्मनीके लोगोंने लगभग ५००० टन सर्पिष गैस बनाई और युद्धावसानके समय ६६००० पौंड प्रति दिनके हिसाबसे वे उसे तैयार कर रहे थे। विपक्षी सर्पिष गैसको प्रयोगमें लाना और उसे बनाना जर्मनीवालोंके प्रयोग करनेसे बहुत पहिले ही जानते थे। सचमुच, अँग्रेजोंने १९१६ में सर्पिष गैसको युद्ध-गैसके रूपमें प्रयोग करनेका विचार किया था। जर्मनीवालोंके इसे प्रयोगमें लानेके बाद ही वे स्वयं सर्पिष-गैस बनाकर प्रत्युत्तर दे सके।

आर्थिक दृष्टि-कोण

धन भी युद्धका एक स्तम्भ है। युद्ध-कालमें अदृश्य ही यह जल-समान बहता है लेकिन तब भी व्यय करनेकी सीमा होती है। एक ही जैसे गुणोंके दो पदार्थोंमेंसे सस्तावाला ही काम आयेगा। जर्मन लोगोंको सुपरपेलाइट (एक यौगिक जो फॉस-जीनके समान ही विषैला है।) एक अत्युत्तम गैस विदित थी। युद्ध-कालमें अमरीकावाले इसे अधिक मात्रामें न बना सके जिससे यह उस समयकी अन्य वस्तुओंसे तुलनामें न आई यद्यपि उनमें यह कई

एक विचारोंसे उत्तम थी। हमारी आदर्श गैस यदि कीमती पड़ी तो प्रयोगमें न आयेगी। यह एक अस्वाभाविक-सी लेकिन सत्य बात है कि हत्या करना भी रुपये-पैसेका खेल है।

गैस-मास्क पहिने हुए एक सैनिक

व्ययके अतिरिक्त सैनिक रसायनज्ञको नया यौगिक बनानेके लिए अपनी मातृ-भूमिमें सुगमता-पूर्वक सुलभ कच्चे मालपर ही निर्भर रहना पड़ता है। ऐसे पदार्थोंका, जो समुद्र पार देशोंसे आते हों और जिनकी प्राप्तिके लिए जहाजोंके आश्रित रहना पड़े, उन्हें युद्ध-गैसके बनानेमें प्रयोग नहीं किया जाता।

ट्रांसपोर्ट-संबंधी कठिनाई

इन मूल आवश्यकताओंके अतिरिक्त, कुछ और भी ऐसी हैं जिनकी आदर्श युद्ध-गैसको पूर्ति करनी पड़ेगी। युद्ध-गैस सरलतापूर्वक एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ली जा सके। यदि वास्तव रूप गैस ही हो तो उसे तरल अवस्थामें परिणत हो सकना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो उसका पर्याप्त मात्रामें पहुँचाना, जिससे आक्रमण सार्थक हो, असम्भव प्रतीत होता है। क्लोरीनका इतना प्रयोग कभी न होता यदि यह तरलावस्थामें परिणत न हो सकती होती। दूसरी ओर कर्बन-एकौषिद गैसका जिसमें अनेक गुण आदर्श-गैसके हैं तरलावस्थामें परिणत होना प्रायोगिक रीतिसे असम्भव ही है। ये हल्के गुब्बारोंमें नहीं ली जा सकती। इसे भारी धातुके डिब्बोंमें बन्द किया जाय तो युद्धमें अतिशय असुविधा होती है।

प्रवाहण-समस्या भी एक कठिन समस्या है। इसके अलावा युद्ध-गैस केवल सघन ही न हो वरन् अक्षत् हो यानी जैसी-की-तैसी बनी रहे। जो वस्तुएँ चूती हों, जिनके बन्द करनेमें कठिनाई होती हो और जो डिब्बेके लिए क्षादक हों यानी डिब्बेपर रासायनिक असर ले आती हों, ठीक नहीं हैं। यद्यपि इन कमियोंसे कोई प्रतिकारक बिल्कुल अनुपयोगी नहीं हो जाता है तब भी ये अवश्य ही पदार्थकी उपयोगिता सीमित कर देती हैं। कुछ रासायनिक पदार्थ तो धातुमें बन्द ही नहीं किये जा सकते क्योंकि वे धातुपर रासायनिक क्रिया करते हैं और स्वयं परिणत हो जाते हैं। अरुण बानजावील श्यामिद एक ऐसा उदाहरण है। क्योंकि यह लोहे और इस्पात दोनोंपर क्रिया करता है और प्रभाव-हीन हो जाता है, अतः साधारण कंबुओंमें यह सर्पिष गैसके समान बन्द नहीं किया जा सकता, उसके लिए शीशेके कंबु चाहिए। इसी प्रकार कई एक पदार्थ सीसम् लगे हुए कंबुओंमें रक्खे गये। पर ऐसा करनेमें खर्चा भी अधिक पड़ता है और कंबु भारी हो जाते हैं।

गैसका स्थैर्य

स्थैर्य एक और आवश्यक गुण है। यौद्धिक-पदार्थ यदि विस्फोटनकी धमकसे छोड़ते समय हानि न पहुँचानेवाले या कम प्रभाववाले पदार्थोंमें विच्छिन्न

हो जाता हो अथवा चिरकालतक संग्रहीत न रह सके तो व्यर्थ है। उदश्यामिकाम्ल गैस (एच० सी० एन०) को युद्ध-गैस बनानेका अनेकों बार विचार किया गया। परन्तु यह अस्थिर है जहाँ कि सर्पिष गैस इतनी स्थिर गैस है कि १९१९ के बन्द डिब्बेमें आज भी यह बिल्कुल वैसी-की-वैसी ही पायी गयी है।

युद्ध-गैस वायुसे भारी और अजलनशील हो

उदश्यामिकाम्ल गैस और कर्बन-एकौषिद गैस-में एक और अवगुण है। वे वायुसे भारी नहीं हैं। युद्ध-गैस भूतलके समीप ही ठहरी रहनी चाहिए। जो गैस वायुसे हल्की हैं वे वायुमें शीघ्र क्षय हो जायँगी और अपना कार्य पूरा न कर सकेंगी। साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि गैस अजलनशील हो। चोट से, झटके से अथवा दूरपर किसी अग्निकी लौसे ही यह जल न उठे। यदि इसको बनाते समय या एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाते समय इसमें आग लग जाय तो स्वयंको ही भयंकर हानि हो सकती है।

युद्ध-गैस पहिचाननेमें न आवे

इस सब गुणोंके अतिरिक्त एक और गुण है। युद्ध-गैस पहिचाननेमें न आवे। वह रंगहीन, निर्गंध, और निःस्वाद हो। ऐसी कर्बन-एकौषिद गैस है लेकिन सर्पिष गैस यहाँ भी आदर्श पानेकी स्पर्धा करती है। वाष्पावस्थामें यह वर्णसे नहीं पहिचानी जा सकती और तीक्ष्ण गंध रखते हुए भी उसमें यह गुण है कि एक मिनटतक सूँघनेके बाद इससे गंधकी सम्वेदना नहीं होती; घ्राणेन्द्रियको विश्रान्त कर देती है और फिर गंध नहीं आती।

रासायनिक युद्धके रिसर्च-विभागमें केवल युद्ध-गैसकी खोज करना ही एक समस्या नहीं है। वायुयानों-की और गैसोंको छोड़नेके यंत्रादिकी तरफसे भी ध्यान हटाया नहीं जा सकता। ये सब बातें साथ-साथ चलती हैं। राष्ट्रीय-रक्षाके विस्तृत क्षेत्रमें युद्ध गैसका और उससे बचनेके साधनोंका अनुसंधान केवल एक प्रत्यंग है। और सभी अंग-प्रत्यंगोंपर पूर्ण ध्यान दिया जाय तो समस्याएँ इतनी हैं कि युद्ध-गैसकी खोजके लिए केवल थोड़ा समय ही दिया जा सकता है।

आदर्श युद्ध-गैसके लिए उपरोक्त आवश्यकताओं-के विवरणसे स्पष्ट हो गया होगा कि आदर्श सुलभ्य नहीं। लेकिन खोज बराबर जारी रहेगी और नये यौगिकोंकी निस्संदेह खोज होगी। इसलिए इन सब कठिनाइयोंका ध्यान रखते हुए हमें ऐसे कोलाहल मचानेवाले समाचारोंसे कि आधुनिक सभ्यताको समूल नष्टकर देनेवाली एक नई गैस खोज हो गई है कदाचित् उत्तेजित न होना चाहिए।

गैस-मास्क क्या है ?

रासायनिक युद्धके सारे इतिहासमें रक्षा-साधनोंके आविष्कारकी ओर रसायनज्ञका ध्यान उतना ही रहा है जितना यौद्धिक-रासायनिकोंकी खोजकी ओर। और चाहे कितने भी भयंकर और ख़तरेसे भरे रसायन-शालाके अन्वेषण हों मनुष्य बराबर साहससे काम करता रहा है। जैसे ही कोई नई गैस जो शत्रु प्रयोगमें लाता मालूम पड़ जाती तैसे ही रसायनज्ञोंका केवल यही धन्धा रह जाता कि किस-न-किसी प्रकार इसे सोख लेनेका या उसको शिथिल करनेका कोई साधन मिले।

रसायनज्ञोंको बहुत दिनोंसे यह ज्ञात है कि नारियलके कोयलेमें बहुत-सी गैसोंको सोख लेनेका गुण होता है। अतः मुखावरणोंमें भी इसी कोयलेका प्रयोग किया गया। यह विषाक्त गैसोंको सोखनेमें उपयोगी पाया गया।

गैस-मास्कमें अकेले कोयलेसे ही काम नहीं चल सकता। कुछ रासायनिक पदार्थ भी काममें लाये जाते हैं जो इन गैसोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। इन रासायनिक पदार्थोंमें तीन मुख्य हैं—

(१) पोटाश परमैंगनेट कुएँवाली लाल दवाई।

(२) सोडा लाइम या चूना और सोडाका मिश्रण।

(३) निकल धातुके लवण।

गैस मास्क एक प्रकारकी पिटारी है जिसमें नारियलके कोयले और रासायनिक द्रव्योंकी एक-पर-एक कई तहें लगी होती हैं। इसमें श्वास लेनेका ऐसा प्रबन्ध होता है कि वायु-मंडलकी हवा नाकमें घुसनेसे पूर्व इन पदार्थोंके संसर्गमें आती है, और हवाका विषाक्त भाग नष्ट हो जाता है। केवल शुद्ध हवा ही शरीरमें जाती है।

गैस-मास्कमें आँखोंको बचानेके लिए भी पारदर्शक चश्मा लगा रहता है। सैनिक इस चश्मेसे दूरतककी चीज़ें स्पष्टतया देख सकता है। वायुकी गैसें चश्मेके अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकती हैं।

मुखावरण या गैस-मास्क मुखके चारों ओर या केवल शिरपर ही रबड़से खूब जकड़कर बाँध दिया जाता है। नाकके छेद एक क्लिपके द्वारा बन्द कर दिये जाते हैं जिससे श्वास मुख ही द्वारा ली जा सके और केवल वह ही गैस सूँघनेमें आवे जो अप-शोषक सन्दूकमें होकर आती है। यह आवश्यक है कि मुखावरणमें कोई नामको भी छेद ना हो। नहीं तो गैस उसमें होकर घुस जायगी और वह व्यर्थ हो जायगा। सेनाके अग्र भागसे पाँच मीलकी दूरीतकके सैनिकोंको छातीपर चढ़ी पट्टीमें एक मुखावरण लगा हुआ रखना पड़ता है जिससे वे उसे ६ सेकिंडके अन्दर ही पहन लें। सैनिकोंको उनके प्रयोगकी उपयुक्त शिक्षा दी जाती है और वे कुछ ही समयमें मुखावरणके प्रयोगमें दक्ष हो जाते हैं।

जब रक्षाके लिए मुखावरण बन गया तो उधर यह चेष्टा हुई कि विपक्षीको किसी-न-किसी प्रकार मुखावरण को उतार देने या न पहिनने देनेको बाध्य करें। इस अभिप्रायसे अश्रु गैस, छींक गैस आदिकी रचना हुई। साथ-साथ ऐसी गैसोंकी भी खोज हुई जिन्हें सूँघनेसे कै हो जाती है जिसके कारण मास्क उतार देना पड़ता है। और कुछ नहीं तो इसी चालाकीको चलते हैं कि पहिले ऐसे धुएँ और गैसके घने मेघ छोड़ जाते हैं जिनसे कोई विशेष कष्ट या हानि नहीं होती; इससे सैनिक लापरवाह हो मुखावरण उतार देते हैं। लेकिन थोड़ी ही देर बाद धोखेसे एक विषैली और घातक गैसका पीपा ऊपरसे खोल दिया जाता है और सैनिकों-को उसका शिकार बनना पड़ता है।

युद्धमें प्रयुक्त गैसोंकी सूची

कर्बन एकौषिद—	कार्बन मॉनोक्साइड
अरुण बानजार्वील-	ब्रोमबैंज़ाइल-
श्यामिद—	सायनाइड
हर-सिरकोदिव्योज—	क्लोर-एसिटो-फेनोन
सर्षप गैस—	मस्टर्ड गैस
उदश्यामिकाम्ल—	हाइड्रोसायनिक ऐसिड
हर पबलिन—	क्लोरपिक्रिन
फॉसजीन—	फ़ौसजीन
द्विदिव्यीलामिन-	डाइफिनाइलेमिन-
हरसंक्षीणिन—	क्लोर-आरसीन

सोनेके अक्षरोंमें छापना, जिल्द पर

अंडेकी सफ़ेदीको चम्मचसे खूब फेंटकर उसे जिल्द पर उस स्थानमें लगाओ जहाँ छापना हो। सूख जाने पर उसपर सोनेकी पन्नी रक्खो और गरम किये गये पीतलके टाइपसे पन्नीको दबाओ। ये टाइप इसी कामके लिये बिकते हैं। उनको इतना गरम करना चाहिये कि एक बूँद पानी रखने पर वह उबलने लगे। जहाँ-जहाँ पन्नी गरम टाइपसे दबेगी वहाँ-वहाँ वह जिल्दपर चिपक जायगी। इसलिये पीछे कपड़ेसे पोंछनेपर सुनहले अक्षर छपे दिखलाई पड़ेंगे। "दस हज़ार नुसखे से उद्धृत"।

वनस्पतियोंमें राजनैतिक तथा सामाजिक विधान

[ले०— डा० गोरखप्रसादजी]

जानवरोंमें बच्चोंके प्रेमके कारण आचरणके उच्चतम लक्षण उत्पन्न होते हैं। मनुष्यमें भी प्रेम तथा भविष्य-की चिन्ता अनेक सामाजिक सद्गुणोंकी नींव है। उदाहरणार्थ दूसरोंकी भलाईका ख़्याल, सोच-विचारकर काम करना और दूरदर्शिता यहींसे उत्पन्न होते हैं। परन्तु वनस्पतियोंमें यह सिद्धान्त जिस निर्दोष और उच्च शिखिरपर पहुँच गये हैं वहाँतक जानवरों और मनुष्यों-में वे नहीं पहुँच पाये हैं। हम लोगोंका ख़्याल है कि मध्यम श्रेणीके लोगोंका अपना जीवन वीमा करा लेना भविष्यकी चिन्तासे मुक्त होनेकी एक दूरदर्शिता-पूर्ण तैयारी है। और जब कोई कठिन परिश्रमसे धन उपार्जन कर अपने बाल बच्चोंके लिए पढ़ने-लिखने और खाने-पीनेका अच्छा प्रबन्ध कर देता है तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु ये दोनों बातें आदमीको अब सूझी हैं। अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए जब जीवन-बीमेका नाम व निशान भी नहीं था और आज भी यह अपने बचपनमें ही है। नहीं तो आज इतने अनाथ बालक मारे-मारे न फिरते।

पौधोंमें दूरदर्शिता और बुद्धिमानी दोनों लक्षण आश्चर्यजनक रीतिसे विकसित हुए हैं। आजसे करोड़ों वर्ष पहले भी वे आजके-से ही निर्दोष रूपमें पाये जाते थे। एक भी फूलनेवाला पौधा ऐसा नहीं है जो अपने बच्चोंके लिए बीजके रूपमें भोज्य सामग्री न जमाकर देता हो।

पैतृक संपत्तिका उपभोग

यह पैतृक धन जो पौधोंको अपने माता-पितासे मिलता है उतनी ही विभिन्न मात्रामें रहता है जितना मनुष्योंमें। कोई तो लखपतियोंकी संतानके समान खूब माल पाते हैं, जैसे कि नारियलका बच्चा पौधा। जबतक कि पौधेकी जड़ खोपराकी तीन आँखोंमेंसे एकको फोड़कर ज़मीन नहीं पकड़ लेती तबतक खानेके लिए गरीका सफ़ेद नरम पौष्टिक गूदा उसके लिए तैयार रहता है। इसी प्रकार सेम, मटर, बादाम, अख़रोट आदिके बच्चे पौधोंको अच्छी पैत्रिक सम्पत्ति पौष्टिक भोज्य सामग्रीके रूपमें मिलती है जो कि छिलके के बीचमें सावधानीसे सुरक्षित रहती है। इस प्रकार यद्यपि कुछ पौधोंको खानेभरके लिए काफ़ी सामग्री रहती है, दूसरे विचारे ग़रीब पैदा होते हैं। राई, पोस्ता या पीपलको देखिये। इन सबोंको अपने पिता-से इतनी कम सामग्री मिलती है कि वह शीघ्र ख़र्च हो जाती है। बीजमें से पत्तियोंके निकलते ही उनको तुरन्त हरा हो जाना पड़ता है। क्योंकि बिना हरे हुए वे हवासे अपना भोजन नहीं चूस सकतीं। यदि तुरन्त ही पत्तियाँ हरी न हों और पूर्ण रूपसे विकसित पत्तियोंकी तरह कड़ी मेहनत न करने लगें तो ये पौधे अवश्य ही मर जायँगे और इन पेड़ोंकी जाति लुप्त हो जायगी। जब इसपर विचार किया जाता है कि बादाम या अख़रोटके नन्हे पौधोंको कितनी अधिक या कितनी बढ़िया भोज्य सामग्री तबतक खानेके लिए मिलती है जबतक उनकी जड़ें ज़मीनसे खनिज पदार्थ और अपनी पत्तियों द्वारा हवासे कारबन न ले सकें और साथ ही इसपर विचार किया जाता है कि राई या पोस्तको कितनी जल्दी जान बचानेके लिए वही काम करना पड़ता है तो यही ख़्याल आता है कि वनस्पति-राज्यमें भी एक वनस्पति और दूसरेमें उतना ही अन्तर है जितना कि एक मनुष्यके बच्चेमें और दूसरेमें। धनीका बच्चा किस लाड़-प्यारसे पाला जाता है और कुछ बड़ा होते ही अच्छे स्कूलोंमें भेजा जाता है और किसी दुखियेका

लड़का बचपन ही से सड़कोंपर भीख माँगता है! तो भी इन पैतृक धनरहित नन्हे पौधोंकी आश्चर्यजनक जीवन-शक्तिकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। इनके पास बना-बनाया भोजन मुफ़्तका नहीं रहता। इसलिए वे तुरन्त ही ईमानदारीके साथ जन्मते ही मेहनत करना शुरू कर देते हैं। छोटे पौधेकी वृद्धिके लिए बात एक ही है, चाहे उसे मुफ़्तका सामान मिले, चाहे उसकी पत्तियाँ और जड़ें मेहनत करके उसे खिलायें।

उत्तराधिकारका प्रबन्ध

पौधोंका कोई भी विभाग ऐसा नहीं है जहाँ उन्हें राजनैतिक और सामाजिक नियम पूर्ण रूपसे चालू न दिखाई पड़ें। ये नियम ऐसे सच्चे हैं कि इस विज्ञानका विद्यार्थी आश्चर्यमें पड़ जाता है और उसे कई एक बातें मनुष्योंके लिए उपयोगमें लाने योग्य मिलती हैं।

पेड़ोंमें वे आँखें जिनसे वसन्त ऋतुमें पत्तियाँ फूटती हैं किस प्रकार मोटे खोलसे ढकी रहती हैं, जिससे वे जाड़ेमें पालेसे बच जायँ इसे सभी जानते हैं। हमको इससे भी शिक्षा मिलती है। जो वनस्पति-विज्ञान नहीं जानते वे समझते हैं कि पत्तियाँ शुरूसे ही वसन्त ऋतुमें बनती होंगी। परन्तु सच बात यह है कि पुरानी पत्तियोंके गिरनेके पहले ही उनकी उत्तराधिकारी पत्तियाँ बन जाती हैं। पुरानी पत्तियोंने वसन्त और गरमीभर मेहनत केवल इसलिए ही नहीं की थी कि पेड़का तना कुछ मोटा हो जाय। परन्तु इसलिए भी की कि उनकी उत्तराधिकारी पत्तियाँ बनकर उनका स्थान लेनेके लिए तैयार हो जायँ। पत्ती पैदा करनेवाली कलीमें सब सामग्री जमा करके रक्खी रहती है जिससे उचित ऋतुके आनेपर नई पत्तियाँ बन सकें। इस प्रकार केवल वर्त्तमानपर ध्यान देनेके बदले सदा भविष्यपर भी ध्यान रहता है।

पौधे किस प्रकार धन गाड़कर रखते हैं?

कुछ पौधे अपना धन ज़मीनमें गाड़ देते हैं। जो कुछ वे बचाते हैं वह सब पत्तोंकी आँखोंके रूपमें डंठलोंपर नहीं रहता—वह ज़मीनके नीचे कन्दके रूपमें जमा होता है जैसे आलू, शकरकंद हाथीचकका कन्द। यह कन्द पौधोंकी जड़ नहीं है बल्कि तनेकी आँखें है। ये आँखें कुछ-कुछ ज़मीनके ऊपर और कुछ ज़मीनके नीचे, दोनों जगह पैदा होती हैं। ज़मीनके नीचेवाली आँखोंसे नये पौधे पैदा होते हैं। जिन लोगोंने कभी आलू बोया हो वे इसे अच्छी तरह जानते होंगे। उन्हें इसका पता होगा कि एक बड़े आलूको काटकर छोटे-छोटे कई टुकड़े कर देनेपर भी यदि उनको बो दिया जाय तो प्रत्येक टुकड़ेसे नये पौधे पैदा होंगे बशर्ते कि आलूके काटनेमें आँखें न कटने पायें। वस्तुतः ये आँखें ही वे जगह हैं जहाँ नये पौधे पैदा होते हैं। बाक़ी आलू तो उनके लिए भोज्य सामिग्री है। इसीको खाकर आलू ठीक उसी तरह जीता है जैसे बच्चा अपनी माँका दूध पीकर। जब पौधा खुद ज़मीन और हवासे खुराक चूसने लायक हो जाता है तो उसको इसकी ज़रूरत नहीं रहती। मार्केकी बात यह है कि संसारके सबसे सुन्दर पौधे इस प्रकार अपनी भोज्य सामिग्रीको ज़मीनके अन्दर रखते हैं और यह सामग्री या तो अगली फ़सल या नवीन पौधेके लिए सुरक्षित रहती है। लिली, क्रोरियम ट्यूलिप, वगैरह और आरकिडोंकी बहुत-सी जातियाँ इस प्रकार कंदके रूपमें गर्मीभर अपनी सामग्री जमा करती हैं जिससे जाड़ेमें पत्तियोंके मर जानेपर अगली वसन्त ऋतुमें नई फिरसे उत्पन्न हो सकें।

तड़क-भड़कके लिए संग्रह

प्याज़की एक पुत्ती लीजिये और उसे चौड़े मुँहकी बोतलपर रखिये। इस बोतलमें पहले स्वच्छ पानी भर दीजिये जिससे पुत्तीकी जड़ तर रहे। बरतनको अब उजालेमें रखिये जहाँ रोशनी इसको सचेत कर सके। बस पुत्तीको और कुछ नहीं चाहिए, केवल पानी ही की

आवश्यकता है चाहे मिट्टी न भी हो, और पानी चाहे मेंहका पानी हो जिसमें भोज्य पदार्थ कुछ भी घुला नहीं रहता। पौधेसें शीघ्र हरी पत्तियाँ और कुछ समय बाद सुन्दर फूल भी निकल आते हैं। और यह परिवर्तन किया किसने ? केवल प्रकाशने जिससे उस पुत्तीकी माँड़ी प्रकाशकी शक्तिसे बदलकर पौधेके खाने योग्य हो गई और जादूभरा परिवर्तन उत्पन्न हो गया। इन पौधोंमें यह पुत्ती केवल तनेका फूला हुआ रूप है ; यह जड़ नहीं है और न यह आलू-की तरह ज़मीनमें रहनेवाला असली कन्द। हमारे वैज्ञानिक माली लिली और इसी प्रकारके दूसरे पुत्ती-वाले पौधोंसे अधिक सुन्दर फूल पैदा करनेके लिए एक बड़ी विचित्र रीतिका प्रयोग करते हैं। वे हर साल फूलनेके ज़रा पहले पौधेको ऊपरसे काट डालते हैं। परिणाम यह होता है कि पुत्ती अर्थात् फूला हुआ तना और भी मोटा हो जाता है। इस प्रकार प्रति साल पौधा अधिकाधिक माँड़ी जमा करता चलता है और केवल एक सालकी माँड़ीसे उसकी मात्रा कहीं अधिक होनेके कारण जब पौधेको फूलने दिया जाता है तब उसके फूलोंमें असाधारण तड़क-भड़क आ जाती है। इससे तो हमको उन लोगों-की याद आती है जो लोग कभी नाच-तमाशा न देख-कर पैसा इसलिए बचाते हैं कि अपने लड़केकी शादी-में खूब धूम-धामसे बरात निकाल सकें। जाड़ेके दिनोंमें ऐसे पौधोंमें कुछ भी वृद्धि नहीं होती। वसन्त और गरमीभर पौधे खूब मेहनत करके जाड़ेके लिए भी काफ़ी भोजन सामग्री जमा कर लेते हैं और यह अधिकतर कलिका या पुत्ती या कन्दके रूपमें रहता है।

सम्पत्तिका समयोपयोग

हमारे बहुतसे पौधे गरमीमें मर जाते हैं और वर्षा-ऋतुमें वे जी उठते हैं और इसमें वही माँड़ी सहायक होती है जो कन्द आदिके रूपमें ज़मीनके भीतर गड़ी रहती है। इन पौधोंको पता रहता है कि गरमीमें पत्तियाँ जल जाती हैं। इसलिए ज़मीनके भीतर वे अपनी माँड़ीको छिपाये रखते हैं जहाँ गरमीकी धूप उनको जला नहीं सकती।

जंगली गाजर, शलजम और चुकन्दरमें जड़ बहुत मोटी होती है और बाज़ पौधोंमें यह जड़ प्रति साल मोटी होती जाती है क्योंकि प्रति साल खर्चसे कुछ आमदनी ज़्यादा करके ये पौधे अपनी जड़में कुछ माल जमा कर लेते हैं। आधुनिक कृषि-विद्याने इस बातसे लाभ उठाया और जड़ोंमें सामग्री जमा कर लेनेकी शक्ति-को परवर्धित किया है। परिणाम बहुत सन्तोषजनक हुआ है। जैसे जंगली बेर या आमसे पैवंदी बेर या क़लमी आम कहीं अच्छे होते हैं, उसी तरहसे हमारे गाजर, शलजम, मूली वग़ैरह सभी जंगली गाजर आदि-से अच्छे होते हैं और इनकी जड़ोंकी वृद्धि कृत्रिम रीतिसे की गई है।

कुछ पौधे अपने तनोंको ज़मीनमें गाड़ देते हैं। तब उनको गाँठ कहते हैं। हल्दी, अदरक, कैना इसी जातिके हैं।

संग्रह करनेकी विविध रीतियाँ

पेड़ोंकी कन्द और पुत्ती बनानेकी प्रथाके दो भेद हैं। कुछ तो प्याज़की तरह पुत्ती अपने लाभके लिए बना लेते हैं जिससे कि उनकी गति उन छोटे दुर्बल पौधोंकी तरह न हो जो प्रति वर्ष मर जाते हैं। ये पौधे पुत्ती इसलिए बनाते हैं कि जब गरमीमें उनकी पत्तियाँ मर जायँ तो वे जीते रहें। दूसरी जाति लहसुन, हाथीचककी है। ये इतने स्वार्थी नहीं होते—इनकी पुत्तियाँ असलमें ज़मीनके नीचे रहनेवाली पत्तियाँ हैं जहाँ वे जानवरों और अन्य शत्रुओंसे बची रह सकती हैं। प्रत्येक पौधा केवल अपने ही लिए नहीं वरन् अपने उत्तराधिकारियोंके लिए भी भोज्य सामग्री बचा रखता है। कुछ पौधे तो अपने लिए कुछ भी न बचाकर सब कुछ अपने बाल-बच्चोंके लिए ही छोड़ जाते हैं। फिर कुछ पौधे जैसे दूब एक इससे भी बढ़कर रीति प्रयोग करते हैं। वे केवल अपने तनोंको ज़मीनपर फैलाते

चलते हैं। इसमें अधिक मेहनत पौधोंको नहीं करनी पड़ती और न बहुत-सी भोज्य सामग्री जमा करनी पड़ती है। केवल गाँठ (जोड़) ज़रा फूल जाती है ; उसमेंसे नई जड़ें निकल आती हैं, और इस प्रकार एक नया पौधा तैयार हो जाता है।

धैर्यके साथ संपत्तिका संग्रह

लोग समझते हैं कि जमा करनेवाले ख़र्च नहीं कर सकते हैं लेकिन पौधोंमें जमा करनेकी आदत केवल इसीलिए होती है कि ज़रूरत पड़नेपर वे खुलकर ख़र्च कर सकें। इससे उस पौधेको और उस पौधेकी जातिको लाभ होता है। घीकुवाँरकी जातिके पौधे फूलनेसे पहले बरसोंतक बढ़ते रहते हैं और अपनी जड़ोंमें माल इकट्ठा करते रहते हैं। जिस किसीने इन पौधोंको फूलते हुए देखा होगा उसको स्मरण होगा कि ये फूल कितने जल्द निकलते हैं और तैयार होते हैं। इसीसे स्पष्ट है कि इन पौधोंको अत्यंत सावधानी और धैर्यके साथ अपनी शक्तिको बचाकर संचय करना पड़ता है जिससे जब फूलोंके पैदा करनेके लिए यकायक शक्तिकी आवश्यकता पड़े तो वे उसी शक्तिको आसानीसे लगा सकें। इसीसे ये पौधे शीघ्र नहीं फूलते। कहावत भी है कि घीकुवाँर बरसोंमें एक बार फूलता है। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि धीरे-धीरे पौधोंका आकार और रूप आवश्यकतानुसार बदलता रहता है। जिन अंगोंकी विशेष आवश्यकता रहती है वे उत्पन्न हो जाते हैं। जिनकी आवश्यकता नहीं रहती वे मिट जाते हैं। हाँ, इन परिवर्तनोंमें हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। पौधोंकी जाँच करनेमें उनके पुराने रूपोंका कभी पता चल जाता है। ये सब परिवर्तन साधारणतः उन पौधोंकी जातियोंके लाभके लिए ही होते हैं जिससे वे सुरक्षित रह सकें।

बेकार खर्च क्यों करें?

उदाहरणार्थ जरेनियम और इरोडियम जातिके पौधे देखनेमें प्रायः एकसे होते हैं। परन्तु एक फूलमें दस पुंकेसर होते हैं और दूसरेमें पाँच। (पुंकेसर फूलके उस लम्बे अंगको कहते हैं जिसके सिरेपर पराग रहता है) परन्तु इन पाँच पुंकेसरोंके साथ-साथ और भी उपस्थित रहते हैं जो अधूरे और निकम्मे ही रहते हैं। इनपर पराग नहीं रहता। क्या कोई संदेह कर सकता है कि इरोडियम वस्तुतः जरेनियम है जिसके आधे पुंकेसर लुप्त हो गये हैं कदाचित् इसलिए कि वे आवश्यकतासे अधिक थे और इसलिए बेकार थे। बेकार अंगोंके बनानेमें पौधा अपनी ताक़त नष्ट करे यह तो वैसी ही अक़्लमंदी होगी जैसे कोई बोझसे दबा हुआ मनुष्य अपने सिरपर और भी बोझ लादे। फूलोंमें पंखड़ियाँ इसलिए होती हैं कि उनके चटक रङ्गसे कीड़े या पतंगे आकर्षित हों और उनसे फूलोंका पराग ठिकाने पहुँच सके। परन्तु जब कभी आवश्यकता पड़ती है तो ये पंखड़ियाँ आश्चर्यजनक रीतिसे बदल जाती हैं। कभी तो बहुत बड़ी हो जाती हैं और कभी लुप्त हो जाती हैं। पौधोंके राज्यमें कभी-कभी ऐसा भी अवसर आता है कि अक़्लमंदीसे थोड़ा-सा ख़र्च करनेसे कई गुने अधिककी बचत हो जाती है। क्योंकि कंजूसीकी अपेक्षा इससे लाभ अधिक होता है। यह बात ऑरमिडों और लिलियोंमें ख़ास तरहसे देखी जाती है। साधारण फूलोंमें पुटपत्र हरे होते हैं (डंठलसे लगे हुए फूलोंकी जड़के पास पत्तियोंकी तरह जो हरा-हरा भाग होता है उसीको पुटपत्र कहते हैं। परन्तु आरसिडों और लिलियोंमें ये पुटपत्र रंगीन धारीदार और बहुत सुन्दर होते हैं। इन पौधोंमें फूलकी पंखड़ियाँ और पुटपत्र चित्तको आकर्षित करनेमें एक दूसरेके साझीदार होते हैं और इस प्रकारके संयोगसे संसारके सबसे अधिक सुंदर फूल हमें मिलते हैं। यही बात है जिससे इन फूलोंकी बड़ी क़दर होती है।

पौधोंकी चतुराई

उन फूलोंमें जो इस तरह लटक जाते हैं कि उनका मुँह नीचे हो जाता है पुटपत्र या तो बहुत छोटे होते हैं या बहुत बड़े और तारीफ़ यह है कि इन दोनोंका मतलब एक ही होता है। बात यह है कि नीचे मुँह किए हुए फूलोंमें दूरसे पुटपत्र ही दिखलाई पड़ते

हैं। या तो ये इतने छोटे होते हैं कि सुन्दर फूलोंके देखनेमें कोई रुकावट न पड़े या वे रंगीन और खूब बड़े होते हैं जिससे उन्हींको देखकर कीड़े आकर्षित हों और पराग बखेरकर उनकी वृद्धिमें सहायक हों। कभी-कभी जब ये पुटपत्र खूब रंगीन और चित्ताकर्षक होते हैं तो फूलकी असली पंखड़ियाँ लुप्त-सी हो जाती हैं और या तो दिखलाई ही नहीं पड़तीं या वे इन रंगीन पुटपत्रोंके बीच छिपी रहती हैं। 'लार्क स्पर' नामक वार्षिक फूलमें यही बात है। पुटपत्र चटक लाल रङ्गके होते हैं और पंखड़ियाँ नन्हीं-नन्हीं और बेकार होती हैं—वस्तुतः इनकी राजगद्दी छिन गई है।

जिन फूलोंमें पुटपत्र सुन्दर नहीं होते और बहुत छोटे भी नहीं होते वहाँ एक दूसरा ही प्रबंध रहता है। वहाँ फूलोंके खिलते ही पुटपत्र गिर पड़ते हैं जिससे फूलकी सुन्दरता उनसे छिपी न रहे। पॉपी (पोस्ते) में यही बात देखनेमें आती है। पुटपत्र गिर पड़ते हैं और चटक लाल रङ्गका फूल आँखोंके सामने भरपूर रहता है। इसका कोई भी अंग छिपने नहीं पाता।

पौधोंमें मितव्ययता

किफ़ायतशारीका सच्चा नमूना जलधनिया (रैनन्कुलस) जातिके पौधोंसे मिलता है। ये पौधे पानीमें होते हैं। इन पौधोंमें कुछ पत्तियाँ पानीमें होती हैं और कुछ पानीके ऊपर। हवामें कर्बन-द्विओषद भी काफ़ी होता है, इसलिए हवावाली पत्तियाँ बड़ी और साधारण होती हैं परन्तु जो पत्तियाँ पानीके भीतर होती हैं उनमें केवल नसें ही नसें रहती हैं जिससे थोड़े ही कर्बन द्विओषद्से काम चल सके। ये पत्तियाँ हरे तागेके झब्बेकी तरह होती हैं। एक दूसरी जातिके पौधोंमें जलधनिया (यूफॉरबेशी) जैसे दुधिया फूलकी पंखड़ियाँ रहती ही नहीं और इनका काम परिवर्तित पत्तियोंसे चलता है। यह काम किस खूबीसे होता है यह लाल पौइंसीटियामें देखनेमें आता है। लाल पंखड़ियोंवाली पापी भी इतनी ख़ूबसूरत नहीं होती जितनी यह। इसमें फूलके डंठलके पासवाली पत्तियाँ खूब रंगीन और सुन्दर होती हैं। बेगनविलीआ भी इसी रीतिसे चित्ताकर्षक दिखलाई पड़ती है। यह पौधा लोग अपने बाग़ोंमें बहुत बोते हैं क्योंकि इसके लाल फूल बहुत ही मनमोहक होते हैं लेकिन जाँच करनेपर पता चलता है कि इसके फूलमें पंखड़ियाँ नहीं होतीं, केवल रंगीन पत्तियाँ होती हैं जिससे पत्तियोंकी नसें स्पष्ट दिखलाई पड़ें।

इससे यह अभिप्राय नहीं है कि यहाँपर उन बातोंकी सूची दी जाय जो पौधोंके राजनैतिक या सामाजिक जीवनसे सम्बन्ध रखती हैं। मतलब केवल इतना ही है कि उन सिद्धांतोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित हो जो वनस्पति-राज्यमें दिखलाई पड़ते हैं।

ये नियम पत्तियोंमें बड़े सुन्दर रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। ये पत्तियाँ आवश्यकतानुसार बदलकर पंखड़ियाँ, पुंकेसर, योनीनलिका, पुटपत्र, पुट, पतान या काँटे बन जाते हैं। परन्तु पत्तियोंके असली काम अर्थात् पौधोंको भोजन पहुँचानेमें इससे कोई बाधा नहीं होने पाती।

जब पत्तियोंको कोई दूसरा काम करना पड़ता है और असली पत्तियाँ पौधोंमें होती ही नहीं तब पौधोंको कोई दूसरा प्रबंध करना पड़ता है जिससे पत्तियोंका काम हो सके। पत्तियोंका काम किसी-न-किसी प्रकार करना ही पड़ेगा। सवाल यह है कि पत्तियोंके अभावमें कौनसा रंग इस कामको करेगा। पौधोंने पता चलाया है कि सबसे आसान बात यह है कि उसकी शाखें चिपटी हो जायँ और उनमें कर्बनग्राही मुख उत्पन्न हो जाय और उस रंगमें पत्तियोंका साधारण काम सब कर सकें—जैसे कर्बन-द्विओषद गैससे कर्बन अलग करना, हवासे ओस खींचना या पानी इकट्ठा करना।

नागफनी तीक्ष्ण और भयंकर काँटोंसे अपनेको सुशस्त्र रखता है जिससे भूखे-प्यासे जानवर उसके नस और रसदार तनेको न खा जायँ। ये काँटे वस्तुतः पत्तियाँ हैं। परन्तु ज़रूरत पड़नेपर वे अपना असली काम छोड़कर रक्षाका अधिक आवश्यक कार्य अपने

सरपर ले लेते हैं। इसीलिए पत्तियोंका असली काम इसके हरे तनेकी खालसे होता है जिसमें कर्बन-ग्राही मुख उसी प्रकारके होते हैं जैसे पत्तियोंके नीचे-की सतहमें। मतलब यह है कि पत्तियोंका काम पौधे-की समूची बाहरी सतह करती हो। इसी प्रकार ऑरसिडोंमें जो पेड़ोंके छिलकोंपर उगते हैं और जो इस प्रकार प्रकाश, वायु और धूप इतनी ऊँचाईपर चढ़कर पा जाते हैं जहाँ वे अन्य किसी प्रकार पहुँच भी न सकते हों पत्तियाँ बहुत कम होती हैं। परन्तु पत्तियोंकी कमीकी पूर्ति (और जब हम इसपर ध्यान देते हैं कि ऑरसिडोंको बड़े-बड़े फूलोंके उत्पन्न करनेमें कितनी शक्ति लगानी पड़ती होगी तब इस बातकी आवश्यकतामें पूर्ण रीतिसे स्पष्ट हो जायगी) पौधेकी सतहसे होती है यहाँतक कि इसकी हरी जड़ें कर्बन-ग्राही मुखोंसे भरी रहती हैं।

कुछ पौधे वार्षिक होते हैं अर्थात वे एक ही साल-के बाद मर जाते हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि अपनी जातिकी रक्षाके लिए उनको बहुत-सा बीज उत्पन्न करना पड़ता है। यदि वे अपनी रक्षा इस प्रकार न करें तो अन्य पौधोंकी होड़में वे अवश्य ही पिछड़ जायँगे और कुछ दिनोंमें लुप्त हो जायँगे। अधिक संख्याके कारण वे ठीक उसी प्रकार बच जाती हैं जिस प्रकार चूहे और ख़रगोश अपनी जातिकी रक्षाके लिए अपनी सन्तानोत्पत्तिकी आश्चर्यजनक शक्तिपर अव-लम्बित हैं।

रसायनके चमत्कार

(नकली रेशम और रबड़)

[ले०— श्री राधेलाल मेहरोत्रा]

तंतु-उद्योग बहुत-कुछ अंशमें रसायनपर निर्भर है और रसायन-शास्त्रका सबसे बड़ा चमत्कार 'नकली रेशम' है। सन १९१० तक विलायतमें यह नहीं बना था; सन १९२५ में भी कोई ख़ास अच्छे रेशमोंमें इसकी गणना नहीं थी और इसमें दोष कितने ही थे। लेकिन आज एक अद्वितीय नये नमूनेके रूपमें नकली रेशम पूर्णतया अपने पैरोंपर खड़ा है— जिसकी खपत असली रेशमसे कई गुनी और ऊनके करीब आधी है। यह सब कुछ परिवर्तन सन १९३० से ही हुआ है।

नक़ली रेशमकी विशेषता

सब प्राकृतिक रेशोंमें एक दोष यह होता है कि उनके गुण जलवायु, ऋतु, और पैदा करनेवाले जीव-जन्तु या वृक्षके स्वास्थ्यके अनुसार बदलते रहते हैं। और फिर, भेड़की पीठपर उपजे हुए, या मिट्टीसे पैदा हुए या किसी कीड़ेके कते हुए रेशेपर मनुष्यका कोई विशेष वश नहीं। इन दो कारणोंसे प्राकृतिक रेशोंसे केवल थोड़े ही प्रकारका कपड़ा बन सकता है। इसके विपरीत, नकली रेशम वास्तवमें प्रयोगशालाकी एक वस्तु है; इच्छानुसार जैसी चाहें बना सकते हैं, और वह वैसी ही बनी रहती है। इसके तंतु रेशमके रेशोंसे पतले, या वैसे ही, या इससे भारी भी बनाये जा सकते हैं। वे जितने चमकीले या मटैले चाहें हो सकते हैं, लम्बे भी बन सकते हैं और छोटे भी, चिकने भी और खुर-दुरे भी और इच्छा हो तो क्रमानुसार मोटे और पतले भी। लेकिन किसी और रेशेके इतने अधिक रूप-रूपान्तर नहीं होते और साथ-साथ यह बात कि एक रूपसे

दूसरेमें परिवर्तन इतनी सुगमता और वेगसे नहीं होता। इन गुणोंके कारण नकली रेशमसे नाना प्रकारके वस्त्रादि बन सकते हैं।

बुनाईकी वस्तुओंमें नकली रेशम एक प्रधान पदार्थ है— इसे हम सम्भवतः महसूस न करते हों। महीन-से-महीन पारदर्शक मलमलें इसी नकली रेशमकी बनती हैं। इसीके कीमती-से-कीमती वस्त्र मिल सकते हैं क्योंकि और किसी रेशेसे इतनी बढ़िया डिज़ाइनें नहीं बन सकतीं। न्यूयार्क शहरके प्रसिद्ध उत्सवोंमें ९० प्रतिशत गाउन इस रेशमके थे या उनके किसी-न-किसी भागमें यह रेशम लगा था। नकली रेशम अब मनुष्योंके हल्के सूट बनानेमें या कोटके अस्तर लगानेमें काम आता है। इस रेशममें श्रेष्ठ और सर्वाङ्गपूर्ण सूतके सभी आवश्यक गुण विद्यमान हैं और वैज्ञानिककी यह एक गौरवमयी सफलता है। इसका भविष्य वहींपर सीमित है जहाँपर कि वैज्ञानिक अनुसन्धानका क्षेत्र।

जल-अभेद्य वस्त्र

अस्तु, बुनाईके उद्योगमें रसायनका चमत्कार नकली रेशमपर ही नहीं रुक जाता वरन इससे भी आगे बढ़ता है और सभी प्रकारके वस्त्र अब जल-अभेद्य एवं मल-सुरक्षित किये जा सकते हैं अर्थात् न तो उनमें जल ही घुस सकता है और न ऊपर कोई धब्बा ही पड़ सकता है और केवल वस्त्र ही नहीं किन्तु मोजे-टोपे, सूट आदि तथा खिड़कियोंकी चिकों, तम्बुओं, सुजनीकी बाहरी पर्तमें काम आनेवाले रेशम, ऊन और नकली रेशमके रेशे भी। जल-संरक्षक रासायनिक वस्त्रपर एक ही बारमें लगा दिया जाता है जिससे वह वस्त्रका एक अदृश्य गन्धहीन भाग ही हो जाता है और जल, न कि वायु, अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता। मेंहकी बूँदें वस्त्रको बिना भिगोये ही नीचे लुढ़क जाती है।

ऐसे वस्त्र तो बाज़ारमें मिलते ही हैं, या हाल ही में मिलने लगेंगे, जिनपर झुर्रियाँ न पड़ती हों और जो बिना धोबीके दुबारा कलफ (स्टार्च) लगाये ही कलफ लगे हुए-से सतर रहते हैं, या जो रोज़-मर्राके पहिननेमें मुरकाव (क्रीज़) को थामे रहेंगे और ऐसे अज्वलनशील वस्त्र भी जो घरके कामोंमें प्रयुक्त होते हैं। नये-नये रंगोंकी, भिगोनेके द्रव्योंकी, मलहरण और अनेकों उद्योग-संबंधी सहायक पदार्थोंकी तो भरमार है—जिन सबका उद्देश्य वस्त्रके गुण-रूपको सुधारना, उसकी शोभाका, उपादेयताका और आरामका बढ़ाना और साथ-साथ बनानेवाले और प्रयोग करनेवाले दोनोंको सस्ता पड़ना है।

रसायनकी नीति

यहाँ इस नये रसायनकी सर्वव्यापक नीतिका विवरण देना अनुपयुक्त न होगा। नीति है 'थोड़ेके बदलेमें बहुत देना'। यह सिद्धांत प्रत्येक स्थानपर जहाँ यह विज्ञान प्रयुक्त होता है देखनेमें आता है—क्या जूतेका उद्यम, क्या बुनाईका और क्या मोटर गाड़ियोंका। इसका वास्तविक परिणाम यह है कि प्रयोग की जाने योग्य वस्तुओंके रूपमें धनका सम-वितरण हो रहा है।

व्यापारिक घटोतरीके समयमें वस्तुओंके दाम साधारणतया मज़दूरी और लाभका बलिदान कर और प्रायः उनको घटिया बनाकर ही अस्थायी रूपसे कम किये जाते हैं लेकिन रसायन-विज्ञानका उद्देश्य इनके मूल्यको सदाके लिए ही कम कर देना है और कम करते रहनेके साथ-साथ कामके नये-नये साधन भी ढूँढ़ना और मज़दूर तथा मालिक दोनोंको उचित लाभकी व्यवस्था करना है। आज बहुत-सी ऐसी चीज़ें देख पड़ती हैं जो पाँच-सात वर्ष पहिले थीं ही नहीं और यदि थीं भी तो जिन दामोंको मिलती थीं उनसे कहीं कम दामोंमें अब उपलब्ध हैं।

रसायन-शास्त्रने रबड़के उद्योगमें जूते और बुनाईके उद्योगोंसे किसी अंशमें कम परिवर्तन नहीं किया है। मोटरोंकी परीक्षामें ज्ञात हुआ है कि सर्वोत्तम टायर २५००० मीलसे अधिक ही चल सकते हैं—जहाँ महायुद्धके समयके टायर दूने दामोंके और नापमें आधे होते थे और केवल तीन-चार हज़ार मील ही चल सकते थे।

इससे रबड़के टायरोंमें कितना सुधार हो गया है इसका अनुमान भलीभाँति हो सकता है। ऐसा ही सुधार रबड़की बनी दूसरी ३०,००० उपयोग वस्तुओंमें हो गया है। यह सब रसायनज्ञके अथक परिश्रमका फल है।

रबड़की बहुत-सी कमियोंमेंसे एक यह भी है कि इसमें ओषदीकरणकी क्रिया होने लगती है। अपनी प्राकृत अवस्थामें हवामें खुले रहनेपर, और खासकर धूपमें, यह जल्द बिगड़ जाती है जिससे इसका लचीलापन कम हो जाता है। प्रकृतिने लेटेक्स (रबड़का दूध) नामक पदार्थ रबड़के पेड़में रबड़के बूट जूते, टायर, गरम पानीकी बोतलें बनानेके लिए नहीं रक्खा। लेकिन यह पेड़में जीव-जन्तु आदिकी चोटसे कोई घाव हो जाय उसे अच्छा करनेके लिए है। इस प्रकार रबड़ प्रकृतिका सर्वाङ्गपूर्ण पदार्थ है लेकिन मनुष्यने जैसे और अनेकों पदार्थोंको जो प्राकृतिक प्रयोजनोंके लिए संतोषजनक थे अपने कामके लिए ठीक कर लिया है वैसे ही उसे इस रबड़को भी करना है।

अतिप्रसिद्ध रबड़

गुडईयरकी रबड़का गन्धर्कीकरण (वलकैनाइज़) करनेकी अर्थात् गरम करके गंधकके मिलानेकी रीतिसे रबड़की मज़बूती और लचीलापन बढ़ जाता था और यह काफ़ी दिन चलती थी, लेकिन इस क्रियामें तीन-चार घंटे लगते थे। रसायनज्ञने रासायनिक पदार्थोंकी सहायतासे इस कामको थोड़े ही समयमें पूरा करनेकी कोशिश की। अन्तमें अति-उत्प्रेरक (अल्ट्रा-एक्सीलरेटर) पदार्थोंके द्वारा केवल २ मिनटमें ही रबड़का गंधर्कीकरण होने लगा जिसके साथ-साथ इसकी मज़बूती, लचीलापन (स्थिति-स्थापकता) और अधिक न घिसनेकी शक्ति भी पहिलेसे बढ़ जाती है।

प्रति-ओषदीकारक पदार्थोंके उपयोगसे रबड़का जीवन इस कारण और भी बढ़ गया कि ओषदीकरण न हो सकनेसे वह ऐसी नहीं हो पाती कि मुड़नेसे तड़क और चटक जाय। फिर, टायरोंमें जो सूती जालीका अस्तर लगता है वह बढ़िया बनाया गया। पौधेसे जो रबड़ फैक्ट्रीमें पहुँचती थी वह इतनी कड़ी होती थी कि भारी-भारी मशीनोंमें दबाकर लचीली की जाती थी जिससे इसमें और पदार्थ मिलाये जा सकें। ऐसे रासायनिक खोज किये गये जिनके मिलानेसे रबड़का लचीलापन बहुत-कुछ बढ़ जाता है।

आजकल काममें आनेवाली रबड़ पाँच साल पहिलेकी रबड़से कहीं बढ़िया है—लेकिन अब भी इसमें कुछ कमियाँ हैं। जब रबड़ गैसोलीन, तेल, या ग्रीज़के सम्पर्कमें रहती है तो गलने लगती है और इसमें थोड़े-बहुत समयमें ओषदीकरणकी क्रिया होने ही लगती है। मोटरोंमें ही जहाँ इसका बहुत अधिक उपयोग होता है चेष्टा यही होती है कि इसका एक-एक भाग ऐसा हो जिसे, जबतक मोटर चले तबतक, बदलनेकी आवश्यकता न होवे।

नक़ली रबड़ बनानेका प्रयत्न

वर्षों रसायनज्ञोंका यही प्रयत्न रहा कि रबड़के पेड़ बिना ही रबड़ तैयार की जा सके। राष्ट्रों और मनुष्योंने, जिनमें एडीसनका नाम उल्लेखनीय है, रबड़को साधारण पौधे-पत्तियोंसे पानेकी कोशिश की। इन सब चेष्टाओंका एक कारण तो यह था कि रबड़ प्रायः सुदूर-पूर्व देशोंमें ही होती थी—यूनाइटेड स्टेट्स जो संसारकी आधेसे ज्यादा रबड़से काम करता है अपनी माँगकी ९० प्रतिशत पूर्व देशोंसे मँगाता है। दूसरा कारण यह भी था कि रबड़में स्वाभाविक कुछ ऐसी कमियाँ थीं जिनको विज्ञानने किसी हदतक कम तो कर दिया था लेकिन वह पूर्ण रूपसे उन्हें मिटा नहीं सका था।

आखिरकार सन् १९३१ में डूपांटके रसायनज्ञोंने एक ऐसे पदार्थकी रचना कर ही डाली। भाग्यवश यह पदार्थ असली रबड़ नहीं था—रासायनिक रूपसे तो यह रबड़ बिल्कुल था ही नहीं। क्योंकि अगर होता तो इसमें रबड़की सभी कमज़ोरियोंका होना आवश्यक था। यह नया पदार्थ बड़ी जटिल विधियों द्वारा कोयले, चूना-पत्थर और नमकसे बनाया जाता है,

रबड़की तरह दीखता है और रबड़की तरह काममें आता है, लेकिन मामूली रबड़की अपेक्षा इसपर तेल, ग्रीज़, गैसोलीन, तेज़ाब और क्षारीय द्रव्योंकी क्रिया बहुत कम होती है और सूर्यके प्रकाश, ओषजन, गर्मी और समयका कहीं कम असर होता है और इसमें गैस भी कम घुस सकती है। इस नये पदार्थका नाम न्योप्रीन है। इससे अब तरह-तरहकी चीज़ें बनती हैं जिनका रबड़से बनना दुर्लभ था। न्योप्रीन भावमें रबड़से ३½ गुनी तेज़ है लेकिन इससे काम कहीं अधिक निकलता है। उत्तरोत्तर यह सस्ती ही होती जायगी और उद्योग-व्यवसायमें इसका जो भविष्य है उसके देखते अभी इसका प्रचार बहुत कम है।

और भी अनेकों रबड़ जैसे पदार्थ देश-देशमें बने हैं। प्रत्येकमें कोई-न-कोई विशेष गुण है जिससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और ऐसे पदार्थोंकी नई-नई कामकी चीजें बन रही हैं। इनके साथ-साथ रबड़का भी प्रचार बढ़ रहा है। रेलमें रबड़के पहियोंका प्रयोग तो हो ही रहा है। बड़े-बड़े शहरोंमें नाज वगैरःकी गाड़ियोंसे जो शोर होता है उसे कम करनेके लिए अब रबड़के पहियोंका प्रयोग होना कोई दूर भविष्यकी बात नहीं है। थोड़े ही दिनोंमें मोटरोंके ऐसे टायर बनने लगेंगे जो दुगुने और तिगुने समयतक चल सकें।

अनेक रोग नाशक ओषधि

उतरन

(ले०—बा० दलजीतसिंहजी वैद्य, आयुर्वेदीय विश्व-कोषकार)

पर्य्या०—इन्दीवरा, इन्दीवरी, युग्मफला, दीर्घवृंता, दीर्घवृत्त, तमारिणी, पुष्पमञ्जरिका, द्रोणी, करम्भा, (करभा), नलिका व नालिका (ध०नि०; रा०नि०), करंभा कर्कशा, सुगोर्णा, उत्तमा, रणिका (के० नि०), वारुणी, क्रूर वल्ली, फलयुग्मा (द्रव्य र०), अतिवारुणी, रुष्य (?), मंजरी, कर्कश नासिका (गण नि०), फलकंटक (सं०)। उतरण, उतरनकी बेल, उत्रन, सागी (ग) बानि, जूतक (हिं०)। वेलिप परुत्ति, उत्तामणि (ता०)। डीमिया एक्सटेंसा, ऐस्क्लीपियस एकिनेटा (ले०)। जिट्टु पाकु, दुष्टयु चेट्टु, गुरुटि चेट्टु, फुतुपाकु (ते०)। वेलिप् परित्ति (मल०)। हाल कोरतीगे, कुटिंग, जुट्टुवे, तलवारग बल्लि (कना०)। छागुल बाटी (बं०)। उतरनी, उतरंडी (मरा०)। नागल दुधेलि (गु०)। उत्तरणी (कों०)। खरयल, दूधवेल (सिंध)। ओट्ट, सियाली, करियल (पं०)।

परिचय-ज्ञापिका संज्ञाएँ—युग्मफल, फलयुग्मा, दीर्घवृंता, पुष्पमंजरिका, कर्कशा, मंजरी, कर्कश नासिका और फलकंटक।

अर्क वर्ग

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष।

वानस्पतिक वर्णन—एक दीर्घ वृक्षाश्रयी लता जो प्रायः भारतवर्षके सभी उष्ण-प्रधान प्रदेशोंमें पाई जाती है। इसकी पत्ती वृत्ताकार (दीर्घवृत्त), हृदयाकार, अनीदार, लोमश, झिल्लीयुक्त, आधारपर अथवा वृंतके पास गोलाईमें अवसित और नीचेकी ओर मसृण होती है। ये विविध आकारकी १ से २ इंच वा अधिक व्यासकी होती हैं। पत्रवृंत दीर्घ होता है, इसीलिए इसे संस्कृतमें "दीर्घवृंता" कहते हैं। पत्रकी डंटी क्षीण एवं श्वेत होती है। पौधेसे एक प्रकारकी अप्रिय

मूषकवत् गंध आती है और स्वाद किंचित तिक्त और कुछ-कुछ हल्लासकारक होता है। सूखी पत्तीको ताल-के नीचे रखकर देखनेपर उसके ऊर्द्ध एवं अधः दोनों पृष्ठ हरे मखमली ज्ञात होते हैं। इसी कारण इसकी एक संस्कृत संज्ञा "कर्कशा" भी है। ये ह्रस्व श्वेत रोइयोंसे व्याप्त होते हैं। इसमें मंद श्वेत फूलोंके घौद लगते हैं। झुमकों वा मंजरियोंके कारण ही इसे संस्कृतमें "पुष्प मंजरिका" भी कहा है। फली वक्र-चंचु-की तरह और कोमल काँटोंसे व्याप्त होती है। इसीलिए इसे संस्कृतमें "कर्कश नासिका", "फलकंटक" तथा "फलयुग्म" आदि नामोंसे अभिहित किया गया है। फली प्रायः जोड़े-जोड़े पाई जाती हैं। परंतु किसी-किसीमें अकेली फली भी देखनेमें आई है। फलके भीतर मदारकी तरह धूआ निकलता है। निघंटु-शिरोमणिकारने उक्त ग्रंथकी पाद टिप्पणीमें वामवर्त्ता और दक्षिणवर्त्ता भेदसे इसे दो प्रकारका लिखा है। इसकी जड़ पतली, तंतुल एवं अत्यंत तिक्त होती है। पुष्प और पत्र दोनों विट्गंधि होते हैं। लताके सर्वाङ्गमें दूध निकलता है। इसकी हिंदी संज्ञा 'उतरन' तथा मराठी संज्ञाएँ संस्कृत 'उत्तर' से व्युत्पन्न हैं। ऐंस्ली इसकी लेटिन संज्ञा सैनेम्पियम एक्सटेंडस एस्क्लेपियस एकिनेटा लिखते हैं। रॉक्सबर्ग नामसे इसका उल्लेख करते हैं।

प्रयोगांश—पुष्पमंजरी, पत्र, फल, जड़ और जड़-की छाल।

रासायनिक-संघटन—इसकी पत्तीमें ताम्रकूट तथा आटरूषककी तरह इन्दीवरीन नामक एक प्रकारका क्षारोद होता है, जो ईथर, मद्यसार और जलमें विलेय होता है, पर इसके रवे नहीं बनते। सूखी एवं चूर्णीकृत पत्ती द्वारा १५·३३% की मात्रामें भस्म उपलब्ध होती है। जड़में भी इसके समान ही गुणधर्मका एक क्षारोद पाया जाता है।

प्रभाव—यह अतिशय क्षोभक है। पत्र और पुष्प वामक, श्लेष्मा-निःसारक और कृमिघ्न हैं। गुण-धर्ममें यह सकमूनियाके समान होती है।

औषध-निर्माण—पत्र-क्वाथ, मात्रा-२॥ तो०; पत्र-स्वरस, मात्रा—१ ड्राम; जड़ वा जड़की छालका चूर्ण, मात्रा-२॥ से ५ रत्ती; तैल तथा पुल्टिस।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—इन्दीवरी (उतरन) तिक्त, शीतल, पित्त तथा व्रण और कृमिका नाश करने-वाली है। (रा० नि० गुड़० ३ व०)

पापका नाश करनेवाली, योनिदोषका निवारण करनेवाली, वातनाशक तथा व्रणका रोपण करनेवाली है। (गण-नि०)

यह मूत्र कृच्छ्रनाशक, दद्रुनाशक, व्रणशोधक तथा गर्भ, योनि एवं वात रोगोंका नाश करनेवाली है। (कैयदेव)

यह कफ-नाशक, वातहारक और सूजनको उतारने-वाली है। (द्रव्यनामक-नि०)

नव्यमत

उतरनकी पत्ती और फूल विट्गंधि होते हैं। देशी लोग, वामक तथा श्लेष्मा-निस्सारक रूपसे मुख्यतः बाल रोगोंमें, इनका व्यवहार करते हैं। इसके तनेसे तंतु प्राप्त होता है। बकरे इसकी पत्तियाँ खाते हैं।

ऐन्सली लिखते हैं,—"बालकोंके पेटके कीड़े मारनेके लिए उन्हें इसकी पत्तीका काढ़ा दिया जाता है। इसे तीन टेबिल-स्पून-फुलसे अधिक न देना चाहिए। इसकी पत्तीका स्वरस श्वासकी दृष्टफल औषध है।

राक्सबर्ग एसक्लीपियस एकिनेटा नामसे इसका उल्लेख करते हैं; पर इसके गुणके विषयमें वे खामोश है। दक्षिण कोंकण और गोआमें इसकी पत्तीका स्वरस (चूनेमें मिलाकर) आमवात-जन्य शोथोंपर लगाया जाता है।"

डॉक्टर वी० एवर्स शिशुओंके लिए इसे मूल्यवान वामक मानते हैं। वह कहते हैं—"पानीसे प्रक्षालित उतरनकी पत्तियों और तुलसीकी पत्तियोंको हथेलीपर मलकर स्वरस निचोड़ प्रयोगमें लाये। यह सोत्तेज्य वामक है।"

डॉक्टर पी० एस० मूतू स्वामी सोंठ मिले हुए इसकी पत्तीके स्वरसका आमवातमें उपयोगी होनेका उल्लेख करते हैं। वह यह भी लिखते हैं कि आमवात, राजोरोध और कष्टरजमें प्रयुक्त एक विरेचक औषधीय तैलके योगमें भी यह पड़ती है और आमवातिक अवस्थाओंमें १ से २ ड्रामकी मात्रामें गोदुग्धके साथ इसकी जड़की छालका जुलाब दिया जाता है। (फा० इं० २ य० पृ० ४४२-३ डिमक)

नादकर्णी—इसकी ताजी पत्तीका कल्क, उत्तेजक पुल्टिस रूपसे, मारात्मक विस्फोटक विशेष—फोड़ेपर लगाया जाता है और उसमें उपयोगी सिद्ध होता है। (इं० मे० मे० पृ० २८९)

आर० एन० चोपरा—वामक तथा कफ निःसारक रूपसे विशेषकर बम्बई प्रांतमें इस पौधेका प्रचुर प्रयोग हो चुका है। २॥ रत्तीसे ५ रत्तीकी मात्रामें इसकी पत्तियोंका चूर्ण अथवा इसकी पत्तियोंका काढ़ा २॥ तो० से ५ तो० की मात्रामें परमोत्कृष्ट श्लेष्मा-निःसारक वा कासहर औषध है। इसके कासहर प्रभावकी सहायतार्थ इसके काढ़ेमें, कभी-कभी तुलसी-पत्र-स्वरस और मधुका योग देते हैं। (इं० ड्र० इं० पृ० ५७६)

प्रतिश्याय वा कासमें बनफशाकी जगह काढ़ेमें इसका फूल डालनेसे बहुत लाभ होता है।

—लेखक।

मार्कोनी—रेडियोका जन्मदाता

[ले०—श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०]

गत २० जुलाईको इटलीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक मार्कोनी हमारे बीचसे उठ गए—विज्ञान जगतका एक अमूल्य रत्न सदाके लिए खो गया। आज सारे संसारमें मर्कोनीकी मृत्युका शोक छाया हुआ है।

मार्कोनी उन इने-गिने वैज्ञानिकोंमेंसे थे, जो जीवन-पर्य्यन्त इस गुत्थीको सुलझानेमें लगे रहते हैं, कि विज्ञानके गूढ़ सिद्धान्तोंका प्रयोग जनताके हितके लिए किस प्रकार किया जाय। विज्ञानको प्रयोगशालाकी तंग दीवारोंसे बाहर लानेका श्रेय सब किसी वैज्ञानिकको प्राप्त नहीं होता।

आज घर-घर हमें रेडियोके सेट दिखाई पड़ते हैं। लन्दनमें सम्राट बोल रहे हैं, और बेतारकी सहायतासे हज़ारों मील दूर आरामसे कमरेमें बैठे हम उनकी वक्तृता सुन रहे हैं—सैकड़ों मील दूर समुद्रमें अकेला जहाज़ चला जा रहा है, और हम किनारेपर बैठे हुए, बेतारके सहारे यात्रियोंको ख़बर भेज रहे हैं—आधुनिक सभ्यताको यह अनुपम देन मार्कोनीसे ही मिली है। मानव जाति उसके लिए मार्कोनीके प्रति सदैव ऋणी रहेगी। ज़रा गौर कीजिए, यदि रेडियो विभाग दो दिनके लिए भी बन्द हो जाय, तो आजका सभ्य संसार कितना विचलित हो उठेगा? समाचार-पत्रोंमें विदेशी ख़बरोंका छपना मुश्किल हो जायगा। जहाज़ोंका रास्ता संकटमय हो जायगा—ख़तरेके समय समुद्रतटके लोगोंसे सहायता प्राप्त करनेके लिए रेडियोके सिवाय अन्य किसी उपायका प्रयोग ही नहीं हो सकता है। वही हाल वायुयानोंका भी होगा। अँधेरी रातमें वायुयानका सञ्चालक पूरे इतमीनानके साथ अपने निर्दिष्ट स्थानकी ओर उड़ता चला जाता है—कुहरा या बादल आया, तो फौरन रेडियो द्वारा किसी भी हवाई अड्डेसे अपने वायुयानकी स्थिति दरयाफ़्त कर ली। या किसी उठती हुई आँधी या तूफ़ानके सम्बन्धमें रेडियो द्वारा चेतावनी पाकर अपना रास्ता ही बदल दिया। हमारे दैनिक जीवनमें रेडियोका समावेश उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है—कारोबारमें

भी रेडियोका प्रयोग अब अधिक मात्रामें होने लगा है। यह सही है कि रेडियोके मूल सिद्धान्त विज्ञान जगतको पहलेसे ही मालूम थे। मैक्सवेलने १८६४ ई० में ही गणितकी सहायतासे यह साबित कर दिखाया था कि ऐसी विद्युत तरंगें उत्पन्न की जा सकती हैं, जो बिना किसी तारके सहारे एक स्थानसे दूसरे स्थानको जा सकेंगी। कुछ वर्षोंके उपरान्त एक दूसरे वैज्ञानिक हर्ट्ज़ने उन विद्युत तरंगोंको प्रयोग-शालामें उत्पन्न भी किया और प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित भी किया कि ये तरंगें बिना किसी तारके एक स्थानसे दूसरेको जा सकती है।

हर्ट्ज़के उस सफल प्रयोगसे संसारके सभी वैज्ञानिक प्रभावित हुए। सर जगदीशचन्द्र बोसने भी इस सम्बन्धमें प्रयोग किये थे, उनके अनुसन्धान इस क्षेत्रमें काफ़ी महत्वपूर्ण साबित हुए। २० वर्षके नवयुवक मार्कोनीने सोचा कि यदि ये तरंगें बिना किसी जरियेके एक स्थानसे दूसरेको जा सकती हैं, तो उनके द्वारा हम संकेत भी भेज सकते हैं। घर ही पर इस प्रश्नके हल करनेमें वह जुट गया। मार्कोनीकी लगन गजब की थी। पूरे वर्ष भी नहीं बीत पाये थे कि उसे सफलताकी क्षीण झलक दिखाई पड़ी। यंत्रोंकी खुट-खुटमें रात-की-रात बीत जाती, किन्तु मार्कोनीको इसकी खबर न होती। आखिर दिसम्बरकी एक बर्फीली रातमें उस उत्साही नवयुवकने असम्भवको सम्भव कर दिखाया—३० फीटकी दूरीपर रक्खी हुई घण्टीको जिसका और कहींसे सम्बन्ध न था, रेडियोकी तरंगोंसे उसने बजा दिया। बगलके कमरेमें मार्कोनी-की माँ सोई हुई थी वह उठकर आई, और इस प्रकार घण्टेको बजते हुए देखकर चिल्ला उठी 'यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है।' और फिर तुरन्त ही वापस जाकर सो गई—इस महान आविष्कारके उपलक्षमें बधाईके ये ही दो शब्द उसे मिले थे सो भी ऐसे व्यक्तिसे, जो उसके प्रयोगोंको खाक-पत्थर भी समझ न सकता था। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस घण्टीवाले प्रयोगके बादसे विज्ञानका एक नया युग आरम्भ होता है। यह बात १८९४ ई० की है।

कुछ ही दिनों उपरान्त उसने बेतारके ज़रिये एक मील दूर सम्वाद भेजकर लोगोंको चकित कर दिया। १८९६ में वह इङ्गलैण्ड चला गया और वहीं उसने अपने इस नये आविष्कारका पेटेन्ट भी कराया। इसी दौरानमें उसने बेतारके प्रयोगोंका प्रदर्शन डाक विभाग-के उच्चपदाधिकारियोंके सामने लन्दनके हेड पोस्ट आफ़िसकी छतपर किया। फिर तो बड़ी सरगर्मीसे उस क्षेत्रमें काम होने लगा। इटलीके सम्राटने उसे अपने प्रयोगोंके प्रदर्शनके लिए आमंत्रित किया। वहाँ जाकर उसने समुद्र-तटसे जहाजोंपर बेतारका संकेत भेजा। फिर रेडियोके प्रचारके लिए लन्दनमें मार्कोनी रेडियो कम्पनीकी स्थापना हुई और बेतारके सम्बन्धमें नित्य नये अनुसन्धान होने लगे। इङ्गलिश चैनेलके पार बेतारके सम्वाद भेजनेमें भी सफलता मिली। इसी बीच दक्षिण अफ्रीकाका युद्ध छिड़ा, और वहीं पहली बार युद्ध-क्षेत्रमें बेतारका प्रयोग किया गया। इस तरह रेडियोके लिए नित्य ही नये-नये क्षेत्र खुलने लगे। मार्कोनीका उत्साह बढ़ता ही गया। आखिर उसने घोषणा कर ही डाली कि रेडियो द्वारा अटलांटिक महासागरके एक छोरसे दूसरे छोरको संवाद भेजा जा सकता है। साधारण जनताकी बात जाने दीजिए, जिम्मेदार वैज्ञानिकोंने भी मार्कोनीकी इस घोषणाका मखौल उड़ाया. लेकिन मार्कोनी ज़रा भी हतोत्साह न हुआ। दिसम्बर १९०१ में इङ्गलैण्डके कार्नवाल प्रान्त-में उसने रेडियोकी तरंगें भेजनेके लिए एक छोटी-सी प्रयोगशाला बनायी और न्यूफ़ाउडलैण्डके एक निर्जन प्रान्त सेंट जानमें उस रेडियो संवादको ग्रहण करनेका प्रबन्ध किया। तूफ़ान और वर्षाके मारे नाकमें दम था, मानो प्रकृति स्वयं मार्कोनीके मार्गमें अड़चनें डाल रही थी। न्युफ़ाउण्डलैण्डमें उसके यंत्र कई बार आँधीमें उखड़ गये। आखिर उसने एक ऊँची पतंग आकाशमें उड़ाई। उस पतंगकी पूँछमें १५० फीट लम्बा तार लटक रहा था। उसी लम्बे तारके जरिये

कार्नवालसे भेजी गई रेडियोकी तरंगोंको ग्रहण करनेमें मार्कोनी सफल हुआ। यह घटना १२ दिसम्बर १९०१ की है—इसी दिन मानो रेडियोका परिचय जनसाधारणसे हुआ, और कुछ ही दिनों उपरान्त सारा भूमण्डल रेडियोके जालसे आच्छादित हो गया। अब धीरे-धीरे लोग यह अनुभव करने लगे कि 'बेतार' समाजके लिए बड़े कामकी वस्तु हो सकती है। लन्दनके 'टाइम्स' के अनुरोधसे रेडियो-समाचार-वितरण एजेन्सी स्थापित की गई। ब्रॉड-कास्टिंगका आरम्भ भी इसी समय हुआ—संगीत और व्याख्यान ब्रॉड-कास्ट किये जाने लगे। किन्तु अब भी निराशावादियोंकी कमी न थी। इङ्लैण्डके डाक-विभागके सर्वोच्च पदाधिकारीने १९२० में कहा था कि रेडियो ऐसे महत्वपूर्ण आविष्कारका प्रयोग विनोद साधनके लिए करना ठीक नहीं है! यह सब कुछ होते हुए भी स्थान-स्थानपर ब्रॉड-कास्टिंग स्टेशन बन गये—रेडियोके सेट भी लोगोंमें काफी प्रिय हो गये, रेडियो अब जनसाधारणकी वस्तु बन गई।

मार्कोनी इन दिनों भी बराबर नये-नये आविष्कारोंमें लगा रहा। १९२५ में उसने एक ऐसी तरकीब ईजाद की जिससे रेडियोका संवाद किसी एक खास दिशामें भेजा जा सकता है। यह नई ईजाद बड़ी कारगर साबित हुई। इसके द्वारा समुद्रमें रास्ता भटक जानेवाले जहाजोंको बड़ी सहायता मिली। इस सम्बन्धमें एक बहुत ही मजेदार प्रयोग किया गया था। बंदरगाहमें घुसते समय एक तंग रास्तेसे गुजरकर एक जहाजको आना था। जहाजके चालककी आँखोंपर पट्टी बाँध दी गई थी—किन्तु रेडियोकी सहायतासे वह बिना किसी दुर्घटनाके बन्दरगाहमें पहुँच आया।

रेडियोका प्रयोग ऐसे-ऐसे कामोंके लिए होने लगा, जिसका हमें स्वप्नमें भी ध्यान नहीं आया था। १९३० की घटना है, जिनोआमें बैठे-बैठे मार्कोनीने रेडियोका बटन दबाया और (आस्ट्रेलियाकी) सिडनीकी प्रदर्शिनीमें बिजलीके बल्ब जल उठे—इस तरह घर बैठे-बैठे मार्कोनीने हजारों मील दूरकी प्रदर्शिनीका उद्घाटन किया।

ऐसा जान पड़ता है मार्कोनी विश्राम करना जानता ही न था—एक समस्या पूरी नहीं हुई कि दूसरीमें लग गया। रेडियोकी शक्तिशाली तरंगोंके पीछे भी उसने वर्षों अनुसन्धान किया। १९३४ में उसने रेडियोके ऐसे यंत्र तैयार किये जो जहाज़ोंके या वायुयानोंके एक दूसरेके निकट आ जानेपर एलार्मकी घण्टी बजाने लगते हैं, अतः उनकी वजहसे जहाज़ोंके एक दूसरेसे लड़नेका भय कम हो गया। १९३५ में मार्कोनीने और भी शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न कीं। उनकी सहायतासे मोटर और वायुयानके इंजन बन्द किये जा सकते हैं।

मार्कोनी समयकी प्रगतिके संग चलना तो जानता ही था, वरन् वह कल्पना शक्तिके बलपर भविष्यमें भी प्रायः प्रवेश कर जाता था। टेलिविज़न (दूर-दर्शन) अभी अपने शैशवावस्थासे होकर गुजर रहा है, पर इसका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है, ऐसा मार्कोनीका दृढ़ विश्वास था। वह प्रायः कहा करता था कि वह दिन आने ही वाला है जब हज़ारों मील दूर बैठे हुए लोग हमसे न केवल बातचीत ही कर सकेंगे वरन वे हमें देख भी सकेंगे। इस प्रकार रेडियो और टेलिविज़न दोनों एक दूसरेकी कमीको पूरी कर सकेंगे। जिस प्रकार जादूगर एक ही थैली से तरह-तरहकी वस्तुएँ निकालकर हमें हैरतमें डाल देता है, उसी प्रकार मार्कोनीने भी रेडियोके तरह-तरहके प्रयोग हमें बताये।

प्रायः ऐसा होता है कि उच्च कोटिके वैज्ञानिकों की कीर्त्ति जनसाधारणके बीच नहीं फैल पाती, क्योंकि जनता उनके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको समझ नहीं सकती। किन्तु मार्कोनीके आविष्कार जनता और सरकार दोनोंके लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुए, और यही कारण है कि आपको सब कहीं सम्मान मिला।

इस सिलसिलेमें एक घटनाका जिक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा। अमेरिकाकी एक कम्पनीने इस बातकी घोषणा १९०५ सन् में की थी कि रेडियोका आविष्कार उस कम्पनीने किया है, मार्कोनीने नहीं।

फलस्वरूप मामला अदालतमें पहुँचा और वहाँ मार्कोनी-के पक्षमें ही फैसला हुआ।

इटलीकी सरकारने आपकी खूब प्रतिष्ठा की। १९०५ में आप इटलीकी बड़ी व्यवस्थापक सभा 'सीनेट' के मेम्बर चुन लिये गये ; इसके पश्चात् इन्हें मार्किसकी उपाधि भी मिली। इसी वर्ष संसारका सबसे बड़ा पारितोषिक 'नोबेल प्राइज़' भी मार्कोनीको रेडियोके आविष्कारके उपलक्षमें मिला। इटलीके युद्ध-विभागमें भी आपके आविष्कारकी काफ़ी प्रशंसा हुई, और इसी कारण जर्मनकी बड़ी लड़ाईके उपरान्त, संधि कांफ्रेंसमें आप इटलीके प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये थे।

इटलीके डिक्टेटर मुसोलिनीने मार्कोनीकी अंत्येष्टि क्रियामें भाग लिया। संसारके सभी सभ्य देशोंमें मार्कोनीकी स्मृतिमें सभाएँ की गईं। विशेषकर रेडियो-विभागने तो इस सिलसिलेमें थोड़े समयके लिए अपना प्रोग्राम स्थगित कर दिया था।

संसारके महान पुरुष किसी ख़ास एक मुल्ककी सम्पत्ति नहीं हुआ करते। उन्हें तो सारा मानव समुदाय अपना करके मानता है। उनकी कीर्ति, उनकी प्रतिष्ठा राष्ट्रीयताके तंग दायरेमें सीमित नहीं रहती।

बच्चोंकी एक सामान्य बीमारी—कुक्कुर खाँसी

(लेखक—श्री रामेश आयुर्वेदालङ्कार, गुरुकुल विश्वविद्यायल काँगड़ी, सहारनपुर)

यह रोग कैसे फैलता है ?

यह रोग एक व्यक्तिसे दूसरेमें फैलनेवाला है। रोगाक्रान्त व्यक्तिकी पुस्तकों, कपड़ों तथा अन्य उसके संसर्गमें आनेवाली वस्तुओंसे फैल सकता है। इसका जीवाणु मुख्यतया थूकमें पाया जाता है। प्रथम और द्वितीय दन्तोद्गमके समय प्रायः अधिकतर बच्चे इससे आक्रान्त होते है। परन्तु ध्यान न देनेसे बालक और युवा भी आक्रान्त हो सकते हैं। युवाओंमें यह बीमारी बहुत ही कम होती है। २ वर्षकी आयुसे पूर्व कुक्कुर खाँसी आम तौरसे बहुत अधिक होती है। बहुत छोटे शिशुओंको भी हो सकती है। ६ वर्ष-के बाद इसका बाहुल्य घटता जाता है। बारह वर्ष बाद इसका आक्रमण प्रायः नहीं होता।

बॉर्डेट और गेनगौका दृढ़ विश्वास है कि इस रोगका कारण बेसीलस परटुनिस नामक एक रोगाणु है। यह सूक्ष्म अण्डाकार शलाकाके रूपमें होता है। इसका आकार लगभग इन्फ्लूएँजा कीटाणुओं जैसा ही है। यह ग्राम-ऋणात्मक है। रक्त और अगर मिश्रित माध्यममें यह स्वतन्त्रतापूर्वक वृद्धि करता है। यह कृमि बीमारीसे उठे हुए रोगियोंके रक्त द्रवसे अधः-क्षेपित किया जा सकता है। रोगके प्रथम सप्ताहमें यह थूकमें बहुतायतसे पाया जाता है।

प्रथम सप्ताहमें कुक्कुर खाँसी बहुत अधिक फैलती है। धीरे-धीरे इसकी प्रसारक शक्ति घटती जाती है। प्रसार मुख्यतया वसन्त और ग्रीष्म ऋतुके प्रारम्भमें होता है और खसरेके साथ-साथ तो इसका प्रसार बहुत अधिक होता है।

यह एक विशिष्ट प्रकारकी छूतकी बीमारी है जो कि दौरेमें उठनेवाली विशेष खाँसी और खोखीके साथ-साथ श्वास मार्गके अंगोंको आक्रान्त करती है। यह संक्रामक रूपमें प्रकट होती है। इसमें ऐंठनके साथ खाँसीके वेग समय-समयपर होते रहते हैं। उग्र रूपमें हो तो वमन भी साथमें होता है। यह बहुत भयंकर रोग नहीं; परन्तु इसका समाप्ति-काल बहुत दीर्घ होनेसे लम्बे खिंचे हुए अन्तः श्वासमें विशेष आक्षेप युक्त खाँसीकी समाप्ति और छोटे १ से ८ वर्ष तकके बच्चोंको आक्रान्त

करने आदि कारणोंसे बच्चोंके लिए यह रोग कष्टदायक होता है।

रोगके लक्षण

रोगीके सीधा संसर्गसे इस रोगका प्रसार जल्दी होता है। रोगका अभिवृद्धि काल ७ से १४ दिन है। एक आक्रमण—कुछ अपवादोंको छोड़कर—भविष्यके लिए स्थाई तौरपर रोग प्रतिरोधक शक्ति पैदा कर देता है। ऐंठन-युक्त खाँसी होनेका कारण स्नायु संस्थानका प्रभावित होना है, सम्भवतः यह विष-प्रभावके परिणाम स्वरूप हो। मृत-देह-परीक्षा (पोस्ट मोर्टम) से ज्ञात हुआ है कि श्वास प्रणाली और फुप्फुसका श्लैष्मिक शोथ तथा अन्य उपद्रव भी पाये जा सकते हैं। श्वेताणुओंकी पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। प्रति घन मिलीमीटरमें १५००० से २०००० तक ये अणु पाये जाते हैं। लसीकाणु मुख्यतया बड़े होते हैं।

रोगका समय ४ अवस्थाओंमें विभक्त किया जा सकता है:—

(क) रोगाभिवृद्धि काल—इसमें किसी प्रकारके चिह्न प्रकट रूपमें नहीं आते।

(ख) रोगकी प्रारम्भिक श्लैष्मिक अवस्था

(ग) रोगकी उद्वर्त अवस्था।

(घ) रोगकी अन्तिम अवस्था अथवा साध्यावस्था

प्रारम्भिक श्लैष्मिक अवस्थामें साधारण जुकामके साथ-साथ छींकें आना, नाक बहना, आँखोंसे पानी निकलना, खाँसी और हलके-हलके ज्वरके लक्षण होते हैं। रोगके सहसा होनेपर तापमान शीघ्रता से १०० से १०२ डिग्रीतक पहुँच जाता है। उपर्युक्त लक्षण ७ से १० दिन तक रहते हैं। रोगकी इस अवस्थाकी उद्वर्त दशामें परिवर्तित हो जानेमें, जिसमें कि खाँसी अपने विशिष्ट गुणको प्राप्त होती है, २ दिनसे ३ या ४ सप्ताहका समय भी लग सकता है। बहुत छोटे बच्चोंमें यह समय कम-से-कम होता है। कुछ रोगियोंमें वास्तविक खोखी कभी भी सुननेमें नहीं आती, परन्तु प्रकट रूपमें अकारणही खाँसीके समयसमयपर उठनेवाले दौरे, श्वास काठिन्य, चेहरेका नीला पड़ जाना और वमनसे निदान स्पष्ट हो जाता है।

उद्वर्त अवस्थामें पूर्वोक्त श्लैष्मिक लक्षण कम हो जाते हैं परन्तु खाँसी बढ़ जाती है विशेषकर रात्रिमें या किसी प्रकारकी उत्तेजनाके दबाव पड़नेपर। वास्तविक कुकुर खाँसीके दौरे स्पष्ट हो जाते हैं। एक दौरेमें थोड़े-से समयमें छोटी-छोटी खाँसियोंकी एक श्रृंखला या दम बाहर निकलनेके लगभग १५ या अधिक प्रयत्न किये जाते हैं। फिर विशिष्ट गुणयुक्त खोखीके साथ एक गहरा लम्बा अन्तः श्वास होता है। ये छोटी-छोटी खाँसियाँ इतनी जल्दी-जल्दी उठती हैं कि रोगीको अन्दर श्वास लेनेका समय भी नहीं मिलता। अन्तमें लम्बी चीखके साथ श्वास गहरा अन्दर जाता है और रोगीको कुछ आराम प्रतीत होता है। दीर्घ अन्तःश्वाससे उत्पन्न चीखको ही खोखी कहते हैं। फिर छोटी-छोटी खाँसियोंकी दूसरी बारीके साथ दूसरी खोखी होती है; इस प्रकार ३, ४ बार हो चुकनेपर श्लेष्माका एक छोटा-सी गोली बाहर निकल आती है या प्रायः वमन हो जाता है। भोजनके बाद शीघ्र ही दौरा उठे तो वमनकी अधिक सम्भावना रहती है और वमनके साथ चिपचिपा श्लेष्माका कुछ परिभाग निकलता है। यह वमन पूर्णतया बलात् है। इससे पूर्व जी मचलाना अगर कोई लक्षण नहीं प्रतीत होते और न आदि क्षुधापर यही इसका कुछ असर पड़ता है, वास्तव में बच्चे वमन द्वारा निकले हुए भोजनके खाली स्थानकी पूर्तिके लिए और भोजन माँगते हैं।

तीव्र खाँसीमें रोगी पूर्णतया निस्सहाय होता है। जब दौरा बहुत ज़ोरका उठता है तो कुछ उग्र लक्षण भी प्रकट हो सकते हैं जैसे रक्त-स्राव, व्रण हो जाना, फुप्फुसका निश्चेष्ट होना आदि। घातक श्वासावरोध बहुत कम देखा जाता है।

दौरेमें चेहरा नीला जामुनी-सा सूजन युक्त, आँखें लाल और चक्षु गोलक आगे बाहर निकल आते हैं। दौरा आधेसे ३ या ४ मिनटतक रहता है। यदि

वेग बहुत जल्दी-जल्दी हो रहे हों तो चेहरे और गर्दनकी (शोफ़) ओडीमाके साथ-साथ सायनोसिस भी हो सकता है। शिर और ग्रीवाकी शिराएँ रंगमें नीली और फूल जाती हैं। इस प्रकारके दौरे २४ घन्टेमें ४ से ८० तक हो सकते हैं। ग्लोटिसके ऐंठनके कारण आंशिक रूपमें बन्द हो जानेसे खोखी होती है।

एक तीव्र दौरेके बाद बच्चा बुरी तरह थका हुआ और परेशान मालूम होता है परन्तु शीघ्र ही अपनी सामान्य अवस्थाको फिर प्राप्तकर खेल-कूदमें लग जाता है। दो दौरोंके बीचके अन्तरमें रोगके साधारणतया कोई शारीरिक चिह्न प्रकट रूपमें नहीं मालूम होते जिससे बच्चा रुग्ण कहा जा सके। ऐसी अवस्थामें नीमायरके इस नियमका ध्यान रखना अच्छा होगा—"यदि किसी बच्चेको तीव्र लम्बी उठनेवाली खाँसीके साथ-साथ वमन भी हो जाता हो तो कुक्कुर खाँसीका सन्देह कर चिकित्सा करें।"

पहली खोखी सुननेके समयसे या वेगके प्रथम आक्रमण हो जानेके बाद लगभग एक सप्ताहतक रोगके अधिक भयंकर रूपमें प्रकट हो जानेकी आशा की जाती है। इसके बाद रोग भिन्न-भिन्न कष्टदायक अवस्थाओंमें उसे ६ सप्ताहोंतक घेरे रहता है फिर साध्यावस्था प्रारम्भ होती है। श्वास बाहर निकलते हुए जो ऐंठन होती है उसमेंटकोरनेका शब्द ठीक-ठीक नहीं होता है। जो दौरेमें किसी भी समय छातीके ऊपर सुना जा सकता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वास्तविक चीख या खोखी भिन्न-भिन्न प्रकारसे होती है। बहुत छोटे बच्चोंमें तो यह प्रायः नहीं ही होती। वेगोंकी संख्याके अनुपातमें साध्यासाध्यकी भयंकरता समझनी चाहिए।

रोगकी साध्यावस्था

दौरोंकी संख्या तथा उग्रतामें धीरे-धीरे कमी होनेसे यह अवस्था स्पष्ट प्रकट होती है। रोग ६ सप्ताहसे २ मासतक रहता है। रोगके बाद पुनः धीरे-धीरे पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है। यह समय कई महीनोंसे भी अधिक लम्बा खिंच जाता है। परन्तु पहली खोखी होनेके ५ सप्ताह बाद रोगीसे बीमारी फैलनेका भय नहीं रहता। रोगसे छुटकारा पानेके बादकी निर्बलावस्थामें क्षय होनेकी क्षमता अधिक बढ़ जाती है। रोगकी साध्यावस्थामें या बादकी निर्बलावस्थामें निम्न उपद्रव हो सकते हैं—

(१) ब्रोंकाइटिस—इस अवस्थामें साधारणतया यह कुछ अंशोंमें हो ही जाया करता है। कई बार यह रोगके आरंभमें भी होता देखा गया है। इस उपद्रवकी सावधानीसे चिकित्सा करनी चाहिए।

(२) ब्रोंको-निमोनिया—सम्भावतः सब उपद्रवोंमें सबसे भयंकर है। फेफड़ोंमें चिरस्थायी शोथ हो जाता है। यह धीरे-धीरे फिब्रोसिसमें परिणत हो जाती है और फेफड़ोंकी स्थायी रूपसे हानि हो जाती है।

(३) श्वासावरोध—दौरेमें बहुत छोटोंमें आंशिक श्वासावरोध अकस्मात् हो जाता है। वास्तविक श्वासावरोध होनेका भी इस आयुमें अधिक झुकाव होता है।

(४) आक्षेप।

(५) किसी छोटी-सी रक्त-वाहिनीके फट जानेसे अकस्मात् नासारक्त-स्राव, आँखके सफेद भागपर गहरे लाल रंगके धब्बे।

(६) सबकुटेनस एम्फ़सेमा—वायु-कोष्ठोंके फट जानेसे कभी-कभी हो जाता है।

(७) मस्तिष्कका निश्चेष्ट होना—मस्तिष्कमें रक्तस्राव होने (बहुत ही कम) से देखनेमें आता है।

उपद्रवोंसे रहित रोगी इस बीमारीमें पूर्णतया स्वस्थ हो जाता है। बहुत छोटे या सुकुमार बच्चोंको यह बीमारी अधिक तंग करती है। एक तेज़ दौरेमें वातनाड़ियोंकी थकानके कारण ठीक तरह नींद न आनेसे और बार-बार वमन होनेसे उचित पोषणकी कमीके कारण बच्चेका स्वास्थ्य बहुत गिर जाता है और वह बहुत दुर्बल प्रतीत होता है।

रोगनिदान और चिकित्सा

प्रारम्भिक श्लैष्मिक अवस्था निदानमें कठिन है। परन्तु लसीकाणुओंकी शीघ्रतासे होती हुई वृद्धि निदान-

में सहायक होती है। लसीकाणुओंकी संख्या लगभग ६० प्रतिशततक हो जाती है। इस रोगकी चिकित्सा दो प्रकारकी है। पहली तो वह जिसमें कुकुर खाँसीका होना आरंभमें ही रोक दिया जाय और दूसरी वह, यदि यह खाँसी हो जाय तो उपचार द्वारा इसका निवारण किया जाय। रोग फैलनेके आरम्भिक दिनोंसे ही कुकुर खाँसीके बीमारोंसे पृथक रहनेमें विशेष ध्यान रखना चाहिए विशेषकर छोटे बालकों और नाजुक बच्चोंको छूतकी सम्भावनासे ही रक्षा करनी चाहिए। रोगग्रस्त व्यक्तिसे बच्चोंको पृथक रखनेमें असावधानी दिखाना और बच्चोंको इस रोगका शिकार होने देना एक प्रकारका पाप है। यह ऐसा रोग नहीं है जैसा कि साधारणतया समझा जाता है कि यह हलका-सा रोग बचपनमें हो ही जाया करता है, परन्तु इसके विपरीत यह बचपनकी अत्यन्त घातक बीमारियोंमेंसे एक है।

इस रोगकी चिकित्सा कई प्रकारसे की गई है, परन्तु अबतक कोई ऐसी दवा नहीं ईजाद हुई जो निश्चित रूपसे वेग-कालको छोटा कर सके। चिकित्सक अधिक-से-अधिक यही कर सकता है कि दौरेके कष्टोंको जितना हो सके हलका करे और उपद्रवोंको शान्त करे।

पहली अवस्था (प्रारम्भिक श्लैष्मिक अवस्था) में फेफड़ोंकी दशापर सावधानीसे ध्यान रखना आवश्यक है। यदि इनमें ब्रोंकाइटिस (वायु प्रणालीकी सूजन) की ओर प्रवृत्ति हो तो इन्हें बलवान् बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। वमन द्वारा पोषणके बिगड़ जानेके समयको ध्यानमें रखते हुए भोजनके समय आदिमें कुछ परिवर्तन कर देना चाहिए।

ताज़ी हवाका महत्व

ज्वर, थकान या किसी उपद्रवके होनेपर भी बच्चेको बिस्तरमें लेटनेकी आवश्यकता नहीं होती। श्लैष्मिक अवस्थाके बाद ऋतुके अनुसार खुली वायुमें हलका व्यायाम करना चाहिए। सर्दियोंमें ठण्डी और तेज़ बहती हुई वायुसे बचना चाहिए। ग्रीष्म ऋतुमें यदि भयंकर उपद्रव विद्यमान न हों तो खुली हवामें ही रखना चाहिए। कमरेमें वायुका आवागमन पर्याप्त हो। ताज़ी और शुद्ध वायुका महत्व रोगकी तीव्रावस्थामें ही नहीं परन्तु रोग की चतुर्थावस्था जिस समय कि रोगी अच्छा हो रहा हो होता है और रोगके बादकी निर्बलावस्थामें भी। देखनेमें आता है कि शहरमें रहनेवाले बच्चोंमें यह रोग अधिक उग्र रूपमें होता है और बहुत लम्बा समय लेता है। फेफड़ेका स्थायी तौरपर नाश भी उन्हीं बच्चोंमें होता है जिन्हें धूलरहित शुद्ध ताज़ी वायुमें साँस लेनेका अवसर नहीं मिलता।

रोगके बादकी निर्बलतामें समुद्रके पासके प्रदेशों या शुष्क पर्वतीय वायु मण्डलमें रहना लाभकर होता है, विशेषतः उन अवस्थाओंमें जब कि फुफ्फुस-सम्बन्धी उपद्रव भी हों।

दौरोंकी अवस्थामें वेगोंको बढ़ानेके कारण स्वरूप वातिक निर्बलताको कम करनेके प्रयत्न करने चाहिए। अनुचित उत्तेजना, अधिक थकान और गरिष्ठ भोजनोंसे बचानेका पूरा ध्यान रखना चाहिए।

इस रोगके कष्टको कैसे कम करें ?

वेगोंको हलका करने, वमनकी प्रवृत्तिको कम करने और निद्राके उचित समयकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे शामक औषधोंका प्रयोग किया जाता है। एण्टीपायरिन और सोडियम ब्रोमाइड (सैन्धक अरुणिद) दोनोंका सम्मिलित प्रयोग रोगकी प्रसिद्ध औषध है। ८ मासके बच्चेके लिए चाय पीनेकी चम्मचभर कृमिरहित स्रवित जलमें एण्टीपायरिन ½ ग्रेन और सोडियम ब्रोमाइड २ ग्रेन डालकर प्रति २ घंटे बाद या २४ घण्टेमें ६ मात्राएँ पिलायें। १८ मासके बच्चेके लिए एण्टीपायरिन १ से १½ ग्रेन और सोडियम ब्रोमाइड ३ ग्रेन। इसी प्रकार आगे आयुके अनुसार सावधानीसे मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

एण्टीपायरिनके प्रतिनिधि स्वरूप बेलोडोना टिंक्चर लिया जा सकता है क्योंकि बच्चे इसे अच्छी तरह सहन कर सकते हैं। इसे कुछ अधिक मात्रामें देनेकी

आवश्यकता होती है इसका प्रयोग सावधानीसे चिकित्सकके संरक्षणमें ही करना चाहिए। चिकित्सकके संरक्षणमें रहते हुए अधिक शक्तिशाली क्लोरल, ब्रोमोफार्म आदि उद्वर्तहर औषधें दी जा सकती हैं।

कुछ विद्वान् बच्चेकी आयुके प्रति एक वर्ष पीछे १ से ३ ग्रेनकी मात्रामें प्रति ४ घण्टे बाद कुनीनका प्रयोग करनेका परामर्श देते हैं। वे गलेमें रिसोर्सिनके दो प्रतिशतक घोल लगाने आदिकी सलाह भी देते हैं। इधर कुछ दिनोंसे बेनज़ाइल बेनज़ोएट देना अधिक लाभकर पाया गया है। इसका मद्यमें २० प्रतिशत घोल बनाते हैं और आयु एवं रोगकी उग्रताके अनुसार ३ से ४० बूँदें तक दिनमें ३-४ बार देते हैं। इस रोगमें भिन्न-भिन्न विद्वानोंसे प्रशंसित औषधोंकी संख्यासे प्रतीत होता है कि इसकी कोई विशेष फलकर औषध नहीं है। दौरोंमें उद्वर्तहर औषधका भी थोड़ा ही असर होता है, परंतु ये औषधें बहुत अधिक मात्रामें दी जानी चाहिए रोगीके कमरेमें क्रिओज़ोट, कार्बोलिक अम्ल या गन्धसाम्ल (सल्फ्यूरस एसिड) आदिकी वाष्प देना प्रायः लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कुकुर खाँसीको रोकने और चिकित्साके लिए पिछले वर्षोंसे एक वैक्सीन आविष्कृत हुई है। यह इस रोगके तथा उपद्रवोंको उत्पन्न करनेवाले कृमि समूहोंके मृत कृमियोंसे बनाई गई है। यह चिकित्सा-क्रम बहुत आशाप्रद है।

छातीकी मालिश

सरसोंका तैल या ओलाइव आयल, कपूर तैल या तारपीनके तैलसे छातीकी प्रतिदिन मालिश की जानी चाहिए। ब्रोंकाइटिसको रोकनेमें यह निस्सन्देह सहायक होती है। इसलिए भी इस प्रक्रियाको बन्द नहीं करना चाहिए।

भोजन या पथ्य

जितना सम्भव हो भोजनकी नियमिततापर ध्यान रक्खें। वमन द्वारा नष्ट हुए भोजनकी पूर्तिके लिए और भोजन देना तथा अगले भोजनके समयका पहलेसे ही विचार कर लेना आवश्यक है। हलका और पचनेवाला भोजन देना चाहिए। भात या निशस्तावाले भोजन और मीठे पदार्थ जहाँतक हो सके न दें। दूध और फटे दूधका पानी देना अच्छा होगा।

अन्य बातें

रोगीको निश्चित रूपसे कृमि-प्रभावरहित करना कठिन होता है क्योंकि रोगका विशिष्ट चिह्न खोखी कभी-कभी अनियमित रूपसे महीनोंतक बना रहता है। परन्तु साधारणतया यह समझा जाता है कि रोगके आरम्भ कालसे छूतके प्रभाव नष्ट होनेमें ६ सप्ताहसे कम समय नहीं लगता। रोगके बादकी निर्बलावस्था यदि अधिक दिनोंतक बनी रहे तो वायु परिवर्तन, मछलीका तैल और ईयरटनका सिरप आदिके लिए रोगीको सलाह दी जा सकती है।

भारी नोषजनकी नई खोज

[ले०—श्री शिवप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०]

भारी पानी

अभी लगभग ४ वर्षकी ही बात है कि प्रोफ़ेसर यूरेने साधारण पानीमेंसे कुछ ऐसे पानीको पृथक् किया था जो पहले पानीकी अपेक्षा अधिक भारी था। इसका नाम 'भारी पानी' रक्खा गया। पानी उदजन और ओषजनके संयोगसे बनता है। साधारण पानीमें जो उदजन है उसे ठीक दुगुने भारका उदजन भारी पानीमें है। साधारण पानीका अणुभार १८ है और भारी पानीका २०। यह भारी पानी साधारण पानीके कोई ३००० भागमें एक भाग है। इतनी थोड़ी मात्रा

का पृथक् करना बड़ी कठिनाईकी बात थी, और कठिनाई इसलिए और भी अधिक थी कि दोनों पानियोंके रासायनिक गुण एकसे ही हैं।

दो प्रकारके नोषजन

जिस प्रकार उदजनके दो भेद मालूम हुए हैं, उसी प्रकार नोषजन या नाइट्रोजनके भी दो भेदोंका पता चला था। सन् १९३५ में कोलम्बिया विश्वविद्यालयके रसायन विभागके प्रोफेसर डा० एच्० सी० यूरेने उदजनके भारी रूपको जिसको डाइट्रोन भी कहते हैं अलग कर लेनेके पश्चात् ही यह कहा था कि नोषजनके दोनों रूपोंको भी रासायनिक क्रिया द्वारा अलग किये जा सकनेकी सम्भावना है। इनके अलग करनेमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि दोनों प्रकारके रूपोंके अणुभारमें केवल एकका अन्तर है अर्थात् भारका बढ़ाव कुल ७·१% ही है जब कि उदजनके दोनों रूपोंमें दूनेका अंतर था। इस नोषजनको जिसका परमाणुभार १५ है उदजनके आधारपर 'भारी नोषजन' कहते हैं। साधारण या हलके नोषजनका परमाणुभार १४ है। इन दोनों नोषजनोंके रासायनिक और भौतिक गुण एक ही समान होनेसे दोनोंको अलग करनेका कार्य और दुस्तर हो गया। अभी हाल ही में डा० यूरे इनको अलग-अलग करनेमें सफल हुए हैं।

नोषजनका महत्त्व

जीवनमें नोषजनका कार्य बड़े महत्त्वका है। प्रोटीनवाले पदार्थों जैसे गेहूँ, दूध, आदिमें, जिनपर जीवन अवलम्बित है, नोषजनकी मात्रा कुछ-न-कुछ अवश्य होती है। यह हमारे मस्तिष्कके रसमें, शरीरके एक-एक कोष्ठके केन्द्रमें वर्तमान है। प्रोटोप्लाज़्मका मुख्य अंग होनेपर भी इसकी प्रकृतिका पूरा पता नहीं लग सका है। अब आशा की जाती है कि भारी नोषजनके मालूम हो जानेपर नोषजनकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंपर प्रकाश डाला जा सकेगा।

क्रोमेटिक जो कि वंशवृद्धिको नियमित करता है, जो कि प्रत्येक कोष्ठमें व्याप्त है, जिसके कारण पुत्र अपने माता पिताके सदृश ही होगा, एक प्रकारका प्रोटीन है और उसमें नोषजनका बहुत बड़ा भाग है। अतएव भारी नोषजनसे यह आशा की जाती है कि वंश-वृद्धिके सम्बन्धमें भविष्यमें बहुत कुछ जाना जा सकेगा और साथ ही साथ वृद्धावस्थाका आना, मस्तिष्कके विकास आदि जीवन-संबन्धी रहस्योंपर भी प्रकाश पड़ सकेगा।

बनस्पति जगत्में भी नोषजनका उतना ही महत्व है जितना प्राणि जगत्में। पर्णहरिन् जो कि सूर्य्यके प्रकाशकी सहायतासे पृथ्वीसे पानी व नोषेत और हवासे कर्बन द्विओषिद लेकर अन्न, फल और फूल बनाता है उसका भी नोषजन एक अंश है।

भारी नोषजन कैसे मिला

इस नये नोषजनको जिसका परमाणुभार १५ है अलग करनेके लिए इसके अन्वेषक प्रोफेसर यूरेने एक बहुत सरल यंत्र बनाया है।

एक इस्पातकी नलीमें जिसका व्यास ६ इंच और ऊँचाई ३५ फुट होती है इस्पातके १२०० गोल-गोल पत्तर टाँगे जाते हैं। ऊपरसे इन पत्तरोंपर अमोनियम गन्धेतका घोल डाल दिया जाता है जो धीरे-धीरे नीचे टपकता है। यह अमोनियम गन्धेत नोषजन, उदजन, गन्धक और ओषजनसे मिलकर बना एक यौगिक है। साधारण अमोनियम गन्धेतमें दोनों प्रकारके नोषजन संयुक्त होनेकी संभावना होगी। या यह कहिये कि हमारी मामूली अमोनियम गन्धेत दो प्रकारके यौगिकोंका मिश्रण है। कुछमें हल्का नोषजन है और कुछमें भारी। अतः इसके घोलमें भी दोनों प्रकारके नोषजन होते हैं। नलीके नीचे क्षारके घोलके संसर्गसे रासायनिक क्रिया द्वारा अमोनियम गन्धेतसे नोषजन अमोनियाके रूपमें अलग किया जाता है। इस अलग किये हुए अमोनियाका एक भाग अमोनियम गन्धेतके घोलमें घुला रह जाता है और बाकी भाग नलीमें ऊपरकी ओर उठता है। यह ऊपर उठनेवाला भाग नीचे टपकते हुए अमोनिया गन्धेतके घोलमें घुल-

कर अमोनियम गन्धेतके अमोनिया भागको अलग कर देता है। यह देखा गया है कि १४ परमाणुभारवाले नोषजनसे बने हुए अमोनियाकी प्रकृति गैस रूपमें रहनेकी है और १५ परमाणुभारवाले नोषजनसे बने हुए अमोनियाकी प्रकृति घोलमें रहनेकी है इसलिए फल यह होता है कि नलीमें नीचे एकत्रित अमोनिया गन्धेतके घोलमें १५ वाले नोषजनसे बने अमोनिया अणुओंकी मात्रा धीरे-धीरे अधिक होती जाती है। इस घोलमें घुले हुए अमोनिया (१५ वाले नोषजन-से बने) में २½% नोषजन निकलता है।

कैसे जानें कि यह भारी नोषजन है ?

इस यंत्र द्वारा प्रति दिन ½ पाइण्ट भारी नोषजन निकाला जा सकता है। इस भारी नोषजनकी उपस्थिति और मात्रा जाननेके लिए मात्रा चित्र लेखक (मास स्पेक्ट्रोग्राफ़) का प्रयोग करते हैं। इसके लिए ऋणाणुओंसे संघर्षित करके परमाणुओंको एक शक्तिशाली चुम्बकसे अलग कर देते हैं और तब यंत्र द्वारा उनको देखते हैं। इस यंत्र द्वारा १/१०,००,००,००० भागका पता लगाया जा सकता है यदि नो$_{१४}$ नो$_{१५}$ की निष्पत्तिमें १ प्रतिशतका भी अंतर हो तो भी इस बातका ठीक पता लग जाता है। इसी प्रकार अगर भारमें १/३,००,००० का भी अंतर हो तो पता चल सकता है।

भारी नोषजनसे जीवन-संबंधी प्रयोग

ज्यों ही यूरे महाशयने भारी नोषजनको अलग कर लिया त्यों ही कोलम्बिया विश्वविद्यालयके जीव-रसायन विभागके प्रोफ़ेसर रूडोफ शोनहाइमर और उनके साथी डा० डेविड रिटेनबर्गने भारी नोष-जनसे ऊपर लिखी जीवन सम्बन्धी बातोंपर प्रकाश डालनेके लिए प्रयोग आरम्भ कर दिया है। इन लोगों-ने भारी नोषजनका 'सूचक' (इण्डिकेटर) की तरह उपयोग किया है। साथ ही साथ इस बातके पता लगानेका प्रयत्न भी किया है कि शरीरमें किस तरह छोटे-छोटे अमिनो-अम्लोंके अणुओंसे प्रोटीनके बड़े-बड़े अणु बनते हैं।

डा० शोनहाइमरने भारी नोषजनसे मधुन (ग्लाइसिन) को संश्लेषित किया और फिर उसे बानजाविकाम्ल—जो भोजनको सुरक्षित रखनेके लिए प्रयोगमें लाया जाता है—से संयुक्त करके उन्होंने अश्वमूत्रिकाम्ल (हिप्यूरिक एसिड) बनाया। इस तरहसे संश्लेषित किये हुए अश्वमूत्रिकाम्लको चूहोंको खिलाया। जब इन चूहोंके मूत्रमें इस अश्वमूत्रिकाम्ल निकला तो उसकी जाँच की। उन्हें उसमें भारी नोषजन मिला। उन्होंने उसके आधारपर यह निश्चय किया कि अश्वमूत्रिकाम्ल शरीरमें प्रवेशकर रक्तमें होता हुआ गुर्दों द्वारा बाहर निकला है। इस तरहसे भारी नोषजन शरीरमें पहली बार प्रवेश हुआ।

लाइसीन और अश्वमूत्रिकाम्लका सम्बन्ध

डा० रूडोफ साहबने जीव-रसायनकी एक विशेष समस्यापर भी प्रकाश डाला है। वह यह है कि हर एक कोष्ठमें बानजाविकाम्ल एक मादक द्रव्यके रूपमें अलग हो जाता है जो शरीरसे बाहर अश्वमूत्रिकाम्ल-के रूपमें आता है। इस अश्वमूत्रिकाम्लको बनानेके लिए प्रोटोप्लाज़्म स्वयं एक ग्लाइसीन (मधुन) वाले प्रोटीन अणुमें परिवर्तित होता है जिससे ग्लाइसीन और बानजाविकाम्ल मिलकर अश्वमूत्रिकाम्ल बनाते हैं या प्रोटोप्लाज़्म जो मुक्त ग्लाइसीन अणु वर्तमान हों उनका उपयोग करता है। इसका ठीक-ठीक पता लगाने-के लिए शरीरमें बानजाविकाम्ल और १५ वाले नोषजन-से बने हुए ग्लाइसीनके अणु अलग-अलग सुई द्वारा प्रविष्ट किये गये और गुर्दे द्वारा निकले अश्वमूत्रिकाम्ल-की परीक्षा की गई। जब अश्वमूत्रिकाम्लमें भारी नोषजन जो ग्लाइसीनके अणुमें था मिला तब यह निश्चय हो गया कि शरीरमें ग्लाइसीन सीधे बानजावि-काम्लसे मिलकर अश्वमूत्रिकाम्ल बनाता है—किसी ग्लाइसीनवाले प्रोटीनके अमिनो अम्लसे मिलनेकी आव-श्यकता नहीं है।

विटेमिन-बीमें भारी नोषजन

हम जानते हैं कि विटेमिन-बी जो कि बेरीबेरी रोधक विटेमिन कहलाता है उसमें नोषजन होता है। इस विटेमिनका जो बहुत ही कम मात्रामें हमारे भोजनमें रहता है ठीक-ठीक कार्य क्या है इसका पता लग जानेकी अब सम्भावना है। इतना ही नहीं यह भी आशा की जाती है कि स्नायु संस्थानका ठीक-ठीक कार्य क्या है यह भी ज्ञात हो जायगा। छोटे-छोटे कीटाणु क्लोवर इत्यादि पेड़ोंकी जड़ोंमें हमारे भोजनके लिए हवा या पृथ्वीके नोषजनको नोषितके रूपमें परिवर्तित करते हैं। ये कीटाणु भी विटेमिन-बीसे शक्ति ग्रहण करते हैं।

जिस प्रकार डा० यूरे साहबने भारी उद्‌जनके द्वारा यह पता लगाया था कि प्राणी चर्बीको किस प्रकार पचाते हैं और तैलसे चर्बी एवं आवश्यकता पड़नेपर चर्बीसे तैल किस प्रकार बनता है, उसी प्रकार हमारे इस विश्वासको कि शरीरमें पदार्थ संचित रहते हैं, भारी उद्‌जन और भारी नोषजनका प्रयोग कर गलत सिद्ध किया है। कुछ समय बाद संचित पदार्थ की जगह नया पदार्थ आ जाता है।

इस भारी नोषजनकी और प्रकृतियोंका जैसे विषता, इत्यादिका पता लगाना रह गया है। सम्भव है कि भारी नोषजनसे नई-नई औषधें बनें जो कि हल्के नोषजनसे बनी हुई औषधोंसे कम विषैली और अधिक शक्तिशाली हों, जिनका प्रभाव हृदयपर अधिक पड़े, या कीटाणुनाशक या सम्मोहक अधिक हों।

यह भी सम्भव है कि भारी नोषजनसे बने हुए विटेमिन-बीका भी प्रभाव हल्के नोषजनवाले विटेमिन-बीसे अधिक हो। भारी नोषजनको निकले अभी दिन कितने हुए हैं? देखना है कि आगे इसके क्या-क्या उपयोग होते हैं।

छुआछूत और रोग

[ले०— श्री स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

बीमारियाँ क्यों होती हैं? इनकी उत्पत्तिका वास्तविक कारण क्या है? किस तरह एक व्यक्ति बीमार हुआ? इन बातोंकी स्थितिको बहुत कम चिकित्सक समझनेकी चेष्टा करते हैं। किसी यूनानी या आयुर्वेदिक पद्धतिसे रोग समझना और बात है, रोगके वास्तविक कारणको प्रयोगोंसे जानना दूसरी बात है। कई चिकित्सक इस बातका अभिमान करने लगते हैं कि यदि हमने अपनी पद्धतिसे रोग नहीं समझा या रोगके सम्बन्धमें हमारा निदान ठीक नहीं हुआ तो रोगीको हमारी औषधसे लाभ न होना चाहिए (यदि, हमने ठीक समझा है तो हमारा चिकित्सासे अवश्य लाभ होगा। इस प्रकारका अभिमान भरा तर्क वास्तवमें उनकी रोग-सम्बन्धी जानकारीका क्रियात्मक प्रमाण नहीं, सैद्धान्तिक चाहे हो। क्योंकि हम देखते हैं कि अनेक योग हमारे ग्रन्थोंमें ऐसे हैं जिनको एक निश्चित लक्षणवाले रोगोंपर देनेसे लाभ होता ही है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि हमारा रोग-सम्बन्धी ज्ञान ठीक है। रोगके कारणको जानना और बात है, किसी विशेष लक्षणयुक्त रोगोंकी किसी औषध-प्रभावसे दूर कर देना दूसरी बात है।

खान-पान ही सब रोगोंका कारण नहीं

हम किसीके फोड़ा-फुन्सी निकलता देखकर कह देते हैं कि इसका रक्त खराब हो गया। पित्त-कोपसे रक्तविदग्ध हो गया। ज्वर हो तो खान, पान, ऋतु दोषसे दोषोंका प्रकोप मान लेते हैं। खाँसीको देख-

कर कहने लग जाते हैं कि इसने खटाई, अचार वगैरह कोई ऐसी वस्तुएँ खाई हैं जिससे कफ कुपित हो गया है। रोगोंके सम्बन्धमें इस तरह हम अनुमान लगा लेते हैं या सिद्धान्तसे मान लेते हैं। किन्तु वास्तवमें इनके कारणोंको ढूँढ़ा जाय तो इस सैद्धान्तिक निदान और प्रायोगिक ज्ञानमें काफ़ी अन्तर मिलता है। इस समयके अनुसन्धान अनेक रोगोंके कारणोंपर हमें ऐसे स्थानकी ओर ले जाते हैं जिसका पूर्व कालमें गुमान भी न था।

स्वास्थ्यके भयंकर शत्रु—जीवाणु या कीटाणु

इस समयके अनुसन्धानोंसे पता लगता है कि अनेक भयंकर रोगोंके कारण खान, पान, ऋतु-दोष और शारीरिक दोष नहीं हैं प्रत्युत एकाएक रोग-कारण बाहरसे आकर शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। उनकी वृद्धिसे निरोग शरीर रोगी हो जाता है और महीनों उस व्यथासे व्यथित रहता है। रोगोंके इन मूल कारणोंको सजीव जगत्के वे सूक्ष्मतम प्राणी कहते हैं जिनको हमारी आँखें देख नहीं सकतीं। इनको इस समय जीवाणु और कीटाणुके नामसे भी पुकारते हैं। ये अदृश्य जगत्के जीव सजीव जगतमें उसी तरह भरे हुए हैं जिस तरह खाली स्थानोंमें जल, पृथ्वीपर हवा। जिस भूमिपर सजीव सृष्टि बसी है, वहाँ इनकी उपस्थिति अधिकाधिक देखी जाती है।

इनसे साधारण स्थितिमें किसी वस्तुको अछूता रखना कठिन ही नहीं, असम्भव बात है। इस समयके अनुसन्धान बतलाते हैं कि आँख दुखना, फोड़ा-फुन्सी, दाद, खाज, बद, कछराली जैसी क्षुद्र बीमारियोंसे लेकर क्षय, श्वास, कास, फिरंग, सुजाक, निमोनिया, कुष्ट आदि भयंकर व्याधियोंतक सब इन सूक्ष्मतम प्राणियोंकी कृपासे होती हैं। बड़ी-बड़ी बीमारियोंमें सहायक कारण चाहे कोई अन्य हो किन्तु मुख्य कारण इन्हें माना जाता है।

कीटाणुवाद मन-गढ़न्त नहीं

कई आयुर्वेदाभिमानी मेरी उक्त पंक्तियोंको पढ़कर यह धारणा बना लेंगे कि स्वामीजी तो बिलकुल अब डाक्टरोंके पीछे ही पड़ गये हैं। जो कुछ पाश्चात्य मतवाले कहते हैं उनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। इस जीवाणु, कीटाणुवादका कई वैज्ञानिकों द्वारा खण्डन भी हुआ है। उन्होंने इसकी निर्बलता, और अकारणताको अच्छी तरह सिद्ध भी किया है। ऐसी स्थितिमें इस पाश्चात्य मतका प्रचार कर हमें गलत मार्गपर डालनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

वे आयुर्वेदाभिमानी यदि ऐसा समझेंगे तो उनकी महान् भूल होगी। "प्रत्यक्षे किम्प्रमाणम्"? इस समयकी शल्य-क्रियाओंकी समस्त सफलता इस बातकी डंकेकी चोटसे घोषणा कर रही है कि कीटाणुवाद और कीटाणु-जीवाणु जन्य व्याधियाँ कोई कल्पित मन-गढ़न्त बातें नहीं।

शल्य-क्रियामें सावधानी

शल्य-क्रियाके समय की जानेवाली हाथ, वस्त्र व शस्त्रादिकी स्वच्छताने सिद्ध कर दिया है कि शल्य-कर्मके समय या उसके पश्चात् क्षत पूर्ण होनेतक यदि उस क्षत स्थानको जीवाणुरहित रक्खा जा सके तो क्षतमें कभी पीप या पूय (पस) नहीं पड़ता, क्षत कभी विकृत नहीं होता। पूय बननेका कारण ही शरीरमें या क्षतमें जीवाणुओंकी उपस्थिति है। जो शरीर कीटाणुरहित होगा उसके शरीरपर शल्य-कर्म करनेके समय शरीरको स्वच्छ और निर्विष रक्खा जाय तो वह क्षत स्थान बिना पूय बने ही परिपूर्ण हो जाता है। जिनमें पूय पड़ जाता है उनके पूय या रक्तका निरीक्षण करनेसे पता चलता है कि उनमें जीवाणु और उनका विष विद्यमान हैं।

आजसे २५-३० वर्ष पूर्वकी शल्य-चिकित्सामें जितने अधिक रोगी खराब होते थे, उतने अब नहीं होते। पहिले डाक्टरोंका साधारण स्वच्छताकी ओर ध्यान रहता था। किन्तु, प्रयोगोंने सिद्ध कर दिया कि जितनी अधिक स्वच्छता रक्खी जा सके उतना ही अधिक लाभ है। जहाँ पहिले सौ शल्यके रोगियोंमें-

से ४५-५० के लगभग निर्वाधित अच्छे होते थे अब सौ रोगियोंमें से ९५ रोगी अच्छे होने लगे हैं। इससे स्पष्ट है कि लगाव या अशुद्ध वस्त्र, औषध, हाथ, औज़ार आदिके सम्पर्कसे ही क्षतमें पूय उत्पन्न हो जाता है।

इस समय इस छुआछूतसे किस तरह बीमारियाँ फैलती हैं, इसका खूब बारीकीसे अनुसन्धान व अध्ययन किया जा रहा है। लोगोंमें वैसे तो दिखावेकी या धार्मिक छुआछूत तो अत्यत है, किन्तु, छुआछूत किन बातोंमें करनी चाहिए, किनमें नहीं, इसकी जानकारी बहुत ही कम लोगोंमें है। इसीलिए तो हमारे देशमें ऋतुकी बीमारियाँ हर एक मौसममें फैलती दिखाई देती हैं।

मक्खियोंकी माया

गाँवमें या शहरोंमें ग्रीष्म ऋतु आते ही टाइफॉइड या मन्थर ज्वर प्रायः फैलता है, मसूरिका या माताका भी प्रकोप देखा जाता है। अधिक गर्मी बढ़नेपर बदहज़्मी, अतिसार, प्रवाहिका या मरोड़ पेचिश आदिकी बीमारियाँ फैली हुई दिखाई देती हैं। इनके फैलनेके कारणकी ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान होता है। प्रायः देखा गया है कि मन्थर ज्वर, मसूरिका, अतिसार पेचिश, आँख दुखना आदि ये बीमारियाँ ज़्यादातर मक्खियोंकी कृपासे फैलती हैं। गर्मीके दिन आते ही मक्खियाँ बढ़ती हैं और इतनी ज्यादा बढ़ती हैं कि घर बाहर सब जगह मक्खियाँ ही मक्खियाँ हो जाती हैं। बड़े-बड़े स्वयम्पाकी कनौजिया ब्राह्मण वैसे तो अपने सजातीयके हाथका भोजन नहीं करते, परन्तु मक्खियोंके द्वारा उनके खाद्य द्रव्योंपर पहुँचाया हुआ न जाने वस्तुएँ किस-किसका जूठा भोजन, अपवित्र अवाञ्छनीय खा जाते हैं जिसे वह अनजानी बात कह देते हैं।

फर्ज़ करो कि एक ब्राह्मणके पड़ोसमें या उसके चौकेसे बाहर एक अछूत भोजन कर रहा है। उसकी दालमें या भातपर कुछ मक्खियाँ आकर बैठ गईं। क्या आप यह मान सकते हैं कि उस बैठी हुई मक्खीके मुँह-पैरमें उस खाद्य द्रव्यका कुछ भी अंश न लगा होगा? घरमें एक बालकने मल कर दिया। उस मल या विष्टापर मक्खियोंका ढेर आ लगा। थोड़ी देरमें किसी आदमीके उस स्थानपर आते ही मक्खियाँ और घरके अन्य खाद्य, पेय, वस्त्र आदिपर जा बैठीं। क्या आप यह मान सकते हैं कि उनके मुँह, पैरोंपर विष्टाका अंश लगा न रह गया होगा?

पाठक सत्य मानें। यदि उनके पास सूक्ष्म-वीक्षण-यन्त्र हो और उन उड़ी हुई मक्खियोंमेंसे किसी एकका भी अच्छी तरह निरीक्षण करें, तो स्पष्ट दिखाई देगा कि मक्खीकी खाली सुंडिका ही उस मलसे लिपटी न होगी प्रत्युत हाथ-पैर और उसकी मूँछोंतकमें असंख्य मलके कण लिपटे हुए दिखाई देंगे। जब मक्खी उस मलके ऊपरसे उड़कर किसी अन्य स्थानपर जा बैठती है, तो प्रायः इसकी यह आदत होती है कि अपने हाथ-पैर व पंख साफ़ करने लगती है। बार-बार अपनी सुन्डिका व मूछोंको परस्पर रगड़कर पोंछती है। उस समय तो वह काफ़ी मलके कण वहाँ छोड़ जाती है। यदि वह हाथ-पैर साफ़ न भी करे, उसी हालतमें उड़कर अन्य खाद्य, पेय द्रव्योंपर या किसी पात्रके किनारोंपर जा बैठे, तो उसके बैठते ही बहुत कुछ मलका अंश उस स्थानपर अवश्य ही लग जाता है।

असली छुआछूत

एक स्वयम्पाकी ब्राह्मण अपना भोजन तैयार करके खानेके लिए बैठा। उसके घरमें बालकने विष्टा कर दी। मान लो बालकका विष्टाकृत स्थान रसोईसे दूर है, उसकी ओझलमें हैं। किन्तु मक्खियोंसे तो वह स्थान कुछ भी दूर नहीं। वहाँसे मक्खियाँ उड़ीं और ये पंडितजी महाराजकी थालीपर, उनके जलके पात्रपर, स्वयम् उनके ऊपर आ विराजीं। ये मक्खियाँ केवल उन्हें ही नहीं अपवित्र कर गईं प्रत्युत उनके साथ जिन-जिनपर बैठीं उन सबको छूकर भ्रष्ट कर दिया। यदि उनकी कहीं सूक्ष्म दृष्टि होती और वे

मक्खियोंके पैरपर लदे मलको देख सकते तो निश्चय ही वह उस मलिन वस्त्रको त्याग देते। पर सब बिना देखेकी बात है। यह अदृश्य गन्दगी—केवल गन्दगी और जूठन ही नहीं होती प्रत्युत इसमें बीमारीके जीवाणु-कीटाणु भी होते हैं जिन्हें वे साफ निगल जाते हैं; फिर स्वयम्पाकीके स्वयम्पाकी ही बने रहते हैं। इस तरहकी छुआछूतसे वह और उनके परिवारवाले एक भी अछूते नहीं रहते। इसका परिणाम यह होता है कि ये मक्खियाँ किसी बीमारके मलसे अतिसार, प्रवाहिकाके कीटाणु अपने अंगोंमें चिपकाकर ले आती हैं और उनके खाद्य व पेयपर छोड़कर उन्हें उनके पेटमें पहुँचा देती हैं और वह कुछ दिनमें ही उसी बीमारीसे बीमार पड़े दिखाई देते हैं।

आँखकी बीमारी छूतसे फैलती है

अकसर शहरोंमें देखा जाता है कि बालकोंकी आँखें दुखने आ जाती हैं। जिन बालकोंकी आँखें दुखनी आई हों! उनके मुँह और आँखोंपर देखो तो मार मक्खियाँ भिनभिनाती दिखाई देंगी। वे ही मक्खियाँ उस बीमार बालककी आँखोंपर बैठकर वहाँसे आँखकी बीमारीके कीटाणु आँखके मैलके साथ अपनी सुंडिका व पैरोंपर लपेटकर अन्य बालकोंकी आँखतक पहुँचा देती हैं (जो मक्खी एक बालककी आँखपर बारम्बार बैठती है वह मक्खी जब उड़ती है तो प्रायः दूसरे बालककी भी आँखपर ही बैठनेकी चेष्टा करती है)। बालक यदि सोया पड़ा है तब तो मक्खी अच्छी तरह उसकी आँखके कोयोंपर बैठकर उस आँखमें दुखनीके कीट प्रवेश कर सकती है। जागनेकी हालतमें भी वे बैठ सकती हैं और दूसरी निरोगी आँखोंको बीमार कर देती हैं। यह तो मैंने छुआछूतपर एक दृष्टान्त दिया है।

छूतके अन्य रोग

इस तरह अनेक तरीकोंसे छुआछूत लगा करती है। बड़े-बड़े शहरोंमें राजयक्ष्मा या तपेदिककी बीमारीका बड़ा ज़ोर दिखाई देता है। जिस घरमें एक बीमार मर जाता है, वह मकान ही छूतका घर बन जाता है। प्रायः देखा जाता है कि जितनी सफ़ाई उस मकानकी करनी चाहिए नहीं होती। इसीलिए हम देखते हैं कि उस मकानमें रहनेवालोंमेंसे कुछ समयके बाद कोई-न-कोई उसी भयंकर मर्जमें फँसा दिखाई देता है। मैंने स्वयम् देखा कि एक मकानमें १० वर्षके भीतर जितने आदमी आकर रहे उनमेंसे छः उस राजयक्ष्माके शिकार हुए।

इसका प्रधान कारण निम्न था—उस मकानमें ही नहीं, प्रायः देखा जाता है कि जब रोगी घरमें हो तो उसका मल, थूक, जूठन आदिको न तो मक्खियोंसे बचाया जाता है, न मकानका हिस्सा उसके मल थूक आदिसे बचाये रखनेकी ओर किसीका ध्यान जाता है। यदि बीमारने दीवारपर थूक दिया तब कोई परवा नहीं, बिछौने या पहने हुए कपड़ोंसे नाक पोंछनेतककी परवाह नहीं। किसीके सामने बैठा खाँस रहा है तो उस बैठे हुए आदमीको कोई परवाह नहीं। वह वहीं उसके सिराने बैठा-बैठा लम्बे साँस खींचता ही रहेगा। चाहे उसके श्वासके साथ रोगीके थूकके कण कितने ही प्रवेश कर जायँ, कोई परवाह नहीं।

जो बीमार व्यक्ति दीवारोंपर या ज़मीनके फर्शपर थूका करते हैं परीक्षासे पता चलता है कि उस भूमिकी मिट्टीमें वर्षोंतक क्षय, निमोनिया आदिके कीटाणु जीवित बने रहते हैं। और जब कभी उस स्थानकी मिट्टीके कण उड़ते हैं तो उन कणोंके ऊपर चढ़े हुए वे कीटाणु या तो किसी खाद्य-पेय द्वारा होकर निरोग मनुष्यके पेटमें पहुँच जाते हैं या श्वास मार्गसे प्रवेश कर उसे रोगी बना देते हैं।

मलेरियाकी छूतसे बचो।

बरसातके मौसममें यह बिलकुल ठीक है कि मलेरिया या विषम ज्वर अवश्य ही कुछ-न-कुछ फैलेगा। यह भी सौमेंसे ५० आदमी अच्छी तरह जान चुके हैं कि मच्छरोंके काटनेसे मलेरिया कीटाणु शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं और उन कीटाणुओंके प्रभावसे मलेरिया होता है। किन्तु उनकी छूतसे अथवा मच्छरोंके काटनेसे अपने-

को किस तरह बचाया जाय इसकी ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं।

२॥) या ३) की मच्छरदानी तो इसलिए नहीं खरीद सकते कि वह गरीब हैं किन्तु, मलेरियासे पीड़ित २५)—३०) रु० विवश होकर खर्च करने पड़ते हैं, उसे सहन कर लेते हैं।

मैं बाल्यकालमें विषम ज्वरसे अक्सर पीड़ित हो जाया करता था और कई-कई मास दुःख भोगा करता था। किन्तु आज २२ वर्षसे—जबसे मच्छरदानी लगानी शुरू की एक बार भी मलेरियासे पीड़ित नहीं हुआ। जहाँ भी जिस किसीने अपनेको मच्छरोंके काटनेसे बचाया वह निरोग रहा है—यह अनेकों अनुभवोंसे सिद्ध है।

ध्यान रक्खो

निरोग रहनेके लिए और छुआछूतसे बचनेके लिए हमें निम्न बातोंकी ओर ध्यान देना चाहिए।

(१) मच्छर, मक्खी, पिस्सू, खटमल या खटकिरवा जूँ आदि क्षुद्रजीवोंके काटनेसे सदा अपनेको बचाना चाहिए।

(२) शरीर, वस्त्र, भोजन, जल व पात्रपर तथा क्षतादि स्थानोंपर मक्खी व धूल आदि नहीं बैठने व पड़ने देने चाहिए। मैले कपड़ेसे भी बचो।

(३) कुआँ, तालाब, जलस्रोत आदि स्थानोंको कभी मल, थूक आदिसे अपवित्र नहीं करना चाहिए।

(४) गाय, भैंस या बकरीका दूध ऐसा लेना चाहिए जो स्वच्छताके साथ दुहा गया हो; दूसरे, पशु भी निरोग होना चाहिए।

(५) बिना अच्छी तरह उबाले दूध नहीं पीना चाहिए।

(६) भोजन जो खुला पड़ा हो और फल जो काटकर रक्खे पड़े हों या जिनपर मक्खियाँ भिनभिना रही हों, उन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

बाज़ारकी मिठाई, कटे हुए फल जो प्रायः शहरोंमें लोग मक्खियाँसे भरे भिनभिनाते बेचा करते हैं उन्हें खाना तो दूर रहा, छूनातक नहीं चाहिए।

(७) अपने शरीरको और हाथोंको सदा शुद्ध रखना चाहिए। दूसरोंसे हाथ मिलाने या स्पर्श करनेके पश्चात् भोजनसे पहिले हाथोंको खूब शुद्ध कर लेना चाहिए।

(८) किसी रोगीके पास बैठते समय सदा ध्यान रखना चाहिए कि उसके गन्दे वस्त्र, थूक, मल व खाँसी आदिके समय श्वासकी हवा तो उसकी ओर नहीं आ रही है। वह अपनेको इनसे बचाये।

यदि उक्त बातोंकी ओर सदा ध्यान रक्खा जाय और जिनसे बचनेके लिए हिदायत की गई है उनसे बचा जाय तो मनुष्य निश्चय ही अनेकों बीमारियोंसे अपने जीवनमें बच सकता है। जितना ज्यादा मनुष्य बीमारियोंसे बचा रहेगा उसकी उमर उतनी अधिक बढ़ सकती है। उसका जीवन उतना ही दीर्घकालतक चल सकता है। ऊपर जो कुछ छुआछूतके सम्बन्धमें बताया गया है यह मेरा निजी अनुभव है जिसकी सच्चाईको प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनमें देख व समझ सकता है। यह कोई पाश्चात्य मतका अनुकरण नहीं।

भोजनका एक आवश्यक तत्त्व—विटेमिन

[ले०—डा० बद्रीनाथप्रसाद]

विटेमिन क्या है, यह बतानेके पहले अच्छा होगा कि इसकी जानकारीकी कहानी बताई जाय। एक समय था, जब समुद्रमें स्टीमवाला जहाज़ नहीं चलता था और कई महीनोंकी यात्राएँ खेनेवाली और पालवाली नावोंसे होती थीं। उस समय नाविक अपनी और यात्रियोंकी भोजन-सामग्री पूरी तौरसे नावपर रख लेते

थे। लम्बी यात्राओंमें ताज़े फलों और हरे शाकोंपर कितने दिनों भला रहा जा सकता है। ये शीघ्र समाप्त हो जाते थे और बहुत दिनोंतक सूखी चीजोंको खाना पड़ता था। जब कभी ऐसा हुआ, यह देखा गया कि ऐसे नाविक या यात्री एक बीमारीसे जिसे स्कर्वी कहते हैं पीड़ित हो गये थे। इस बीमारीमें मसूड़ेसे अनायास ख़ून निकलने लगता है। यही हालत छाती और उदरमें स्थित अवयवोंकी भी होती है। स्थान-स्थानपर खून निकल आता है। प्रत्यक्ष आँखोंसे दीखनेवाले चिह्न चमड़ेमें पाये जाते हैं। शरीरके चमड़ेमें कई स्थानोंपर खूनके दाग दिखाई देने लगते हैं। ऐसे पीड़ितोंको कागज़ी नीबू वा ताज़े फल खिलानेसे यह खूनकी खराबी शीघ्र दूर हो जाती है। उन नाविकोंमें यह पाया गया कि जब वे फिर किसी स्थलपर पहुँचते थे और खानेके ताज़े सामान पा जाते थे तब यह बीमारी दूर हो जाती थी। यह बात जब वैज्ञानिकोंको मालूम हुई, तो इसका अनुसंधान प्रारम्भ हुआ। बहुत परिश्रमके उपरान्त यह पता चला कि ताज़े फलों और हरे शाकोंमें एक विशेष तत्व होता है जिसका नाम 'विटेमिन-सी' रक्खा गया। यदि भोजनमें यह न हो तो स्कर्वी रोग पैदा हो जायगा। आजकल तो यह गोली और चूर्णके रूपमें—जो रसायन-विज्ञानमें 'एसकोर्बिक एसिड' के नामसे जाना जाता है—शीशियोंमें दवा-खानोंमें बिकता है।

विटेमिन-बीकी कहानी

विटेमिन-बीकी कहानी भी बड़ी मनोरंजक है। कुछ वर्ष पूर्व जापानी सेनामें एक बीमारी फैल जाया करती थी जिसमें देह फूल उठा करती थी। इस संक्रामक बीमारीका नाम बेरीबेरी रक्खा गया। इस रोगमें न जाने कितने सैनिक मर जाते थे और कितने जन्मभरके लिए स्वास्थ्यहीन हो जाते थे। उनका खाना पॉलिश किया हुआ चावल था। जबसे वहाँ ऐसे चावलका भोजन बन्द कर दिया गया है तबसे यह बीमारी वहाँ लुप्त-सी हो गई है। इसका अनुसंधान वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें कबूतरोंपर खूब हुआ। जब कबूतर पॉलिश किये हुए चावलपर रक्खे जाते थे तब उनमें नसोंकी कमजोरीकी बीमारी हो जाती थी; वे उड़ नहीं सकते थे और पैरोंपर खड़े भी नहीं हो सकते थे। हृदयकी गति भी बदल जाती थी। यदि ऐसे बीमार कबूतरोंको ढेंकी-छटे चावलका कण और भूसी दी जाती थी तब वे फिर आरोग्य हो जाते थे। इन सब बातोंका परिणाम यह निकला कि पॉलिश किये हुए चावलमें एक कोई विशेष तत्त्व निकल जाता है जो चावलकी भूसीमें होता है। इस तत्त्वका नाम विटेमिन-बी रक्खा गया। इस नतीजेकी आगे और जाँच पड़ताल हुई। मलय-प्रदेशमें पाया गया कि चीन निवासियोंमें यह बीमारी बहुधा पाई जाती है। किन्तु तामिल जातिमें नहीं पाई जाती है। दोनोंके भोजनमें अन्तर यही है कि चीनी पॉलिश किया हुआ चावल खाते हैं और तामिल जाति ढेंकी-छटा चावल खाती है। आजकल भारतमें 'बेरीबेरी' की बीमारी बंगालमें और उन बंगालियोंमें जो बिहार एवं संयुक्त-प्रदेशमें रहते हैं कभी-कभी पाई जाती है। ये लोग जोसान्दा चावल विशेष रूपमें खाते हैं और मिल-छटा चावल इन्हें विशेष पसन्द है। कहा जाता है कि शायद उनके भोजनमें विटेमिन-बीकी कुछ कमी रहती है और अकस्मात् विशेष कमी होनेसे उन्हें यह बीमारी हो जाती है।

थोड़े दिनोंसे वैज्ञानिकोंकी यह धारणा है कि विटेमिन-बी कोई एक चीज़ नहीं है। इसमें भी कई अंश होते हैं। 'विटेमिन-बी[1]' 'विटेमिन-बी[2]' इत्यादि नाम उन अंशोंके दिये गये हैं।

विटेमिन-एका पता कैसे चला ?

अभी कुछ वर्ष हुए, जब यूरोपीय युद्ध हुआ था, उस समय मक्खनका भाव बहुत बढ़ गया था। जो यूरोपीय देश इस युद्धमें सम्मिलित न था, उसके छोटे बच्चोंमें आँखकी बड़ी बुरी नई बीमारी पाई गई। अनुसन्धानसे पता चला कि अच्छा दाम पानेके लिए

वह जाति गायसे प्राप्त स्वाभाविक मक्खन बेच देती थी और कृत्रिम वानस्पतिक घीका व्यवहार करती थी। मक्खनमें विटेमिन-एका अंश विशेष है और इसकी हीनतासे आँखकी बीमारी, रतौंधी और दाँतमें पायोरिआकी बीमारी हो जाती है।

विटेमिन-डीका कैसे पता चला ?

कुछ ही वर्ष पहले इंगलैण्ड और अमेरिकाके बड़े-बड़े शहरोंकी, जैसे लण्डन और न्यूयार्ककी, संकीर्ण गलियोंमें रहनेवाले बच्चोंमें रिकेटकी बीमारी पाई जाती थी। उन बच्चोंकी आकृति ठीक इस कहावत—"हाथ पाँव सिरकी और पेट नदकोला"—से प्रकाशित की जा सकती है। दुध-मुँहे बच्चे ठीक समयपर पैरों खड़े नहीं हो सक्ते ; दाँत ठीक समयसे नहीं उगता ; पैर, हाथकी हड्डियाँ टेढ़ी हो जाती हैं; पेट चलने लगता है और सर्दी-खाँसी भी बनी रहती है। यह बीमारी ग़रीब और जिन गलियों-में सूर्यकी किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँके शिशुओंमें पाई जाती थीं। लोगोंने तो यह समझ लिया कि यह दरिद्र भगवानका कोप है। वैज्ञानिक अनुसंधान जोरोंसे होने लगा। इनमें भी दो मत हो गये। कुछ कहते थे कि गन्दे स्थान और रहनेका तरीका तथा सूर्य-की किरण न मिलनेसे यह रिकेटकी बीमारी होती है और दूसरा मत यह था कि भोजन जिसमें विटेमिन-डी-की कमी है उसीसे यह रोग होता है। वैज्ञानिकोंके इन दो भिन्न मतोंसे ऐसा मालूम होता था कि कभी सम-झौता होगा ही नहीं। कुछ दिनों बाद एक वैज्ञानिक अनुसंधानसे यह पता चला कि किसी-किसी भोजन-सामग्रीको पराकासनी किरणमें रखनेसे उसमें विटे-मिन-डीकी उत्पत्ति हो जाती है। यह भी पाया गया कि मनुष्य शरीरके चमड़ेपर पराकासनी किरणें या सूर्य-की किरणें पड़ें तो चमड़ेके अन्दर विटेमिन-डीकी उत्पत्ति हो जाती है। दूधमें जिस प्रकार खानेके सभी तत्त्व मौजूद हैं उसी प्रकार सभी विटेमिन भी मौजूद हैं किन्तु इनका परिमाण गायके रखने और भोजनपर बहुत निर्भर करता है। हरी घास और धूपमें चरने-वाली गायके दूधमें विटेमिन अच्छा होता है। दूध पिलानेवाली मातामें भी इसी प्रकार विटेमिनकी न्यूनाधिकता होती है। धूपसे दूर पर्देमें रहनेवाली माताओंके दूधमें विटेमिन-डीका अंश कम रहता है। सुतरां, उनके बच्चोंको विटेमिन-डी काफी प्राप्त नहीं होता और शिशु हल्के रिकेटसे पीड़ित रहते हैं। इस देशमें हलका रिकेट काफी तौरसे पाया जाता है। यह बीमारी उन घरोंमें पाई जाती है जहाँ दरिद्र भगवान की कृपासे ४-५ महीनेके बच्चोंको माँका दूध पूरा नहीं मिलता। उन्हें इसी अवस्थामें चावल और अन्य अनाज खिलाना आरम्भ कर दिया जाता है। हालत यह होती है कि शिशुके शरीरपर चमड़ा झूलने लगता है, अपच-की शिकायत रहती है और सर्दी-खाँसी तो बराबर बनी रहती है। ऐसे बच्चोंकी खुराक अन्नसे बदलकर दूध कर देनेपर और साथ-साथ कुछ विटेमिन-डी खिलानेपर यह अवस्था शीघ्र दूर हो जाती है।

विटेमिन-ई

विटेमिन-ईका अस्तित्व कुछ वर्ष हुए ही पता चला है। भोजनमें इसका अभाव हो, तो उत्पादन या प्रजनन-शक्ति क्षीण पड़ जाती है। यह देखा गया है कि इसकी कमीसे प्रयोगशालाके जन्तुओंकी उत्पादन-क्रियामें बहुत ख़राबी आ जाती है। यह विटेमिन उन-की खूराकमें न रहनेसे नारी-पशुका गर्भ विकृत हो जाता है और नर-जानवरमें उत्पादन-शक्तिकी कमी हो जाती है।

इन कहानियोंसे पता चलता है कि किस तरह भिन्न-भिन्न विटेमिनोंका लोगोंको पता चला। अभी इनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ ही रही है, किन्तु जिनकी ख़ूब जानकारी हो चुकी है वे ए, बी$_1$, बी$_2$, सी, डी और ई हैं। इनकी ठीक जानकारीका प्रारम्भ सन् १९११-१२ से हुआ। इन २५ सालोंमें अभी उक्त छः की स्थिति पूरी तौरसे निश्चित हो चुकी है। इनके गुण और इनके निवासका पता भी ख़ूब लग गया है। इनमेंसे विटेमिन ए, बी$_1$, बी$_2$, सी और डी तो अब कृत्रिम रासायनिक विधिसे भी बनने लगे हैं।

विटेमिन-सम्बन्धी नई बातें

विटेमिन अस्थायी पदार्थ हैं। परिस्थितिसे विचलते ही इनकी हुलिया बिगड़ जाती है। गर्मी, बुखार इत्यादि इनके जानी दुश्मन हैं। मनुष्य इनका अपने शरीरमें बहुत दिनों संचय नहीं कर सकता। ज़रूरत है कि इनका प्रयोग रोज़ाना और उचित परिमाणमें भोजनमें रहे। कहा जाता है कि गरम प्रदेशमें जहाँ सूर्यके प्रकाश, किरण, हरियाली, साग-सब्ज़ी, और फलका अभाव नहीं, वहाँ वे रोग भी नहीं होते जो विटेमिन न होनेके कारण होते हैं। किन्तु यह बात बिलकुल सच नहीं। विटेमिनका नितान्त अभाव तो यहाँ पाया नहीं जाता किन्तु अल्प कमी तो कसरतसे मौजूद है। इनकी कमीसे भूख, तन्दुरुस्ती, बाढ़, उत्पादन-शक्तिमें कमी हो जाती है।

भिन्न-भिन्न विटेमिनोंके गुण और प्रयोग

१. विटेमिन-ए—भोजनमें मक्खन, दूध, अंडा, गाजर, करमकल्ला, बोड़ी आदिसे मिलता है। जिस मात्रामें एक प्रौढ़ मनुष्यकी रोजाना जरूरत है वह तीन पाव दूध या सात अंडे या एक पाव करमकल्ला या एक छटाँक मक्खनसे मिल सकता है। इसकी जरूरत बच्चोंकी बाढ़के लिए और साधारणतया बीमारियोंके आक्रमणको रोकनेके लिए बहुत उपयोगी पाई गई है। इसकी कमीसे रतौंधी, तेजहीन पीली आँखें (ज़ीरोथेलमिया) और पायोरिया अर्थात् दाँतसे मवाद आनेकी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। कृत्रिम विटेमिन-ए या कैरोटीनके जो शरीरमें विटेमिन-एमें परिवर्त्तित हो जाता है, सेवनसे उक्त दोषोंमें फायदा होता है।

२. विटेमिन-बी—चावलके धूल-कणसे निकालकर गाढ़ा किया जाता है और हालमें कृत्रिम तरीकेसे बनने भी लगा है। प्रायः सोलह मन चावलसे एक तोला विटेमिन तैयार होता है। रोजाना भोजनमें यह चावल, गेहूँ, चोकरदार आटा आदिमें विशेष प्रकारसे पाया जाता है। इसकी कमीसे बेरी-बेरी और नसकी कमजोरी होती है। इसके प्रयोगसे भूखकी वृद्धि, नसमें ताक़त और हृदयकी धड़कनमें फ़ायदा होता है। साधारणतया आखा चावल या चोकरदार आटा खानेवालोंमें इसकी कमी नहीं पाई जाती।

३. विटेनमि-बी$_2$ (और बी$_6$)—की कमीसे पेलाग्राकी बीमारी होती है, जिसमें चमड़ेमें सूजन और रंगमें फ़र्क़ आ जाता है। इनकी कमीसे बताया जाता है कि कभी-कभी केश झरना और मोतियाबिन्द भी होता है। विटेमिन-बीकी कमीसे इस देशमें गर्भवती माताओंमें कभी-कभी ख़ूनकी कमी भी पाई जाती है।

४. विटेमिन-सी—ताज़े फल, ताज़े शाक-सब्जी और ताज़े फलका रस इसके स्वाभाविक निवास-स्थान हैं। अनाजमें यह नहीं पाया जाता है, किन्तु अँकुरते हुए अनाजमें कुछ अवश्य पाया जाता है। साधारणतया यह हम लोगोंको नीबू, नारंगी, टमाटर, बोड़ी, प्याज, पत्ता गोभी, पालक और दूधसे मिलता है। प्रत्येक दिनकी आवश्यकता एक-डेढ़ छटाँक नारंगीके रससे पूरी की जा सकती है। ज्वरकी हालतमें यह शरीरमें ज्यादा नष्ट होता है और आवश्यकता इस बातकी होती है कि जब ज्वर कुछ दिनोंतक चले, तब यह ताज़े फलके रसके रूपमें या एस कोर्बिकएसिडके रूपमें रोगीको दिया जाय।

साधारणतया इसकी कमीसे मसूड़ा ढीला पड़ जाता है और सूज भी जाता है और ज़रा-सी चोटसे झट ख़ून निकल आता है। बच्चोंमें दाँतकी सुदृढ़ बनावट और रक्षाके लिए विटेमिन-सीकी आवश्यकता होती है। गायका दूध इस विटेमिनकी रोज़ाना ज़रूरतको पूरी नहीं कर सकता और इसलिए ज़रूरत है कि बच्चोंको भी ताज़े फल या उनका रस अवश्य दिया जाय, और चिकित्साके साथ-साथ यह राजयक्ष्मा, गठिया और मधु-प्रमेहमें भी उपयोगी पाया गया है।

५. विटेमिन-डी—यह दूध, मक्खन और अण्डेमें विशेष पाया जाता है। मनुष्यके चमड़ेपर पराकासनी प्रकाश पड़नेसे शरीरमें यह विटेमिन तैयार होता है।

यह सूर्यके प्रकाशमें मौजूद है। गरम प्रदेशोंमें जहाँ सूर्यका प्रकाश समुचित रूपसे प्राप्य है इस विटेमिनका मनुष्य-शरीरमें अभाव होना भी असम्भव है। किन्तु मनुष्य यदि इस प्रकाशके उपकारसे अपनी आदतों द्वारा वंचित रहे, तो फिर क्या किया जा सकता है। पर्देमें रहनेवाली स्त्रियाँ और उनके साथ-साथ रहनेवाले बच्चे इस स्वाभाविक किरणका फ़ायदा नहीं उठाते हैं। नतीजा यह होता है कि विटेमिन-डीकी कमीसे रिकेटकी जो बीमारी होती है उससे दोनों पीड़ित रहते हैं। चूने या कैलशमका शरीरमें सर्वत्र होना और इस विटेमिनकीशरीरमें की क्रियाएँ इन दोनोंके अन्दर बड़ा सम्बन्ध है। इसीलिए इसकी कुछ कमीसे दाँतमें खोढ़ला भी उत्पन्न हो जाता है। गर्भवती माताओंमें जिनके भोजनमें चूने और विटेमिन-डीके अंश ठीक परिमाणमें नहीं रहते हैं उन्हें हड्डीकी विकृतिकी बीमारी, जिसे औस्टोमलेसिया कहते हैं, हो जाती है। सुदृढ़ हड्डी और अच्छे दाँतोंकी बनावटके लिए इन दोनों अंशोंका भोजनमें रहना अत्यावश्यक है। यह आवश्यकता काफी मात्रामें अच्छे दूध और पराकासनी प्रकाशसे पूरी हो सकती है।

६. विटेमिन-ई—गेहूँके अंकुरके तैलमें यह पाया जाता है और उसीसे यह गाढ़े रूपमें बनाकर बिकता है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाकी जाँच पड़तालसे उसके ये गुण निश्चय हुए हैं:—

इसकी कमीसे (१) मादा जानवर बाँझ हो जाते हैं (२) यदि उन्हें गर्भ रह भी जाता है तब कम ही दिनोंमें बच्चा अन्दर ही मर जाता है और (३) नर जानवरोंमें उत्पादन-क्रियाके मर्म-स्थानकी अवनति हो जाती है। इस विटेमिनका प्रयोग आजकल साधारण और बारबार गर्भ-स्रावके रोगमें अच्छा पाया गया है।

सारांश और परिणाम

विटेमिन तन्दुरुस्तीके लिए बहुत ज़रूरी है। बच्चे की बाढ़ ठीक हो, दाँतकी बनावट अच्छी हो, खोढ़ल और पायोरिया न हों और उसके शरीरके अन्दर बीमारियोंसे लड़नेकी ताकत ठीकसे मौजूद रहे, इन बातोंके लिए बच्चोंके भोजनमें सब विटेमिनोंका होना ज़रूरी है। गर्भवती और दूध पिलानेवाली माताओंमें इनकी आवश्यकता उनके अपने स्वास्थ्य और बच्चेकी अच्छी बनावटके लिए ज़रूरी है। और अवस्थाके मनुष्योंमें उचित तन्दुरुस्ती कायम रहे इसके लिए आवश्यकता है कि ये विटेमिन प्रायः हम लोग अपने दैनिक भोजनसे प्राप्त करें और यदि भोजनकी चीज़ें, गुण और परिमाणमें ठीक हों तो सभी तत्त्व जो स्वास्थ्यके लिए ज़रूरी हैं उन्हींसे मिल सकते हैं।

विटेमिनकी कमीसे कई प्रकारकी बीमारियाँ होती हैं, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसी प्रकार विटेमिनकी ज्यादतीसे भी बीमारियाँ होती हैं; किन्तु ये बीमारियाँ प्रायः कृत्रिम या अस्वाभाविक गाढ़े विटेमिन खानेसे होती हैं। अतएव उचित है कि जब इस तरहके विटेमिनका सेवन करना हो, तो इसके ज्ञातासे पूछ-ताछ की जाय।

आजकल इनके बहुत-से गुणोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया गया है और इनका प्रयोग कई बीमारियोंकी चिकित्सामें भी अच्छे नतीजेके साथ किया जा रहा है।

काले कागज़पर सफेद लिखावट

काले कागज़पर सफ़ेद रोशनाईसे लिखना ही अच्छा है, परंतु निम्नलिखित रीतिसे भी काम चलाया जा सकता है। तवेपर मोटा कागज़ रखकर तवेको धीरे-धीरे गरम करो। जब कागज़ काफ़ी गरम हो जाय तो उसपर मोम रगड़कर एक तह मोमकी लगा दो। अब कागज़से कुछ बड़े शीशेपर, दिया या ढिबरी जलाकर, कालिख इकट्ठा करो। शीशेपर सब जगह कालिख एक रूप जमा हो। मोम लगे कागज़को इस शीशेपर रखकर कागज़को अँगुलियोंसे खूब रगड़ो जिससे कालिख मोममें चिपक जाय। इस कागज़पर सुई या अन्य किसी नुकीली चीज़से खुरचकर लिखा जाता है। [हज़ार नुसखेसे उद्धृत]

मई, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४७, संख्या २

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

लन्दनकी नई वेधशालामें प्रयोगकी जानेवाली दूरबीन

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces.
for use in Schools and Libraries.
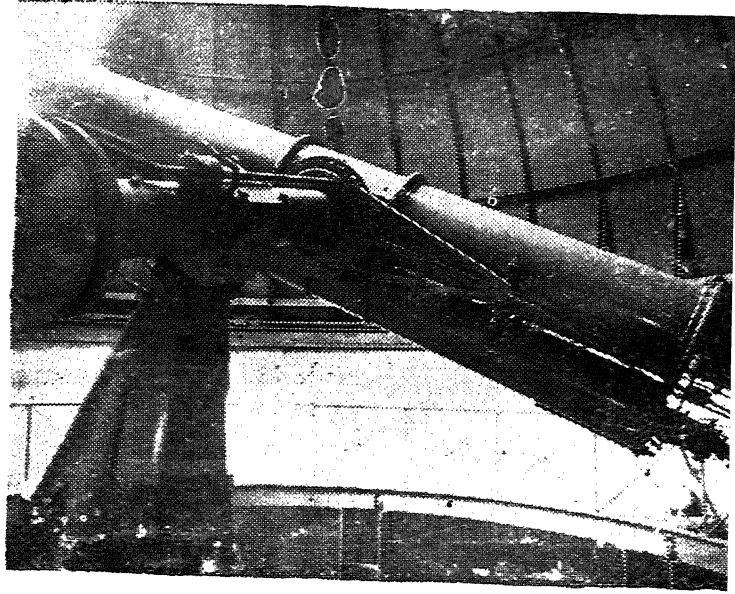
विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७८

वार्षिक मूल्य ३)

विषय-सूची

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७	प्रयाग, वृषार्क, संवत् १९९५ विक्रमी	मई, सन् १९३८	संख्या २

मिट्टीका रूप

[ले०—प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी]

मिट्टी कैसे बनती है ?

चट्टानोंके टूट-टूटकर गिरनेसे मिट्टियाँ बनती हैं। कुछ मिट्टियोंमें अलुमिनियम सिलिकेटकी मात्रा इतनी होती है कि पानीके साथ वे जल्दी ही नम्र वा अर्धनम्र ढेर बन जाती हैं। पर कुछ मिट्टियाँ दबाव और तापके कारण इतनी कठोर हो जाती हैं कि नम्र बनानेके लिए उन्हें बहुत अधिक पीसना पड़ता है ताकि जल उनमें प्रविष्ट कर सके। मिट्टीके अत्यावश्यक अवयव अलुमिनियमके सिलिकेट हैं। प्रकृतिमें अनेक सिलिकेट पाये जाते हैं। ये सिलिकेट अलुमिनियम, लोह, कैलशियम, मैगनीशियम और एलकेली धातुओं, सोडियम और पोटेशियमके होते हैं। इन्हीं सिलिकेटोंसे अनेक प्रकारकी चट्टानें बनी हैं। अधिकांश सिलिकेट जलमें प्रायः अविलेय होते हैं। ये साधारण तापक्रमपर केवल हाइड्रोफ्लोरिक अम्लमें ही विलेय होते हैं। केवल एलकेली धातुओंके सिलिकेट जलमें विलेय होते हैं। भिन्न-भिन्न सिलिकेटोंके संयोगसे कुछ ऐसे नये सिलिकेट बनते हैं जो अनेक गुणोंमें पहलेके सिलिकेटोंसे विभिन्न होते हैं। मिट्टीके सामानोंके बनानेका उद्देश्य यही है कि ऐसे सिलिकेट बनें जो जल, अम्लों और लवणोंमें घुलें नहीं।

चट्टानोंमें क्या होता है ?

पत्थरोंकी चट्टानें सिलिकेटोंकी बनी होती हैं। ये सिलिकेट भिन्न-भिन्न धातुओंके सिलिकेटोंके मिश्रण होते हैं। इन चट्टानोंमें विभिन्न धातुओंके सिलिकेटोंकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। ग्रेनाइट चट्टान बहुत अधिक पाई जाती है। इसका औसत संगठन आगे दिया गया है।

साधारण पत्थरोंकी चट्टानें आग्नेय चट्टान ग्रेनाइट और बैसाल्टकी बनी होती हैं। इनमें ग्रेनाइटका प्रायः ६५ भाग और बैसाल्टका प्रायः ३५ भाग होता है। इनके संगठन भी आगे दिये जाते हैं।

		औसत ग्रेनाइट	औसत बैसाल्ट	आग्नेयचट्टान ग्रेनाइट ६५ बैसाल्ट ३५
		प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
सिलिका	(शै ओ$_2$)	७०·४७	४९·६५	६३·१८
अलुमिना	(स्फ$_2$ ओ$_3$)	१४·७०	१६·१२	१५·३५
लोहिक ओषिद	(लो$_2$ ओ$_3$)	१·६३	५·४७	२·९७
लोहस ओषिद	(लो ओ)	१·६८	६·४५	३·४५
मैगनीशिया	(म ओ)	०·९८	६·१४	२·७९
चूना	(ख ओ)	२·१७	९·०७	४·५८
सोडा	(सै$_2$ ओ)	३·३१	३·२४	३·२८
पोटाश	(पां$_2$ ओ)	४·१०	१·६६	३·२४
टाइटेनिया	(टि ओ$_2$)	०·३९	१·४१	—
स्फुरिकौषिद	(स्फु$_2$ ओ$_5$)	०·२४	०·४९	—
		९९·८७	९९·७०	

चट्टानें किस प्रकार टूटती हैं ?

चट्टानोंके टूटनेसे मिट्टियाँ बनती हैं। इन चट्टानोंके तोड़नेवाले जल, बरफ, पवन (कर्बन द्विओषिद और ओषजन), वायुके तापक्रम, पौधे और पशु होते हैं। इनमें कुछ पदार्थों द्वारा इन चट्टानोंमें रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। इन रासायनिक क्रियाओं द्वारा ही मिट्टियोंमें नम्रता आती और धीरे-धीरे बढ़ती है। नम्रताके होनेसे ही इसे मिट्टी कहते हैं। उपर्युक्त पदार्थों द्वारा चट्टानोंमें ओषदीकरण, उदकरण या जल-संयोजन, जल-वियोजन, विलयन और अवकरण होते हैं। कुछ चट्टानें शीघ्रतासे टूटकर मिट्टी बन जाती हैं और कुछ बहुत देरसे, सैकड़ों और हजारों वर्षोंमें टूटकर मिट्टी बनती हैं। स्फटिक ऐसी चट्टान है जो बहुत देरसे टूटकर मिट्टी बनती है।

मिट्टीका वर्गीकरण

वैज्ञानिकोंने मिट्टीको दो श्रेणियोंमें विभक्त किया है। एक प्राथमिक मिट्टी जो जहाँ बनती है उसी स्थानपर रहती है। यह मिट्टी किसी एक चट्टान वा चट्टानोंके समूहके विच्छेदनसे बनी होती है। दूसरी द्वैतीयिक मिट्टी जो पानी, पवन वा बरफ़से बहाकर दूसरे स्थानमें लाई गई है। यह मिट्टी अनेक प्रकारकी चट्टानोंके विदीर्ण होनेसे बनी होती है। इस मिट्टीके बड़े-बड़े टुकड़े वा पत्थर बहाकर ले जाये जानेके कारण बहुत-कुछ छन जाते हैं। अतः यह मिट्टी उत्कृष्ट कोटिकी होती है। समरूप सामानोंके बनानेके लिए यह मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है।

गुणके कारण मिट्टियाँ फिर अनेक प्रकारकी होती हैं। जो मिट्टी वर्तन बनानेमें काम आती है उसे केओलीन और चीनी मिट्टी कहते हैं। चीनी मिट्टीका प्रयोग पहले पहल चीन देशमें हुआ। इसीसे इसका नाम चीनी मिट्टी पड़ा और इससे बने वर्तन चीनी मिट्टीके बर्तनके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो मिट्टी जलानेपर जल्दी नहीं पिघलती उसे अग्निजित-मिट्टी (फ़ाय क्ले) कहते हैं। इस मिट्टीकी बनी ईंटें चूल्हों वा भट्ठोंके बनानेमें प्रयुक्त होती हैं। चीनी मिट्टीसे मिलती-जुलती एक मिट्टी होती है जो तम्बाकूकी नलियोंके बनानेमें काम आती है। इसे नली-मिट्टी (पाइप-क्ले)

कहते हैं। बर्तन बनानेमें काम आनेवाली मिट्टीको बर्तन-मिट्टी (पौटरी-क्ले) कहते हैं।

मिट्टीके गुण

केओलीन और चीनी मिट्टी सफ़ेद, कुछ पीलापन लिये हुए सफ़ेद या हल्के भूरे रङ्गकी होती हैं। कुछ उद्भिज पदार्थोंके कारण इनमें रंग होता है पर आगमें पकानेपर ये प्रायः सफ़ेद हो जाती हैं। टुरमलीनके कारण चीनी मिट्टीका रंग कभी-कभी नीली आभा लिये होता है। लोहेके कारण इसमें कुछ पीलापन होता है। पकानेपर यह रंग अधिक स्पष्ट हो जाता है।

केओलीन मुलायम होता है और छूनेसे साबुन-सा मालूम होता है। केओलीन और चीनी मिट्टी दोनोंमें ही छोटे-छोटे बारीक कण जुटे हुए होते हैं और रगड़नेसे ये भुरभुरे हो गिर पड़ते हैं। आँखोंसे देखनेमें इनमें कोई बनावट नहीं दीख पड़ती पर प्रबल सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखनेसे ये छोटे-छोटे छिलकों वा परतोंके बने मालूम होते हैं। मिट्टियोंमें नम्रता होती है। बहुत सूक्ष्म कणों और उद्भिज पदार्थोंके कारण ही इनमें नम्रता होती है। साधारणतः इनके दाने २०० मेश वा छेदकी चलनीमेंसे निकल जाते हैं। ये दाने पानीसे भी बहाये जा सकते हैं। केओलीन वा चीनी मिट्टीको प्रायः ११०° श० पर गरम करनेसे इसका १०-१२ प्रतिशत जल निकल जाता है। प्रायः ८००° श० तक गरम करनेसे इसका १३ प्रतिशत जल और निकल जाता है। ११००° श० पर पकानेसे चीनी मिट्टी बिलकुल सफ़ेद और बहुत कठोर हो जाती है। तब जलको यह शीघ्रतासे शोषित नहीं करती। इसपर अम्लोंकी सब क्रियाएँ भी नहीं होतीं।

केओलीनमें रंगों और विलेय लवणोंके शोषण और उन्हें पकड़ रखनेका विशेष गुण होता है। चीनी मिट्टीपर हल्के हाइड्रोक्लोरिक अम्लका कोई असर नहीं होता पर गन्धकाम्लके साथ बहुत समयतक उबालनेसे यह आक्रान्त हो विच्छेदित हो जाती है। गरम करनेपर जलके निकल जानेसे यह विच्छेदित हो जाती है। इसके विच्छेदनसे मुक्त सिलिका, मुक्त अलुमिना और जल बनते हैं।

शुद्ध चीनी मिट्टी अगालनीय होती है। इसके कोमल होनेका तापक्रम प्रायः १६६०° श० है। यदि इस मिट्टीमें कुछ चूना और रेत मिला दिया जाय तो इसका गालनाङ्क कुछ निम्न हो जाता है।

मिट्टीके प्रयोग

केओलीन और चीनी मिट्टी बरतन बनानेमें काम आती है। इसकी मूर्त्तियाँ भी बनती हैं। भिन्न-भिन्न पशु—हाथी, घोड़े, सिंह, हिरन, बाघ—इत्यादि इसके बनकर खिलौनेके रूपमें बिकते हैं। और भी अनेक प्रकारके खिलौने इसके बनते हैं। बिजलीके सामान भी विशेषतः पृथग्न्यासक (इन्सुलेटर) इसके बनते हैं। इनके अतिरिक्त वस्त्र, कागज़, फिटकिरी और अल्ट्रामैरीन नामक रंगके बनानेमें भी यह प्रयुक्त होती है। इसकी ईंटें, जलके नल, खपड़े इत्यादि अनेक उपयोगी चीजें बनती हैं। चीनी मिट्टीके धोनेसे जो बारीक अभ्रक निकलता है वह मोटे कागज़ और कागज़के तख्तोंकी तौल बढ़ानेमें प्रयुक्त होता है। मिट्टी औषधोंमें भी प्रयुक्त होती है।

मिट्टीके अपद्रव्य

केओलीनमें जलसंयोजित सिलिका, मुक्त सिलिका और सिलिकेट अपद्रव्यके रूपमें रहते हैं। जल-संयोजित सिलिका कोलायड् अवस्थामें रहता है। इसमें लचक नहीं होती। अतः इसके होनेसे मिट्टीकी नम्रता न्यून रहती है। मुक्त सिलिकाके कण बड़े-बड़े होते हैं। अतः मुक्त सिलिकाके कारण मिट्टी अच्छी नहीं होती। अच्छी मिट्टीमें मुक्त सिलिकाका न होना आवश्यक है।

शुद्ध रेत प्रायः सिलिका होता है पर किसी-किसी रेतमें केवल ४० प्रतिशत सिलिका ही रहता है। यदि शुद्ध बालू न प्राप्त हो सके तो उसके स्थानमें फेल्स्पारका प्रयोग हो सकता है। मिट्टीमें सिलिका डालनेसे

इसका गालनाङ्क निम्न हो जाता है क्योंकि यह सिलिका लोहे या अन्य धातुओंके ऑक्साइडके साथ मिलकर द्रावक (फ्लक्स) का कार्य करता है। नम्र मिट्टीमें सिलिकाके कारण इसकी नम्रता कम हो जाती है। इसके सिकुड़नेकी शक्ति और उसके टेढ़े-मेढ़े होने और फटनेकी शक्ति भी कम हो जाती है। पर इससे मिट्टीकी सान्द्रता (छेदीलापन) बढ़ जाती है और तापक्रमके अकस्मात् परिवर्तनके सहनकी शक्ति बढ़ जाती है।

मिट्टीमें क्षारता

मिट्टीमें क्षारता या तो विलेय या अविलेय लवणके रूपमें रहती है। क्षारता रहनेसे मिट्टीकी गलनीयता बढ़ जाती है। सुखाने वा पकानेपर क्षारतायुक्त मिट्टीके बर्तनोंपर कुछ मैल जम जाता है। मिट्टीकी नम्रता भी इससे कम हो जाती है। मिट्टीमें जो क्षारता रहती है वह साधारणतया अलुमिनियम सिलिकेट (स्फटशैलेट) की होती है। इसे फेल्स्पार, अभ्रक और कौर्निश पत्थरके नामसे भी पुकारते हैं। अगालनीय मिट्टीमें थोड़ी क्षारताके होनेसे इसके कणोंमें बँधे रहनेकी शक्ति बढ़ जाती है। इससे ऐसी मिट्टीके सामानोंमें अधिक मज़बूती आ जाती है। बहुत उच्च तापक्रमपर पकानेसे कुछ क्षार वाष्पीभूत हो निकल जाता है। इससे इनकी बनी चीजें अधिक अगालनीय होती हैं। मिट्टीमें जो अभ्रक रहता है वह मास्कोवाइट वा पोटाश अभ्रकके रूपमें रहता है। यह पोटाश और अलुमिनियमका सिलिकेट होता है। इसका संगठन पो₂ओ, स्फ₂ओ, ६ शैओ₂ दिया जा सकता है। इसका गालनाङ्क १३९५° श० होता है। १२०० श० के नीचे यह शायद ही कोमल होता हुआ पाया जाता है। पर यदि यह बहुत बारीक पिसा हुआ हो तो इससे निम्न तापक्रमपर भी कोमल हो सकता है।

मिट्टीमें कार्बनिक पदार्थ

मिट्टीमें ५ प्रतिसैकड़ासे अधिक कार्बनिक पदार्थ नहीं होना चाहिए। यदि है तो ऐसी मिट्टी बरतन बनानेके कामकी नहीं रहती। कार्बनिक पदार्थोंके कारण पकानेके पूर्व और पश्चात्के रंगमें बहुत फर्क पड़ जाता है। मिट्टीकी नम्रता इससे बढ़ जाती है और पकानेके बाद मिट्टीमें सान्द्रता भी बढ़ जाती है। पकनेपर ऐसे बरतनोंमें सिकुड़न अधिक होती है। ऐसी मिट्टीके पकानेमें जलावन कम लगता है। ऐसी मिट्टीका सबसे बुरा परिणाम यह होता है कि लोहेके ऑक्साइडोंके अवकरणसे गालनीय धातुमैल बननेका भय रहता है। अतः ऐसी मिट्टीको बड़ी सावधानीसे पकानेकी आवश्यकता पड़ती है।

चूना और मैगनीशिया

चूना और मैगनीशिया भी मिट्टीमें रहते हैं। यदि चूनेकी मात्रा ३५ प्रतिशत है तो मिट्टीका गालनाङ्क १२३० श० हो जाता है पर अन्य पदार्थोंकी उपस्थितिमें गालनाङ्कका गिरना रोका जा सकता है। मैगनीशियाके कारण भी मिट्टीका गालनाङ्क कम हो जाता है पर इसकी अधिक मात्रासे मिट्टीकी अगालनीयता बढ़ जाती है। मैगनीशियाके कारण मिट्टीकी सिकुड़न बढ़ जाती है पर ऐसी मिट्टीके बर्तन पकानेपर अपने आकारको बहुत अधिकतासे कायम रखते हैं। चूनेके कारण पकानेपर मिट्टीके रङ्गमें बहुत-कुछ परिवर्तन होता है। जिस मिट्टीमें पर्याप्त लोहा रहता है वह पकानेपर लाल रङ्गकी हो जाती है। चूनेके होनेसे ऐसी मिट्टी पकानेपर बादामी रङ्गकी हो जाती है। अधिक तापक्रमपर पकानेसे यह हरे रंगकी हो जाती है। जब चूना और रेतके साथ मिलकर लोहा लौह-चूना-सिलिकेटमें परिणत हो जाता है तब लोहेका हरा रंग साधारणतया दूर हो जाता है। इसीके बननेसे सामान्य काँचमें हरा रङ्ग होता है।

मिट्टीमें लोहेके यौगिक

हर मिट्टीमें लोहेके यौगिक रहते हैं। कितने ही यत्नसे मिट्टीको क्यों न शुद्ध किया जाय उसके सब लोहे दूर नहीं किये जा सकते। साधारणतया मिट्टीमें

लोहेके दो ओषिद, लोहस ओषिद और लोहिक ओषिद, कर्बनेत और गन्धिद रहते हैं। विश्लेषणमें लोहेके अंश-को लो$_2$ओ$_3$ के रूपमें ही साधारणतया प्रदर्शित करते हैं।

लोहेके ओषिद (लो ओ) के कारण मिट्टीका रंग लाल होता है पर सफ़ेद मिट्टीमें अलगसे इस ओषिदके डालनेसे पकानेपर वैसा गाढ़ा और चमकीला रंग इसमें नहीं आता जैसा प्राकृतिक मिट्टीमें होता है। लोहस ओषिद मिट्टीमें नहीं रहता पर मिट्टीके पकानेपर कार्बनके कारण यह बन जाता है। लोहेके कर्बनेत और गन्धिद दोनों ७००° श० के ऊपर गरम करनेसे लोहस ओषिदमें परिणत हो जाते हैं और उनसे गैसें निकलती हैं। इन गैसोंका निकलना बरतनोंके लिए अच्छा नहीं है। यदि भट्टीकी वायु पर्याप्त ओषदीकारक हो तो लोहस ओषिद लोहिक ओषिदमें परिणत हो जाता है। लोहिक ओषिद अगालनीय होता है और इससे बर्तनोंको कोई हानि नहीं होती। अतः यह आवश्यक है कि लोहेके कर्बनेत वा गन्धिदके होनेपर ७००° से ९००° श० के बीच भट्टीकी वायु प्रबल ओषदीकारक होनी चाहिए और यह वायु यथा-सम्भव कर्बन द्विओषिद और गन्धक द्विओषिदसे मुक्त होनी चाहिए। अवकरण वायुमें थोड़ी मात्रामें लोहस ओषिदके रहनेसे हल्का नीला रंग आता है। पर जैसे-जैसे इसकी मात्रा बढ़ती है वैसे-वैसे रंग गहरा होता जाता है और अन्तमें काला हो जाता है और धात्वीय द्युति आ जाती है।

टाइटेनियम भी ओषिद टिओ$_2$ वा टाइटेनाइट (श्वटि ओ$_3$) के रूपमें मिट्टीमें रहता है। यह द्रावक-का कार्य करता है। जिस मिट्टीको अति उच्च ताप-क्रमतक गरम करना है उसमें इसकी मात्रा २ प्रति-शतसे अधिक नहीं रहनी चाहिए। १० प्रतिशतके रहनेसे मिट्टीका गालनाङ्क १००° श० घट जाता है। साधारण विश्लेषणमें टाइटेनियम सिलिका और अलु-मिनाके अन्तर्गत ही रहता है क्योंकि इसकी मात्रा अलग निकालनेमें विशेष सावधानी और प्रयत्नकी आव-श्यकता पड़ती है।

शीराके विभिन्न प्रकार

[ले०—एक अनुभवी]

शीरेकी समस्या

चीनीके व्यवसायने कुछ ही वर्षोंमें बहुत ही अधिक उन्नति कर ली है। प्रत्येक वर्ष जगह-जगह नई-नई फैक्ट्रियाँ खड़ी की जा रही हैं। अगर सरकारकी ओर-से खाँड़पर किसी भी प्रकारका कर न लगाया जाता तो सम्भव था कि १० सालके अन्दर ही भारतवर्षमें फैक्ट्रियोंका एक जाल-सा बिछ जाता और उस अवस्थामें उनको खाँड बनानेके लिए गन्नेका पर्य्याप्त मात्रामें मिलना अवश्य कठिन अनुभव होता। उसका तात्का-लिक परिणाम यही होता कि इस प्रकारकी फैक्ट्रियाँ लाचार होकर बन्द ही करनी पड़तीं। परन्तु आजकल भी जितनी फैक्ट्रियाँ काम कर रही हैं, वे खाँड़ बनानेके साथ-साथ शीरा भी एक बड़े परिमाणमें पैदा कर रही हैं और उसको किसी उपयोगमें लानेका प्रश्न भी चीनीके व्यवसायकी उन्नतिके साथ ही अधिका-धिक उपयोगी आवश्यक व व्यापक बनता जा रहा है।

पिछले कुछ सालोंमें तो शीरेकी माँग बहुत ही कम हो गई है और इसीलिए शक्करकी मिलोंके मालिक चिन्तित हैं कि शीरेका क्या किया जाय। उनके सामने शीरेके उपयोगकी समस्या एक जटिल एवं विकट रूप धारण किये हुए है। रसायनज्ञ लोग भी इस-पर पूर्णतया विचार करनेमें लगे हुए हैं परन्तु अभी

तक ये कोई सस्ता व उत्तम मार्ग नहीं निकाल सके हैं। इसके साथ ही सब देशोंकी सरकारें भी शीरेको किसी उपयोगमें लानेकी समस्याको सुलझानेमें लगी हुई हैं। भारत-सरकारका भी इस ओर ध्यान गया है। अभी पिछले साल यू० पी० सरकारके उद्योग-विभागके अधिकारी शीरेके उपयोगके सम्बन्धमें महत्वपूर्ण विचार कर रहे थे और कहा जाता है कि उन्होंने शीरेके कई प्रकारसे उपयोग करनेकी सम्भावनाओंपर विचार भी किया है। उन्होंने शीरेके ऊपर बहुत सारे परीक्षण किये परन्तु कहा नहीं जा सकता कि वे अपने इष्ट परिणामपर पहुँचेंगे कि नहीं। यदि वे इसके उपयोगके विषयमें कुछ सुझा सके तो खाँड़-व्यवसायके सामने उपस्थित एक बड़ी भारी समस्या हल हो जायगी।

देशी विधिसे प्राप्त शीरा

चीनीके व्यवसायकी उन्नतिसे पहिले जो शीरा देशी विधियोंसे या आधुनिक ढंगकी थोड़ी शक्कर मिलोंसे खाँड़ बनाते समय बनता था उसकी मात्रा इतनी कम होती थी कि उसका अधिकांश उपयोग तो खाने-पीनेके तमाखूमें ही हो जाता था। इससे जो कुछ बचता था उसको अन्य दूसरे प्रकारके कामोंमें बरत लिया जाता था। परन्तु जब चीनीके व्यवसायमें इसकी बहुत बड़ी मात्रा तैयार होने लगी तो लोगोंके सामने इसकी खपतका प्रश्न आ उपस्थित हुआ और तबसे अबतक यह विकट ही होता जा रहा है। एक बारगी अत्यधिक शीरा तैयार होने लगनेका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि शीरेका भाव एक दम गिर गया। पहिले जो शीरा सब स्थानोंमें २॥), ३) मनके भावसे आसानीसे बिक जाता था, और कहीं-कहीं तो इसका भाव ३।), ३॥) मनतक भी पहुँच जाता था वहाँ आजकल १) मनके भावसे भी बिकना कठिन हो गया है। इससे कितने ही शीरेके व्यापारी दिवालिये हो गये हैं।

शीरा मुफ्त भी तेज

खाँड़की मिलोंमें तो शीरेको कोई पूँछता ही नहीं। अगर वहाँसे कोई शीरेको मुफ्त भी ले जाये तो वह फैक्ट्रीके ऊपर बड़ी भारी कृपा कर रहा होगा। दिल्लीके बड़े भारी एक तमाखू व्यापारीने पूछे जानेपर यहाँतक बताया कि कुछ फैक्ट्रियाँ मुफ्त शीरा देती हैं परन्तु वहाँसे लोग इस वास्ते नहीं मँगाते क्योंकि उन्हें रेल भाड़ा देकर यह शीरा महँगा पड़ने लगता है जबकि वे इससे सस्ता शीरा घर बैठे बाजारसे प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं अपितु विदेशोंमें तो शीरेकी बड़ी दुर्गति हो रही है। जावा, जहाँकि फैक्ट्रियाँ प्रतिदिन हजारों मन शीरा निकाल रही हैं वहाँपर तो इसको व्यर्थ समझकर खेतों या समुद्रमें डाल दिया जाता है। अगर शीरेका शीघ्र-से-शीघ्र कोई उपयोग मालूम न हुआ तो शीरेकी उत्पत्ति व उसको कहीं फेंकनेका प्रश्न शक्कर मिल-मालिकोंके सामने एक जटिल प्रश्न आ उपस्थित होगा। अस्तु।

शीरेसे शराब बनाना

शीरेके उपयोगकी समस्या अधिकतर उन्हीं देशोंके आगे है जहाँ कि इससे अन्य चीजें नहीं बनाई जातीं परन्तु जो देश अपनी शराबके लिए प्रसिद्ध हैं और उन देशोंकी सरकारें भी शराब-व्यवसायको प्रोत्साहन देती हैं तो उन देशोंको शीरेके उपयोगके विषयमें अधिक चिन्तातुर नहीं होना पड़ता। उन देशोंमें सम्पूर्ण शीरेको शराबमें, जिसको अँग्रेज़ीमें 'रम' कहते हैं, बदल दिया जाता है। जमाइका और दमेरारा दो इस प्रकारके देश हैं जो कि अपनी शराबके लिए संसारमें अच्छी ख्याति पाये हुए हैं अतएव इन देशोंमें शीरेसे शराब बनाई जाती है। जिन देशोंमें चुकन्दरसे खाँड़ बनती है वे शीरेको साधारण भभकेमें रखते हैं। जर्मनीमें इसको विशेष प्रकारकी फैक्ट्रियोंमें ले जाते हैं जहाँ कि इससे पुनः खाँड़ बनाई जाती है। इस प्रकार शीरेके ऊपर चलनेवाली ये फैक्ट्रियाँ सालभरमें १००,००० टन खाँड़ बनाकर बाजारमें भेजती हैं।

इस प्रकार चीनी-व्यवसायमें आगे उपस्थित होनेवाली समस्यापर विचार कर लेनेके बाद अब शीरेके

बननेमें क्या-क्या कारण होते हैं—तथा हम किन-किन उपायोंसे शीरेकी उत्पत्तिको कम कर सकते हैं इन प्रश्नोंपर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। सबसे प्रथम उपर्युक्त प्रश्नोंको छोड़कर हमको इस प्रश्नपर विचार कर लेना आवश्यक एवं उपयुक्त मालूम पड़ता है कि शीरा वास्तवमें क्या चीज़ है और वह कितने प्रकारका है तथा जो शीरा हमें फैक्ट्रियोंसे मिलता है उसमें और खाँची-प्रणालीसे प्राप्त शीरेमें क्या भेद है।

शीरा और उसके भेद

साधारणतया अगर हमसे यह प्रश्न किया जाय कि शीरा क्या है तो उसका सामान्य लक्षण देखते हुए हम उत्तर दे सकते हैं कि-शीरा राबका वह रूप है जिसमें-से खाँड़ निकाल ली गई हो। इसका शुद्ध एवं परिष्कृत लक्षण क्या हो सकता है इसको हम आगे देनेका प्रयत्न करेंगे। मन्थन-यन्त्र (सैण्ट्रीफ्यूगल मशीन) में जब राबको डालकर जोरसे चलाया जाता है तो राबमेंसे, जो शीरे और खाँड़के स्फटिकोंका मिश्रण-मात्र है, शीरा अलग हो जाता है और खाँड़के स्फटिक मन्थन-यन्त्रकी टोकरीमें ही रह जाते हैं। इस प्रकार जो शीरा प्राप्त होता है उसको फैक्ट्रियोंमें प्रथम शीरा (फ़र्स्ट मोलासेज़) कहते हैं।

यद्यपि इस शीरेमेंसे खाँड़के स्फटिक पर्य्याप्त मात्रा-में निकाले जा चुके होते हैं परन्तु फिर भी इसमें खाँड़ काफी मात्रामें रह जाती है। यह खाँड़ प्राप्त करने-के लिए इस शीरेको फिर दुबारा वेकुअम पेनमें ले जा-कर पतले सिरपके साथ मिलाकर सान्द्र या गाढ़ा करते हैं। इस प्रकार तैयार की हुई राबको 'राब नं० २' कहते हैं। इस राब नं० २ को ३ से ७ दिन तक स्फटिकीकारक (क्रस्टैलाइज़र) में पड़ा रहने देते हैं ताकि खाँड़के स्फटिक, जो अभीतक छोटे परिमाणके होते हैं, वे अपने पासकी खाँड़को लेकर बड़े हो सकें। स्फटिकोंके इस बढ़ाने को अँग्रेज़ीमें "स्फटिकोंको फ़ीड करना" कहते हैं। फीडिङ्गके वास्ते आवश्यक है कि स्फटिकीकारकका तापमान सदा नियत रहे और इसके लिए ६०° श० तापमान अच्छा होगा। अगर घोलका तापमान इससे कम हुआ तो उसकी 'सान्द्रता' अधिक हो जानेसे फीडिङ्ग अच्छी तरहसे न हो पायेगी। अब इस राब नं० २ को, जिसमें कि खाँड़का दाना काफी मोटा हो चुका होता है, स्फटिकीकारकसे निकालकर सेन्ट्रीफ्यूगल मशीनमें ले जाते हैं और वहाँपर शीरे व खाँड़के स्फटिकोंको अलग-अलग किया जाता है। इस प्रकार इस 'प्रथम शीरे' में ४५ से ५० प्रतिशतक खाँड़ जो कि व्यर्थ जा रही होती है उसको प्राप्त कर लिया जाता है। 'प्रथम शीरे' से जो खाँड़ प्राप्त होती है उसको 'द्वितीय खाँड़' (सैकिंड शुगर) तथा प्राप्त शीरेको 'द्वितीय शीरा' (सैकिंड मोलासेज़) या 'अन्तिम शीरा' (फायनल मोलासेज़) कहते हैं।

इस 'द्वितीय शीरे' में भी लगभग ३५ से ४० प्रतिशतकतक खाँड़ रह जाती है। इस खाँड़को प्राप्त करनेके लिए बहुत-से कारखानोंमें 'तृतीय खाँड़' (थर्ड शुगर) बनाई जाती है और उसकी विधि वही है जो कि ऊपर वर्णन की जा चुकी है। इस विधिके अलावा शीरा नं० २ से 'तृतीय खाँड़' बनानेकी अन्य दो विधियाँ और भी हैं जो साधारणतया छोटी-छोटी फैक्ट्रियोंमें नहीं बरती जातीं; उनका उपयोग केवल बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियोंके लिए ही रह गया है। ये विधियाँ निम्न हैं :—

१. निस्सरण-विधि,
२. निक्षेप-विधि।

निस्सरण-विधि

यह तो लिखा जा चुका है कि शीरा नं० २ में ४० प्रतिशतक खाँड़ रह जाती है। उसका कुछ अंश प्राप्त करनेके लिए इस विधिको भी बरता जाता है। किसी रन्ध्रमय बर्तनमेंसे खाँड़की अपेक्षा अकार्बनिक-लवण अधिक मात्रामें तथा शीघ्रताके साथ बाहर निकल सकते हैं। लवणोंके बाहर निकल जानेपर (निःसृत हो जानेपर) शीरेमेंसे खाँड़ बड़ी सुगमतासे प्राप्त की जा सकती है,

क्योंकि ये लवण ही खाँड़को स्फटिक रूपमें आनेमें बाधा डालते हैं।

विधि—एक बड़े मोटे नलके लम्बाईमें दो भाग कर यदि उनके बीचमें पार्चमेंट पेपर लगा दें और उसके एक तरफसे पानी तथा दूसरी ओरसे विरुद्ध दिशामें शीरा गुज़रे तो लवण कागज़मेंसे निकलकर पानीमें आ जायेंगे और शीरेमें खाँड़की प्रतिशतक मात्रा बढ़ जायेगी। अब इस शीरेको वेकुअम पेनमें ले जाकर वहाँ इससे राब नं० ३ प्राप्त कर सकते हैं; जिससे कि खाँड़ नं० ३ बनाना सुगम होगा।

निक्षेप-विधि

क्षारोंकी अगर इक्षु-शर्कराके साथ प्रक्रियाकी जाये तो हमको क्षार-शर्करेत प्राप्त होता है। क्षारोंके इस गुणके अनुसार शीरेपर भारम्, खटिकम् तथा स्त्रंशम आदि धातुओंके ओषिदोंकी क्रिया करके इन धातुओंके शर्करेतोंको निक्षिप्त कर लेते हैं। इसको छाननेसे प्राप्त शर्करेतको फाड़कर खाँड़ प्राप्त कर लेते हैं।

भारशर्करेत (बेरियम सुक्रेट) से खाँड़ प्राप्त करना

शीरेपर बारीक पिसा हुआ भार-ओषिद छिड़ककर उसको हिलाते हैं। हिलानेपर भारशर्करेत बनता है जो कि निक्षिप्त हो जाता है। इस निक्षेपको धोकर छानकर और पानीसे अच्छी तरहसे धोकर अलग प्राप्त कर लेते हैं। अब इस निक्षेपको कर्बनिकाम्ल गैसके प्रवाह द्वारा फाड़ते हैं, इसके फटनेसे हमको खाँड़का घोल तथा भार कर्बनेतका निक्षेप प्राप्त होते हैं। घोल और निक्षेपको छाननेसे प्राप्त खाँड़के घोलसे उपरिवर्णित विधि द्वारा खाँड़ बना सकते हैं।

(ख) शेबलिरकी स्ट्रोंशिया-विधि—इस विधिमें शीरेका पानीमें घोल बनाकर उसमें स्त्रंश ओषिद डाल देते हैं और उसको ज़ोरसे गरम करते हैं। इस प्रकार गरम करनेपर हमको द्विभास्मिक शर्करा प्राप्त होता है। इसको गरम अवस्थामें ही थैलेदार छन्नों (बैग फिल्टर्स) में छानते हैं। इस छने हुए द्रवमें अब गरम-गरम स्त्रंशम-उदौषिदका घोल डालकर उसको हिलाते हैं। इस प्रकार करनेसे ऊपर बना हुआ स्त्रंश-शर्करेत गरम व अधिक मात्रामें उपस्थित स्त्रंश-उदौषिदमें घुल जाता है। परन्तु घोलके ठण्डा होते ही स्त्रंश उदौषिद पुनः निक्षिप्त हो जाता है (क्योंकि यह ठण्डी अवस्थामें पानी में अविलेय है)। छाननेपर प्राप्त घोल स्त्रंशमका एक शर्करेतका होगा। इसको धोकर अगर इसपरसे कर्बनिकाम्ल गैस प्रवाहित की जाय, तो यह फट जायेगा और फटकर खाँड़ (जो कि घोलके रूपमें होगी) तथा स्त्रंश-कर्बनेत देगा। अब इस खाँड़के घोलसे छानकर अविलेय स्त्रंश-कर्बनेतको पृथक् करके, उपरिवर्णित विधिका प्रयोग करके खाँड़ बना सकते हैं।

(ग) स्टीफनकी विधि—इस विधिमें चूनेका व्यवहार किया जाता है। उसको शीरेमें डालकर खटिक एक-भास्मिक शर्करेत प्राप्त करते हैं जो कि घुलनशील है। अब यदि इसमें अलकोहल डाल दें तो वह निक्षिप्त हो जायगा। इसको छानकर कर्बनिकाम्ल गैस प्रवाहित करनेसे खाँड़को घोलके रूपमें प्राप्त कर सकते हैं।

अलकोहलका प्रयोग करके खाँड़को प्राप्त करना बहुत महँगा पड़ता है। अतः इस विधिको व्यापारिक विधिके रूपमें नहीं बरता जा सकता। इसके लिए ऐसा करना चाहिए कि जब खटिक एक भास्मिक शर्करेत बन जाय उस समय अलकोहल न डालकर उसके स्थानपर चूना डालते हैं। इससे खटिक द्विभास्मिक शर्करेत प्राप्त होगा जो कि पानीमें कम विलेय है। इसका १ भाग १३३ भाग पानीमें घुलता है। अतः यह विधि भी व्यापारिक विधि नहीं बन सकती। इसे व्यापारिक विधि बनानेके लिए उसमें और अधिक चूना डालकर त्रिभास्मिक शर्करेत प्राप्त करते हैं जो कि पानीमें अविलेय है। इसे छानकर अलग कर लेते हैं और उसे पानीसे धोते हैं। जब वह धुल चुके तो उसको पानीमें अवलम्बित करके पानीमेंसे कर्बनिकाम्ल गैस प्रवाहित करते हैं अथवा इस त्रिभास्मिक शर्करेतको सीधा शोधक यन्त्रों (क्लेरीफायर) में ले जाते हैं जहाँपर कर्बनेतीकरण (कार्बोनेशन) में कर्बनिकाम्ल गैस

प्रवाहित करनेसे स्वभावतः खाँड़का घोल प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार इन विधियोंसे हमें खाँड़ नं० ३ और शेष बचा हुआ शीरा० नं ३ प्राप्त हो जाते हैं। इसको खाली शीरा (एग्ज़ोस्टेड-मोलासेज़) भी कहते हैं। पहले यह "खाली शीरा" एक रहस्यमय वस्तु थी। जावा-निवासी डाक्टर प्रिन्सन गीर्लिंग्सने इसका पता लगानेके लिए बहुत सारे परीक्षण किये। उसने अपने परीक्षणोंके आधारपर इस शीरे नं० ३ को आदर्श शीरा (आइडियल-मोलासेज़) यह नाम देकर उसकी निम्न परिभाषा की :—

"शीरा उसको कहते हैं जिसमें कि खाँड़, लवण और पानी क्रमशः ५५, २५, और २० के अनुपातमें होवें"। इसी प्रकार इन्हीं डा० साहेबने फैक्ट्री-शीरेपर परीक्षण किये और उससे जो परिणाम निकला उसको निम्न शब्दोंमें रक्खाः—"इस फैक्ट्री शीरेमें खाँड़ और द्राक्ष शर्करा भिन्न-भिन्न अनुपातमें होती हैं। इस सान्द्र मिश्रणमें, कार्बनिक और अकार्बनिक लवण, गोंदीले और तापजनीय पदार्थ, सिलिका, लोहा, खटिक स्फुरेत तथा अन्य इस प्रकारके पदार्थ विलीन या अवलम्बित अवस्थामें होते हैं"।

इस प्रकार हमने शीरेसे भी नं० ३ तक की खाँड़ प्राप्त कर ली है। परन्तु शीरेसे सारी खाँड़का प्राप्त करना तो है भी नितान्त असम्भव। इसका कारण खाँड़की पानीमें बहुत अधिक विलेयता ही है। इतना कुछ करनेपर भी कुछ-न-कुछ खाँड़ शीरेमें रह ही जाती है, और उसीके कारण शीरेका स्वाद मीठा होता है। शीरेके भेद और शीरेसे नं० २ व नं० ३ की खाँड़ोंको प्राप्त करनेकी विधियोंपर विचार कर लेनेके बाद अब हम इस विषयपर आते हैं कि शीरेकी उत्पत्ति किन-किन कारणोंसे होती है तथा शीरेमें जो कभी-कभी खाँड़ अधिक मात्रामें चली जाती है उसे कैसे रोक सकते हैं।

शीरेकी उत्पत्तिमें बाधाएँ

गन्नेके रसमें बहुत प्रकारके रासायनिक लवण होते हैं और जब इस रससे खाँड़ बनाते हैं तो ये लवण खाँड़के स्फटिकीकरणमें बाधा डालते हैं तथा कुछ खाँड़को स्फटिक रूपमें आनेसे रोकते हैं। इन लवणोंकी खाँड़को रोकनेकी इस शक्तिको अँग्रेज़ीमें मोलासेजेनिक पावर कहते हैं। लवणोंकी इसी शक्तिके कारण कुछ खाँड़ 'खाली शीरे' में अवलम्बित अवस्थामें रह जाती है। ये लवण इस प्रकार कितनी खाँड़को रोकते हैं इस विषयमें अभीतक कोई सन्तोषजनक सिद्धान्त नहीं निकला। परन्तु फिर भी कल्पनात्मक रूपमें इन लवणोंका १ भाग ३·५ भाग खाँड़को स्फटिक रूपमें नहीं आने देता परन्तु क्रियात्मक तौरपर यह मात्रा ५ मानी जाती है। यह तो लिखा जा चुका है कि खाँड़ पानीमें बहुत अधिक विलेय है इसीलिए यह सर्वथा असम्भव है कि सारी खाँड़को स्फटिक रूपमें प्राप्त किया जा सके, कुछ-न-कुछ खाँड़ तो अवश्य ही घोलमें रह जायेगी। यह तो प्रायः सबको विदित ही है कि संसारमें जितनी खाँड़ बनती है वह अधिकतर गन्नेसे ही बनाई जाती है। गन्नेके रसमें द्राक्ष शर्करा (ग्लूकोज़) की कुछ मात्रा होती है जो कि खाँड़ बनाते समय बढ़ जाती है। पहिले यही समझा जाता था कि यह मोलासेजेनिक पावर इसी द्राक्ष शर्कराके कारण है अर्थात् इस द्राक्ष शर्कराकी उपस्थितिके कारण खाँड़ स्फटिक रूपमें नहीं आने पाती। परन्तु डा० प्रिन्सन गीर्लिंग्सने शीरेके ऊपर परीक्षण करके उपर्युक्त कल्पनाको सर्वथा अशुद्ध बनाया और साथ ही उसने अपना इस विषयमें विचार रक्खा। उसके विचारमें इसका कारण शीरेकी स्निग्धता ही था, परन्तु पीछे चलकर डा० साहबका विचार भी एक गलत विचार सिद्ध हुआ। इस विषयमें आधुनिक सर्वसम्मत कल्पना यह मानी जाती है कि "खाँड़ शीरेके कुछ पदार्थोंके साथ मिलकर ऐसे यौगिक बनाती है जो कि पानीमें बहुत अधिक विलेय होते हैं। इन यौगियोंकी विलेयता उन-पदार्थोंकी विलेयतासे कहीं अधिक होती है। उदाहरणके

तौरपर नमकका घोल पानीकी अपेक्षा अपनेमें अधिक खाँड़को घोल सकता है। इस प्रकार खाँड़ अत्यधिक विलेय यौगिकोंके रूपमें शीरेमें रहती है और हमें उसके स्फटिक प्राप्त नहीं हो सकते।

फ्रांसमें भी इस विषयका पर्य्याप्त विचार डवर्न-फण्टने कई वर्ष पूर्व किया था। उसने इस शक्तिको देख तथा गणना करके काफी ठीक परिणाम निकाले थे।

यह तो हम बता चुके हैं कि गन्नेके रसमें उपस्थित द्राक्ष शर्कराको सर्व-प्रथम खाँड़के स्फटिकोंकी प्राप्तिमें बाधक माना जाता था। परन्तु अब आधुनिक वैज्ञानिक कल्पनाके अनुसार द्राक्ष शर्करा इक्षु शर्कराकी विलेयताको बढ़ाती नहीं प्रत्युत द्राक्ष शर्कराके साथ-साथ खाँड़के घोल अन्य लवणोंका होना खाँड़के स्फटिक बननेमें बाधक होता है। द्राक्ष शर्करा अकेली बाधक न होकर लवणोंकी उपस्थितिमें खाँड़की विलेयताको कम करती है। इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि जिस घोलमें द्राक्ष-शर्करा और लवण दोनों उपस्थित हों वहाँपर खाँड़का स्फटिकोंके रूपमें अलग होना इस अनुपातमें बढ़ता है जिस अनुपातमें कि वह द्रव लवणोंके अनुपातमें अधिक द्राक्ष शर्कराको रखता है।

इस प्रकार हमने देखा कि शीरेकी उत्पत्तिमें बाधक उन लवणोंकी मोलासेजेनिक पावर ही है जो कि गन्नेके रसमें उपस्थित होते हैं। इसके लिए क्रमशः यह आवश्यक है कि जहाँतक सम्भव हो सके, रससे इन खनिज लवणोंकी उपस्थितिको दूर करें। इन लवणोंको सर्वथा हटा देना तो असम्भव है परन्तु इनकी मात्रामें कमी अवश्य की जा सकती है। उसके लिए हमें उन सब विधियोंका ध्यान रखना चाहिए जिन विधियोंमे इस रसको गुजरना है। इन लवणोंकी कमी होते ही शीरे-में व्यर्थ जानेवाली खाँड़में स्वयमेव कमी हो जायेगी।

लकड़ीके चमत्कार

(अनु०—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० एस-सी०)

लकड़ी भी प्रकृतिका एक चमत्कार है। यूनाइटेड स्टेट्सकी प्रयोगशालामें की हुई खोजोंके फल-स्वरूप लकड़ी अब नये और अद्भुत प्रयोगोंमें लाई जा रही है। इन राष्ट्रीय अन्वेषकोंने ऐसे रासायनिक पदार्थोंको तैयार किया है जिन्हें सोखनेपर लकड़ीमें आग नहीं लगने पाती। इससे लकड़ीका सामान सुविधापूर्वक मज़बूत बन जाता है। उन्होंने इस बातको अत्यन्त सारगर्भित और उपयोगी माना है कि लकड़ीमें स्वाभाविक ही रोधन-शक्ति है और इसकी ऊँचे तापक्रमपर बोझसे दब या टेढ़ी हो टूट जानेकी सम्भावना कम है। अग्निसे प्रति वर्ष जो हानि विशेषकर घरों और व्यापारिक इमारतोंमें होती है वह इस प्रकारकी बनी हुई लकड़ीसे कम की जा सकती है।

लकड़ीका अन्दरसे बाहरकी ओर सुखाना

पहले बहुत लड़को इस कारण खराब जाती थी कि वह बिना चौक पूरे, चटके और टूटे पक्की नहीं की जा सकती थी। यह विश्वास रखते हुए कि लकड़ी रासायनिक रीतिसे भी पक्की हो सकती है वैज्ञानिकोंने प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। वे चाहते थे कि लकड़ी बाहरसे अन्दरकी तरफ़ सूखनेके बजाय अन्दरसे बाहरकी तरफ़ सूखे। इस चेष्टामें उन्हें ३ वर्ष लगे। आखिरकार नमकके घोलमें भिगोकर हरी लकड़ी अन्दरसे बाहरकी ओर सूखा लेनेमें वे सफल हुए। भिगोनेसे लकड़ीकी सतहपर एक नमककी पपड़ी जम जाती है जो पानीके लिए स्नेह रखती है। लकड़ीके अन्दर प्राकृतिक पानीके और नमक-

संपृक्त पृष्ठतलपरके वाष्प-दवावमें इतना अन्तर हो जाता है कि तरी अन्दरसे खिंच बाहर आ वाष्पीभूत हो जाती है और लकड़ी जितनी सुखाना चाहें सुखा सकते हैं। साथ-साथ यह भी मालूम हुआ कि पानीके लिए लकड़ीका स्नेह लकड़ीके लिए पानीके स्नेहसे दूना है। अब कोशिश यह है कि एक ही क्रियामें लकड़ी पक्की भी हो जाय और अग्नि-प्रूफ़ भी।

पॉप्यूलर मिकेनिक्स लिखता है कि दक्षिणी विस्कौन्सिनमें डगलस शनशादके शहतीरोंको १५% तरीतक सुखानेमें १ वर्ष लगता था और क़रीब २ इंच गहरी बेरोक दरारें करनी पड़ती थीं। वे ही अब रासायनिक रीतिसे ३४ दिनमें पक्के हो जाते हैं और खाने केवल सटी हुई गाँठोंपर ही करने पड़ते हैं। दक्षिणका दलदली लाल बलूत नमकके घोलमें १ सप्ताहतक जज़्ब रहनेके बाद २८ दिनमें भट्टेमें सूख जाता है। इसके बिना, इससे सातगुना समय इस प्रकार सूखनेके लिए चाहिए और इमतिनाई चौक खींचने पड़ेंगे।

लकड़ीके बने रेडियो-बुर्ज

लकड़ीके बने रेडियोके बुर्ज क़रीब १०० फुट ऊँचे होते थे। साधारण कीलों और चटख़नीके जोड़ ऊँचाईपर हवाके तूफ़ानमें नहीं ठहर सकते। प्रयत्न करनेपर उन्होंने बिना लकड़ी ख़राब किये लकड़ीके जोड़ और साटोंकी समस्याको हल कर लिया। पहिले बहुत बड़े शहतीर इस्तेमाल किए जाते थे जिनमें बहुत-सी कीलें और चटख़निएँ महफ़ूज़ जोड़ोंके लिए लगाई जा सकती थीं। इस विधिसे लकड़ीके ऊँचे बुर्ज बनाना असम्भव था। अब वैज्ञानिकोंने शहतीरोंमें भार-कोण और स्थितिकी भिन्न-भिन्न दशाओंमें धातुओंके तने हुए जोड़, छल्ला, पत्ती, मेख़, कीली आदिकी मज़बूतीका पता लगाकर पहिले जैसी बड़े शहतीरकी ज़रूरत नहीं रहने दी।

निर्माण-कलाकी ये गूढ़ बातें लकड़ीके ३२६ फुट ऊँचे रेडियोके बुर्ज बनानेमें काम लाई गई हैं। रोधन-शक्ति और अचुम्बकीय गुणोंके कारण ही लकड़ी ऐसे कामोंमें लाई जाती है। केलीफ़ॉर्नियामें एक १८० फुटका मेहराबदार पुल लाल लकड़ीके शहतीरोंका बना है और उसमें बे-हिसाब चटख़नी और कीलोंके बजाय छल्लोंका प्रयोग किया गया है। इसी रीतिसे बन-विभाग भी अपनी सर्वोच्च मीनारें (जिनपरसे आग लगनेका पता चल जाय) बना रहा है। तालाबोंके बुर्ज, रेलवेके सायबान, सिनेमा घर आदि लकड़ीके बन रहे हैं और धातुओंके बने हुए जोड़ इस्तेमाल किये जाते हैं।

लकड़ीकी विजय

अनेकों प्रकारकी मज़बूतीकी परीक्षा होनेपर अब लकड़ी ऐसे कामोंमें लाई जाती है जो कुछ साल पहिले केवल भ्रमात्मक प्रतीत होते थे। नमूनेके तौरपर अन्वेषण-विभागकी इमारतमें प्लाईवुडके दिलहे किवाड़ोंमें लगे हैं जो सरेससे जुड़े हुए ४६ फ़ुट चौड़े मेहराबके चौकठेपर चढ़े हुए हैं। अपनी क़िस्मकी सबसे बढ़िया यह इमारत भविष्यमें लकड़ीके एक नई रीतिमें विस्तृत उपयोगकी सूचना देती है। इस प्रकारकी इमारतें बहुत मज़बूत, चित्ताकर्षक, और कम दामकी होती हैं और इनमें किसी तरहके बाँध या आड़की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रकृतिकी बढ़ईगीरीको मात करनेवाला इन आधुनिक सरेसोंके जादूका यह एक दृष्टान्त है। प्रयोगशालामें की गई पूरी-पूरी जाँचोंने लकड़ीके मेहराबोंके आकारको भी इंजीनियरिंगके पुष्ट आधारपर अवलम्बित कर दिया है। परतदार मेहराबोंके प्रयोगसे बड़े ठोस शहतीरोंके मुड़ जानेकी शिकायत दूर हो गई और बड़े-से-बड़े ठोस सुलभ शहतीरसे अधिक लम्बे मेहराब बन सकते हैं।

लकड़ीके शहतीर

एंजीनियर अब पहिलेसे ३० से ५० प्रतिशततक छोटे शहतीर भारी बोझ सहनेके लिए बना सकता है। इसका कारण यह है कि लकड़ीके व्यवहारके

बारेमें एक पेचीदा प्रश्न हल हो गया है। पक्की करते समय लकड़ीमें जो दरारें हो जाती हैं उनकी जाँच और साथ-साथ उन शहतीरोंकी मज़बूतीके ज्ञान दोनोंसे यह मालूम हुआ कि जिस शहतीरमें या तो बहुत-से चौक खिंचे हों या बहुत मोड़ हों वह वास्तवमें दो शहतीरोंका काम करता है। और सख्त लकड़ीके बुरादेसे कड़ी रबड़ जैसा लचीला पदार्थ बन गया है जो पायदार है और ढाला जा सकता है व मशीनमें इस्तेमाल हो सकता है। इसका घनत्व अधिक, रूप अच्छा और इसकी सतह चमकीली होती है और साधारण रद्दीके भाव बिक सकता है।

लकड़ीका संगठन

लकड़ी छिद्रोज और लिगनिनकी बनी होती है। इसके बारीक दानेकी बनावटको जाँचके लिए इसके एक ही रेशेका ४०० फुटसे बड़ा अभिवर्धन चाहिए। इस प्रकार बड़ा दीखनेपर भी इसमें मकड़ीके जाल जैसे पुरे हुए छोटे-छोटे चौकोर खाने दिखाई पड़ते हैं। देखिये, कितना जटिल पदार्थ है! इन जाँचोंसे छिद्रोजके नये-नये उपयोग खोज हो रहे हैं। छिद्रोज अभी कागज़, बारूद, रोगन, प्लास्टिक आदिके बनानेमें प्रयोग किया जाता है, अब इसके और-और ऐसे गुण खोजनेमें आ रहे हैं जिनसे लाभ उठाया जा सके।

लिगनिनने तो वैज्ञानिकों और व्यापारीगण दोनोंको परेशान कर रक्खा है। इसकी गूढ़ बनावटका पता न चलनेके कारण यह अभी व्यापारमें काफ़ी मात्रामें प्रयोगमें नहीं लाया गया यद्यपि लकड़ीमें यह २५% की मात्रामें है। बन-विभागके कुछ लोगोंने इसे लकड़ीसे अलग कर लिया है और उनका कहना है कि इसका रहस्य जाननेपर इससे आर्थिक स्थितिमें अद्भुत परिवर्तन हो जायगा।

बबूलों द्वारा वायुयानके परोंकी मज़बूतीकी जाँच

इन वनवासी खोजियोंको यह समस्या दी गई कि वे हवाई जहाज़के पर (जो बलात् ज़मीनपर उतरते समय प्रायः टूट जाते हैं) कितने ज़ोरपर मुड़ जाते हैं यह जाननेकी तरकीब निकालें। वैज्ञानिकोंने मालूम किया कि अगर एक असामान्य शक्लका शहतीर एक खोखले नलमें परिणत हो जाय और इस नलके एक सिरेपर साबुनकी एक झिल्ली चिपटा दी जाय तो फूँकनेपर एक चपटा बबूला बन जायगा जिसका घन शहतीरकी मज़बूतीका ठीक नाप होगा। बस उन्होंने (एल्यूमिनियम) की चादरमें हवाई जहाज़के परके ठीक नापके छेद किये। इन छेदोंमेंसे एक बबूलेको फूँका और एक सूक्ष्ममापकसे (माइक्रोमीटर स्क्रू) उसके घनको नापा। लेकिन पहिले उन्हें एक ख़ास साबुन बनाना पड़ा जिसके बबूलेकी झिल्ली घंटोंतक क़ायम रहे और जो छूनेपर भी न फटे। प्रयोगाभ्यासमें ही कई महीने लगे। आख़िरकार वे कामयाब हुए और इस प्रश्नके हल करनेमें फूँके हुए बबूलोंकी सहायता मिली।

मनुष्य-शरीरमें तत्वोंका समावेश

[ले०—श्री लक्ष्मीदत्त तिवारी, एम० एस-सी०]

प्रकृतिके रहस्योंका पता लगाना असम्भव भले ही न हो परन्तु कठिन अवश्य है। विज्ञानका उद्देश्य इन रहस्योंका पता लगाना है। इस प्रयासमें विज्ञान बार-बार भूलें करता ही रहता है और फिर अपनी भूलोंको स्वयं ही सुधार लेता है।

मनुष्य-शरीरका तौलमें दो-तिहाई भाग पानी ही पानी है। शेष एक-तिहाईमें अनेक तत्व पाये गये हैं। पुराने वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया था कि मनुष्य-शरीरमें लोहा, सैन्धकम् (सोडियम), पांशुजम् (पोटेशियम), खटिकम् (कैल्शियम्,) मैग्नीशियम, गन्धक,

स्फुर (फॉस्फोरस), शैलम् (सिलिकन) हरिन् (क्लोरीन) और प्लविन् (फ्लोरीन) आदि दस तत्व रहते हैं। जब कभी इन तत्वोंकी मात्रा किसी तरह शरीरमें कम होने लगती है तो शरीरमें रोगके चिह्न दिखलाई देने लगते हैं।

प्रकृतिने हमारे खानेकी चीजोंमें इन तत्वोंको इस तरह बाँट दिया है कि वे नियमित रूपसे हमारे शरीरमें पहुँचते रहते हैं। इसीलिए होना तो प्रत्येक मनुष्यको स्वस्थ ही चाहिए मगर ऐसा नहीं होता। इसका मुख्य कारण ठीक भोजनका न मिलना है। जैसे पानी पीना शरीरके लिए आवश्यक है परन्तु मैला पानी पीना हानिकारक है ठीक इसी तरह जो लोग बीमार पड़ते हैं वे भोजन तो अवश्य करते हैं पर उनका भोजन ऐसा होता है जिसमें किसी पोषक तत्वका अभाव है। हमारा मतलब यहाँपर ऐसे रोगोंसे है जो शरीरमें तत्वोंके अभावसे पैदा होते हैं।

मनुष्यके रुधिरमें लोहेका अंश प्रधान होता है। रुधिरके कम हो जानेके रोगमें ताँबेका कुछ अंश रुधिर-में पहुँचा दिया जाता है। यद्यपि पुराने वैज्ञानिकोंको रुधिरके साथ ताँबेका कोई भी सम्बन्ध नहीं ज्ञात था परन्तु अब यह निश्चय रूपसे कहा जा सकता है कि जिस समय रुधिरमें हेमोग्लोबिन बनता है उस समय रासायनिक प्रक्रियाको उत्तेजित करनेमें ताँबा लोहेको सहायता देता है। आजकल कुछ लोगोंका यह मत है कि कोबल्ट भी ताँबेकी तरह इस प्रक्रियामें सहायक है क्योंकि कुछ अंश कोबल्टका भी शरीरमें पाया गया है। वैसे तो रासायनिक गुणोंमें निकिलकी समानता लोहेके साथ अवश्य है पर निकिल रुधिरमें लोहेके स्थानको ग्रहण करके शरीर-यन्त्रको नहीं चला सकता।

लोहेके बाद स्फुर और गन्धकका अंश हमारे शरीरमें अधिक रहता है। हेमोग्लोबिन अल्ब्यूमिन इत्यादि जो प्रत्यामीन शरीरमें होते हैं उनमें गन्धक यौगिकके रूपमें उपस्थित रहता है। स्फुरके अभावमें बच्चोंका सिर बढ़ने लगता है और पीठमें कूबड़ निकल आता है। जिन माताओंके शरीरमें खटिकम्की कमी होती है उनके बच्चोंमें बहुधा यह रोग हुआ करता है। अस्तु, इसमें बच्चोंके शरीरमें खटिकम् पहुँचाना भी आवश्यक है। खटिकम्, मगनीसम्, सैन्धकम् और पांशुजम् इन चारों तत्वोंका आपसमें एक बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। ये अपना प्रभाव दिखलानेमें एक दूसरेपर आश्रित हैं। मस्तिष्क और माँस-पेशियोंपर इनका पूर्ण शासन है। दूसरी विशेषता यह है कि जब शरीरमें सैन्धकम्का अंश बढ़ जाता है और खटिकम्-की मात्रा कम होने लगती है तो हृदयकी माँस-पेशी बिल्कुल ही शिथिल हो जाती है। इसके विपरीत खटिकम्के बढ़ जाने और सैन्धकमके घट जानेपर हृदय सिकुड़ जाता है। दोनों हालतें मौतका ही आवाहन करती हैं। यद्यपि पांशुजम्का गुण सैन्धकम्के समान और मगनीसम्का खटिकम्के ही समान है परन्तु एकके बदले दूसरा काम नहीं आता। चारोंका अनुपात सम और स्थिर ही रहना चाहिए।

सभी तत्वोंके कण विद्युत-शक्ति-वाहक होते हैं। ऊपर कहे हुए तत्वोंके कणोंमें धन-विद्युत-शक्ति रहती है। इस विद्युत-शक्तिके प्रभावको शरीरमें हीन करनेके लिए ऋण-विद्युत-शक्ति-वाहक कणोंकी आवश्यकता पड़ती है। हरिन्के कण ऋण-विद्युत-शक्ति-वाहक होते हैं। अस्तु, इनका पहिला काम तो शरीरमें और तत्वों द्वारा निर्मित धन-विद्युत-शक्तिको हीन करना है और दूसरा काम पेटमें उदहरिकाम्ल पैदा करना है जो कि पाचन क्रियाके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य पदार्थ जो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें शरीरमें पाये जाते हैं परन्तु जिनकी आवश्यकताका अभी कुछ ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका है जस्ता, संखिया, और मैंगनीज़ हैं। मैंगनीज़के विषय-में वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें किये गये प्रयोगोंके आधारपर इतना ही कहा जा सकता है कि यह शरीरमें पोषण-क्रिया-प्रेरक है क्योंकि जिन चूहोंको

मैंगनीजके अंशसे रहित भोजन दिया जाता था उनके बच्चे शीघ्र और बहुधा मर जाते थे।

अब तो शरीरमें नैलिन् (आयोडीन) का होना भी आवश्यक समझा जाता है। इसके अभावसे गर्दन-की नसें फूलने लगती हैं। इसके रहनेका मुख्य स्थान थायरॉयड ग्रन्थि है। जब थायरॉयड ग्रन्थि ठीक तरहसे काम नहीं करती है तो शरीरकी वृद्धि रुक जाती है। यही कारण है कि ट्रायरॉक्सिनके उपयोगसे बौनोंको लाभ होता है।

प्लविन् जो कुछ काल पूर्व शरीरमें उपयोगी तत्व समझा जाता था, और जिसको यह स्थान विज्ञान ही द्वारा मिला था, आज दिन शरीरके लिए अनावश्यक ही नहीं समझा जाता, बल्कि दाँतोंपर न निकलने-वाले भूरे दागोंके लगनेका दोष भी इसीके सिर मढ़ा जाता है। जिस पानीमें ·०००१ प्रतिशत प्लविन घुला हुआ हो वह पानी पीने योग्य नहीं समझा जाता।

मनुष्य-शरीर-सम्बन्धी सारे प्रयोग वैज्ञानिक रीति-से जानवरों पर ही किये जाते हैं। इसमें बहुत कठि-नाइयाँ पड़ती हैं और साधारण असावधानीसे असा-धारण त्रुटियाँ उपस्थित हो जाती हैं। अनेक प्रयत्न करनेपर भी अभी विज्ञान द्वारा हमारे शरीरकी पूर्ण व्याख्या नहीं हो सकी है। सत्य तो यह है कि हमारा विज्ञान प्रकृति-निर्माण-विज्ञानके समक्ष तुच्छ और नगण्य है।

सूर्य-उद्गार और रेडियोकी आँख-मिचौनी

[ले०—श्री कल्याणवक्ष माथुर]

मेरु ज्योतियोंका अपूर्व दृश्य

पृथ्वीके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके निकटके वायु-मंडलमें बहुधा एक अनोखी ज्योति दृष्टिगोचर होती है जिसका रंग अधिकतर हरा और सफ़ेद मिला होता है, परन्तु उसके अन्दर कहीं-कहीं लाल रश्मियाँ भी दिखलाई दे जाती हैं। इस ज्योतिको उत्तरी खंडमें सुमेरु ज्योति (ओरोरा बोरियेलिस) और दक्षिणी खंडमें कुमेरु ज्योति (ओरोरा आस्ट्रियेलिस) कहते हैं। यह ज्योति नीचेके अक्षांशोंमें बहुत कम देखी गई है। गत २५ और २६ जनवरीको एक ऐसी ही अत्यन्त देदीप्यमान ज्योति काफ़ी नीचे अक्षांशोंमें यहाँतक कि जिब्राल्टर और सिसिलीतक दिखलाई दी थी। इस घटनाके पूर्व सूर्यपर एक विशेष और बड़ा धब्बा दृष्टि-गोचर हुआ था जो कि कोरी आँखसे भी साफ़-साफ़ देखा जा सकता था। जब यह धब्बा सूर्यमंडलके छोरपर अदृश्य हो गया उसके एक सप्ताह बाद यह घटना हुई। हाँ, जिस समय यह ज्योति दिखाई दी उस समय सूर्यपर कोई विशेष धब्बा दृष्टिगोचर नहीं हुआ। परन्तु इसके साथ-साथ चुम्बकीय तूफ़ान अवश्य आया। ये तूफ़ान बहुधा ऐसी दीप्त ज्योतियोंके साथ-साथ आया करते हैं। सूर्यके कारण ये ज्योतियाँ कैसे दिखाई देती हैं और ये तूफ़ान कैसे आते हैं यह अभीतक एक जटिल समस्या है।

रेडियोका एकदम बन्द हो जाना

"वायुमंडल और पृथ्वीके चुम्बकत्वपर सूर्य क्या-क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषयपर गत वर्ष विशेष खोज हुई है। प्रयोगके विचारसे सूर्यका यह प्रभाव अत्यन्त महत्वका है क्योंकि इसके कारण उच्च आवृत्तियोंकी रेडियो-तरंगोंका परावर्तन या उत्तरण कुछ मिनटोंके लिए और कभी-कभी तो लगभग एक घंटेभरके लिए बन्द हो जाता है। इसे रेडियो—फेडआउट या रेडियोकी आँख-मिचौनी कहते हैं। यह रेडियो इंजनीयरोंके

लिए एक अत्यन्त गूढ़ विषय है। रेडियो फेड-आउटके समय एक दूरके प्रेषक स्टेशनसे आई हुई रेडियो-तरंगोंकी तीव्रता एक दमसे इतनी कम हो जाती है कि या तो जो सिगनल भेजा जा रहा है कुछ समझमें ही नहीं आता या बिल्कुल गायब हो जाता है मानों रेडियो आँख-मिचौनी खेल रहा हो। और सुननेवाले यह समझते हैं कि या तो प्रेषक स्टेशनने सिगनल भेजना बन्द कर दिया है या उनके ग्राहक (रिसीवर) में एक-दमसे कुछ खराबी हो गई है। बहुत-से ग्राहक-यंत्र इस समय उनमें खराबी तलाश करनेके लिए व्यर्थ खोले जाते हैं।

दिन दहाड़े आँख-मिचौनी

हालमें इस विषयने वैज्ञानिकोंका ध्यान आकर्षित किया है। सबसे पहले सन १९३५ के अक्टूबरमें संयुक्त राज्य, अमरीकाके ब्यूरो ऑफ् स्टेण्डर्डस्‌के डा० जे० अच डलिंजरने उस सालके मार्च, मई, जुलाई और अगस्तके रेडियोकी आँख-मिचौनीके विषयमें प्रकाश डाला। उन्होंने यह पहले ही मालूम कर लिया था कि ये पृथ्वीके उसी खंडमें होते हैं जहाँपर दिन होता है और यदि हमारे सिगनल उस हिस्सेसे होकर जाते हों जहाँपर रात है तो उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उनका मत है कि यह आँख-मिचौनी किसी सूर्य-उद्‌गारके कारण होती है। ये उद्‌गार कुछ मिनटोंके लिए रहते हैं इसलिए डा० डलिंजरने ज्योतिषियोंसे सूर्यके उद्‌गारोंकी खोज करनेके लिए कहा। उन्होंने पृथ्वी-विज्ञानके खोज करनेवालोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि वे देखें कि इन आँख-मिचौनियोंके साथ-साथ पार्थिव-चुम्बकत्व और पार्थिव-धारामें भी परिवर्तन होता है अथवा नहीं।

आँख-मिचौनीका सूर्यके उद्‌गारोंसे संबन्ध

कुछ ही समय बाद माउंट विल्सन, कैलीफोर्निया और ग्रीनविचके ज्योतिषियोंने यह साबित कर दिया कि डा० डलिंजरके कथनानुसार रेडियो फेड-आउट अर्थात् आँख-मिचौनीके समय सूर्यपर छोटे-छोटे उद्‌गार होते हैं। सन् १९३५ और ३६ में कुल ११८ रेडियो फेड-आउट पृथ्वीके बहुत-से भागोंमें साथ-साथ पाये गये जिनमेंसे लगभग आधोंके साथ-साथ सूर्य-उद्‌गार भी देखे गये। सूर्यकी हम बहुत देरतक लगातार गहरी खोज नहीं कर सकते; इसलिए यह संभव है कि बहुत-से उद्‌गार देखे ही नहीं जा सके। अतः अब हम विश्वासके साथ कह सकते हैं कि रेडियो फेड-आउट और सूर्य-उद्‌गार साथ-साथ होते हैं।

सूर्यके उद्‌गारोंको कैसे देखें ?

इन उद्‌गारोंका या तो फोटोग्राफ लिया जाता है या एक विशेष यंत्रकी सहायतासे जिसे वर्णपट-सूर्यदर्शक (स्पेक्ट्रो-हीलिओस्कोप) कहते हैं इन्हें देखा जाता है। सूर्यकी रोशनीको वर्णपट-दर्शक यंत्रसे वर्णपटमें विभाजित कर देते हैं और एक विशेष रंगकी रोशनीका फोटोग्राफ ले लिया जाता है या आँखों ही से उसकी परीक्षा की जाती है। सूर्यके उद्‌गारित स्थानपर चमककी वृद्धि होनेपर तमाम रंगोंमें समान वृद्धि नहीं होती। वर्णपटकी कुछ विशेष रेखाओंमें तथा नील-लोहितोत्तर भागमें वह वृद्धि विशेष रूपसे पाई जाती है। वह रोशनी जिसके कारण रेडियो फेड-आउट होते हैं ऊपरी वायुमंडलमें शोषण हो जानेके कारण हम-तक नहीं आती; इसलिए हम उसके विषयोंमें खोज करनेमें असमर्थ हैं। यदि हमें इनकी खोज करनी है तो जैसा कि डा० मेघनाद सहाने अपना मत प्रगट किया है हमें पृथ्वीकी सतहसे ऊपर करीब १५ मीलकी दूरीपर स्ट्रेटोस्फीयरमें एक वेधशाला बनानी चाहिए।

आँख-मिचौनी का सिद्धान्त

सूर्य-उद्‌गारोंका पृथ्वीपर प्रभाव, उनके सूर्य-मंडलपर घटित होनेके स्थान-विशेषपर निर्भर नहीं

इन उद्गारोंसे निकला हुआ नील-लोहितोत्तर प्रकाश सूर्य द्वारा प्रकाशित वायुमंडलपर गिरता है और इसमें इसका शोषण हो जाता है और साथ ही साथ वायुको यापित करता है यानी उदासीन अणुओंको दो भागोंमें विभाजित कर देता है जिनका विद्युत् आवेश अभिमुख होता है। रेडियोके नये-नये प्रयोगों द्वारा इस बातकी भी खोज की जा रही है कि इन उद्गारों-का ऊपरके यापित भागों या यापनमंडल (आयनो-स्फीयर) पर क्या प्रभाव पड़ता है।

यह हम जानते हैं कि बहुधा ऊपर दो यापित सतहें रहती हैं जो पृथ्वीसे दूर जानेवाले सिगनलोंको बिना शोषण किये हुए वापिस भेजकर हमें दूर-दूरके सिगनलोंके सुननेमें बड़ी सहायता देती हैं। रेडियो फेड-आउटके समय इन सतहोंके नीचे पृथ्वीसे करीब ५० मीलकी दूरीपर एक नई यापित सतह बन जाती है। इस नई सतहमें घनत्व काफी ज्यादा होनेके कारण उच्च आवृतिकी रेडियो-तरंगें शोषित हो जाती हैं और इसलिए ऊपरकी सतहतक न पहुँचनेके कारण पृथ्वीपर वापस नहीं आती हैं और फलतः रेडियो फेड-आउट होता है। इन नई यापित सतहोंका साधारणतः वर्त्तमान रहनेवाली यापित सतहोंसे नीचे होना यह साफ-साफ बताता है कि सूर्य-उद्गारोंके समय जो नील-लोहितोत्तर प्रकाश निकलता है, वह उस प्रकाश-से, जिसके कारण रोज़की यापित सतहें पैदा होती हैं, ज्यादा तीव्र है। जैसे ही सूर्य-उद्गार बन्द हुआ कि इस नई सतहके धनात्मक और ऋणात्मक आवेशवाले परमाणु मिलकर उदासीन परमाणुओंकी रचना करते हैं और तब इस सतहका रेडियोकी तरंगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; फलतः रेडियो फेड-आउटका भी लोप हो जाता है। सूर्य-उद्गारका दैनिक यापित सतहोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यदि रेडियो-इंजीनियरोंको पहलेसे मालूम हो जाय कि कब रेडियो फेड-आउट होगा तो वे या तो सिगनलोंकी तरंग-लम्बा बदलकर या उन्हें उस रास्तेसे भेजकर जहाँपर रात्रि है इसे रोक सकते हैं यद्यपि सूर्य-उद्गारों और उससे संबन्धित घटनाओंकी काफी खोज हो रही है तथापि सौर्य वैज्ञानिक अभीतक यह बतानेमें सफल नहीं हो सके हैं कि ये सूर्य-उद्गार क्यों और कब उत्पन्न होते हैं।

बिजलीका झटका (शॉक) लगनेपर क्या करें ?

बिजलीका तार छू जानेसे गिरे रोगीको छूनेके पहले देख लो कि अब भी रोगीसे कोई ऐसा तार तो नहीं छुआ है जिसमें बिजली आ रही हो। यदि ऐसा हो तो बिजलीका स्विच बन्द कर दो या सूखी लाठीसे तार हटा दो या स्वयं सूखी लकड़ीपर खड़े होकर या रबड़के तलेवाले जूते पहनकर रोगीको खींच लो। रोगीको शीघ्र खुली हवामें लिटाकर उसका कपड़ा ढीलाकर कृत्रिम श्वासका संचार करो ; मुँहपर ठंडे जलका छींटा दो। शरीरको रगड़कर या गरम पानीके बोतलसे गरमी लाओ। अमोनिया सुँघाओ। होश आनेपर गरम चाय, दूध, ब्रैण्डी आदि दो।
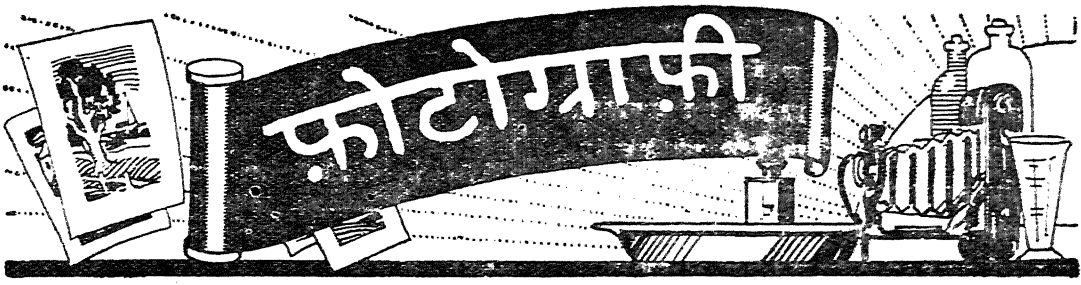
रात्रिके समय फ़ोटोग्राफ़ी

[ले०—डा० गोरखप्रसादजी, डी० एस-सी०]

रात्रिके समय फ़ोटो उतारना फ़ोटोग्राफ़ीका बहुत ही चित्ताकर्षक भाग है। इधर बहुत तेज़ प्लेट और बहुत तेज़ लैंसोंके बन जानेसे इस विभागमें बड़ी सहायता मिली है। बड़े शहरोंमें जहाँ बिजली या गैसकी रोशनी होती है वहाँ आधुनिक लैंसों और प्लेटोंसे चलते-फिरते राहगीरोंका स्नैपशॉट काफ़ी आसानीसे लिया जा सकता है।

पैन्क्रोमैटिक प्लेट या फ़िल्म अब बहुत आसानी से मिलते हैं और सब तरहके कैमरोंमें लगाये जा सकते हैं। उनके प्रयोगमें न तो कोई ख़ास कठिनाई है और न विशेष ख़र्च। हाँ, तेज़ लैंसोंका मूल्य बहुत अधिक होता है।

सड़कके दृश्योंका चित्र लेनेके लिए एक-बटे-बीस या एक-बटे-तीससे कमका प्रकाश-दर्शन देना पड़ता है। इसके लिए तेज़-से तेज़ पैन्क्रोमैटिक प्लेट या फ़िल्मका प्रयोग करनेपर भी फ़ × [illegible] से छोटा लैंस रहनेपर कुछ भी काम न हो सकेगा। परन्तु अब बहुत-से कैमरोंमें फ़ ३ या फ़ ५ के लैंस लगे रहते हैं और उनसे काफ़ी कम प्रकाशवाले दृश्योंका भी फ़ोटो उतर सकता है। तेज़ लैंसोंसे थ्येटरके ऐक्टरोंका फ़ोटो भी आसानीसे उतर सकता है।

बड़े लैंसोंके प्रयोगमें फ़ोकस बड़ी सावधानीसे करना चाहिए। जिन कैमरोंमें दूरीमापक (रेंज-फ़ाइंडर) लगा रहता है उनमें फ़ोकस करनेमें आसानी पड़ती है। परन्तु यदि दूरीमापक न भी लगा हो तो भी सावधानीसे काम करनेपर कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़नी चाहिए। लैंसके सामने गहरा चोंगा (हुड) लगा देना अच्छा होगा जिससे छेदके बाहरकी रोशनी लैंसपर न पड़े। यदि चोंगा न लगा रहेगा तो प्लेटमें धुँधपन हो जायगा।

साधारण प्लेटोंकी अपेक्षा पैंक्रोमैटिक प्लेट रातके समय अपेक्षाकृत अधिक तेज़ होते हैं। उदाहरणार्थ यदि दो प्लेट दिनके समय एक ही तेज़ीके हों और उनमें एक साधारण प्लेट हो और दूसरा पैन्क्रोमैटिक हो तो रातके समय पैन्क्रोमैटिक प्लेट दूसरेकी अपेक्षा लगभग तीनगुना तेज़ होगा। कारण यह है कि कृत्रिम प्रकाशमें सूर्यके प्रकाशकी अपेक्षा लाली अधिक होती है और साधारण प्लेटपर लाल प्रकाश कुछ असर नहीं डालता। यह आवश्यक है कि यदि प्लेट इस्तेमाल किये जायँ तो वे बैक्ड प्लेट हों अर्थात प्लेटोंकी पीठपर ऐसी कोई कालिख लगी हो जिससे पीठसे लौटकर रोशनी फ़ोटोके मसालेपर असर न कर सके; नहीं तो

चित्रमें वह दोष दिखलाई पड़ेगा जिसे हैलेशन कहते हैं। हैलेशनके कारण चित्रमें तेज़ रोशनी बहुत फैली हुई दिखलाई पड़ती है।

तेज़ लैंस, गहरा चौंगा और बहुत तेज़ पैन्क्रोमैटिक प्लेटसे सुसज्जित होकर रातके सुन्दर दृश्योंपर धावा मारा जा सकता है। पहिले आज़माइशके लिए थ्येटर या सिनेमा घरोंके दालान उपयुक्त होंगे क्योंकि यहाँ साधारणतया रोशनी बहुत तेज़ होती है। शायद पच्चीस-तीस फ़ुटकी दूरीसे फ़ोटो लेना उचित होगा। खींचनेके लिए ऐसा अवसर चुनना चाहिए जब बहुत भीड़ न हो।

यदि लैंस बहुत तेज़ न हों तो १/१० सैकिंडका प्रकाश-दर्शन देकर देखना चाहिए कि चित्र कैसा आता है। परन्तु इतना अधिक प्रकाश-दर्शन देनेमें डर यह रहता है कि चलते हुए लोग चित्रमें हिल जायँगे और उनका चित्र अतीक्ष्ण आयेगा। थोड़े-से सब्रसे ऐसा अवसर चुना जा सकता है जब कोई भी व्यक्ति तेज़ीसे चलता न हो। हो सकता है कि इसके लिए दस या पन्द्रह मिनट ठहरना पड़े। इसकी चिन्ता न करो ; प्लेट ख़राब करनेके बदले ठहरना ही उचित है। जबतक उचित अवसरकी प्रतीक्षा की जाय तब-तक केमराको छिपाये रखना ही ठीक है। इसे पॉकिटमें रख लिया जाय या फ़ोटोग्राफ़र अँधेरेमें खड़ा रहे क्योंकि रातके वक्त कैमरा देखकर लोग अक्सर भीड़ लगा लेते हैं; परन्तु फ़ोकस दुरुस्त करके कैमरा तैयार रक्खा जाय।

मैटिल डैवलपर द्वारा डैवलप करनेसे प्लेट अच्छे आयँगे यद्यपि किसी भी डैवलपरका प्रयोग काफ़ी पानी मिलाकर किया जा सकता है। नेगेटिव अक्सर इतने पतले होते हैं कि उनसे कुछ भी आशा नहीं की जा सकती। परन्तु बिना छापे किसी भी नेगेटिवको फेंकना नहीं चाहिए क्योंकि अक्सर एकदम अत्यन्त हलके नेगेटिवसे अत्यन्त सुन्दर चित्र बनता है। कभी-कभी नेगेटिवपर प्रकाश-अंतर आवश्यकतासे अधिक होता है। यदि कोई नेगेटिव इस प्रकारका हो तो उसे ब्लीच (सफ़ेद) करके फिरसे डेवलप करना चाहिए। नुसख़ा किसी भी फ़ोटोग्राफ़ीकी अच्छी पुस्तकमें मिल जायगा। यदि प्रकाशका अंतर बहुत कम हो तो नेगेटिवको इंटैंसीफ़ाइ कर देना चाहिए।

कभी-कभी नेगेटिव इतना पतला होता है कि किसी भी तरहसे क्यों न इंटैंसीफ़ाइ किया जाय वह छापने योग्य नहीं बनाया जा सकता। ऐसे नेगेटिवको मरकरी-बाइ-क्लोराइडके घोलसे सफ़ेद करनेके बाद उसे डेवलपरमें डालनेके बदले पानीसे ख़ूब धोना चाहिए। जब नेगेटिवका चित्र ख़ूब सफ़ेद हो जाय तब नेगेटिवकी पीठको किसी अच्छे काले रंगसे रँग देना चाहिए। चित्र अब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगेगा। इसकी नक़ल प्रोसेस-प्लेटपर करनी चाहिए और उसको इतना डेवलप करना चाहिए कि प्रकाश-अंतर ख़ूब आये। इसके छापनेसे अच्छे चित्र बन सकेंगे।

यदि मनुष्य आदि कोई चलती चीज़ चित्रमें न रहे तो साधारण कैमरासे बहुत बढ़िया चित्र खींचा जा सकता है। यदि लैंसका छेद बहुत ही छोटा कर दिया जाय जिससे प्रकाश-दर्शन बढ़कर कई सैकिंडका हो जाय तो चलते हुए मनुष्यका चित्र प्लेटपर आयेगा ही नहीं। परन्तु तब ख़्याल रखना चाहिए कि मोटर आदि तेज़ रोशनीवाली चीज़ें दृष्टि-क्षेत्रमें होकर न निकल जायँ नहीं तो उनकी रोशनीकी एक रेखा चित्रमें खिंच जायगी। प्रकाश-दर्शन देते समय यदि कोई आ जाय तो लैंसके सामने हाथ या काली दफ़्ती खड़ी कर देनी चाहिए और मोटरके निकल जानेके बाद उसे हटा देना चाहिए।

मधुमक्खी-पालन

[ले०—श्री रमेश आयुर्वेदालंकार]

भारतमें मधुमक्खी-पालनकी ओर पिछले चालीस सालोंसे लोगोंका ध्यान खिंचा और सरकारने भी इसमें तभीसे दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ की। वर्तमान समयमें यह व्यवसाय भारतमें कई स्थानोंपर सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। मधुमक्खी-पालनके लिए हमारे देशमें अभी बहुत अधिक क्षेत्र है; विशेषकर पर्वतीय प्रदेशोंमें यह अच्छी सफलताके साथ चलाया जा सकता है। उत्तर भारतमें हिमालयमें काश्मीर काङ्गड़ा, कुल्लू, होशियारपुर, मण्डी स्टेट, मसूरी, गढ़वाल, नैनीताल आदिमें इसके लिए उपयुक्त स्थान हैं। पहाड़ोंपर मक्खियाँ अधिक अच्छा और परिमाणमें भी अधिक शहद उत्पन्न करती हैं। दक्षिण भारतमें त्रावनकोर. नीलगिरी, कोयम्बटूर, सेलम, कुर्ग आदि पश्चिम घाटके नौ सौ मील लम्बे क्षेत्रमें और पूर्व और पश्चिम घाटमें तथा आबू, विन्ध्य आदि पहाड़ोंमें भी यह उद्योग चलाया जा सकता है। उपरोक्त स्थानोंमें कई जगह अच्छी सफलता मिली है। गृह-उद्योग के अतिरिक्त व्यापारिक परिमाणमें भी शहद उन स्थानोंसे बाज़ारमें आने लगा है।

यह एक ऐसा उद्योग है जिससे अमीर-ग़रीब सब लाभ उठा सकते हैं। उसके लिए बड़ी पूंजी और लम्बे-चौड़े स्थानकी आवश्यकता नहीं होती। थोड़े-से परिश्रम और ध्यानसे यह कार्य कोई भी व्यक्ति अपने कमानेके धन्धेको करता हुआ भी इसे सहायक उद्योग के रूपमें सुगमतासे कर सकता है। माली, किसान, बढ़ई, घड़ीसाज़, वकील, व्यापारी, मिशनरी, सरकारी उच्च ऑफ़िसर, कॉलेजके प्रोफ़ेसर, स्कूलके मास्टर और विद्यार्थी आदि सभी प्रकारके वर्गोंके व्यक्तियोंको हमने मधुमक्खियाँ पालते देखा है। इनमेंसे कुछ यूरोपियन भी हैं।

अवकाशके समय इस गृह-उद्योगका अभ्यास मनोरञ्जनके साथ-साथ हमें दुनियादारीकी चिन्ताओंसे भी कुछ देरके लिए मुक्त कर देता है। खेती और बाग़वानीका काम करनेवालोंके लिए यह धन्धा बहुत लाभप्रद है। परिश्रमी मक्खियाँ फूलोंके पुंकेसरको मादा केसरसे मिलाकर उन्हें अधिक उपजाऊ बना देती हैं। परिणामतः फ़सलकी पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाती है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए दक्षिण भारतके कई स्थानोंपर ग़रीब किसानों और फलोंकी खेती करनेवालोंने इसी उद्देश्यसे मक्खियोंका पालना प्रारम्भ किया है। ग्रामवासियोंको इस उद्योगके कारण एक मूल्यवान पदार्थ मधु तो मिलता ही है परंतु उनकी आयको भी यह उद्योग काफ़ी बढ़ा देता है, विशेषकर हमारे देशमें जहाँ कि और देशोंके मुक़ाबलेमें मधुमक्खियाँ अधिक होती हैं।

बहुत प्राचीन समयसे पृथ्वीके प्रत्येक भागमें मधुका आदर होता आया है। भारतमें शहदका प्रयोग कई हज़ार वर्षोंसे हो रहा है। वैदिक कालमें यह औषध तथा खाद्य पदार्थके रूपमें इस्तेमाल किया जाता था। हिन्दुओंकी पूजाविधि तथा पञ्चामृत अभिषेकमें यह मुख्य पदार्थ है। श्राद्धमें स्वर्गस्थ आत्माकी तृप्तिके लिए जो पिण्डदान दिया जाता है उसमें मधुके बिना काम नहीं चलता। पहिले मधु नित्य प्रयोजनीय वस्तुओंमें था परन्तु अनेक कारणोंसे इस समय देशमें इसका उतना प्रचार नहीं है। आयुर्वेदमें इसका प्रयोग बहुत विस्तृत रूपमें मिलता है। च्यवन प्राश आदि अवलेह, मकरध्वज आदि रस तथा अनेकानेक चूर्ण, वटी, कषाय आदि सिद्ध औषधके साथ इसका प्रयोग होता है। इसके बिना भारतीय चिकित्सा शास्त्र पंगु है। हिन्दु चिकित्साके सर्वोत्तम प्राचीन ग्रन्थ सुश्रुत-

के अध्ययनसे हमें मालूम होता है कि उस कालके लोगोंने इस विषयका बहुत विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। मधु उत्पन्न करनेवाली मक्खियोंके भेद और विभिन्न प्रकारके शहदोंके ऊपर विद्वान् लेखकने बहुत उत्तमतासे विचार किया है। यह ग्रन्थ लगभग तीन हज़ार साल पहिलेका लिखा हुआ है। इससे मालूम होता है कि संसारके किसी भी देशकी जातिकी अपेक्षा सबसे पूर्व भारतीयोंने इस विषयके अध्ययनकी ओर ध्यान दिया था।

वर्तमान समयमें भारतके पर्वतीय ग्रामोंमें किसी-किसी स्थानपर यह उद्योग देखनेमें आता है। बड़े-बड़े मटकों, दीवारके छिद्रों और लकड़ीके खोखलोंमें मक्खी पाली जाती है। मधु इकट्ठा हो जानेपर सालमें दो या तीन बार छत्ते काटकर शहद निचोड़ लिया जाता है और छत्ते फेंक दिये जाते हैं। इस विधिमें निम्न दोष हैः—

१—छत्तेके निचोड़नेमें मक्खियोंके अण्डों-बच्चोंके पिस जानेकी पूर्ण सम्भावना रहती है जिससे शहद शुद्ध नहीं प्राप्त हो सकता।

२—यह शहद जल्दी ही बिगड़ जाता है। ख़मीर उठकर दुर्गन्ध आने लगती है और स्वाद खट्टा हो जाता है।

३—अण्डे-बच्चे मर जानेसे मक्खियोंके वंशका नाश हो जाता है और हिंसाका पाप लगता है।

४—परिमाणमें शहद कम प्राप्त होता है। नये तरीकेमें इसकी अपेक्षा पाँचगुना अधिक निकलता है। इस प्रकारकी कई हानियाँ इसमें हैं जिन्हें पाठक आगे पढ़नेसे क्रमशः समझ सकेंगे।

अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड जैसे देशोंमें यह व्यवसाय उन्नत विधियोंके अनुसार सफलतापूर्वक किया जा रहा है। वहाँ शहदकी पैदावार टनों और वैगनोंमें तोली जाती है। अमेरिकामें हर साल छः करोड़ रुपयेका शहद पैदा होता है और मक्खी पालनेसे कुल लाभ नब्बे करोड़ रुपयेका प्रति-वर्ष होता है। वहाँ बहुत-से लोगोंके पास सैकड़ों और हज़ारोंकी संख्यामें पेटीमें पाली हुई शहदकी मक्खी-के छत्ते होते हैं। इन देशोंमें मक्खी पालनेकी नई क़िस्मकी पेटियों और शहद निकालनेके बिजलीके यन्त्रोंका आविष्कार हो जानेसे इस व्यवसायमें बहुत तरक्की हुई है और आजकल तो मनोरञ्जन और आर्थिक लाभ प्रत्येक दृष्टिसे यह उद्योग इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है कि लाखों नर-नारियों द्वारा किया जा रहा है; लाखों बेकारोंको इससे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूपसे काम भी मिलता है। किन्तु अभीतक भारत उसके प्रारम्भिक ज्ञानसे भी बिलकुल अनभिज्ञ है, यद्यपि यहाँपर इस व्यवसायके लिए बड़ा भारी क्षेत्र विद्यमान है। और यदि आधुनिक साधनोंका उपयोग करके इसका प्रचार किया जाय तो बहुत अधिक शहद पैदा किया जा सकता है, और विदेशोंसे हरसाल भारतमें आनेवाले लाखों रुपयेके शहदके आयातको बन्द करके भारतकी आमदनीमें वृद्धि की जा सकती है।

मधुमक्खियोंसे उपदेश

हिन्दुस्तानमें कीड़ोंकी तीन मुख्य श्रेणियाँ हैं जो मनुष्य-समाजके लिए उपयोगी हो सकती हैं। वे इस प्रकार हैंः —

१ रेशमका कीड़ा

२—लाखका कीड़ा।

३—मधुमक्खी।

यहाँ हम केवल मधुमक्खीके विषयमें लिखेंगे।

शहदकी मक्खी एक छोटा-सा उड़नेवाला विचित्र सामाजिक प्राणी है। इन आश्चर्यजनक प्राणियोंके सहवाससे हमें जो अनेक प्रकारके लाभ होते हैं वे तो इनके शहदसे भी अधिक मूल्यवान हैं। यदि आप प्रेम-की महान् कलाकी उपासना करना चाहते हैं; उदार और विवेकशील बनना चाहते हैं; मन, मस्तिष्क और हाथोंकी शक्तिको विकसित करना चाहते हैं और सच्चे अर्थोंमें सभ्य बनना चाहते हैं तो मधुमक्खियोंका

पालन सीखिये। इन मक्खियोंके जीवन और इनकी रीति-रिवाज़ोंका अवलोकन और मनन करनेसे मनुष्यको व्यवसाय, सहयोग, स्वामिभक्ति, उद्यम और संयमकी अत्यन्त अनूठी शिक्षाएँ मिलती हैं। समयकी कद्र, सेवाका महत्व, कर्तव्यका गुरुत्व, ऐक्यका सार समझनेवाला यह एक उपयोगी, सीधा-सादा और हानिरहित निर्दोष प्राणी है।

मधुमक्खियोंका वर्गीकरण

मधुमक्खियोंके प्रकार—

१—सारंग मक्खी

२—भुनगा मक्खी

३—छोटी भुनगा

४—खैरा मक्खी

सारंग मक्खी—दुनियामें सबसे बड़े आकारवाली और सबसे अधिक शहद इकट्ठा करनेवाली यही मक्खी है। स्वतंत्र रूपसे रहना पसन्द करती है और सामान्यतया खुले स्थानपर बड़े-बड़े वृक्षोंकी मोटी टहनियोंपर ऊँचे मकानोंकी बगलमें और पहाड़ोंकी उभरी हुई चट्टानोंपर छत्ता लगाती है। चार इञ्च मोटा और तीनसे बारह फ़ुट चौड़ा एकाकी छत्ता बनाती है। इसमें बदला लेनेकी आदत ज़बरदस्त होती है और अपने छत्तेको छेड़नेवालेको बिना सज़ा दिये नहीं छोड़ती। इनके डङ्क मारनेपर कभी-कभी मृत्यु हो जानेके समाचार भी मिले हैं। इसकी आदतोंको देखनेसे मालूम हुआ है कि यह प्रयत्न करनेपर भी पाली नहीं जा सकती।

भुनगा मक्खी—यह सारङ्ग मक्खीकी तरह खुले स्थान पर एक छोटा-सा छत्ता बनाती है। छत्तेमें शहद बहुत कम होता है। सारङ्गकी तरह इसका भी पलनेका स्वभाव नहीं और आर्थिक दृष्टिसे लाभ भी नहीं हो सकता। सारङ्ग और खैरासे छोटी और इसके पीठपर काली, सफ़ेद और भूरी रेखाएँ होती हैं। इसका डङ्क सारङ्गकी तरह घातक नहीं होता।

छोटी भुनगा—वायु और प्रकाशसे बचकर पेड़ोंकी पुरानी खोहों, पुरानी दीवारोंके छिद्रों आदि बिल्कुल अँधेरी जगहोंमें रहनेवाली यह मक्खी अपेक्षाकृत बहुत छोटी और रङ्गमें काली होती है। शहद मात्रामें बहुत कम और स्वादमें खट्टा होता है। औषध-उपयोगके लिए अच्छा समझा जाता है। इसके छत्ते किसी व्यवस्थित क्रममें नहीं होते। डङ्क नहीं मारती परन्तु छेड़नेवालेकी नाकमें घुसकर बहुत परेशान करती है।

खैरा मक्खी (पालने योग्य)—पीठपर काले और हरे रङ्गकी धारियोंवाली सारङ्गसे छोटी, आधी इञ्च लम्बी होती है। यही एक मक्खी है जो शहदके लिए पाली जा सकती है। अन्य मक्खियोंकी तरह इसका केवल एक छत्ता नहीं होता। एक दूसरेके पास-पास नौसे तेरहतक समानान्तर छत्ते लगे होते हैं। अँधेरेमें रहना पसन्द करती है। पेड़की खोहों, मिट्टीकी दीवारोंके खोखले स्थानों, उपयोगमें न आनेवाली पुरानी पड़ी हुई लकड़ियोंकी पेटियों, टाइप राइटरके ढक्कनों, देरसे उलटे पड़े हुए मटकों, मकानकी चिमिनियों आदिमें हमने प्राकृतिक रूपमें इसके छत्ते देखे हैं। सारङ्ग मक्खीकी तरह यह अस्थिर स्वभावकी नहीं होती; एक ही स्थानपर कई सालोंतक रहती हुई देखी गई है।

मधुमक्खी पालनेके नये साधन

इनमें हमारा उद्देश्य यह होता है कि मक्खीको हर प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करते हुए उसे अधिक शहद इकट्ठा करनेके लिए प्रोत्साहन दिया जाय। इसमें निम्न लाभ हैं:—

(१) छत्तोंको बिना हानि पहुँचाए शहद निकाला जाता है। इससे मक्खियोंको बारबार छत्ता बनानेमें व्यर्थका समय और परिश्रम व्यय नहीं करना पड़ता। एक पौंड छत्ता बनानेमें मक्खियोंको सातसे दस पौंडतक शहद व्यय करना पड़ता है। नवीन उन्नत विधियोंसे छत्तेमेंसे शहद निकालकर मक्खियोंको शहद इकट्ठा करनेके लिए फिर वही छत्ता दे दिया जाता है। शहद भर जानेपर छत्तेको सुरक्षित रखते हुए शहद फिर निकाल लिया जाता है। इस प्रकार सामान्य ग्रामीण तरीकों द्वारा शहद निकालनेकी अपेक्षा इस

नवीन विधिमें सालभरमें पाँच-छः गुना अधिक शहद प्राप्त किया जाता है। किसी-किसी स्थानपर एक ही छत्तेमें बारह-बारतक शहद निकाला जाता है।

(२) अण्डों और बच्चोंका शहदके भण्डारसे पृथक् निवास-स्थान होनेसे उन्हें हानि नहीं पहुँचती।

(३) शहद शुद्ध प्राप्त होता है।

(४) चींटियाँ, छिपकली, भूण्ड, मोम तितली और पक्षी आदि कई प्रकारके मधुमक्खियोंके दुश्मनोंसे इनकी रक्षा पेटीमें अधिक अच्छी तरह हो सकती है।

मधुमक्खी पकड़नेकी विधि—

मधुमक्खी पालनेका काम प्रारम्भ करनेवालेको इसमें प्रारंभमें निम्न सामानकी आवश्यकता होगीः—

१—मक्खी रखनेकी पेटी,
२—रबड़के बने हाथोंके दस्ताने,
३—जालीदार टोपी,
४—तेज़ छुरी,
५—मधु निस्सारक यन्त्र,
६—धूम्र यन्त्र।

मक्खी पकड़नेका सबसे अनुकूल समय दिनमें तीन या चार बजे है। मक्खियोंके छत्तेका प्रवेश-द्वार एक छोटे-से सूराखके रूपमें होता है जिसमेंसे मक्खियाँ अपनी भोज्य सामग्रीके लिए अन्दर-बाहर जा सकती हैं। इस द्वारको सबसे पहिले खोला जाता है। धूम्र-यन्त्रसे हलका-सा धुआँ करके और किसी पक्षीके पंखसे मक्खियोंको अलग करते हुए समानान्तर लगे हुए छत्तोंको ऊपरसे क्रमशः काट लिया जाता है। काटनेके साथ इन्हें इसी क्रमसे पेटीके चौखटोंमें केलेके रेशेसे बाँधकर रखते जाते हैं। पेटीमें मक्खियोंके अण्डों और बच्चोंके रहनेके कारण मक्खियाँ उनकी गन्धको पहचानकर पेटीमें चली जाती हैं। रानी मक्खीके पेटीमें चले जानेपर शेष मक्खियाँ बिना किसी प्रयत्नके स्वयं चली जाती हैं। स्थानकी सुविधाके अनुसार चौखटोंमें छत्ते बाँधकर पेटीको मक्खियोंके झुण्डके ऊपर कुछ घण्टोंतक रख देते हैं। कई बार हाथों और चम्मचसे मक्खियोंको भरकर पेटीमें डाला जाता है। रानी मक्खीको किसी प्रकारकी चोट या हानि नहीं पहुँचनेका पूरा ध्यान रखना चाहिए; इससे वह अण्डे देनेसे बेकार हो जाती है। मक्खियोंको उनके घरसे बाहर निकालनेमें धुआँ भी सहायक होता है। इनके पेटीमें आ जानेके बाद अँधेरा होनेतक पेटी वहीं रक्खी रहने दी जाती है जिससे बाहर गई हुई सब मक्खियाँ वापिस आ सकें। फिर पेटीको अच्छी तरह बन्द करके अभीष्ट स्थानपर ले जाकर पूर्वकी दिशाकी ओर मुँह करके रख दिया जाता है और पेटीका मुख खोल दिया जाता है।

रखनेका अनुकूल स्थान—

दुपहरकी तेज़ धूप, ज़ोरकी वारिश, वायु और पशु-पक्षी आदिके हानिकारक प्रभावसे सुरक्षित रहनेका ध्यान रखते हुए फूसके छप्पर या वृक्षके नीचे छायावाले स्थानपर रखना चाहिए। आसपास फूल और फलके बगीचे, जङ्गल या खेत होने चाहिए। धुएँ और बदबूवाले स्थानसे ये परहेज़ करती हैं। इनके आने-जानेके रास्तेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं होनी चाहिए।

छत्तेके निवासी—

रानी मक्खी—छत्तेमें इसका सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसका पेट लम्बा, जाँघें खूबसूरत और रंग सुन्दर होता है। यह छत्तेके अन्य निवासियोंसे सबसे बड़ी, सुन्दर और वस्तुतः छत्तेकी माता होती है। यह ज़िन्दगीभर शाही खुराक खाकर रहती है। छत्तेके निचले हिस्सेमें एक छोटा-सा गोश्तकी शकलका अन्य मक्खियोंके घरोंकी अपेक्षा बड़ा, लटका हुआ घर होता है। जन्मके सोलहवें या सत्रहवें दिनके बाद यह इसमेंसे बाहर निकलती है और पाँचवें या सातवें दिन छत्तेके बाहर आकाशमें स्वतन्त्र वायुमें उड़ जाती है। यह उसके विवाहोत्सवका दिन होता है। अनुकूल ऋतुमें यह बारहसे तीन बजेके बीचमें बाहर निकलती है। इसमेंसे आनेवाली एक विशिष्ट गन्धका अनुसरण करती हुई कई नर मक्खियाँ इसका पीछा करती हैं। कोई

बिरला नर मक्खी ही मानों मृत्युका आलिङ्गन करनेके लिए इसके साथ सम्भोग कर पाती है और यह प्रथम मिलना ही इतना अधिक प्रबल वेगवान् होता है कि वही उसकी मृत्युका कारण और अन्तिम मिलन होता है। कामाग्निके तीव्र आवेगमें नर मक्खी भस्म हो जाती है और एक पतिकी उपासक नारी उसके वियोगमें सम्पूर्ण जीवन वैधव्यसे व्यतीत करती है। प्रथम सम्भोगमें ही इसे एक अद्भुत शक्ति प्राप्त हो जाती है। अपनी इच्छाके अनुसार दिनभरमें दो सौ या तीन सौ नर व मादा मक्खी पैदा करनेवाले अण्डे देकर यथास्थान रखती जाती है। आसपास फूल और भोजन कम प्राप्त होता हो तो अंडे देना बिलकुल बन्द कर देती है जिससे पोषणके अभावमें वे मर न जायँ। भोजन सामग्री प्रचुर परिमाणमें होनेपर अंडे अधिक देती है। इसका कार्य केवल अंडे देना ही है। उनकी देखभाल और पालन-पोषणका उत्तरदायित्व सब मज़दूर मक्खियोंपर होता है। यह अपने छत्तेसे बाहर कभी नहीं निकलती। स्थान परिवर्तन करना हो तो बाहर उड़ जाती है और तब सब मक्खियाँ इसका अनुगमन करती हैं।

डङ्क होते हुए भी यह अपने छेड़नेवालेको नहीं मारती। दूसरी रानी मक्खी यदि उसके छत्तेमें प्रविष्ट हो जाय या उसी छत्तेमें नई रानी बन जाय तो जी जानसे उसके साथ लड़ती है और उसे नष्ट करके ही दम लेती है। इस युद्धमें यह अपने डङ्कका खुला उपयोग करती है। एक छत्तेमें एकसे अधिक रानी मक्खियाँ नहीं रह सकतीं।

मज़दूर मक्खी—यह अपूर्ण मादा है। छत्तेका निर्माण, रस और परागका सञ्चय, सञ्चित मधु और भोज्य सामग्रीकी रक्षा, पानी और गोंद लाना समूहोंमें छत्तेके ऊपर बैठकर या उसपर अपने पङ्खोंसे हवाकर तापमानको नियत रखना, दुश्मनोंसे छत्तेकी रक्षा व देखभाल करना, सफ़ाई कूड़ा कचरा और मरी मक्खियोंको बाहर निकाल फेंकना आदि सब इसका काम है। छत्तेमें पैदा होनेवाली हर प्रकारकी मक्खियोंका प्रारम्भिक अवस्थासे उड़ने योग्य होनेतक पालन-पोषणका भार इन्हींके ऊपर होता है। रानी मक्खीके खान-पान, स्नान तथा प्रत्येक प्रकारकी सुविधाका ध्यान ये रखती हैं।

इसके पेटपर काले और भूरे रङ्गके पट्टे होते हैं। इसकी जीभ रानी और नर मक्खी दोनोंसे लम्बी होती है। इसके पिछले भागकी रचना इस प्रकारकी होती है जिससे फूलोंके रस और परागको लानेमें बहुत सहायता मिलती है। छत्तेके लिए मोम बनानेके अङ्ग केवल मज़दूर मक्खीमें ही होते हैं। मादा, नर और रानी मक्खीके रहने तथा शहद और पराग रखनेके लिए विभिन्न आकार-प्रकारके घरोंको बनानेमें इसके गृह-रचना सम्बन्धी बुद्धि कौशलको देखा जा सकता है। छत्तेकी रक्षाके लिए यह अपने डङ्कका उपयोग करती है। डङ्क मारनेसे जो कष्ट यह दूसरोंको पहुँचाती है उसके प्रायश्चित्त-रूपमें स्वयं भी मर जाती है। स्थान परिवर्तनके समय नये स्थानकी तलाश यह पहिले कर आती है। मानसिक विकासकी दृष्टिसे छत्तेकी सभी मक्खियोंमें यह सबसे उन्नत है।

नर मक्खी—रानीसे छोटी और मज़दूरसे बड़ी, काले रङ्गकी मक्खी है। स्वयं कुछ कार्य नहीं करती। ज़िन्दगीभर मज़दूर मक्खियोंकी कमाई खाती है। एक छत्तेमें कई होती हैं। वंश-वृद्धिके लिए स्थान परिवर्तनके कुछ दिन पूर्व मक्खियाँ इन्हें पैदा करती हैं। रानीके साथ सम्भोगके बाद इन्हें निकाल दिया जाता है या मार डाला जाता है। डङ्क न होनेसे ये अपनी रक्षा या दूसरोंपर आक्रमण कर उन्हें सता नहीं सकतीं। अपना छत्ता छोड़कर दूसरेके घरमें भी घुस जाती हैं।

मधुमक्खियोंकी जीवन कथा—

भृण्ड, दीमक और चींटी और मधुमक्खी ये सब एक ही श्रेणीके जीव हैं। इनके जीवनोंका अध्ययन बहुत अधिक मनोरञ्जक है। मधुमक्खियोंके एक छत्तेमें

मक्खियोंकी संख्या पाँच हज़ारसे साठ हज़ारतक होती है। एक रानी कुछ नर तथा शेष सब हज़ारों मज़दूर मक्खियाँ होती हैं। ये सब एक परिवारकी तरह रहती हैं।

छत्तेकी कोठरियोंके तलमें रानी मक्खी अण्डे रखती जाती है और अपने शरीरसे निकलनेवाले एक चिपचिपे पदार्थसे इन्हें वहीं चिपकाती जाती है। एक निश्चित समयके बाद अण्डे फूटकर कीड़ेके रूपमें बन जाते हैं और तब उन्हें युवा मक्खियाँ शाही खुराक* देती हैं। कुछ समयके बाद कीड़े स्वप्नावस्थामें पाले जाते हैं और इस बीचमें इनके विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका विकाश होकर ये पूर्ण मक्खीके रूपमें बाहर निकल आते हैं।

रानी, मज़दूर और नर तीनों प्रकारकी मक्खियाँ अण्डेकी अवस्थामें तीन दिन रहती हैं। कीड़ेकी अवस्था-में रानी मक्खी ५½ दिन, मज़दूर मक्खी ६ दिन और नर मक्खी ६½ दिन रहती हैं। इन दिनोंमेंसे रानी मक्खी पूरे ५½ दिन और शेष दोनों तीन दिनतक शाही खुराकपर पाली जाती हैं। इस अवस्थाके बचे हुए क्रमशः ३ और ३½ दिनतक मज़दूर और नर मक्खी सामान्य खुराकपर पाली जाती हैं जिसमें शहद और फूलोंका पराग होता है। फिर स्वप्नावस्थामें रानी, मज़दूर और नर मक्खी क्रमशः ६½, १२ और १४½ दिनतक रहकर पूर्ण मक्खी बन जाती हैं। इस प्रकार १६, २१ और २४ दिनमें तीनों मक्खियोंका सम्पूर्ण विकास हो जाता है। सामान्यतया इनकी आयु इस प्रकार है—रानी दोसे तीन साल, मज़दूर तीनसे चार महीने और नर दोसे तीन महीने।

मधुमक्खीका छत्ता उनके शिल्प-चातुर्य्य और गृह-निर्माण कलाका एक अनुपम उदाहरण है। शहद तथा परागका संग्रह सामान्यतता छत्तेके ऊपरके हिस्सेमें रखती हैं। छत्ता बनानेके लिए ये जिस मोमका उप-योग करती हैं वह उनके पेटके निचले हिस्सेमें बनता है। एक सेर मोम बनानेके लिए मक्खीको लगभग दस सेर शहद खाना होता है। छत्तेमें छोटी बड़ी दो प्रकारकी कोठरियाँ होती हैं। छोटी मज़दूर मक्खियों-के लिए और बड़ी नर मक्खियों तथा भोज्य सामाग्रीके लिए। एक और प्रकारकी गोस्तनाकार कोठरियाँ छत्तेके निचले भाग या पार्श्वमें रानी मक्खीके लिए होती हैं। सामान्यतया ये एकसे तीन परन्तु कभी-कभी दस-पन्द्रह-तक भी देखनेमें आती हैं।

जिस ऋतुमें फूल नहीं होते उसके लिए ये पहिलेसे ही खाद्य पदार्थ छत्तेकी कोठरियोंमें जमा करके मोमसे बन्द कर देती हैं। फूलोंसे रस इकट्ठा करनेके लिए इनके शरीरमें शहदकी एक प्रकारकी थैलियाँ होती हैं जिनमें रस कुछ समय रहकर शहद-में बदल जाता है। छत्तेमें रक्खे जानेपर भी रसमें कुछ परिवर्त्तन होते हैं।

मक्खियोंका गृह जीवन—

इनमें घरकी भावना बहुत विकसित रूपमें होती है। अपने घरमें किसी नई मक्खीको नहीं आने देतीं। अपने बच्चों और रानीके लिए इनमें बहुत अधिक प्रेम होता है। छत्तेमें बच्चे हों तो उन्हें नहीं छोड़तीं। अण्डे-बच्चोंवाले किसी दूसरेके छत्ते को भी अपना घर बना लेती हैं यह आश्चर्यकी बात है। उन पराये बच्चोंको पाल लेती हैं। अण्डे-बच्चों-वाले छत्तेपर नई मक्खियोंको आसानीसे आकर्षित किया जा सकता है। रानी मक्खी न हो या मर गई हो तो उन अण्डोंमेंसे कुछको विशेष भोजन देकर रानी बना लेती हैं। उसके रहनेके लिए बड़ी कोठी और सब प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान कर देती हैं। फूलोंके रस और परागकी खोजमें ये दो-तीन मील दूरतक

*मक्खियाँ जबतक उड़ना नहीं सीखतीं तबतक उनसे छत्तेके अन्दर ही काम लिया जाता है। ये मक्खियाँ अपने सिरसे एक विशेष प्रकारका दूधिया रस निकालकर रानी मक्खी और कीड़ोंको खिलाती रहती हैं; इस रसको शाही खुराक कहा जाता है।

चली जाती हैं और लौटती हुई सीधे रास्तेसे बिना भटके घर पहुँच जाती हैं। अपने घरको खूब अच्छी तरह पहचानती हैं। रस और परागवाले स्थानको खोज लेनेपर या किसी अन्य महत्वपूर्ण बातका समाचार अपने साथियोंको देनेके लिए अनेक प्रकारके नृत्य करती हैं। भोजन इकट्ठा करते हुए तथा अन्य घरेलू काम करते हुए मित्रतापूर्वक रहती हैं, किसी प्रकारका लड़ाई-झगड़ा नहीं करतीं।

छत्तोंकी परीक्षा—

मक्खियाँ ठीक तरह कार्य कर रही हों तो पेटीको हरवक्त खोलनेकी आवश्यकता नहीं। सरसरी निगाहसे देखना काफ़ी होता है और सप्ताहमें एक बार पेटीको खोलकर अच्छी तरह निरीक्षण कर लेना चाहिए। दिनमें चारसे दस बजेतकका समय परीक्षाके लिए अच्छा होता है। तेज़ हवा, अधिक शीत, वर्षा आदिमें परीक्षा स्थगित कर देनी चाहिए। शान्ति और स्थिरतासे बिना घबराहटके परीक्षा करें। मक्खियोंको किसी प्रकारकी तकलीफ न होने देनेका पूरा ध्यान रक्खें। असावधानीसे छेड़ी जानेपर आक्रमण करती हैं। परीक्षा करते हुए सिरपर जाली और हाथोंपर रबड़के दस्ताने पहनना अच्छा रहता है।

मक्खियोंका डंक—

मक्खियोंके पास जानेसे लोगोंको यही चीज़ रोकती है। काले रङ्गके डङ्कके आधारपर एक सफेद छोटी विषैली थैली होती है। इसमें विष तरल पदार्थके रूपमें रहता है। मक्खी जब डङ्क मारती है तो इस विषकी थैलीके साथ डङ्क आक्रान्त स्थानपर रह जाता है। डङ्कके द्वारा तरल विष शरीरके अन्दर प्रविष्ट होता है और क्षोभ तथा शोथ उत्पन्न करनेका कारण बनता है। ऐसे समय यदि हाथसे रगड़ या खुजला दिया जाय तो विषकी थैली फट जानेसे विषको अन्दर प्रविष्ट होनेमें और अधिक सहायता मिलती है जिससे कष्ट बढ़ जाता है। इसलिए डङ्क लगनेपर सबसे पहला कार्य यह होना चाहिए कि वह चाकूकी नोक या अंगुलियोंके नाखूनसे पकड़कर बाहर निकाल फेंक दिया जाय। विषकी थैलीको बिना हानि पहुँचाये यदि डङ्क निकाल लिया गया है तो क्षोभ तथा सोजिश बहुत नहीं होगी। बेंज़ीन, द्रव अमोनिया, टिञ्चर, आयोडीन या मधु आदिका बारबार लगाना भी क्षोभ और सोजिशको रोकना है। सोजिश बहुत अधिक हो और स्थान वेदनायुक्त हो तो हलके पानीका सेक कष्ट कम करता है। जिस मनुष्यको मक्खियाँ कई बार डङ्क मार चुकी हों, बारबार विष-प्रवेशसे धीरे-धीरे उसके ऊपर इसका असर कम होने लगता है। गठियाके रोगीके लिए यह एक उत्तम औषध है।

बिना किसी भयके पर विश्वासके साथ और बहुत धीरे-धीरे बिना किसी जल्दबाज़ीकी चेष्टा किये इन्हें पकड़नेमें किसी प्रकारसे भी इनके उत्तेजित होनेकी सम्भावना नहीं रहती जिससे इन्हें डङ्क मारनेको प्रोत्साहन मिले।

शहद निकालना—

शहद भरे हुए चौखटोंको पेटीमेंसे क्रमशः निकालकर मधु निस्सारक यन्त्रमें डालकर घुमाया जाता है। उससे छत्तेके छिद्रोंमेंसे शहद निकलकर नीचेके बर्तनमें इकट्ठा होता रहता है और छत्तेको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। शहद इकट्ठा करनेके लिए छत्तोंको फिर पेटीमें रख दिया जाता है। कोठरियोंके अन्दरके शहदपर मोमकी मोहर लगी हुई हो तो उबलते पानीमें गरम की हुई चाकूकी नोकसे खोल लेना चाहिए। सब शहद निकाल लिये जानेपर वह विशेष विधियोंमेंसे गुज़ारकर बोतलोंमें भर लिया जाता है।

आकृति-लेखन

[ले०—एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका—श्रीमती रत्नकुमारी, एम० ए०]

जूते

पैरमें पहिने हुए जूतोंका चित्र खींचना सिरपर लगाई हुई टोपीके चित्र खींचनेसे कहीं अधिक कठिन है। यह याद रक्खो कि नया जूता पैरसे उतना मिलता जुलता नहीं होता जितना कि पुराना जूता। ऐसा बहुत कम होता है कि जूतेका ठीक पार्श्व दृश्य दिखाई पड़े, पर इसका याद रखना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि जूतेके अन्दरकी ओरके ढाल, पंजेकी रूप-रेखा, और एड़ीकी गठनका प्रभाव प्रत्येक स्थितिपर पड़ता है। ऊँची एड़ीके जूतेमें जूतेका पंजा झुकता नहीं है, क्योंकि पैरका समस्त भाग जूतेके अगले भागपर ही आकर पड़ता है।

निम्नलिखित बातोंपर अधिक ध्यान देना चाहिए—

(१) जूते प्रायः ऊपरसे ही दिखाई देते हैं।

(२) तलेके केन्द्रमेंसे खींची गई रेखा यदि बढ़ाई जाय तो एड़ीके बीचमेंसे होकर जायगी चित्रपट १० में 'ज' और 'झ' चित्रोंकी विन्दुदार रेखाएँ देखो।

(३) जिस समय पैर अचल रहता है उस समय क़रीब-क़रीब सदा ही एड़ी और तला समान धरातलपर होते हैं।

(४) जिस समय जूता स्थिर अवस्थामें हो, यदि उस समय उसका चित्र खींच लिया जाय तो चलते समय आदिकी अवस्थाओंमें उसका ढाल या झुकाव आसानीसे खींचा जा सकता है।

(५) पंजेके अग्रभाग और जूतेके पिछले भागमें सिकुड़नें नहीं पड़ती हैं।

(६) जूता चाहे जिस दशामें हो, पिछले भागका झुकाव अवश्य खींचना चाहिए। उदाहरणके लिए, (चित्र 'ट') पंजेके पासकी आड़ी रेखाएँ जिनसे सिकुड़नें दिखाई जाती हैं इस झुकावको और अच्छी तरहसे व्यक्त करती हैं।
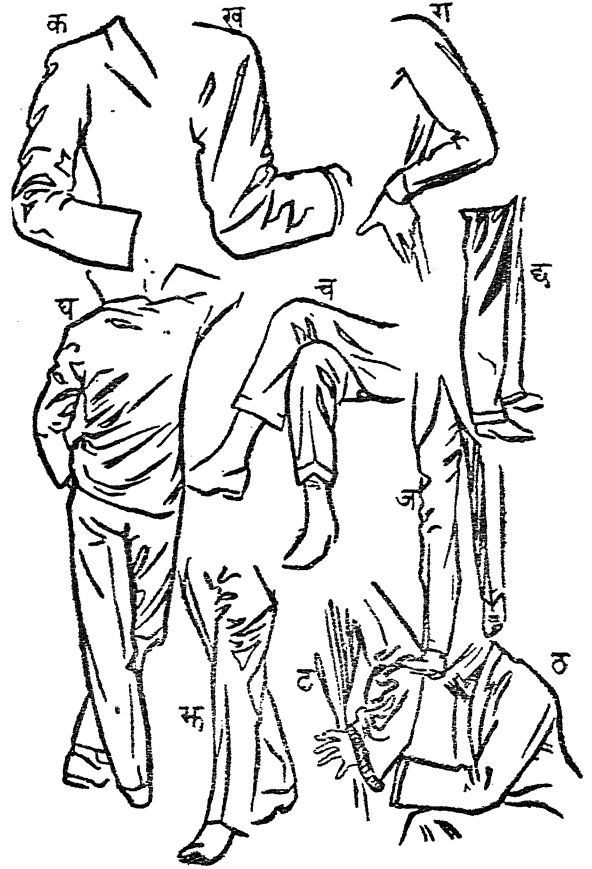
चित्रपट ११

इन चित्रोंका अध्ययन करो और उपर्युक्त नियमोंको मालूम करो जिनपर जूतेकी सामान्य दिशा, ढाल या वक्रता निर्भर है।

दिये हुए चित्रोंकी नक़ल मत उतारो जैसा कि टोपियोंके संबन्धमें भी कहा गया था। नये पुराने सब प्रकारके जूतोंका सावधानीसे अध्ययन करो और उनकी आकृतियाँ खींचो।

कपड़ोंकी तहें और शिकनें

वास्तविक प्राकृतिक दृष्टिसे ही नहीं, प्रत्युत जीवन-आकृति-लेखनकी सफलताकी दृष्टिसे भी इनका अध्ययन करना परमावश्यक है।

चित्रपट ११ में तुम देखोगे कि प्रायः सब चित्र पुरुषोंके कपड़ोंके हैं। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि यदि तुम मनुष्योंके आधुनिक कपड़ोंकी शिकनों और तहोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लो तो तुम वेशभूषाके आलेखकी मुख्य कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त कर लोगे।

तुममेंसे कुछ बोटीसेलीके समान पुराने प्रवीण चित्रकारोंके वेशभूषा संबन्धी आश्चर्यजनक आलेखोंका स्मरण कर सकते हो। इन चित्रोंमें तहोंके ऊपर तहें, शिकनोंके भीतर शिकनें, सब इतनी सचाईसे खींची गई हैं कि आकृतिका रूप और स्थितिका चित्र उसी वेशभूषासे जिससे वह आवृत है और भी अधिक व्यक्त हो जाता है। चित्रपट ११ की 'घ' आकृतिको देखो। कुछ भी तो नहीं कोई अनुभवी पुराना चित्रकार और न नया ही; तहोंका शीघ्र खींचा गया केवल एक चित्र। इसमें भी तुम देखोगे, कि तहोंने कैसे आकृतिको रूप और स्थिति प्रदान की है। आलेखमें तहोंका ऐसा ही महान् उद्देश्य है। यहाँ यह उद्देश्य नहीं है कि बहुत-से पदार्थोंके विषय और उनकी अनेक शिकनोंका उल्लेख किया जा सके, पर तब भी निम्न बातोंपर आसानीसे ध्यान दिया जा सकता है।

(क) रेशमी वस्त्रोंकी तहें मखमल या अन्य मुलायम वस्त्रोंकी तहोंकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट और नोकदार (दाँतेदार) होती हैं।

(ख) जितना ही कपड़ा अधिक मोटा होता है शिकनें उतनी ही बड़ी और मोटी होंगी।

(ग) बारीक वस्त्र, जबतक उसे बहुत कड़ा न कर दिया जाय, बड़ी तहें नहीं सँभाल सकता है, यह बहुत-सी छोटी-छोटी शिकनोंमें टूट जायगा।

कुरसीपर लापरवाहीसे तरह-तरहके वस्त्र डाल दो और ऐसा करनेसे जो तहें या शिकनें पड़ें, उनसे इनके अध्ययनका अच्छा प्रकार अभ्यास किया जा सकता है।

शिकनें सिकोड़ने या लटकाने अथवा ढील देने या ताननेसे पड़ती हैं। ढील देनेसे शिकनें अस्त-व्यस्त दिशामें गुँथी रहती हैं और छोटी और चौड़ी होती हैं। 'घ' चित्रके बाएँ हाथका ऊपरवाला हिस्सा; 'झ' की जंघा, और 'ट' की भुजाको देखो। भुजाके झुकावपर ऐसी छोटी शिकनें सदा पड़ा करती हैं।

'छ' चित्रमें लटकती हुई तहोंके उदाहरण तुम्हें मिलेंगे। इन शिकनोंकी दिशाओंसे तुम्हें यह पता चलेगा कि वह विन्दु जहाँसे शिकनें लटक रहीं है, पाजामेके सामनेकी ओर है। पाजामेके नितम्बवाले भागमें स्वाभाविक ढीलापन होता है जिससे आगेको झुका जा सके और बैठा जा सके और ढिलाईके कारण ही आगेको भाग सीधा लटकने लगता है। जितनी लटकती हुई तहें हैं वे इस बातको बताती हैं कि कपड़ेमें कहींपर ढिलाई है। 'छ' चित्रमें पाजामेका अगला भाग ढीला है और पैरोंसे बाहरकी ओर लटक रहा है। चित्र 'च' में दाहिने घुटनेके नीचे और चित्र 'घ' में दाहिने पैरके नीचे भी ढिलाई दिखाई देती है। यही नहीं, इस ढिलाईके कारण लम्बी और लगभग पूरी शिकनें पड़ जाती हैं। चित्र 'च' में तुमको एक लम्बी शिकन बाएँ घुटनेके पीछेसे ऊपर मोड़तक आती हुई दिखाई पड़ेगी। इससे पाजामेकी ढिलाई या लटकन अंगसे अलग हटी हुई व्यक्त होती है। यह लम्बी शिकन उलट गई है, अर्थात घुटनेके सामनेसे नीचेवाले पैरके ऊपर मोड़के पीछेतक है क्योंकि इस पैरमें ढिलाई सामनेकी ओर है और पीछेकी ओर पैरके पास है (चित्र 'छ' भी देखो)।

लटकन विन्दु अर्थात दो घुटने बिलकुल साफ़ हैं,

और घुटनेका अस्थि-रूप सेवाकी स्पष्टता द्वारा व्यक्त किया जाना चाहिए।

चित्र 'घ'के कोटमें कपड़ेपर तनाव या खिंचाव बहुत अच्छी तरह दिखाया गया है। चित्र 'ज'में दाहिने पैरकी जंघाके भीतरी भागमें भी यही बात भली प्रकार प्रदर्शित की गई है। ऐसी सब तहें खिंचाववाले भागसे आरम्भ होती हैं। यह भाग चित्र 'घ'में बायाँ कन्धा है। कन्धों-के सब ओर इस खिंचावका प्रभाव बड़ा ही मनोरंजक है। यह चित्र तीन प्रकारकी शिकनोंका बहुत अच्छा उदाहरण है :—

(१) तहदार शिकनें—आस्तीनोंके ऊपरके अर्ध भागमें।

(२) लटकती हुई शिकनें—पाजामेके दोनों पैरोंमें।

(३) तनाववाली शिकनें—पीठपरकी।

सीधे हाथ द्वारा कोटके उठ जानेसे पड़ी हुई थोड़ी-सी मरोड़ बाएँ कन्धेके तीव्र खिंचावमें लगभग अस्त-व्यस्त हो जाती है।

चित्र 'छ'में पाजामेके पैरोंके नीचेकी ओर जो स्पष्ट शिकन है उसपर विशेष ध्यान दो। यह शिकन चरणके ऊपरके भागपर पाजामेके टिकनेसे पड़ गई है, और पीछेकी ओर पैरकी पिंडिकाओंपर सीधे लटक रही है। चलनेकी दो अवस्थाओंमें (चित्र झ और ज) पीछेवाले पैरके सम्मुख दृश्य का सीधापन भी याद कर लेना चाहिए। इन दोनों चित्रोंके पाजामेके सामनेवाले पैरके बाहर-की ओर झूल देखो। एक ओर तो तहदार हो गई है और दूसरी ओर पैरकी आकृतिकी हो गई है।

जहाँ आकृतिकी वाह्य रेखा ठीक दिखाई देती हो और शिकनें न हों, सच्चा और साफ़ चित्र खींचना आवश्यक है।

देखो कि किस प्रकार इन सब चित्रोंमें साफ़ रेखा-समूहोंसे शिकनोंका उपयोग और भाव व्यक्त होता है।

तहों और शिकनोंका वर्णन मुझे कुछ परिश्रमसे करना पड़ा है, पर अपना अभ्यास बढ़ाते रहनेपर तुम्हें यह पता चलेगा कि ये आकृति-लेखनके बड़े ही आक-र्षक अंग हैं। किसी भी मनुष्यके स्वभाव और चरित्रका पता विचारशील दर्शकको जितना उसके कपड़ोंसे चलता है उतना और किसीसे नहीं। अपने उन मित्रों और सम्बन्धियोंको जो तुम्हारी ओर पीठ किये हुए दूर-पर खड़े हुए हैं तुम कैसे पहचानते हो? अधिकतर तो तुम उनके वस्त्रोंकी चालढालसे ही पहचानते हो।

तहोंसे रूप मिलता है (चित्र घ) और गति भी (चित्र ज और झ)। देखो, (चित्र ज और झ) ऐसा मालूम होता है कि पैर अपने आप चल रहे हैं।

तबतक कोई शिकन मत खींचो जबतक तुम्हें यह निश्चय न हो जाय कि यह किस प्रकारकी है, तहदार है लटकती हुई है, या तनाववाली है; और जबतक तुम्हें इसकी लम्बाई, चौड़ाई, और दिशाका निश्चय न हो जाय। भद्दी तरह खींची गई शिकनसे वह उद्देश्य ही भ्रष्ट हो जायगा जिसको व्यक्त करना इसके लिए आवश्यक था। यह देखो कि किस प्रकार चित्रपट १४, चित्र 'ख'में आकृतिकी सब विशेषता इसपर निर्भर है कि शिकनें कितनी शीघ्रता और सचाईसे खींची गई हैं।

चित्रपट ११ में जैसी आकृतियाँ खींची गई हैं उनके शीघ्र खींचनेका बहुत अच्छा अभ्यास पत्र-पत्रिकाओंमें छपे हुए फोटो-चित्रोंसे हो सकता है। प्रत्येक शिकनके पड़नेका कारण क्या है यह मालूम करनेका यत्न करना चाहिए; और उन शिकनोंमें जो सबसे अधिक उपयोगी हो उन्हें पहले खींचना चाहिए।

स्मरणीय बातें

इस अध्यायकी याद रखने योग्य बातें ये हैं :—

(१) आँख—खोलमें रक्खी हुई एक गेंद है। चित्र-पट ८, चित्र 'च'१ की आकृतियोंको याद रक्खो।

(२) नाक—बाहर निकली होनी चाहिए और ऐसा भासना चाहिए कि नाककी हड्डी खोपड़ीका ही भाग है। हरएककी नाकमें कुछ-न-कुछ विशेषता होती है।

(३) मुख—सदा लगभग धनुषाकार होता है। बिन्दुदार रेखा (चित्रपट ८, चित्र ण) के ढालको याद रक्खो। शीघ्र खींचना हो तो केवल ऊपरका ओष्ठ और नीचेवाले अधरके नीचेका गड्ढा खींचो।

(४) कान—सीपीके आकारका होता है। कानका ऊपरी भाग लगभग आँखकी सतहमें होता है, और इसका सामान्य ढाल ठुड्डीकी ओर होता है।

(५) हाथकी पीठ (करपृष्ठ) अस्थिमय होती है, और करतल नरम और गद्दीदार होता है। बहुधा पहली अँगुली सबसे अधिक सीधी या सबसे कम मुड़ी होती है।

(६) टोपियाँ—इन्हें ऐसा खींचो कि यह पता चले कि ये सिरपर ठीक बैठी हैं। किनारेपर विशेष ध्यान दो।

(७) जूते—जब पैर स्थिर होता है पैरकी एड़ी और तला बहुधा एक ही सतहमें होते हैं। चाहे कोई स्थिति हो चरणके ऊपरी भागका ढाल याद रक्खो।

(८) तहें और शिकनें—तीन तरहकी—तहदार, लटकती हुई और तनी हुई। दैनिक जीवनके आकृति-लेखनमें ये सबसे अधिक आवश्यक हैं। इनसे रूप और गति जितनी व्यक्त की जा सकती है उतना शेड देकर या छायासे नहीं की जा सकती। इनका गंभीरतासे अध्ययन करना चाहिए।

संयुक्त-प्रान्तमें खेतीको हानि पहुँचानेवाले चूहे

[कृषि-विभाग, संयुक्त-प्रान्त, आगरा व अवधके एक बुलेटिनसे]

चूहे जो फ़सलोंको लगते हैं भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं और किसानोंको बहुत हानि पहुँचाते हैं—कम-से-कम दो प्रकारके चूहे घरों और गोदामोंमें घुसकर पैदावारके बहुत बड़े भागको खा जाते हैं या ख़राब कर देते हैं। चूहोंसे जो हानि पहुँचती है वह भिन्न-भिन्न वर्षोंमें भिन्न-भिन्न होती है परन्तु हमेशा दुखदाई होती है और जब मौसम चूहोंकी सन्तानोत्पत्ति और वृद्धिके अनुकूल होता है तो हानि बहुत ही अधिक होती है।

गेहूँ और अनाज चूहोंके बहुत ही प्रिय भोजन होते हैं परन्तु हानि क़रीब-क़रीब प्रत्येक फ़सलको पहुँचाते हैं। बुवाईके पश्चात् ये गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, मटर, चना और दूसरी दालदार फ़सलोंके बीजको खा जाते हैं। मटर और दूसरी दालदार फ़सलोंके पौधोंको जम जानेपर और मक्का, ज्वार, बाजराके हरे तनोंको और गन्नोंके भूमिके पासके भागोंको खा जाते हैं। बड़े चूहे धान, गेहूँ, जौ मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादिके तनोंको उनकी पकी हुई बालियाँ खानेके अभिप्रायसे कतर डालते हैं और छोटे-छोटे चूहे पौधोंके तनोंपर चढ़कर उनके ऊपरी भागोंको काट डालते हैं और बालियोंसे दाने निकालकर खा जाते हैं। चूहे तिलहन और दालदार फ़सलोंकी फलियों, कपासके बिनौलों, ककड़ी ख़रबूज़ा, खीरा, तरबूज, कद्दूके बीजों और जहाँतक कि बड़े-बड़े पौधोंके फलोंको नष्ट कर देते हैं। खेतोंके चूहे केवल अनाज ही नहीं खाते बल्कि भूमिके अन्दर सुरंग (रास्ते) बना लेते हैं और पौधोंकी जड़ोंको खा जाते हैं।

चूहे बहुत ही अधिक बच्चे पैदा करनेवाले होते हैं। वे चार महीनेकी अवस्थासे बच्चे पैदा करना आरम्भ कर देते हैं और एक बारमें चारसे दसतक बच्चे देते हैं, और एक वर्षमें चार-पाँच बार बच्चे देते हैं। यह हिसाब लगाया गया है कि चूहोंके एक जवान जोड़ेसे

तीन वर्षमें दो लाख चूहे पैदा हो जाते हैं। प्रत्येक गाँवके खेत और मकानमें चूँकि चूहे सदा बने रहते हैं इसलिए उनका किसी समय बहुत अधिक संख्यामें हो जाना कोई अचम्भेकी बात नहीं है। जब इस बातका ध्यान किया जाता है कि प्रत्येक चूहा एक दिनमें एक छटाँक खा सकता है और खेतमें हानि उससे कहीं अधिक होती है जितना कि वास्तवमें खा लिया जाता है तो चूहोंसे जो हानि किसानोंको पहुँचती है वह साफ़ ज़ाहिर है।

तरह तरह के चूहे

संयुक्त-प्रान्तमें निम्नलिखित ६ प्रकारके चूहे अधिक हानि पहुँचाते हैं:—

(१) हरना चूहे (घूँस)
(२) मामूली हिन्दुस्तानी चूहे।
(३) भूरे चूहे।
(४) खेतोंमें रहनेवाले मुलायम रुयेंदार चूहे।
(५) छोटी पूँछवाली छछूँदर।
(६) हिन्दुस्तानी छछूँदर।

हरना चूहा या मूस (घूस)—इन चूहोंकी पूँछ और पिछली टाँगें लम्बी होती हैं और कहा जाता है कि वे पाँच गज़तक कूद जाते हैं। वे भूमिके अन्दर बिलों (भटों) में रहते हैं जो प्रायः बहुत लम्बे होते हैं और जिनमेंसे आने-जानेके रास्ते होते हैं जो खुले रहते हैं। ये बिल प्रायः खाली खेतों, बेकार पड़ी हुई रेतीली भूमि और अधिकतर खेतोंके किनारोंपर बनाते हैं। हरना चूहा केवल रात के समय ही बाहर निकलता है इसलिए बहुत ही कम दिखलाई देता है।

मामूली हिन्दुस्तानी चूहा—यह ऊपरकी ओर प्रायः भूरे या स्याही मायल भूरे रंगका होता है और नीचेकी ओर सफेद या खाकी रंगका होता है। इसके शरीरसे इसकी पूँछ अधिक लम्बी होती है। यह तो खुले मुँहके बिलों (भट्टों) में रहता है या दरख्तोंमें या मकानोंकी दीवारों और छतोंमें रहता है। अधिकतर रात्रिके समय और कभी-कभी दिनमें या संध्या समय निकलता है।

भूरा चूहा—रंग ऊपर भूरा होता है पीछेकी ओर कुछ गहरा होता है और नीचेके भाग सफेद या भूरे होते हैं। पूँछ शरीर और सिरसे छोटी होती है। यह चूहा बाँध, सड़कोंके किनारों, नालियों और नहरोंमें बिल बनाता है और मकानोंमें भी रहता है। बिलोंके मुँह खुले रहते हैं। यह आबादी और खेतीसे दूर कभी नहीं पाया जाता। प्रायः रातके समय और कभी-कभी दिनके समयमें भी दिखलाई दे जाता है।

ये तीनों प्रकारके चूहे बड़े होते हैं। जवान चूहेके सर और जिस्मकी लम्बाई ६ से ९ या १० इंचतक होती है।

खेतोंमें रहनेवाला मुलायम रुयेंदार चूहा—यह चूहा छोटा होता है और केवल खेतों ही में रहता है। इसका सिर और शरीर लगभग ५ इंच लम्बा होता है और पूँछ छोटी होती है। रंग ऊपरसे मटियाला बराबरमें कुछ पीला और नीचेकी ओर सफ़ेद होता है। ये चूहे या तो छोटे-छोटे सूराखोंमें रहते हैं जिनको प्रायः झाड़ियोंकी जड़ोंमें खोद लेते हैं या भूमिकी दरारों (तरेड़ों) और दूसरे जानवरोंके बनाये हुए सूराखोंमें रहते हैं। ईंटों या पत्थरोंके ढेरोंमें भी रहने लगते हैं। जिस जगह ये होते हैं वहाँ खुश्कीके मौसममें इनकी आबादी बहुत ही अधिक बढ़ जाती है।

यह चूहा रातके समय खाता है।

छोटी पूँछवाली छछूँदर—यह छछूँदर लम्बे बिलोंमें रहती है जो कुछ इंचोंसे लेकर दो फुटतक गहरे होते हैं, जिनके रास्तोंके मुँहपर जानवरोंकी फेंकी हुई मिट्टीके बहुत बड़े ढेर होते हैं। छोटी पूँछवाली छछूँदरका रंग ऊपरसे हल्का भूरा और नीचेकी ओर हल्का मटियाला होता है। सिर और शरीरकी लम्बाई ६ से ८ इंचतक होती है और पूँछकी लम्बाई इसके आधे से कुछ अधिक होती है।

हिन्दुस्तानी छछूँदर—यह क़दमें बड़ी होती है और इसका रंग कुछ अधिक स्याह और पूँछ लम्बी होती है।

छछूंदर पौधोंकी जड़ें और अनाज खाती है और प्रायः बहुतसा अनाज अपने बिलोंमें जमाकर लेती है। इसके दाँत बहुत तेज़ होते हैं और देखनेमें भयानक मालूम होते हैं और क्रोधके समय गुर्राती है। यह बहुत अच्छा तैरती हैं। इसलिए खेतमें पानी भर देनेसे नष्ट नहींकी जा सकती। यह छछूँदर रातके समय बिलसे बाहर निकलती है और दिनमें बहुत ही कम दिखलाई देती है।

चूहोंको नष्ट करना

चूहोंके नष्ट करनेकी ४ रीतियाँ हैं—

(१) चूहेदानोंके द्वारा।
(२) विषयुक्त भोजन द्वारा।
(३) विषैली धूनी द्वारा।
(४) उनमें बीमारी फैलानेके द्वारा।

हिन्दुस्तानमें चूहेदानोंके द्वारा चूहोंको सिवाय गोदामोंके और वह भी जब कि उन्हें भोजनकी कमी हो नष्ट करना आसान नहीं है।

चूहोंमें विष द्वारा बीमारी फैला कर जिससे मनुष्यों और घरेलू जानवरोंमें बीमारी न फैले ऐसी रीति है जिसका खेतोंमें लाभप्रद सिद्ध होना कठिन है। यह रीति केवल शहरों, कारखानों और गोदामोंके चूहोंके नष्ट करनेमें लाभदायक सिद्ध होती है।

कृषिके रक़बोंमें इस प्रकारसे चूहोंको नष्ट करनेकी दो ही रीतियाँ बच रहती हैं अर्थात् विषयुक्त भोजन द्वारा और विषैली धूनी द्वारा।

चूहोंके नष्ट करनेके लिए चाहे कोई भी रीति काम में क्यों न लाई जावे, यह आवश्यक है कि एक बहुत बड़े रक़बेपर और अच्छे ढंगसे काम किया जावे। कुछ खेतोंमें ही और जब कि आस पासके खेतोंमें चूहे हों इनके नष्ट करनेका उपाय करना बहुत ही कम लाभ-दायक है। इसलिये चूहोंके नष्ट करनेका उपाय जितना बड़े रक़बेमें किया जाय उतना ही अच्छा है और उस रक़बेके किसानोंमें इस कामके लिए आपसमें मेल मिलाप होना चाहिए।

चूहेके नष्ट करनेका काम चाहे गाँव-वार किया जाय या परगने या तहसीलवार किया जाय. काम करनेवालोंको चाहिए कि आवश्यक यन्त्र, सामान और मज़दूरीका जिनकी आवश्यकता प्रति दिन होती है पहिले हीसे समुचित प्रबन्ध कर लें।

जिस रक़बेपर काम करना हो तो काम जारी करनेसे एक दिन पहिले सारे बिलोंके मुंह बन्द कर देने चाहिए। यदि चूहे इन बिलोंके अन्दर मौजूद होंगे तो ये मुंह रातको खुल जावेंगे। इस प्रयोगसे समय और सामानको बहुत बचत हो जाती है क्योंकि उन्हीं बिलोंपर काम किया जावेगा कि जो फिर खुले हुए हैं। इससे प्रयोगका फल मालूम करनेमें भी आसानी रहती है क्योंकि उन बिलोंको जिन्हें चूहोंने पहिले ही छोड़ दिया था उन बिलोंके साथ नहीं गिना जावेगा कि जिनपर प्रयोग सफल हो चुका है। जिन बिलोंके मुंहपर नई मिट्टीका ढेर मिले तो समझ लेना चाहिए कि उनके अन्दर चूहे मौजूद हैं।

प्रयोग करनेके पश्चात हर एक बिलका मुंह बन्द कर देना चाहिए और प्रयोगके दूसरे दिन ही उनको फिर देखना चाहिए। यदि धूनीकी रीतिका प्रयोग किया गया है तो बिलके खुला रहनेसे मालूम होगा कि प्रयोग सफल नहीं हुआ और दुबारा करनेकी आवश्यकता है। यदि विषैला भोजन खानेके लिए दिया गया है तो बिलके रहनेसे मालूम होता है कि चूहे मरनेके लिए बाहर निकल आये हैं। ऐसे बिलोंके मुंह फिर बन्द कर देने चाहिए। और प्रयोग करनेके दूसरे दिन प्रातः काल फिर उनकी जाँच करनी चाहिए। जिस बिलका भी मुंह खुला हुआ मिले उसपर फिर यही प्रयोग करना चाहिए।

यदि विषैला भोजन काममें लाया जावे तो भोजनके बनाने और उसको काममें लानेके लिए ज़िम्मेदार आदमी रखने चाहिए। इस बातकी साव-धानी रखनी चाहिए कि कोई आदमी या घरेलू जानवर इस भोजनको न खावे। भोजनको खास बर्तनोंमें बनवा कर होशियारीके साथ बिलोंमें रखना चाहिए। बिना

खाया हुआ भोजन जो बिलोंके मुंहपर सुबहके वक्त मिले उसको इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। जो लोग विषैले भोजनको बनावें या बिलोंमें रक्खें या बाँटनेका काम करें उनको चाहिए कि काम करनेके बाद अपने हाथोंको भली भाँति धो डालें। विषैले भोजनको किसी दशामें भी मनुष्यों या पशुओंके रहनेके मकान या ऐसे स्थानपर कि जहाँ ये जाते हों या इसके जानेकी सम्भावना हो प्रयोग नहीं करना चाहिए। बच्चोंको और घरेलू पशुओंको ऐसे खेतोंमें जिनमें इसका प्रयोग किया गया है कभी नहीं जाने देना चाहिए।

विषैले भोजन द्वारा—इसरी तिमें दिल लुभानेवाले भोजनको तैयार करते हैं जैसे भीगे हुए आटेमें गुड़ मिलाकर कुछ विष मिला दिया जाय। इस विषैले भोजनको शामके वक्त बिलोंमें रख देना चाहिए। इस रीतिकी कामयाबीपर चूहोंके इस भोजनमें खाने और न खानेका बहुत प्रभाव पड़ता है।

(१) स्ट्रिकनीनहाईड्रोक्लोराइड—यह विष पंजाब में बहुत कामयाब सिद्ध हुआ है। इस विषको बहुत सावधानीके साथ काममें लाना चाहिए क्योंकि इसका बहुत थोड़ासा भाग भी मनुष्यके मारनेके लिए काफी है। चना, ज्वार, बाजरा, मक्का या गेहूँको पानीमें भिगोकर नर्मकर लेना चाहिए और उसको थोड़ासा कूटकर और उसपर शीरे और विषको छिड़ककर कुछ उबाल लिया जावे जिससे विष एकसार मिल जावे। मुनासिब मिक्दार निम्नलिखित हैं:—

स्ट्रिकनीन हाईड्रोक्लोराइड	...२ छटाँक
गुड़ ...	...२½ सेर
अनाज ...	.. ½ मन

प्रत्येक बिलके लिए ½ छटाँक पर्याप्त है; इस विषैले भोजनको बिलमें बहुत गहरा रखना चाहिए जिससे कुछ भय न रहे। स्ट्रिकनीन हाईड्रोक्लोराइड बहुत जल्द असर करने वाला विष है और इससे चूहे बिलोंसे बाहर निकलकर मर जाते हैं। मरे हुए चूहोंको या तो भूमिमें खूब गहिरे दबा देना चाहिए या जला देना चाहिए। स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइडके बजाय कुचलेबीजोंको भी काममें ला सकते हैं—तीन सेर अनाजमें आधी छटाँक कुचला और आधी छटाँक गुड़ मिला देना काफी है—बीजोंको पहिले पानीमें भिगोकर नर्मकर लेना चाहिए और फिर छोटे छोटे टुकड़ोंमें काटकर लगभग दो घंटे तक उबालना चाहिए, इस मिश्रणको गुड़के शर्बतमें मिलाकर अन्नपर छिड़क देना चाहिए, और अन्न खूब अच्छी तरह मिलाकर उक्त रीतिसे प्रयोगमें लाना चाहिए।

(२) सफ़ेद संखिया—स्ट्रिकनीनकी अपेक्षा इसका प्रभाव कुछ कम और देरमें होता है। छः या सात छटांक संखिया गर्म पानीमें घोलकर और उसमें २॥ सेर गुड़ मिलाकर गाढ़ा शीरा सा बना लेना चाहिये। और इसको २० सेर भीगे हुए दलियेपर छिड़ककर भलीभांति मिला लेना चाहिये। इसमेंसे लगभग आधी छटांक मसाला प्रत्येक बिलके लिये काफी होता है। संखिया एक प्यास लगनेवाला अति गर्म विष है और चूहे इस विषैले मसालेको खाकर पानीकी खोजमें इधर-उधर घूमने दौड़ने लगते हैं। इस बातकी बहुत सावधानी रखनी चाहिये कि चूहे पीनेके पानीको खराब न करने पावें। मरे हुए चूहोंको इकट्ठा करके जला देना चाहिये वा भूमिमें खूब गहरा दबा देना चाहिये। जिन बर्तनोंमें स्ट्रिकनीन और संखिया जैसे विष मिले हुए मसाले तय्यार किये जायं उनको दूसरे कामोंके लिये काममें नहीं लाना चाहिये।

(३) बेरियम कार्बोनेट—यह एक बिना स्वादका चूर्ण है जो बड़े जानवरोंको यदि न्यून मात्रामें दिया जाय तो कोई हानि नहीं पहुंचाता। इसका प्रभाव देरमें होता है परन्तु प्यास अधिक लगती है, इसको खाकर चूहे निकटस्थ पानीकी ओर भागते हैं और वहीं मर जाते हैं अतएव पीनेके पानीको सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता है।

(१) बेरियम कार्बोनेट	½ सेर
(२) गुड़	२ सेर

(३) दाना १५ सेर

खानेका मसाला उपरोक्त रीतिसे तैयार किया जाता है और प्रत्येक बिलमें आधी छटाँक रक्खा जाता है। बेरियम कार्बोनेट संखिया और स्ट्रिक्नीनकी अपेक्षा थोड़ा प्रभाव रखता है परन्तु चूँकि घातक नहीं होता इसलिए इसकी ओर विशेष चिन्ता न करनी चाहिए। बेरियम कार्बोनेट पानीमें नहीं घुलता, दलिये-में मिलानेसे पहिले पानीकी पर्याप्त मात्रामें हिला-डुलाकर भलीभाँति मिला देना चाहिए। विषैले मसाले-के लिए बेरियम कार्बोनेट शायद सबसे अच्छी वस्तु है। इसका प्रभावशाली होना इस बातसे प्रकट होता है कि चूहे बिलोंको छोड़ जाते हैं। सफलताका अनुमान बिलोंको फिर बन्द कर देनेसे लगाया जाता है। जो बिल बन्द मिलें समझ लेना चाहिए कि उनके अन्दर-के चूहे मर गये हैं।

(४) रेडस्क्विल—यह एक प्रकारका पौधा है। इसकी पोथी (पोटी-गाँठ) से चूहोंको मारनेवाला एक बहुत तीक्ष्ण विष बनता है। इसकी थोड़ी मात्रा घरेलू जान-वरोंको कोई हानि नहीं पहुँचाती। रेडस्क्विल भारतमें नहीं मिलती। विस्तृत रूपमें चूहोंको मारनेका कार्य करनेके लिए यह वस्तु अन्य देशोंसे मँगाई जा सकती है। इसका विष संखिया और बेरियम कार्बोनेटसे अधिक तीक्ष्ण और घातक होता है। यह चूर्णके रूप-में मिल सकता है और निम्न रीतिसे प्रयोगमें लाया जाता है :—

(१) रेडस्क्विल १ भाग
(२) गुड़ १ भाग
(३) अनाज १० भाग

विषैले मसालोंकी त्रुटियाँ

संखिया और स्ट्रिक्नीनके बने हुए विषैले मसालों-के बनाने और विभाजित करनेमें जो भय और हानियाँ हैं उनके अतिरिक्त इनमें और अनेक बुराइयाँ हैं। चूहे मारनेके प्रबन्धका यह उद्देश्य है कि चूहोंको पूर्णतः नष्ट कर दिया जाय; अन्यथा यह कार्य कुछ दिन पीछे फिर करना पड़ेगा। चूहोंके मारनेमें बहुधा तीक्ष्ण विष भी असफल रह जाते हैं। चूहे इतने चालाक और बने हुए होते हैं कि वे विषैले मसालेको नहीं खाते। दूसरी त्रुटि यह है कि विषैले मसालेके प्रयोगसे चूहों-के पिस्सू नहीं मरते। जिन स्थानोंमें प्लेग (महामारी) फैली हुई हो वहाँ यह बात विशेष महत्वकी है क्योंकि चूहोंके पिस्सुओं द्वारा यह रोग मनुष्योंमें फैल जाता है। पिस्सू चूहेके मरते समय या मरनेके कुछ पश्चात् उससे पृथक हो जाते हैं। या जब चूहे बहुत कम रह जाते हैं तो पिस्सू संभवतः मनुष्योंके शरीरसे भोजन लेने लगते हैं इसलिए यथासंभव चूहोंको उनके बिलोंमें धूनी देकर मारना चाहिए। इस प्रकार चूहे और पिस्सू दोनों एक ही साथ समाप्त हो जायँगे।

धूनी देना

धूनी देनेका उद्देश्य यह है कि दिनके समय जब चूहे अपने बिलोंके भीतर आराम कर रहे हों उनके बिलोंके अन्दर ज़हरीली गैसें भर दी जायँ। कई प्रकारकी गैसें इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रयोगमें लाई जा सकती हैं। इस उद्देश्यके लिए सब-से सुगम और शायद सबसे ही उपयोगी वस्तु सल्फर-डाई-ऑक्साइड है जो गंधकको जलानेसे उत्पन्न होती है। कार्बन-बाइ-सल्फाइडकी गैस जो द्रव कार्बन-बाइ-सल्फाइडकी भापसे बनती है सावधानीसे उपरोक्त रीतिसे प्रयोगमें लाई जा सकती है।

दूसरी गैसें जो बहुत ही प्रभवाशाली हैं और जिनको विशेष सावधानीके साथ प्रयोगमें लानेकी आवश्यकता है साइनोजिन क्लोराइड और हाइड्रोसाए-निक एसिड गैस हैं।

चूँकि उक्त समस्त गैसें न्यूनाधिक विषैली हैं अतः रहनेके घरों और पशुशालाओंमें इनका प्रयोग कदापि न करना चाहिए :—

(क) सल्फर-डाइ-ऑक्साइड—यह गैस किसी खाली बर्तनसे ढकी हुई अँगीठीमें कोयला-व लकड़ी या

भूसेकी आगपर गंधक रखकर, जलाकर और धौंकनी द्वारा हवा फूँककर उत्पन्न की जाती है। और यह गैस जिसमें सल्फर-डाइ-ऑक्साइड, कार्बन-मौनो-ऑक्साइड और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड किसी पाइप या नली द्वारा जो बन्द बर्त्तनमें लगी हुई होती है चूहोंके बिलमें प्रविष्ट कर दी जाती है—यदि गंधकके अतिरिक्त अँगीठीकी आगपर कोई अधिक धुआँ देने-वाली वस्तु जैसे कि लोवान डाल दी जाय तो और भी अच्छा है। कार्य करनेवाला आदमी इस बातका भलीभाँति अनुमान कर सकता है कि धूनी काफी है वा नहीं और यह भी जान सकता है कि और बिल कितनी संख्यामें हैं।

धूनी देनेकी रीति—जिस दिन धूनी देना हो उससे एक दिन पहिले चूहोंके सब बिलोंके मुँह बन्द कर देने चाहिए। अगली सुबहको सब बिलोंकी जाँच कर लेनी चाहिए—जहाँ बिलका मुँह खुला हुआ मिले उसमें धूनी देनेवाली मशीनका पाइप जहाँतक जा सके पहुँचा देना चाहिए; और बिलके मुँहको गारे या गोबरसे अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए। इस भाँति धुआँ समस्त बिलमें फैल जायगा।

उक्त गैस उत्पन्न करनेवाले बर्तन या मशीन (जो टीन या लोहेके पीपे आदिसे बनाई गई है) के अन्दर अँगीठीकी जलती हुई आगपर लगभग आधी छटाँक गंधक डालकर उसके ढक्कनको भलीभाँति बन्द कर देना चाहिए और धौंकनीसे कुछ देर हवा देनी चाहिए जिससे सारे बिलमें गैस अच्छी तरह भर जाय। यदि कहीं धुआँ निकलता हुआ दिखलाई दे तो खुले हुए सूराखोंको बन्द कर देना चाहिए। जब धूनी दी जा चुके तो शेष दोनों मुँहोंको भी बन्द कर देना चाहिए। अगले दिन यदि समस्त मुँह बन्द मिलें तो समझ लेना चाहिए कि चूहे मर गये।

धूनी देनेकी एक अत्यन्त उपयोगी मशीन "ह्वाइट एन्ट एक्स्ट्रीमिनेटर" है जो प्लान्टर्स स्टोर, कलकत्तासे मिल सकती है। इसमें गंधक और लोबान अथवा ह्वाइट एन्ट मिक्सचर जो गंधक और संखियाका मिश्रण है और जिससे पीले रंगकी गैस निकलती है जलाये जा सकते हैं परन्तु सादी धूनी देनेवाली उपयोगी मशीन मिट्टीके तेलके टीन अर्थात् कनस्तर, साधारण अँगीठी और बकरीकी खालकी धौंकनीसे सुगमतासे तैयार की जा सकती है।

बन्द स्थानमें सल्फर-डाइ-ऑक्साइड मनुष्यों तथा पशुओंके लिए हानिकारक है। खुली जगहमें इससे कोई भय नहीं है। जब कोई आदमी गंधकको मशीनके अन्दर अँगीठीकी आगपर डाले तो उसको इस बातकी साव-धानी रखनी चाहिए कि यह गैस साँसके साथ उसके गलेके अन्दर न चली जाय क्योंकि इससे गला घुटने लगता है और सरमें दर्द होने लगता है।

(ख) कार्बन-बाइ-सल्फाइड—यह एक बदबूदार पीली पतली वस्तु है जो हवाकी गर्मीसे भाप बनकर उड़ जाती है। यह भाप हवामें मिलकर भकसे उड़ जाने-वाला पदार्थ बन जाता है। बस इस बातकी सावधानी रखनी चाहिए कि आग उसके समीप न लाई जावे। कार्बन-बाइ-सल्फाइडकी गैस बिलोंके भीतर उस ही प्रकार भरी जाती है जिस प्रकार गंधककी गैस। इसके लिए आगकी आवश्यकता नहीं होती बल्कि इसको हवा देनेसे गैस उत्पन्न हो जाती है और पाइप द्वारा बिलमें चली जाती है। इसके लिए गंधककी गैस उत्पन्न करने-वाली मशीनकी अपेक्षा अधिक अच्छी मशीनकी आव-श्यकता है। इसके लिए सबसे उत्तम यन्त्र सडैथ रैबिट फ्यूमीगेटर है जो आस्ट्रेलियामें ख़रगोशोंके मारने-के लिए बनाया गया था। इसमें एक पम्प, एक कार्बन-बाइ-सल्फाइड रखनेका बर्तन, एक अमोनिया सौल्यूशन और हाइड्रोक्लोरिक एसिडसे सफेद गैस पैदा करनेके यन्त्र होते हैं।

देहातके विस्तृत रक़बोंपर बड़े और लगातार पैमाने-पर चूहोंको नष्ट करनेके लिए इस मशीनकी ज़ोरदार सिफ़ारिश की गई है। इस मशीन द्वारा एक सेर कारबन-बाइ-सल्फाइड चूहोंके चालीस बिलोंके लिए

पर्याप्त होगा और चूहे भी अधिक संख्यामें मरेंगे। चूँकि कार्बन-बाइ-सल्फाइडसे सड़े हुए अन्डेकी तरह बहुत ख़राब बदबू निकलती है इसलिए कार्यकर्ता इससे स्वयं ही बचाव करता है। अतएव इससे हानि पहुँचनेकी बहुत कम सम्भावना है।

रुई या कपड़ेकी मोटी और लम्बी बत्तियोंके अतिरिक्त कार्बन-बाइ-सल्फाइड बिना किसी यन्त्रके भली प्रकार काममें नहीं लाई जा सकती। ये बत्तियाँ काफी लम्बी होनी चाहिए जिनमें आधी छटाँक कार्बन-बाइ-सल्फाइड समा सके। भीगी हुई बत्तीको बिलके अन्दर जहाँतक पहुँच सके डाल दिया जावे।

(ग) सायनोजन क्लोराइड—यह एक बिना रंग-की बहुत ही दुर्गन्ध-युक्त गैस होती है। इसका सूँघना जानवरके लिए बहुत ही घातक है। परन्तु इसकी बदबू और आँखोंसे पानी बहानेके गुणके कारण कार्यकर्ता इससे स्वयं ही बचनेका प्रयत्न करता है। इसलिए कुछ अधिक भयकी बात नहीं है। इस गैसको किसी विशेष मशीनसे उत्पन्न करना चाहिए परन्तु इसको प्रयोगमें लानेके लिए मिट्टीके छोटे-छोटे बर्तनोंके अतिरिक्त कोई और उपयोगी मशीन नहीं है।

गैस बनानेका मसाला अनुमान सहित—

(१) सोडियम सायनाइड	४ ग्राम
(२) सोडियम क्लोरेट	२ ,,
(३) हाइड्रोक्लोरिक एसिड	३० सी० सी०

सोडियम सायनाइड और सोडियम क्लोरेटको अलग बर्तनोंमें पानीमें घोलकर मिला देना चाहिए। फिर एक दूसरे बर्तनसे इस मिश्रणमें हाइड्रोक्लोरिक एसिड डालना चाहिए। इस मात्राका लगभग १/२० भाग एक लम्बे बिलके लिए पर्याप्त होगा।

यदि साएनोजन क्लोराइड बिलोंके अन्दर बनाना हो तो सोडियम सायनाइड और क्लोरेटके मिश्रणसे भरे हुए बर्तनको बिलके अन्दर जितनी दूर रख सकते हैं रखना चाहिए। इसके पश्चात् हाइड्रोक्लोरिक एसिड-को काँचकी नली और चोंगेके द्वारा इस मिश्रणमें डाल देना चाहिए और बिलके मुँहको अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए।

(घ) हाइड्रोसायेनिक गैस—यह बहुत ही ज़हरीली गैस है और उसका बहुत थोड़ा भाग भी घातक है। इसलिए इसके प्रयोगमें बहुत ही सावधानी करनेकी आवश्यकता है। यह गैस पोटेशियम सायनाइड या सोडियम सायनाइडके साथ सलफ्यूरिक एसिड मिलानेसे पैदा होती है।

एक औंस पोटेशियम सायनाइडको एक बर्तनमें रखकर उसमें एक औंस सलफ्यूरिक एसिड तीन औंस पानीमें मिलाकर डाल देनी चाहिए। इससे लगभग २० बिलोंके लिए काफी तैयार हो जाती है।

नोट—पोटेशियम और सोडियम सायनाइडकी बहुत ही छोटी मिक़दार भी घातक है इसलिए इनको बहुत ही सावधानीके साथ काममें लाना चाहिए।

फूल, कृत्रिम रंगमें रँगना

गुलदस्तेमें पानी भरकर उसमें फूलोंके तने डाल दिये जाते हैं, जिससे फूल शीघ्र सूखने न पायें। परंतु यदि पानीमें थोड़ा-सा बुकनीका रंग घोल दिया जाय तो कुछ रंग फूलोंमें पहुँच जायगा। उदाहरणार्थ, यदि पानीमें थोड़ा नीला या हरा रंग घोल दिया जाय और उसमें सफ़ेद गुलाब खड़ा कर दिया जाय तो कुछ समय बाद गुलाबकी पंखड़ियोंकी नसें नीली या हरी रँग जायँगी और देखनेवाले आश्चर्य करेंगे कि इस रंगका फूल कहाँसे आया। यदि रंगके साथ थोड़ा-सा शोरा भी मिला दिया जाय तो रंग और शीघ्र चढ़ेगा। पानी इस प्रकार बनाया जाय :— पानी १ सेर

शोरा १ तोला, रंग आवश्यकतानुसार।

वैज्ञानिक जगत्के ताज़े समाचार

(पॉप्युलर मिकैनिक्ससे)

गणित द्वारा डूबे हुए जहाज़को ढूँढ़ निकाला—पिछले १७ अक्टूबरकी आँधीसे ऐरी झीलमें डूबा हुआ "सैंड मर्चेन्ट" नामक जहाज़ हफ्तोंतक लापता रहा। आख़िरकार गणितकी साधारण तरकीबसे झीलकी तहमें उसका ठीक पता लग गया। क्लीवलैंडके आस-पास पानीमें उसकी दो महीनेतक खोज हुई परन्तु सफलता न मिली। अन्तमें यूनाइटेड स्टेट्सके इञ्जीनियर ओहियोके किनारे उन तीन व्यक्तियोंसे मिले जिन्होंने जहाज़को डूबते हुए देखा था। जब उनकी दृष्टि-रेखाओंको, जो क्रमशः उत्तरसे ५६° पूर्वकी ओर, उत्तरसे ३०° पूर्वकी ओर, और उत्तरसे २$\frac{1}{2}$ पूर्वकी ओर थीं, एक नक़शेपर खींचा गया तो उनसे एक छोटा त्रिभुज बना जो किनारेसे ६ मील दूर था और पहिले खोज की जानेवाले स्थानसे पूर्वकी ओर था। डूबा हुआ जहाज़ तुरन्त ही इस त्रिभुजमें पूर्वकी ओर रेखाके पास ही मिल गया।

एक्स-रश्मि द्वारा नारंगियोंका अन्दरी हिस्सा देखकर उनमेंसे सर्वोत्तम डिब्बोंमें बन्द भेजनेके लिए चुन ली जाती हैं—फलोंको डिब्बोंमें भरनेके एक अँधेरे कमरेमें दो व्यक्ति एक्स-रश्मिकी मशीनकी खिड़कियोंकी तरफ देखते रहते हैं। उनके और मशीनके बीचमें फ्लोरोस्कोप एक पेटीमें बँधा रहता है जिसमें होकर नारंगियाँ मशीनके सामनेसे निकलती हैं। जब मशीनकी किरणें नारंगियोंपर पड़ती हैं तो फ्लोरोस्कोपमें उनकी छाया पड़ती है जिसे देखकर उनके अन्दरके गुण-अवगुणका पता चल जाता है और दूषित नारंगियाँ एक लीवरके दबानेसे बाहर निकल जाती हैं। इस तरह इस मशीनसे २२,५०० नारंगियोंकी प्रति घंटे (अर्थात् एक गाड़ीभर ४ घंटेमें) जाँच हो सकती है। इस मशीनकी अब भी प्रयोगशालामें जाँच हो रही है जिससे कि फलोंको बन्द डिब्बोंमें भेजनेकी संस्थाएँ इससे भलीभाँति लाभ उठा सकें।

पिस्तौलसे जीवन-रक्षक तार ३०० फ़ुट दूर फिंकता है—एक नये प्रकारकी जीवन-रक्षाकी पिस्तौलके एक खानेमें विशेष प्रकारका बुना हुआ तार लिपटा हुआ बन्द रहता है। यह पिस्तौल ३५० फ़ुट दूरीतक छोड़ी जा सकती है। यह मुलायम और बहुत ही मज़बूत तार डोरेकी तरह बनाया जाता है। यह अपने खानेमें अजीब तरहसे लिपटा हुआ रक्खा रहता है जिससे यह तीव्र गतिसे बिना उलझे चलता चला जाय। इस पिस्तौलका परिमाण ९″ × १३″ है। गोली छूटकर, तारको खींचती हुई निशानेतक व डूबती हुई नावतक ले जाती है। वहाँ फिर इस तारसे भारी रस्से किनारे व जहाज़तक खींचे जा सकते हैं। पिस्तौलसे पैरेच्यूटकी रोशनी भी जलाई जा सकती है।

द्रव अवस्थामें धातु रोगनकी तरह लगाये जाते हैं—द्रवित धातु गलावसे बचानेके लिए एक ही पदार्थ हैं। द्रव अवस्थामें सीसा, ताँबा, एल्यूमिनियम, क्रोमियम्, जस्ता और टीन धातु व पीतल काँसा आदि मेल मिल सकते हैं। निकिल आदिकी क़लई तो जोड़ोंपरसे छूट जाती है लेकिन द्रव धातु जोड़ व कटे हुए स्थानपर भी लगाये जा सकते हैं। एक जगह जहाँ १०,००० गैलन उदहरिकाम्लवाले तालाबके धुएँसे कारख़ानेकी धातुओंकी वस्तुएँ नष्ट हो रही थीं, वे सीसेकी पतली तह लगानेपर गलावसे बच गईं। सीसेके रोगनके तीन लेपोंसे एक्स-रश्मि अन्दर नहीं घुस सकती। ताँबेका पतला लेप पटी हुई छतोंपर व जहाज़ोंके फ़र्शपर लगाया जा सकता है या काँच और चीनी मिट्टीके सामानपर काम करनेके लिए भी इस्तैमाल किया जा सकता है। ब्रशसे, या पिटचिरेके फुव्वारेसे, या खाली डुबोनेसे ही धातुओंका लेप किया जा सकता है। कुछ सहस्रांश-इंचसे लेकर किसी भी मोटाईका लेप किया जा सकता है। द्रवीभूत धातु लकड़ी, धातु, काँच, चाम, ईंट आदिके सामान जोड़नेके लिए अत्युत्तम पदार्थ हैं।

नये प्रेसोंसे इस्पात ठीक मोटरोंकी छतकी शक्लमें ढल जाता है—इस्पातकी चादरोंको मोटरोंकी छतमें ढाँचनेवाली जंगी मशीन ३,०००,००० पौंडके दबावपर प्रति घंटे ६ फ़ुट चौड़ी और ९ मील लम्बी चादरसे काम करती है। एक बड़े पेचमें भीमकाय प्रेस इस्पातकी एक ही चादरसे मोटरका कुल खाँचा तैयार करता है। हर बड़े प्रेसके मुँहमें भारी इस्पातके ठप्पे होशियारीसे पालिश किये हुए पुख्ता लगे रहते हैं जिससे मोटरकी छतका बिल्कुल ठीक ढाँचा बन जाय। एक ऐसे प्रेसमें ठप्पोंका वजन २४०,००० पौंडके लगभग है। ये प्रेस ४५ फ़ुटसे अधिक ऊँचे हैं; और इतना बड़ा दबाव सहनेके लिए आधे कंकरीटमें गड़े रहते हैं। चादरको जगह ब जगह मोड़नेके बजाय ये मशीनें इसे इतनी ज़ोरसे दबाती हैं कि इस्पात जैसे नकशेमें चाहें ढँच जाता है। एक ठप्पेके सैटकी बिगड़ी हुई सतहोंको साफ़ और चिकना करनेके लिए १ आदमीकी ४५००० घंटेकी मेहनत चाहिए। इस तरहसे बननेके कारण सबसे नई मोटर जितना बोझ आमतौरपर १ मोटरपर पड़ता है उससे ३० गुना सहन कर सकती है। यदि कहीं मोटरमें मोड़ आ जाय तो उसे ठीक करनेके लिए २२,५०० पौंडका दबाव चाहिए जो १ मोटरमें १५० सवारी भरनेसे होगा।

खटमलके हृदय-संचालनके फोटो द्वारा इन पिस्सुओंको मारनेमें सहायता

फसलके नष्ट करनेवाले कीड़ोंको मारनेवाली भिन्न-भिन्न प्रकारकी औषधोंकी उपयोगिताका निश्चय करनेके लिए इन पतिंगोंकी हृदय-गतिका फोटो खींच लेनेसे अब बड़ी सहायता मिल रही है। कीड़े-मकोड़ोंमें जाँच पड़ताल करनेवाले विद्वानोंने सोचा कि यदि किसी कीड़ेकी हृदय-गतिका फोटो पहले खींचकर बादमें उस कीड़ेको मारनेवाले विषमें रक्खा जाय और पुनः उसके हृदय-गतिका फोटो लिया जाय तब दोनों फोटोंके मिलान करनेसे उस विषकी उपयोगिताका पता तुरंत लग जायगा। इस कार्यके लिए कीड़ोंके हृदयकी आवश्यकता पड़ी। लेकिन छोटे कीड़ेका हृदय बहुत ही छोटा होता है और पृथक करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसलिए कीड़के शरीरको चीरकर उसी पीठसे चुपटी हालतमें हृदय बाहर निकाल लिया जाता है। उसे फिर एक तश्तरीमें जिसमें मोम जमाकर भरा रहता है आलपीन-द्वारा स्थिर कर दिया जाता है।

यदि इस प्रकारके पृथक हृदयको खाद्य पदार्थ न दिया जाय तो शीघ्र ही उसका संचालन रुक जायगा और वह मृत हो जायेगा जिससे औषधोंका प्रभाव न देखा जा सकेगा। इससे बचनेके लिए और हृदयको जीवित तथा गतिशील रखनेके लिए रक्तके स्थानपर पानीमें घुले नमकका प्रयोग किया जाता है। मनुष्यके बालका एक सिरा हृदयमें बाँध दिया जाता है और दूसरा सिरा यंत्रकी सूईसे। हृदयकी प्रत्येक गतिमें सिकुड़ने और फैलनेसे बाल खिंच जाता है जिससे यंत्रकी सूई भी ऊपर-नीचे उठती है। सूई अपार-दर्शक होती है और इस सूईपर बिजलीको तेज प्रकाश एक ओरसे फेंका जाता है और दूसरी ओर फोटोकी फिल्म निरंतर बेलनपर चलती रहती है जिससे सूईकी साया फोटोके फिल्मपर पड़ती है; और जैसे-जैसे सूई हृदय-गतिके साथ ऊपर-नीचे उठती है उसी अनुसार फिल्मपर उसकी साया पड़ती है और प्रकाशके कारण फिल्मपर फोटो आ जाता है। इस प्रकारकी यंत्र द्वारा तिलचट्टेकी हृदय-गतिका लिया गया। फोटो देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इसका हृदय भी मनुष्यके हृदयकी भाँति निश्चित समयानुकूल संचालन करता रहता है। यदि निकोटिन नामक विष जो तम्बाकूमें रहता है नमकके घोलमें डाला दिया जाय (जिसमें हृदय रक्खा रहता है) तब विषके प्रभावके कारण हृदय-गति धीरे-धीरे रुक जाती है।

कच्चा टाँका तैयार करनेकी सारिणी

कच्चे टाँकेका उपयोग और नाम	टीन	सीसा	बिस्मथ	गलनेका तापक्रम-फ़°
बिस्मथका टाँका नं० १	३	५	३	२०२
" " " नं० २	२	२	१	२२९
" " " नं० ३	२	१	२	२३६
" " " नं० ४	१	१	१	२५४
" " " नं० ५	२	३	१	३१०
" " " नं० ६	४	४	१	३२०
टीनवालोंका मोटा टाँका	३	२	—	३३४
टीनवालोंका बारीक टाँका	२	१	—	३४०
पाइप फिट करनेवालोंका मोटा टाँका	१	३	—	४८२
पाइप फिट करनेवालोंका बारीक टाँका	१	२	—	४४१
सीसा झालनेका टाँका	१	१$\frac{1}{2}$	—	—
टीन झालनेका टाँका	१	२	—	—
काँसा झालनेका साधारण टाँका	२	१	—	—
काँसा झालनेका मुलायम टाँका	३	४	२	—
काँसा झालनेका सख्त टाँका	२	१	१	—

लैक्वर तैयार करना

धातुकी वस्तुओंको रँगनेके लिए एक विशेष प्रकारकी वार्निश तैयार की जाती है, जो लैक्वर-के नामसे प्रसिद्ध है। नीचे दी हुई सारिणी लैक्वर तैयार करनेमें बड़ी सहायक होगी।

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	तेज़ सादा	पीला सादा	हल्का पीला	सुनहरी पीला	सुनहरी चमकीला	गहरा सुनहरी	फीका पीला	लाल	टीनपर लगानेका	काँसेके लिए हरा
चपड़ा लाख—औंस	४	१	१	२	८	३	२	—	१५	—
मस्तगी — ड्राम	—	—	—	—	—	—	—	—	३०	—
कैनेडा बालसम-ड्राम	—	—	—	—	—	—	—	—	३०	—
स्पिरिट — पाइंट	१	१	१	२	४	१	१	—	६	—
नं० २ लिकर—पाइंट	—	—	—	—	—	—	—	१	—	१
ड्रैगंस् ब्लड—ड्राम	—	—	—	१	—	४	—	८	—	—
अनैटो — ड्राम	—	—	—	८	१	—	—	३२	—	—
हल्दी — ड्राम	—	—	१	३२	४	१६	—	—	६०	४
गैम्बोज— ड्राम	—	—	१	—	—	—	२	—	—	१
केसर — ड्राम	—	—	२	—	१	—	—	—	१०	—
केपअलोस—ड्राम	—	—	—	—	—	—	४	—	—	—
नीमका गौंद—ड्राम	—	—	—	८	—	—	—	—	—	—

(वाल्टर-हटनकी वर्क मैनेजर हैण्ड बुकसे)

ताँबा, काँसा, पीतल, लोहा, इस्पात, चाँदी और सोनेकी वस्तुएँ झालनेके लिए टाँका।

टाँकेका उपयोग और नाम	सोना	चाँदी	पीतल	ताँबा	टीन	जस्त	विशेष धातु
ताँबा और पीतल झालनेका मुलायम टाँका (१)	—	—	—	—	२	—	अँटीमनी १
,, ,, (२)	—	—	—	४	१	३	—
ताँबा, काँसा, और पीतल झालनेका सख्त टाँका	—	—	—	१	—	१	—
लोहा, काँसा, पीतल और ताँबा झालनेका सख्त टाँका	—	—	—	२	—	१	—
लोहा,काँसा,पीतल और ताँबा झालनेका बहुत सख्त टाँका (१)	—	—	—	३	—	१	—
,, ,, (२)	—	—	५	—	—	१	—
काँसा और पीतल झालनेका चाँदीका टाँका (१)	—	१	—	८	—	८	—
,, ,, (२)	—	१	१	—	—	—	—
जरमन सिलवर झालनेका चाँदीका टाँका	—	५	५	—	—	५	—
इस्पात और गहनोंमें झाल लगानेका चाँदीका टाँका	—	१९	१	१	—	—	—
गहनोंमें झाल लगानेका चाँदीका टाँका	—	१९	१०	१	—	—	—
गहनों और बारीक औज़ारोंमें झाल लगानेका चाँदीका टाँका	—	११	—	१३	—	—	—
चाँदीका टाँका जिसपर कलई चढ़ सके	—	२	१	—	—	—	—
चाँदीका मुलायम टाँका	—	२	१	—	—	—	—
चाँदीका सख्त टाँका	—	४	—	१	—	—	—
गहनोंमें लगानेका सोनेका साधारण टाँका	३	२	—	१½	—	१/२	—
सोनेका बारीक टाँका	१२	२	—	४	—	—	—
सोनेका बहुत बारीक टाँका	२४	२	—	१	—	—	—
अलुमिनियम झालनेका टाँका	—	—	—	४½	—	८९½	अलुमिनियम ६
अलुमिनियम झालनेका टाँका	—	३	—	३	१८	९	अलुमिनियम ६
अलुमिनियम झालनेका मुलायम टाँका	—	—	—	—	९४	—	बिसमथ ६

जून, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४७, संख्या ३

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्‌का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

यह अँग्रेजी वृद्धा टेलीविज़न अर्थात् दिव्य-दर्शनके आविष्कारको अपने जीवनका अन्तिम आविष्कार समझती है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces,
for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७९

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।
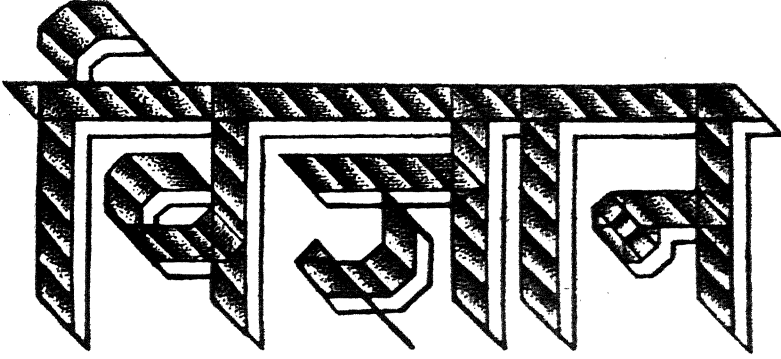
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७	प्रयाग, मिथुन, संवत् १९९५ विक्रमी जून, सन् १९३८	संख्या ३

मिट्टीका तेल

[ले०—डा० सत्यप्रकाश]

आजकल तो बड़े-बड़े नगरोंमें सड़कोंके किनारे बिजलीकी रोशनी होती है, फिर भी बड़े-बड़े शहरोंमें छोटी-छोटी गलियोंमें मिट्टीके तेलकी लाल्टेनें जलाई जाती हैं। आज तो मिट्टीके तेलका प्रचार इतना अधिक है कि अब उस युगकी कल्पना करना भी कठिन है जिसमें लोगोंको मिट्टीके तेलके व्यवहारका पतातक न था। क्या आप उस समयकी कल्पना कर सकते हैं जब लोग मिट्टीके तेलकी ढिबरियाँ या लाल्टेनें नहीं जलाते थे? उनके घरोंमें मन्द ज्योतिके सरसों या अण्डीके तेलके दिये टिमटिमाया करते थे।

शायद आप यह समझते हों कि अब तो बिजलीका प्रचार बढ़ रहा है, थोड़े दिनोंमें मिट्टीके तेलकी लाल्टेनोंका जलाना बन्द कर दिया जावेगा ; तब तो मिट्टीके तेलका व्यापार बिलकुल ही बन्द हो जायगा। यदि आप ऐसा समझते हैं, तो आप भूल करते हैं। आपको मिट्टीके तेलके विविध व्यापारोंका पता भी नहीं है। मैं तो कहता हूँ, आप संसारकी मिट्टीकी तेलवाली लाल्टेनोंको तोड़ डालिये। एक बोतल तेल भी इस काममें मत खर्च कीजिये ; फिर भी मिट्टीके तेलका व्यवसाय इसी प्रकार चलता रहेगा।

कोल गैस कैसे बनती है ?

हमारे देशमें तो ईंधनके रूपमें लकड़ी, कोयला और गोबरके कण्डे काममें लाये जाते हैं, पर आजकल बहुत बड़े नगरोंमें 'कोल-गैस' का व्यवहार किया जाता है। यह गैस नगरके केन्द्रस्थ कारपोरेशनसे सारे शहरमें नलों द्वारा उसी प्रकार घर-घर पहुँचती है जैसे हमारे यहाँ पानी। बस दियासलाई जलाकर 'बर्नर' में लगाई कि बिना धुआँके अति तीव्र आग प्राप्त हो गई। अब इसपर जो चाहिए पकाइये, बनाइये, उबालिये। यह 'कोल गैस' हमारे यहाँ कालेजोंकी रसायनशालाओंमें भी आपको काम आती मिलेगी। आप जाकर ज़रूर देखिये। कितनी सुविधाकी चीज़ है। यह बनती है कैसे? रसायनशालामें जाकर देखिये तो। यह मिट्टीके तेलसे बनती है। खूब दहकते अँगारोंपर बूँद-बूँद मिट्टीका तेल गिराया जाता है और तेलकी बनी वाष्पोंको नलों द्वारा बड़ी-बड़ी टंकियोंमें भर लेते हैं, और वहींसे यह गैस आपके कमरेतक पहुँचाई जाती है। यह गैस क्या है? केवल मिट्टीके तेलका एक भाग।

मोम कहाँसे आता है।

आप तो इतना ही जानते होंगे कि मधुमक्खीके छत्तेसे शहद और मोम दोनों प्राप्त होते हैं। पर क्या आप यह भी जानते हैं कि बाज़ारमें बिकनेवाला मोम अधिकतर मक्खीके छत्तेका नहीं होता? जिस मोमसे मोमबत्तियाँ बनकर बाज़ारमें आती हैं वह भी बहुधा मधुमक्खीका नहीं होता है। एक होता है 'बीज़ वैक्स' अर्थात् मधुमक्खीका मोम और दूसरा 'पैराफीन वैक्स' जिसका इतना अधिक व्यवहार किया जाता है। आपको यह सुनकर आश्चर्य्य होगा कि यह मोम तो मिट्टीके तेलके कारखानोंमें ही बनता है। यदि मिट्टीके तेलके कारखाने बन्द हो जायँ तो फिर इतना मोम कहाँसे मिलेगा ?

आपकी मोटरोंका पेट्रोल

कभी आपने यह भी सोचा है कि आपकी मोटरें किसके बलपर हवाके समान दौड़ लगाती हैं? आप तो अब जानते ही हैं कि मोटर तबतक ही चलती है जबतक इसमें पेट्रोल रहता है। नगरोंमें बड़े-बड़े चौरस्तोंके आस-पास पेट्रोल बेचनेकी दूकानें होती हैं। आपने कभी मोटरमें मोटे पाइप द्वारा पेट्रोल भरा जाता देखा है? किस अच्छी तरह नाप करके दो गैलन, चार गैलन पेट्रोल आपकी मोटरोंमें कलके द्वारा भर दिया जाता है! क्या आप यह नहीं जानते कि सफ़ेद पानीके समान यह द्रव भी मिट्टीके तेलका ही साफ़ किया हुआ रूप है? इसमें मिट्टीके तेलकी दुर्गन्ध नहीं होती है।

अब तो हवाई जहाज़ोंका ज़माना है। ऊपर पक्षियोंकी भाँति उड़ते हुए ये वायुयान क्या खाते-पीते और कैसे जीते हैं? इनका भी तो एक-मात्र भोजन पेट्रोल ही है। एक-एक हवाई जहाज़के लिए मनों पेट्रोल चाहिए। यह पेट्रोल तो आप जान ही गये, मिट्टीका तेल ही है।

मशीनोंका लुब्रिकेटिङ्ग तेल

क्या आपने कभी सोचा है कि आपकी साइकिल मीलोंका चक्कर लगाती है, पर फिर भी इसके पुर्ज़े न तो अधिक गरम होते हैं, और न घिसते ही अधिक हैं? आप यह भी जानते होंगे कि कभी-कभी आपकी पैरगाड़ी कुछ भारी चलने लगती है। ऐसे अवसरपर आप क्या करते हैं? 'साइकिलका तेल' नामसे जो डिब्बा मिलता है उसका थोड़ा-सा तेल आप छेदोंमेंसे डाल देते हैं। बस गाड़ी फिर हलकी चलने लगती है। यदि आप समयपर यह तेल जिसे लुब्रिकेटिङ्ग ऑयल कहते हैं न डालें तो गाड़ी भारी तो चलेगी ही और पुर्ज़े भी बहुत शीघ्र ही घिसकर खराब हो जायँगे।

साइकिलमें ही नहीं सीनेकी मशीनमें, छापेखानेकी मशीनोंमें, रेलके पहियोंमें, और सभी कारखानोंकी मशीनोंमें इस तेलका बहुत अधिक व्यवहार किया

जाता है। कभी आपने सोचा है कि यह तेल क्या है? मिट्टीका तेल यदि न हो तो आपका यह तेल बन ही नहीं सकता।

सुगन्धित तेलोंके लिए धड़ाधड़ मिट्टीके तेलकी माँग

आप तो यह समझते होंगे कि मिट्टीका तेल बदबूदार तरल पदार्थ है। हाथ या कपड़ोंमें लग जाता है तो बड़ी देरमें इसकी बदबू जाती है। पर आपको यह सुनकर कुछ कम आश्चर्य न होगा कि बाज़ारमें जो विदेशोंसे बने हुए सुगन्धित तेल आते हैं, वे सब मिट्टीके तेल ही हैं जिन्हें साफ़ करके दुर्गन्धरहित कर लिया गया है और जिनमें ऊपरसे थोड़ी-सी सुगन्ध और थोड़ा-सा रंग मिला दिया गया है। हमारे देशमें भी अब तो अतिप्रसिद्ध तेल इसी मिट्टीके तेलकी सहायतासे बनाये जाते हैं।

पीनेके लिए मिट्टीका तेल

आप कहेंगे कि भला कोई मिट्टीका तेल पीता होगा; पर सच मानिए—दवाखानोंमें एक तेल आता है जिसे 'लिक्वड पैराफिन' कहते हैं। यह तेल मिट्टीके तेलका ही रूपान्तर है। किसीको शौच ठीक न होता हो, तो एक-दो चम्मच दूधके साथ यह दिया जाता है, इससे दस्त साफ़ होता है। बड़े लोग और बच्चे सभी इसका सेवन करते हैं।

शौकीनीमें मिट्टीका तेल

ऊपर कहा जा चुका है कि सुगन्धित तेलोंको मिट्टीके तेलके आधारपर बनाया जाता है पर आजकल शौकीनीमें लोग थोड़े-से मिट्टीके तेलको कई-कई आने देकर ख़रीदते हैं। चार आनेसे दस-बारह आनेकी आनेवाली एमलशनकी बोतलमें थोड़ा-सा साफ़ किया गया मिट्टीका तेल होता है जो साबुनके साथ पानीमें फेंटा जाता है। थोड़ा-सा चूनाका पानी, कुछ गिलसरीन और कुछ एकाध चीज़ें और मिली होती हैं, पर मुख्य चीज़ तो मिट्टीके तेलका एमलशन है जिसके लिए आप इतना दाम देते हैं; शिरमें लगाते और चेहरेपर मलते हैं।

मिट्टीके तेलका काजल

मिट्टीका तेल जलाकर जो धुआँ मिलता है उसमें कोयलेके कण होते हैं। काजलकी भाँति यह कोयला इकट्ठा किया जा सकता है। अब इस काजलका उपयोग देखिये। जिस स्याहीसे आपका "विज्ञान" छपा है, शायद उसमें भी इसीके काजलका उपयोग किया गया हो। छापेखानेकी बहुत अच्छी स्याही मिट्टीके तेलके काजलसे बनती है।

इस काजलका उपयोग बिजलीके बहुत-से कामोंमें भी होता है। मिट्टीका तेल कहनेको तो साधारण-सी चीज़ है, पर इसकी उपयोगिता इतनी अधिक है कि आजकल इसके बिना काम ही नहीं चल सकता है।

मिट्टीमेंसे तेल निकालना

मिट्टीका तेल उस प्रकारका तो है नहीं जैसा सरसों या तिलका तेल। मिट्टीका तेल मिट्टीको कोल्हूमें पेरकर नहीं निकाला जाता है। यह तो पृथ्वीके अन्दर अति गहराईमें कहीं-कहीं वैसे मिलता है जैसे कुएँमें पानी। यद्यपि मिट्टीका तेल इतनी उपयोगी चीज़ है पर इसकी खुदाईको आरम्भ हुए केवल ८० वर्ष हुए हैं। सन् १८५९ में कर्नल ड्रेकने यूनाइटेड स्टेट्समें सबसे पहला मिट्टीके तेलका कुआँ खोदा। इससे पूर्व नियमित खुदाई कहीं नहीं की गई थी;—यतस्ततः अकस्मात् लोगोंको थोड़ा-सा तेल प्राप्त हो जाता था। पर इसके बाद तो तेलका खनिज व्यवसाय बराबर वैज्ञानिक विधियोंपर उन्नत होता गया। आज तो यह संसारके सबसे बड़े धन्धोंमेंसे एक है।

लोगोंने इस बातकी खोज करनी आरंभ की कि मिट्टीका तेल कहाँ-कहाँ मिल सकता है। बहुत-से स्थानोंका तो गड़रियोंको ऐसे पता था जहाँकि अपनी भेड़ोंको

हाँक ले जाया करते थे और भूमिमेंसे निकलती हुई तेलकी वाष्पोंको जलाकर अपने ढोरोंको गरमी पहुँचाया करते थे। कहा जाता है कि काकेशशमें एक पारसी मूर्ति इस प्रकारकी है जहाँ ईसाके जन्मसे अबतक बराबर ज्योति जल रही है। अग्निपूजकोंके लिए यह तीर्थका स्थान बन रही है। गैलीशिया और रूमानियाकी प्राचीन पुस्तकोंमें उन स्थानोंका उल्लेख है जहाँसे लोगोंको कई शताब्दियोंतक तेल मिलता रहा। ये प्राचीन लोग इस तेलका बहुत साधारण काममें ही उपयोग करते थे। वे क्या समझ सकते थे कि आगे चलकर यह तेल संसारमें एक नई क्रान्ति उत्पन्न कर देगा और इसकी सहायतासे बड़ी-बड़ी मशीनें चलाई जा सकेंगी।

मिट्टीके तेलके मुख्य स्थान

वे स्थान जहाँ आजकल मिट्टीका तेल अधिक मात्रामें पाया जाता है ये हैं— संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, रूमानिया, आस्ट्रिया-हँगेरी, पूर्व भारतीय द्वीप समूह और ब्रह्मा। इनके अतिरिक्त मेक्सिको, पेरू, आसाम, जापान, जर्मनी, वेस्ट इण्डीज़, और फारसमें भी इसकी खुदाईका काम आरंभ किया गया है। यदि इन सब स्थानोंका तेल समाप्त भी हो जाय, फिर भी यह आशा है कि पृथ्वीके गर्भमें अभी अनेकों ऐसे स्थान पड़े हुए हैं जहाँ मिट्टीके तेलका अगाध भंडार विद्यमान है। कम-से-कम कई शताब्दियोंतक तो मिट्टीके तेलकी कमी न हो सकेगी। आजकल प्रति सप्ताह १० लाख टनसे अधिक मिटीका तेल इन खानोंमेंसे निकाला जा रहा है। २७ मनका एक टन समझना चाहिए अर्थात् १७ करोड़ मन तेल प्रति सप्ताह संसारमें प्राप्त किया जा रहा है।

मिट्टीका तेल कहाँ मिलता है ?

भूगर्भवेत्ताओंने भूमिकी चट्टानोंका भली प्रकार अध्ययन किया है। वे यह जानते हैं कि किस प्रकारके स्थानोंपर खोदाई करनेसे मिट्टीका तेल मिलेगा। ब्रह्मामें बहुत-से व्यक्तियोंने अपने मामूली कामके लिए ज़मीनें लीं, और बादको उन्होंने उस ज़मीनमें भाग्य अजमाया। जिनकी ज़मीनोंमें मिट्टीका तेल निकल आया, वे मालामाल हो गये। मैं स्वयं इसी संयुक्त-प्रान्तके एक साधारण व्यक्तिके विषयमें जानता हूँ। वे गाँवके रहनेवाले ठाकुर हैं, टूटी-फूटी हिन्दी लिख लेते हैं। किसी प्रकार वे ब्रह्मा पहुँच गये; उनकी ज़मीनमें मिट्टीका तेल पाया गया। उसके व्यापारमें वे धनाढ्य हो गये। पर कभी-कभी आशाजनक स्थानोंमें भी मिट्टीका तेल नहीं मिल पाता, और हज़ारों रुपया व्यर्थ बरबाद जाता है। जिनको खोदाई करानी हो, वे भूगर्भवेत्ताओंसे पहले भली प्रकार निश्चय करा लें। चट्टानोंके ढालपर मिट्टीके तेलका होना, न होना बहुत निर्भर रहता है। इन ढालोंकी ठीक जाँच होनी चाहिए जिससे व्यर्थ खोदाई न करनी पड़े। यह निस्सन्देह सत्य है कि चट्टानोंमें मिट्टीके तेलवाले अनेकों अज्ञात स्थल अभी पड़े हुए हैं। यदि वहाँ खोदाई की जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है।

सन् १८७८ से १९२८ तक मिट्टीका व्यवसाय किस ज़ोरोंसे बढ़ा यह निम्न अंकोंसे स्पष्ट हो जायगा।

सन्	मीटर टन
१८७८	२०७७, २९१
१८९८	१६, ३८१, ७६०
१९०८	३८, ०५२, ०००
१९२०	९८, ६००, ०००

आजकल तो यह और बढ़ गया है। गत शताब्दीमें रूसका नम्बर सबसे आगे था, पर अब तो संयुक्त राज्य अमरीका मिट्टीके तेलके व्यापारमें सबसे आगे है।

खोदाईका आरम्भ

जब ठीक निश्चय हो जाय कि अमुक स्थानपर मिट्टीका तेल मिल सकता है तो फिर यह आवश्यक है कि एक गहरा छिद्र खोदा जाय जिसमेंसे तेल बाहर आ सके। सबसे पहले यह छिद्र "स्पड्स" नामक

यंत्रसे किया जाता है और बादको अति बलवान यंत्रोंसे 'गलाई' करते हैं। इस विधिको ड्रिलिंग भी कहते हैं। सबसे पहले बहुत चौड़े मुँहके ड्रिलोंका उपयोग करते हैं, और ज्यों-ज्यों नीचे पहुँचते जाते हैं एक ड्रिलके नीचे, दूसरा कम चौड़े मुँहका ड्रिल लगाते जाते हैं। इसी प्रकार आखीरतक एकके नीचे एक कई लगातार छोटे ड्रिलोंका उपयोग करते जाते हैं। इस प्रकार खोदा हुआ कुआँ बहुत दृढ़ और ठस होना चाहिए। जहाँतक हो, तेलके साथ पानी न मिलने देना चाहिए; कुएँकी दीवारें ऐसी बनी होनी चाहिए कि पानी उनमें रिस ही न सके। जिस तेलमें पानी मिला होगा उसका मूल्य कम हो जायगा। तेलमेंसे पानी पृथक् करनेकी विधिमें काफी खर्चा बैठता है, इसलिए आरंभसे ही ध्यान रहे कि कुएँमें पानी न जाय।

कुएँ खोदनेका काम बड़ी होशियारीका है। ५०० फुट गहरेसे लेकर ४००० फुट गहराईतकका कुआँ कभी-कभी खोदना पड़ता है। तेलके साथ मिट्टी और बालू भी ऊपर आती है। विशेष "सैण्ड पम्प" और अन्य यंत्रों द्वारा मिट्टी और बालू अलग करनी पड़ती है।

पम्प द्वारा तेल कुएँमेंसे बाहर निकाला जाता है और नलों द्वारा बड़ी-बड़ी टंकियोंमें पहुँचाया जाता है। कुएँमेंसे तेल ऊपर लानेकी और भी कई विधियाँ हैं—कभी-कभी तो तेलकी गैसें बड़े भयानक रूपसे ऊपर आती हैं। बाकूमें एक बार तेलकी यह धारा १८ महीने अपने आप ऊपर आती रही। काकेशस श्रेणियोंके ग्रास्नी नामक स्थानमें एक अँग्रेज़ उसी प्रकारकी एक धाराके चक्रमें फँस गया। पहले तो उसे जानकर खुशी हुई कि यह मिट्टीका तेल है क्योंकि इसके व्यापारसे वह मालामाल हो सकता था। पर बादको यह धारा उसके वशसे बाहर हो गई। भेड़ोंका समूह नष्ट हो गया, हरे-भरे खेत बरबाद हो गये। वह इस धाराके वेगको कम करनेके लिए धन खर्च करनेको तैयार था, पर वह ऐसा न कर सका वह तेलके व्यापारमें बरबाद हो गया।

यह प्रयत्न किया जाता है कि कुएँके मुखपर मज़बूत वाल्व लगाकर तेलको बड़ी-बड़ी टंकियोंमें ले जाया जाय। पर कभी-कभी तो तेल बड़े उग्र रूपसे बाहर आता है। नल फट जाते हैं। और कहीं यदि निकटमें आग हुई तब तो हत्याकाण्ड मच जाता है। एक ओर आगकी लपटें और दूसरी ओर आकाशमें जले तेलका काला धुआँ यह सब प्रलयकी याद दिला देता है। इस आगको बुझानेकी अच्छी विधि यह है, कि पानीकी गरम भाप आगके अंदर पहुँचाई जाय। इस कामके लिए ८ दृढ़ बॉयलरोंमें पानी गरम किया जाता है और भाप बड़े-बड़े नलों द्वारा आगपर छोड़ी जाती है। पानीकी भापके कारण हवाका प्रवाह मिट्टीके तेलकी ओर रुक जाता है और आग बुझ जाती है।

तेल साफ़ किया जाता है

कुएँसे निकाला गया तेल सीधा ही बाज़ारमें बिकने नहीं आता। तुमने देखा होगा कि जलानेके लिए दो प्रकारका मिट्टीका तेल मिलता है—लाल और सफ़ेद। सफ़ेद तेल अधिक साफ़ होता है। मोटर-का पेट्रोल तो इस सफ़ेद तेलसे भी अधिक अच्छा होता है। इस सफ़ाईके लिए भी विशेष कारखाने हैं जहाँ अनेक विधियोंसे यह काम किया जाता है।

मोटे काग़ज़में पड़ी शिकनको मिटाना

स्वच्छ काग़ज़पर शिकन पड़े काग़ज़को रक्खो। ऊपर दूसरा काग़ज़ रक्खो जो पानीसे थोड़ा नम कर दिया गया हो। इस पर धोबीकी गरम इस्त्रीसे इस्त्री करनेपर शिकन बहुत-कुछ मिट जायगी।

धनाणु या पोज़ीट्रॉन्स क्या हैं ?

[ले०—श्री बैकुण्ठबिहारी भाटिया]

यह तो शायद हर एक ही जानता होगा कि विद्युत शक्ति दो प्रकारकी होती है। एकको धनात्मक विद्युत तथा दूसरीको ऋणात्मक विद्युत कहते हैं। प्रकृतिमें यह शक्ति बहुत ही नन्हे-नन्हे हिस्सोंमें पाई जाती है और इन्हें बिजलीके कण कहा जा सकता है। ऋणात्मक विद्युतके कणोंका नाम ऋणाणु (एलेक्ट्रोन) है और इनसे वैज्ञानिक बहुत दिनोंसे परिचित हैं। सन् १९२३ ईसवीमें मिलीकनने इनके ऊपरकी विद्युत-मात्राको नापा था।

वर्तमान विचार किसी वस्तुके परमाणुके हिस्सोंको निश्चिन्त रूपसे नहीं बता सकता है। उसमें बहुत काफ़ी परिवर्तन होते रहते हैं पर फिर भी इतना कहा जा सकता है कि ऋणाणु भिन्न-भिन्न प्रकारके वृत्तोंमें चक्कर लगाते हैं, जिनके केन्द्रमें धनात्मक विद्युत् वर्तमान हैं। सर जे० जे० टामसन तथा एफ डबल्यू एस्टनने अपने दो भिन्न-भिन्न तरीक़ोंसे ऋणाणुओंका भार और उनके ऊपरकी विद्युत्-मात्राको निकाला है। वायुशून्य नलीमें इनका वेग भी प्रयोग द्वारा निर्णय किया जा चुका है। वायुशून्य नलीके दोनों सिरोंमें किसी सख्त वस्तु, जैसे प्लैटिनम या वुल्फ्रामकी दो तश्तरियाँ होती है जिनमेंसे एक गोल होती है और दूसरी चपटी। इन तश्तरियोंके बाहरी हिस्से किसी बिजली पैदा करनेवाले यन्त्रसे मिला दिये जाते हैं। कुछ इससे मिलती-जुलती ही नलीमें गोल्डस्टेनने धनात्मक विद्युत् लिये हुए कुछ कण प्राप्त किये थे। बादमें ये कण इस प्रकारकी नलियोंमें प्रयोगके समय क़तार-की-क़तारमें चलते हुए मालूम हुए। इनका भार और इनके ऊपरकी विद्युत्-मात्रा नलीमें बची हुई गैसपर निर्भर है। बात यह है कि जब हवा किसी वायुशून्य नलीको बनाते समय निकाली जाती है तो उसे बिलकुल नहीं निकालते हैं बल्कि उसकी कुछ मात्रा उसमें छोड़ दी जाती है। बहुधा ऐसी नलियोंमें जो गैस उनमें रक्खी जाती है वह हवा नहीं होती, बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकारकी गैसें जैसे हाइड्रोजन या न्योन बन्द कर दी जाती हैं।

ये ऊपर बताये हुए कण कई प्रकारके होते हैं और उनमें इस प्रकारकी भिन्नता केवल भिन्न गैसोंको प्रयोग करनेसे ही नहीं पैदा होती है, यह तो किसी एक ही गैसमें भी कई प्रकारसे हो सकती है। जैसे नियोन गैसमें ये कण दो प्रकारके पाये जाते हैं। ये दो प्रकारके कण जो कि नियोन गैसके हिस्से हैं समस्थानिक (आइसोटोप) कहलाते हैं और ये रासायनिक क्रियाओंके अनुसार नियोन वायुसे किसी प्रकार दो नहीं हैं। इन कणोंकी कतारकी धनात्मक या पौज़िटिव किरणें कहते हैं और ऐसी क़तारोंमें कई प्रकारके समस्थानिक होते हैं। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके समस्थानिक निकाले जा चुके हैं और उनके ऊपरकी विद्युत्-मात्रा तथा उनका भार मालूम कर लिया गया है। अधिकतर समस्थानिकोंका भार और उनके ऊपरकी विद्युत्-मात्रा ऋणाणुओंकी इन्हीं दोनों चीज़ोंसे बहुत अधिक होती हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि परमाणु और कुछ नहीं है, सिवा इसके कि कुछ ऋणाणु अपने नियत वृत्तोंमें घूमते हों जिनके केन्द्रमें धनात्मक विद्युत् वर्तमान् हो। ख़ाली स्थान एक मानी हुई वस्तु ईथरसे भरा हुआ हो जो परमाणुके भीतर और बाहर निरन्तर सर्वव्यापी है। उदजनके परमाणुमें केन्द्रको प्रोटोन कहते हैं और इसका भार ऋणाणुसे १८३७ गुना अधिक भारी है।

इस प्रकार आपको दो प्रकारके कण मिले—एकपर धनात्मक विद्युत् वर्तमान है तो दूसरेपर ऋणात्मक; भारमें भी ये एक दूसरेसे नहीं मिलते हैं। अव्वल तो धनात्मक कण स्वयं ही एक दूसरेसे नहीं मिलते हैं तिसपर विद्युत् भी इनपर बहुत अधिक भिन्न मात्रामें पाई जाती है।

ऐसी हालतमें वैज्ञानिक किसी एक ऐसे कणकी प्रतीक्षामें हों जिसका भार ऋणाणुओंके भारके बराबर हो या कम-से-कम विद्युत्-मात्रा तो एक ही हो, पर इनपरकी बिजली पौज़िटिव प्रकारकी हो, कोई अचम्भेकी बात नहीं है।

यह वैज्ञानिकोंकी आशा डाक्टर कार्ल डी, एण्डरसनने १९३२ ईसवीमें अगस्तकी एक रातको पूर्ण की। डाक्टर साहब कैलीफ़ोर्नियामें टेकनोलोजी इन्स्टीट्यूटके प्रोफ़ेसर हैं। इन्होंने कौस्मिक किरणोंपर प्रयोग करते समय एक ऐसा कण पाया जिसका कि भार एलक्ट्रोनके भारके बराबर था, और जिसके ऊपर विद्युत्-मात्रा भी उसीके बराबर थी पर केवल वह धनात्मक थी यद्यपि ऋणाणुओंपर ऋणात्मक विद्युत् होती है। ऐसे कणोंका नाम उक्त वैज्ञानिकने धनाणु या पोज़ीट्रॉन रक्खा।

वार्निश

[ले०—श्री श्यामनारायण कपूर— साहित्य निकेतन, कानपुर]

वार्निश आमतौरपर तीन श्रेणियोंमें विभाजित की जाती है।

उड़नेवाली वार्निश

(१) इस श्रेणीकी वार्निश आम तौरपर रालकी जातिके पदार्थोंको शीघ्र ही उड़ जानेवाले घोलकोंमें घोलकर तैयार की जाती है। इस श्रेणीकी वार्निशोंमें स्पिरिट वार्निश और सेल्यूलोज़ ईस्टर वार्निशें मुख्य हैं।

सूखनेवाले तेल

(२) ये अलसी, पोस्ते और चीनी लकड़ी जैसे सूखनेवाले वनस्पति तेलोंसे भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं द्वारा तैयार किये जाते हैं। इनकी तैयारीमें 'शोषक' (ड्रायर) नामक रासायनिक यौगिक भी काममें लाये जाते हैं। इस श्रेणीमें अलसीका पक्का तेल, स्टेन्ड ऑयल, और अलसीके गाढ़े तेल मुख्य हैं।

तेल वार्निश

(३) इस श्रेणीकी वार्निश रालकी जातिके पदार्थोंको सूखनेवाले तेलों और ऐसे विद्रावक द्रवोंमें घोलकर तैयार की जाती है, जो बहुत जल्दी उड़ सकते हैं। इस श्रेणीकी वार्निशोंमें भी शोषक मिलाये जाते हैं। राजन कोपल, डामर और एसफेल्ट वार्निश तेल वार्निशकी श्रेणीमें गिनी जाती हैं।

वार्निश और तेल रंगों और रङ्गीन मिट्टियोंसे पेंट तैयार करनेमें बाँधनेवाले माध्यमका भी काम करते हैं। आजकल साधारण वार्निशकी अपेक्षा ऑयल पेंट और वार्निश पेंटका व्यवहार बहुत बढ़ गया है।

उड़नेवाली या वोलेटाइल वार्निश

प्रथम श्रेणीकी वार्निश दो प्रकारकी होती है:—

(१) स्पिरिट वार्निश और,

(२) सेल्यूलोज़ ईस्टर वार्निश।

स्पिरिट वार्निश लाख और राल आदि पदार्थों-को अलकोहल या स्पिरिट, अमाइल अलकोहल, अमाइल एसिटेट, और एसिटोन आदि द्रावकों अथवा उनके मिश्रणोंमें घोलकर बनाई जाती है। इसकी तैयारीमें स्पिरिटके बजाय कभी-कभी बेनज़ीन, एक-या द्विहर-बनजावीन तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड सरीखे द्रावक भी काममें लाये जाते हैं।

थोड़ी मात्रामें वार्निश तैयार करनेके लिए राल, राजन अथवा लाखकी जातिके पदार्थोंका चूरा बना लिया जाता है। इस चूरेको बोतलों या शीशेके दूसरे बर्त्तनोंमें रखकर द्रावक डालकर ख़ूब अच्छी तरह मिला-कर एकदिल कर लिया जाता है। अधिक मात्रामें व्यापार आदिके लिए बनानेको रेज़िनक मशीनसे पीसा जाता है। गोले और नम रेज़िन जैसे ब्लीच्ड या निखारी हुई लाखको द्रावकमें घोलनेसे पहिले ख़ूब अच्छी तरह सुखा लिया जाता है जिसमें उसे घोलते समय वार्निशमें गुल्थियाँ आदि न पड़ जावें और वार्निश-का रङ्ग ख़राब न हो जावे। अधिक मात्रामें वार्निश बनानेके लिए बड़े-बड़े ड्रम काममें लाये जाते हैं। गुल्थियोंके रोकनेके लिए कोल या क्वार्ट्ज़का बारीक चूरा भी काममें लाया जाता है। रेज़िनको ड्रममें रख-कर स्पिरिट उसके ऊपर उँडेल दी जाती है। राजन अथवा लाखके ऊपर इतनी स्पिरिट ज़रूर डाली जाती है जिससे वह स्पिरिटमें अच्छी तरह डूब जावे और एक-दो इंच ऊँची स्पिरिट उसके ऊपर आ जावे। इसके बाद लकड़ीसे चलाकर लाख और स्पिरिटको एकदिल कर लिया जाता है। घोल तैयार हो जानेपर वार्निशको नम्य और लचीला बनानेवाले पदार्थ उसमें और मिला दिये जाते हैं। उसके बाद बाकी स्पिरिट मिला-कर घोलको एक बार फिर ख़ूब अच्छी तरह चला लिया जाता है।

जहाँ बहुत ज्यादा वार्निश तैयार करनी होती है वहाँ हाथसे चलानेका काम न करके, चलानेके लिए भी मशीनें काममें लाई जाती हैं। एक बारमें ३-४ मन माल घोला जाता है। इससे भी अधिक १ टन या २ टन माल एक साथ घोलनेके लिए और भी बड़ी मशीनें काममें लाई जाती हैं। वार्निशको इस्तेमाल करनेके पहिले या बाज़ारमें बिक्रीके लिए रखनेसे पहिले छान लेना ज़रूरी होता है। थोड़ी मात्रामें छाननेके लिए टीन अथवा काँचकी कुप्पियाँ काममें लाई जा सकती हैं। इन कुप्पियोंसे रुई या काँचकी रुईसे छाननेका काम लिया जा सकता है। छाननेके बाद भी वार्निश साफ़ और चमकदार नहीं हो पाती इसलिए वार्निशको छाननेके बाद लकड़ी अथवा टीनके बड़े बर्त्तनोंमें कुछ दिनतक रखकर थिराया जाता है। जिन बर्त्तनोंमें वार्निश रखकर थिराई जाती है वे इस प्रकार रक्खे जाते हैं कि उनमें हवा बिलकुल प्रवेश न कर सके। खुले रहनेपर स्पिरिट आदि द्रावक बहुत जल्दी उड़ जाते हैं। स्पिरिट वार्निश बनानेके लिए आम तौरपर नीचे लिखे रेज़िन काममें लाये जाते हैं:—

लाख, चपड़ा, स्टिक लाख, सीड लाख (चूरा) रिफाइंड शैलक, ब्लीच्ड शैलक, मनीला कोपल, राजन, सन्दरस मुस्तगी (मेस्टिक), डामर, खूनखराबा ड्रेगन्स ब्लड आदि आदि।

नुसखे

कुछ उपयोगी नुसखे पाठकोंकी जानकारीके लिए यहाँ दिये जाते हैं:—

१	मनीला कोपल (हलका)	३३.
	स्पिरिट (९३—९५%)	६६.
	अलसी तेलके फैटी एसिड	१.
		१००

यह वार्निश लकड़ीकी चीज़ों, फर्नीचर, बढ़िया खिलौनों, पैमानों और लेबिलों आदिपर लगानेके काम-की है। गाढ़ी बनाई जानेपर भी यह रङ्गीन वार्निशोंमें भी मिलानेके काममें आ सकती है।

नोट—अलसीके तेलके फैटी एसिड बनानेके लिए पहिले अलसी तेलका साबुन तैयार करना चाहिए और बादमें इस साबुनको पानीमें घोलकर गन्धकके तेज़ाबसे फाड़ देना चाहिए। फैटी एसिड घोलके ऊपर तैलकी तरह जमा हो जावेंगे। इन्हें छानकर अलग कर लेना चाहिए।

२— मनीला कोपल २२
सफेद राजन २०
स्पिरिट ५६
गाढ़ी तारपीन २
——
१००

यह वार्निश लकड़ीकी चीज़ों, खिलौनों, फर्नीचर स्ट्राहैट आदिके कामकी होती है।

३— हलके पीले रङ्गकी वार्निश

मनीला कोपल नम्बर २ ३५
स्पिरिट ५५
एमाइल एलकोहल ५
एसिटोन ४
अण्डीका तेल १
——
१००

४— अलवरटाल (नक़ली लाख)

स्पिरिटमें घुलनेवाली ३३
स्पिरिट ६७
——
१००

वार्निश नम्बर ३ ५०
वार्निश नम्बर ४ ५०
——
१००

ऊपरकी दोनों वार्निशोंको बराबर-बराबर मिलानेसे एक नई वार्निश बनेगी। यह लकड़ीके सामान, खिलौनों, सफेदके अतिरिक्त दूसरे सूखे रङ्गोंमें मिलाने और धातुकी चादरोंपर लगानेके काम आती है।

६—बैकलाइट ३५
स्पिरिट ६५
——
१००

यह वार्निश गरम करनेपर भी ख़राब न होगी। टीनोंमें लगाई जा सकती है। फोटोग्राफीके काममें लाये जानेवाले बर्त्तनोंको तेज़ाबके असरसे बचानेके लिए भी लगाई जाती है। लेम्प शेड और बिजलीके सामानपर भी लगानेके कामकी है।

७— लाल वार्निश

एक्रौइड लाल ४८
स्पिरिट ५१
अण्डीका तेल १
——
१००

यह वार्निश डार्क रूमकी खिड़कियोंके कामकी है। लाखकी वार्निशके साथ मिलाकर फ्रेमोंपर पालिश करनेके काममें, मनीला वार्निशके साथ मिलाकर रंगीन वार्निशका अस्तर और बैकलाइट वार्निशके साथ धातुकी चीज़ोंपर लगानेके काम आती है।

८— सन्दरस वार्निश

सन्दरस २०
मुस्तगी-मैस्टिक १०
स्पिरिट ६४
तारपीन गाढ़ी ६
——
१००

इसमें संदरस और मुस्तगी दोनोंके घोल अलग-अलग बनाने चाहिए और आवश्यकतानुसार दोनोंको मिलाकर काममें लाना चाहिए। यह वार्निश क़ागज़पर भी लगाई जा सकती है और जिल्दसाज़ोंके काम-

में भी आती है। चित्रोंपर तथा वाटरकलर पेंटिंगके कामकी भी है।

९—शैलक (चपड़ा) पालिश

सफेद गाढ़ी पालिश

ब्लीच्ड शैलक	६० भाग
स्पिरिट	८० भाग

सफेद पतली पालिश

ब्लीच्ड शैलक	३८ भाग
स्पिरिट	८० भाग

पीली गाढ़ी पालिश

लैमन शैलक	४५ ,,
स्पिरिट	६५ ,,

पीली पतली पालिश

लैमन शैलक	२० ,,
स्पिरिट	६५ ,,

ब्राउन गाढ़ी पालिश

ऑरेंज शैलक	३६ ,,
स्पिरिट	८२ ,,

ब्राउन पतली पालिश

ऑरेंज शैलक	२५ ,,
स्पिरिट	८२ ,,

गाढ़े रंगकी (कत्थई)

गार्नेट शैलक	३६
स्पिरिट	८२

ब्लीच्ड शैलकसे बनी हुई पालिशको छानकर उसमें ३-४ प्रतिशत मोम और मिला देना चाहिए। मोम मिली हुई पालिश भी बाज़ारमें विशुद्ध शैलक पालिशके नामसे बिकती है। आवश्यकता पड़नेपर एक्रौइडके घोल (१: ४) और मनीला कोपलके घोल (१: ८) भी पालिशके तौरपर काममें लाये जा सकते हैं। परन्तु उनमें तैलकी मात्रा कुछ अधिक होनी चाहिए।

उपर्युक्त शैलक पालिशको बिना मोम मिलाये भी काममें लाया जा सकता है। बिना मोम मिला हुआ घोल पालिश करनेवाली वार्निशका काम देता है। बाज़ारमें यह 'रशियन पालिशिंग वार्निश' के नामसे बिकता है। पुस्तकोंकी जिल्दों, पीतल, एवं चाँदी आदिपर लगानेकी वार्निश भी यही होती है।

कभी-कभी इन घोलोंमें शैलकके साथ ही मनीला कोपल और संदरस भी मिला दिया जाता है। इस वार्निश पालिशकी फिल्म बहुत हलके रंगकी और ख़ूब चमकदार होती है। सख़्त होनेके साथ ही यह लचीली भी काफ़ी होती है। यह वायोलिन और सितार आदि बाजोंपर भी लगानेके काममें आती है।

१०—

मनीला कोपलका घोल हलका नं० १—	६४
ब्लीच्ड शैलकका घोल	३०
तारपीन (विशुद्ध)	१

बिना चमक और रङ्गकी मैट एवं अर्ध मैट वार्निश

इस वार्निशको बनानेके लिए उपर्युक्त चमकदार वार्निशोंके दो घोलोंको मिलाकर उनमें ईथर, बेनज़ीन, मोनोक्लोरबेनजीन तथा डाइक्लोरबेनज़ीन सरीखे द्रावक और मिला दिये जाते हैं। यह बात ज़रूर ध्यानमें रखना चाहिए कि यदि चमकदार वार्निशोंको अलग-अलग या मिलाकर भी लगाया जायगा तो चमक ज़रूर आ जायगी।

११—संदरस और डामरकी मैट वार्निश

संदरस	१५
ईथर	४५
डामर	६
टोल्वीन	३४
	१००

१२—मनीला एक्रौइडके घोल मैट

यह वार्निश फोटोग्राफीके कामकी है और नेगेटिव-पर लगानेके काम आती है।

एक्रौरइड घोल नं०	७—	४२
मनीलाका घोल नं०	३—	४६
स्पिरिट		१२

यह वार्निश ब्राउन मैटका भी काम देती है।

१३— शैलक मैट

ऑरेंज शैलक	३३
स्पिरिट	४७
एथाइल ईथर	२०

१४— शैलक ऑरेंज

शैलक ऑरेंज	१६
स्पिरिट	७८
गेलिपाट	३·६
अलसीका तेल	०·९
मोम मधुमक्खी)	१·५
	१००

मैट पालिश

शैलक, मोम, तेल तथा कभी-कभी ईथरके संयोगसे बनाई जाती है। यह पालिश रंगीन फर्नीचर या पालिशदार फर्नीचरपर लगानेके काम आती है। शैलकके घोलमें अलसीका तेल या मधुमक्खीका मोम अथवा लाखका मोम मिलानेसे अच्छी मैट पालिश तैयार हो जाती है।

रोग़न (लैकर्स)

बिना रंगकी स्पिरिट वार्निशको बाज़ारू को लतार रंगमें मिलाकर रंगीन पारदर्शक रोग़न भी बनाये जाते हैं। खिलौनों और लेम्पों आदिपर ऐसी ही रंगीन वार्निश लगाई जाती है।

सुनहरी और पीतल जैसी वार्निशें भी इसी प्रकार बनाई जाती हैं। वास्तवमें रंगोंके संयोगसे किसी भी रंगकी वार्निश या लैकर आसानीसे तैयार किया जा सकता है।

स्पिरिट वार्निशमें रंग मिलानेसे ब्रोंज़ या ब्रोंज़ रंगकी पालिश भी बनती है। यह पालिश ब्रुशसे भी लगाई जा सकती है।

धातुके बर्त्तनों और टीनकी चादरोंपर भी इसकी अच्छी चमकदार और रंगीन फिल्म बनती है। धातु-की जिस वस्तुपर पालिश लगाना हो उसे अच्छी तरह गरम कर लेना चाहिए। चिकनाई तो उसमें ज़रा भी न रहने पावे। पालिश लगानेसे पहिले उसे ज़रा गरम कर लेना भी लाभदायक होता है।

पीतलके बर्त्तनोंके लिए सुनहरा लैकर

लाख	१६
खूनखराबा	४
हल्दी	१
स्पिरिट	३२०

लाख, हल्दी और खूनख़राबा इन तीनोंको स्पिरिट-में अच्छी तरह गला लेना चाहिए और छानकर रख लेना चाहिए। जिन चीज़ोंपर पालिश लगाना हो वे खूब अच्छी तरह साफ कर ली जावें और उन्हें गरम करके पालिश लगाई जावे। वस्तु केवल इतनी गरम की जावे कि गरम होते हुए भी उसे आसानीसे हाथसे पकड़ा जा सके। पालिश मुलायम ब्रुश अथवा मुलायम साफ़ कपड़ेसे लगाई जावे। अगर हलके रंगकी ज़रूरत हो तो कुछ स्पिरिट और मिला ली जाय।

टीनकी चीज़ोंके लिए

एलकोहल या स्पिरिट	आधा पाइन्ट
शैलक गम (लाख)	१ औंस
हल्दी	$\frac{1}{2}$ औंस
लाल चन्दन	$1\frac{1}{2}$ औंस

इन सबको एक बर्त्तनमें मिलाकर किसी गरम जगहमें रख दिया जावे और दिनमें कई बार हिलाया जाय ; बादमें छानकर रख लिया जाय। जिस वस्तुपर लैकर लगाना हो उसे यदि लैकरमें डुबोया जा सके तो अच्छा है। गहरा या हलका रंग चढ़ानेके लिए एकसे अधिक लेप दिये जा सकते हैं।

यह लैकर कई रङ्गका बनाया जा सकता है। हल्दीकी जगह गुलाबी रंग, जो स्पिरिटमें घुल सके, मिलानेसे गुलाबी, और प्रशियन ब्लू मिलानेसे नीला लैकर तैयार होगा। हल्दीके साथ नीला रङ्ग देनेसे बैजनी पालिश बनेगी।

इस लैकर अथवा स्पिरिट वार्निशको टीनपर स्थायी बनानेके लिए इसमें ½ प्रतिशत (सवा सेरमें आधा तोला) बोरिक एसिड मिला देना चाहिए। इसके संयोगसे पालिशका फिल्म काफी कड़ा होगा और उसे नाख़ूनसे भी न छुड़ाया जा सकेगा। परन्तु बोरिक एसिडको उपरोक्त मात्रासे अधिक न मिलाया जाय नहीं तो रंग ख़राब हो जायगा।

लाखकी रंगीन वार्निश

शैलक	८ औंस
स्पिरिट	१½ पाइन्ट
सलफ्यूरिक ईथर	२½ औंस
गाढ़ी तारपीन	४ औंस
बोरिक एसिड	½ औंस

सबको अच्छी तरह मिलाकर छान लेना चाहिए। इसे रंगीन बनानेके लिए स्पिरिटमें घुलनेवाले रंग काममें लाये जा सकते हैं। लालके लिए इओसिन, नीला (नीनोल-ब्लू), हरा, निग्रोसिन (काला), मिथाइल वायोलेट आदि-आदि रंग मिलाकर इच्छानुसार विभिन्न रङ्गोंके लैकर तैयार किये जा सकते हैं।

अपारदर्शक लैकर

इस लैकरको यदि अपारदर्शक बनाना हो तो इसमें ८ औंस बारीक संगजराव और मिला दिया जावे। परन्तु इसे जब कभी काममें लाया जावे अच्छी तरहसे चला ज़रूर लिया जावे नहीं तो संगजरावका कोई असर नहीं होगा ; वह नीचे बैठ जाता है।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र आदि बढ़िया नाजुक यंत्रोंके लिए लैकर

१६० भाग हल्दी खूब बारीक पिसी हुई
१७० भाग स्पिरिट

२४घंटे अच्छी तरहसे मिलने दिया जाय। फिर छान लिया जावे।

८० भाग संदरस
८० भाग खूनखराबा
८० भाग गम इलीमी
५० भाग गमगट्टा (मलायाका गोंद)
७० भाग लाख

इन सबको एक बर्त्तनमें रखिये। इस बर्त्तनमें २५० भाग बारीक पिसा हुआ शीशा पहिले ही से रक्खा हो। बादमें इसमें ऊपरकी हल्दी मिली रंगीन स्पिरिट मिला दी जावे और जल्दी-जल्दी चलाया जावे। यदि आवश्यक हो तो अच्छी तरह घोल बनानेके लिए पानी अथवा बालूके ऊपर रखकर गरम भी कर लिया जावे। सब चीज़ोंको अच्छी तरह घुल जानेपर छान लिया जाय।

शीशा अंधा करना

स्वच्छ बबूलके गोंदको पानीमें गाढ़ा घोलो (गरम पानीमें गोंद कुछ जल्द घुलेगा)। गोंदके बराबर ही एपसम साल्ट (मैगनीसियम सलफ़ेट) मिलाओ। ब्रशसे इसे शीशेपर पोतो।

आकृति-लेखनके सम्बन्धमें अन्तिम बातें

[ले०— एल० ए० डाउस्ट, अनु०—श्रीमती रत्नकुमारी, एम० ए०]

प्रत्येक दिनके जीवनको व्यक्त करनेवाले आकृति-लेखनकी आवश्यक स्वयंसिद्धियों और मौलिक सिद्धान्तोंको तुम्हारे सामने मैं रख ही चुका हूँ। मैं चाहता हूँ कि इसके बाद इस अध्यायमें मैं तुम्हें कल्पनाके आधारपर आकृति-लेखनकी सैर कराऊँ और सूक्ष्म रूपमें इसके उद्देश्यका विश्लेषण करूँ, कठिनाइयोंके दूर करनेकी विधियाँ बताऊँ और जब तुम आकृति-लेखनकी कापीको लेकर बाहर निकलो तो किन तरीकोंका व्यवहार करो यह बताऊँ।

इस पुस्तकमें आकृति-लेखनके विषयका सर्वांशमें गूढ़तासे विवेचन करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। इस विषयकी पुरातत्व, शरीर रचना, माँस, अस्थि, और माँसल पेशियोंके व्यक्त करनेकी विविध शाखाओंका जितना अध्ययन चित्रकारके लिए आवश्यक है, इन सबका विस्तृत विवरण यहाँ नहीं दिया गया है। पर तब भी जीवन-संबन्धी आकृति-लेखनका अभ्यास करते हुए तुमको कुछ ऐसी बातें आ जायेंगी जो शायद अन्य चित्रकारोंको चित्रशालामें जीवनभरमें भी सीखनेको न मिल सकती हों।

इस पुस्तकके पहलेके अध्यायोंमें जिन मौलिक सिद्धान्तोंको बताया गया है, यदि तुमने उन्हें अच्छी तरह समझ लिया है, और वे तुम्हें याद रहती हैं तो तुम अपनेको इस बातके लिए समुचित योग्य समझ सकते हो कि सीधे ही तुम अपने मित्रोंकी आकृतियाँ खींचना आरंभ कर दो।

चित्रपट १३, १४, १५ और १६ में जो जीवन-चित्र दिये गये हैं उनकी विवेचना करनेसे पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि तुम्हारे मस्तिष्कमें निम्न सामान्य सिद्धान्त भली प्रकार बैठ जायँ।

पहला—शीघ्र खींचते समय आकृति खींचनेका प्रयत्न मत करो—रूपरेखा खींचो। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि अपने मनको इतना अभ्यस्त कर लो कि तुम्हारा ध्यान तत्काल उन रेखाओंपर जाय जिससे आकृतिकी क्रियाएँ व्यक्त होती हों। इनको फ़ौरन खींच डालो, चाहे वे कितनी ही भद्दी क्यों न लगती हों और चाहे उनसे आकृति मनुष्यकी-सी लगती हो या नहीं। फिर जब तुम्हें अवसर मिले और सुविधा हो, उन्हें पूरा कर लो। चित्रपट १ देखो और चित्रपट १५ के क, ख और ग चित्र देखो। यह याद रक्खो कि समस्त चित्रकारी स्मृतिकी समस्या-मात्र है, क्योंकि तुम विषय और चित्र दोनोंकी ओर एक समय ही नहीं देख सकते हो। इस विधि पर आधे घंटेमें तुम केवल ६ मिनट वस्तुतः चित्र खींचोगे। पर ऐसा करनेसे तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा चित्र उस समयकी अपेक्षा जब तुम अधिक समय चित्र खींचनेमें लगाते और कम समय विषयके अध्ययनमें जैसा कि अधिकतर लोग गलती करते हैं अधिक स्वच्छ, अधिक कलापूर्ण है। तुम देखोगे कि प्रत्येक रेखा जो तुम खींचोगे भावपूर्ण है और कोई भी व्यर्थ नहीं है। मैंने एक व्यक्तिके बारेमें सुना है कि वह बड़ा बकवादी है। फ़ौरन यह प्रश्न पूछा गया - "अच्छा, पर क्या वह सुसंगत बोलता है"? यही बात तुम्हारी चित्रकारीके संबन्धमें भी है। इस बातका निश्चय रहे कि तुम्हारी प्रत्येक रेखामें कुछ-न-कुछ अर्थ अवश्य व्यक्त होना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक रेखा आवश्यक और उद्देश्यको पूरा करनेवाली हो।

दूसरा—गलती रेखा खींचनेसे डरो मत। अपने विषयकी किसी आवश्यक क्रिया, स्थिति, चरित्र या गतिको व्यक्त करनेके प्रयत्नमें यदि तुम्हारा चित्र भद्दा भी

खिंच जाय तो डरनेकी बात नहीं है। परम कुशल चित्र-कारों द्वारा खींचे गये मूल चित्रोंमें भी बहुधा अशुद्धियाँ रह जाया करती हैं।

तीसरा—मिटाओ मत। शोधन करते समय मूल रेखाके ऊपर ही या उसीमें होकर और तीव्र रेखा खींच दो। चित्रपट १५ के संबन्धमें कही गई बातोंको देखो। यदि तुम किसी अशुद्ध रेखाको मिटा दोगे तो फिर दोहरानेपर भी वही अशुद्ध रेखा ही अधिकतर बनेगी। यदि अशुद्ध रेखा बनी रहने दोगे तो उसके आधारपर ही तुम शुद्ध रेखा खींच सकोगे।

चौथा—विषयका चित्र खींचनेमें तुम जितना समय लगाते हो उससे पाँच गुना समय विषयकी ओर देखनेमें तुम्हें लगाना चाहिए। किसी स्थिर पदार्थपर इसका अभ्यास करो। इसकी ओर ३० सैकण्डतक देखो और और अपने अनुभवोंको ६ सैकण्डमें खींच डालो।

पाँचवाँ—शेडिंगके संबन्धमें तुमने जो कुछ सीखा हो उसका अधिकांश भूल जाओ। प्रकाश और छाया केवल ढाँचे और डिज़ाइन बनानेमें ही लाभदायक होते हैं। इसे निबन्ध कहते हैं न कि आकृति-लेखन। शेडिंग चित्रको मोटाई या गति नहीं देगी, और आकृति-लेखनमें तो सभी चित्रकार अपनेको सामान्य रेखाओंमें ही सीमित रखना उचित समझते हैं।

घूमना या चलना

घूमते या चलते समयके इतने अधिक मनोरञ्जक चित्रोंको व्यक्त करना पड़ता है कि यह तुम्हारे लिए अच्छा होगा कि घूमती हुई आकृतिमें अंगोंकी सापेक्ष स्थितियोंसे तुम पूरी तरह अभिज्ञ हो जाओ। चित्रपट १२ के ऊपर सड़कके दूसरी ओर घूमते हुए मनुष्यकी चार स्थितियाँ दिखाई गई हैं। इनमेंसे गति प्रकट करनेवाली सबसे अच्छी स्थिति अन्तिम है। यह इसलिए, क्योंकि यह पूरे क़दमको व्यक्त करती है, और स्थिति इसमें बिलकुल साफ दिखाई देती है। यदि कोई लंगर तेज़ीसे झूमता हो तो इसकी बीचकी अनेक स्थितियाँ अस्पष्ट हो जाती हैं, यही हाल तेज़ीसे चलते समयका भी है। लेकिन मैंने तुम्हारे लिए इन बीचकी स्थितियोंमेंसे तीन यहाँ खींच दी हैं जिससे तुम यह देख सकोगे कि घूमनेवाली, आकृतिके रूपकी
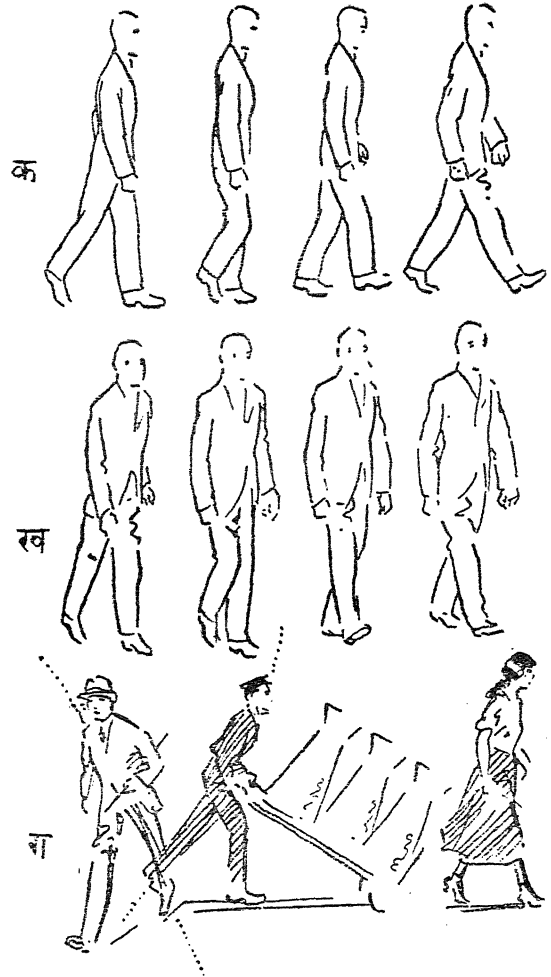
चित्रपट १२

तीनों स्थितियोंमें कितनी अधिक भिन्नता है। यह बात तुम्हारी समझमें तब और अच्छी तरह आ जायगी जब तुम इनमेंसे प्रत्येक चित्रको अलग-

अलग अन्य चित्रोंको ढककर देखोगे। इनके नीचे घूमते समयकी कुछ अन्य वैसी ही स्थितियाँ दिखाई गई हैं, भेद केवल दृष्टिकोणका है। यह देखो कि किस प्रकार हाथ और कन्धे पैरोंके साथ झूलते चलते हैं। जब बायाँ पैर आगे बढ़ता है, दाहिना हाथ और कन्धा बाहर आ जाते हैं, और जब दाहिना पैर आगे बढ़ता है तो बायाँ हाथ और कन्धा आगे आ जाते हैं। कन्धोंकी ढाल उपयोगी है पर इसको बहुत अधिक महत्व देनेकी आवश्यकता नहीं है। आगे बढ़ती हुई स्थितिमें कन्धा झुक जाता है, भुजाओंकी कुछ वृत्ताकार गति होती है; और ये शरीरके कुछ आगे चले आते हैं और बहुधा कोहनीपर थोड़ा-सा मुड़ जाते हैं। तुमको इससे बहुत सहायता मिलेगी यदि तुम किसी सचित्र पत्रिकासे उन चित्रोंको चुन लो जिनसे घूमने या चलनेवाली स्थितियाँ ख़ूब ही अच्छी तरह व्यक्त होती हों, और यह मालूम करनेका प्रयत्न करो कि इनमें ऐसा क्यों है। इन चित्रोंसे और वास्तविक उदाहरणोंसे भी चरणोंकी गतियोंका अध्ययन करो।

यदि तुम्हारे चित्रोंसे गति भली प्रकार व्यक्त होती है, तो यह कहीं अधिक श्रेयकी बात है, बनिस्बत उसके कि चित्रोंको पूर्ण करनेकी कुशलता तुम्हें प्राप्त हो जाय। चित्रपट १२ के नीचेवाले तीनों चित्रोंसे इस बातका समर्थन हो जायगा। बायीं ओर खिंचे हुए मनुष्यके विषयमें तुम क्या समझते हो? यही कि वह तेज़ीसे दौड़ रहा है। ठीक है, पर यह तेज़ी किस प्रकार चित्रित की गई है? मुख्यतः बड़े क़दमसे, पिछले पैरकी अपेक्षा शरीरको एक कोणपर झुका देनेसे (विन्दुदार रेखा देखो), और दाहिनी भुजाके पीछेकी ओर झूलनेसे। तेज़ कटी हुई रेखाओं द्वारा भी। पिछले पैरकी रेखाकी अपेक्षासे शरीरका ढाल कुलीके चित्रमें भी दिखाया गया है। इस चित्रपटमें खिंचे हुए लड़कीके चित्र देखते ही कौनसे भाव तुम्हारे अन्दर सर्वप्रथम जागृत होते हैं? मेरे एक मित्रने जब इस चित्रको देखा तो कहा, "क्या पुराने फैशनकी लड़की और किस मज़ेसे चली जा रही है। मुक्त वातावरणमें रहती है, मेरा तो यह विचार है"। मैंने उत्तर दिया, "ठीक, वह तो जिप्सी थी"। उसकी आलोचनासे मुझे मालूम हो गया कि जैसा मैं चाहता था, वैसा ही बना है—विलकुल नमूना। मैं समझता हूँ कि आकृति-लेखनकी सफलता गतिके चित्रणमें ही है जिससे इस लड़कीकी स्वतंत्र और मुक्त वातावरणवाली अवस्था बहुत ही स्पष्ट होती है। ऐसे चित्रणकी सबसे आवश्यक बात चालकी शैलीका दिखलाना है। इन तीन जीवन-चित्रोंमें यही बात है—लड़कीकी मज़ेकी ढिल्लम चाल, मनुष्यकी तेज़ सधी हुई चाल, और कुलीकी ज़ोर लगाकर ढकेलनेवाली गति।

ये तीनों चित्र इन अनावश्यक विस्तारोंके छोड़ देनेके सुन्दर उदाहरण हैं, अतः इसमें कोई भी रेखा छोड़ी नहीं जा सकती। तुम यह भी आसानीसे देख सकते हो कि इन आकृतियोंका अध्ययन सर्वांगपूर्ण चित्रणतक तुमको पहुँचा सकता है, पर यह विधि उलटी नहीं जा सकती। सर्वांगपूर्णता स्मृतिपर निर्भर है, पर चित्रणका वह अति उपयोगी आकर्षक गुण जिससे 'जीवन' व्यक्त होता है, सदा जीते-जागते प्रत्यक्ष आकृति-लेखनसे ही आ सकता है।

आगेके दो चित्रपट १३ और १४ मुक्त वातावरणमें शीघ्र खींचे गये चित्रोंके विभिन्न उदाहरण हैं। शायद तुमको इस बातसे सहायता मिले यदि मैं तुम्हें अपने उन भावों और विचारोंको याद दिलानेका प्रयत्न करूँ जो मेरे मनमें इन चित्रोंको खींचते समय उठे थे।

चित्रपट १३ में एक नवयुवती सैरी ओर आ रही है। वह एक छोटे किनारेवाले हैट, बड़े बालोंका कालर, नीचेके भागमें रोयें लगा हुआ कोट, और स्वच्छ छोटा नोकदार जूता, जैसा कि सामान्य नवयुवतियाँ पहनती हैं, धारण किये हुए है। उसकी भुजायें लगभग

गतिशून्य है—जिससे उसके कन्धोंमें कुछ अधिक गति आ गई है, ऐसा सदा होता ही है। विचार मेरे अन्दर उठ रहे थे, जब कि मैं अति शीघ्रतासे इन्हें व्यक्त करनेके लिए बैठा—हाँ, मैंने अज्ञात रूपसे उन सब विस्तारोंकी सहायता ली जिनका उल्लेख मैंप हलेके अध्यायोंमें कर आया हूँ। इस बातको ध्यानपूर्वक देखो कि कौनसी

चित्रपट १३

बातें यहाँ ली गई हैं और कौनसी छोड़ दी गई हैं। खड़ा सीधा शिर चेहरेकी अंडाकृतिमें थोड़ी-सी ऊँचाईपर इंद्रियोंको बनाकर व्यक्त किया जा सकता है। कोटकी झूलन रोयेंकी रेखाओंको कोणपर खींचकर और बीचमें एक हलकी रेखा खींचकर दिखाई गई है।

इसके बाद हम उस औरतके चित्रको लेंगे जो दोनों हाथोंमें थामे हुए एक समाचार-पत्र पढ़ रही है। वह चेहरे, हाथ, और पैरोंसे हट्टी-कट्टी मालूम होती है। उसका हैट सिरपर ऐसे कोणपर बैठा हुआ है जो पहननेवालेके अतिरिक्त हर एकको कष्टप्रद भावसे युक्त कर देगा। मेरे ये भाव हैं। इन सबको चित्रित करना आवश्यक है। वक्र रेखाओंको देखो जिनसे आकृतिमें गोलाई आ गई है। हाथ और चेहरेका सीधा-सादा चित्रण देखो। सम्पूर्ण चित्रसे उभार या मोटापेका भाव व्यक्त होता है।

इसके बाद एक पैरका सहारा लेकर खड़ी हुई औरतका बहुत शीघ्र खींचा गया एक छोटा-सा चित्र हम देखते हैं। यह तो अति सामान्य स्थिति है (बहुत कम ऐसा होता है कि लोग दोनों पैरोंपर बराबर सहारा लिये हुए खड़े होते हों)। थोड़ा-सा झुका हुआ शिर ढालदार कन्धा, और कूल्हेपर रक्खा हुआ हाथ देखो। दृढ़ बायें पैरपरसे यह कूल्हा बाहरकी ओर निकल आया है। दूसरा पैर ढिलाईके साथ थोड़ा-सा मुड़ गया है। इस और अन्य परिचित स्थितियोंको व्यक्त करनेके लिए कुछ उपयोगी शिक्षाप्रद नियम हैं। यदि तुम फिर चित्रपट ६ को देखो, तो तुम्हें पता चलेगा कि किस प्रकार शरीरका समस्त भार दाहिने पैरपर सधा हुआ है। इस वास्ते कि एक पैरपर ही समस्त शरीर सधा रहे, शरीरका ऊपरी भाग दाहिने ओरको झूलने लगता है। इसके कारण कन्धोंमें विशेष ढाल आ जाता है और दाहिने कूल्हेपर एक स्पष्ट कोण बनने लगता है। मामूली रूपमें ऐसा मालूम होता है मानों आकृति एक ओर बन्द हो जाती है और दूसरी ओर हलकेसे खुल जाती है। ऐसी स्थिति इस बातपर निर्भर करती है कि तुम उस पैरको जिसपर सब भार सधा हो दृढ़ और सीधा चित्रित करो और बायें पैरको कूल्हेपरसे ढीला लटका हुआ बनाओ। वस्तुतः, तुम

देखोगे कि झुके हुए कन्धोंका ढाल जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, लटके हुए कूल्हे और घुटनोंके ढालके विपरीत दिशामें है।

यहाँ एक पैरके सहारे खड़ी आकृतिकी स्थितिका आसान नियम दिया जाता है। चरणके ऊपरी भागके केन्द्रके ठीक ऊपर गर्दनका केन्द्र बनाओ। यदि भार अँगूठोंपर हो तो अँगूठेके ठीक ऊपर, और यदि एड़ीपर हो तो ठीक एड़ीके ऊपर गर्दनका केन्द्र बनाओ।

विशेषतया यह बात देखो कि दाहिना कूल्हा कितना निकला होता है। शरीरका ऊपरी भाग इसके सहारे ही सधा हुआ मालूम होता है।

ऊपर दिये गये इन नियमोंको अच्छी तरहसे याद कर लो। प्रति दसमेंसे नौ स्थितियोंके चित्रणमें इनकी आवश्यकता पड़ा करेगी, और जबतक तुम इनसे पूर्णतया परिचित न हो जाओगे, तुम्हारी खींची गई आकृतियाँ वैसे चाहें कितनी ही अच्छी खिंची क्यों न हो, अव्यवस्थित होनेके कारण बुरी लगेंगी।

इधर-उधर बहुत घूम लेनेके पश्चात् आइये एक भोजनालय—रेस्टोराँ—में चलें। यहाँ आकृति-लेखनका बड़ा सुन्दर अवसर मिलेगा। हमें उस महिलाकी पूरी आकृति देखनेको मिलेगी जो अपनी कुर्सीमें घूमकर किसी खड़े हुए व्यक्तिसे बातचीत कर रही है। अधखुली आँखोंसे हम देखेंगे कि गहरी छाया शरीर और शिरके झुकावको व्यक्त कर रही है। इस चित्रको देखनेसे सामान्य भाव यह होता है कि इसमें झमेलेदार कोणोंके समूह हैं। बैठी हुई आकृतियोंके चित्रणमें ऐसा होता ही है। कोणोंकी सामान्य रेखाओंको पहले खींचो—हैटका किनारा, ठुड्डी, गरदन, हैटकी पीठ, कन्धा, बायीं भुजा, और पीठ। इन रेखाओंमें शीघ्रतासे और फैले-फैले गहरी छायाएँ खींच दो, क्योंकि रोयेंके कारण आकृतिकी मोटाई इनपर अधिक निर्भर है, न कि इतनी तहों या शिकनोंपर।

अन्य तीन आकृतियाँ बहुत ही शीघ्रतासे खींचे जानेवाले चित्रोंके उदाहरण हैं; और इनसे तुम्हें पता चलेगा कि कितनी बातें खींची जानी चाहिए, अथवा यों कहिये, कि खींचनेमें कितनी छोड़ देनी चाहिए। ध्यानपूर्वक देखो कि अंग सावधानी और शीघ्रतासे खींचे गये हैं। ये आकर्षणके केन्द्र हैं। नीचे बायीं ओरका चित्र आसान मालूम होता है पर आवश्यक यह है कि यहींपर ठहर न जाया जाय। कन्धोंके ठीक कोणका विचार करो, यह देखो कि शिकनें कहाँ पड़ रही हैं, और किस प्रकारकी हैं, टोपका कोण क्या है, और दस्ताने पहने हुए हाथकी सरल बनावट कैसी है। यह ज्ञान तो द्वितीय स्वभाव हो जाना चाहिए जिससे कि आयु और प्रकारपर मनुष्य अपने ध्यानको केन्द्रित कर सके। सफलता तो बराबरके अभ्यास और कई बार विफल होनेके बाद ही आती है। जब तक कि पहले भागमें वर्णित नियमोंका अज्ञात रूपसे प्रयोग करना न आ जाय, आकृति-लेखनकी दुर्बलताएँ प्रकट ही होती रहेंगी।

ये और आगे आनेवाले उदाहरण उन स्मृति-नियमोंके आधारपर जो, पहले बताये जा चुके हैं, नकल किये जाने चाहिए। किसी आकृतिकी ओर १ मिनट-तक देखो, और जो कुछ तुम्हें याद रह सके उसे जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी खींच डालो, और तब तुम्हें पता चलेगा कि किन सामान्य नियमोंका अभी अभ्यास तुम्हें नहीं हुआ है।

चित्रपट १४ हमें पार्कमें ले जाता है। एक मनुष्य तेज़ीसे हमसे थोड़ी दूरपर टहल रहा है। समय खोनेका अवकाश नहीं है। वह चुस्त क्रियाशील नवयुवक है जो बाउलर हैट पहने है। इसको देखनेकी आवश्यकता नहीं कि वह चश्मा लगाये है या नहीं, रंग कैसा है, उसके कितने बाल या मोछें हैं, दस्ताने या मोज़े पहने है या नहीं। इन विस्तारोंके देखनेके प्रयासमें तुम उसकी आकृतिकी गति और स्वभावको खो दोगे। चित्रपट १२ से मिलाओ।

जब तुम इस चित्रपटसे स्मृतिके आधारपर आकृति-लेखनका अभ्यास करो, तो मेरा विचार है कि तुम्हें सबसे अधिक कठिनाइयाँ निम्न बातोंकी पड़ेंगी :—

चित्रपट १४

(१) टहलती हुई आकृतिमें झूलती हुई भुजाओं और झुके हुए शरीरकी सचेष्ट गति।

(२) सार्वजनिक व्याख्यातामें तुमसे दूर आकृतिकी झूल जो शिरके कोण, कन्धों, और कूल्होंसे और आगे-के पैरकी शिकनोंके तनावसे व्यक्त की गई है।

(३) आकाशके तारोंकी ओर देखनेवालेकी आकृतिमें शिरका झुकाव, और अंगोंका असामान्य दृश्य जो अंडाकृतिपर और चित्रपट ७ में खींची गई काल्पनिक रेखाओंपर निर्भर है।

(४) बैठी हुई आकृतिमें एक विशेष कठिनाई होती है—अर्थात् दोनों पार्श्वोंका एक ही स्थितिसे, और वस्तुतः विपरीत भावनासे खींचना जिससे कन्धों, कुहनियों और हाथोंका परस्पेक्टिव ठीक उतरे।

(५) सिगार लिये हुए मनुष्यमें संभवतः तुम्हें अन्य स्मृति-प्रयोगोंकी अपेक्षा अधिक कठिनाई उठानी पड़ेगी। गत अध्यायोंमें अंग और आकृतियोंके जिन नियमोंका वर्णन दिया जा चुका है, यदि तुमने उनका अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है, और उनपर आधिपत्य प्राप्त कर लिया है तो तुम्हें अधिक सफलता मिलेगी।

तसवीरें उतारना

अब हम उस प्रकारके कार्य्यतक पहुँच चुके हैं जो संभवतः बहुत ही आकर्षक और सर्वप्रिय है। यदि तुमने उन बातोंका अभ्यास कर लिया है जिनका पहले निर्देश किया जा चुका है, तो तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि अब तुम न केवल आकृति ही खींच सकते हो, बल्कि उस व्यक्तिका जो थोड़ी देर तुम्हारे सामने बैठनेकी कृपा करे, बहुत आसानीसे जीता-जागता चित्र भी उतार सकते हो। अन्य शेष चित्रपटोंका विश्लेषण करनेसे पूर्व एक चेतावनी देना चाहता हूँ। सुन्दर युवतीका चित्र उतारना कठिन काम है। आरंभिक प्रयासोंमें तो प्रौढ़ अवस्थावाले मनुष्यके सुसंगठित अंगोंके चित्रणमें तुम्हें अधिक सफलता मिलेगी।

चित्रपट १५ में शिरोंके उदाहरण हैं। तीनमें तो तुम प्रथम शीघ्र खींची रेखाओंको देखोगे। इसके बाद किसी भी चिह्नको बिना मिटाये मैंने अन्य विस्तार भी खींच दिये हैं। पहला चित्र क शिरके झुकाव और विषय-के गम्भीर चरित्रके लिए उल्लेखनीय है। इसको देखकर

पहली भावना निश्चयात्मकता और दृढ़ताकी होती है। शीघ्र आकृति-लेखनमें यह बात तो सबसे पहले आनी चाहिए। और चाहें कुछ हो जाय, यह अवश्य निस्सं-कोच सुरक्षित रखनी चाहिए, चाहें चित्रका प्रकार या

चित्रपट १५

उसकी पूर्णताकी मर्य्यादा कुछ भी क्यों न हो। चित्र ख में एक विशेष प्रकारका चित्रण है। कृपा करके इसमें भी अन्य चित्रोंके समान प्रथम आकृतिकी रेखाओंको ध्यान-पूर्वक देखो—प्रत्येक छोटे चिह्न या बिन्दुको देखो, और तब उन्हें दूसरी पूरी की गई आकृतिमें खोजो। तुम्हें पता चलेगा कि बिना किसी अपवादके वे सबसे अधिक आवश्यक बातें हैं और उन्हींपर चरित्र, आकृति, अंग-गठन, और चित्रण निर्भर हैं। यह इस बातसे भी सिद्ध हो जाता है कि चित्र क उतनी ही निश्चयात्मक आकृति है जितना कि चित्र ख। इसका रहस्य तो मौलिक बातों-को समझ लेनेपर ज्ञात होगा, न कि एककी अपेक्षा किसी दूसरे भागको अधिक पूरा करनेसे। चित्र १ ख के समान चित्र पूरा करनेमें यह सिद्धान्त लागू होता है। चित्रके प्रत्येक अंगको एक बराबर ही पूरा करना चाहिए।

तीसरे युग्ममें हम एक लड़कीका शिर पाते हैं। रेखा-चित्रणमें यह सबसे कठिन काम है। पृष्ठतल गोल चिकने होनेके कारण और पूर्ण चित्रमें तीव्रता या बलका प्रभाव होनेके कारण यह काम कोयलेके टुकड़े या मृदु पैन्सिलसे आसानीसे हो सकता है। चित्र ग से अंगोंकी स्थिति और उनका प्रकार हलकेसे साव-धानीपूर्वक और स्वच्छतासे अंकित किया गया है। सामान्यतः कहा जा सकता है कि सभी नवयस्कोंमें निश्चयात्मक विशेषताओंका अभाव होता है, और उनमें एक ताज़गी होती है जिसे कठिनतासे ही चित्रित किया जा सकता है। इसलिए, ऐसी अवस्थामें रेखाओंकी सादगी आवश्यक है जैसा कि चित्र ग में दिखाई गई है। इसकी तुलना क और ख चित्रोंसे करो। छायाओंकी गूढ़तासे बचे रहो, ये छायाएँ प्रौढ़-व्यक्तियोंके मुखमें निश्चयात्मक आकृति धारण कर लेती हैं जिनसे प्रौढ़ चरित्र व्यक्त होता है।

सुन्दर लड़कियोंके तीन छोटे चित्रोंसे यह सिद्धान्त स्पष्ट होता है; और जब कभी तुम्हें प्रत्यक्ष देखकर ऐसी आकृति खींचनी हो, तो अपने खींचे गये चित्रों-की तुलना इनसे करो। बहुधा ग़लती यह की जाती है कि विषय या तो अधिक प्रौढ़ मालूम होने लगता है अथवा इसमें समुचित सौन्दर्य नहीं होता है। यह कहा गया है कि सभी कलाएँ अत्युक्तिपूर्ण होती हैं। प्रश्न यह है कि तुम्हारी इच्छा किस बातकी अति

करनेकी है? आयुकी या यौवनकी? स्पष्टतः इस अवस्थामें तो यौवन और सौन्दर्यकी होनी चाहिए। यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि ये युवा आकृतियाँ स्वच्छ, सादी, और सुन्दर रेखाओंसे खींची जायँ।
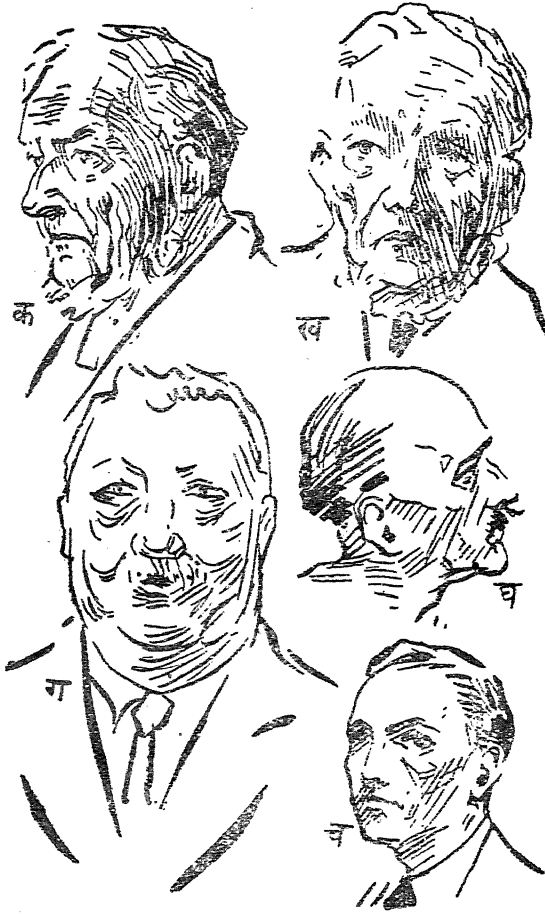
चित्रपट १६

हमारा अन्तिम चित्रपट १६, आयु और स्वभाव सम्बन्धी, इस बातका बहुत अच्छा उदाहरण है कि आयुका मुखपर क्या प्रभाव पड़ता है। चित्र ख में वृद्धावस्था दिखाई गई है। इसमें रेखाओंकी अधोमुखी प्रवृति देखो। अस्थिमय मस्तकपर भावपूर्ण क्यारियाँ भी देखो। ऐसा प्रतीत होता है कि खोपड़ीसे खाल लटक रही है। आँखोंको तो विशेष रूपसे देखो—ऊपरी पलक किस प्रकार झुर्रीदार हो गया है और नीचे कैसा नरम गड्ढा हो गया है। चित्र क में ये बातें दूसरे ही पहलूसे देखी जा सकती हैं; लेकिन चित्र ख से यह भाव प्रकट होता है कि किस प्रकार आँखें बरबस खोले रखनेका प्रयत्न किया जा रहा है। मुख भी कुम्हला रहा है और कुछ अन्दर धँस रहा है, नीचेका ओष्ठ पतला हो गया है।

चित्र ग और घ में दो मनुष्य कितनी विभिन्न आकृतिके दिखाये गये हैं यद्यपि दोनों एक ही बराबर मध्य आयुके हैं। यह वह उमर है जब अन्य अवस्थाओंकी अपेक्षा मनुष्यके मुखके रूप और आकृतियोंमें सबसे अधिक भिन्नता पाई जाती है। लगभग सभी बच्चे एकसे होते हैं; बहुत बुड्ढे व्यक्ति भी बहुत-कुछ एकसे होते हैं लेकिन चालीस और साठ वर्षकी आयुके बीचमें मनुष्य और स्त्रियों दोनोंकी आकृतियोंमें भिन्नता और विशेषता देखनेमें आती हैं। चित्र ग की उन वक्र रेखाओंकी, जो फुलाव व्यक्त करनेके लिए खींची गई हैं, तुलना चित्र क और ख की खुरदरी रेखाओंसे करो। ये रेखाएँ अवस्थाके कारण माँसके अभावको व्यक्त करती हैं। तुम बहुत आसानीसे उन थोड़ी-सी आवश्यक रेखाओंको चुन सकोगे जो मस्तक और नाककी त्वचाके नीचेकी हड्डीको स्पष्टतया बताती हैं। इन रेखाओंका चित्र ग में अभाव है यह भी ध्यानपूर्वक देखो।

चित्र घ में मध्यावस्थावाले व्यक्तिकी मनोरञ्जक आकृति है, जिसमें खोपड़ीका विधान अच्छी तरह दिखाया गया है—इसमें माँसल दृढ़ता है जिसके कारण कोई गड्ढा या झुर्री नहीं है। इन दोनों मनुष्यों-की आकृतियोंमें इतना अधिक आश्चर्यजनक भेद है कि तुम्हारी समझमें आ जायगा कि इस आयुके मनुष्योंकी आकृतियोंमें कितनी विभिन्नता हो सकती है। चित्र ग

की वक्र रेखाओंको और चित्र घ की सीधी रेखाओंको देखो। चित्र ग में आँखके गोलकमें गड्ढेका अभाव और आँखके नीचे फुलाव और नाकका माँससे भरा भाग देखो, और यह भी देखो कि सामान्यतः स्पष्ट सुर्खी (बाह्य रेखा) का इसमें अभाव है। चित्र घ में गोलकमें अंदर धँसी हुई आँखकी आकृति कितनी अच्छी तरह दिखाई गई है। इस चित्रमें वक्र रेखाएँ तो बहुत ही कम हैं।

चित्र च में ३० वर्षके लगभगकी आयुका एक मनुष्य दिखाया गया है। मैंने यह चित्र इसलिए दिया है क्योंकि इस आयुके मनुष्योंके चेहरोंमें बहुधा एक "फुलाव" होता है। इस आयुकी तसवीर सफलतापूर्वक उतारना कोई आसान काम नहीं है। चेहरेके दाहिनी ओरकी सुर्खीको विशेषतया देखो जिससे मालूम हो जायगा कि मैं 'फुलाव" शब्दसे क्या अभिप्राय लेता हूँ। यह जीवनका वह समय है जब यौवनकी चमक मिटने लगती है, पर वृद्धावस्थाकी रेखाएँ अभी आरंभ नहीं हुई हैं।

इन आकृतियोंकी प्रत्येक रेखा अध्ययन और विश्लेषण करने योग्य है। अनायास कोई एक रेखा ले लो, और इसके अर्थकी खोज करो, अर्थात् यह जाननेका प्रयत्न करो कि इससे कौनसे भाव व्यक्त होते हैं या यह किस बातकी सूचक है। चित्रपट १३ से लेकर १६ तककी सभी आकृतियोंमें तुम स्वयं यह जाननेका प्रयत्न करो कि कौनसी रेखाएँ सबसे अधिक आवश्यक हैं।

इन चित्रोंमेंसे प्रत्येकमें जब तुम प्रत्येक रेखाके खींचे जानेके कारणों और अभिप्रायोंको भली प्रकार समझ लोगे, तुम्हें स्मृतिके आधारपर आकृति-लेखनमें सफलता प्राप्त होने लगेगी। आकृतिका सूक्ष्मतासे अध्ययन करो। फिर आखें बन्द कर लो, और स्मृतिमें इसकी कल्पना करो। ऐसा दो-तीन बार कर करो, फिर पुस्तकको बन्द कर दो, और शीघ्रतासे निस्संकोच होकर जितना तुम्हें याद रह सके खींच डालो। अब असलीसे तुलना करो। प्रत्येक कलाकारको यह स्मृति-अभ्यास बहुत ही आवश्यक है। यदि आरंभिक प्रयासमें तुम्हें एक ही अंग याद रहे, तो उसे ही पुस्तकके पहले अध्यायोंमें दिये गये नियमोंके अनुसार खींच डालो। तुम देखोगे कि तुम्हारा यह श्रम सार्थक होगा। इससे आसान एक और तरक़ीब हो सकती है—वह यह कि आकृतियोंकी कई बार नक़ल करो। आरंभमें तो धीरे-धीरे और सावधानीसे, और बादको अधिक शीघ्रतासे। बादको किताब और कापी दोनोंको अलग कर दो और स्मृतिके आधारपर आकृति खींचो। यह अधिक अच्छा होगा कि किताबमें जितने आकारके चित्र दिये गये हैं उनसे दो गुने आकारके तुम खींचो। जैसा कि पहले कहा जा चुका है; सभी आकृति-लेखन स्मृति-लेखन है; और यदि तुम स्मृतिमें आकृति सुरक्षित रख सको, तो मैं तुम्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि तुम शीघ्र ही निश्चयात्मक रूपसे सफल चित्रकार बन सकते हो।

टिप्पणियाँ

टेकनीक या कला—चित्रकार-जगतमें टेकनीक शब्दका बहुत प्रयोग किया जाता है। तुमको इसका अभिप्राय ठीक प्रकारकी स्वच्छ स्पष्ट रेखा समझना चाहिए जिससे आकृति-लेखनका उद्देश्य पूरी तरह सिद्ध होता हो।

व्यक्तित्व—आकृति-लेखनमें चित्रकारका व्यक्तित्व उतना ही झलकना चाहिए जितना कि हाथकी लिखावटमें। प्रत्येक व्यक्तिकी लिखावट भिन्न-भिन्न होती है, और उसी तरह प्रत्येक चित्रकारकी शैली भी अलग-अलग होती है। तुम किसी चित्रकार-विशेषकी शैलीको अपनी शैली मत बनाओ।

मेरा तुमसे यह आग्रह है कि यदि कोई आकृति-लेखनके सम्बन्धमें दृढ़ अविचल नियम सिखावे, तो उनसे बचना ही चाहिए। निश्चित अनुपात, या सनातन रीतिकी शेडिंग, या आकृति-लेखनमें कहाँसे आरंभ करना चाहिए यह तो हर एककी रुचिपर

छोड़ देना चाहिए। यदि किसीकी बताई हुई परिपाटीका इसमें दृढ़तासे प्रयोग किया जायगा तो तुम्हारे आकृति-लेखनकी जान जाती रहेगी और तुम्हारा काम केवल यन्त्रवत् क्रिया रह जायगी।

व्यक्तिगत चित्रणके उदाहरणके लिए, मैं अनुमान करूँगा कि मान लो तुमको ऐसे मनुष्यकी आकृति खींचनी है जैसा कि चित्रपट १६ के चित्र ग में है। उसका हँसमुख स्वभाव तुम्हें तत्क्षण आकर्षित करेगा, और यदि तुम किसीके बताये दृढ़ सिद्धान्तमें न फँस जाओ, तो तुम्हारी पैन्सिल स्वतः इस स्वभावसे प्रभावित हो जायगी और रेखाएँ तुम खींचोगे उनमें वह हँसमुखता झलकने लगेगी जो चित्र ग में बिलकुल नहीं है। इस दूसरे चित्रमें तुमको मनुष्यमें तीव्र एकाग्रताके भाव प्रतीत होंगे जो तीव्र एकाग्र रेखाओं द्वारा स्वतः व्यक्त हो जाते हैं। अतः कोई भी कलाकार शैली या रेखाकी दिशाके विषयमें कोई एक निश्चित नियम नहीं निर्धारित कर सकता है।

इस पुस्तकके प्रारंभिक भागमें जो नियम दिये गये हैं वे वैज्ञानिक हैं पर कला तो विज्ञान नहीं है। कलाके तो कोई नियम नहीं होते, और इन नियमोंके संबन्धमें तर्क-वितर्क भी नहीं करना चाहिए।

कला तो उस योग्यताका नाम है जिससे कलाकार अपने व्यक्तित्वको प्रकट कर सकता है। इस पुस्तकका उद्देश्य तो उन व्यक्तियोंमें जिनमें इच्छा तो हो पर कुछ कठिनाइयोंके कारण जो आकृति-लेखनकी सफलतासे विमुख रहे हों, इस प्रकारकी योग्यता पैदा कर देना है।

आकृति-लेखनमें रुचि—तुम्हें किसी और रुचिसे इतना आनन्द और मनोरंजन नहीं प्राप्त हो सकता है जितना इस बातकी स्वाभाविक योग्यतासे कि तुम इच्छानुसार सफल आकृति-लेखन कर सको। महत्ता बहुत अधिक व्यावसायिक तुम्हें मिल सकती है, पर इसके अतिरिक्त इससे आकर्षक शिक्षाके साथ-साथ वास्तविक आनन्द भी तुम्हें प्राप्त होगा।

दृश्य—इस पुस्तकके* समान ही लेखकका विचार दृश्य-चित्रणपर भी एक पुस्तक लिखनेका है। पर आकृति-लेखन तो प्रत्येक प्रकारकी चित्रकारीका मूल है। और यह सबसे अधिक आकर्षक और आर्थिक लाभका है।

यद्यपि यह पुस्तक बहुत थोड़े ही मूल्यपर प्रकाशित की जा रही है, तुम इन पृष्ठोंमें सूक्ष्म और सार रूपसे इतनी उपयोगी सामग्री प्राप्त कर लोगे जितनी कि तुम्हें अति मूल्यवाली बड़े-बड़े आकारकी पुस्तकोंमें भी न मिलेगी।

इस छोटी-सी पुस्तकको सहायताके लिए सदा अपने पास रक्खो, और यदि संभव हो, तो जब कभी बाहर खींचने जाओ इसे भी लेते जाओ। इन पुस्तकमें ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनसे तुम अपनी खींची हुई आकृतियोंकी तुलना और आलोचना कर सकते हो। जैसे-जैसे तुम्हारी योग्यता और अनुभव बढ़ते जायेंगे, तुम्हें यह विश्वास होता जायगा कि इस पुस्तकमें दिये गये नियम और परिभाषाएँ सदा तुम्हारे अधिक कामकी हैं, और मुझे विश्वास है कि शनैः शनैः तुम सजीव आकृति-लेखनकी आनन्ददायिनी कलामें बहुत ही दक्ष और कुशल हो जाओगे।

*यह लेखमाला पुस्तकाकार विज्ञान-परिषद् द्वारा प्रकाशित हो रही है।
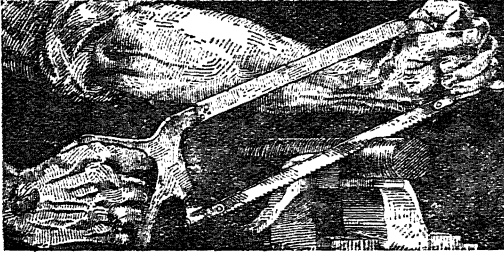
तीन खिलौने

[ले०—डा० गोरखप्रसाद]

(१) तीर—

बाँसकी पतली तीलियाँ बना लो। चार-चार इंच-के टुकड़े काट लो। एक ओर सुईकी तरह नोक बनाओ। दूसरी ओर रेशमका झब्बा बाँधो जैसा तसवीरमें बाईं ओर दिखलाया गया है। क़रीब १२ इञ्च लम्बी और आधे इञ्च व्यासकी पोली नली लो। यह पतले बाँस, नरकट, शीशे या पीतलकी नली या
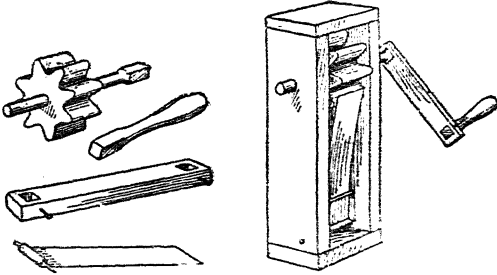
चित्र १

हुक्केकी नगालीकी बन सकती है। तीरका रेशमी झब्बा इतना मोटा हो कि इस नलीमें आसानीसे खिसक सके परन्तु बहुत ढीला भी न हो; तीरको नलीमें छोड़कर फूँकनेसे वह बहुत दूर चला जायगा। फूँकते समय झब्बा मुँहकी ओर रहे और नोक बाहरकी ओर। जाड़ेके दिनोंमें जब लोग खूब मोटे कपड़े पहिने रहते हैं दूसरोंके ऊपर तीर चलानेमें बहुत मज़ा आता है। एक नली और बारह तीरका एक पैकिट बनाकर बेचा जा सकती है। नक़ली रेशमका झब्बा बनानेसे सस्ता पड़ेगा। इससे २० फ़ुटतक निशाना लगा सकते हैं। दो-चार लड़के मिलकर निशानेबाज़ीकी प्रतियोगिता कर सकते हैं कि कौन अधिक सच्चा निशाना लगा सकता है।

(२) स्टीम एंजिन—

स्टीम एंजिन दो प्रकारके होते हैं (१) पिस्टनवाले (२) हवा चक्कीके सिद्धांतपर बने जिन्हें टरबाइन कहते हैं। टरबाइनके नमूनेका खिलौना बनाना बहुत आसान है। ऐसा टीनका डिब्बा लो जिसका ढक्कन सच्चा बैठता हो। इसके ऊपर U अँग्रेज़ी अक्षरके आकारकी रकाब मोटे पीतलका बनाकर राँगेसे जड़ो। इस रकाबके दोनों बग़लवाले खड़े भागोंमें एक-एक छेद करो जिनमें छातेकी तीली पहिनाई जा सके। दो टीनकी पत्तियाँ इस नापकी काटो कि प्रत्येककी चौड़ाई रकाबकी भीतरी चौड़ाईसे थोड़ी कम हो। इन पत्तियोंको आधी-आधी दूरतक काटकर एक दूसरेमें पहिना देना चाहिए। यह बात चित्र २ ख के निचले भागसे स्पष्ट हो जायगी।

टीनकी पत्तियोंको बीचमें इस प्रकार मोड़ डालना चाहिए कि उसमें छातेकी तीली आसानीसे बैठ सके। इस कामके लिए कड़ी लकड़ी जैसे शीशमकी लकड़ीमें छातेकी तीलीके आधी मोटाईके बराबर खाँच (गड्ढा) काटकर उसीपर टीन रखकर और टीनपर छातेकी तीली रखकर ठोंकनेसे पत्तीमें ठीक आकारके गड्ढे बन जायँगे। पत्तियोंको एक-दूसरेमें पहिनाकर और उनके जोड़के पास छातेकी तीली रखकर उन्हें राँगेसे जोड़ देना चाहिए और इस प्रकार एंजिनका नाचनेवाला भाग तैयार हो जायगा परन्तु राँगेसे जोड़नेके पहिले यदि तीलीको रकाबमें पहिना लिया जाय तो आसानी होगी। पीछेसे रकाबमें पहिनानेकी कोशिश करनेपर दिक़्क़त हो सकती है।

तीली रकाबके बाहर एक ओर बढ़ी रहे और इसके सिरेपर एक छोटी-सी पुली (घिरनी) राँगेसे जोड़ देनी चाहिए। रकाबके उस बग़लके दोनों ओर जिधर घिरनी पड़ती हो छोटे-छोटे वाशर पहिना देने चाहिए। ये वाशर इतने मोटे हों कि चक्की या घिरनी नाचते समय रकाब-को न छूये। चक्कीकी एक पत्तीको बेंड़ी स्थितिमें रखकर उसके केन्द्रके ठीक नीचे एक छोटा-सा छेद बना देना चाहिए। इसके लिए टीनके ढक्कनको खोलकर भीतरसे कील ठोंकना चाहिए जिससे छेदकी दीवारें बाहरकी ओर अड़ी रहें। ढक्कनको बंद करके उसे राँगेसे जोड़ देना चाहिए।

यदि डिब्बेको क़रीब आधा पानीसे भर दिया जाय और उसे तेज़ आगपर रक्खा जाय तो जब पानी खौलने लगेगा तो भाप छोटे छेदके रास्ते बड़े ज़ोरसे निकलेगी और चक्की नाचने लगेगी। घिरनीपर तागेकी माल पहिनानेसे घिरनी नाचने लगेगी।

डिब्बेमें पानी भरनेके लिए दोमेंसे कोई भी उपाय किया जा सकता है। या तो बाइसिकिलके ट्यूबमें हवा भरनेकी जो पीतलकी जोड़ीदार छुछुछी होती है उसका एक टुकड़ा काटकर राँगेसे डिब्बेके ऊपरी भागमें छेद करके और उसमें छुछुछी बिठाकर उसे जोड़ा जा सकता है। इस रास्तेसे पानी भरनेके बाद छुछुछीपर चूड़ीदार ढक्कन कसकर चढ़ा दिया जा सकता है। दूसरा उपाय यह है कि भाप निकलनेके लिए जो छोटा सूराख किया जाय उसी रास्ते पानी भरा जाय क्योंकि उस छेदका व्यास १/१६ इंचसे भी कम ही होगा इसलिए इस सूराखसे
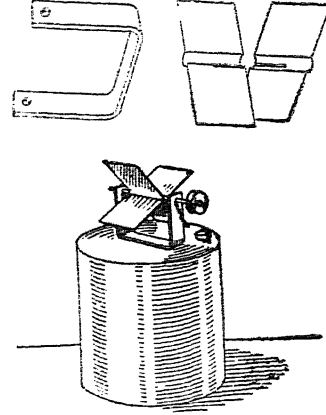
चित्र २

साधारण रीतिसे पानी नहीं भरा जा सकता। पानी भरनेके लिए यह ज़रूरी होगा कि डिब्बेको थोड़ा-सा गरम किया जाय। (ध्यान रहे इतनी आँच न दिखाई जाय कि राँगेके जोड़ खुल जायँ।) डिब्बा जब ज़रा-सा गरम हो जाय तो पानीमें उसे इस प्रकार डुबो दिया जाय कि छोटा छेद तुरंत पानीके नीचे डूब जाय। थोड़ी देरतक इसी स्थितिमें रखनेसे कुछ पानी भीतर अवश्य गिर जायगा। दस-पाँच बार इस तरह गरम करने और पानीमें डुबानेसे डिब्बेके भीतर काफ़ी पानी चला जायगा।

(३) चरखी :—

बच्चे शोर मचानेवाले खिलौने खूब पसंद करते हैं। चित्र नं० ३ में एक ऐसा ही खिलौना दिखलाया गया है। सबसे पहिले बक्सनुमा भाग बना लेना चाहिए। आधी इंच मोटी लकड़ीसे यह बनाया जाता है।

इसमें पेंदी, सिरा, और सिर्फ़ २ बगल होते हैं; और बगल १½ इंच चौड़ी और ६ इंच लम्बी होती है। इनको सरेससे जोड़कर और कील ठोंककर जड़ दिया जाता है। बगलकी लकड़ियोंपर सिरे और पेंदेकी लकड़ियाँ चढ़ाकर दाँतेदार पहिये कड़ी लकड़ीके बनाये जाते हैं जिनका व्यास क़रीब १½ इंच हो। इसके किनारेको आठ भागोंमें बाँटकर चाकू या बारीक आरीसे काटकर ८ दाँते बना लेते हैं। बक्सके भीतर एक सिरेके पास यह दाँतेदार पहिया रख दिया जाता है और ३ इंच व्यासकी गोल लकड़ीकी धुरी इसमें पहिना दी जाती है। धुरीमें दाँतेदार पहिया सरेससे चुपका दिया जाता है। धुरीका एक सिरा चौकोर कर दिया जाता है। धुरी इतनी बड़ी हो कि चौकोर सिरा बक्सके बाहर एक इंच निकला रहे। ४ इंच लम्बी, १ इंच चौड़ी, ¾ इंच मोटी लकड़ीके एक सिरेके पास चौकोर छेद करके दाँतेदार पहियेकी धुरीके चौकोर सिरेपर यह पहिना दी जाती है और सरेस और कीलोंसे जड़ दी जाती है। इस लकड़ीके दूसरे सिरेके पास एक हैंडिल चौकोर सूराख करके जड़ दिया जाता है। आधी इंच चौड़ी कड़ी कमानीका एक इतना लम्बा टुकड़ा लेना चाहिए कि यह बक्सके एक सिरेसे करीब दाँतेदार पहियेतक पहुँच जाय। कमानीके एक सिरेको आगमें लाल करके इस प्रकार घुमा लेना चाहिए कि उसमें कील पहिनाई जा सके। चित्रमें बाईं ओरका सबसे नीचेवाला भाग देखो। कमानी गरम करते समय ध्यान रखना चाहिए कि कुल कमानी गरम न हो जाय नहीं तो वह नरम हो जायगी और बेकार हो जायगी। कमानीको कीलसे बक्सके
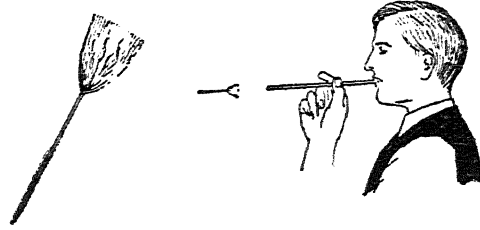
चित्र ३

भीतर जड़ देना चाहिए। यह कील कमानीके बढ़े हुए भागमेंसे होती हुई जाय और इस कीलसे करीब २ इंच हटकर एक दूसरी कील ठोंक दी जाती है जिससे कमानी दाँतेदार पहियेपर जोरसे दबी रहे। दोनों काँटियाँ इतनी लम्बी हों कि वे बक्सके दोनों बगलवाली लकड़ियोंमें घुसी रहें। हैंडिल घुमानेसे खूब ज़ोरसे आवाज़ निकलेगी। कमानी काफ़ी कड़ी हो। बाइसकिलवालोंके लिए पतलूनमें लगानेकी क्लिपकी कमानी इस कामके लिए अच्छी होगी। यों तो उस लोहेकी पत्तीसे भी काम चल जायगा जिससे कपड़ेकी गाँठें बनती हैं।

रंग छुड़ाना

कास्टिक सोडा	१ सेर
पानी	५ सेर

इसे लकड़ी आदिपर लगानेसे रंग (यदि वह तेलका रंग हुआ) नरम पड़ जाता है और आसानीसे छुड़ाया जा सकता है। परन्तु यदि कास्टिकवाला घोल लकड़ीपर बहुत देरतक लगा रहेगा तो लकड़ी भी कटने लगेगी।

आगेके महीनोंमें हमारे कृषक क्या करें ?

[कृषि-विभागका एक बुलेटिन]

(क) खरीफ़की फसलोंको क़तारोंमें बोना

जून—(१) मूँगफलीः—क़तारोंके बीच फ़ासला १॥ फ़ुटसे २ फ़ुटतक और हर क़तारमें पौधेके बीच फ़ासला ६ इञ्चका होना चाहिए।

(२) जुआरके वास्ते दानाः—क़तारोंके बीच फ़ासला २॥ फ़ुटका होना चाहिए।

(३) मक्काः—क़तारोंके बीच फ़ासला २॥ फ़ुट होना चाहिए।

(४) कपासः—क़तारोंके बीच फ़ासला २॥ फ़ुटका होना चाहिए।

ऊपर लिखी हुई फ़सलोंको वर्षाके आरम्भमें बो देना चाहिए। बनिस्बत दूसरे तरीक़ोंके क़तारोंमें बोनेसे विशेष लाभ होता है। फ़सलोंके बीच गुड़ाई करनेका "अकोला हो" एक बहुत सस्ता और लाभदायक यंत्र है। अपने स्थानीय इंसपेक्टर कृषि-विभागसे कहिये कि वह इस यंत्रको आपके यहाँ चलाकर दिखलावें और साथ-साथ आप उनसे ऊपर लिखी हुई फ़सलोंके उन्नत बीजकी क़िस्में भी मालूम कीजिए। वह आपकी सहायताके लिए नियत हैं; आप उनसे लाभ उठाइये। भूमिकी उपजाऊ शक्ति बढ़ानेका एक ढंग यह भी है कि सनईकी फसलको खेतमें जोत दिया जाये। इसको ३० सेरसे ४० सेरतक प्रति एकड़के हिसाबसे वर्षाके आरम्भमें बो देना चाहिए।

जुलाई—अरहर क़तारोंमें ६ फ़ुटकी दूरीपर बोना चाहिए और हर क़तारमें पौधोंके बीच १॥ फ़ुटका फ़ासला होना चाहिए और अरहरकी हर दो क़तारोंके बीच जुआरकी क़तार बो देना चाहिए। यदि अरहरकी क़तार चार फ़ुटके फ़ासलेपर बोई जाय तो केवल एक क़तार जुआर बीचमें होना चाहिए।

धान कुआरी—यदि जून मासमें बेहन नहीं डाली गई हो अब छिटकवाँ तरीकेसे बोना चाहिए।

बाजरा—इस मासके दूसरे पाखमें १॥ फ़ुटके फ़ासलेपर क़तारोंमें बोना चाहिए।

अगस्त—फ़सलें जो कि क़तारोंमें बोई गई हों उन्हें बैलसे चलानेवाले गुड़ाईके यंत्रोंसे गुड़ाई करना चाहिए इस मासके पहले सप्ताहके अन्तमें सनईकी फ़सलको खादके लिए खेतमें जोत देना चाहिए।

सितम्बर—मक्का जो दानेके लिए बोई गई हो उसको काट लेना चाहिए।

अक्टूबर—कपासकी बिनवाई आरंभ हो जानी चाहिए। और मूँगफली खोद लेना चाहिए ताकि खेत गेहूँके लिए तय्यार हो सके।

नवम्बर—जुआर वा बाजरेकी कटाई समाप्त हो जानी चाहिए। अब कोई काम ख़रीफ़की फ़सलोंमें नहीं रह जाता। सिवाय इसके कि—

अप्रैल—अप्रैलमें अरहरकी फ़सलको काट लेना चाहिए। शीघ्र पकने वाली अरहरकी क़िस्म दिसम्बरमें काटी जाती है गो यह ख़रीफ़की और दूसरी फ़सलोंके साथ बोई जाती है।

(ख) धानकी खेती

मई—यदि सिंचाईके लिए पानी मिल सके तो सनई हरी खादके लिए बो देना चाहिए।

जून—यदि संभव हो तो सिंचाई करके धानकी बेहन बो देना चाहिए और जहाँ सिंचाईके ज़रिए न हों तो वर्षा आरम्भ होते ही बो देना चाहिए। इसके पहले खेतकी मिट्टी हल द्वारा खूब बारीक और भुरभुरी कर लेना आवश्यक है। यदि संभव हो तो बनी हुई

गोबर वा कूड़ा-करकटकी पाँस १५० मन प्रति एकड़के हिसाबसे मिला देना चाहिए।

जुलाई—आरम्भ मासमें सनई जोत डालना चाहिए और जड़हन लगानेके दो दिन पहले खेतमें जुताई करके लेव उठाना चाहिए। यदि सनई हरी खादके लिए न बोई गई हो तो सड़े हुए गोबर वा कूड़े-करकटकी खाद १०० मन प्रति एकड़के हिसाबसे मासके आरंभमें लेव उठाते समय खेतमें मिला देना चाहिए या थोड़ी मात्रामें दस हिस्से रेंडीकी खली और एक हिस्सा अमोनियम सल्फेट जड़हन लगानेसे पहले खेतमें डाल देना चाहिए। यदि जड़हन ऐसे खेतोंमें लगाई जावे जिनमें ऐसी फ़सलें बोई हों जिनमें अधिक खाद दी गई हो (जैसे गन्ना व आलू) तो बहुत खादकी आवश्यकता नहीं है। इस मासके पहले पाखमें जब बेहन चार या पाँच सप्ताहकी हो गई हो तो खेत-में सब लेव उठाकर लगा देना चाहिए। दो-दो पौधे एक साथ ६ इंचके फ़ासलेपर लगाना चाहिए। जड़हन लगाते समय खेतमें २॥ इञ्चसे अधिक पानी न होना चाहिए।

सितम्बर वा अक्टूबर—धानकी जल्दी पकनेवाली क़िस्में सितम्बरके अन्तमें या अक्टूबरके आरम्भमें काटनेके लायक़ हो जाती हैं।

नवम्बर—धानकी देरमें पकनेवाली क़िस्में आरंभ मास या मध्यमें तय्यार हो जाती हैं।

(ग) गन्नेकी खेती

अप्रैल—यदि सस्ती सिंचाई संभव हो या वर्षा हो गई हो तो रबीकी फ़सलके पश्चात् परती छोड़े हुए खेतको मिट्टी पलटनेवाले हलसे जोत देना चाहिए।

मई, जून—खेतको ग्रीष्म ऋतुमें जोतकर खुला छोड़ देना चाहिए और वर्षाके आरंभमें हरी खादके लिए सनई बो देना चाहिए।

जुलाई, अगस्त—यदि खेत परती छोड़ा गया हो तो जब-जब वर्षामें समय मिले जुताई करते रहना चाहिए। फ़सलका अच्छा होना इन्हीं दिनोंकी जुताई-पर निर्भर है और यदि सनई हरी खादके लिए बोई गई है तो अगस्त मासके मध्यमें या जब फ़सल अनुमान चार फ़ुट ऊँची और फूलनेके लगभग हो तो उसको जोत देना चाहिए।

सितम्बर—जैसा ऊपर लिखा गया है जुताइयाँ बराबर करते रहना चाहिए सिवाय इसके कि इस मासके अन्तमें खेतको खुला न छोड़ना चाहिए; और मिट्टी पलटनेवाले हलोंका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए; और सनईकी जोताईके ६ सप्ताह पीछे अच्छे प्रकारसे जुताइयाँ आरम्भ कर देना चाहिए।

अक्टूबर—रबीकी फ़सलोंकी बुआई समाप्त हो जानेके बाद गन्नेके खेतोंमें नालियाँ बनाना आरम्भ कर देना चाहिए। नालियाँ ३॥ फ़ुटनकके फासलेपर होना चाहिए। ६ इंच गहरी मिट्टी खोदकर दो नालियोंके बीच खाली जगहपर रख देना चाहिए।

नवम्बर—इस मासके अन्ततक नालियाँ पूरी तैयार हो जाना चाहिए। इस कार्यमें बिलम्ब न होना चाहिए।

दिसम्बर—नालियोंमें ९ इंच गहरी गुड़ाई कर देनी चाहिए और खाद डालनी चाहिए।

जनवरी, फरवरी–नालियोंकी गुड़ाई समय-समय करते रहना चाहिए। इन तैयार की हुई नालियोंमें गन्ना बो देना चाहिए। यदि नालियाँ इस समयतक न बनी हों तो अब नालियाँ बनानेका समय नहीं है, (बजाय देहाती तरीक़ेसे एक फ़ुटसे दो फ़ुटके फ़ासलेपर गन्ना बोनेके, लाइनसे ३ फ़ुटके फासलेसे, अगर ज़मीन ज़्यादा उपजाऊ नहीं है, या ३॥ फ़ुटके फ़ासलेपर अगर ज़मीन उपाजाऊ है) रस्सीसे निशान लगाकर सम-तल ज़मीनपर गन्ना बो देना चाहिए। यदि गन्नेके बीच-में कोई बीमारी पाई जाय तो समीपवाले इंस्पेक्टर कृषि-विभागके द्वारा नया गन्ना मँगवाना चाहिए। बीज पहले अच्छे प्रकारसे जाँच लेना चाहिए कि इसमें

लाल धारियाँ या और किसी किस्मकी लाली इसके तने या जड़में कीड़ा लग जानेके सबबसे तो नहीं है। इस प्रकारकी बीमारी लगे हुए गन्नेको कदापि न बोना चाहिए। गन्नेका केवल ऊपरी $\frac{3}{4}$ भाग बोना चाहिए। यदि खेतमें कोई खाद न डाली गई हो तो गोबरकी खूब सड़ी हुई खाद १० से १५ गाड़ी प्रति एकड़के हिसाबसे डालनी चाहिए और जोताई करके मिट्टीमें मिला देनी चाहिए। गन्नेके टुकड़े लम्बाईमें सिरेसे सिरा मिलाकर बोना चाहिए। ऐसे समयपर १०-१२ मन कृषि-विभागकी बनाई खाद (अर्थात् १० हिस्से रेंडीकी खली और एक भाग अमोनियम सलफेट) और डाल देना अधिक लाभदायक होगा। जहाँ सनई-की भी खाद दी गई हो वहाँ इसकी आधी मात्रा काफ़ी होगी।

बोनेके ११ दिन पहले सिंचाई कर देनी चाहिए ताकि बीज जमनेके लिए काफ़ी नमी रहे। यदि नमी-की कमी हो तो समतलपर बोये हुए गन्नेपर जबतक अँखुए न फूटें सप्ताहमें दो बार पाटा (हैंगा) चलाना चाहिए और यदि हैंगेके पश्चात् लीवर हैरो (काँटा) भी चलाया जावे तो बीज जल्दी उग आवेगा और नमी अधिक बनी रहेगी। यप कार्य सुबह ८ बजेके लगभग समाप्त कर देना चाहिए।

मार्च—इस मासके मध्यतक बुआई समाप्त हो जानी चाहिए। इससे अधिक विलम्ब न होना चाहिए। पहली सिंचाई स्थानीय समयानुसार ४ से ६ सप्ताह बोनेके बाद, जब पौधे ६ इंचसे १ फुट ऊँचे हो जावें, करना चाहिए। जब फसल उग आवे और पौधे छोटे हों तब प्रति सप्ताह एकबार दोपहरके बाद क़तारोंके बीचमें अकोला हो या देशी हल चलाकर हैंगा दे देना चाहिए।

अप्रैल—जब पत्तियाँ दोपहरके बाद मुरझाई हुई मालूम होने लगें तब दूसरी सिंचाई करनी चाहिए। इसके बाद समतल ज़मीनपर अकोला ही से, और नालियोंमें कुदालसे गुड़ाई करनी चाहिए। हैंगेका प्रयोग अब बन्द कर देना चाहिए।

गन्नेके अँखुओंमें यदि कोई बीमारी पाई जावे या उसमें किसी प्रकारका कीड़ा लग जावे तो ऐसे पौधोंको उखाड़कर जला देना चाहिए।

मई—दो सिंचाइयाँ होनी चाहिए, पहली दूसरे सप्ताहमें और दूसरी अन्तिम सप्ताहमें और प्रति सिंचाई के बाद उपरोक्त लिखित तरीक़ेसे गुड़ाई करनी चाहिए।

जून—क़तारोंके बीच निलाई और कुदालसे गुड़ाई करनी चाहिए।

जुलाई—गन्नेपर मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

अगस्त—पौधोंको आपसमें बाँध देना चाहिए ताकि वे गिर न सकें।

सितम्बर—कोई काम इस फसलमें नहीं होता है सिवाय इसके कि यदि वर्षा जल्दी बन्द हो गई हो तो सिंचाई करनी पड़ती है।

दिसम्बरसे फरवरी—गुड़ बनाना :—उन्नतिशील भट्टी देसी भट्टीकी जगह प्रयोग करना चाहिए। इसमें ईंधन कम लगता है। जो ईंधन बचे उसको कम्पोस्टको पाँस बनानेमें प्रयोग कर सकते हैं। अपने स्थानीय इंस्पेक्टर कृषि-विभागसे कहिये वह आपके यहाँ इस प्रकारकी भट्टी तैयार करावें। एक अच्छी भट्टी-'प्रभाकर भट्टी' का वर्णन हम आगे कभी देंगे।

सुलतान कोल्हू देसी कोल्हूसे १० से १५ प्रतिशत अधिक रस निकालता है।

(घ) रबीकी फसलें

अप्रैल, मई— यदि सस्ती सिंचाई सम्भव हो या कुछ वर्षा हो गई हो तो खेतकी मिट्टी पलटनेवाले हलसे गेहूँ जोत देना चाहिए।

जून—सनई हरी खादके लिए बो देना चाहिए।

जुलाई, अगस्त—सनईको हरी खादके लिए अगस्तके प्रथम सप्ताहमें जोत देना चाहिए।

सितम्बर—रबीकी फसलोंके वास्ते खेतोंमें आवश्यकतानुसार खाद डालनी चाहिए। एक या दो जुताइयाँ मिट्टी पलटनेवाले हलसे करनेके बाद इस प्रकारके हलोंका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए और देसी हल और पाटेका प्रयोग करना चाहिए।

अक्टूबर—अपने स्थानीय इन्स्पेक्टर कृषि-विभाग द्वारा रबीके उन्नतिशील शुद्ध बीज मँगवाना चाहिए। चना वा जई वा अलसी बोना आरम्भ कर देना चाहिए। गेहूँको अन्तिम सप्ताहमें बोना आरम्भ कर देना चाहिए।

नवम्बर—गेहूँकी पहली सिंचाई इस मासके अंतमें करनी चाहिए और यदि आवश्यकता हो तो रबीकी दूसरी फसलोंकी भी दूसरी सिंचाई करनी चाहिए।

जनवरी—गेहूँकी फसलकी दूसरी सिंचाई यदि आवश्यकता हो करना चाहिए।

मार्च या अप्रैल— मँड़ाईके देसी तरीकेसे जिसमें देर लगती है गेहूँकी भारी फ़सलको खलियानमें वर्षासे ख़राब न होने देना चाहिए। अपने स्थानीय इंसपेक्टर कृषि-विभागसे कहिये कि आपको "औलपाद थ्रेशर" चलाकर दिखलावें उसकी क़ीमत सस्ती है और इससे काम बहुत शीघ्र होता है। इस माँड़नके यंत्रमें बजाय ४ या ५ जोड़ी बैलके केवल एक जोड़ी बैलकी ज़रूरत होती है। दूसरी जोड़ियाँ और दूसरे ज़रूरी कामोंमें इस्तेमाल की जा सकती हैं।

(ङ) कम्पोस्ट खाद बनाना

जनवरी—कम्पोस्ट बनानेके लिए निम्नलिखित कूड़ा-करकट संग्रह करना चाहिए :—

(१) गन्नेकी सूखी पत्तियाँ, (२) वृक्षोंकी पत्तियाँ, (३) कपास, अरहर या दूसरे क़िस्मकी फ़सलोंके डंठल, (४) पुराने छप्परका फूस, (५) खर पतवार जो उग रहा हो (विशेषकर वर्षाऋतुमें), (६) किसी क़िस्मका कूड़ा-करकट जो आसपास मिल सके।

इन सबको जमा करके कड़ी चीज़ोंको गाड़ीकी लीकोंमें जहाँ गाड़ी चलती है या पशुओंके नीचे डाल देना चाहिए ताकि वे गाड़ी तथा जानवरोंके चलनेसे टूट जावें और जब टूट जावें तो उनको जहाँ कम्पोस्ट बनानेका और कूड़ा-करकट जमा किया हुआ है रख देना चाहिए।

जहाँ नहरसे सिंचाई होती हो वहाँ नहरके पानीसे लाभ उठानेके लिए यह तरीका प्रयोगमें लाना चाहिए।

तरीका :—फ़ार्मका हर प्रकारका मिला हुआ कूड़ा-करकट उस जगहपर जहाँ आमतौरसे पशु बाँधे जाते हैं बिछा देना चाहिए। प्रतिदिन या एक-दो दिन बाद हटा देना चाहिए। (यदि गोबर जलानेके लिए आवश्यक हो तो $\frac{1}{4}$ भाग इस समयपर बचाया जा सकता है। शेष $\frac{1}{4}$ भाग गोबर कम्पोस्ट बनानेके लिए काफ़ी होगा)। इस गोबरको और कूड़ा-करकटके साथ २ फुट गहरे गड्ढे या नालीमें डाल देना चाहिए। गड्ढे या नालीकी लम्बाई और चौड़ाई जितना कूड़ा-करकट मिल सके और जितने पशु हों उनपर निर्भर होगी। साधारण तरीक़ेपर एक जोड़ी बैलके लिए ४२ वर्ग फुट काफ़ी होगी। गहराई हर हालतमें २ ही फ़ुट रहे। गड्ढा या नाली किनारेसे ६ इंच ऊँचाई तक भरना चाहिए।

पहला भराव नालीके सिरेसे १० फुट जगह छोड़कर शुरू करना चाहिए और यह जगह बादको पलटनेके लिए खाली रखना चाहिए।

प्रयोगमें लानेका तरीका

फ़र्वरी —पहला वा दूसरा पानी—शुरूमें जब नहर खुले और बादमें जब नहर बन्द होनेको हो।

पहली बार पलटना—शीघ्र इसके बाद।

मार्च — तीसरा और चौथा पानी— लगातार २ दिन आरम्भमें जब नहर खुले।

दूसरे बार पलटना—दूसरे दिन।

अप्रैल—पाँचवाँ और छटवाँ पानी–आरम्भमें जब नहर खुले और बादमें जब नहर बन्द होनेको हो।

तीसरी बार पलटना—जब नहर बन्द हो जावे तब अन्तिम बार पलटना चाहिए।

नोट—एक टोकरी पेशाबकी मिट्टी (यदि यह सम्भव न हो तो सादी मिट्टी) टोकरी राख और एक टोकरी पुराना गोबर पहली बार पलटनेके पहले मिला देना चाहिए।

मई, जून—यह प्रयोग सूखे मौसममें जारी रहेगा।

वर्षा ऋतुकी कम्पोस्ट

जुलाईसे सितम्बरतक—प्रयोग और कूड़ा-करकट इसके लिए बिलकुल वैसे ही है जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है सिवाय इसके कि गड्ढे या नालीकी बजाय एक ढेर ८ फुट चौड़ा और ३ फुट ऊँचा पर्य्याप्त लम्बाईका ऐसी जगहपर जहाँ पानी न ठहरता हो बना देना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि कूड़ा-करकट आदि इस मौसममें पशुओंके नीचे बिछाया जाय। परन्तु कई प्रकारके कूड़ेका मिश्रण आवश्यक है। यह अति आवश्यक है कि कुल कूड़ा-करकट, पेशाबकी मिट्टी वा राख वा गोबरका घोल या और कोई चीज़ जो मिल सकती है तह लगाकर ढेरमें रक्खा जाय ताकि वर्षामें पलटते समय हर चीज़ आपसमें अच्छे प्रकारसे मिल जाय। यह ढेर जूनमें बनाया जाता है।

जुलाई—जब वर्षाका पानी ६ इञ्चसे लेकर ९ इञ्चतक ढेरमें चला जाय तब जैलीसे इसको पलट देना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि कुल ढेरमें पानी मिल जाय।

अगस्त—दूसरी पलटाई पहली पलटाईसे लगभग एक मासके बाद अब करनी चाहिए।

सितम्बर—तीसरी पलटाई दूसरी पलटाईके एक मास पीछे करनी चाहिए। जहाँ सिंचाई न मिल सके वहाँ यह तरीका पहले तरीकेकी निस्बत सुगमतासे प्रयोगमें लाया जा सकता है।

अक्टूबरसे जून तक—सूखे मौसमकी कम्पोस्ट नहरी ज़िलोंमें जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है जारी रखना चाहिए।

(च) पेशाबकी मिट्टी

१५ फरवरीसे १५ जूनतक—जहाँ बैल बाँधे जाते हों वहाँ ६ इञ्च भुरभुरी मिट्टीकी तह बिछा देनी चाहिए और हर रोज़ इसको बराबर कर देना चाहिए। जहाँ पेशाब पड़ा हो उसपर थोड़ी-सी सूखी मिट्टी इसको सोखनेके लिए डाल देनी चाहिए। सप्ताहमें एकबार कुल मिट्टीको गोड़ डालना चाहिए ताकि पेशाबसे भीगी हुई पिछले पैरोंके नीचेकी मिट्टी अगले पैरोंके नीचे और अगले पैरोंके नीचेकी सूखी मिट्टी पिछले पैरोंके नीचे आ जाय और सूखी मिट्टीमें भी पेशाब सोख जाय। १५ अप्रैलको कुल ६ इञ्च मिट्टी वहाँसे हटाकर गन्नेके खेतोंमें कतारोंके बीच डाल देना चाहिए। और फिर दूसरी मिट्टी बैलोंके नीचे डालना चाहिए। १५ जूनको फिर यह मिट्टी खेतमें डाल देना चाहिए। इस प्रकार १५ जून तक २॥ गाड़ी पेशाबकी मिट्टी प्रति जोड़ी बैलके हिसाबसे तैयार हो जायगी।

रुपहरी बुकनी

१—बिसमथ १ भाग, रांगा १ भाग, पारा १ भाग लो। बिसमथको राँगेके साथ गलाओ। पिघलनेपर उसमें पारा मिलाओ। ठंढा होनेपर चूर्ण करो और चाल लो। इसको भी सुनहरी बुकनी की तरह (उ० दे०) काममें लाया जाता है।

२—अल्युमिनियम पाउडर बाज़ारमें इसी काम के लिये बिकता है।
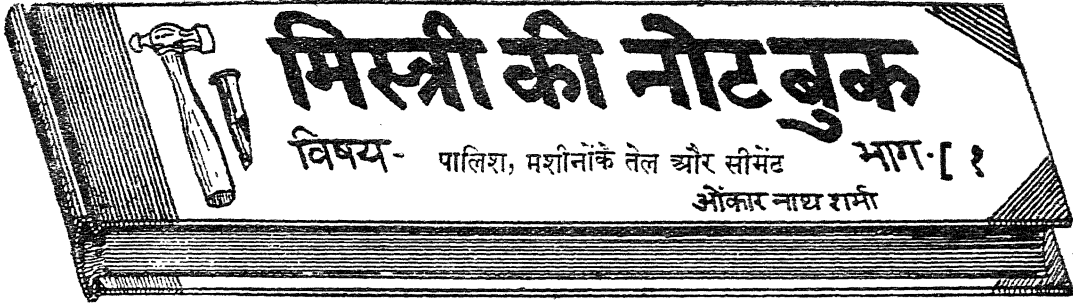
[ले०—पं० ओंकारनाथ शर्मा]

पालिश करनेके पहिले लकड़ीकी दरारें और रगें भरना

१—प्लास्टर ऑफ पेरिसकी पानीके साथ गाढ़ी लेई बनाकर उसे लकड़ीके दरारोंमें भरना चाहिए । किसी मोटे कपड़ेमें इसे भरकर लकड़ीके रेशोंके आरपार रगड़नेसे दरारें भर जावेंगी और फिर जो मसाला फालतू ऊपर रहे उसे हटा देना चाहिए ।

२—मक्खीके छत्तोंसे निकले मोम और चपड़ीको गलाकर जो मिश्रण तैयार होता है वह भी बड़ा अच्छा होता है ।

६—लकड़ीपर तेल चुपड़कर उसपर बारीक पिसा हुआ घीया पत्थर बुरक देना चाहिए और उसे ज़ोरसे मसलकर रमा देना चाहिए ।

४—तारपीनके तेलमें सफेदेकी लेई बनाकर उसे रेशोंके आरपार रगड़नेसे भी दरारें अच्छी तरहसे भर जाती हैं ।

फ्रेंच पालिश :—

१—कोपालका गोंद	¼ औंस
चपड़ी	१ औंस
बबूलका गोंद	¼ औंस
स्पिरिट	१ पाइंट

पहिले चपड़ी और गोंदको बारीक पीसकर मलमलमेंसे छान लेना चाहिए और फिर किसी बोतलमें स्पिरिट लेकर उसमें गोंद और चपड़ीका चूर्ण मिला देना चाहिए; और कड़ी डाट लगाकर धूपमें या आगके पास (कुछ फासलेपर) रख देना चाहिए । मौके-मौकेपर हिलाते रहना चाहिए । दो-तीन दिनमें सब घुल जावेगी । फिर उसे बारीक कपड़ेसे छानकर उपयोगके लिए बोतलोंमें बड़ी डाट बन्द करके रख देना चाहिए ।

२—पीली चपड़ी	२½ पौंड
मास्टिक	३ औंस
सिंदरफ	३ औंस
स्पिरिट	१ गैलन

उपरोक्त सब चीजोंको घोलकर उसमें १ पाइंट कोपाल वार्निश मिला देनी चाहिए ।

३—चपड़ी	३ औंस
मास्टिक गोंद	½ औंस
मैथिलेटेड स्पिरिट	१ पाइंट

उपरोक्त सब चीजोंको घोल लेना चाहिए ।

फ्रेंच पालिशको ठीक करनेका घोल :—

यदि किसी चीज़पर फ्रेंच पालिश बिगड़ गई हो तो उसपर नीचे लिखा घोल रगड़ना चाहिए ।

सिरका	१/२ जिल
स्पिरिट ऑफ वाइन	१ जिल
अलसीका तेल	३ औंस

मशीनोंमें देनेके तेल और ग्रीज़

भारी मशीनों और इंजनोंके बेअरिंग बक्सोंमें देनेके लिए ग्रीज़ :—

सरदीके मौसमके लिए :—

चरबी	२२ ३/१० भाग
ताड़के फलोंका तेल (पाम ऑइल)	१२ १/५ भाग
ह्वेल मछलीका तेल	१ १/५ भाग
सोडा	५ भाग
पानी	५९ ३/१० भाग

गरमीके मौसमके लिए :—

चरबी	१८ ३/१० भाग
ताड़के फलोंका तेल	१२ १/५ भाग
ह्वेल मछलीका तेल	१ १/२ भाग
सोडा	५ १/२ भाग
पानी	६२ १/२ भाग

बॉल बेअरिंग वगैरामें लगानेकी मुलायम ग्रीज़

छाना हुआ "सिलिन्डर-आइल"	८ भाग
चरबी	१ भाग
मोम	१ भाग

मोम और चरबीको पहिले गलाकर फिर उसमें तेल मिला दिया जाय-यह ग्रीज़ १२०° फ तापक्रम पर गल जाती है।

लकड़ीके पुर्जों के लिए

प्लम्बगो सूखा अथवा पानीके साथ मिलाकर रगड़ देना चाहिए।

मशीनोंके लिए तेल

१—अंडी का तेल

२—मिश्रण :—

सूअरकी चरबीका तेल	४ भाग
जैतूनका तेल	६ भाग
नारियलका तेल	२ भाग

घड़ीमें देनेके लिए तेल

घड़ियोंमें देनेके लिए जो भी तेल हो उसमें चार विशेष गुण होने चाहिए :—

१—शुद्ध हो, २—चेपरहित हो, ३—सूखे नहीं, ४—सरदीसे गाढ़ा न पड़े।

जैतूनके तेलमें सब गुण हो सकते हैं लेकिन उसमें कुछ तेज़ाबी असर होता है, जो साफ पानीके धोनेसे जा सकता है। उसमें जस्ते और शीशेके टुकड़े डालकर और बोतलमें भरकर धूपमें रखनेसे वह शुद्ध और हल्का हो जाता है, गाद नीचे बैठ जाती है।

सीनेकी मशीनोंके लिए तेल :—

बादामका तेल	९ भाग
वैन्ज़लीन	३ भाग
ऑइल ऑफ लेवेन्डर	१ भाग

बाइसकिलोंके लिए तेल :—

ह्वेल मछलीका तेल	३ भाग
वैसलीन	१ भाग
मिट्टीका तेल	पतला करनेके लिए

सीमेंट

१—लोहेकी पुलियोंपर चमड़ा चिपकानेके लिए

कुछ माजूफल लेकर उन्हें कूट लो और आठ गुने पानीमें १० घंटेतक उन्हें भीगने दो, फिर उन्हें उबाल-कर गरम-गरम हालतमें ही चमड़ेपर पोत लो।

फिर पुलीको गरम कर उसपर सरेस पोत दो और फिर माजूफलकी तरफसे चमड़ा चिपका दो।

दूसरी सीमेंट इसी कामके लिए :—

जिलेटीन	१ भाग

मछलीका सरेस	५ भाग
पानी	३ भाग
शोरेका तेजाब	१ भाग

तीनों चीज़ें घोलकर शोरेका तेजाब पीछेसे मिलाया जाय।

२—चमड़ेपर चमड़ा चिपकानेके लिए :—

गटापारचा	३ भाग
सफेद कच्ची रबड़	१ भाग

ये दोनों चीज़ें बाइसल्फाइड ऑफ कारबनके ८ भागमें मिला ली जावें।

३—भट्टीकी दीवारें बनानेके लिए सीमेंट :—

ताजी आग-मिट्टी	१ भाग
जली हुई आग-मिट्टी	१ ,,
सिलिकेट ऑफ सोडा	१½ ,,

ऊपर दी हुई तीनों चीजोंको मिलाकर उनमें इतना पानी मिलाना चाहिए कि जिससे वह करनी या दुफल-की (मोलडरोंका एक औजार) से ईंटोंकी दरारोंमें भरी जा सके।

४—वाष्पके नलोंके लिए जिनके जोड़ खराब हुए हों :—

प्लम्बगो	१ भाग
सिंदूर	१ ,,
सफेदा	१ ,,
एसबस्टसके रेशे	१ ,,

ऊपर दी हुई सब चीजोंको अलसीके तेलमें गाढ़ा-गाढ़ा मिलाकर खूब कूट लेना चाहिए। यह सीमेंट बड़ी तेज़ गरमी भी सह सकती है। साधारण कामोंके लिए तो सिन्दूर और सफेदा ही अलसीके तेलमें मिलाना काफी होगा।

५—देगसार लोहेकी टंकियोंके लिए :—

देगसार लोहेका बुरादा बारीक	१० भाग
पिसा हुआ नौसादर	१ भाग
गंधककी मैदा	२ ,,

तीनों चीजोंको पानीके साथ गाढ़ा-गाढ़ा मिलाकर लगानेसे जोड़ जंग पकड़कर बड़ा मज़बूत हो जाता है।

६—साधारण टंकियोंके लिए :—

मुरदा संख	५ भाग
ग्लिसरीन	½ ,,
प्लास्टर ऑफ पेरिस	४ ,,
बारीक मिट्टी	१ ,,
बैरोज़ा	½ ,,

ऊपर दी हुई सब चीजोंको पीसकर उबले हुए अलसीके तेलमें मिलाना चाहिए।

७—पानी और वाष्पके रास्तोंके लिए सीमेंट :—

सफेदा	१० भाग
मैंगनीज़ ऑक्साइड	३ ,,
मुरदा संख	१ ,,

ऊपर दी हुई सब चीजोंको उबले हुए अलसीके तेलमें गाढ़ा-गाढ़ा मिला लेना चाहिए।

८—तेज़ गरमी सहनेवाले जोड़ोंके लिए :—

एसबस्टसके रेशे, बारीक कुटे हुए लिये जावें और उनमें सिलीकेट ऑफ सोडा काफी मात्रामें मिलाकर गाढ़ी लेई बना ली जावे। यह सीमेंट भट्टीके भीतर पाइपोंके जोड़ बैठानेके लिए बड़ी उपयोगी रहती है।

९—बॉयलर और स्टीम पाइपोंके ऊपर लगाने योग्य सीमेंट जो उनकी गरमीको रोके रहे :—

पोर्टलेन्ड सीमेंट	१ भाग
आटा	२ ,,
बारीक मिट्टी	१ ,,
लकड़ीका बुरादा	४ ,,

इन सब चीजोंको सूखा मिला लेना चाहिए और फिर ऊपरसे उनमें चिकनी मिट्टी ४ भाग और

एसबस्टसके रेशे १/२ भाग मिलाकर पानीमें गोंद लेना चाहिए। जब वह मकान बनानेवालोंके चूनेकी तरह गाढ़ा हो जावे तब उसे बॉयलर या पाइपपर करनीसे १ इंच मोटा पोत देना चाहिए। जब एक तह सूख जाय तब दूसरी तह फिर चढ़ा देनी चाहिए। जब पाँच या छः इंच मोटी तह चढ़ जावे तब ऊपरसे गाढ़ा-गाढ़ा डामर पोत देना चाहिए।

१०—लकड़ीपर चमड़ा या कपड़ा चिपकानेके लिए :—

देव गेहूँ या कँगरानके आटेकी लेई पहिले पका लेनी चाहिए, फिर लगभग आध सेर लेईमें २ छटाँक सरेस गलाकर मिला देना चाहिए और साथ ही में २ छटाँक राब भी डाल देनी चाहिए। फिर लगभग १/२ सेर पानी सबमें मिलाकर उसे फिर औटाना चाहिए जबतक कि आवश्यक गाढ़ापन न आ जावे।

११—जड़ियोंके कामकी सीमेंट :—

जिलेटिन	१/२ औंस
मस्तगी	१/२ औंस
अमोनियाकम	१ ड्राम

इस सबको अलकोहलमें घोल लेना चाहिए और गरम कर खूब अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

१२—संगमरमरके पत्थरोंके लिए सीमेंट :—

बारीक मिट्टी	२० भाग
मुरदा संख	२ भाग
सूखा चूना	१ भाग
प्लास्टर ऑफ पैरिस	१ भाग

ऊपर दी हुई सब चीजोंको उबाले हुए अलसीके तेलमें मिलाकर गाढ़ी पोटीन बना लेनी चाहिए।

१३—काँचपर कागज़ चिपकानेके लिए :—

मैदामें आवश्यकतानुसार गोंद और सिरका मिलाकर लेई बना लेनी चाहिए।

१४—लाल चपड़ी :—

बैरोज़ा	५० भाग
सिंदूर	३७ भाग
तारपीनका तेल	१३ भाग

ऊपर दी हुई सब चीजोंको बारीक कर तारपीनमें मिला लिया जाय और फिर पानीके बीचमें बरतन रखकर गला लिया जाय। गलनेपर बत्तियाँ जमा ली जावें।

१५—काली चपड़ी :—

बैरोज़ा	१२ भाग
मक्खीका मोम	१ भाग
दीयेकी कालोस	२ भाग

गलाकर बत्ती जमा ली जावें।

१६—सफेद सीमेंट पत्थरके खिलौनोंके लिए:—

प्लास्टर ऑफ पेरिस और फिटकरीका पानी मिलाकर साधारण पत्थरकी मूर्त्तियोंके लिए साधारण सीमेण्ट बनाई जा सकती है इससे केवल गढ़तके गड्ढे और गलतियाँ ही दुरुस्त की जा सकती हैं।

१७—पत्थरकी मूर्तियोंको जोड़नेके लिए मज़बूत सीमेंट :—

सफेदा	२ भाग
खड़िया	३ भाग
ग्लिसरीन	१/२ भाग
जिलेटिन	१/२ भाग

१८—भट्टियोंमें आगके टाइल जमानेके लिए :—

आग-मिट्टी और सिलिकेट ऑफ सोडा उचित मात्रामें मिलाकर लगाया जाय।

१९—लोहेकी छड़ोंमें चीनी मिट्टीके लट्टू वगैरा लगाना :—

पोर्टलेन्ड सीमेंट और गरम सरेस मिलाकर इस कामके लिए अच्छी सीमेंट बनाई जा सकती है।

२०—पानीमें न गलनेवाली सीमेंट :—

जिलेटिन	५ भाग
एसिड क्रोमेट ऑफ लाइम	१ भाग

ऊपर दी हुई चीजोंमें ज़रूरतसे अधिक पानी मिलाकर सीमेंट बनाई जा सकती है। किसी चीज़में लगानेके बाद उसे धूपमें रखना ज़रूरी है।

२१—लोहे और टीनकी चीज़ोंपर कागज पक्का चिपकानेके लिए :—

साधारण मैदाकी लेई	१ पौंड
क्लोराइड ऑफ एंटीमनीका घोल	२ ड्राम

२२—लकड़ीकी चकरीपर एमेरी चिपकाना :—

चपड़ी	१ भाग
राल	१ भाग
कारबोलिक एसिडके रवे	$\frac{1}{5}$ भाग

राल और चपड़ीको पहिले गलाकर उनमें कारबोलिक एसिड मिलाना चाहिए। इस सीमेण्टको गरम-गरम पोतकर उसपर खूब गहरा एमेरी पाउडर लगा देना चाहिए।

२३—रबरकी चीज़ें जोड़नेके लिए :—

सफेद कच्चा रबड़को बेंज़ोलीन या बाइ-सल्फाइड ऑफ कारबनमें डालकर गरम पानीके बीचमें गलाना चाहिए।

२४—लोहेकी सरियोंको पत्थरमें जमानेके लिए :—

राल और गंधकको उचित मात्रामें गलाकर काममें लाना चाहिए।

२५—तेज़ाबकी हौदियोंके लिए सीमेंट :—

राल, बैरोजा और प्लास्टर ऑफ पैरिसको समान भागमें लेकर गलाकर मिला लेना चाहिए और गरम-गरम ही काममें लाना चाहिए।

२६—हड्डी, हाथी दाँत और लकड़ीको धातुसे जोड़नेके लिए :—

मुरदा संख और ग्लिसरीनको आवश्यकतानुसार मिलाकर अच्छी सीमेंट बन सकती है।

२७—मिट्टीके बरतन, लोहे, पीतल आदि धातुकी चीजें जोड़नेके लिए

धुली हुई बारीक मिट्टी	२० भाग
मुरदा संख	२ भाग
पिसा हुआ चूना	१ भाग

इन सब चीज़ोंको उबाले हुए अलसीके तेलमें मिलाया जाय और फिर ऊपरसे ज़रूरतके माफ़िक रंग छोड़ दिया जाय।

२८—काँचको धातुसे जोड़नेके लिए :—

मुरदा संख	२ भाग
सफ़ेदा	१ भाग
अलसीका उबाला हुआ तेल	३ भाग
कोपाल वार्निश	१ भाग

२९—आगमें न जलनेवाली सीमेंट :—

अलसीका कच्चा तेल लेकर उसमें पिसा हुआ थोड़ा-सा चूना मिला दिया जाय जिससे वह दहीके माफिक गाढ़ा हो जाय; फिर उसे आगपर पकाकर ठंढा किया जाय। गाढ़ा होनेपर साधारण सीमेंटकी तरह बरता जाय।

३०—काँचकी नलियोंके सिरोंमें पीतल जोड़ने के लिए :—

राल	५ भाग
मक्खीका मोम	१ भाग
फेरिक ऑक्साइड	१ भाग

इन सबको गलाकर बड़ी सुन्दर सीमेंट बनती है। इसे यदि होशियारीसे लगाया जाय तो बड़े अच्छे जोड़ बैठ सकते हैं। यह गरम-गरम ही बरतनी चाहिए।

३१—चीनी मिट्टीके बरतन जोड़नेके लिए:—

जिलेटिनको गरम पानीमें पहिले गला लिया जाय और फिर उसमें एसीटिक एसिड मिला दिया जाय।

३२—ऐसी सीमेंट जिसपर तेज़ाबका असर न हो:—

सिलिकेट ऑफ सोडामें काँचको बारीक पीसकर मिला दिया जाय, जिससे लेई-सा गाढ़ा हो जाय।

वैज्ञानिक जगत्के ताज़े समाचार

[ले०—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० एस-सी०]

एक घड़ी जो इच्छित समयपर रेडियोको चालू कर दे और प्रकाश कर दे

सादे पुरज़ोंसे चलनेवाली और सस्ती एक ऐसी घड़ी बनी है जो स्वतः कई एक काम कर सकती है। जब आप चाहें तभी यह रेडियोको चालू कर सकती है और प्रकाश कर सकती है। दुकानों और दफ्तरोंकी हवा (खुलनेके पहिले) साफ़ करनेका यंत्र हो तो उसे चालू कर हवा साफ़ कर सकती है और ऐसे अनेकों बिजलीसे चलनेवाले यंत्रोंको विधिपूर्वक चला सकती है। सूचना-घड़ी (ऐलार्म वाच) के अनुसार इसकी सुई उस घंटेपर कर देनी पड़ती है जब कि कोई अमुक काम करवाना हो। इसकी चाभी हाथसे भरनी है और इसका नियंत्रण-विधान बिल्कुल यांत्रिक है जिससे किसी भी वोल्टेज या चक्र-संख्याकी विद्युत धारासे यह काम कर सकता है। घड़ी वैद्युत-कुंडलीमें जोड़ दी जाती है और इसके पृष्ठपर रेडियो, प्रकाश आदिसे सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। सुईको ठीक घंटेपर फेरकर और जिस (स्टेशन) स्थानका गायन लेना हो उसके लिए ठीक बिठाकर छोड़ दीजिये ; आपसे-आप ठीक समयपर गान आने लगेगा।

अँधेरेमें लिखनेमें सहायता देनेके लिए प्रकाशसे सुसज्जित पेंसिल

नवीनतम पेंसिलके बिन्दुके (नोंक) चारों ओर एक वैद्युत-लट्टू लगा होता है जो अन्धकारमें लिखनेके लिए प्रकाश कर देता है। पेंसिलकी नलीमें एक सूखी बाटरीसे प्रकाशके लिए विद्युत-धारा आती है।

धातु निगली हुई गायोंकी विद्युत-चुम्बक द्वारा रक्षा

मवेशी डाक्टर विद्युत-चुम्बकी सहायतासे उन गायोंकी, जो तार, कीले और बहुत-सी छोटी-छोटी धातुओंकी वस्तुएँ निगल जाती हैं, रक्षा करनेमें सफल हुए हैं। गायको बेहोश कर डाक्टर खालको काटकर उसमें (बैक्टीरिया आदिसे सुरक्षित) विद्युत-चुम्बक पेटमें लगा देता है जहाँ यह धातुके सब टुकड़ोंको खींच लेता है। एक मोटरकी बैटरीसे चुम्बक काम करता है।

जब कोई आकर रश्मि-मालाको काट दे तो बिजलीकी आँखसे घंटीका बज उठना।

बाहरसे आनेवाले अनायास ही द्वार-घंटी बजा देते हैं जब वे विद्युत-आँखलट्टूकी रश्मि-मालाके बीचमें आ जाते हैं। यह सिगनल दुकानों और मकानोंमें उठाई-गीरोंकी सूचना देनेके लिए ही लगाया जाता है। दरवाज़ेकी एक ओर एक खानमें एक छोटा सन्दूक रक्खा होता है जिसमेंसे दूसरी ओर सामने एक शीशेपर रश्मि-माला पड़ती है और यह परावर्तित हो सन्दूकके दूसरे छिद्रपर पड़ती है। जब रश्मि-माला अवरुद्ध हो जाती है तो घंटी बज पड़ती है।

कोलतार करनेसे पहिले चूनेकी कलई कर देनेसे ईंटोंकी सड़कपर मोटर फिसलने नहीं पाती

मोटरोंको मुलायम कोलतारपर फिसलनेसे बचानेके लिए और स्वयं कोलतारको बचानेके लिए इंजिनियरोंने पहिले ईंटोंपर सफ़ेद कलई की। जब ईंटें बिछ गईं और पट गईं तो मामूली चूनेकी कलई पानीके छिड़काव करनेवाली जैसी एक गाड़ीके हौज़में भर दी गई और उससे चूनेके पानीकी बौछार सड़कपर की गई। ज्योंही यह सूखी, गरम कोलतार ईंटोंके बीचकी जगहोंको भरनेके लिए डाला गया। फिर जब कोलतार मुलायम ही था तो मज़दूरोंने ईंटोंकी ऊपरी सतहका कोलतार लकड़ीके फावड़ोंसे खुरच डाला। कलईके कारण कोलतार ईंटोंसे चुपकनेसे बच गया। सब खुरचा हुआ ज़्यादा कोलतार फिर पिघलाकर काममें आ गया।

रासायनिकमें डुबोकर ऊन सिकुड़ने नहीं पाती

सल्फ्यूरायल-क्लोराइडके घोलमें डुबोकर ऊन न सिकुड़नेवाली बनाई जा सकती है और साथ-साथ इसकी मज़बूती, रंग और मुलायमीमें कोई फर्क नहीं आता और वैसी ही फूली हुई रहती है। रासायनिक सफ़ेद शराबमें, जो कपड़ोंको सूखा साफ करनेमें काम आती है, घोला जाता है। यह १½ चार प्रतिशतका घोल हो। करीब १ घंटे घोलमें डूबे रहना पड़ता है। डूबनेपर ऊन बिना बिगड़े सिकुड़ती है और फिर इसके बाद कभी नहीं सिकुड़ती। चाहें तो जैसे ही भेड़की पीठपरसे उतरे तभी या जब उसके थान बन जायँ तब यह क्रिया की जा सकती है। इस क्रियासे पहिले धोनेकी कोई आवश्यकता नहीं। नकली रेशम और रुईके सूत मिली हुई ऊन भी बिना इन रेशोंको नुकसान पहुँचाये डुबोई जा सकती है यदि ये रेशे बहुत तर न हों। उनको न सिकुड़नेवाले बनानेकी क्रियाएँ ४० वर्षसे व्यवहारमें आती रही हैं परन्तु सबोंमें कम-से-कम यह कमी होती थी कि किसी-न-किसी प्रकार ऊन बिगड़ ही जाती थी।

मिट्टीके तेलका भंडार भरपूर है

एक प्रसिद्ध पैट्रोलियम कम्पनीके प्रधानके मतानुसार तेलके भंडार खाली हो जानेका भय दूर हो गया। उनका कहना है कि तेलकी नई-नई खोजों और अनधिकार तेल निकालनेके विरुद्ध कानूनी कार्रवाहीकी विधिमें सुधार होनेसे अब वैसा भय नहीं रहा। सन् १९०८ में पैट्रोलियमकी मात्रा ८ और २२ अरब बैरिल (१ बैरिल ५ घन फुटके बीचमें समझी जाती थी लेकिन आजतक २२ अरब बैरिलसे अधिक ही पैट्रोलियम निकाल लिया गया है और उसके भंडारका कोई अन्त नहीं। १९२१ में करीब ९ अरब बैरिल अस्वच्छ तेलकी मात्राका अनुमान था लेकिन तबसे १३ अरब बैरिल तेल तो निकल आया और बचे हुए तेलका भंडार पहिलेसे ज्यादा भरपूर समझा जाता है। बात यह थी कि पहिले यह नहीं सोच सकते थे कि दो मील गहराईतक कुएँ खुद सकेंगे और वायुके, गैस-उठावसे ज़्यादा तेल निकल सकेगा; और तेलके 'क्रैकिंग' की विधियोंसे गैसोलीन खनिज तेलसे पहिलेकी अपेक्षा सातगुनी मात्रामें निकल सकेगा और उदजनीकरण क्रिया द्वारा १ पीपे पैट्रोलियमसे सात पीपे पैट्रोलियम बन सकेगा। कोयले और तेलका तो मानों अक्षय भंडार ही है।

दूधका प्रचार

हमारे देशमें दूध पीनेका प्रचार बहुत कम हो गया है। कुछ लोगोंकी राय है कि प्रत्येकको आधा सेर (१५ औंस) दूध रोज़ पीना चाहिए। भारतकी इम्पीरियल कौंसिल ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्चने कुछ विशेष स्थानोंपर, जहाँ साधारणतया दूध भली प्रकार मिलता है, जाँच की। पता लगा कि इन स्थानोंमें प्रतियुवा ६·६३ औंस और प्रति बालक ५·८२ औंस प्रतिदिनकी औसत पड़ता है। यह कितना कम है, स्पष्ट है।

अन्य देशोंमें प्रतिदिन प्रति मनुष्य जो औसत है, वह नीचे दिया जाता है :—

न्यूज़ीलैंड	५६	औंस	(७ पाव)
डेनमार्क	४०	,,	(५ पाव)
फिनलैंड	६३	,,	(८ पाव)
स्वेडिन	६०	,,	(७॥ पाव)
ऑस्ट्रेलिया	४५	,,	(५॥ पाव)
कनाडा	३५	,,	(४। पाव)
स्विटजरलैंड	४९	,,	(६ पाव)
नेदरलैंड	३५	,,	(४। पाव)
नार्वे	४३	,,	(५। पाव)
सं० रा० अमरीका	३५	,,	(४। पाव)
ज़ीकोस्लोवेकिया	३६	,,	(४॥ पाव)
बेलजियम	३५	,,	(४। पाव)
आस्ट्रिया	३०	,,	(३॥ पाव)
जर्मनी	३५	,,	(४। पाव)
फ्रांस	३०	औंस	(४॥ पाव)
पोलेण्ड	२२	,,	(२॥ पाव)
ग्रेट ब्रिटेन	३९	,,	(५ पाव)
इटली	१०	,,	(१। पाव)
रूमानिया	९	,,	(१ पाव)

[हमारे यहाँके बहुत-से स्थानोंमें तो दूध मिलता ही नहीं है। चायके शौकीनोंने दूध पीना और छोड़ दिया है। गोमाताके भक्तों और उपासकोंका यह हाल !

जिस देशमें गोदानकी प्रथा हो; जहाँ गायको माताके समान समझा जाता हो और जहाँ गोपाल कृष्णके उपासक हों वहाँके व्यक्तियोंको इस युगमें दूध पीनेका महत्व बताया जाय, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। स० प्र०]

समालोचना

नफाकारक हुन्नरो—भाग पहेलो (गुजराती)—संपादक और प्रकाशक – मूलजी कानजी चावडा, सींतुगरा, अंजार—कच्छ मूल्य २)। पृ० सं० २३६। छपाई और कागज उत्तम।

गुजराती भाषाकी इस सुन्दर पुस्तकमें विविध हुनरों—उद्योग धन्धों—का उल्लेख किया गया है। भिन्न-भिन्न हुनरोंके लेखक भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। इस पुस्तकके कुछ मुख्य विषय ये हैं—गुजरातमें चंदनका धन्धा, जुआर, दर्पण, सूखी बाटरी, लिकर अमोनिया, निर्गंध तेल, नये प्रकारकी शाक भाजी, फलका उद्योग, पेटेंट दवाएँ, शृंगार सामग्री, पालिश, वार्निश, रंग, साबुन, इत्यादि। भिन्न-भिन्न उद्योग शिक्षणालयोंका भी वर्णन दिया गया है। पुस्तक परिश्रमसे संपादित की गई है, और इसमें जनताके लाभकी अच्छी सामग्री संकलित है। हमें आशा है कि गुजराती भाषियोंमें इसका अच्छा प्रचार होगा जिससे संपादक महोदय और भी विस्तारसे ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करा सकें।

नीमके उपयोग—ले० केदारनाथ पाठक रासायनिक। प्रकाशक—श्री उमेदीलाल वैश्य, श्यामसुन्दर रसायनशाला, गायघाट, बनारस। मूल्य ॥।), पृ० सं० १०८। छपाई आदि उत्तम।

आयुर्वेद पद्धतिपर लिखी गई नीम-सम्बन्धी यह एक अच्छी पुस्तक है। नीमका सर्वाङ्ग वर्णन इसमें दिया गया है। यत्र-तत्र डाक्टरोंकी सम्मतियाँ भी उद्धृत की गई हैं। कोढ़, सुरामेह, दाहज्वर व्रणशोधन, कामला आदि अनेक रोगोंमें प्राचीन पद्धतिके अनुसार इसका उपयोग बताया गया है। गोंद, छाल, तेल बीज आदिके अनेक उपयोग बताये गये हैं। प्रयोग शतकमें १०० लाभोंका उल्लेख है। पुस्तकके परिशिष्ट-में अनेकों आवश्यक बातोंका उल्लेख है जैसे नीमका लड्डू, निम्बक्वथ, नीमका हिम, टिंकचर, चूर्ण, मंजन, उबटन, साबुन, तेल, घृत आदि। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है और जनताको इससे लाभ उठाना चाहिए।

अनुभूत योग—प्रथम भाग—ले० श्री श्याम सुन्दराचार्य्य वैश्य। प्रकाशक श्यामसुन्दर रसायनशाला, गायघाट, बनारस। मूल्य ॥=), पृ० सं० ८८

पुस्तकका यह संवर्धित तृतीय संस्करण है। स्वास्थ्य संबन्धी सभी प्रकारके कुछ आवश्यक नुसखोंका इसमें संग्रह है। वैद्योंको इससे लाभ उठाना चाहिए।

अनुपान विधि—लेखक, प्रकाशक ऊपरके समान, पृ० सं० ५५, मूल्य ।=); तृतीय संस्करण। चन्द्रोदय, कपूर, सिंदूर, चाँदी, ताम्र, वंग, लोह, स्वर्ण माक्षिक, शंख, सीप आदिकी भस्मोंके अनुपानका इसमें उल्लेख है। पुस्तक उपयोगी है और वैद्योंके कामकी है।

—सत्यप्रकाश

विज्ञान-परिषद्की रजत जयन्ती

परिषद्के सभ्योंमें विशेष उत्साह

विज्ञान-परिषद्की स्थापना हमारे कुछ उत्साही व्यक्तियों द्वारा सन् १९१३ में हुई थी। इस बातको २५ वर्ष हो रहे हैं। इन वर्षोंमें परिषद्ने हिन्दी साहित्यकी जो अमूल्य सेवा की है उससे हमारे पाठक भलीभाँति परिचित हैं। इस बीचमें परिषद्ने अनेक उपयोगी ग्रन्थोंका प्रकाशन किया और 'विज्ञान' पत्रके द्वारा वैज्ञानिक साहित्यकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया। 'सरस्वती' पत्रिकाको छोड़कर हिन्दी साहित्यकी और कोई ऐसी मासिक पत्रिका नहीं है जो 'विज्ञान'के समान पुरानी हो। यह हमारे लिए संतोषकी बात है कि समस्त हिन्दी भाषी जनता 'विज्ञान' पर गर्व करती है। हिन्दी ही नहीं, अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें भी 'विज्ञान' से पुरानी और अच्छी मासिक पत्रिका नहीं है। सब लोग इस बातको स्वीकार करते हैं कि जिस उच्च कोटिका वैज्ञानिक साहित्य हिन्दीमें प्राप्य है उतना अन्य किसी भारतीय भाषामें नहीं है। यों तो अनेक हिन्दी प्रकाशकोंने कुछ-न-कुछ वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करके हमारा उपकार किया है; फिर भी इस क्षेत्रमें विज्ञान-परिषद्ने जो कार्य किया है वह साहित्यके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है। इसमें आत्मश्लाघाकी कोई बात नहीं, इसमें वह सचाई है जिसमें किसीको सन्देह नहीं करना चाहिए। जब हम इस बातको सोचते हैं कि परिषद् इतना कार्य किस प्रकार कर सकी तो हमें आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। परिषद्के सभ्योंकी संख्या बहुत कम, आर्थिक अवस्था अत्यन्त दीन, और वैज्ञानिक साहित्यके लेखकों और पाठकोंकी उदासीनता—फिर भी कुछ निस्स्वार्थ हिन्दी—प्रेमी उत्साही व्यक्तियोंके निष्काम पुरुषार्थसे हम थोड़ा-बहुत कर सकनेमें सफल हुए हैं। प्रान्तीय गवर्नमेण्टसे केवल ६०० रु० वार्षिककी सहायता इतने बड़े कामके लिए नहींके बराबर है। अब तो प्रांतीय सरकार हमारे अपने ही व्यक्तियोंके हाथमें है। यह बड़े हर्षकी बात है कि शिक्षा-मन्त्रीजीको आरम्भ ही से वैज्ञानिक साहित्यसे प्रेम रहा है। मनोरंजन पुस्तकमालामें प्रकाशित उनका भौतिक विज्ञानका ग्रन्थ अब भी ऐतिहासिक महत्वका है। परिषद्की इस जयन्तीके अवसरपर हम अपने शिक्षासचिवका ध्यान इस ओर आकर्षित करनेकी धृष्टता करते हैं कि राज्यकी ओरसे जो कुछ हो सके परिषद्की और सहायता करें।

यह हर्षकी बात है कि हमारे कुछ विज्ञान-प्रेमी उत्साहसे सहयोग देनेको तैयार हैं। कुछ सज्जनोंने हमें अपने उपयोगी विचारोंसे उपकृत किया है। हम

तो समझते हैं कि प्रत्येक वैज्ञानिक प्रेमीका कर्त्तव्य है कि वह सोचे कि इस अवसरपर किस प्रकार हमारी सहायता कर सकता है। हमारे कुछ प्रस्ताव इस प्रकार हैं :—

(१) 'विज्ञान' का प्रत्येक प्रेमी ग्राहक हमारा कम-से-कम एक ग्राहक और बना दे।

(२) विज्ञान-परिषद्‌के माननीय सभ्योंकी संख्यामें वृद्धि हो। अब तो सभ्य होनेका वार्षिक चन्दा १२ रु० से घटाके ५ रु० कर दिया गया है। 'विज्ञान' के जो ग्राहक २ रु० देते हैं वे ३ रु० और देकर हमारे सभ्य हो जायँ और काममें हाथ बटायें।

हम अपने सभ्योंको अपनी उस वर्षकी प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य ही भेंट करते हैं। इस दृष्टिसे परिषद्-सभ्य होनेसे लाभ ही लाभ हैं।

(३) अपने लेखकोंसे प्रार्थना है कि इस जयन्तीके अवसरपर 'विज्ञान' और विज्ञान-परिषद्‌की चर्चा हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती बंगाली, तामिल आदि भाषाओंकी पत्र-पत्रिकाओंमें करें।

(४) जयन्तीके अवसरपर हिन्दी साहित्यिक संस्थाएँ अपने स्थानोंपर एक विशेष अधिवेशन करें जिसमें वैज्ञानिक साहित्य और परिषद्‌के कार्यकी चर्चा हो।

विषय-सूची

जुलाई, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४७, संख्या ४

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

३५० मन बोझका भीमकाय चुम्बक जो विश्व-रश्मि (कॉस्मिक-रे) के अध्ययनके लिये शिकागोमें तैयार किया गया है।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces. for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७९

वार्षिक मूल्य ३)

विषय-सूची

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७ | प्रयाग, कर्कार्क, संवत् १९९५ विक्रमी जुलाई, सन् १९३८ | संख्या ४

चक्रयन्त्रका प्रयोग

[ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

वाष्प-जगत्में एक नया युग

आइये, हम आपको एक बड़े कारखानेकी सैर करायें। इस कारखानेके विशाल कमरेमें चलिये। द्वारमेंसे घुसते ही आपको लोहेकी मशीनोंका एक जाल-सा बिछा हुआ मिलेगा। इतनी अधिक मशीनों-को देखकर आप दंग रह जायँगे। हाथियोंके बोझेके समान इनका बोझा है। एकके पास दूसरी लगभग बीसों मशीनें लगी हुई हैं, और सब एक-से-एक उग्र और भयंकर। आप सोचते होंगे कि ये सब किस प्रकार चलती हैं। इतनी मशीनोंकी सफाई करना और उन्हें तेल देना भी तो साहस और परिश्रमका काम है।

चलिये, इसके पासके दूसरे कमरेमें चलें। यह एक छोटा-सा कमरा है, जहाँ पहले कमरेकी अपेक्षा बहुत थोड़ा ही शोर हो रहा है। इसमें मशीनें भी कम हैं, फर्शपर लोहे और इस्पातके बने हुए थोड़े-से बेलनाकार सन्दूकचे रक्खे हुए हैं। यह कमरा स्वच्छ भी है, और कानोंको भली लगनेवाली गुनगुनाती ध्वनि इसमें आ रही है। पहिली दृष्टिमें तो ऐसा प्रतीत होगा कि कोई भी चीज़ घूम नहीं रही है, पर अधिक निकटसे देखनेपर पता चलेगा कि कोई चीज़ बड़ी तेज़ीसे घूम रही है। जहाँ कि पहले कमरेमें आधे दर्जन आदमी तेल आदि देनेमें व्यस्त दिखाई दिये थे, वहाँ इस कमरेमें आपको केवल दो आदमी दिखाई देंगे। संभवतः

आप समझें कि यहाँ इन दोनोंके पास भी कोई काम नहीं है। पर विचारसे देखिये। ये व्यक्ति अपनी सतर्क दृष्टिसे उतने ही बल या शक्तिका नियंत्रण कर रहे हैं। इस कमरेमें कुछ विशेष यंत्र काम कर रहे हैं जिन्हें वाष्प-चक्र-यंत्र या स्टीम-टरबाइन कहते हैं। इन यंत्रोंकी सहायतासे ही कारखानेकी विशाल मशीनें आसानीसे चलने लगती हैं। यदि ये चक्रयंत्र न होते तो हम भापकी सहायतासे अपनी भीमकाय मशीनोंको चलानेमें कभी सफल न हुए होते। भापमें कितना बल होता है इसका भी हमें अनुमान न होता।

सबसे पहला चक्रयंत्र

इतिहासकार बताते हैं कि यद्यपि भापकी सहायतासे एंजिन चलानेका काम नया ही है, पर वाष्प-चक्रयंत्रका सबसे पहला विचार ईसासे २०० वर्ष पूर्वके लगभगका तो है ही। उस समय हीरो नामक यूनानीने एक एंजिन बनाया जिसमें एक खोखला गोला था, और जो अपने अक्षपर दो स्तंभोंपर टिका हुआ था।
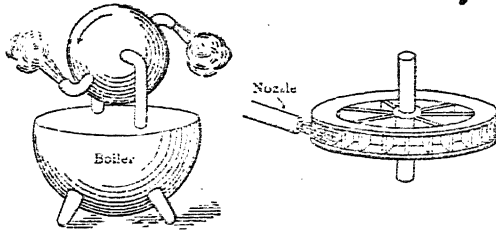
चित्र १

हीरोका वाष्प-चक्रयंत्र ब्रैंकाका चक्रयंत्र

इनमेंसे एक स्तंभ खोखला था और इसमें होकर गोलेमें भाप पहुँचती थी। यह भाप नीचेके 'बायलर' या देगमें बनती थी। इस गोलेके ऊपर और नीचे दो नलियाँ लगी हुई थीं जो दो भिन्न दिशाओंमें मोड़ दी गई थीं। इनमें होकर भाप बाहर निकलती थी। (चित्र १ देखो)। भापके निकलनेसे दोनों दिशाओंमें असमान दबाव पड़ता था। अक्षकी लम्ब दिशामें ऊपर और नीचे यह विभिन्न दबाव पड़ता था। फल यह होता था कि गोला अपने स्तंभोंपर नाचने लगता था। इस प्रकारके असमान दबावको "प्रतिक्रिया" कहते हैं और इसीलिए ऐसे यंत्रका नाम 'प्रतिक्रिया-चक्रयंत्र' है।
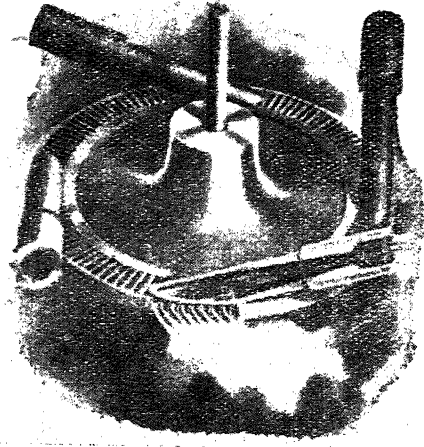
चित्र २

डि लावेलके चक्रयंत्रका पहिया नॉज़िल सहित

'प्रतिक्रिया' के अतिरिक्त चक्रयंत्रोंके संचालनमें 'धक्का' के सिद्धान्तपर बने यंत्र बड़े महत्वके हैं। धक्कावाला सर्व-प्रथम चक्रयंत्र इटली-निवासी ब्रैंकाने सन् १६२९ के लगभग बनाया था। इसमें एक पहिया होता है जिसके घेरेमें ब्लेड (फल) या तख्तियाँ लगी होती हैं। इन फलों या तख्तियोंपर भापकी तीव्र धार डाली जाती है जिसके धक्केके कारण पहिया घूमने लगता है। चित्र १ में दाहिने ओरकी आकृति देखिये।

इस खोजके बाद लगभग २५० वर्षतक इसी बातका प्रयत्न होता रहा कि 'प्रतिक्रिया' और 'धक्का' दोनोंके सिद्धान्तोंके योगसे कोई अति लाभदायक चक्र-यंत्र बनाया जाय पर इस कार्यमें कोई आशाजनक सफलता नहीं मिली।

सन् १८४८ में संयुक्त राज्य अमरीकामें एवेरी नामक व्यक्तिने एक पेटेंट चक्रयंत्रको लिया जो पहलेके यंत्रोंसे कहीं अच्छा था, और लोगोंको आशा होने लगी कि इन चक्रयंत्रोंका उपयोग लाभदायक कार्योंमें हो सकेगा? पर सबसे पहला वाष्प-चक्रयंत्र जिसका व्यापारिक महत्त्व कुछ हो सकता था डा० गुस्टाफ़ डि लेवलका था। डि लेवल महोदय स्वेडिन-निवासी थे और यंत्र-विद्यामें बड़े निपुण थे। सन् १८८२ में उन्होंने अपना वाष्प-चक्रयंत्र भाप-के धक्केके सिद्धान्तके आधारपर बनाया। यहाँ चित्र २ में उनका यह यंत्र दिखाया गया है। इसके देखनेसे मालूम हो जायगा कि भाप किस प्रकार यंत्रका संचालन करती है। दो वर्ष बाद सन् १८८४ में इँगलैंड-निवासी सर चार्ल्स पारसन्सने 'प्रतिक्रिया' सिद्धान्तपर एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण यंत्र बनाया जो उसके नामपर पारसन्स-चक्रयंत्र कहलाता है।

चित्र ३-४

बोस्टिन हाउस पारसन्सका ढोल-चक्रयंत्र

पानीवाला पेलटन-चक्र

पानीकी तीव्र धारा द्वारा चक्रयंत्र किस प्रकार चल सकते हैं, यह बात तो लोगोंको बहुत दिनोंसे मालूम है। पानीकी धारा पहियेमें लगे हुए चपटे तख्तोंपर पड़ती है और पहिया घूम जाता है। यदि पानीकी धारा बहुत तेज़ हो तो यह पहिया और अधिक तेज़ीसे घूमेगा। इस पहियेके घूमनेके बलसे आटेकी चक्कियाँ चलाई जा सकती हैं, बड़े-बड़े लट्ठे चीरे जा सकते हैं, और अनेकों काम निकाले जा सकते हैं।

शायद तुमने देखा हो, नहीं तो पढ़ा अवश्य होगा, कि कहीं-कहींपर पहाड़ी स्थानोंमें बड़ी ऊँचाईसे पानीका झरना नीचे गिरता है; इसे जल-प्रपात कहते हैं। हिमालयकी श्रेणियोंमें ऐसे झरने बहुत हैं। जितनी ऊँचाईसे पानी गिरेगा, उसके गिरनेमें उतना ही बल अधिक होगा। ऐसे स्थानोंमें संभव है तुम्हें एक मकान मिले जिसमें एक बड़ा नल लगा होगा। यह नल बड़ी ऊँचाईसे आया है, और उसका एक सिरा इस मकानके कमरेमें है। इस सिरेमें एक विशेप प्रकारका नॉज़िल बना होता है। इसमेंसे बहुत तेज़ीसे पानी निकलता है और इसकी धार एक ऐसे पहियेपर पड़ती है जिसके घेरेमें कटोरेनुमा बहुत-सी बालटियाँ बँधी होती हैं।
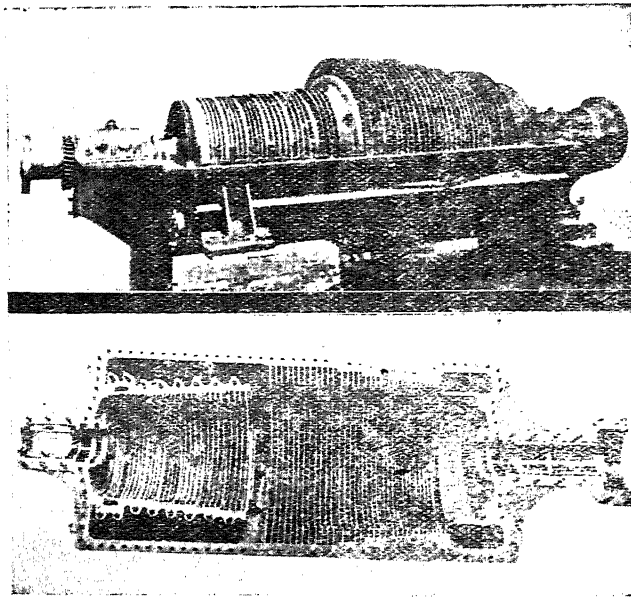
एक बालटीपर पानीकी तीव्र धार जैसे ही पड़ती है, पहिया घूम जाता है। दूसरी बालटी धारके सामने आ जाती है— इसपर भी पानीका ज़ोर पड़ा कि पहिया और अधिक ज़ोरसे घूमा। फल यह होता है कि धाराके आधारपर पहिया निरन्तर घूमता रहता है। इस पहियेके साथ गड़ारी और पट्टे लगा करके अन्य यंत्र भी घुमाये जा सकते हैं, और उनसे उपयोगी काम लिया जा सकता है। हमारे प्रान्तके उत्तर पश्चिमी भागमें पानीके इस बलके आधारपर ही बिजली तैयार की जाती है। यह पहियेवाला यंत्र धक्केके सिद्धान्त-पर बना हुआ जल-चक्रयंत्र है और इसे 'पेल्टन - पहिया' भी कहते हैं।

चित्र ५
मॉरिटेनियाका ढोल-चक्रयंत्र

जल-चक्रयंत्र-सा ही बाष्प-चक्रयंत्र

जैसा यह जल-चक्रयंत्र है, ठीक उसी सिद्धान्तपर बाष्प-चक्रयंत्र भी काम करता है। भाप भी उस प्रकार-की बहनेवाली वस्तु है, जैसे पानी। परन्तु इसमें एक भेद है। यह गैस है, और इसलिए नलीमेंसे निकलते ही जैसे इसपरका दबाव कम होता जाता है इसके आयतनमें वृद्धि होने लगती है, अथवा यह कहिये कि यह फैलने लगती है। नलके अन्दर और बाहरके दबावों-में जितना अधिक अन्तर आपको मिलेगा उतनी ही यह बलशाली होगी। पानीका बल इस बातपर निर्भर होता है कि वह कितने ऊँचेसे गिर रहा है; इसी प्रकार भापका बल इस बातपर निर्भर है कि नलीके अन्दर और बाहर भापपर जो दबाव पड़ रहे हैं उनमें कितना अन्तर है। भापके इस विशेष गुणके कारण जो वाष्प-चक्रयंत्र बनाया जायगा वह जल-चक्रयंत्रसे थोड़ा-सा भिन्न अवश्य होगा। इसके नॉज़िल और ब्लेड (फल) दूसरे प्रकारके होंगे। यहाँ चित्र २ में डि लेवलका जो वाष्प-चक्र यंत्र दिखाया गया है, वह उसके सन् १८८२ वाले चक्रयंत्रका संशोधित रूप है। भापके प्रभावसे यह कैसे संचालित होता है, यह बात चित्रसे व्यक्त हो जायगी। यह यंत्र एक पहियावाला है जिसके घेरेमें अनेक टेढ़े फल (वेन) लगे हुए हैं। नॉज़िलमेंसे भाप निकलकर इन फलोंपर पड़ती है, और जिस प्रकार फैलती है, वह भी चित्रमें दिखाया गया है। जबतक भाप नॉज़िलमें थी तबतक तो इसमें बॉयलर या ढेगका दबाव था पर नॉज़िलसे निकलते ही इसका दबाव कम हो जाता है और इसके आयतनमें वृद्धि होती है। आयतनकी वृद्धि होते ही इसकी गरमी कम हो जाती है। इस सबके कारण भापकी गति अति तीव्र हो जाती है और इसके प्रभावमें पहिया तेज़ीसे
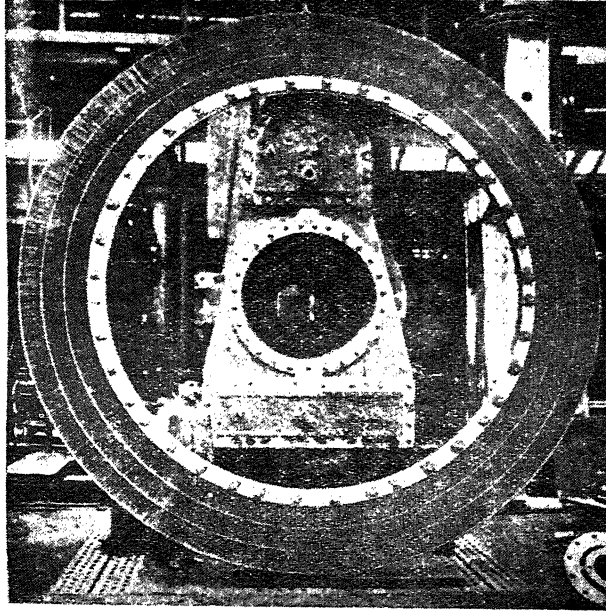
घूमने लगता है। हम कह सकते हैं कि भापकी गरमी ही गतिमें परिणत हो गई। यह गरमी बॉयलरके पानी-ने भट्टियोंसे ली थी, जितनी ही अधिक गरमी ली उतना ही बॉयलरमें भापका दबाव अधिक हुआ और नॉज़िलसे निकलते समय उतनी ही अधिक भाप फैली। जितनी ही अधिक फैली उतनी अधिक पहियेको गति प्राप्त हो गई। अब आप समझ गये होंगे कि गर्मीसे किस प्रकार गतिवाला काम लिया जा सकता है।

वाष्प-चक्रयंत्रके पहियेमें लगे हुए फल या वेन इस आकारके बनाये जाते हैं कि भाप बाहर जानेसे पूर्व ही पहियेको अधिक-से-अधिक बल दे दे। ऐसा न हो कि बहुत-सी भाप व्यर्थ बाहर निकल जाय और पहियेपर उसका कोई प्रभाव ही न हो।

चित्र ६
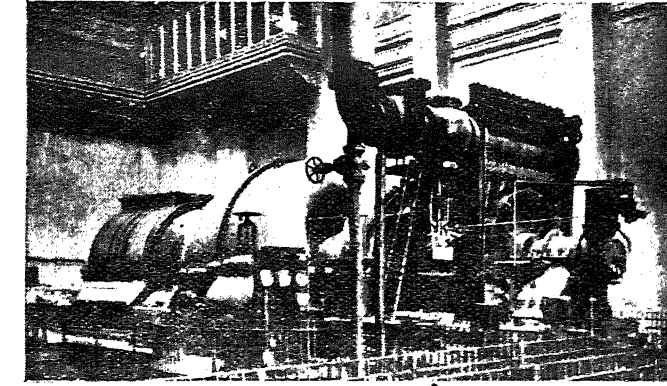
भीमकाय वाष्प-चक्रयंत्र जो बड़े नगरको प्रकाशित कर सकता है

गतिपर आधिपत्य

इस बातपर तो ध्यान दीजिये कि भाप नॉज़िलसे जिस समय निकलती है उस समय इसकी गति ४१ मील प्रति मिनट होती है, और चक्रयंत्रकी गति सिद्धान्त रूपसे इसकी आधी होनी चाहिए अर्थात् प्रति मिनट २० मील। पर इतनी गति यंत्र सहार नहीं सकता। इस गतिका अर्थ यह होगा कि एक छोटे-से चक्र-यंत्रको प्रति मिनट ३०००० चक्कर लगाने चाहिए। इतनी अधिक गतिको सँभालना और उससे उपयोगी काम लेना कठिन बात है। इस यंत्रकी गतिको कम करने-के लिए इसमें 'गीयर' लगा देते हैं जिससे गति तीस हज़ार चक्करके स्थानमें तीन हज़ार रह जाती है। यह गति भी इतनी अधिक है कि इससे केवल बड़े तेज़ डायनेमो या सेण्ट्रीफ्यूगल पम्प ही चलाये जा सकते हैं। इस उग्र वेगके कारण मशीनें ५०० अश्वबलसे अधिक बलकी नहीं बनानी चाहिए।

बहु-कक्षक चक्रयंत्र

चक्रयंत्रकी गतिपर नियंत्रण रखनेके लिए बहु-कक्षक यंत्र बनाये गये हैं। ये दो प्रकारके होते हैं— (१) पहले प्रकारके चक्रयंत्र वे हैं जिनमें भाप एक नॉज़िलमें फैलनेके बजाय कई नॉज़िलोंमें शनैः शनैः फैलती है। (२) दूसरे प्रकारके चक्रयंत्र वे हैं जिनमें घूमते हुए फलोंकी एक श्रृंखलाके स्थानमें घूमते और स्थिर दोनों फलोंकी श्रृंखलाका विधान होता है। एक फल घूमता, फिर दूसरा स्थिर, फिर एक घूमता, फिर एक स्थिर— इसी एकान्तर क्रमके फलोंकी आयोजना रहती है।

पहले प्रकारके यंत्रोंमें भापका ताप धीरे-धीरे एक-एक कक्षमें गतिमें परिणत होता है। इस प्रकार एक दम ही उग्र गति उत्पन्न नहीं होने पाती। दूसरे प्रकारके यंत्रोंमें पहियेका बल कई प्रकारकी फल-

श्रृंखलाओंमें विभाजित हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा किया जाता है कि दोनों प्रकारकी विधियोंको मिश्रित करके यंत्र बनाते हैं। जहाँ जैसी सुविधा होती है वैसा करते हैं।

धक्केके सिद्धान्तपर बने हुए चक्रयंत्रोंमें ब्लेड या फल तो घूमते हैं पर नॉज़िल स्थायी रहते हैं। लेकिन प्रतिक्रियाके सिद्धान्तपर बने चक्रयंत्रोंमें फल स्थायी होते हैं, पर नॉज़िल घूमनेवाले होते हैं। प्रतिक्रियावाले जल-चक्रयंत्रमें भी कुछ ऐसी ही बात है। इसके फल स्थायी होते हैं, और इनका उद्देश्य पानीको पहियेके ठीक भागपर पड़ने देना है जहाँपर 'वेन' नॉज़िलका काम देती हैं।

ढोल-चक्रयंत्र

सर चार्ल्स पारसन्सका आविष्कृत भाप-चक्रयंत्र जो 'वेस्टिंग हाउस पारसन्स'के नामसे बेचा जाता है, प्रतिक्रिया सिद्धान्तपर बना हुआ अतिप्रचलित चक्र-यंत्र कहा जाता है पर वस्तुतः इसमें प्रतिक्रिया और धक्का दोनों सिद्धान्तोंका उपयोग किया गया है।

फलोंकी एक पंक्तिसे युक्त पहियेके स्थानमें इस चक्रयंत्रमें एक लम्बा बेलनाकार ढोल होता है जो एक धुरीपर चढ़ा हुआ होता है। ढोलका व्यास पद-पदपर बढ़ता जाता है। मशीनके आकारके अनुसार लगभग तीन या चार पद होते हैं। पद-पदपर ढोलकी परिधिसे टेढ़े फलोंकी पंक्तियाँ बँधी रहती हैं जिनकी आयोजना डि लावेलके चक्रयंत्रके समान ही होती है। यह ढोल एक बड़े ढोलमें बन्द रहता है। यहाँ चित्र ३-४ में इस ढोलकी आकृति दिखाई गई है। नीचेवाले चित्रमें इस ढोलका खुला हुआ भाग दिखाया गया है जिससे इसके अन्दरका विधान स्पष्ट हो जायगा।

यह चक्रयंत्र भाप द्वारा इस प्रकार संचालित होता है—भाप वाल्व द्वारा ढोलमें जाती है, और यह वाल्व एक निरीक्षकके वशमें रहता है जो गतिको नियमित रखता है। नॉज़िलमें फैलनेके स्थानमें भाप सीधी स्थायी फलोंके पहले छल्लेमें जाती है और यहाँ यह घूमनेवाले फलोंकी प्रथम पंक्तिको धक्का देती है। इन फलोंका रूप ऐसा होता है कि इनपर आकर भाप फैलती है, और फैलते समय जो बल लगता है उससे फल नॉज़िलोंके समान घूमने लगते हैं। ज्यों-ज्यों भाप आगेके अन्य छल्लोंमें पहुँचकर फैलती है ढोल-यंत्रकी गति कुछ और बढ़ती जाती है। ढोल-चक्रयंत्र कम गतिसे भी चलाया जा सकता है, यह इसकी विशेषता है। तीन-पदोंके ढोल-चक्रयंत्रकी गति साधारणतः ३६०० चक्कर प्रति मिनिट है।

चित्र ५ में मोरीटेनिया ढोल-चक्रयंत्रका एक भाग दिखाया गया है। इसमें देखिये कि चक्रयंत्रके ढोल-में छोटे-छोटे फल किस विचित्रतासे लगे हुए हैं जो भापके उग्र बलको ग्रहण करनेके लिए तैयार हैं। इन-पर भाप ४८ मील प्रति मिनटके वेगसे पड़ती है। इस वेगसे भूमण्डलकी यात्रा ८½ घंटेमें पूरी की जा सकती है। यह चक्रयंत्र ७२० मील प्रति घंटेके हिसाबसे चक्कर लगाता है।

चित्र ६ में एक भीमकाय वाष्प-चक्रयंत्रका चित्र दिया गया है जिसके बलसे एक बड़े नगरभरमें रात-को बिजलीका प्रकाश हो सकता है। हमने इस लेखमें वाष्प-चक्रयंत्रके मोटे-मोटे सिद्धान्तोंका उल्लेख किया है। जबसे इन चक्रयंत्रोंका प्रचार हुआ है कारखानोंकी कायापलट हो गई है। यदि ये यंत्र न होते तो भापसे हम आज वह काम न ले सकते जो ले रहे हैं। इन यंत्रोंके आधारपर हमने भापपर प्रभुत्व जमा रक्खा है और भाप हमारी दासी हो गई है।

जुएँ

[ले०—डा० उमाशङ्करप्रसाद, एम० बी०, बी० एस०]

जुएँ बेपरके कीड़े हैं। खाना खानेकी विधिके अनुसार इनके दो प्रकार हैं—एक वे जो काटते हैं और जानवरोंके रोयें तथा परोंपर जीवित रहते हैं पर खून नहीं पीते हैं और जहाँतक पता लगा है इनके द्वारा कोई बीमारी नहीं फैलती है। जुएँकी दूसरी किस्म वह है जो खून चूसती है, खूनपर ही ज़िन्दा रहती है और बीमारी फैलानेमें बहुत बड़ा भाग लेती है।

जीवन-इतिहास

आदमियोंके शरीरमें पैदा हो जानेवाले जूएँ तीन किस्मके हैं। (१) ढील—जो सिरके बालोंमें (२) चीलर—जो कपड़ों और शरीरमें और (३) जो गुप्त भागके पास बालोंमें हो जाते हैं।

तीनों किस्मोंके जुएँ अंडेकी हालतके बाद ३ शक्लोंमें बदलते हैं और तबसे अंडा देनेके लायक होकर पूरे तैयार हो जाते हैं।

जूएँ अपने अंडे या लम्बे कपड़ोंमें या बालोंमें देते हैं। अंडा देनेके लिए सूखा कपड़ा, ऊन आदि ज्यादा पसंद करते हैं लेकिन रेशमपर भी अंडे देते हैं। अंडे कुछ लम्बाई लिये $\frac{1}{25}$ इंच लम्बे और खुरखुरी तहके होते हैं जो बालोंमें ज़ोरसे चिपके रहते हैं। हालका दिया अंडा करीब पारदर्शक होता है पर जैसे-जैसे अंडा बड़ा होता है, इसके रंगमें भी पीलापन आने लगता है। जब अंडेसे कीड़ा बाहर निकल जाता है तब भी अंडेका छिलका बालमें चिपका रहता है और बहुत कड़ा होता है। अंडेके छिलकों और मसाले (जिसमें यह छिलका बालमें चिपका रहता है) पर दवाइयोंका असर नहीं होता है और कोई भी दवाका घोल बालोंको या कपड़ोंको, जिसपर अंडा चिपका रहता है, खराब किये बगैर उसे नहीं अलग कर सकता है। मामूली तरहसे उस गरमी में, जो बदनके चमड़े और कपड़े वगैरह में होती है, अंडा ७ से १० दिनमें फूटता है; पर यदि अंडा ठंडी हालतमें रहेगा तब इसके फूटनेमें कुछ और ज़्यादा दिन लगेंगे। अंडे फूटनेके २ दिन बाद पहली केंचुल बदलते हैं, दूसरी दो दिन बाद और तीसरी ३ दिन बाद। इस तरह पूरे १६ दिन लगते हैं।

तीसरे केंचुलसे निकलकर पूरा कीड़ा बन जानेके २४ से ३३ घंटे बाद नया मादा-कीड़ा अंडा देने लगता है। इन अंडोंकी संख्या मादाकी ख़ुराक और गरमीपर निर्भर है। मामूली कुदरती हालतमें ४ से ५ हफ्तेतक कीड़ा रोज ४-५ अंडे देता है। इस तरह अनुकूल स्थितिमें १ मादा कीड़ा अपनी ज़िन्दगीमें चार हज़ार अंडे दे सकती है। मादा कीड़ेकी औसत आयु ३५ से ४० दिन है और नर कुछ कम दिन जीवित रहता है। अंडे ३२० श० गरमीमें आठ दिनमें तैयार हो जाते हैं। गरमी और सर्दीको बदलनेसे इसमें कुछ फ़र्क पड़ सकता है। इसलिए जो लोग रातको सोते वक्त अपना कपड़ा उतारकर सोते हैं उनके कम कीड़े पड़ेंगे पर जो लोग कपड़े बराबर पहने रहते हैं उन्हें कीड़े ज़्यादा तंग करेंगे। कपड़ोंको समय-समयपर ठंडा कर देने या ख़ूब धूपमें डाल देनेसे कीड़ोंकी शक्ति और संख्या बहुत कम हो जाती है।

जूएँ अंडेसे निकलते ही खाना खानेकी फिराकमें पड़ जाते हैं। बच्चा जुआँ अगर २४ घंटेमें कुछ ख़ुराक नहीं पा सकेगा तो मर जायगा पर जो जुआँ ख़ूब पेटभर ख़ुराक पा लेगा वह अगर अपने मेज़मानसे १० दिन अलग भी रहे तो भी ज़िन्दा रहेगा। जूएँ दिनभरमें कई बार खाते हैं। ज़्यादातर ये रातको खाते हैं क्योंकि उस वक्त इनका मेज़मान चुपचाप लेटा रहता है। जब इन्हें भूख बहुत सताती है तो इतना

ज़्यादा खा लेते हैं कि इनका पेट फट जाता है। खून चूसनेमें इनकी लार (थूक) चमड़ेमें लगनेसे चमड़ेकी खूनकी नसें फैल जाती हैं और खून ज्यादा वहाँ आने लगता है जिससे खून पीनेमें इन्हें बड़ी आसानी पड़ती है। लालची कीड़े तो खून चूसते जाते हैं और बीट करते जाते हैं जिसमें खूनके अणु बहुत रहते हैं क्योंकि जल्दीमें हज़म करनेका वक्त भी उनकी आँतोंको नहीं मिल पाता है।

छूत फैलना

जुआँ पड़े आदमीकी छूतसे, या ऐसे आदमियों-के कपड़ोंसे ही ये कीड़े फैलकर दूसरोंमें पैदा होते हैं। एक छूतवाले आदमीसे उसके कई दोस्तोंको छूत लग सकती है। लड़ाईमें पलटनोंमें यह बीमारी बहुत मिलती है। खासकर खाइयोंमें छिपे सिपाहियोंमें तो यह एक बलाकी बीमारी हो जाती है। आदमीको अगर बुखार होता है या वह मर जाता है तो जुएँ उसके बदनसे रेंगकर बाहर आ जाते हैं क्योंकि पहली हालतमें बुखारकी गरमी इनसे बरदाश्त नहीं होती और दूसरी हालतमें भूखके मारे खुराककी तलाशमें इन्हें दूसरी जगह जाना पड़ता है। कंघी या ब्रुशसे झाड़-नेसे जुएँ अपनी जगहसे बाहर निकाले जा सकते हैं। ज़मीनमें ४ इंचकी गहराईमें गाड़नेपर भी ये रेंगकर फिर सतहपर आ जाते हैं। हवा भी इन्हें एक जगहसे दूसरी जगह उड़ा ले जा सकती है। मामूली तौरपर कम्बल और चारपाइयोंमें जुएँ नहीं पाये जाते हैं अगर थोड़ी देर पहले जुएँवाला आदमी उन्हें न इस्तेमाल किये हो। कपड़ोंमें पड़े जुएँ रातमें एक ढेरसे कपड़ोंके दूसरे ढेरमें चले जायेंगे। घरमें ये जुएँ धोबीके कपड़ोंमें आ सकते हैं या रेलगाड़ीमें सफ़र करते वक्त होटलों-में, टैक्सी वगैरहमें छूतवाले यात्रियों द्वारा फैल सकते हैं।

ज़्यादातर जुएँ कपड़ोंके उन हिस्सोंमें पाये जाते हैं जो बदनसे बहुत सटे रहते हैं जैसे पाजामेकी रान-का हिस्सा, काँखका या गर्दनके पासका हिस्सा। नीचे पहननेके कपड़े जैसे बनियाइनमें और ऊपर पहनने-वाले कपड़े—दोनोंमें ही मिलते हैं। जिस आदमीके बदनमें जुएँ पड़े हों उसके किसी भी पहने कपड़ेमें जुएँ मिल सकते हैं। जुएँसे ग्रसित मनुष्यको ढूँढ़नेमें इस बातकी स्मृति रखनी चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि ये जुएँ बदनपरसे रेंगकर सरके बालोंमें या बदनके दूसरे हिस्सेके बालोंमें भी अंडे देते हैं। इस बात-को भूलनेसे कीड़ा दूर करनेमें पूरी सफलता नहीं मिल सकती है क्योंकि ऐसे आदमीके कपड़ों ही को दवाइओं द्वारा साफ़ करनेसे कुछ फायदा न होगा।

चीलर

बदनपर या कपड़ोंमें रहनेवाले जुओंको चीलर कहते हैं। अच्छी तरह ज़िन्दा रहकर अपनी औलाद बढ़ानेके लिए इस कीड़ेको मनुष्यके ख़ूनसे पेट भरना ज़रूरी है। आयुके अनुसार कीड़ेका क़द होता है। अंडेसे निकलनेपर इसका क़द आलपीनके सरके बराबर होता है पर पूरी आयु और क़दका कीड़ा १/६ इंच लम्बा होता है। जुएँके ऊपरका चमड़ा कड़ा, और चिकना होता है जिसके भीतर दवाइयाँ नहीं घुस सकती हैं।

इसके बदनके तीन भाग हैं—सर, सीना और पेट। सरकी बगलमें दो लम्बे मूँछकी तरहके हिस्से हैं, जिनसे टटोलनेका काम लिया जाता है। मुँहमें एक लम्बी सूईकी तरहकी चीज़ है जो चमड़ा छेदनेके काम-में आती है। यह सूई अन्दरसे खोखली होती है जिस-मेंसे खून चूसा जाता है। सीनेमें छः पैर लगे रहते हैं जिनके दूसरे सिरेपर एक बड़ा और तेज़ पंजा रहता है। पेटमें ६ या ८ धारियाँ होती हैं। आखिरी धारी-का हिस्सा मादा कीड़ामें दाँतेदार होता है और नरमें गोलाकार। मादाका पेट नरके पेटसे ज़्यादा चौड़ा होता है। मादाकी संख्या नरसे ज्यादा होती है। नर और मादा दोनों ही काटते हैं और बीमारी फैलाते हैं।

सिरके जुएँ

मामूली तौरपर सिरके ही जुएँ लोगोंमें देखनेमें आते हैं। इनका रहन-सहन, आदत वगैरह बदनमें मिलनेवाले जुओंकी ही तरह होता है। ये तादादमें कम अंडे देते हैं और इनकी आयु भी कुछ कम होती है। ज्यादातर ये बच्चोंमें पाये जाते हैं। लड़कियोंमें लम्बे बालके कारण और बूढ़ोंमें सुस्तीके कारण जुएँ ज़्यादा मिलते हैं। सिरके बालोंमें रहते हुए भी ये जुएँ बदनके दूसरे हिस्सोंमें भी मिलते हैं। स्कूलमें लड़कियोंकी छूतसे और एक ही कंघी या टोपीके इस्तेमालसे ये कीड़े फैलते हैं।

इनको दूर करना आसान है। इसके लिए साबुनसे बाल धोना, नहाना, कंघी करना और बाल छोटा रखना आवश्यक है। मिट्टीका तेल और सिरका या मिट्टीका तेल और जैतून या मीठा तेल फ़ायदेका है। फिनाइल २·५% या लाइसॉल १% पानीमें घोलकर सिरके बालोंमें १-२ घंटे लगानेसे भी लाभ होता है।

रानोंके बालमें रहनेवाले जुएँमें ऊपर दी गई बातें पाई जाती हैं। कमरके बालोंके अलावा सीनेके बालों या काँखके बालोंमें भी यह पाया जाता है। इसका अंडा बालकी जड़में रहता है और कीड़ा अंडेसे बाहर आते ही खाना खाने लगता है इसलिए बदनसे अलग करनेपर यह जल्द मर जाता है। मादा अपनी ज़िन्दगीमें करीब २५ अंडे देती है और अंडे २५ दिनमें फूटते हैं। सरायोंमें, वैश्याओंके यहाँ और हम्माममें यह छूतसे फैलता है। यह कीड़ा दूसरी बीमारियोंको नहीं फैलाता है। इससे बचनेके लिए बदनके बालोंको उस्तरेसे साफ़ कर देना चाहिए। यदि चमड़ेमें कुछ खुजली या जलन हो तो कोई ठंडी मरहम लगानी चाहिए।

जुएँ और उनसे बीमारियोंका फैलना

जुओंसे एक ख़ास बुखार "टाइफस" फैलता है। मियादी बुखार और ट्रेंच बुखार भी इनसे फैलते हैं। जब यह कीड़ा खून चूसता है तो बदनके चमड़ेमें बहुत बारीक छेद हो जाता है। इस कीड़ेके सबबसे बदनमें खुजली लगती है तब खुजलानेपर नाखूनसे खरोंचें पड़ जाती हैं। इन्हीं खरोंचों और सूराखोंमें जुओंकी बीट लग जाती है और उपर्युक्त बुखारोंके विशेष कीड़े, जो जुओंकी बीटमें रहते हैं, बदनमें घुस जाते हैं।

बदनपर जुओंके रहनेका असर आदमीकी सहनशीलताके अनुसार होता है। जिन आदमियोंमें जुएँ हमेशा ही पड़े रहते हैं, जैसा भिखमंगोंमें देखा जाता है, इन जुओंको लारका असर उनकी त्वचापर बहुत कम होता है पर; जिन आदमियोंमें कभी जुआँ नहीं पड़ता उनके बदनमें जुओंके काटनेसे चर्मपर बड़े ददोरे उभड़ आते हैं और जल-पुत्तियाँ बन जाती हैं। जुओंके काटनेसे भी हलका बुखार और त्वचापर दाने हो जाते हैं।

जुओंको मारना

जुओंको मारनेकी सबसे उत्तम विधि वह होगी जिसमें सिर्फ़ जुएँ और उनके अंडे ही न मरें बल्कि जुओंसे फैलनेवाली बीमारियोंके कीड़े भी खतम हो जावें। जुएँ और उनके अंडे ५५° श० की सूखी गरमीमें मर जाते हैं। मारनेके उपायोंमें गरमी और दवाएँ ही कामकी हैं।

गरमी :—सूखी गरमीका उपाय बहुत आसान है लेकिन जहाँ बहुत-से कपड़ों और सामानको साफ़ करना रहता है वहाँ यह विधि असफल रहती है क्योंकि सूखी गरमीमें कपड़ोंके ढेरमें घुसनेकी ताकत नहीं होती है। लेकिन सूखी गरमी चमड़े और रबड़के सामानके लिए बहुत लाभदायक है क्योंकि इस तरह ये चीजें खराब नहीं हो पाती हैं। सूखी गरमीसे भाप बहुत जल्दी कपड़ोंकी तहोंमें घुस जाती है और इस विधिसे कीड़ोंको मारनेमें कम समय लगता है और सफलता निश्चय होती है।

गरमीको काममें लानेके कई तरीके हैं। उबलता पानी, खास पीपा—सर्बियन बेरिल, भाप, धोबीका गरम लोहा, गरम भट्टी, गरम बक्स या आजकलकी भापकी कल (स्टीम डिसइन्फैक्टर) आदि काममें लाये जाते हैं।

७०°श० या १५८°फा० गरम पानीमें आधे घंटेतक कपड़ोंके रखनेसे कीड़े और अंडे अवश्य ही मर जाते हैं। यह उपाय थोड़े ही कपड़ोंके लिए ठीक है पर जहाँ शहरभरका काम है वहाँ इस विधि द्वारा सफलता नहीं मिलती है। ऐसी हालतमें भापसे कीड़े मारनेके खास बड़े-बड़े औज़ार बहुत अच्छे हैं। बहुत ज़्यादा सामान बहुत जल्दी और पूर्णरूपसे साफ़ किया जा सकता है।

बहुत भारी होता है। नीचेके हिस्सेमें बालू भरा एक गोल गद्दा लगा रहता है जिसपर यह पीपा रखनेसे भाप बाहर नहीं निकल सकती है। यह भाप एक बड़े लोहेके पानी भरे बरतनसे निकलती है और इसी बरतनपर बालूवाला गद्दा रक्खा रहता है। पानीका बरतन और पीपेका पेंदा दोनों भट्टीकी ईंटकी दीवारमें चुने रहते हैं। भाप बहुत जल्द बनकर तैयार होनी चाहिए। उन सब कपड़ोंको जिनके जुएँ मारना हों पीपेमें लकड़ीके पटरेपर रखकर ढकन अच्छी तरह बन्द कर दिया जाता है। भाप तेज़ीसे बनने लगती है और कपड़ोंको १ घंटेतक इस भापमें रहने दिया जाता है। इस तरीकेसे चमड़ा, रबड़ और सेलुलॉइडके सामानको छोड़कर और कपड़े साफ़ किये जा सकते हैं।

(१) धुआँ निकले की चिमनी
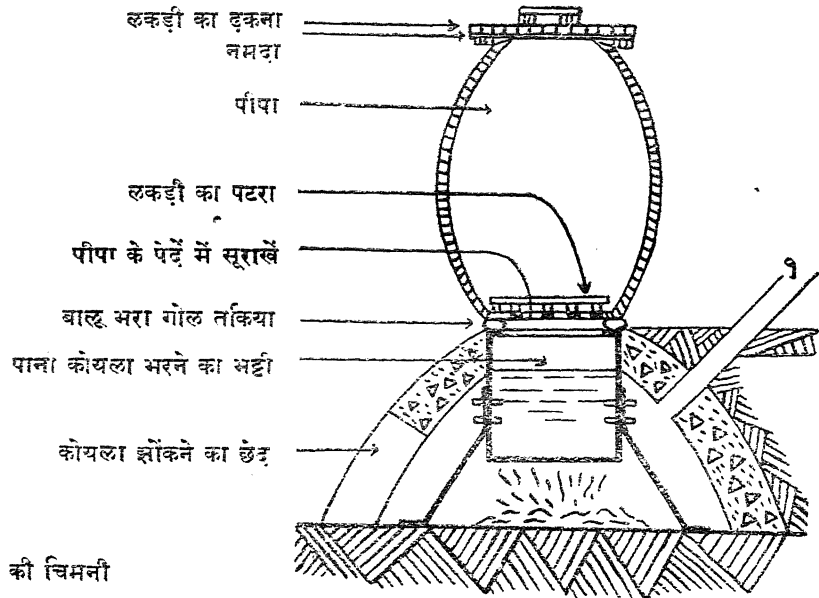
सर्बियन बेरिलसे भापके ज़ोर द्वारा बहुत अच्छी तरह काम किया जाता है। यह एक बड़ा पीपा है जिसके पेंदेमें बहुत-से छेद होते हैं और ऊपरका ढकना

रासायनिक दवाइयाँ दो बातोंके लिए काममें लाई जाती हैं। कपड़े और बदनके बालोंके अंडों और जुओंको मारनेके लिए या उनको दूर भगा देनेके लिए। जुएँ

दूर भगानेवाली दवाइयाँ बेकार ही रहती हैं क्योंकि ये पूरा काम नहीं करती हैं।

मिट्टीका तेल जुओंको मारनेमें बहुत सफल औषध है। नेपथेलीन और अमोनिया भी बड़े कामकी हैं। बाज़ारमें बिकनेवाले पाउडर-विशेषपर बहुत भरोसा नहीं करना चाहिए। ज़्यादातर उनकी बनावट इस तरहकी होती है—नेपथेलीन ९६ भाग, क्रिओरोट २ भाग और आइडोफॉर्म २ भाग। इनसे चमड़ेमें जलन होने लगती है।

कई दवाइओंका धुआँ भी काममें लाया जा सकता है लेकिन अनुभवसे यह मालुम हुआ है कि अधिकांश ये दवाएँ जैसे गन्धक आदि अंडोंको नहीं मार सकतीं हैं। साइनाइड गैसको खास औजारसे रुई और बड़े-बड़े कपड़ेकी गांठोंमें फैला देनेसे जूएँ, अंडे और दूसरे कीड़े मर जाते हैं। यह साइनाइडका धुआँ बहुत ज़हरीला होता है इसलिए इससे काम नहीं लिया जा सकता है।

गत महायुद्धमें फौजोंमें जुओंसे बचनेका बहुत टेढ़ा प्रश्न था। खाई वगैरहमें सिपाहियोंको बड़ी गन्दी हालतमें रहना पड़ता था और उनके कपड़ोंमें जुएँ बहुत ज़्यादा भरते थे। सभी पलटनें जुओंके द्वारा फैलनेवाली बीमारियोंसे, जैसे मोतीझरा बुखारसे, परेशान थीं। इन बातोंके कारण बदनमें बहुत खुजली मचती थी और फौजोंको कवायदमें चुपचाप खड़ा रहना मुश्किल हो जाता था। रातको अच्छी तरह आराम और नींद नहीं आ सकती थी जिससे दिनमें कड़ी मेहनत नहीं हो सकती थी।

सरबिया और रुमानियाकी फौजोंमें मोतीझरा बुखारसे बहुत ज़्यादा मौतें हुई थीं। जरमनीमें जगह-जगह पड़ाव बसे थे और फ़ौजको जुएँ मारनेकी तरकीबोंके बतलानेके बाद आगे बढ़नेका हुक्म मिलता था।

भयंकर व्रणोंका एक अचूक इलाज

[ले०—स्वामी हरिशरणानन्दजी]

कार्बेंकोलीनका प्रयोग

आज पाठकोंकी सेवामें एक ऐसा योग रख रहा हूँ जो कभी खाली नहीं जाता। ऐसे-ऐसे भयंकर व्रणोंको ठीक कर देता है जिसको अच्छे-से-अच्छे शल्य-चिकित्सक डाक्टर भी यह कहके छोड़ देते हैं कि यह केन्सर हो गया, नासूर हो गया, इसकी हड्डीमें ट्यूबरक्यूलोसिसके कीटाणु प्रवेश कर गये हैं, यह अब बच नहीं सकता, इत्यादि। यही नहीं, सबसे भयंकर व्रण कार्बेंकल या मधुमेहीका वह व्रण कहलाता है जो प्रायः पीठपर हड्डियोंके सन्धि-स्थानपर निकलता है जिसे अदीठ फोड़ा, औंधा फोड़ा, या शराविका व्रणमाये भी कह देते हैं—वह भी इससे ठीक हो जाता है। इससे ऐसे व्रण भी ठीक हुए हैं जो व्रण एकाएक वेगसे बढ़ते हैं।

अपना एक अनुभव

एक रोगीके पेटपर कील चुभ गई और उस कीलके चुभनेसे वहाँ भयंकर शोथ उत्पन्न हो गया। पाँच छः दिनके बाद जहाँ कील चुभी थी वहाँ क्षत हो गया और वह क्षत रात-रातमें एक रुपयेके बराबर हो गया। दूसरे दिन तिगुना हो गया। उस क्षतके किनारे उभरे हुए थे। जो माँस त्वचा गल रही थी उसका वर्ण नीला पड़ता जाता था। जहाँ-जहाँ नीलिमा फैलती थी उतना

भाग अगले दिन गल जाता था। इस व्रणमें दाह व वेदना भी भयंकर थी। डाक्टरोंने कई प्रकारके अवरोधक उपाय किये, गलनेवाला माँस काटकर अनेक विषनाशक उपचार किये ; पर वह बढ़ता ही गया। वह लगा पैरोंके ऊपरकी ओर बढ़ने। तब तो डाक्टर घबराये और लगे कहने, लात कटवा दो वरना मृत्यु सम्भावित है। वह मेरा पुराना मरीज़ था पर वह यह समझता था कि स्वामीजी तो वैद्य हैं, जर्राहीका काम थोड़े ही करते हैं। उनके पास व्रणोपचारके साधन कहाँ ? बहुत हदतक उसकी बात ठीक भी थी। हमारे धर्मार्थ औषधालयमें मलहमतक ढूँढ़े नहीं मिलेगा। उसने अपना आदमी भेजा और मुझे बुलाकर मेरा परामर्श लिया। मैंने व्रण देखकर उसको विश्वास दिलाया कि लात बिना कटाये ही तुम्हारा व्रण ठीक हो जायगा। तीन दिन मेरा मलहम लगाओ; यदि काम न हो तो लात कटवा डालना।

मलहमने जादूका काम किया, पहिले ही दिन दाह व दर्द कम हो गये। रोगी आरामसे सोया। बस विश्वास बँध गया और २५ दिनमें बिलकुल ठीक हो गया। इतनी लम्बी-चौड़ी व्याख्या करनेकी या मलहमकी तारीफ करनेकी इसलिए आवश्यकता हुई कि पाठक समझ लें कि यह मलहम साधारण व्रणके लिए नहीं है, प्रत्युत उन भयंकर व्रणोंके लिए है जिन्हें डाक्टरतक उस्ताद राजी करनेमें असमर्थ रहते हैं। जो वैद्य इसे बनावेंगे इच्छित धन सौरयश दोनों ही प्राप्त करेंगे। यह मलहम मेरी पेटेण्ट दवाओंमेंसे है। अचूक है। रामवाण है। इसका नाम हमने कार्बंकोलीन रक्खा है।

कार्बंकोलीनका योग

बिच्छू बड़े २ अदद या २ नग, गेहूँ, २ तोला, अफीम ३ माशे, सरसोंका तेल १० तोला। तेलको अग्निपर चढ़ा दें। जब तेल धुआँ देने लगे, उसमें बिच्छू, गेहूँ और अफीम डाल दें। जब तीनों जलकर काले हो जायँ, उतार लें। उसी कढ़ाईमें खूब बारीक मलहम-सा बनाकर बोतलमें भरकर रख लें। बाहर जख्म हो तो उसकी पाक राध साफ करके इस तेलमें बत्ती बनाकर नासूरकी जड़तक पहुँचा दें। दो समय नहीं तो एक समय ही मलहम इस तरह अवश्य लगाया जाय। ज़ख्मको कार्बोलिक लोशन, मर्कत लोशन, नीमके काढ़े आदिसे साफ करनेसे शत-प्रति-शत क्षत राजी होंगे। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हड्डीका खराब हुआ भाग भी पुनः ठीक हो जाता है और जो माँस खराब होता है वह गलकर निकल जाता है, तथा उसके स्थानपर जो नया माँसांकुर आता है, इतना कठोर व दृढ़ होता है कि उसपर कीटाणुजन्य विष या स्वयम् कीटाणुका कोई प्रभाव नहीं होता। अद्भुत चीज़ है।

मूँगफलीकी खेती

[कृषिविभागका एक बुलेटिन]

आवश्यकता और प्रयोग

मूँगफली तेलकी फ़सलोंमें एक मुख्य फ़सल है। इस फ़सलसे गन्ना, कपास और आलूकी तरह फ़ायदा होता है। धनवान और ग़रीब दोनों इसको खानेके काममें लाते हैं। इसका तेल खाने और साबुन बनानेके काम आता है। इसकी खली जानवरोंको बहुत पुष्टकारक होती है। गन्ना और आलूकी फ़सलोंमें इसकी खादसे बहुत फ़ायदा होता है। इसकी पत्तियाँ जानवरोंको बतौर चाराके खिलाई जाती हैं। यह एक फलीदार पौधा है और दूसरे फलीदार पौधोंकी तरह

इसकी जड़ोंमें भी वायुसे नोषजन (नाइट्रोजन) खींच लेनेकी ताक़त होती है जिससे इसकी जड़ें ज़मीनको नोषजन पहुँचाकर शक्तिशाली बनाती हैं। गन्ना, कपास, गेहूँ और बाग़की फ़सलोंके प्याज, मिर्च और शकरकन्दके साथ यानी चक्र फ़सलसे चनाकी जगह इसको बोनेसे यह भूमिको अधिक शक्तिशाली बना सकती है। यह फ़सल खरीफमें जून या जुलाईमें बोई जाती है और अक्टूबर व नवम्बरमें जातिके अनुसार काटी जाती है। इसकी खेती पच्छिमी प्रान्तोंमें अधिकतर होती है और छोटी-छोटी क्यारियोंमें इसकी खेतीका चलन बाग़की फ़सलोंकी तरह इस सूबेभरमें है। यह दो प्रकारकी होती है :—

(१) ज़मीनपर फैलनेवाली जातियाँ जिनका दाना बड़ा होता है और देरमें पककर तैयार होता है जैसे बम्बई बोल्ड (बड़ा जापानी) बेरारी व रायपुरी, कोरा मंडल, मशीन शेल, मुजम्बिक, मोरेशस और पांडेचरी।

(२) गुच्छेवाली या सीधी खड़ी जातियाँ जिनका दाना छोटा होता है और जल्द पककर तैयार हो जाता है जैसे खानदेश, नेटाल (स्पेनिश पीनट), रेड नेटाल (छोटा जापानी) और अकोला नम्बर १०।

जलवायु और वर्षा

इस फ़सलके पकनेके समयतक गरम और नमीदार जलवायु और पालेकी अनुपस्थिति अच्छी उपजके लिए बहुत आवश्यक हैं। इसकी खेती उन जगहोंमें, जहाँकी वर्षा बीस इंचसे कम और पचास इंचसे ज़्यादा नहीं है. हो सकती है। इस फ़सलको जमनेके समय और दाना पड़नेके समय नमीकी काफ़ी आवश्यकता होती है; लेकिन जब फलियाँ पक जायँ उस समय भूमिमें बहुत कम नमीकी आवश्यकता होती है; वर्षा और सिंचाईसे उस समय अधिक हानि होती है क्योंकि बीज दूसरी बार उगना आरम्भ हो जाता है।

पृथ्वी

इसकी फ़सल हल्की दूमट और पानी न ठहरनेवाली भूमिमें हो सकती है। मटियार और भारी दूमट इसके लिए ठीक नहीं हैं क्योंकि फलियाँ सरलतासे अन्दर नहीं घुस सकती हैं और इसके सिवा खोदाईका ख़र्चा अधिक हो जाता है। यह फ़सल पानीसे भर जानेवाली और चूनेका अंश कम होनेवाली भूमिमें अच्छी नहीं होती है।

खेतकी तैयारी

इस फ़सलके लिए पिछली फ़सल काटते ही गहरी जुताई कर देना चाहिए और बादमें जुताइयाँ करके अधिक बारीक और मुलायम खेत तैयार कर लेना चाहिए। ऐसा करनेसे बहुत अच्छा जमाव होगा। आरम्भिक जुताइयोंमें चूना डालनेसे अधिक लाभ होता है। यदि यह मामूली प्रकारकी भूमिमें दूसरी फ़सलोंके चक्र फ़सलमें बोई जाय तो पाँसकी कोई आवश्यकता नहीं होती परन्तु तब भी पाँस देनेसे उपज बढ़ सकती है।

बीज

फलियोंको बोनेके दो-तीन दिनसे पहिले न छीलना चाहिए परन्तु इस बातका ध्यान रहे कि बीजके लाल छिलकेको कोई हानि न पहुँचे। बीज हृष्ट-पुष्ट ताज़ा और कीड़ोंसे न घुना होना चाहिए। बड़ी जातिकी मूँगफलीका बीज प्रति बीघा खेतमें बोनेके लिए १५-२० सेर और छोटी जातिकी मूँगफली और अकोला नं० १० का बीज २५—४० सेरतक, लेना चाहिए। ३० सेर बड़ी जातिकी फलियाँ छीलनेसे २० सेर बीज और ५० सेर छोटी जातिकी फलीसेंसे ४० सेर बीज मिलेगा।

बोनेका तरीक़ा

बीज निम्नलिखित रीतियोंसे बोया जा सकता है :—

(१) बीजको छिड़कके जोताई कर देना।
(२) हलके पीछे कूँडमें बीज बोना।
(३) थोड़े क्षेत्रफलके लिए खुरपीसे गाड़ना।
(४) ड्रिल मशीनसे बोना।

ऊपर लिखी हुई रीतियोंमेंसे बीजका गाड़ना सबसे अच्छा है यद्यपि इससे किसी क़दर काम देरमें होता है और ख़र्च ज़्यादा होता है। इस ढंगको प्रयोगमें लानेसे बीज तिहाई डालना पड़ता है और फ़ासला दो पौधोंके बीचमें बराबर रहता है जिससे बादमें निकाई और गुड़ाईमें आसानी होती है। साधारणतया मूँगफलीके पौधोंके बीचका फ़ासला ६ इंचसे ९ इञ्च और दो लाइनोंके बीचका फ़ासला १२ इञ्चसे १८ इञ्चतक रहता है। यह फ़ासला आमतौरसे न फैलनेवाली खड़ी जातिके वास्ते भी काफ़ी न होगा, इसलिए फैलनेवाली जातिके लिए दो लाइनोंके बीचका फ़ासला २ से २॥ फ़ुटतक होना चाहिए और न फैलनेवाली जातिके लिए १॥ फ़ुटतक होना चाहिए। खेतमें बोनेके समय ६-८ इञ्चकी गहराईतक नमी होनी चाहिए। बीज ३ इंच गहरा बोकर मिट्टीसे तुरन्त ढक देना चाहिए। जबतक खेत उग न जाय और पौधे ज़मीनसे ऊपर अच्छी तरह न आ जायँ, खेतको दिनमें गिलहरी और चिड़ियोंसे, और रातमें गीदड़, सूअर और साहीसे बचाना चाहिए। लगभग १५ दिनतक बचानेकी आवश्यकता होगी यद्यपि जमाव ७ दिनमें हो जाता है।

सिंचाई

यदि फ़सल मईके अन्त या जूनके आरम्भमें वर्षाके पहले बोई जाय तो खेतको बोवाईके ४ या ५ दिन पहले सींचना चाहिए। उसके बाद हल या काँटेसे जोतकर पाटेसे खेतको बराबर करके बोनेके लिए तैयार करना चाहिए। अगर बोवाई वर्षाके बाद हो, तो सिंचाईकी कोई आवश्यकता नहीं है। जब पत्ते सूखते दिखाई दें तो सिंचाई कर देनी चाहिए और उसके बाद ज़मीन गोड़कर भुरभुरी कर दी जावे; प्रत्येक पक्षमें वर्षा १ से २ इंच (फ़सलको) काफ़ी होगी। अगर कई दिनतक पानी न बरसे तो सिंचाई करना आवश्यक है, क्योंकि ज़मीन खुश्क होनेपर दीमक लग जाती है। ज़मीनमें फली पड़ते समय काफ़ी नमी होना आवश्यक है।

बोनेके बाद गुड़ाई

गुड़ाई खुरपी या कल्टीवेटरसे हर दो सप्ताहके उपरान्त और बोनेके कोई दो महीनेतक करनी चाहिए। इससे खर पतवार कम होता है और भूमि ढीली रहनेकी वजहसे फलियोंको बढ़नेके लिए आसानीसे मौक़ा मिलता रहता है और दाना अच्छा पड़ता है।

खोदाई

बोनेके एक महीना पश्चात् पौधोंमें फूल आना आरम्भ हो जाता है और फलियाँ बनने लगती हैं और जातिके अनुसार फ़सल ३ से ६ माहमें काटनेके लिए तैयार हो जाती है और छोटे दानेवाली सीधी गुच्छेदार क़िस्मकी जातियाँ बनिस्बत बड़े दानेवाली क़िस्मके जल्दी पककर तैयार हो जाती हैं। जब फलियाँ बनना आरम्भ हो जायँ उस समय सूअर, साही, गीदड़से बचाना बहुत आवश्यक सोता है। मूँगफलीकी खोदाईमें सबसे अधिक ख़र्चा व मेहनतकी आवश्यकता पड़ती है। खोदाईका तरीक़ा पृथ्वीकी हालत, जलवायु और जातिपर निर्भर है। आमतौरसे फावड़ेसे खोदकर या हल चलाकर पीछेसे फलियाँ चुन ली जाती हैं। काँटेदार कुदाली फलियाँ खोदनेके लिए बहुत अच्छी सिद्ध हुई हैं। फैलनेवाली मूँगफलीकी क़िस्मके तने व शाखें पहिले काट ली जाती हैं और बादमें फलियाँ खोदी जाती हैं। लेकिन गुच्छेवाली जातिका पूरा पौधा खोदा जा सकता है जिसके साथ फलियाँ शाखोंमें लगी हुई ऊपर आ जाती हैं। पौधे १ या २ दिन खलिहानमें सुखाकर गट्ठे बना

लिये जाते हैं और उन गट्ठोंको किसी सख्त ज़मीनपर कूटकर फलियाँ अलग कर ली जाती हैं। जब खोदाई हल या हैरोसे की जाती है उस समय फलियाँ हाथसे चुन ली जाती हैं; और पत्ते जानवरोंके खानेके काममें लाये जा सकते हैं। पत्तियाँ और शाखें, हल चलानेके पहिले काट ली जाती हैं। फलियोंको लगभग एक सप्ताह धूपमें सुखाकर बोरोंमें भर लिया जाता है। मूँगफलीकी खोदाईमें १५ आदमी खोदनेके लिए और ७५ आदमी फलियोंके चुननेके लिए आवश्यक होते हैं।

पैदावार और खर्च खेती

इसकी पैदावार खेतकी शक्ति, खाद और मूँगफलीकी जातिपर निर्भर है। आमतौरसे सूखे चारेकी पैदावार २८ मन और फलियोंकी पैदावार १० मनसे २० मन प्रति एकड़ होती है। अधिक-से-अधिक इसकी पैदावार अच्छी बढ़ी हुई फ़सलसे ४० मनके क़रीब हो सकती है। इस फ़सलके लिए खर्चा ऋतु स्थान और मज़दूरी वग़ैरहके अनुसार ३०) से ५०) रुपया तक होता है। इसका भाव यदि ४) से ५) रुपये प्रति मन हो तो इसमें पर्याप्त मात्रामें लाभ होनेकी गुंजाइश रहती है।

बीमारी और कीड़े

फफूँदी फंगसकी बीमारियोंमें टिक्का बीमारी अधिकतर मिलती है और कीड़ोंमें दीमक अधिक हानि पहुँचाती है। अच्छी जुताई, चक्र फ़सल और अच्छे बीजोंसे यह बीमारी रोकी जा सकतीहै।

निम्नलिखित दशाओंमें मूँगफलीकी खेती नहीं करनी चाहिए :—

(१) जहाँपर वर्षाका औसत २० इंचसे कम हो और ठीक समयपर न हो।

(२) जहाँ भूमि नीची और पानी भर जानेका डर हो या जहाँ बिल्कुल चिकनी या बहुत भूड़ हो।

(३) जहाँ दीमक अधिक लगती हो।

(४) जब आसपास सूअर, गीदड़ और साही अधिक हों।

कुत्ता काटना

कुत्तेके काटे हुये स्थानको तुरंत ५ प्रतिशत कारबोलिक लोशनसे भली भाँति धो दो। तब दाँत लगे स्थान को लाल किये लोहेसे भली भाँति दाग दो, या तूतिया, सिलवर नाइट्रेट, या पोटैसियम परमैंगनेटसे रगड़ कर जला दो। फिर उसी स्थानपर साफ़ पट्टी बांध दो और कुत्ते काटने के इलाज के अस्पतालमें रोगीको तुरन्त ले जाओ। यदि कुत्ता पागल होगा (नीचे देखो) तो विशेष चिकत्सा करानी पड़ेगी।

जिस कुत्ते ने काटा हो उसे मारो नहीं; पकड़ कर बांध रक्खो। कुत्ते को दस दिन तक रखने से मालुम हो जायगा कि कुत्ता पागल था या नहीं परन्तु यदि शक हो कि कुत्ता पागल है तो कुत्ते को मार कर उसे या उसका सिर कुत्ते काटनेकी दवा करने वाले अस्पतालमें शीघ्र भेजो जिससे सड़ कर वह खराब न हो सके। अस्पतालमें जांच करने से तुरन्त ठीक पता लग जायगा कि कुत्ता पागल था या नहीं और कुत्ताके पागल होने पर उचित दवा वहाँ हो सकेगी। इससे मनुष्य मृत्युसे बच जायगा।
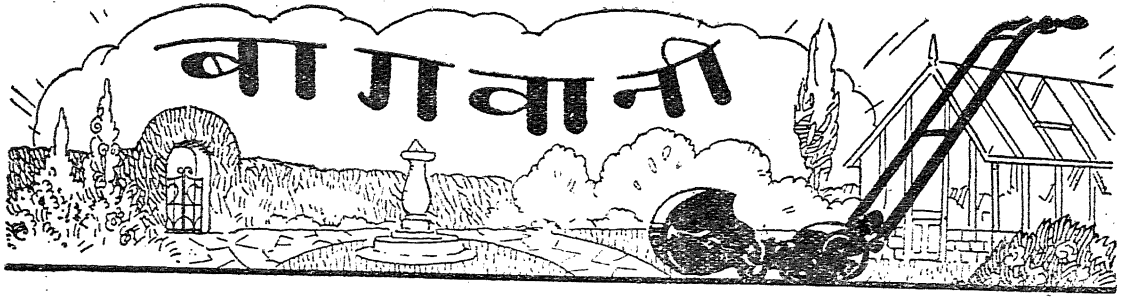
हमारे देशमें दहलियोंकी बाग़वानी

विलायती जातिके सुंदर फूल

[ले०—श्री राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी०, एल० टी०]

जलवायु

'दहलियों' के अतिरिक्त बहुत कम ही पौधे ऐसे होंगे जो सरलतापूर्वक उगाये जा सकें। मुझको यह देखकर आश्चर्य होता है कि अधिकांश लोग अधिकता-से इन्हें क्यों नहीं उगाते। ये लगभग सभी प्रकारकी मिट्टीमें तथा सभी भौगोलिक ऊँचाइयोंपर सफलता-पूर्वक उग सकते हैं; तथा लङ्का जैसी उष्ण जलवायुमें जहाँ शीत ऋतु नहीं होती, ये वर्षमें तीन बार लगाये जा सकते हैं। या तो शुष्क जलवायुमें या वर्षा ऋतुमें ही फूलते हैं, केवल विशेष अतिवृष्टि ही इनकी उगान-में बाधा डाल सकती है।

शुष्क जलवायुमें इनको एक उत्तम छनी मिट्टी तथा निरन्तर सिंचावकी आवश्यकता पड़ती है। मान-सून कालमें अथवा एक नम ज़िलेमें इनके लिए जल वाहक पृथ्वी तथा नर्म प्रकाशीय स्थानकी आवश्यकता है। ये लगभग प्रत्येक ऋतुमें ही उग सकते हैं। केवल इनको आँधियोंसे पूर्णरूपसे रक्षाकी आवश्य-कता होती है।

रोगोंसे रक्षा

कीड़े और रोग भी इनको अल्पमात्र ही तङ्ग कर पाते हैं। यदि स्लग व स्नेलका भी आक्रमण हो तो भी इनके कन्दलोंको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँच सकती और वे पुनः बादको निकल आते हैं। मुझे ऐसा विश्वास है कि चीटियाँ इनकी भयंकर शत्रु हैं, कारण कि ये कन्दलोंको जिनमें थोड़ी-बहुत शर्करा रहती है खा जाती हैं। मैं भाग्यवान हूँ कि मैं एक ऐसे ज़िलेमें रहता हूँ जहाँ ये पूर्णतया हानि नहीं पहुँचा सकतीं, परन्तु मैं यह अवश्य सत्य प्रतीत करता हूँ कि यदि पौधा लगानेके पूर्व ही कोई उत्तम कीट-संहा-रक रासायनिक द्रव्य मिट्टीमें खोदकर मिला दिया जाय तथा पोटाश-पर मॉँगनेतके घोलसे कभी-कभी सींच दिया जाय तो यह रोग सरलतापूर्वक पराजित किया जा सकता है।

कम खर्चमें सुन्दर फूल

मुझे ऐसा विश्वास है कि लोगोंमें ऐसा विचार फैला हुआ है कि दहलिये पौधोंकी कृषिमें व्यय अधिक होता है और यह कि इन पौधोंको बाहरसे लाये गये कन्दलोंसे, जो विस्तार हुए बिना तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, उगाना चाहिए। मैं यहाँ सानुरोध कहना चाहता हूँ कि ऐसा नहीं होता, कारण कि ये सरलतापूर्वक सस्ते बीजोंसे उगाये जा सकते हैं तथा यदि विचार-

पूर्वक चुनाव एवं वितरण किया जाय तो इनकी बड़ी अच्छी जातियाँ प्राप्त हो सकती हैं। यदि सावधानी-से चुने गये अल्प कन्दल एक प्रसिद्ध दुकानसे मँगाये गये हों ; और इस बातका स्मरण रक्खा जाय कि यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि सदा अधिक दाम-वाले ही अति उत्तम होते हैं, तो ये अल्प सावधानी-से ही जलवायुके अनुकूल किये जा सकते हैं तथा बढ़ाए जा सकते हैं। (इन दोनों अथवा किसी एक नियमके अनुसार सुन्दर दहलियोंका एक उत्तम समूह शीघ्र ही उगाया जा सकता है।)

अनुभवकी बात

मेरे विचारमें इन दहलियोंके साथ वैसा ही व्यव-हार करना जैसा कि विलायतवाले अपने यहाँ करते हैं अर्थात् कन्दलको निकालकर और शुष्क कर विश्रामकाल-तकके लिए उनको जमा रखना, बड़ी भारी त्रुटि है। विलायतमें यह विश्राम काल हठात् वहाँकी जलवायु-सम्बन्धी अवस्थाओंके कारण होता है। कारण कि मूलों-को हर प्रकार कोहरोंसे बचाना आवश्यक है परन्तु यहाँ-की जलवायुके लिए ऐसा करना केवल व्यर्थ ही नहीं वरन् हानिकारक है। कुछ अधिक समयतक रक्खे रहनेके कारण कन्दलें बहुधा सड़ जाती हैं अथवा इतनी शुष्क हो जाती हैं कि वे व्यर्थ समझी जाती हैं। इसके अतिरिक्त यदि सावधानीके साथ और लेबिल लगाकर न जमा रक्खी जायँ, तो इसमें आश्चर्य नहीं कि उनमेंसे बहुत सी अच्छी तो खो जावें अथवा विशेष निम्न श्रेणी-की जातियोंमें मिलजुल जायें। जब एक बार शुष्क-कर ली जायँ तो यह आवश्यक है कि कन्दलोंको मिट्टीमें लगानेके पूर्व ही उगने दें, कारण कि ऐसा न करनेसे उनमें पृथ्वीके भीतर उगना आरम्भ होनेके पूर्व ही सड़नेकी प्रवृत्ति आ जाती है।

मूलोंको खोदकर बाहर निकाल लें तथा विभाजित करके उनको पुष्प आनेके समयके पूर्णरूपसे बीत जाने-के उपरान्त फिर शीघ्र ही लगा दें तो यह सब कठि-नाइयाँ सरलतापूर्वक दूर हो जाएँगी। ऐसा जान पड़ता है कि अल्प विश्राम जो इस प्रकार उनको मिले जाता है यही उनके लिए सब कुछ है जिसकी उनको आवश्यकता है। पुराने मूलोंको विभाजित करनेमें एक शक्तिवान तनेको किसी चीज़से दो-से चार स्वस्थ तरुण कन्दलों सहित तोड़ लो व काट लो और समस्त कोमल टहनियों और व्यर्थ कन्दको काटकर दूर कर दो। ये शक्तिवान तरुण विभाजित पौधे शीघ्र ही बढ़ना आरंभ कर देंगे, नये डंठल पुराने डंठलोंके आधारपर शीघ्र निकलने लग जावेंगे। बिना डंठलके कन्दल बढ़ान आरम्भ करनेमें अधिक समय लेते हैं तथा बहुत देरमें पुष्प लाते हैं अतः उनको पृथक् लगाना चाहिए। किसी पुराने मूलको निकालनेके पश्चात् दो-तीन अथवा अधिक नवीन पौधोंमें विभाजित कर देना चाहिए। इस प्रकार मैंने अब दहलियोंको चार-से-पाँच वर्षतक उगाया है। पौधे अब भी वैसे ही शक्तिवान हैं तथा पुष्प भी वैसे ही दीर्घ हैं जैसा कि मैंने प्रथम उनको लगाया था। हमारे पास सबसे उत्तम प्रकारकी एक बड़ी संख्या है जिसका प्रत्येक पौधा एक प्राचीन मूलसे ही उत्पन्न हो गया है।

किस प्रकार लगावें ?

विलायतमें पुराने कन्दलोंको दूसरे वर्ष व्यवहारमें नहीं लाते। पौधोंकी उगान आरम्भ हो जानेपर तरुण टहनियोंको कलम रूपमें लघु गमलोंमें लगा देते हैं और तबतक लगा रहने देते हैं जबतक कि तरुण कन्द न निकल आएँ और फिर पुराने मूलको फेंक देते हैं। ऐसा ज्ञात हुआ है कि यदि पुराने मूलको व्यवहारमें लाएँ तो पुष्प छोटे-छोटे निकलते हैं तथा पौधा कोमल होता है। ऐसा यहाँ भी हो सकता था, परन्तु मेरे विचारमें टहनियोंके मूलोंको विभाजित करनेका मेरा नियम इस जलवायुमें वैसा ही प्रभाव रखता है जैसा-कि विलायतमें तरुण डण्ठलोंमें कलम लगाना। और इसमें अनेक लाभ हैं। कारण कि पौधे जहां वे

फूलनेको हैं ठीक वहीं रक्खे जाते हैं; कलमोंकी भांति लगाना तथा उखाड़कर फिर दूसरे स्थानपर लगाना नहीं पड़ता। वे अति शीघ्र पुष्प देते हैं और यह नियम निश्चयात्मक तथा ठीक है कारण कि इस प्रकार निस्सन्देह बहुत कम कोई कन्द सड़ता हो।

एक अधिक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी बागबानी सम्बन्धी पत्रसे लिया गया निम्न लिखित आधुनिक उद्धरण मेरे विचारमें इस बातको कि जो कुछ मैंने विश्राम करनेवाली दहलियोंके कन्दलोंके बारेमें कहा है प्रमाणित करेगा! "यदि शरदऋतु विशेष शान्त हुई तथा बगीचा छायादार हुआ तो यह सम्भव है कि कुछ दहलिए बाहर जीवित रहजायें। परन्तु निस्सन्देह ऐसे उत्तम भागपर जुआ खेलना बुद्धिमानी नहीं है तथा अनुभव शील माली कन्दलोंको शीत ऋतुकी भयंकरता के उपस्थित होनेके पूर्वही उठा लेता है, और उनको किसी कोहरेसे रक्षित स्थानपर जमाकर लेता है। कोहरेसे रक्षा करना परम आवश्यक है"। आगे कहा गया है। "समस्त जमा किए हुए कन्दलोंकी समय समयपर सावधानीके साथ अवश्य परीक्षा होनी चाहिए जिससे यह ज्ञात हो जाये कि उनमें कोई सड़ान तो नहीं पैदा हुई। इसके प्रथम चिह्नपर ही, अस्वस्थ कन्दल अवश्य पृथक् कर लिया जाय अथवा फेंक दिया जाय"।

बीजसे उगाना

दहलियोंके उगानेका सबसे सस्ता नियम प्राकृतिक रीतिसे बीजसे है। इसको सफलता पूर्वक करनेके लिए बीज किसी विश्वास-पात्र दूकानसे विशेषकर उससे जिसने दहलियोंके उगानेमें विशेष परिश्रम किया हो प्राप्त करना चाहिए। विशेष जाने हुए प्रकारोंके बीज खरीदना अब सम्भव है जैसे दीर्घ सजावट वाला (जायण्ट डेकोरेटिव), पिवनी कैक्टस कॉलारेट—जबकि बौने बिस्तरवाला एकाकी अथवा कोल्टनेस दहलिया अल्प निज वर्णोंमें (पीत, अरुण तथा श्वेत) मिल भी सकता है। इन अन्तिम वालोंको त्यागकर बीजसे दहलियोंको उगानेके संबन्धमें अब भी असीम अनिश्चतता पाई जाती है, कारण कि कोई भी इनके उतने भिन्न प्रकार प्राप्तकर सकता है जितने हीनज़ ने किए।
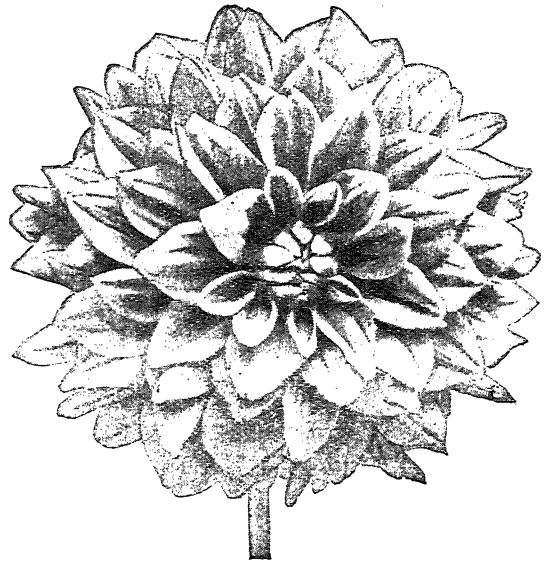
[मेसर्स पेस्टनजी पी० पोचा एण्ड संसके अनुग्रहसे]

अच्छा होगा यदि इन बीजोंका बिस्तर प्रकाशवान हो, परन्तु बाग़के बिलकुल खुलेहुए भागमें इनका लगाना ठीक नहीं, कारण कि कभी २ इसके प्रभावसे कुछ हास्यजनक अवस्था उत्पन्न हो जाती है। बड़ी लम्बी टांगवाले सामने तथा छोटे ठूँटी वाले पीछे होने चाहिए। जब पौधोंमें पुष्प लगते हों तो यह बुद्धिमानी होगी कि छोटे कोमल पौधे उखाड़ डाले जाएं अर्थात् वे पौधे जो फल्की तनेदार हों अथवा जिनके पुष्प पदार्थ-विहीन तथा आकर्षण रंगोंके न हों केवल ऐसोंको रहने दो जो साधारणतया उत्तम हों अथवा वास्तवमें उत्तम निकलने वाली जातिके हों। जब फूल देना बन्दकर दें तथा पत्तियोंकी मृत्यु पीछेकी ओर

आरम्भ हो जाए तब यह काट लिये जायँ और उसी स्थानमें छोड़ दिए जावें ताकि दूसरी बार फूलें! उस समय तक कन्दल वास्तवमें शक्तिवान हो जाएंगे और वे बिना हानि पहुँचाए हटाए जा सकेंगे; यद्यपि विभाजन उस समयतक नहीं हो सकता जब तक कि पौधे वृद्ध न हो जावें।

इस द्वितीयबार फूलनेपर समस्त बीजोंकी वृद्धि में विशेष उन्नति देखकर तुमको आश्चर्य होगा। पौधे शक्तिवान निकलते हैं तथा फूल बड़े होते हैं; अनेक सन्देह युक्त "साधारणतया उत्तम" श्रेणी 'क' में रखे जा सकते हैं। दूसरी बार फूलनेके पश्चात् पौधे अवश्य हटाए जाएं और आवश्यक है कि उनको रंग ऊँचाई तथा पुष्प वाली मेड़ोंपर चुने हुए स्थान दिए जाते हैं, जब कि 'ख' श्रेणी (साधारणतया उत्तम) झाड़ी वाली मेंढ़ोंपर तथा बाग़के जङ्गली टुकड़ोंपर लगाए जाते हैं, जहां वे विशेष चमकदार रंग उत्पन्न करें तथा क़लम लगानेके काममें आयें। विशेष सुन्दर दहलियोंमें-से दो इस प्रकार बीजसे उगाए गए हैं—एक फ्लेम-पिंक तथा एक प्रिय ऐप्रीकाट। दोनों पाँच फुट ऊँचे, पुष्पके ढेरों तथा प्रलम्बित टहनियों सहित बाग़में शोभा की वृद्धि करते हैं तथा क़लम लगानेके लिए समान रूपसे उत्तम हैं। मुझको ऐसा ज्ञात होता है कि बीजसे उगाये गये दहलिए बाहरसे मंगाये गये कन्दलोंकी अपेक्षा अधिक कठोर होते हैं तथा नियमानुसार अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक फूलते हैं। यद्यपि बड़े आकारके पौधोंमें पुष्प छोटे होते हैं (चौड़ाईमें १० से ११ इञ्चकी अपेक्षा ७ से ८ इञ्च) कारण कि स्वतन्त्रतापूर्वक फूलना मुझको केवल क़दकी अपेक्षा अधिक प्रिय है, इस बातका होना कोई अवगुण नहीं है। यदि बड़े पुष्पोंकी आवश्यकता हो तो पुष्पोंको प्रत्येक मुख्य तनेपर एकाकी पुष्पमें पृथक्कर देना चाहिये और ज्यों २ कलियाँ बनती जाएं उनको तरल खाद देते जाना चाहिये। यदि दहलियोंको काटनेके पश्चात् ही घरमें सीधे लाकर उनको तनों सहित दो व तीन इञ्च गहराईके उबलते हुए जलमें १० मिनट तक डुबो दें तो वे घरमें बहुत अधिक दिनों तक चल सकते हैं।

रंग बिरंगे दहलिये

कोमल पिंक (लाल) एवं पीले रंगसे लेकर समस्त उन चटकीले शराबकेसे लाल तथा पर्पिल रंगों तकके दहलिये उगाये जा सकते हैं इससे और अधिक सुन्दर क्या बात हो सकती है? इसके उपरान्त पिंक रंग हैं जो मूँगे तथा ज्वालाके रंगमें मिल जाते हैं और इसी प्रकार ऐप्रीकाट, नारंगी, ताम्र तथा स्वर्ण रंगके भी होते हैं। रेशम तथा मखमलकी चमक जवाहिरातोंकी चमक तथा धातुओंकी दमक सभी प्रकारकी चमक इनमें विद्यमान है। इस प्रकार बाग़में किसी भी रंगकी आयोजना सम्भव है। मेसर्स पेस्टन-जी पी० पोचा एण्ड सन्सके पास दो पत्रोंमें दिये गए अल्प प्रिय दहलियोंके स्टाकके कुछ रंगीन चित्रोंके उदाहरण विद्यमान हैं और यह चित्र वाटिका-प्रेमियों-को जो रंगोंकी आयोजनाके फेरमें रहा करते हैं अधिक सहायक होंगे। उन चटकीले पिंकोंको परस्पर समूहित करने अथवा एक ऐसी क्यारीकी आयोजना निर्माण करनेमें जिसमें रंग स्वर्णसे ऐप्रीकाट, ज्वाला-वर्ण तथा अरुण आदि रंगोंका अच्छी प्रकार चुनाव किया गया हो, विशेष हर्षकी बात है।

मुझे आशा है कि यह लेख नवीन शिक्षक मालियोंको दहलिया उगानेमें अधिक उत्साहित करेगा।

साधारण परिश्रमसे माली जितनी सफलता सुन्दर दहलियोंके उगानेमें प्राप्त कर सकते हैं उतना अन्य पौधोंमें नहीं।

—[एक अँग्रेज़ी लेखके आधारपर]

बाज़ारकी ठगीका भण्डाफोड़

[ले०—श्री स्वा० हरिशरणानन्द जी]

हींग

हींगके सम्बन्धमें पीछे किसी पत्रमें मेरा एक लम्बा लेख निकल चुका है। हींग हमारे देशकी चीज़ नहीं। यह अफ़ग़ानिस्तान, ईरान आदि देशोंसे आती है। मुख्यतया यह दो जातियोंमें विभक्त है। एक हींग, दूसरा हींगड़ा। हींगका व्यवहार भारतवासी करते हैं, हींगड़ा प्रायः विदेशमें जाता है और उसका व्यवहार विदेश-वासी अधिक करते हैं। हींग प्रान्त-भेदसे अर्थात् अफ़ग़ानिस्तानके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें उत्पन्न होनेसे वह भिन्न भिन्न नामोंसे कोई ८, ९ प्रकारकी कहलाती है, यथा-गिलमीन, नयी ज़मीन, चाहार सद्दा, शाहबन्दी, कावली, हड्डा, चिरास, पुराना चाल, नया चाल इत्यादि।

हींगकी मण्डियाँ

भारतवर्षमें इनके व्यापारकी चार पाँच बड़ी मण्डियाँ है—(१) बम्बई (२) हाथरस (३) मुल्तान (४) पेशावर (५) डेरा इस्माईल खाँ, गाज़ी खाँ। ईरानी समस्त हींग बम्बईमें आती है। अफ़ग़ानिस्तान-की समस्त हींग उक्त चारों मण्डियोंमें पहुँचती है।

हींग क्या है ?

हींग क्या चीज़ है ? हींग ज़ीरा, धनियाँ वर्गकी एक वनस्पतिका दूध है, जिसमें रासायनिक दृष्टिसे ६० प्रतिशतके लगभग राल तथा २० प्रतिशतके लगभग गोंद और १०-१५ प्रतिशत उड़ायी तेल तथा ५-७ प्रति भाग उसवृक्षका कचरा मिट्टी आदि होता है। यह अंक उस ताज़े हींग दूधके हैं। इस दूधको यदि किसी पात्रमें भर कर रख दिया जाय तो वर्ष डेढ़ वर्षमें जा कर यह जम जाता है और हलका पिंगल-वर्णी कुछ पारदर्शक तीक्ष्ण-गन्धी डला बन जाता है। जैसे जैसे यह पुराना होता चला जाता है वैसे वैसे इसका वर्ण गहरा होता चला जाता है।

आयुर्वेदमें हींगका काफ़ी उपयोग आया है। हींग-को पाचक व वातनाशक समझ कर दाल-भाजीमें भी डालते हैं। दाल-भाजीमें इसकी सुगन्ध अनेक व्यक्ति-योंको रुचिकर है इसीलिए इसकी लागत काफ़ी है। अर्थात् उत्पत्तिसे अधिक खपत है, इसीलिए इसमें मिलावट होती है। हींग साधारणतया २०) मनसे लेकर २०) सेर तककी बाज़ारमें आती है। जो हींग २०) रु० मनसे लेकर ५०) रु० मन तककी होती है उसमें तो मरकाना या संगमरमरकी जातिका पत्थर स्पष्टतया मिला होता है। कुछमें उर्दका आटा मिला होता है। जो हींग ८०), १००) रु० मनसे लेकर ४००—५००) रु० मनकी होती है, हमारा ख्याल था कि यह बिलकुल ख़ालिस होती होगी, क्योंकि यह माल खालोंमें बन्दका बन्द क़ाबुलसे आता था। आढ़ती और माल बेचनेवाले पठान कहते थे कि इसमें किसी भी चीज़का मिश्रण नहीं होता। हम यही माल लाकर बेचते तथा स्वयम् भी प्रयोगमें लाते थे। इस बार हम जब माल ख़रीदने गये तो हमें कुछ संशय हुआ कि इसमें भी मिलावट होती है। खालोंके अन्दर हींगमें घुसेड़े पत्थर, हड्डियाँ, लोहा आदि तो कई बार निकल आता था, किन्तु इस बातपर विश्वास था कि हींगमें मिलावट न होगी। हम अपने ग्राहकों एवं वैद्योंको भी विश्वास दिलाते थे कि हींग ख़ालिस है। इस बार हम जो जो हींग खरीद कर लाये थे लाहौरके सरकारी एकज़ामिनर (रसायनिक परीक्षक) के पास सारे नमूने परीक्षार्थ भेजे। जब उसका परिणाम प्राप्त हुआ तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि जहांसे यह

आती है वहाँ ही वह लोग इसमें अनेक वस्तुएँ मिला देते हैं।

हींगमें मिलावट

दो हींगके नमूनोंमें बहुत बारीक पीसा हुआ ६० प्रतिशतके लगभग गोदन्ती हरताल मिला हुआ था। दो नमूनोंमें बिरोजा था। एकमें ५० प्रतिशत और दूसरेमें ३० प्रतिशत। बाक़ी हींगके भाग राल, गोंद व उड़ायी तेल थे। उड़ायी तेलका अंश १ प्रतिशत-से लेकर २-३॥ प्रतिशतसे अधिक न था। जिस हींगमें कमसे कम ८-१० प्रतिशत उड़ायी तेल नहीं वह हींग अच्छी नहीं गिनी जाती। हींगड़ासे हींगमें उड़ायी तेलों-की मात्रा अधिक होती है इसलिए यह उससे विशेष उपयोगी होती है, किन्तु जिस हींगमें इसकी इतनी कम मात्रा हो वह कितना लाभ पहुँचा सकती है?

देशी औषधियोंके सम्बन्धमें यह एक बड़ा भारी दोष है कि उनके लाने और बेचनेवालोंपर किसी तरहका नियन्त्रण नहीं होता, न औषधियाँ किसी विशेष परीक्षाके बाद ख़रीदी जाती हैं। भौतिक परीक्षा प्रायः धूर्त्तोंकी धूर्त्तताओंके आगे फ़ेल हो जाती है। इसीलिए, देशी औषधियोंके लिए भी हम सबोंको विलायती फर्मोंवत् रसायनिक परीक्षाका आश्रय लेना चाहिये। तभी देश और देशी चिकित्साका भला हो सकता है। अन्यथा नहीं।

चिकित्सकके कामकी प्रश्नावली

[लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी]

रोगी निरीक्षण

रोगियोंका निरीक्षण किस प्रकार किया जाय यह जानना बड़े महत्वका है। प्रत्येक चिकित्सकको इस बातकी आदत आरंभसे ही डालनी चाहिये कि वह यह देखे कि निरीक्षण करते समय कोई महत्व-पूर्ण बात छूट तो नहीं गई है। अधिक अनुभवी चिकित्सकोंको भी रोगियोंके वर्णनोंका नियमित लेखन कम लाभकर नहीं है। इससे उनका अनुभव अधिक पूर्णता प्राप्त करता है। भविष्यमें ज़रूरत पड़नेपर वे नये रोगियोंकी स्थिति को पुराने रोगियोंकी स्थितिसे तुलना कर सकते हैं और इस प्रकार वह अपने रोग-निरीक्षणके अनुभव को दृढ़ आधारपर निर्माण कर सकते हैं।

परन्तु जब हम किसी रोगीकी निरीक्षण-सम्बन्धी उपयुक्त पद्धतिपर विचार करते हैं तो बहुत मतभेद प्रतीत होता है। प्रत्येक चिकित्सक की अपनी अपनी अलग पद्धति है। इसका बहुत महत्व नहीं है कि हम किस पद्धतिका अनुसरण करते हैं, ज़रूरत केवल इस बातकी है कि हम किसी एक पद्धतिका नियमित अनुसरण करें।

रोगी-निरीक्षणकी प्रत्येक उत्तम पद्धतिमें पूर्णता तथा संक्षिप्तता अत्यावश्यक है। यह इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि सब प्रकारके रोगियोंपर लागू की जा सके और उनकी सभी मुख्य बातें इसमें होनी चाहिए। साथ ही यह इतनी संक्षिप्त भी होनी चाहिए कि छोटेसे परिमाणमें रोगी सम्बन्धी सभी मुख्य बातें उसमें आ-जाँय। संक्षिप्तताका महत्व बहुत अधिक है। आयुर्वेदके विद्यार्थियोंको यह आदत डालनी चाहिए कि कुछ वाक्योंमें ही रोग-विषयक मुख्य बातें केन्द्रित कर सकें। इस दृष्टिसे रोगीका संक्षिप्त विवरण लिखनेका अभ्यास उपयोगी सिद्ध होगा। साथ ही जहाँ सरल ग्राफ़-

चित्रों (वक्र रेखा चित्र) द्वारा स्थिति स्पष्ट की जा सके वहाँ लम्बे शाब्दिक वर्णन लिखनेकी आदतसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए। इस दृष्टिसे रेखा-चित्रोंका उपयोग बहुत सहायक होगा। उनमें प्रचलित चिह्नोंकी पूर्तिके द्वारा आवश्यक बातोंका निर्देश किया जा सकता है।

इस लेखके अन्तमें रोगी-निरीक्षणकी योजना दी गई है जिसमें उपर्युक्त सब बातोंका ध्यान रक्खा गया है। इसके उपयोगके समय विवेक तथा उचित परिवर्त्तनोंकी भी आवश्यकता होगी। प्रत्येक दशामें सभी उल्लिखित बातोंको विस्तारसे पूछनेकी ज़रूरत नहीं है। उदाहरणके लिए यदि कोई रोगी तीव्र और बहुत बढ़ी हुई हृदयकी बीमारीसे ग्रस्त है तो उसके दाँतोंकी दशाका विस्तृत विवरण लिखनेमें कोई लाभ नहीं। परन्तु नौसिखिये बहुधा ऐसी भूलें किया करते हैं। निस्सन्देह किसी विशेष दशामें किन बातोंके जाननेका महत्व है इसको निर्णय करनेकी सामर्थ्य कुछ अनुभव के बाद ही आती है तथा प्रारम्भमें चिकित्सक कई बार भूलें कर सकता है, परन्तु ऐसी भद्दी भूलोंसे थोड़ेसे सामान्य विवेकके द्वारा आदमी बच सकता है।

किसी रोगीके निरीक्षणके दो भाग होते हैं—१—रोगीसे प्रश्न पूछना और २—शरीर परीक्षा। लेखकोंको प्रारम्भमें दोनोंके सम्बन्धमें थोड़ी टिप्पणियाँ लिख लेनी चाहिए तथा पीछेसे विस्तृत विवरण तय्यार कर लेना चाहिए।

रोगीसे प्रश्न

रोगीसे प्रश्न पूछनेका उद्देश्य उसकी वर्त्तमान बीमारी, उसके साधारण स्वास्थ्य तथा उसके परिवारके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करना है। प्रश्न पूछते हुए बहुत धैर्यका अवलम्बन करना चाहिए, रोगीको अपनी कहानी यथासम्भव स्वयं अपने शब्दोंमें कहने देनी चाहिए। दो उत्तम नियमोंका ध्यान रखना चाहिए—पहला, स्व-अभिप्रेत उत्तरोंको पानेके लिए प्रश्न न पूछो ; दूसरा उसी प्रश्नको दो बार कभी न पूछो। कभी ज़रूरत पड़ने पर स्व-अभिप्रेत प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं, यथा, रोगीमें रोगके ढोंग करनेका सन्देह होनेपर रोगीसे परस्पर विरोधी लक्षण कहलाये-जा सकते हैं और इस प्रकार अपने सन्देहको पुष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार जो रोगी स्वभावसे ही या बीमारीके कारण मूर्ख हो उससे भी स्व-अभिप्रेत प्रश्न पूछे जा सकते हैं। जब 'व्यक्तिगत लक्षण' पता लगाने हों तब भी स्व-अभिप्रेत प्रश्न पूछे जा सकते हैं। उसी प्रश्न को दुबारा पूछनेसे प्रतीत होता है कि चिकित्सक असावधान है और रोगी समझता है कि मेरी बीमारीमें इसका बहुत थोड़ा ध्यान है, अतः उसी प्रश्नको दुबारा कभी नहीं पूछना चाहिए।*

पृष्टव्य बातोंपर अवश्य हम विचार करेंगे। पहले तो ऐसे प्रश्न लेंगे जो प्रत्येक रोगीसे पूछे जाने चाहिये जिन्हें हम सामान्य प्रश्न कह सकते हैं। फिर उन प्रश्नोंको लेंगे जो विशेष संस्थानों तथा अंगों सम्बन्धी बीमारियोंकी दशामें पूछने चाहिए जिन्हें विशेष प्रश्न कहा जा सकता है।

सामान्य प्रश्न

रोगीका नाम, आयु, कार्य और वह विवाहित या एकाकी। उसका ठीक ठीक पता लिख लेना भी महत्व रखता है जिससे आवश्यकता पड़नेपर भविष्यमें उपयोग किया जा सके।

इसके बाद फिर निम्न दो आवश्यक प्रश्न पूछें—

(१) उसे शिकायत क्या है ?

(२) लक्षण कितने समयसे हैं ?

* क—किसी बहरे रोगीसे प्रश्न पूछते हुए स्टेथस्कोपका प्रयोग करना उपयोगी होगा। इसके कानमें लगाकर सुनने वाले सिरोंको रोगीके कानमें लगाओ। छातीपर रक्खे जाने वाले सिरेमें स्वयं बोलना चाहिए।

इस प्रकार रोगीकी शिकायत और बीमारीके समय को जानकर उसके इतिवृत्तमें मुख्य तथ्योंका निश्चय करनेके लिए बढ़ें।

सबसे अधिक युक्ति-संगत विधि पहले पारिवारिक इति-वृत्त लेना है। केवल समीपके सम्बन्धियों—माता पिता, भाई बहिन, और यदि रोगी विवाहित हो तो उसके बच्चोंकी ही स्वस्थावस्था और मृत्युके सम्बन्धमें मालूम करना सामान्यतया पर्याप्त होगा। ये तथ्य हमें बताते हैं कि उसने पितृ-परम्परासे किसी विशेष रोगको तो नहीं ग्रहण किया।

१—'क्या बीमारी है,' इस प्रकार पूछना ग़लती है, क्योंकि इस पर रोगी तुरन्त जवाब देगा—यही तो पता लगाने मैं तुम्हारे पास आया हूँ।

२—सिद्धान्तमें यह बात पूर्णतया सत्य है, परन्तु क्रियामें उपस्थित रोगके इतिवृत्तसे प्रारम्भ करके रोगीका प्राथमिक स्वास्थ्य मालूमकर और फिर पारिवारिक इतिवृत्तपर जाना सम्भवतः अधिक सुविधाजनक होगा।

इसके बाद उसके वैयक्तिक इतिवृत्तपर आएँ। रोगीकी परिस्थिति और आदतोंसे आरम्भ करना अच्छा है। इनमें निम्न प्रष्टव्य हो सकता है—

(क) उसके पेशेकी ठीक २ प्रकृति। उसके धन्धेका केवल नाम ही नहीं परन्तु उसका कार्य ठीक २ किस प्रकारका है। इससे कुछ हानिकर असर तो उसपर नहीं पड़ सकता। पहले कार्य भी नोट करने चाहिये।

(ख) उसके घरके आसपास की अवस्थायें। वे स्वास्थ्यके लिए हानिकर हैं या नहीं, तथा अन्य बातें।

(ग) वह किस परिमाणमें व्यायाम करता है।

(घ) उसके भोजनकी प्रकृति; मद्य, चाय और तम्बाकू जैसे पदार्थोंमें उसका व्यसन।* मद्यके संबन्धमें कितना, जैसे मद्यके प्रतिदिन कितने गिलास रोगी लेता है। केवल यह पूछना ही पर्याप्त नहीं है परन्तु कब और कैसे पीता है, यथा भोजनके साथ या बीचमें यह निश्चय करना भी महत्व रखता है। तम्बाकूकी किस्म और प्रति सप्ताह धूम्रपानकी जाने वाली तम्बाकूकी औंसों या छटाँकोंमें मात्राका निश्चय करनेकी कई अवस्थाओंमें आवश्यकता होती है।

३—अन्तमें हमेशा यह मालूम करना चाहिए कि कभी वह स्वदेशसे बाहर रहा है या नहीं। यदि रहा है, तो संसारके किस हिस्से में।

इस प्रकार प्राप्त ज्ञानसे चिकित्सक रोगीमें पितृपरम्परा या उसकी परिस्थितियों और वैयक्तिक आदतोंसे उत्पन्न हुए रोगकी प्रकृतिको समझ सकता है।

प्राथमिक स्वास्थ्य विषयक प्रश्न

अब रोगीके प्राथमिक स्वास्थ्य विषयक प्रश्न पूछने चाहिए। मालूम करो कि उसे क्या रोग रहे हैं,† कब रहे हैं, कितने समयतक रहे हैं और उनसे वह पूर्णतया अच्छा हो गया था या नहीं। आम तौरपर रोगीसे सीधा यह पूछना आवश्यक होता है कि उसे कभी फिरंग हुआ था या नहीं। यह मालूम करना ही पर्याप्त नहीं होता कि उसे व्रण हुआ था परन्तु द्वितीयावस्थाके लक्षणों यथा कोढ़के लिए भी प्रश्न अवश्य करने चाहिए। यदि रोगी फिरंगसे इन्कार करे तो यह पूछना आवश्यक होगा कि उसे कभी इससे आक्रान्त होनेकी सम्भावना हुई है या नहीं और उसे कोई अन्य सम्भोगजन्य व्याधि तो नहीं हुई। सम्भोग-जन्य रोगोंके

---

* रोगीके जीवनकी आदतोंको पूछते हुए किसी एक दिनका संक्षिप्त वृत्तान्त लेना रोगीको प्रायः लाभकारी होगा, विशेषकर निजी चिकित्सा-कार्य में।

† प्राथमिक रोगोंके निदानकी आवश्यकता नहीं, परन्तु उनके लक्षणोंका सामान्य वर्णन करनेके लिए ही रोगीको कहें।

सम्बन्धमें स्त्री-रोगियोंकी अवस्थामें अप्रत्यक्ष रूपमें ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सीधे प्रश्न तभी पूछे जाने चाहिए जब कि रोगीकी वर्त्तमान अवस्थापर प्रकाश डालनेके लिए निश्चत इतिवृत्त जानना नितान्त आवश्यक हो। आयुर्वेदके विद्यार्थीको अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि इन अवस्थाओंमें भी जितना सम्भव हो उतने मृदु शब्दोंमें प्रश्नोंको पूछना चाहिए।

रोगीकी परंपरागत और बादमें प्राप्त प्रवृत्तियों और पहले हुए रोगोंके उसमें विद्यमान बीजोंके सम्बन्धमें विचार कर लेनेपर अब हम उसके वर्त्तमान कष्टके संबन्धमें ज्ञान उपलब्ध करेंगे।

पूछो, कैसे और कब यह प्रारम्भ हुआ। यदि सम्भव हो तो मुख्य घटनाओंकी तिथि भी दो और सहसा हुआ या क्रमशः यह भी जानो। सबसे पहले किस ख़राबीकी ओर उसका ध्यान खिंचा। उसके लक्षणोंके प्रकट होनेका क्रम क्या था और इस समय कौनसे लक्षण उसे मुख्य रूपसे कष्ट दे रहे हैं। पता लगाओ कि पहले वह किसी इलाजमें रहा है या नहीं। यदि रहा है तो उसकी क्या क्या चिकित्साकी गई थी।

ये सामान्य प्रश्न हैं और वे सब मुख्यतया इनके अन्तर्गत हैं जो प्रत्येक रोगीसे पूछे जाने चाहिए।

विशेष प्रश्न

जिस अंग-विशेषपर विश्वास हो कि यह आक्रान्त है और बीमारीकी प्रकृतिके अनुसार जिस स्थानपर उसकी स्थितिका सन्देह हो उसीके अनुसार प्रश्नोंका स्वरूप होना चाहिए। यहींपर विद्यार्थीको बहुत कठिनाई होती है। केवल अनुभवसे ही यह कहा जा-सकता है कि प्रत्येक वैयक्तिक रोगीमें क्या क्या पूछना आवश्यक होता है। आयुर्वेदके नव-विद्यार्थियोंकी सहायता के लिए अन्तमें हमने एक प्रश्न योजना दी है जो उसे मार्ग-प्रदर्शनका कार्य कर सकती है। हमारा वर्त्तमान उद्देश्य विद्यार्थीको उसकी प्रारम्भिक अवस्थामें केवल सहायता देना मात्र है। जिससे वह कोई महत्वपूर्ण तथ्यको न छोड़ जाय। सम्भव है कि विद्यार्थीको भी अभी इसमें बहुत कुछ पृष्टव्य हो, यथा इस अंग या संस्थानके रोगके सम्बन्धमें यही विशेष प्रश्न क्यों किये गये हैं, आदि। परन्तु धीरे धीरे कुछ काल बाद वह स्वयं सब कुछ मालूम कर लेगा। इन प्रश्नोंमें केवल वैयक्तिक लक्षणोंका ही—किसी विशेष रोगके परिणाम स्वरूप रोगी जिन दुःखोंको अनुभव करता है उनका ही—स्पष्टीकरण करनेके लिए प्रश्न दिये गये हैं।

१—महास्रोतस्

(क) आमाशयके विकारोंको प्रकट करनेवाले लक्षणोंके सम्बन्धमें निम्न प्रकारसे पूछें :—

क्षुधा—न्यून, अधिक या विषम है। क्या यह खाने पर बढ़ जाती है?

प्यास—क्या उसे प्यासका कष्ट है? प्यास अधिक या न्यून लगती है?

भोजन—वह किस प्रकृतिका भोजन करता है? दिन में कितनी बार खाता है।

किस समय खाता है? क्या वह दो भोजनोंके बीचमें भी कुछ खाता है?

आमाशयमें होनेवाली अनुभूतियां—उनकी प्रकृति—शूल, गुणता या बेचैनीमें से कौन सा लक्षण होता है। उनके अनुभव होनेका ठीक ठीक स्थान। उनको भोजन खानेके साथ सम्बन्ध, वे इससे उत्पन्न हो जाते हैं या हट जाते हैं?

भोजनके कितनी देर बाद वे प्रकट होते हैं। किसी विशेष प्रकारके भोजनका उनपर असर तो नहीं पड़ता?

वमन—कितनी बार होती है? किस समय होती है? दिनमें या रातमें? प्रातः या सायंकाल? भोजनके साथ उसका सम्बन्ध, क्या यह केवल भोजनके बाद ही होती है या अन्य समयोंमें भी होती है? वेदनाके साथ इसका सम्बन्ध, यह वेदनाको शान्त कर देती है

या नहीं ? इसमें रोगीको कष्ट होता है या वमन-द्रव्य सर्वथा सुगमतासे बाहर आ जाता है ?

वमन-द्रव्यके सामान्य गुण—इसका परिमाण और रंग। काफ़ीके रंगकी पूरी वमन कभी होती है या नहीं ? निकला हुआ द्रव कभी झागदार, फीका या खट्टा होता है ? इसमें रक्त होता है या नहीं ?

डकार—उपस्थित हैं या नहीं ? इनका स्वाद ?

तापमान—विद्यमानता या अभाव। केवल भोजनके बाद ही या दो भोजनोंके बीचमें भी हो जाता है ? भोजनके कितनी देर बाद होता है और कितनी देरतक रहता है ? किसी विशेष खाद्य पदार्थके साथ उसका सम्बन्ध। पेटकी वायु ऊपर मुख और नीचे गुदासे निकलती है या नहीं ?

(ख) आँतोंके विकारोंको प्रकट करनेवाले लक्षणोंके सम्बन्धमें निम्न प्रकारसे प्रश्न करें :—

अतिसार—कितनी बार मल त्याग होता है ? भोजन या भोजनके किसी विशेष पदार्थके साथ इसका सम्बन्ध ? यह कैसा आता है ? पतला या गाढ़ा ? दिनमें या रातमें किस समय अधिक बार आता है ? इसमें आँव या रक्त होते हैं या नहीं ? झागदार, दुर्गन्धित और न बहुत गाढ़ा न पतला होता है या नहीं ? मलके आते समय मरोड़ होते हैं कि नहीं ? मल-विसर्जनके लिए बल प्रयोग तो नहीं करना पड़ता ? पेटमें अफारा रहता है या नहीं ? अतिसारका रोग कबसे है ? इससे पहिले कभी मरोड़ या प्रवाहिकाका रोग तो नहीं हुआ था ?

मलबन्ध—उसकी सामान्य आदत क्या है ? क्या नियमित रूपसे मल आता है ? यदि आता है तो किस समय ? कितनी बार ? पिछली बार शौच हुए कितना समय हो गया है ? मल सख़्त होता है या नरम ? मलबन्ध तथा अतिसार विकल्प-से तो नहीं होते अर्थात् कुछ दिनों अतिसार रहता हो और कुछ दिनों मलबन्ध ? वमन तो नहीं होती ?

वेदना—गुण; लगातार है या रुक रुक कर होती है ? किस स्थानपर सबसे अधिक अनुभव होती है ? दबावसे शान्त होती है या बढ़ जाती है ?

(ग) यकृत् विकारोंके लक्षण यथा रोगीको कामला हो या यकृत् प्रदेशमें दर्द हो तो इस प्रकार प्रश्न करें :—

वेदना—इसका स्थान। कभी कभी सहसा शूलके आक्रमण तो नहीं होते जो कुछ घण्टेतक रहते हों ? यदि ऐसा है तो क्या शूल प्रसार करती है, और किस दिशामें ? इसके साथ वमन होती थी ? इसकी समाप्तिपर क्या वह बिलकुल पीला हो गया था ? कन्धेके सिरेपर उसे कभी दर्द हुआ है ?

अर्शस्—उसे इस रोगकी शिकायत तो नहीं रहती ?

उसे कभी कभी वमन तो नहीं होता ?

उसने कभी मूत्र या मलके रंगमें कोई परिवर्तन तो नहीं देखा ?

उसकी त्वचापर खुजली होती है या नहीं। (यदि उसे कामला हो तो) ?

उसकी पाचन क्रियाके सम्बन्धमें आमाशयके विकारोंके लिए बताए हुए उपर्युक्त प्रकारसे प्रश्न करें।

२—रक्त-संस्थानके विकार

रक्त-संस्थानके विकारोंके सम्बन्धमें निम्न प्रकारसे प्रश्न करें :—

गठिया, आमवात, हृदय शूल, मस्तिष्क रक्तस्राव या हृद्रोगका पैतृक इतिवृत्त। सन्धि-ज्वर, हस्तपक्ष विक्षेप (सेंट विटूस-डान्स) स्कार्लाटिना या डिप्थीरियाका वैयक्तिक इतिवृत्त। यदि बच्चा है तो कण्ठ-शोथ और वर्द्धमान वेदनाके लिए भी पूछें।

निम्नलिखित वैयक्तिक अनुभूतियाँ :—

श्वास-काठिन्य—उसे बिस्तरपर बैठना पड़ता है या लेटे हुए अच्छी तरह सो सकता है ? यह किस

समय आता है ? हृदय-प्रदेशपर किसी प्रकारका दर्द या बेचैनी तो नहीं होती ? इसका ठीक स्थान और गुण ? यह प्रसार करता है या नहीं ? यदि करता है तो किस दिशामें ? हृत्कम्प होता है या नहीं ? क्या इसका भोजन या थकानसे कुछ सम्बन्ध है ? निरन्तर होता रहता है या कार्य करनेके पीछे होता है ? हलका हलका होता है या तीव्रतासे ? कभी-कभी हृदयकी कोई धड़कन अचानक लुप्त तो नहीं हो जाती ?

निद्रा अच्छी तरह आती है या टूट टूट कर ? स्वप्न आते हैं तो किस प्रकारके ?

शिरोभ्रम (सिरमें चक्कर आना) कभी होता है ? किस समय होता है ? शारीरिक या मानसिक परिश्रमके बाद शरीर अनुचित रूपसे शिथिल तो नहीं हो जाता ?

सामान्य शिरा फूलनेके सूचक चिह्नोंको भी पूछें यथा पैर कभी सूजते तो नहीं ? कास रहती है या नहीं ? कभी कभी श्वास तो नहीं चढ़ जाता ? पाचकाग्नि कैसी है ? निर्बल या तीव्र ? रक्त पित्त या अधिक रक्तस्राव होता है या नहीं ? नाकसे खून आता रहता है या नहीं ? स्त्री हो तो उसे आर्त्तव अधिक आता है वा नहीं ? यदि रक्त पित्त रोग हो तो पहले कभी विषम ज्वर तो नहीं हुआ ?

३—रक्त-विकार

रक्त-विकार सम्बन्धी लक्षणोंके लिए निम्न प्रकार से पूछें—

शीघ्रतासे रक्त बहनेकी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियोंका पारिवारिक इतिवृत्त । कभी उसके रक्तका क्षय तो नहीं हुआ ? उसे रक्तार्शस् तो नहीं ? यदि स्त्री हो तो मासिक धर्म न्यून है या अधिक ? आंतोंकी अवस्था कैसी रहती है ?

सीसक विष या मलेरियाकी कोई सम्भावना ?

थकानपर श्वास-काठिन्य, सिर-दर्द, शिरोगौरव जैसी वैयक्तिक अनुभूतियाँ ।

पैर कभी कभी सूज तो नहीं जाते ?

४—श्वास-संस्थानके विकार

श्वास-संस्थानके विकारोंको प्रकट करने वाले लक्षणोंके सम्बन्धमें निम्न प्रश्न करें—

कास, श्वास या क्षयका पारिवारिक इतिवृत्त । रोगीका धन्धा । क्षोभक धूम्र या वाष्प या अन्य पदार्थ श्वास-मार्ग द्वारा उसके अन्दर तो नहीं जाते रहते ? उसकी गरदनमें कभी बड़ी बड़ी ग्रन्थियाँ तो नहीं हो गई थीं ? क्या इसे रातमें पसीना आता है ? क्या वह पतला होता जा रहा है ?

कास—इसका गुण और परिमाण । यह किस समय बहुत अधिक होती है ? इसमें दर्द होता है या नहीं ? यह शुष्क है या कफ निकलता है ? इसके साथ कभी कभी वमन होता है ?

श्लेष्मा—इसका परिमाण और सामान्य गुण । पीला है या नहीं ? इसकी गन्ध, घनता और द्रवता कैसी है ? इसके साथ साथ रक्त आता है या नहीं ? यदि आता है तो क्या यह केवल तीव्र खाँसीके बाद ही आता है ? रक्त लाल चमकीला, झागदार या लाल, काला-सा किस रँगका होता है ? बलगम खाँसीके साथ निकलती है या बिना खाँसे ? यदि खखारनेसे आती है तो वह ऊपर नाकके पीछेसे आती प्रतीत होती है या नीचे कोष्ठमें से ?

छातीमें वेदना—क्या श्वास लेनेपर बढ़ जाती है ? निरन्तर होती रहती है या रुक रुक कर ? किस स्थान विशेषपर होती है ?

श्वास काठिन्य—होता है तो क्या वह कुछ कुछ काल बाद वेगोंमें आता है या निरन्तर रहता है ? इसका वेग अधिकतर किस प्रकारके कालमें होता है ? वेग किस प्रकारका होता है ? क्या वह धूल या किसी विशेष प्रकारके वाष्पोंमें रहनेका धन्धा तो नहीं करता ? यदि यह श्वास-मार्गकी मांस-पेशियोंके उद्वर्तके कारण हो तो उसे एक वेगके वर्णनके लिए कहें ।

५—मूत्र-संस्थान

कटि-प्रदेशके एक पार्श्वपर दर्द होता है या नहीं? दर्दका स्थान? यह प्रसार करता है या नहीं? करता है तो किस दिशा में? मूत्राशयपर दर्द होता है या नहीं? जंघाकी ओर फैलने वाले तीव्र शूलका कभी वेग तो नहीं हुआ?

निम्नलिखित दूरवर्त्ती लक्षण—

सिर दर्द, वमन, बेचैनी, पक्षाघात या दौरे, दृष्टिमें धुँधलापन और श्वास-काठिन्य।

प्रातःकाल मुखपर और विशेषतः आँखोंके नीचे श्वयथु होती है या नहीं?

आँतोंकी हालत कैसी है? मल कैसा आता है?

मूत्रके सम्बन्धमें निम्न प्रकारसे प्रश्न करें—

मूत्र कितना आता है? इसके परिमाणमें कमी या अधिकता तो नहीं हुई? दिन रातमें कितनी बार आता है? मूत्र बार बार आता है तो हर बार थोड़ा थोड़ा आता है या खुल कर? मूत्र-त्यागके लिए रातको उठना पड़ता है कि नहीं? यदि ऐसा है तो कितनी बार? मूत्र रातको अधिक आता है या दिनमें?

मूत्रके रंगमें कुछ परिवर्तन हो गया है या नहीं? विसर्जनके समय यह स्वच्छ होता है या गँदला? इसमें कभी रक्त आता है? यदि आता है तो मूत्र-त्यागके किस समय आता है? आरम्भमें, मध्यमें या अन्त में?

मूत्र त्यागमें दर्द होता है या नहीं? यदि होता है तो मूत्र विसर्जनके प्रारम्भमें, मूत्र करते समय या त्यागके अन्तमें होता है? कुछ दूर चलने फिरनेके पीछे कष्ट अधिक प्रतीत होने लगता है या नहीं? एक पार्श्वपर लेटकर मूत्र-त्याग करनेसे यह कष्ट (पथरी) हट जाता है या नहीं? दर्द किस स्थान पर अनुभव होता है?

स्कार्लाटिना, सीसक विष, दीर्घकालिक पूयस्राव, अश्मरी, गठिया, प्राथमिक वृक्क रोग, फिरंग या कोई अन्य जननेन्द्रिय सम्बन्धी शिकायत तो नहीं रही है?

वृक्क-शोथ, गठिया, मस्तिष्क रक्तस्रावका पारिवारिक इति-वृत्त।

६—त्वग्रोगोंमें

रोगीकी वैयक्तिक आदतों यथा भोजन, वस्त्र, स्नान, सफ़ाई आदिके सम्बन्धमें पूछें। भोजन क्या करता है? कपड़े कब बदलता है? दिनमें कितनी बार और कैसे स्नान करता है? उसकी निजू और घरकी सफ़ाई कैसी है? अभी वह कोई औषध ले रहा है या नहीं? फिरंगके सम्बन्धमें अधिक सावधानीसे पूछना आवश्यक है। कोढ़ोंमें खुजली होती है या नहीं? होती है तो किस समय अधिक? क्या सब कोढ़ एक दम सहसा प्रकट हो जाते हैं या धीरे धीरे निकलते हैं? कोढ़ोंमें पानी निकलता है या नहीं?

गठियाका पारिवारिक इति-वृत्त। आमवात, पाण्डु आदि पहले हुए हैं या नहीं?

७—वात-संस्थानके विकार

वात संस्थानके विकारोंको प्रकट करनेवाले लक्षणोंके सम्बन्धमें निम्न प्रकारसे प्रश्न करें—

मानसिक रोग, हस्त-पाद-विक्षेप, पक्षाघात, दौरे या अन्य किसी वात-रोगका पहले परिवारके किसी आदमीपर आक्रमण हुआ या नहीं?

रोगीके पेशे की प्रकृति। सीसक, पारद, सोमल, आदि विषका उस पर असर तो नहीं पड़ता रहता?

पहले फिरंग रोग हुआ या नहीं?

मदिरापानकी आदत रही या नहीं?

मस्तिष्क-सम्बन्धी रोगोंमें कानके स्रावके सम्बन्धमें पूछना प्रायः बहुत आवश्यक होता है। सिरमें चक्कर आते हों तो कानमें कभी पूय तो नहीं आती रही?

यह वात-रोग पहले पहल किस प्रकार हुआ? किस समय हुआ?

यदि यह रोग वेगोंमें होता है तो निम्न प्रश्न पूछने चाहियें—

पहले वेगके समय आयु क्या थी ? कोई कारण बतायें ? पहले वेगका वर्णन करनेके लिए कहें। दूसरा वेग कब हुआ ? वेगोंके बीचमें न्यूनसे न्यून और अधिकसे अधिक क्या अन्तर होता है ? अब इन-में कुछ कमी या अधिकता है ? ये निद्रामें होते हैं या नहीं ? इनसे पूर्व कोई विशेष अनुभूति होती है या नहीं ? वह अनुभूति शरीरके किस भागपर प्रतीत होती है ? चेतना लुप्त होनेके कितने समय पूर्व यह होती है ? वेगका आक्रमण सहसा होता है या क्रमशः ? आक्षेप होते हैं या नहीं ? वे स्थानिक हैं या व्यापी ? वे कहाँ से प्रारम्भ होते हैं ? कहाँ समाप्त होते हैं ? वह गिर पड़ता है कि नहीं ? गिरते समय उसे कभी स्वयं चोट तो नहीं लगी ? जीभ कटती वा नहीं ? वेग-कालमें मल या मूत्रका स्वयं विसर्ग तो नहीं हो जाता ? निद्रा, शिरोवेदना, पक्षाघात जैसे कोई पश्चात् लक्षण तो नहीं होते ?

पहलेसे कोई मानसिक विकार तो विद्यमान नहीं हैं ? स्वभावमें शीघ्र क्रोध आदि मानसिक आवेगसे उत्पन्न होनेकी आदत है या नहीं ? साधारणतया नींद ठीक आती है या नहीं ?

समय २ पर शरीरके किसी प्रदेशमें वातिक शूल होती है कि नहीं ?

यदि पक्षाघातके लक्षण हों तो निम्न बातें मालूम करें—

हृद्रोगके लक्षण, पुरातन वृक्क रोग (रक्त-संस्थान और मूत्र-संस्थान देखें) वेगसे पूर्व उसे कोई वेग सूचक प्रारम्भिक लक्षण हुए थे ? सिर दर्द या वमन तो उसे नहीं हुई ? सिर-दर्द किस स्थान पर होती है ? सिरमें भारीपन तो नहीं रहता ? चलनेमें दिक्कत तो नहीं होती ? शरीरके किसी भागमें कम्प, आक्षेप, शूल, स्तम्भ, रूक्षता, शैत्य, चींटियोंका सा रेंगना, चिरचिराहाट, सुस्ती, आदि प्रतीत तो नहीं होती ?

८—अस्थि-और संधि-विकार

अस्थियों और सन्धियोंके विकारोंको प्रकट करने वाले लक्षण—

पारिवारिक इति-वृत्तमें क्षय रोग, गठिया या आम-वातके प्राथमिक चिह्नोंके लिए, फिरंग या पूयमेहके लिए और किसी पहलेकी या ताज़ी चोटके लिए पूछें। स्त्री हो तो श्वेत प्रदर या प्रसवोत्तर कालीन कष्टके लिए पूछें।

यदि किसी हड्डीमें दर्द है तो पूछें कि यह किस समय अधिक होता है ? दिन में या रात में ? यदि किसी सन्धिमें वेदना हो तो पूछें कि यह लगातार रहती है या तभी जब जोड़ हिलाया जाता है ? रात्रिमें चौंका देने वाली वेदना तो नहीं होती ? क्या वेदना-पर मौसमका कुछ असर पड़ता है ? क्या दर्द एक जोड़से हट कर दूसरेमें चला जाता है ?

यदि रोगी बहुत छोटा बच्चा है तो निम्न विशेष प्रश्न उसकी माता या अभिभावक (माताके अभाव-में अभिभावक कौन है यह भी नोट करें) से पूछें—

बच्चेके और कितने बहिन हैं ? कोई मरा है ? किस रोगसे ? इससे बड़े भाई बहिन कितने हैं ? छोटे कितने हैं ? किसी प्रसवके समय विशेष कष्ट तो नहीं हुआ था ? यदि हुआ था तो कब ? माता-के और पिताके परिवारका स्वास्थ्य ? प्रसवावस्थामें माताका स्वास्थ्य ?

क्या यह पूर्ण-कालिक बच्चा था ? क्या प्रसव साधारण था ? क्या बच्चेको माँके स्तनोंका दूध पिलाया गया ? तो कब तक ? यदि नहीं तो इसके भोजनका क्या प्रबन्ध किया गया ? अब यह क्या भोजन खा रहा है ? जन्मके बाद इसे कोई कोढ़ या नासानुग्रन्थिवृद्धि तो नहीं थी ? इसके दाँत कब निकलने प्रारम्भ हुए ? इसने कहना कब सीखा ?

पाचकाग्नि और दातोंकी सामान्य-अवस्था क्या है ?

पहली बीमारियोंके सम्बन्धमें पूछें। दौरोंकी संख्या और तारीख। अतिसार, वमन, कण्ठ-शोथ या कासके आक्रमण। खसरा, कुक्कुर-खाँसी, स्कार्लाटिन आदि संक्रामक रोगोंमें-से कोई हुआ या नहीं? यदि हुआ तो किस आयुमें? कानोंमेंसे कभी स्राव बहनेकी शिकायत हुई या नहीं? यदि बच्चेको खाँसी है तो पूछें कि कुक्कुर-खाँसी तो नहीं हुई? वेग किस समय अधिक होता है? खाँसीके साथ वमन भी हुई है?

९—ज्वर

सर्दी लग कर अथवा कम्पके साथ प्रारम्भ हुआ या नहीं? सहसा आरम्भ हुआ या धीरे-धीरे?

निरन्तर रहता है या बीच बीचमें टूट जाता है या हर समय हलका हलका बना रहता है? टूट जाता है तो प्रायः किस समय चढ़ता है?

इसमें कौनसे कष्टदायक चिह्न होते हैं? सिर-दर्द, शिरोगुरुता, वमन, सर्वांग-वेदना, सर्वांग-गुरुता, सर्वांग-शैथिल्य, अंग-साद, कास, गल-शोथ, प्रतिश्वास इनमें से कौन कौनसे लक्षण होते हैं?

क्या इसमें किसी प्रकार के दाने भी निकलते हैं?

१०—स्त्री-रोग

मुख्य शिकायत क्या है?

यदि विवाहित है तो कबसे? कितने और कितनी आयुके बालक हैं? सबसे पिछले बालक या उससे पहले किसी बालकके होनेपर विशेष कष्ट तो नहीं हुआ था? प्रसवके पीछे ज्वर तो नहीं हुआ?

कोई बच्चा तो नहीं गिरा था? उसके पीछे ज्वर तो नहीं हुआ था?

मासिक या आर्त्तव ठीक समयपर होता है या नहीं? कितने दिन रहता है? यात्रामें अधिक होता है न्यून? इसमें छिछड़े होते हैं कि नहीं? आर्त्तव होनेके पहले दर्द होता है या नहीं? आर्त्तवके साथ साथ दर्द होता रहता है या नहीं? जिस आयुसे आर्त्तव आरम्भ हुआ है तभीसे दर्द होता है या पीछेसे? पीछे हुआ तो कब? दर्द पीठ, पेड़ू, जाँघ इनमेंसे किस स्थानपर होता है? दर्द निरन्तर हलका हलका रहता या रह रह कर तीव्रतासे उठता है?

श्वेत, पीला, पतला या गाढ़ा श्वेत प्रदरका स्राव आर्त्तव के मध्यकालों में होता रहता है या नहीं? उसके साथ पूय आती है या नहीं?

मूत्र करते समय या मल त्यागके समय दर्द होता है या नहीं? मूत्र बार बार आता है या नहीं?

शरीर-परीक्षा

सबसे पूर्व रोगीके सामान्य स्वास्थ्यकी अवस्था देखनी चाहिए। इसमें उसके पोषणकी सामान्य अवस्था किसी स्पष्ट विकृत आकृतिकी उपस्थिति और आवश्यक बातोंकी परीक्षा करें। इनका विस्तृत विचार आगेके पृष्ठोंमें दिया गया है। इसके बाद प्रत्येक संस्थानकी अलग अलग अलग परीक्षा करें। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सबसे पूर्व कौन सा संस्थान लिया जाय। अधिक अच्छा विचार यह है कि जो भी संस्थान सबसे अधिक रोग ग्रस्त हो उसीकी पहले परीक्षा करनी चाहिये। इसके बाद अन्य संस्थानों-के सम्बन्धमें भी सामान्यतया परीक्षा करनी चाहिए। रोगी-निरिक्षणमें केवल एक बात और लिखनेको शेष है वह यह कि कई अवस्थाओंमें नकारात्मक बातोंको भी पूछना आवश्यक होता है। यथा श्वास-काठिन्य नहीं है यह भी लिखना चाहिए।

अन्तमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये कि जितना संभव हो उतनी कोमलतासे परीक्षा करनी चाहिए। अनावश्यक रूपसे सर्दी और गर्मीके लिये खुला कर देना, परिश्रम या सरदी लगनेसे रोगीको सावधानीसे बचाना चाहिए। यदि रोगी किसी तीव्र रोगसे कष्ट पा रहा है तो कई बार सब प्रकारकी

शारीरिक परीक्षाको स्थगित कर देना ही वांच्छनीय होता है। इस अवस्थामें उसकी अवस्थाके निदानके लिये या चिकित्सामें सहायताके लिये जो अत्यन्त आवश्यक परिक्षायें हों वे ही करनी चाहिये। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि जब रोगी बहुत अधिक थका हुआ हो या फुफ्फुस व हृदयकी गम्भीर बीमारीसे तकलीफ़ उठा रहा हो तो उस हालतमें यदि वह अविचारसे छातीकी परीक्षाके लिए बिस्तरे पर बिठाया जाय तो बहुत भयंकर और घातक परिणाम भी हो सकते हैं।

(क्रमशः)

तालीस-पत्रके सम्बन्धमें प्रचलित भ्रान्तियाँ

[ले०—श्री स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

वैद्य-समुदायमें तालीसपत्रके सम्बन्धमें काफ़ी मत-भेद पाया जाता है। कुछ वैद्य देवदारु वर्गका वृक्ष कोनीफेरा जिसके पहाड़ोंपर बरमी, थुनु, पोस्तिल आदि नाम हैं उसको मानते हैं। कुछ वैद्य तालीस-वर्ग, ऐरीका-सिआइके तालीसफूर नामक पौधेको तालीसपत्र मानते हैं।

इसका निर्णय कैसे हो ? इसका निर्णय करनेके लिए सबसे पूर्व इसका इतिहास तथा प्रमाण ढूँढना चाहिए। तभी सत्यतातक पहुँचा जा सकता है और कोई अन्य उत्तम मार्ग नहीं। आइये ! हम इसपर कुछ विचार करें।

पहिली बात तो यह है कि इन दोनोंकी उत्पत्ति देखना चाहिये कि यह किस प्रान्त या किस देशकी वनस्पतियाँ हैं। फिर यह देखना चाहिये कि इनकी निकासी कहाँसे होती थी और इनको उस देशमें किन किन नामोंसे जानते हैं, तथा ग्रन्थकार इसके सम्बन्ध-में क्या कहते हैं।

उक्त बातोंकी खोज की जाय तो पता लगता है कि देवदारु वर्ग और तालीस वर्गके वृक्ष हिमालयपर ही होते हैं। दोनों वर्गोंकी वनस्पतियाँ प्रायः समीपस्थ देशकी हैं और उक्त दोनों वनस्पतियाँ नौ हज़ार फुटसे लेकर १०—११ हज़ार फुटकी ऊँचाई तक पाई जाती हैं। इन दोनोंकी उत्पत्ति काश्मीरसे लेकर नैपालतककी हिमाच्छादित पर्वत-मालामें होती है। किन्तु, पूर्व-कालमें इन दोनोंकी निकासी काश्मीर, चम्बा, कुल्लू और कुछ शिमलाकी ओरसे ही होती रही है और आज भी यह इन्हीं देशोंसे निकलकर आती हैं। कश्मीर देश, कष्टबार, भद्रबार, चम्बा, कुल्लू आदि देशसे इन वनस्पतियोंकी निकासी बहुत प्राचीन कालसे है। इसके काफ़ी प्रमाण दिये जा सकते हैं। अमृतसर इनकी व्यापारिक मण्डी रही है, और आज भी है।

इनके प्रान्तिक नाम तथा दोनोंका विवरण

हम प्रथम देवदारु वर्गकी वनस्पतिका वर्णन देंगे :—

(१) बरमी—समस्त पंजाबमें इनको बरमीके नामसे जानते व बेंचते हैं। कश्मीरमें इसको पोस्तिल कुल्लू, शिमला, रामपुर बिसहरकी तरफ बरमी या थुनु कहते हैं। लैटिन नाम टैक्सस बेक्काटा तथा इंगलिशमें यिवू कहते हैं। यह देवदारु वर्गमेंसे हैं। देवदारु, चीड़, कैल, चिलगोजा, रैं, तूस, विट्टर, बुदनार आदिके बड़े बड़े वृक्ष जिनकी चोटियाँ पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ी आसमानसे लगती दिखाई देती हैं, जिनके वृक्षोंसे तारपीनका सा विरोजा व तेल निकलता है, इन्हीं महाविशालकाय वृक्षोंमेंसे बरमी भी है। जिसकी ऊँचाई १२० फुटसे लेकर १५० फुटतक पाई जाती है।

इसके पत्ते आंवलोंके पत्ते जैसे पतले पतले कोई $१\frac{१}{२}$ इंचसे ३ इंचतक लम्बे होते हैं। चौड़ाई $\frac{१}{८}$से $\frac{१}{६}$ तक होती है। इसके वृक्ष व पत्तोंमें एक प्रकारकी सुगन्ध आती है। जिसके पत्तोंमेंसे तारपीनकी जातिका एक उद्वायी तेल निकलता है। इसके पत्तों व छालमें टैनिक ऐसिड तथा गेलिक ऐसिड व रालकी काफ़ी मात्रा होती है और इसके पत्तोंमें टोक्सीन या बरमीन नामक एक क्षारोद होता है, जिसके कारण यह वनस्पति विषाक्त होती है।

उपयोग—इसके पत्र व छालको चर्मकार चमड़ा पकानेके काममें लाते हैं। इसी उपयोगके लिये इसका हज़ारों वर्षोंसे व्यापार होता है। पंजाबमें ही नहीं

कश्मीर, भूटान आदि देशोंमें भी इसीके योगसे चमड़ा पकाते हैं। किन्तु, कश्मीरादि देशोंमें इसका उपयोग औषधके रूपमें नहीं देखा जाता।

(२) तालीसपत्र—इसको पंजाबमें तालीसपत्रके नामसे जानते हैं। कश्मीरमें इसको तालीसफर कहते हैं। यूनानीमें भी इसका नाम तालीसफर है। कुल्लू चम्बाकी तरफ इसके तालीसरी, जबन आदि नाम हैं। इसका लैटिन नाम रोडोडेण्ड्रोन एन्थोपोगोन है। यह तालीस वर्ग एरीकासिआइ वर्गकी वनस्पति है। इस वर्गकी वनस्पतियोंमेंसे निम्नलिखित चार तो वनस्पतियाँ हिमालयपर पाई जाती हैं। दो अन्य पर्वत श्रेणियोंमें मिलती हैं। इस वर्गकी वनस्पतिमेंसे गन्ध-पूरा नामसे एक वनस्पतिका वर्णन डाक्टर बामन गणेश देसाई ने अपने औषधि-संग्रह नामक ग्रन्थमें किया है। इसके पत्तोंसे आजकल एक सुगन्धित तेल निकाला जाता है, जिसको आइल-विण्टरग्रीन कहते हैं, इसका उपयोग एलोपैथीमें काफ़ी होता है।

(३) इस वर्गकी दूसरी वनस्पति तालीसपत्र है। तालीसपत्रका उपयोग यूनानी और आयुर्वेदज्ञ दोनों ही करते रहे हैं। यह तालीसपत्र दो प्रकारका होता है अर्थात् इसकी दो जातियाँ हैं, एक छोटी और दूसरी बड़ी। देखो चित्र १ और २। छोटी जातिके तालीसपत्र-का उपयोग तो हम सब करते हैं किन्तु कभी-कभी बड़ी जातिके तालीसपत्रका भी उसके स्थानमें होता है, क्योंकि दोनों गुणोंमें अधिक अन्तर नहीं पाया जाता। दोनोंके रूप-रंगमें भी साधर्म्य है।

इनका विवरण—तालीसपत्र—इसका झरबेरी जैसा झाड़ीदार २½ फीट तक ऊँचा पौदा होता है और इसकी इतनी घनी झाड़ियाँ होती हैं कि झाड़ीके भीतर प्रकाश तक नहीं पहुँचता। बहुधा इसके वृक्ष बरफानी चोटियोंपर होते हैं। इसीलिये शीतकालमें इसके पौधे बरफ़के नीचे दबे रहते हैं। वैशाख-ज्येष्ठमें जब बरफ़ गलती है तब इसके पत्ते अँकुरित होते हैं। पत्ते प्रायः शाखाओंके सिरेपर ही अधिक छत्राकार निकलते हैं। कुछ पत्ते सीधे और कुछ पत्ते घूमकर बत्ती जैसे लिपट जाते हैं। पत्तोंकी लम्बाई १-१½ इञ्च और चौड़ाई ¾ से ½ इञ्च तक होती है। पत्ते अत्यन्त हरे श्यामाभा लिये कुछ नोंकदार गोल अण्डा-कार होते हैं। पत्तोंकी निचली तरफका वर्ण कत्थई पीला सा होता है। इस वर्गके सभी वृक्षोंके पत्ते नीचेसे लाल पीले या धूसर वर्णके होते हैं। इसके पत्तोंमें-से एक प्रकारकी सुगन्ध आती है। जिसमें-से आइल-विंण्टरग्रीनकी जातिका एक उड़ायी तेल निकलता है। इसके पुष्प कुछ ललाई लिये पीत नीलाभ होते हैं और इसके पुष्प दो-दो तीन-तीन एकत्र होते हैं। फूलोंकी पांच पखड़ियाँ होती हैं जिनके मध्य ८-१० नरकेशर और दो भागोंमें विभक्त एक गर्भ-कोष होता है। इसके फल पांच भागोंमें खरबूजेकी फोकवत् विभक्त होते हैं, जिनमें बाजे इकट्ठे जुड़े होते हैं। इसके फूलनेका समय श्रावण-भाद्रपद है। आश्विन तक इसके बीज तैयार होकर कार्त्तिकमें पककर गिर पड़ते हैं। इसके पत्तोंको तोड़कर सुखाया जाय तो-प्रायः पत्ते बेलनाकार धारण कर सूखते हैं। इसके पत्तों में रोडोडिन (तालीसीन) नामक एक क्षारोद निक-लता है। और इसमें एक दारुहली (मैथिल स्पिरिट) होता है। सूखे पत्तोंमें उक्त दोनों गुणवान् अंशोंकी मात्रा बहुत कम पाई जाती है।

बड़ा तालीसपत्र

इसका लैटिन नाम रोडोडेण्ड्रोन आरबोरियम या लेपिडोटम है। इसके पौधे भी झाड़ीदार होते हैं और उसी तरह सघन श्याम हरित दल होते हैं जैसे छोटे। किन्तु, इसके पौधे ३ फुट से ४ फुट तक बड़े सघन होते हैं। पत्ते भी आकारमें उससे बड़े २ इञ्च तक लम्बे तथा १-१¼ इञ्च तक थोड़े अण्डाकार नोक-रहित गोल होते हैं। इसके पत्तोंके नीचेका वर्ण अधिक पीला लिये लाल होता है अर्थात् पत्तोंका पृष्ठतल पिंगल-वर्ण होता है जिस पर कुछ रोयें होते हैं।
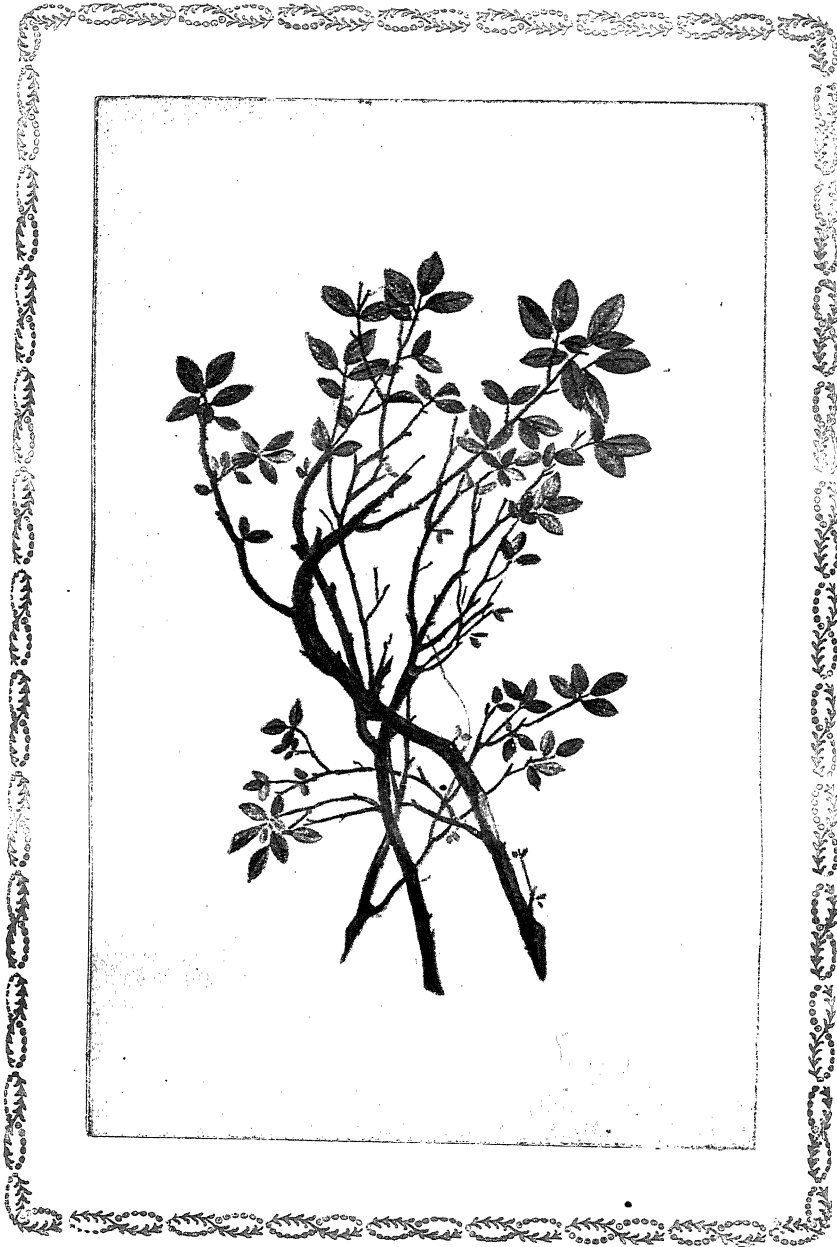
तालीस पत्र

चित्रकार—रूपलाल वैश्य

इसके फूल पीले होते हैं (देखो चित्र २)। इसके पत्ते भी बेलनाकार या वर्त्तुलाकार होकर सूखते हैं। इसमें भी एक प्रकारका उड्डायी तेल होता है जिसके कारण इसमेंसे सुगन्ध आती रहती है। इसकी उत्पत्तिका स्थान भी छोटे तालीसपत्रके समीप ही है।

काश्मीरी पत्ता

इसका लैटिन नाम रोडोडेण्ड्रोन कम्पानुलेटम है। पहाड़में इसको सरंगड़ और कश्मीरमें इसको गगार कहते हैं। इसके वृक्ष अमरूद वृक्षके बराबर होते हैं और पत्ते भी बड़े अमरूदके बराबर। इसका स्थान भी वही है जहाँ तालीसपत्र होता है। इसके पत्तोंमें भी एक प्रकारकी सुगन्ध आती है। इसके पत्तोंकी नस्प लेते हैं जो बड़ी उपयोगी है।

निघण्टुकार और तालीसपत्र

अब इसका हमारे निघण्टुकार क्या वर्णन देते हैं तथा उनके रूप-गुण-दोषों द्वारा हमें वह किस परिणाम पर पहुँचाते हैं इसकी कुछ चर्चा करेंगे।

आयुर्वेद निघण्टुओंमें तालीसपत्रको कर्पूरादि वर्ग की ओषधियोंमें दिया है। कर्पूरादि वर्गकी जितनी भी औषध हैं प्रायः सबमें किसी न किसी प्रकारकी गन्ध आती है, और देवदारु, सरल आदि देवदारु वर्गकी वनस्पतियोंको हरीतकी वर्गमें स्थान दिया है। जिस बरमी नामक वृक्षके पत्तोंको लोग तालीसपत्रके नामसे बेचते हैं वह देवदारु वर्गका है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि इस तालीसपत्रको निघण्टुकार तालीसपत्र मानते थे तो उन्होंने इसे हरीतकी वर्गकी ओषधियोंमें जहां पर देवदारु, सरल (चीड़) का वर्णन दिया है, कर्पूर वर्गमें इसे क्यों रक्खा ? वास्तवमें तालीसपत्र देवदारुसे भिन्न वर्गका है तभी तो उन्होंने इसे देवदारुसे भिन्न वर्गमें रक्खा।

कुछ वैद्य कहेंगे कि तालीसपत्रके जो नाम निघण्टुकारोंने दिये हैं उन नामोंमें तालीसका कुछ नाम धात्री पत्र भी धन्वन्तरि निघण्टुमें आया है। धात्री आमलेको कहते हैं। धात्री-पत्रसे अभिप्राय आमलेके से पत्तेसे है। आमलेके से पत्तों वाला तो बरमी नामका ही इस समयका प्रचलित तालीसपत्र है।

धन्वन्तरि निघण्टुमें देखा जाता है कि इसके धात्री-पत्र, शुकोदर तालीस, नील, पत्राढ्य यह नाम दिये हैं। किन्तु, राज-निघण्टुकारने पत्राख्य, अर्क-वेध, करिपत्र, घनच्छद, नीलाम्बर, तलाह्वय आदि इससे भिन्न ही नाम दिये हैं। तीसरे मदनविनोद निघण्टुमें इसका नाम तुलसीछद, तुलसीपत्र दिया है और देखिये, धन्वन्तरि निघण्टुकार तालीस पत्रको कफ-पित्तजित लिखता है। राजनिघण्टुकार कफ-वातहर कहता है। उक्त नाम और गुणोंका अन्तर बतलाता है कि धन्वन्तरि निघण्टुका तालीसपत्र और था, राजनिघण्टुकारका तालीसपत्र और था। हम इन शब्दोंकी कुछ व्याख्या देते हैं। शुकोदर अर्थात् तोतेके उदरपर जैसी परोंकी आकृति होती है ऐसी आकृतिवाला, नीलसे नील वर्ण, पत्राढ्यसे सघन आदि, धन्वन्तरि निघण्टुमें दिये इन सारे नामोंकी सार्थकता तो इस समय उस देवदारु वर्गके बरमी नामक वनस्पतिमें ही घटती हैं। राज-निघण्टुके नामकी सार्थकता इसमें नहीं घटती। राज-निघण्टुकारके दिये नामोंमें अर्क-वेध एक नाम है। अर्क कहते हैं सूर्यको, वेध कहते हैं वेधन करनेवाला या ढँकने वाला। देवदारु वर्गके वृक्ष इतने बड़े होते हैं कि उनकी डालियाँ व आमले जैसे पत्रोंका क्षत्र सूर्य-के प्रकाशको रोक ही नहीं सकता। किन्तु इसके विपरीत जिन तालीस-पत्रोंका चित्र दिया गया है, यह इतने सघन झाड़ीदार होते हैं, इनके पत्ते एक-के ऊपर दूसरे ऐसे ढंगसे इतने सघन होते हैं कि इनकी झाड़ीके भीतर दिनका अन्धकार बना रहता है। राज-निघण्टुका दूसरा नाम करिपत्र है। यह नाम भी बरमीमें नहीं घटता। करि कहते हैं हाथीको। हाथीकी सुण्डकी आकृति जिनके पत्रोंमें हो। आमलेके पत्रमें हाथीके सुण्डकी रचना नहीं बनती। किन्तु हमारे दिये

तालीस-पत्रमें यह विशेषता है कि उसके पत्र हरे तथा सूखनेपर बेलनाकार बनकर उनकी नोक और बेलनाकार गोलाई दोनों ही हाथीकी सूंड़की आकृतिको धारणकर उक्त नामको सार्थक बना देते हैं। राजनिघण्टुकारका दिया तीसरा नाम घनच्छद है। यह भी इसमें घटती है। सघनता इसके पौधेमें जितनी पाई जाती है इतनी अन्योंमें नहीं। राजनिघण्टुकारने एक नाम तलाह्व दिया है। तल-अह्व, पत्र तल भागका वर्णयुक्त व लोमयुक्त होना। यह बात देवदारु वर्गमें नहीं घटती। स्वामी भागीरथजी रसायनशास्त्रीने तलाह्व शब्दको अशुद्ध सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है। उन्हें इस बातका पता नहीं कि तल-अह्व शब्दमें समास है जिसका अभिप्राय शास्त्रकारका तल नाम वाला, अर्थात् तालीस (तल) नाम वाला। इन नामोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि राजनिघण्टुकारका तालीसपत्र धन्वन्तरि निघण्टुकारके तालीसपत्रसे भिन्न था, जिसका आगे चलकर मदनपाल निघण्टुकारने तुलसीछद, तुलसीपत्र नाम देकर बिलकुल ही स्पष्ट कर दिया। तुलसी-छदसे अभिप्राय है तुलसी जैसा पौधा। तुलसीपत्रसे अभिप्राय है तुलसी जैसा पत्र। न तो आमलकी पत्र वाला तालीसपत्रका वृक्ष तुलसी-छद जैसा छोटा होता है, न उसके पत्र ही तुलसी-पत्रसे मिलते हैं। इसलिये धन्वन्तरि निघण्टुकारका तालीसपत्र और यह दोनों एक न हुये। यह स्मरण रहे, छद शब्द तो कभी बड़े वृक्षोंके लिये प्रयुक्त नहीं होता। यहाँ भूल किसनेकी? भूल उस निघण्टुकारकी ही हो सकती है जिसके देशमें तालीसपत्र न होता था। जो तालीसपत्रके देशसे दूर देशका निवासी था। अब, पाठक स्वयम् तलाश करें कि धन्वन्तरि निघण्टुकार तथा राजनिघण्टुकार किस देशके निवासी थे, और भूल किसकी थी।

हमको तो इतिहास बतलाता है कि तालीसपत्र हिमालयमें होता है और उस देशके निवासी बतलाते हैं कि हम सदासे किसका उपयोग करते चले आये हैं। इससे भिन्न यूनानी हिकमतके ग्रन्थ बतलाते हैं कि औषधमें उपयोजित होनेवाला तालीसपत्र तुलसीपत्रवत् रूप वाला ही है, जिसका प्रान्तिक नाम तालीसरी, तालीसफर है। तालीसपत्रके पत्र शब्दका अपभ्रंश फर हुआ है। गुण-दोषोंकी दृष्टिसे प्रायोगिक परीक्षा, जो इसका पता लेना चाहें हमारे पाससे इन दोनोंके तरल सार तथा चूर्ण मँगाकर एक एक रोगमें इनका उपयोग करके देख लें कि कौन सा ठीक है। हमने इन दोनोंको अच्छी तरह प्रयोग करके देखा है। इनमें हमको निम्नलिखित गुण-धर्म दिखाई दिये हैं।

आमलक-पत्रा तालीसपत्रके पत्तोंमें कषायिन (टैनिन) अधिक होता है। इसलिये यह संकोचक विशेष है। इसके कसेलेपनके कारण शरीरकी मांसपेशी व त्वचापर संकोचनका प्रभाव पड़ता है, झिल्लियाँ सिकुड़ती व शुष्क हो जाती हैं। रक्तमें प्रगाढ़ता आती है इसीलिये इसे रक्त-स्रावपर देते हैं। आँत व पेटमें जब छाले पड़ जाते हैं जो आन्तरिक क्षतको यह लाभ पहुँचाता है। मुख-स्फोटमें या मुँहसे ख़ून जानेपर इसके कुल्ले करनेसे लाभ होता है। बच्चोंके सफेद मुँह आ जानेपर उसमें छिड़कनेसे लाभ देता है। फुफ्फुसरोग क्षय आदिमें इसके सेवनसे हानि होती है।

चित्रमें दिया तुलसीदला तालीसपत्र—पाचक ग्रन्थियोंका उत्तेजक अल्प संकोचक है, तथा-श्लेष्मिक कलाकी विकृतिपर विशेष प्रभाव डालता है। इसीलिये इसे पाचनार्थ, अग्निवर्द्धनार्थ, व अतिसार, वमन, श्लेष्मवृद्धि, क्षय, ज्वर आदिमें देते हैं। अधिक सेवनसे विषाक्त प्रभाव उत्पन्न करता है।

———

समालोचना

बृहत् आसवारिष्ट-संग्रह—लेखक—पं० कृष्ण-प्रसाद त्रिवेदी बी० ए० वैद्यराज, आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक—वैद्य आफिस मुरादाबाद। साइज़ २० × ३० = १६। पृष्ठ संख्या ४९२। मूल्य १।।।)

पुस्तकके आरम्भमें पं० कृष्णप्रसाद जी आयुर्वेद सूरिने ३३ पृष्ठकी भूमिका दी है, जिसमें आसवारिष्ट-निर्माण सम्बन्धी विषयपर—आजसे कोई १५ वर्ष पहिले आयुर्वेद पंचानन पं० पूनमचन्द जी व्यास ने आसवारिष्ट-संग्रह नामक एक पुस्तक लिखी थी, और इसी नामका एक छोटासा निबन्ध भी प्रकाशित किया था उस निबन्धके आधारपर—आपने इस भूमिकामें काफ़ी प्रकाश डाला है, और उनकी बतायी हुई बातोंको यथावत् उद्धृत किया गया है। इससे आगे आसवारिष्ट और उनकी शक्ति—नामसे ५ पृष्ठका एक छोटा सा निबन्ध पं० विश्वनाथ शास्त्री, प्रिंसिपल ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत ने दिया है। तत्पश्चात् रोगानुसार प्रयोग-सूची देकर आसव-अरिष्टोंका एक बहुत बड़ा संग्रह दिया गया है। इसमें आपने आजतकके आर्ष-अनार्ष वैद्योंके योग जो पत्रोंमें छपे हैं, प्रचलित अप्रचलित जहांतक हुआ, सभी योगोंका संग्रह कर दिया है। पुस्तक छपाई, सफ़ाई कागज व मोटाई आदिमें तो अच्छी है ही। विषय-विचारसे भी काफ़ी अच्छी है। प्रथम तो भूमिकामें जो पं० पूनमचन्द जी व्यास द्वारा आसवारिष्ट निर्माण विधि दी गई है, वह ठीक वैज्ञानिक पद्धतिसे मिलती है। दूसरे, इसमें कुछ अनुभूत चिकित्सा प्रणाली दी गई है, जो वैद्योंके लिये उपयोगी है।

आगे चलकर पं० विश्वनाथ शास्त्री ने कुछ आसवोंमें विटामिनका ललितहरि आयुर्वेद विद्यालयमें अनुसन्धानकर उनकी शक्तियोंका उल्लेख किया है। यदि वह सही हों तो हम कह सकते हैं कि यह अनुसन्धान विशेष महत्वके हैं। इससे आगे जो आसवारिष्टका अकारादिसे संग्रह दिया गया है, वह इतना बड़ा है कि उसमें सौके लगभग तो शास्त्रीय तथा ४५० के लगभग आधुनिक वैद्योंके निर्मित योग आ गये हैं। वैद्योंको ऐसी पुस्तक एक बार अवश्य देखनी चाहिये।

आयुर्वेद दर्शन—लेखक व प्रकाशक—वैद्य महादेव चन्दशेषर पाठक, ७३ जूनी कसेरा वाखल इन्दौर। साइज़ २० × ३० = १६। पृष्ठ संख्या २१५। मूल्य १।।)

पुस्तकका विषय उसके नामसे ही स्पष्ट है। इस पुस्तकमें आपने प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंमें दिये आत्मवाद, सत्ववाद, रसवाद, धातुवाद, कर्मवाद, स्वभाववाद, प्रजापतिवाद, कालवाद आदिका अच्छी तरह विवेचन करते हुये अन्तमें त्रिदोषवादकी स्थापनाकी है।

पुस्तक अपने विषयकी अच्छी है, और पाण्डित्य पूर्ण है। किन्तु, जिस प्रधान वादोंको दिखा कर त्रिदोषवादकी पुष्टिकी गई है, आधुनिक विज्ञान-युगमें इनका कितना महत्व है? यह पाठकोंसे छिपा नहीं पुस्तक पठनीय है।

(१) अर्क गुण विधान, (२) पलाण्डु गुण विधान, (३) बबूल गुण विधान, (४) अरिष्ट गुण विधान, (५) तथा लवण गुण विधान—ये पांच पुस्तकें डाक्टर गणपति सिंह वर्म्मा रसायन कार्यालय संगरिया, बीकानेर द्वारा भेजी प्राप्त हुईं।

उक्त पुस्तकोंके लेखक कोई मौलवी हकीम मोहम्मद अबदुल्ला साहब हैं। मूल पुस्तक शायद उर्दूमें लिखी गई होगी• जिसका हिन्दीमें सम्पादन डाक्टर गणपति सिंह जीने किया है। समस्त पुस्तकोंका मूल्य २=) है।

प्रत्येक पुस्तकमें अपने अपने नामकी वनस्पतियोंके

गुण दोषोंका बड़े विस्तारसे वर्णन दिया गया है, तथा एक-एक वनस्पतिका किन-किन रोगोंपर किस-किस तरह प्रयोग किया जा सकता है, उसका खूब विवेचनापूर्ण उल्लेख है। प्रत्येक पुस्तक अपने ढंगकी उत्तम तथा अनुभवमें लेने योग्य है।

संदिग्ध निर्णय वनौषध-शास्त्र—प्रथम भाग। लेखक व प्रकाशक रसायन शास्त्री पं० भागीरथ स्वामी आयुर्वेदाचार्य। १४३ हरीसन रोड कलकत्ता। साइज़ २० × ३० = ८। पृष्ठ संख्या ११२। चित्र संख्या ४०। मूल्य २)।

इसमें अकारादि क्रमसे ३३—३४ वनस्पतियोंके चित्र तथा वर्णन और उनके भेदोंपर प्रकाश डाला गया है। किन्तु सारी पुस्तक पढ़ जानेपर इस रहस्यका उद्घाटन न हुआ कि आपकी पुस्तक सन्दिग्ध-वनौषधियोंका निर्णय करनेके लिये लिखी गई है, या वनौषध निघण्टु है।

यदि यह कहा जाय कि इसमें सन्दिग्ध वनौषधियोंका निर्णय किया गया है, तो यह बात अकरकरा नामसे दी गई पहिली ही वनस्पतिमें ग़लत सिद्ध होती है। अकरकरा सन्दिग्ध नहीं।

यह सब जानते हैं कि अकरकरा विदेशी जड़ी है। अफ्रिका, अलजीरिया आदि देशोंसे आती है। यह चीज़ मँहगी है और थोड़ी मात्रामें आती है, माँग अधिक है इसीलिये नकलीकी भरमार है। आपने यह कहीं नहीं बतलाया कि अकरकरा सन्दिग्ध कब था, और आपने इसका निर्णय किस तरह किया? इसी तरह इससे आगे दूसरी वनस्पति अकलबेरकी सन्दिग्धतापर कुछ नहीं लिखा। इससे आगे आपने तीसरी वनस्पति दी है अकरी (अक्री) या पनीर। इसके सम्बन्धमें आप लिखते हैं, "यह अश्वगन्धाकी जातिका छोटासा कठिन सघन वृक्ष है। पंजाब, सिन्ध, अफ़गानिस्तान आदि देशोंमें होता है। इसके पत्ते हरे तथा शाखाओंपर श्वेत रोम होते हैं। इसके फल श्वेत छोटे बेरके समान और दण्डीकी तरफसे चिपटे होते हैं। यह विशेष पुष्पोंसे प्रायः आच्छादित रहता है। इसके बीज छोटे-छोटे लम्बे-लम्बे विशेष परिणामवाले अग्रभागमें कुछ मोटे दानेदार मूत्रपिण्डाकृतिवाले होते हैं। इसके फल देखनेसे साधारणतासे रक्तिकाके समान लाल दृष्टिगत होते हैं। विशेष दृष्टि देनेसे पूर्णतया काकनजके समान मालूम पड़ते हैं।" आगे चलकर आप लिखते हैं, "यह इस नामसे आयुर्वेदमें नहीं मिलती परन्तु मेरी समझमें यह अश्वगन्धाकी जातिकी औषध है। देशभेदसे तथा व्यवहारसे केवल इसके बीजोंका व्यवहार होनेका कारण उसी देशके नामसे भिन्न २ नामों वाली बनकर विख्यात हो गयी। विशेष अश्वगन्धा और काकनजमें देखो। सिद्धान्तमें यू० पी०, बंगाल आदिमें होनेवाली अश्वगन्धा, काकनज, अक्री, पनीर सब एक ही दवाई हैं। भिन्न केवल छोटे बड़े २ पत्तोंका भेद है।" अकरी या पनीरके सम्बन्धमें आपने जो कुछ लिखा है, वह कितना अनर्गल और सन्दिग्ध है। पाठकोंको इस ओर ध्यान देते ही पता लग सकता है। आप लिखते हैं, यह पंजाब, सिन्ध, अफ़गानिस्तानमें होता है। यह तो पंजाबके किसी ज़िलेमें नहीं होता। हाँ सिन्धके कुछ ज़िलोंमें तथा अफगानिस्तानमें होता है। आप लिखते हैं इसके कठिन सघन वृक्ष होते हैं। कैसे कठिन? पत्ते हरे तथा शाखाओंपर श्वेत रोम होते हैं। पत्ते तो हर एक वृक्षके हरे होते हैं; किन्तु क्या हरियाली देखकर ही पनीरके पौधेकी शकलका पता लग जाया करता है। क्या पत्तोंकी आकृति नहीं होती? फिर आप कहते हैं फल अति छोटे कितने छोटे? बेरके समान (कौनसे बेरके समान?) दण्डीकी तरफ चिपटे होते है। कैसे चिपटे? कितने चिपटे? यह आपने कुछ नहीं बतलाया। फिर आप कहते हैं यह विशेष पुष्पोंसे प्रायः आच्छादित रहता है। विशेष पुष्पोंसे क्या मतलब? और प्रायः आच्छादित रहता है; क्या बारहो महीना आच्छादित रहता है? क्या अर्थ है या कुछ और। आगे आप लिखते हैं—इसके बीज छोटे-छोटे लम्बे-लम्बे विशेष परिणाम वाले। यहाँपर

आपने यह नहीं बतलाया, कितने छोटे ? कितने लम्बे ? विशेष परिणाम वालेका अर्थ वनस्पति खोजनेवाला कहाँ ढूँढ़ेगा, यह स्वामी भागीरथ जीने नहीं बतलाया। इसी पंक्तिमें आप लिखते हैं, इसके बीज कुछ मोटे दानेदार मूत्रपिण्डाकृति वाले होते हैं। कुछ मोटे दानेदार, कितने मोटे दानेदार ? मूत्रपिण्ड (वस्ति) की आकृति कैसी ? यदि साथमें दे देते तो पढ़ने वाले-को शरीर शास्त्र तो न देखना होता। आगे आप कहते हैं विशेष दृष्टि देनेसे पूर्णतया काकनजके समान मालूम पड़ते हैं। विशेष दृष्टि यदि न दी जाय तो फिर शायद कुछ अपूर्ण और कुछ और भी बन जानेकी सम्भावना है। फिर आप कहते हैं यह अश्वगन्धकी जातिकी औषध है। देश भेद तथा व्यवहारसे केवल इसके बीजोंका व्यवहार होनेका कारण उस देशके नाम-से भिन्न भिन्न नामों वाली बनकर विख्यात हो गई है। आपकी उक्त पंक्ति कितनी असम्बद्ध, असंगत है। अश्वगन्धाकी जाति होकर फिर वही देश-भेद और व्यवहार-भेदसे उस देशके नामसे भिन्न नामों वाली बन गयी। क्या ही अपूर्व व्याख्या है ? क्या इसीका नाम है सन्दिग्ध वनौषध निर्णय शास्त्र ? धन्य है महाराज ! इस वैज्ञानिक युगमें आपके सन्दिग्ध वनौषध निर्णय-की जितनी भी प्रसंशाकी जाय थोड़ी है। कहाँ तो रसायनशास्त्रीजीने पुस्तकका इतना बड़ा लम्बा सन्दिग्ध-निर्णय-वनौषध-शास्त्र नाम दिया। कहाँ व्याख्याका यह हाल—नाम बड़े और दर्शन थोड़ेकी उक्ति आपकी इस पुस्तकमें चरितार्थ होती है।

इस पुस्तकको वनौषध-शास्त्रका कोई अंश कहें या सन्दिग्धोत्पादनीय वनौषध भण्डार। जिसमें यही एक दो वनौषधियोंके सम्बन्धमें आपके अनर्गल विचार नहीं, प्रत्युत आधेके लगभग दी हुई वनौषधियोंका यही हाल है। इस पुस्तकका शास्त्र नाम देकर आपने शास्त्रके नामको ही बट्टा लगा दिया है। या तो श्रीमान् भागी-रथ जी शास्त्रीको शास्त्र शब्दकी परिभाषाका पता नहीं या आप त्रेतायुगकी वसुन्धरापर अबभी विचरणकर रहे हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। आपके लगन तो बड़ी भारी है, यशकी इच्छासे बीड़ा तो बड़े भारी काम-का उठा लिया। किन्तु स्वयम् नहीं कर सकते थे, तो किसी वनस्पति शास्त्रज्ञकी सहायता ले लेते। इससे कमसे कम आप उपहासके पात्र तो न बनते।

आपने लिख तो मारा, अकरी, अश्वगन्धाका भेद या अश्वगन्धा ही है। किन्तु कौन सा मूर्ख वनस्पति ज्ञाता होगा जो आपकी इस अनर्गल कल्पनाको मान लेगा। इस समय वनस्पति शास्त्रका इतना अच्छी तरह वर्गीकरण हो चुका है, इतना अधिक उन्हें कक्षा व जाति उपजातिमें बांटकर जाना जा चुका है जिसके सम्बन्धमें सन्दिग्धता या भूलकी सम्भावना बहुत कम रह गयी है।

अश्वगन्धा या अकरी कण्टकारी वर्गका पौधा है। इस वर्गमें छोटी कटेली, बड़ी कटेली, बैंगन, जंगली बैंगन, लाल मिर्च, रस भरी, काकनज (नासा) काकमाची (मकोय), टमाटर, आलू (पटेटो), असगन्ध, पनीर डोडी आदि कोई १५—१६ वनस्पतियाँ आती हैं। छोटी कटेली, बड़ी कटेली, बनभाँटा और बैंगन यह सब समान जातिके पौधे हैं। किन्तु स्वामी भागीरथ जीके कथनानुसार छोटे बड़े पौधों, पत्तों और फलोंको केवल नामान्तर रूपान्तर भेद मानकर एक ही मानने लगें तो हमें भी वनस्पतियोंके लिये भी जात-पाँत-तोड़क मण्डल स्थापन करना पड़ जायगा और इसके प्रचारार्थ आपको ही सर्वप्रथम लीडर चुनना होगा। जभी इसका प्रचार हो सकता है अन्यथा कठिन काम है।

यह ठीक है कि असगन्ध और पनीर दोनों समीप जातिके पौधे हैं किन्तु दोनों न तो बिलकुल रचना रूपमें एक हैं, न गुण-स्वभावमें। असगन्धका लैटिन नाम विथानिया कोएगुलन्स है और पनीरका विथानिया सोमनीफेरा है। असगन्धका आयुर्वेदमें मूल वर्त्ता जाता है। पनीरके फल वर्त्ते जाते हैं। वह भी आयुर्वेदमें नहीं, यूनानीमें तथा स्वतन्त्रतया पंजाब-सिन्धमें, बाल रोगोंपर। दोनों ही एक देशमें नहीं

होते। असगन्ध मारवाड़, काठियावाड़, गुजरात तथा कुछ सी० पी० के प्रान्तमें होता है। पनीर सिन्ध सीमासरहदमें होता है। असगन्धके २ फुट ऊँचे पौधे होते हैं। पत्ते भी ३—४ इंच लम्बे, २—३ इंच चौड़े अश्वकर्णवत्। पनीरके पत्ते इससे दुगुने बड़े तथा आकृतिमें इससे बहुत भिन्न होते हैं। फल भी असगन्धके गोल होते हैं, पनीरके गावदुमाकृति। इतना महत् अन्तर होते हुये भी आप इनको एक बनाकर वैद्य समाजमें सन्दिग्धता उत्पन्न कर रहे हैं, या कि सन्दिग्धताका निर्णय। यह पुस्तक पढ़कर पाठक स्वयम् अनुमान कर लें। जिस शैलीसे आप इस ग्रन्थकी रचना कर रहे हैं और जिस क्रमसे आप चले हैं मेरे विचारमें इस शैली और क्रमसे इस पुस्तकका दिया नाम सार्थक नहीं होता। यदि इस पुस्तकका नाम आप भागीरथ-निघण्टु रखते तो बहुत अच्छा था। इससे आपकी कीर्त्ति भी चिरकालतकके लिये अमर हो जाती।

—ह० श०

विज्ञानकी कहानियाँ (प्रथम भाग)—ले० श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०, प्रकाशक नवशक्ति प्रकाशन मन्दिर, पटना। पृ० सं० २१४। मूल्य १) अजिल्द; १॥) सजिल्द।

श्री कपूरजी सर्व-सामान्य-रुचिका वैज्ञानिक साहित्य लिखनेमें सिद्धहस्त हैं और आपके मनोरंजक लेख पत्र पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी अधिकांशतः ऐसे लेखोंका संग्रह है। इसमें सूर्य और पृथ्वीकी आयु, दूरबीन, गुब्बारा, वायुयान, चन्द्रलोककी यात्रा, दूरदर्शन, बोलते चालते चित्र, बेतार और रेडियो विषयोंपर बहुत ही सुन्दर लेख हैं जिनके पढ़नेमें पाठकोंको आनन्द आवेगा ? पुस्तक विद्यार्थियोंके तो विशेष कामकी है। विषय वैज्ञानिक होते हुए भी भाषा सरल और रोचक है। आशा, है जनता इस पुस्तकका समुचित आदर करेगी।

जीवटकी कहानियाँ—ले० श्री श्यामनारायण कपूर। प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई। मूल्य १)। पृ० सं० १५२ ?

कपूरजीकी यह पुस्तक भी उतनी ही अच्छी है जितनी ऊपर वाली। इसका विषय तो और भी रोमाञ्चकारी है। हिमालयकी सर्वोच्च चोटीतक पहुँचने के जो पराक्रमपूर्ण प्रयत्न किये गये हैं, उनका विवरण इसमें देखिये। दक्षिण ध्रुवकी खोजमें जानको हथेलीपर रखकर जिन वीरोंने अपना पैर आगे बढ़ाया, उनका विवरण भी इसी पुस्तकमें है। शिफलीकी घोड़ेपर दस हजार मीलकी यात्रा कितनी कौतूहलपूर्ण है। सिनेमाकी कलाको पूर्ण करने और अनेक अभिनयोंको चित्रित करनेके लिये कैसे-कैसे बलिदान दिये गये, उनको भी आप पढ़िये। भयानक जंगलमें गरुडकी यात्रा तो चित्तको दहला देने वाली है।

कपूर जी ने इस पुस्तकको लिखकर भारतकी वर्त्तमान पराक्रमहीन जनताकी आँखें खोल देनेका प्रयत्न किया है। यह पुस्तक आबाल-वृद्ध सबके काम की है।

—सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक-जगतके ताज़े समाचार

[ले० श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० एस-सी०]

लड़ाईके जहाजोंको ९ भीमकाय तोपों द्वारा २० मील दूरीपर गोलोंकी वर्षा

यूनाइटेड स्टेट्सकी जल-सेनाने 'वाशिंगटन' और 'नार्थ कैरोलीना' नामक दो लड़ाईके जहाज़ोंपर ९ बलिष्ट तोपोंके लगानेकी व्यवस्थाकी है। इन तोपोंसे २० मील दूर शत्रुपर एक-एक टनसे भी भारी गोलोंको छोड़ भीषण गोला-वर्षा हो सकती है? इन तोपोंमेंसे हर एकका मुँह १६ इंचका है और हर एक लगभग १०३ टन भारी और ५४ फुट लम्बी है। जलसेनाके विशेषज्ञोंको इंजीनियरिंगकी यह एक जटिल समस्या है कि किस प्रकार इन तोपोंको कँगूरोंमें एक-एकमें तीन-तीनके हिसाबसे लगाएँ कि इनसे गोले आसानीसे और ठीक-ठीक निशानेपर छोड़े जा सकें और साथ-साथ जहाजकी चालपर या उसकी मशीनोंपर कोई बुरा असर न हो।

तेलके टैंक या हौज़में बनानेसे तोपोंका धक्का न लगेगा। ये तोपें बिजलीसे चलेंगी और केवल १०० जानकार आदमी भी रखबारीके लिए रहेंगे। गोले ३००० फुट प्रति सेकंडकी गतिसे तोपकी नलीमेंसे निकलेंगे और २० मीलकी दूरीपर १ मिनटमें पहुँच जायँगे। इन तोपोंकी गणना संसार की सबसे बलिष्ट तोपोंमें होगी।

इमारतोंमें झामा पत्थरका प्रयोग

इटलीमें झामा पत्थरसे इमारतोंके वास्ते ईंटें और बड़े-बड़े टुकड़े बन रहे हैं। ये ईंटें हल्की होती हैं, इनपर तरीका असर नहीं होता और ये आरीसे चीरी जा सकती हैं और इनमें कीलें भी ठोंकी जा सकती हैं। इनपर कंकरीटकी अपेक्षा गरमी और ध्वनिका कम असर होता है।

हवामें मिलोंसे निकली हुई कबन-द्वि-ओषिद के मिल जानेसे मनुष्य जीवनको कोई संकट नहीं।

यद्यपि पिछले ५० वर्षोंमें १८० अरब टन कर्बन-द्वि-ओषिद खनिज कोयलेके जलनेसे पैदा होकर हवामें मिल गई है, तब भी ऐसी कोई सम्भावना नहीं कि इससे वायु इतनी दूषित हो गई हो कि मनुष्य-जीवन-निर्वाहमें कोई आपत्ति आवे। वनस्पतियोंके क्षयमें और श्वासोच्छ्वासमें काफी कर्बन-द्वि-ओषिद सोख ली गई है और सोखी जा रही है और वापिस पृथ्वीपर पहुँच रही है। इसके अलावा आवश्यकतासे अधिक गैस जो हवामें मिली होती है उसका ९० प्रतिशत महासागरोंमें जा पानीमें घुल जाता है। डा० रॉबर्ट विलसनने हिसाब लगाया है कि यदि गैस बिल्कुल भी किसी रूपमें हवासे न निकले तो इसका समाहरण वायुमें एकका दो हजारवाँ भाग प्रतिशत अर्थात् सामान्य दशाके ०·०३ से ०·०३२ प्रतिशत हो जायेगा। इस वैज्ञानिकका कहना है कि ऐसा विश्वास कदाचित न होना चाहिए कि रसायन और उद्योग इस कल-युगमें हवामें इतना परिवर्तन कर देंगे कि जीवन-निर्वाह संकटमय हो जायेगा।

विज्ञानके प्रेमियोंके प्रति

विज्ञान परिषद्,
प्रयाग

श्रीमन्महोदय,

संभवतः आप इस बातसे परिचित होंगे कि विज्ञान-परिषद् प्रयागकी स्थापनाको अब २५ वर्ष हो जायँगे। यह परिषद् हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यको प्रोत्साहन देनेके उद्देश्यसे खोली गई, और इस समय तक इसने जो कार्य्य किया है, वह सर्व विदित है। इस परिषद्के अब तक निम्न गण्यमान व्यक्ति सभापति रह चुके हैं—स्व० डा० सर सुन्दरलाल, महामना पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीमती एनी बीसेंट, महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, डा० नीलरत्न धर, स्व० डा० गणेशप्रसाद और डा० कर्मनारायण बहाल। परिषद् समस्त भारतवर्षकी एक प्रमुख संस्था है। संयुक्त प्रान्तकी गवर्नमेंटसे इसे ६००) वार्षिक सहायता मिलती है।

हम जानते हैं कि आपको हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यसे बहुत रुचि है। परिषद्की इस रजत जयन्तीके अवसर पर हमारा विचार यह है कि हम परिषद्की कौंसिलके सामने यह प्रस्ताव रक्खें कि आप परिषद्के फ़ेलो निर्वाचित किये जायँ। हमें विश्वास है कि आपको इसमें आपत्ति न होगी। कृपया अपनी स्वीकृतिसे नीचे दिये फ़ार्म पर हमें सूचित करें। फ़ेलो होनेका वार्षिक शुल्क पहले १२) था, पर अब घटाकर ५) कर दिया गया है जो कि बहुत ही कम है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक फ़ेलोको मासिक पत्र 'विज्ञान' और परिषद्की प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

हमें आशा है कि आप हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करेंगे और वैज्ञानिक साहित्यके प्रचारमें अपना सहयोग देंगे। कृपया शीघ्र उत्तर दें जिससे हम समय पर आपका नाम प्रस्तावित कर सकें।

आपका,
सत्यप्रकाश
डी० एस-सी०
सम्पादक
विज्ञान

सेवामें

श्री संपादक जी, विज्ञान, प्रयाग

श्रीमन्महोदय,

मुझे हर्ष है कि आप मेरा नाम परिषद्के फ़ेलो होनेके लिये प्रस्तावित कर रहे हैं। मुझे इसमें कोई आपत्ति न होगी और ५)' वार्षिक शुल्क नियमानुसार देता रहूँगा। परिषद्की कौंसिलकी स्वीकृतिसे मुझे सूचित करें।

आपका

(नाम व पूरा पता)

अगस्त, १९३८

मूल्य ।)

भाग ४७, संख्या ५

प्रयागकी विज्ञान-परिषदका
मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद-
विज्ञान भी सम्मिलित है
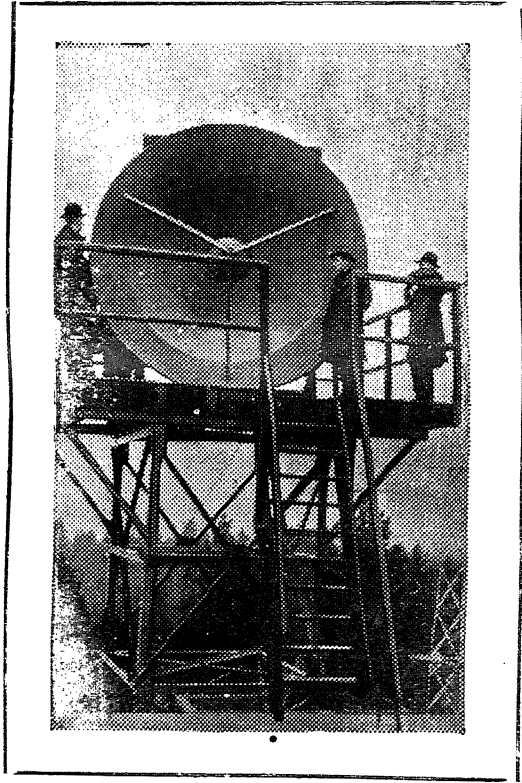
बेतारके समाचार व गाने आदि बहुतसे व्यक्तियोंको एक साथ सुनानेके लिये यह भीमकाय लाउड स्पीकर काममें लाया जाता है। यह संसारके इस प्रकारके सबसे बड़े यंत्रोंमें से है।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या २८७

वार्षिक मूल्य ३)

विषय-सूची

नोट—आयुर्वेद-संबंधी बदलेके सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७ | प्रयाग, सिंहार्क, संवत् १९९५ विक्रमी अगस्त, सन् १९३८ | संख्या ५

संकुचित वायुके चमत्कार

आश्चर्य्यजनक कार्य्योंमें वायुका प्रयोग

[ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

कहा जाता है कि रावणने अपने कारावासमें सभी देवताओंको क़ैद करके रख छोड़ा था। ये देवता रावणके दास थे। वायु भी रावणके वशमें थी। कुछ भी हो, आजकल तो वैज्ञानिकोंने वायुको अपना सेवक बना लिया है। वही वायु जिसे हम श्वास द्वारा अपने भीतर ले जाते हैं, वही वायु जिसके कारण आग जलती है, वही वायु जो सबके जीवनका आधार है आज वैज्ञानिकोंके हाथकी कठपुतली बनी हुई है। यों तो सभी जानते हैं कि यदि वायु अनुकूल दिशामें बह रही है, तो नौकामें पाल बाँध लिया जाता है, और फिर नाव बिना पतवार चलाये ही अपने आप नदीमें चली जाती है। हवासे चलनेवाली चक्कियाँ भी आपने सुनी होंगी। यदि किसी पहाड़की चोटीपर; या पहाड़ी घाटीमें निरन्तर एक दिशामें हवा चल रही हो तो पंखा लगे हुए यंत्रोंकी सहायतासे चाहें जो भी काम निकाला जा सकता है।

वायुके इतिहासमें नया युग

पर आजकल तो वायुके इतिहासमें एक नया युग आ गया है। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तूके उस

प्रयोगको देखिये और सोचिये कि तबसे अबके संसारमें कितना अन्तर आ गया है। अरस्तूने एक फूली कुप्पी ली और उसे तौला, फिर उसने पिचकाकर उसके भीतरकी हवा निकाल दी। फिर तौला। पर उसे इन दोनों तौलोंमें कोई अन्तर न मिला। इससे उसने परिणाम निकाला कि हवामें कोई बोझ नहीं होता। और भी अनेक विद्वानोंने इसी बातको ठीक समझा। एक ओर तो यह समझा गया कि हवामें कोई बोझ ही नहीं है, और आज हम जानते हैं कि प्रति वर्ग इञ्च यह हवा ७ सेरसे अधिक ही बोझा हमारे प्रत्येक पदार्थपर डाल रही है। वह तराजू जो एक फुट चौड़ी और एक फुट लम्बी है उसके पलड़ोंके ऊपर जो हवा है उसके पलड़ेपर हवाका २५-३० मन बोझा थमा हुआ है। पर अरस्तूका प्रयोग तो निरर्थक था। कुप्पीको पिचकाकर हवा तो निकाल दी गई, पर पिचकी हुई कुप्पी पलड़ेपर जब रक्खी गई, तब भी तो पलड़ेपर उतनी ही हवा रही जितनी पहले थी. अन्तर होता तो कैसे ? अन्तर तो केवल इतना था, कि एक बार हवा कुप्पीके भीतर थी, और पिचकनेपर दूसरी बार बाहर।

अरस्तूके बाद गैलिलिओने अधिक उचित रूपसे प्रयोग किया। उसने एक बार हवासे साधारणतः भरा हुआ गोला तौला और फिर उसी गोलेमें अधिक दबावपर भरी हुई हवा लेकर। दूसरी बार हवाका बोझ भी था। इससे इटली-देशस्थ उस वैज्ञानिकको यह परिणाम निकालना चाहिए था कि हवामें बोझ होता है, पर उसने ऐसा न किया।

सन् १६५० ई० में गैरिकीने एक प्रयोग किया। उसने काँचके एक बड़े गोलेमेंसे हवा निकाल ली, और ख़ाली गोलेको तौला। फिर हवा भरी और दोबारा तौला। उसने यह पाया कि एक घनफुट वायुमें सवा औंसके लगभग बोझ होता है। हवा पानीसे ७७३ गुना हलकी है। हम वस्तुतः हवाके उस महासागरकी तहमें रह रहे हैं जो १०० मीलसे भी अधिक गहरा है। इस अदृश्य वायुका हमारे ऊपर प्रतिवर्ग फुट २११६ पौंड दबाव पड़ रहा है। गैरिकीने हवा निकाल लेनेके एक पम्पका आविष्कार किया था। तबसे हवाके विषयमें हमारा ज्ञान अब अधिक बढ़ने लगा है।

पम्प द्वारा हवा भरी भी जा सकती है और ख़ाली भी की जा सकती है। दोनों कामोंके पम्प अलग-अलग तरहके होते हैं। इन दोनोंकी सहायतासे अब तो हवा अपने वशमें कर ली गई है और इससे मन चाहे काम लिये जाने लगे हैं। हवाके इतिहासमें तबसे तो अब एक नया युग आ गया है।

कुएँमें लगे पम्प

कुएँमें लगे हुए पम्प तो आपने देखे होंगे। पम्पको खटखट चलाइये। आप देखेंगे कि जहाँ आपने तीन-चार हाथ मारे कि कुएँके धरातलवाला पानी २०-२५ फुट ऊपर आकर आपके पास गिरने लगा है। वायुकी सहायतासे ही आपने यह काम किया। वायुमंडलका दबाव ही पानीको एक ओर नीचे ढकेलकर दूसरी ओर पिस्टनके साथ-साथ रिक्त नलीमें ऊपर चढ़ा रहा है। वायुसे तुमने यह काम निकाला। हज़ारों मन पानी इस प्रकार धरातलसे ऊँचाई तक पहुँचाया जा सकता है। तुम तो समझते होगे कि तुम पिस्टनको चलाकर अपने बलसे पानी ऊपर खींच रहे हो, पर यह बात ग़लत है। यदि ऐसा होता, तो तुम ३४ फुटके ऊपर भी पानीको चढ़ा सकते। पर ऐसा क्यों नहीं कर सकते ? बात तो यह है कि पम्पमें पानी तुम नहीं उठा रहे, यह तो वायुमंडलकी हवा उठा रही है, और प्रति वर्ग इंच वायुमंडलका उतना ही दबाव है जितना ३४ फुटके लगभग पानीके स्तम्भका। अतः इतनेसे ऊँचा पानी उठ ही नहीं सकता। हवा तो इतनेसे भी अधिक ऊँचे ४०-५० फुट स्तम्भकी भी निकालकर दूरकी जा सकती है, पर पानी सदा अधिक-से-अधिक ३४ फुट ही चढ़ेगा। इसका चढ़ना वायुमंडलके

दबावपर निर्भर है। पहले लोग इस बातको नहीं समझते थे, और उन्हें आश्चर्य्य होता था कि अति प्रयत्न करनेपर और हवा निकाल लेनेपर भी ३४ फुटसे अधिक ऊँचाईपर इंजीनियर लोग पानी क्यों नहीं चढ़ा सकते। बात तो यह है कि पानी तो वायुमंडलके दबावसे चढ़ता है और इस दबावकी मात्रापर ही निर्भर है।

पानीको ऊँचाईपर चढ़ाना

हमने यह देखा कि वायुमंडलके साधारण दबावसे पानी कुएँकी तहसे ऊपर कैसे आ गया। एक गिलासमें ऊपरतक लबालब पानी भरिये। अब किसी काँचकी नली द्वारा इसके अन्दर हवा फूँकिये। आप देखेंगे कि पानी गिलासमेंसे नीचे बहा जा रहा है। यह तो मामूली बात है। जितनी हवा पानीमें गई उसके बुलबुलोंने उतना ही पानी बाहर ढकेल दिया। जो पानी वायुमंडलके साधारण दबावमें स्थिर था, वही वायुका अधिक दबाव पड़नेसे ऊपर उठ आया। इसी सिद्धान्तपर अब तो बड़े-बड़े नगरोंमें पानी ऊपर बनी बनी हुई टंकियोंमें चढ़ाया जाता है। गिलासकी जगह एक सीधे लम्बे मोटे नलकी कल्पना करो जिसमें पानी भरा हुआ है। इसी नलमें नीचेतक एक दूसरी पतली नली चली गई है, जो नीचे तहमें पहले नलमें संयुक्त है। इस नलीमें अतिदबावपर दबी हुई हवा है। वस्तुतः इस नलीके ऊपर हवा दबानेवाला यंत्र लगा है जिससे नलीके अन्दर दबावकी यथेष्ट मात्रा रक्खी जा सकती है। बस, हवाके इस दबाव द्वारा पानी यथेष्ट ऊँचाईतक पहुँचाया जा सकता है। बड़े-बड़े नगरों और गाँवोंमें, हमारे देशमें और विलायतमें विशेषकर पानी अति ऊँचाईपर बनी हुई टंकियोंमें इकट्ठा किया जाता है; और वहींसे नगर और गाँवभरमें नलों द्वारा भेजा जाता है।

जहाज़ोंमें भी इसी पद्धतिसे एक कमरेसे दूसरे कमरेमें पानीके साथ बालू-कचरा-पत्थर आदि भेजा जाता है जिससे जहाज़ उलार या दाबू न हो जाय। इस कचरे-पत्थर द्वारा जहाज़के भिन्न स्थानोंमें बोझा नियमित किया जाता रहता है। इस कार्यमें दबाववाली हवाका विशेष कार्य्य है।

बहुत-सी रसायनशालाओंमें जहाँ अम्ल आदि भयंकर द्रव पदार्थ बनते हैं, यह समस्या रहती कि उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर कैसे ढोया जाय। पर दबाववाली हवाकी सहायतासे यह काम बड़ी आसानीसे किया जाने लगा है। द्रवको हाथसे या और किसी चीज़से उठानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती, वह स्वयं ही ऊपर उठा चढ़ा आता है।

इस विधिमें केवल एक दोष था, वह यह कि दबाववाली हवा, जिसका एक बार प्रयोग हो गया, फिर इकट्ठी नहीं की जा सकती थी। पर अब तो नये अन्वेषणोंमें इस दोषका भी निराकरण कर दिया गया है। 'वापसी-वायु-पम्प' (रिटर्न-एअर-पम्प) बनाये गये हैं। इस मशीनमें हवा दबानेवाले यंत्रमें दो नल लगे होते हैं। एक स्विच ऐसी लगी होती है जिससे स्वयं हवाके प्रवाहकी दिशा उलट जाती है; और एक ओर तो इस हवामें पानी ऊपर चढ़ता रहता है और दूसरी ओरसे वही हवा निकलकर हवा दबानेवाले यंत्रमें वापस चली आती है।

दुर्घटनाओंकी आशंका

वायुमंडलकी हवासे थोड़े-बहुत ऐसे काम तो लिये जाते रहे जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। पर हवाको कितना दबाया जा सकता है, यह भी जान लेना चाहिए। हवाको दबाकर इसका भार और बल बढ़ाया जा सकता है। वायुको इतना दबाया जा चुका है कि इसका दबाव वायुमंडलके दबावका ४००० गुना हो गया। प्रति वर्ग फुट जितना दबाव मामूली अवस्थामें था, वह बढ़कर अब ४२५०००० सेर या १ लाख मनसे अधिक हो गया। अब ज़रा सोचिये तो! १ वर्ग फुट क्षेत्रफलपर १ लाख मनका दबाव सहारना कुछ आसान बात तो है नहीं।

काँचके बर्त्तन इतने दबावमें पिसकर चूरचूर हो जायेंगे। धातुके बर्त्तन भी कहाँतक सँभालेंगे। इतने दबाववाली हवाको रखियेगा किसमें ? एक लाख मनकी तो बात जाने दीजिये। दस-बीस हज़ार मन प्रति वर्ग फुट दबाववाले बर्त्तन चूरचूर हो जाते हैं। इनको खोलने और बन्द करनेमें भयंकर दुर्घटनाओंका होना मामूली बात है; अनेक बार जान जोखिम हो चुके हैं। अधिक-से-अधिक ६-७ हज़ार मन प्रति वर्ग फुट (५० मन प्रति वर्ग इंच) दबाव काममें लाया जा सकता है।

सायकिलका पम्प

दबाववाली हवाका दैनिक महत्व तो सायकिलमें है, यह सब जानते हैं। सायकिलके ट्यूबमें पम्पसे हवा भरी जाती है, और इस हवाके बलपर ही पहिया भारी-से-भारी मनुष्यके बोझको सँभाले रहता है। ४-५ मनका बोझ तो पहियोंपर आसानीसे सँभल सकता है। मोटरके टायर-ट्यूबमें भी यही हवा भरी जाती है और फिर तो पहियोंपर सैकड़ों मनका बोझा सँभल जाता है। मोटर-लॉरी तो आपने देखी ही होगी। पहियोंमें भरी हुई वह दबाव वाली हवा ही तो है जो चकाचक भरी हुई लॉरीका बोझ सँभाले हुए है।

सायकिलमें हवा भरनेके लिए हाथ या पैरके पम्प होते हैं, और मोटरके पहियोंमें हवा भरनेके लिए बिजलीसे काम करनेवाले पम्प भी कदाचित् आपने देखे हों। पैरके बड़े पम्पसे भी मोटरके पहियोंमें हवा भरी जा सकती है। इन पम्पोंमें क्या होता है ? एक तो डट्टा जिसे पिस्टन कहते है। यह पिचकारीके डट्टेके समान ऊपर-नीचे किया जा सकता है। इसमें हवाके अन्दर और बाहर जानेके नीचे ऊपर दो मार्ग होते हैं। जिस ट्यूबमें हवा भरनी हो उसमें एक वाल्व-ट्यूब लगा होता है। यह वाल्व ट्यूब पतली रबड़का होता है जो एक छेदपर कसकर पहिनाया होता है। जब हवा अन्दर घुसती है तो दबावके कारण वह छेद खुल जाता है और हवा भीतर चली जाती है। जब पिस्टन ऊपर उठाया जाता है तो फिर यह वाल्व-ट्यूब और सट कर बैठ जाता है और ट्यूबकी हवा बाहर नहीं निकलने पाती। हवा भरनेमें पम्पसे भी अधिक महत्ता इस वाल्व-ट्यूबकी है जिसमें होकर बाहरकी हवा दबाव डालकर अन्दर तो भेजी जासकती है, पर अन्दरकी हवा बाहर नहीं आने पाती।

पिस्टनके चलानेका जो काम हम अपने हाथसे करते हैं, वही बिजली द्वारा भी किया जा सकता है, और इसी विधिसे मोटरके पहियोंमें हवा भरी जा सकती है।

जलबलका वायुबलमें परिवर्त्तन

ऐसे स्थानोंमें जहाँ सुन्दर जल प्राप्त है, जलबलको वायुके बलमें सरलतासे और सस्तेमें परिणत किया जा सकता है। आपने देखा होगा कि यदि बुदबुदोंके रूपमें हवा पानीके साथ अच्छी तरह मिलाई जाय तो पानीमें फसूकर या फेन उठने लगता है। समुद्रतट-पर जलफेन भी इसी कारण उत्पन्न होता है। थोड़ी देरमें फेन टूट जाता है और हवा पानीसे पृथक् हो जाती है। पर यदि वायु और पानीका यह मिश्रण नीचेकी ओर ऊपरसे आती हुई किसी धारा द्वारा बहाया जाय और यह प्रवाह किसी नलमें ही सीमित रहे, तो हवा पानीसे अलग न होगी। यह जलकी शक्तिके कारण दब जायगी या संकुचित हो जायगी। यह कितनी संकुचित होगी, यह तो इसपर निर्भर है कि पानी कितने ऊपरसे नीचे गिरा है। जब पानीके भीतर हवा घनीभूत हो जाय, तो फिर अब इतना ही करना शेष रह जाता है कि पानीका प्रवाह बदल दिया जाय। अब पानी एक बन्द नलीमें सीधा ऊपर चढ़ा दिया जाय। ऐसा करनेमें संकुचित हवाके बुदबुदे उठेंगे और ऊपर जाकर बन्द नलमें इकट्ठे हो जायँगे। इस प्रकार

संकुचित की हुई हवा बहुत ठंढी और शुष्क होती है। साधारण मशीनसे दबायी हुई हवाकी अपेक्षा इस हवासे अधिक काम निकाला जा सकता है। इस हवाके बनानेमें केवल दो बातें करनी पड़ती हैं—पहली तो जल-प्रपातके सहारे हवाको ऊपरसे नीचे बहाकर (या गिराकर) संकुचित कर लेना और दूसरी, जल-प्रवाहकी दिशाको बदलकर पानीमें मिली हुई संकुचित हवाको पानीमेंसे पृथक् कर लेना। अब तो आप समझ गये होंगे कि जलबल किस प्रकार वायुबलमें परिणत किया जा सकता है।

चित्र नं० १

सुरंगोंका खोदना

उत्तरी अमरीकाके कनाडा देशमें जल-प्रपातोंका बाहुल्य है। उस देशके क्यूबेक-प्रान्तस्थ मैगोग स्थान-में २५ वर्षोंसे रूईके कारखाने जल द्वारा संकुचित वायुके उपयोगसे चलाये जा रहे हैं। पानी इस्पातसे बने हुए एक नलमें ऊपरसे नीचे गिरता है। इस नल-का ऊपर ३ फुट ८½ इंच घेरा है और यह १२८ फुट लंबा है। नलके ऊपरी हिस्सेमें बहुत-सी छोटी-छोटी नलियाँ लगी हुई हैं जिनमें होकर हवा आती है, और पानीकी धाराके साथ नीचे बहा जाती है। ऐसा करनेपर यह संकुचित हो जाती है, और बादको लोहेकी एक टंकीमें भर जाती है।

बृटिश कोलम्बियामें कुछ खानोंमें भी काम संकुचित वायुकी सहायतासे किया जाता है। यहाँ भी वायु उसी विधिसे संकुचित की जाती है जैसे कि मैगोग-के रूईके कारखानेमें। जल द्वारा बनायी गई विद्युत्की अपेक्षा संकुचित वायुके प्रयोग करनेमें अधिक लाभ है। इस कामके यंत्र सीधेसाधे और सस्ते होते हैं, जिनके बिगड़नेकी भी संभावना कम रहती है।

पर हाँ, एक बात अवश्य है। वायुबलका उपयोग उसी स्थानके निकट किया जा सकता है जहाँ संकुचित वायु बनायी जा रही है। विद्युत् तो तारों द्वारा सैकड़ों मील दूरीपर आसानीसे पहुँचायी जा सकती है, पर संकुचित वायुको इस्पातके नलोंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाना कठिन और खर्चीला है। इस्पातके ये मोटे नल कितने व्ययसे बन सकेंगे यह तो सोचिये। आजकल कारखानोंमें जलबलके अतिरिक्त तीन प्रकारके बलोंका उपयोग होता है—वायुबल, वाष्पबल और विद्युत्बल। एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जानेके संबन्धमें वायुबलका स्थान वाष्पबल और विद्युत्बलके बीचमें है। आप यह तो जानते ही हैं कि पानीकी गरम वाष्पको उबालने-वाले देगसे कुछ दूरीपर भी ले जाना कितना कठिन है, और ऐसा करनेमें वाष्पके बलका ह्रास कितना हो जावेगा, क्योंकि दूसरे स्थानपर जाते-जाते भाप ठंडी हो जायगी। संकुचित वायुके विषयमें भी कुछ-कुछ ऐसी ही बात है, यद्यपि वाष्पकी अपेक्षा कम।
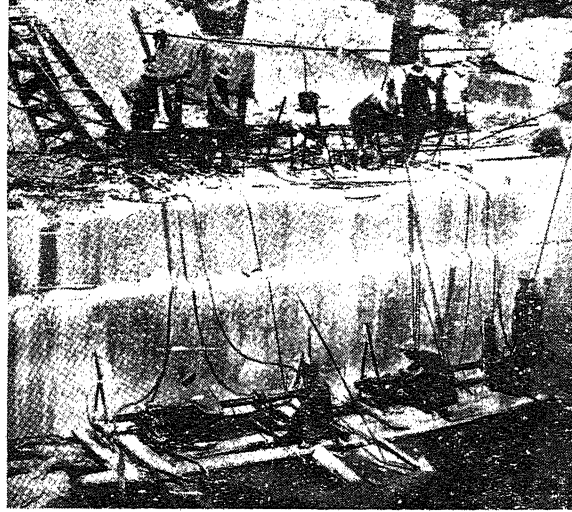
वायु संकुचित होनेपर गरम

जिन्होंने सायकिलके पहियेमें हाथके पम्पसे हवा

भरी है वे यह जानते हैं कि ज्यों-ज्यों हवा भरनेके लिए पम्पका पिस्टन चलाया जाता है, पम्प गरम होने लगता है। अधिक चलानेपर तो असह्य गरमी हो जाती है। यह गरमी कहाँसे आ गई? हवाके अणु पम्प चलाते समय अधिक निकट आ गये और हवा संकुचित हो गई। हवापरका दबाव बढ़ गया। इस दबावसे मुक्त होनेके लिए ये अणु घोर संघर्ष कर रहे हैं, और इस संघर्षमें ही यह गरमी पैदा हो रही है। आपने पम्प चलाया। हवाने आपकी पम्प चलानेमें लगाई हुई शक्तिको ले लिया, और इस कारण भी हवाकी गरमी बढ़ गई। यह संकुचित हवा फैलकर अपनी सामान्य अवस्थामें आना चाहती है। बस फैलनेमें यह जो कार्य्य करेगी, उसे करनेकी शक्ति उसमें इस समय गरमीके रूपमें विद्यमान है।

चित्र नं० २
कोयलेकी कटाई

यदि यह संकुचित गरम हवा गरम-गरम ही एक स्थानसे दूसरे स्थानमें लम्बे नलों द्वारा पहुँचायी जाय तो मार्गमें यह बहुत-कुछ गरमी खो देगी जिससे इसके बलमें बड़ी कमी पड़ जायगी। इसलिए गरम संकुचित हवाको दूसरे स्थानमें ले जानेसे पहले ठंडा कर लिया जाता है। ठंडे रूपमें ले जानेपर इसकी गरमी फिर क्षीण न होगी और इसका बल पूर्ववत् बना रहेगा।

ठंडा करनेकी एक विधि तो यह है कि पानीके फौवारे द्वारा हवाको ठंडा किया जाय, अथवा और भी सरल यह होगा कि संकोचक नलीके चारों ओर एक जैकट लगा हो जिसमें होकर ठंडा पानी प्रवाहित होता रहे। ऐसा करनेसे संकुचित हवा ठंडी होती रहेगी। कहीं-कहीं तो हवाको समस्त रूपसे एकबारमें ही संकुचित नहीं कर देते। पहले थोड़ा संकुचित करते, और फिर शीत-यंत्रमें प्रवाहित करके ठंडा करते। फिर और अधिक संकुचित करते और फिर ठंडा करते। ऐसे लगभग तीन—चार श्रेणियोंमें हवाको यथेष्ट मात्रातक संकुचित करते हैं।

संकुचित वायुसे कैसे काम लेते हैं?

संकुचित वायु नलोंमेंसे एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जाते समय ठंडी पड़ जाती है जिससे इसकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। वायुमें पानीकी भी कुछ वाष्पें मिली रहती हैं जो ठंडा होनेपर कोहरेके रूपमें प्रकट हो जाती हैं। अतः बहुधा यह करना पड़ता है कि किसी दूसरे क्रियावान यंत्रमें संकुचित वायुके पहुँचनेसे पूर्व कोयलेके हीटर, स्टोव या अँगीठीसे गरम करनेका प्रबन्ध रहता है। ऐसा करनेमें थोड़ा-सा कोयला तो खर्च होता है पर हवासे काम अच्छी तरह लिया जा सकता है। किसी-किसी हीटरमें आध-सेर कोयलेसे १$\frac{1}{8}$ अश्वबल प्राप्त किया जा सकता है।

अस्तु। संकुचित वायुसे काम उसी प्रकार लेते हैं,
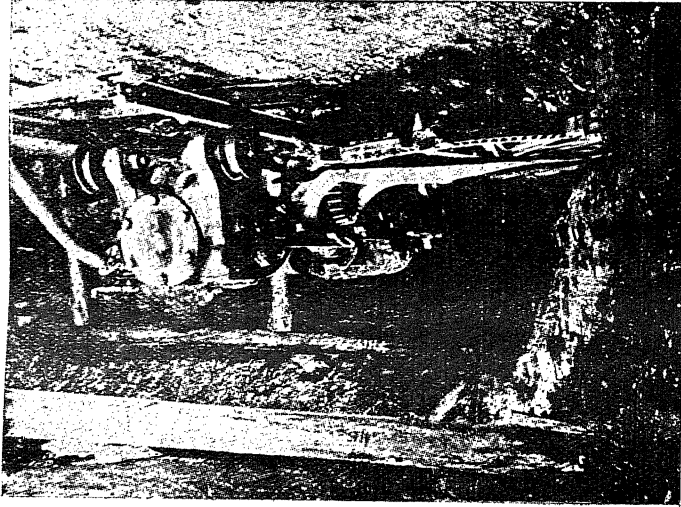
जैसे भापसे। आप जानते हैं कि भापसे रेलगाड़ी कैसे चलती है। भाप अति दबावपर बनाई जाती है, और जब वाल्व खोला जाता है, तो भाप दबाव कम हो जानेसे फैलती है। भापके इस फैलनेमें ही यह काम करती है। फैलते समय यह किसी भी चीज़को ढकेल सकती है, चक्रयंत्रोंको चला सकती है, या पिस्टनको आगे बढ़ा सकती है, इत्यादि। इस विधिसे भापसे तरह-तरहके यंत्र चलाये जा सकते हैं।

ठीक यही विधि संकुचित वायुसे भी काम लेनेकी है। संकुचित वायुके ऊपरका दबाव यदि कम किया जाय तो वायु फैलने लगती है। इस फैलनेमें ही यह काम करती है, इससे चीज़ें ढकेली या घुमायी जा सकती हैं, बड़े-बड़े पहिये चलाये जा सकते हैं और तरह-तरहकी मशीनोंका प्रयोग करके विभिन्न प्रकारके लाभके काम निकाले जा सकते हैं।

चित्र नं० ३
वायुकी सहायतासे मूर्त्ति-निर्माण

सुरंगोंका खोदना

सुरंगोंको खोदनेकी विधि साधारणतया यह है कि पत्थरकी चट्टानोंमें पहले तो गहरे छेद करते हैं और फिर इन छेदोंमें विस्फोटक पदार्थ भर देते हैं। जो उत्तेजित होनेपर भयंकर धड़ाका करते हैं और चट्टानें फटकर चूरचूर हो जाती हैं। चट्टानोंमें छेद करनेका काम हाथसे काम करनेवाली बरमियों (ड्रिल) से अधिकतर लिया जाता है। पर बरमियोंको हाथसे घुमानेमें कष्ट अधिक होता है, और काम धीरे-धीरे होता है। पर अब तो इस कार्य्यके लिए संकुचित वायुका प्रयोग होने लगा है। संकुचित वायुसे ये बरमियाँ चलाई जाती हैं और यथेष्ट छेद शीघ्र तैयार हो जाते हैं जिनमें गोला-बारूद भरकर चट्टानें उड़ायी जा सकती हैं।

आल्प्स पर्वतकी श्रेणियोंमें होकर फ्रान्स और इटलीके बीचमें रेलगाड़ियाँ चलानेका प्रश्न था। हाथसे काम करनेमें १½ फुट चट्टान दिनभरमें खुद पाती थी। इस हिसाबसे तो पूरा मार्ग तैयार करनेमें चालीस बरस लगते। यह सन् १८६१ ई० की बात है। इसी समय सर्वप्रथम संकुचित वायुके उपयोगका पता लगा था। उस स्थानतक संकुचित वायु जो जल-प्रपातोंसे बनाई गई थी, नलों द्वारा पहुँचायी गई। अब तो प्रतिदिन ४¾ फुट चट्टान तोड़ी जाने लगी, और भी अच्छी वायु संचालित बरमियोंके प्रयोग करनेपर ६ फुट प्रतिदिन चट्टानें टूटने लगी। जो काम चालीस बरसमें होनेको था, दस बरसमें ही समाप्त हो गया।

संकुचित वायुके इस प्रयोगने एक नया मार्ग खोल दिया, और अब तो वायु-संकुचित यंत्रोंका उपयोग अनेक कार्य्यों में होने लगा है।

कोयलेकी खदानमें

कोयलेकी खदानमेंसे कोयला निकालनेमें संकुचित वायुका अब प्रयोग किया जाने लगा है। वायु-संकुचित यंत्र भाप-संचालित या विद्युत्-संचालित यंत्रोंकी अपेक्षा इस बातमें अच्छे होते हैं कि इनमें आग लगनेका डर नहीं रहता है। एक बात और भी अच्छी है। खदानोंमें अक्सर दूषित वायु रहती है जहाँ श्वास लेना भी कठिन हो जाता है। पर यदि वायु-संकुचित यंत्रोंका प्रयोग किया जाय तो इनसे विसर्जित वायु खदानोंकी वायुको शुद्ध करनेमें सहायक होती है। यह तो एक अनमोल लाभ है।

कोयला काटनेके लिए जो वायु-संचालित 'कटर' बनाये गये हैं, वे बोझेमें केवल ५ सेरके ही हों तब भी प्रतिमिनट २५० बार खटखट करते हैं। इस कटरमें एक सिलिण्डर होता है, जिसमें एक पिस्टन और पिस्टनमें लगा एक छड़ लगा रहता है। इस छड़में ही इस्पातका एक चाकू या 'कटर' लगा होता है। सिलिण्डरका सम्बंध संकुचित वायुसे होता है। वायु एक बार तो ऊपरके वाल्वसे प्रविष्ट होती है और दूसरी बार नीचेके वाल्वसे। इस प्रकार पिस्टन बारी-बारीसे नीचे-ऊपर गिरता-उठता रहता है और कोयलेकी कटाई होती रहती है।

एक और कटर चक्रदार दाँतोंवाला होता है, मानों कि कोई गोल आरी हो। हवासे यह चक्र घूमता है, और साथ ही साथ आगे भी बढ़ता जाता है। इस तरहसे कोयलेकी चट्टानमें बड़ी-सी दराज हो जाती है, और फिर कोयलेका ढोका अपने ही बोझेसे गिर पड़ता है या बारूदसे गिरा दिया जाता है। यह चक्राकार कटर चित्रमें दिखाया गया है।

संकुचित वायुके अन्य विविध उपयोग

अब तो आप भली प्रकार समझ गये होंगे कि संकुचित वायुका उपयोग लगभग सभी प्रकारकी मशीनोंके चलानेमें किया जा सकता है। तरह-तरहके कामके लिए हथौड़े बनाये गये हैं, जो, हाथसे नहीं संकुचित वायुसे ही चलाये जाते हैं। मूर्तियोंकी खोदाई करनेके लिए हलकी कटनियाँ बनायी गई हैं जो वायुसे संचालित होती हैं। इनसे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म काम लिया जा सकता है, यदि वाल्वमेंसे निकलती हुई वायुके वेगको नियमित रक्खा जा सके।

समुद्रके भीतर काम करनेवाले गोताखोरोंको तो संकुचित वायुसे बड़ा लाभ है। श्वास लेनेके काममें तो यह आती ही है, पर वायु-संचालित यंत्रोंकी सहायतासे वह और भी काम आसानीसे कर सकता है। यह तो आप जानते ही हैं कि समुद्रमें गोताखोरके चारों ओर पानी होता है, जिसमें उसके अंगोंपर बोझा पड़ता है, और यदि वह काम अपने हाथसे करे, तो शीघ्र थक भी जावेगा। वायु-संचालित यंत्रोंसे वह जहाज़के लोहे और इस्पातको उतनी ही आसानीसे काट सकती है, जितनीसे आराकस लकड़ी काटते हैं। जहाज़की मरम्मत आसानीसे हो सकती है।

रेलगाड़ियोंमें संकुचित दबावसे संचालित ब्रेकोंका प्रयोग किया जाता है। इंजनके पास एक रिज़र्वायरमें ८०-९० पौंड प्रति वर्ग इंच दबाववाली संकुचित वायु तैयार रहती है। इससे सारी ट्रेनमें लगे नलका संवन्ध रहता है और हर एक डिब्बेमें एक रिज़र्वायर, ब्रेक सिलिण्डर, और त्रिगुण वाल्व होता है। इन सबकी सहायतासे रेलकी चाल धीमी की जा सकती है, आवश्यकता पड़नेपर ट्रेन रोकी जा सकती है। गाड़ीके डिब्बेमें ख़तरेके समय खींचनेके लिए जंजीर लगी होती है। इनके खींचनेपर वाल्व खुलते हैं और हवा अन्दर प्रविष्ट होती है, और पहियोंपर ब्रेक कस जाते हैं।

संकुचित वायुकी सहायतासे गौओंके स्तनसे दूध दूहा जा सकता है, घरमें फर्श झाड़ा जा सकता है, हलकी गाड़ियाँ चलाई जा सकती हैं, और न जाने कितने काम निकाले जा सकते हैं।

समतुलित और असमतुलित भोजन

[ले०—डा० उमाशंकरप्रसाद, एम० बी०, बी० एस०]

आजकल बेकारीके समयमें उचित खाद्य पदार्थ तथा पोषणकी समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण, उपयोगी और गूढ़ होती जा रही है। वैज्ञानिक संस्थाएँ बड़े परिश्रमसे इस विषयकी खोजमें लगी हुई हैं और जैसे-जैसे समय बीत रहा है, इस विषयका हमारा ज्ञान भी अधिक उपयोगी होता जा रहा है। हमारी बुद्धिमानी इसीमें है कि हम वैज्ञानिकोंके इन अन्वेषणोंका उचित लाभ उठायें। साधारण जनताको यह विषय सरल तथा रोचक भाषामें समझाना चाहिए जिससे उन लोगोंको मालुम हो जाय कि सच्चे और समतुलित भोजनमें जिससे पोषक-शक्ति मिले तथा उस असमतुलित भोजनमें जिससे केवल स्वादकी तृप्ति होती हो लेकिन जो स्वास्थ्यके लिए हितकर न हो क्या अंतर है।

अधिकतर लोगोंका विश्वास है कि क़ीमती भोजन ही शक्तिवर्द्धक होता है। आधुनिक फैशनके विचारमें पड़कर प्रायः लोग मूल सिद्धांतको भूल जाते हैं।

भोजनकी आवश्यकता

हम जब नित्यका भोजन करते हैं तब शायद ही यह सोचते होंगे कि शरीरके लिए भोजनकी आवश्यकता क्यों है और जो भोजन हम करते हैं वह उस उद्देश्यको पूरा करता है या नहीं। जिस भोजनसे भूख दूर हो या अच्छा स्वाद मिले, उससे अधिकतर लोग संतुष्ट हो जाते हैं। गरीब लोगोंका मुख्य उद्देश्य क्षुधा-शान्ति है और अमीर लोग सुस्वादपर अधिक ध्यान देते हैं।

भोजनका उद्देश्य

शरीर गरम रखनेके लिए तथा हाथ-पैर हिलाने, भोजन पचाने, हृदयको निरंतर संचालित रखने आदिमें और शारीरिक परिश्रममें (जैसे हल चलाना, बोझ उठाना) शक्तिकी आवश्यकता होती है। जिस प्रकार रेलके इंजिनको चलानेके लिए कोयला जलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है उसी प्रकार शरीरसे शक्ति भोजन द्वारा मिलती है। शरीरमें हर समय यह शक्ति खर्च होती रहती है क्योंकि यदि मनुष्य लेटा भी रहे तब भी शरीरको गरम रखना ही पड़ता है और हृदय-गति बराबर सोते-जागते कायम रहती है। शारीरिक परिश्रममें इस शक्तिकी आवश्यकता और अधिक पड़ती है। इसलिए भोजन द्वारा शरीरको गरम रखने तथा आवश्यक अंगोंकी फुरती आदिके लिए शक्ति मिलती है; भोजन बारबार करना पड़ता है, क्योंकि जो भोजन हम खाते हैं वह शरीरमें जलकर शक्तिके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

भोजनका दूसरा उपयोग यह है कि शरीरकी वृद्धिके लिए इससे हमें सामग्री मिलती है। बच्चा पैदा होता है तब केवल ३—४ सेरका ही होता है पर धीरे-धीरे बढ़कर वह बालक फिर बालकसे युवक होता है। उसका आकार तथा तौल अब कई गुना बढ़ जाती हैं। अवश्य ही उसके बढ़नेके लिए कुछ पदार्थ व्यय होता है और वह पदार्थ भोजनके रूपमें आता है। हम देखेंगे कि बच्चोंको इस प्रकारके भोजनकी जिससे शरीर बनता है बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि बच्चे बहुत बढ़ते हैं और जवान आदमी तथा बूढ़ेमें इसी प्रकारकी शारीरिक वृद्धि अधिक नहीं होती, इसलिए बढ़नेवाले पदार्थकी आवश्यकता इन्हें उतनी नहीं पड़ती है।

भोजनका तीसरा काम शरीरमें नित्यके घिसने तथा टूटनेमें अंगोंकी मरम्मत करना है। सभी जानते हैं कि मशीन जैसे-जैसे काम करती है, उसका पुरजा

घिसता जाता है और कुछ दिनों बाद मरम्मत करने या घिसे पुरज़ोंको बदलकर नये पुरज़ोंको लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। शरीरके अंग बदले नहीं जा सकते हैं इसलिए प्रकृति भोजन द्वारा नित्य इन अंगोंको ठीक रखती है। बुखार या बीमारीमें मनुष्य बहुत दुबला और हलका हो जाता है पर अच्छा होने-पर समुचित भोजन पाकर वह फिर पहले जैसा हो जाता है।

समुचित भोजनका उद्देश्य यह भी है कि शरीरको बीमारियोंसे लड़नेकी शक्ति मिले। जब मनुष्यको समुचित भोजन नहीं मिलता है तब उसके शरीरमें लड़नेकी यह शक्ति बहुत कम हो जाती है और वह शीघ्र ही नित्यकी इन लड़ाइयोंमें हारकर बीमार पड़ जाता है क्योंकि शरीर चारों ओर इस अवस्थामें क्षयरोग, पेचिश, मलेरिया, मोतीझरा आदि बीमारि-योंके कीटाणुओंसे घिरा रहता है। भोजनसे हमारा उद्देश्य केवल जीवित रहना ही नहीं है बल्कि भली-भाँति जीवित रहना और बहुत दिनोंतक जीवित रहना है।

अब यह स्पष्ट है कि भोजन शरीरके लिए बहुत आवश्यक है।

भोजनके मुख्य भाग

भोजनकी आवश्यकता तथा उपयोगितासे परिचित हो जानेके बाद अब हमें भोजनके मुख्य भागोंपर विचार करना चाहिए।

भोजनमें प्रोटीन, मज्जा (फैट), शर्करायुक्त पदार्थ कर्बोदेत (कार्बोहाइड्रेट), विटेमिन तथा कई प्रकारके खनिज लवण होते हैं। मज्जा और कर्बोदेतका मुख्य काम शरीरको शक्ति देना है। प्रोटीनका मुख्य काम शरीरके अंगोंका बढ़ाना तथा घिसनेसे अंगोंमें जो कमी हो उसे पूरा करना है। खनिज लवण और विटेमिन शरीरमें जलकर शक्ति नहीं पैदा करते बल्कि शारीरिक क्रियाके लिए भोजनमें इनका उपयुक्त मात्रामें रहना नितांत आवश्यक है। भोजनमें जलका होना भी अनिवार्य है—इसके बतलानेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि सभी जानते हैं कि शरीरका अधिकांश भाग पानीके रूपमें है और पानी बिना मनुष्य बहुत ही जल्द मर जायगा। समतुलित भोजनमें ऊपरकी सब वस्तुएँ ठीक मात्रामें रहनी चाहिए। ऐसे भोजनके खानेसे मनुष्य स्वस्थ रहेगा। वैज्ञानिक लोग अब भलीभाँति जान गये हैं कि किस आयु तथा किस पेशे आदिके लिए ऊपरकी वस्तुएँ कितनी मात्रामें रहनी चाहिए। यही नहीं बल्कि विश्लेषण करके रसायनज्ञों-ने यह भी पता लगाया है कि अमुक भोजनमें जैसे गेहूँ दूध, या आलूमें प्रोटीन मज्जा, विटेमिन आदि कितनी मात्रामें हैं।

कलारी (तापमापकी एकाई)

भोजनका खाका बनानेके लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि अनुमानित भोजन काफ़ी है या नहीं। शायद आप यह समझें कि इसका पता लगाना बहुत सरल है क्योंकि यदि उतना भोजन खिलानेपर लड़केका पेट भर जाय तब अवश्य ही उतना भोजन लड़केके लिए काफ़ी होगा; यदि भोजन काफ़ी न होगा तब लड़का भूखा रह जायगा और अधिक भोजन माँगेगा। परन्तु अनुभवसे हम लोग यह अच्छी तरह जानते हैंकि मनुष्यमें परिस्थितिके अनुकूल अपनेको बनानेकी शक्ति बहुत अधिक है। जिस भोजनमें आवश्यकतासे कम शक्ति है उसे खाते रहनेपर मनुष्यका पेट भले ही भर जाय पर उसकी शक्ति क्षीण हो जायगी और वह अनुभव न कर पायेगा कि उसको समुचित भोजन मिल रहा है अथवा नहीं।

किसी मनुष्यके भोजनकी मात्राका हिसाब लगानेके लिए हमें यह जानना चाहिए कि उस मनुष्यकी आयु, ऊँचाई, तौल क्या है तथा वह क्या काम करता है। सभी जानते हैं कि लम्बे मनुष्यमें शरीरके चमड़ेका क्षेत्रफल अधिक होगा और इसलिए शरीरकी गर्मी

इस अधिक क्षेत्रफलके कारण जल्दी शरीरसे विकरित होगी। इसलिए शरीरको गरम रखनेके लिए अधिक भोजनको जलाकर ख़र्च करना पड़ेगा। उसी प्रकार जो मनुष्य बहुत काम करता है उसे भोजनकी कम आवश्यकता पड़ेगी। खेतोंमें काम करनेवाले किसानोंको अधिक शक्ति देनेवाले भोजनकी आवश्यकता होगी। स्त्रियोंको पुरुषोंसे कम शक्तिवाला भोजन चाहिए क्योंकि स्त्रियोंको बिना कुछ परिश्रम करनेकी अवस्थामें कम शक्तिवर्धक (कलारी-मापके) भोजनकी आवश्यकता होती है। ये सब बातें बहुत जटिल हैं; साधारणतः लोगोंकी समझमें नहीं आ सकती हैं। यहाँ केवल एक औसत सारिणी दे देना पर्याप्त होगा जिसके द्वारा किसी मनुष्यकी आयु आदिका ध्यान रखते हुए निर्णय किया जा सकता है कि उसे कितने कलारी-मापके भोजनकी ज़रूरत पड़ेगी।

हम यह भी जानते हैं कि एक ग्राम प्रोटीन, मज्जा या कर्बोदेत जलानेसे कितनी कलारी शक्ति पैदा होती है। इस प्रकार हम यह आसानीसे हिसाब लगा सकते हैं कि अमुक मनुष्यको कितना कर्बोदेत, मज्जा और प्रोटीन चाहिए।

सब बातोंको ध्यानमें रखकर समतुलित भोजनकी सारिणी बनाना आसान होगा क्योंकि हर पदार्थमें कितने अंश कर्बोदेत, मज्जा और प्रोटीन हैं तथा कितने लवण और विटेमिन हैं यह भी ठीक मालूम है।

लीग ऑफ नेशन ने १९३६ में अपनी रिपोर्टमें लिखा है :—

(क) युवकको (पुरुष हो या स्त्री) जो साधारण निस्यका जीवन व्यतीत करता हो तथा न शीत देशमें हो न उष्ण देशमें बल्कि साधारण गरम देशमें रहे तथा मेहनतका काम न करता रहे उसे पचनेपर २,४०० कलारी पैदा करनेवाला भोजन प्रति दिन चाहिए।

परिश्रम करनेवाले मनुष्यको ऊपरके अंकमें इतना और जोड़ना चाहिए:—

हलका काम	७५ कलारीतक प्रति घंटा कामके हिसाबसे
साधारण काम	६५—१५० कलारी
परिश्रमका काम	१५०—३००
कठिन परिश्रमका काम	३०० से ऊपर

भारतवर्ष मुख्यतया कृषि-प्रधान देश है इसलिए औसत मनुष्यको परिश्रम ही करना पड़ता है। परन्तु भारतवर्ष गरम देश है इसलिए भोजनकी मात्रा कुछ कम चाहिए। यहाँके लोग विशेषकर शाकाहारी हैं। इन सब बातोंको विचारते हुए ऐसे हिन्दुस्तानीको जो शारीरिक काम नहीं करता है प्रायः २१०० कलारीका प्रति दिन भोजन चाहिए। लीग ऑफ नेशनके अनुमान-से यह १०% कम है।

६ घंटे खेतमें मामूली काम करनेवालेको २६०० कलारी चाहिए और जो लोग बहुत शारीरिक परिश्रम करेंगे उन्हें २८००—३०० कलारीतकका भोजन चाहिए। इतनी ही शक्तिवाला भोजन विद्यालयके युवक खिलाड़ीको भी आवश्यक होगा। नीचे लिखी सारिणीसे औसत शक्तिका भोजन आयुके अनुसार जान सकते हैं।

	कलारी
पुरुष (१४ सालसे ऊपर)	२,६००
स्त्री (” ”)	२,०८०
१२—१३ वर्ष	२,०८०
१०—११ वर्ष	१,८२०
८—९ वर्ष	१,५६०
६—७ वर्ष	१,३००
४—५ वर्ष	१,०४०
२—३ वर्ष	७८०
०—२ वर्ष	५२०

भारतवर्षमें कई जातियाँ रहती हैं जिनकी शारीरिक बनावटमें बहुत अंतर है। उत्तरी भारतके लम्बे-चौड़े पंजाबी या पठानमें तथा दक्षिणके छोटे क़द्वालों में बहुत अंतर है; इसलिए ऊपरकी सारिणीके अंकोंको

थोड़ा-बहुत घटाना-बढ़ाना पड़ेगा। इसी तरह गर्भिणी स्त्रीसे अपेक्षाकृत ज़्यादा शक्तिवर्धक भोजन उस स्त्रीको चाहिए जो बच्चेको अपना दूध पिलाती है।

समतुलित भोजनमें भोजनकी सब वस्तुएँ उचित मात्रामें होनी चाहिए। प्रोटीनके बारेमें बतलाया गया है कि यह शरीरकी वृद्धि करता है तथा जर्जरित भागको ठीक करता है और शक्ति भी देता है। साधारण भोजनकी वस्तुओंमें प्रोटीन मिलता है। दूध, अंडा, माँस, दाल, जौ आदिमें प्रोटीनकी मात्रा काफी रहती है। चावलमें बहुत कम प्रोटीन है। अनाजके बाहरी भागमें, जो भूसी या छिलकाके पास होता है प्रोटीन विटेमिन और खनिज लवणोंकी मात्रा अधिक रहती है और बीचके गूदेमें कम। चावल या गेहूँके आटेको खूब बारीक चालनेसे ऊपरका यह उपयोगी छिलका तथा कुछ उसके साथका भाग अलग हो जाता है। इससे बचे भागमें उपयोगी प्रोटीन और विटेमिनोंका अंश बहुत कम रह जाता है। वनस्पतियोंमें दाल ही में सबसे अधिक प्रोटीन मिलता है। कंदमूल तथा पत्तेदार शाक और फलमें प्रोटीन कम रहता है परन्तु यदि फल और शाक अधिक खाये जायँ तो आवश्यक प्रोटीन हमें मिल जायगा।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि शरीरके तौलके हिसाबसे बढ़ते हुए बच्चोंको प्रोटीनकी अधिक मात्रा चाहिए क्योंकि नये अंगोंमें, जो बच्चोंमें बहुत जल्द बढ़ रहे हैं, प्रोटीनकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए गर्भिणी तथा दूध पिलानेवाली स्त्रीको भी प्रोटीनकी अधिक आवश्यकता है। निम्न सारिणीसे प्रोटीनकी मात्रा ज्ञात होगी :—

	ग्राम प्रति दिन
पुरुष १८—६० वर्ष	६५
स्त्री १८—६० वर्ष	५५
लड़का १०—१७ वर्ष	८०
लड़की १०—१७ वर्ष	७०
बच्चा ६—९ वर्ष	६०
बच्चा २—६ वर्ष	४०—५०

प्रोटीनकी कुल आवश्यक मात्रा इस सारिणीसे निकाली जा सकती है। लेकिन भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थोंमें प्रोटीनकी भिन्न-भिन्न जातियाँ (एमीनो एसिड) रहती हैं। कुछ एमीनो एसिड शरीरके बढ़नेके लिए आवश्यक हैं और कुछका कोई उपयोग नहीं है। इसीलिए हम प्रोटीन पानेके लिए एक ही भाँतिके खाद्य पदार्थपर ध्यान न रक्खें बल्कि प्रोटीन देनेवाली कई प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ मिलाकर खावें जैसे कई प्रकारकी दाल, माँस या अंडा आदि। इस-लिए कई प्रकारकी दाल, माँस आदिका उपयोग सिर्फ़ स्वाद बदलनेको ही नहीं होता बल्कि अधिक आवश्य-कता इसलिए होती है कि कई प्रकारके एमीनो एसिड हमें मिल जाते हैं।

शाक-तरकारीका प्रोटीन इतना उपयोगी नहीं होता जितना कि माँसका। यह शायद सच है कि माँस तथा शाकके मिश्रित भोजनका प्रोटीन जितना शक्तिशाली नींव पुरुष-स्त्रीके शरीरके लिए बनायेगा उतना केवल शाकका प्रोटीन नहीं। लीग ऑफ नेशंस-का कहना है कि वृद्धिकी अवस्थामें, गर्भावस्थामें तथा दूध पिलानेके समयमें भोजनमें माँसल प्रोटीनकी बहुत आवश्यकता होती है। हमारी समझमें शाकके प्रोटीनका कम-से-कम पाँचवाँ भाग माँसका प्रोटीन होना चाहिए। बच्चोंके लिए माँसके प्रोटीनका सबसे उत्तम साधन गायका दूध है। अंडे, मछली, तथा माँस-में बहुत अच्छी जातिका प्रोटीन मिलता है। जिस भोजनमें इस प्रोटीनका साधन नहीं है वह भोजन बच्चोंके लिए अवैज्ञानिक असमतुलित एवं अपौष्टिक है। यहाँ यह ध्यान रखना अच्छा होगा कि मक्खन निकाला दूध भी खाली दूध ही के समान प्रोटीनकी दृष्टिसे लाभदायक है।

मज्जा (फैट)

साधारण भोजनमें चर्बीकी भी आवश्यकता है। प्रायः

१ छटाँक मज्जा नित्य खाना चाहिए। भारतवर्षमें अधिकतर भोजनमें मज्जा कम रहती है। मक्खन और घी बहुत उपयोगी हैं; इनमें विटेमिन-ए होता है जो वनस्पति घी या तेलमें नहीं पाया जाता है। ब्रह्मा, मलाया और पच्छिमी अफ्रिकामें लाल गरीका तेल पाया जाता है जिसमें विटेमिन-ए बहुत होता है।

नारियल बादाम, मूँगफली आदिमें मज्जा काफ़ी होती है। शर्करायुक्त पदार्थ (कर्बोदेत) तो शरीरमें शक्ति देनेके प्रधान बड़े साधन हैं। अनाज तथा मूल फल (जैसे गाजर) में कर्बोदेत और शक्करकी मात्रा बहुत अधिक होती है। कर्बोदेत शरीरके लिए उपयोगी अवश्य हैं लेकिन भारतवर्षमें इनका अंश भोजनमें बहुत अधिक होता है जिससे भोजन समतुलित और सम्पन्न नहीं रहता।

खनिज लवण

खानेवाले नमकसे हम परिचित हैं पर यह जानकर शायद आपको आश्चर्य होगा कि हमारे शरीरको प्रायः बीस तत्व धातुओंके लवणोंकी आवश्यकता पड़ती है। इनमें चूना और फॉसफोरस तो हड्डी तथा दाँतके लिए और लोहा तथा ताँबा हमारे ख़ूनके लिए परम उपयोगी हैं। इन विविध प्रकारके लवणोंके मुख्य उपयोग ये हैं :—

(१) पाचन रसको बनानेमें सहायता देना।

(२) माँस पेशियों, स्नायु-तथा रक्तको ठीक रखना।

(३) शरीरकी वृद्धिको स्थिर रखना।

प्रायः ये सब हमारे खाद्य पदार्थमें हैं पर छिलकेके पासवाले भागमें ही अधिक मात्रामें होते हैं। छिलका छीलनेपर हम इन लवणोंको भी खो देते हैं। फिर खाना पकानेपर, माँड़ और रस आदिको फेंककर बचा हुआ भाग भी खो देते हैं। यदि भोजनमें इन लवणोंकी कमी बहुत दिनोंतक रहे तो अनेक प्रकारकी बीमारियाँ हो जायँगी।

माँस, अंडा, अनाज, बीज आदि खानेसे शरीरका तरल पदार्थ आम्लिक होने लगता है। इमली, नीबू, तथा फलके रससे शरीरका तरल भाग क्षारीय होने लगता है। (यद्यपि इनका स्वाद भले ही खट्टा है।) तरकारी, फल, कन्द आदिसे भी क्षारीय होता है। इसलिए दोनों प्रकारका भोजन उचित मात्रामें करना चाहिए। बुखार आदिमें शरीरमें अम्लता बढ़ जाती है तब फल आदि अधिक खाना चाहिए जिससे क्षारीय द्रव्य अधिक बने।

चूना

यह दूध तथा हरे सागमें अधिक पाया जाता है। बच्चोंको बड़ोंके मुकाबले चूनेकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। गर्भिणी तथा दूध पिलानेवाली स्त्रियोंको भी इसकी अधिक आवश्यकता होती है। ३ मासके स्वस्थ बच्चेकी हड्डियोंमें चूना बहुत अधिक मात्रामें रहता है। यह सब चूना माँके दूध द्वारा ही बच्चा पाता है। इसलिए माँके शरीरके रक्तमें चूना बहुत कम हो जाना चाहिए और यदि माँको भोजनमें उपयुक्त मात्रामें चूना न मिलेगा तो माँकी हड्डियोंमें भी चूना न रहेगा जिसकी माँको बीमारी हो जायगी और साथ ही उस माँ के दूसरे बच्चेको भी इसी कारण बीमारी हो जायगी। इसलिए चूनेकी माँग पूरी करनेके लिए गर्भवती स्त्री तथा माँको दूध बहुत अधिक देना चाहिए।

दूधमें सबसे अधिक चूना मिलता है और दूधका चूना बहुत जल्दी पचता है।

रक्त बनानेके लिए लोहा परमावश्यक है। बच्चोंके लिए तो खासकर इसकी आवश्यकता है। दाल और माँसमें लोहा जल्दी पच जाता है। परन्तु फल और तरकारीका लोहा नहीं पचता।

विटेमिन

ये पदार्थ शरीरको शक्ति नहीं देते हैं पर

भोजनमें इनका रहना अनिवार्य है, अन्यथा कई प्रकारकी बीमारियाँ हो जाती हैं।

माँसवाली चर्बीमें विटेमिन-ए पाया जाता है। दूध, दही, मक्खन, शुद्ध घी, अंडे, मछली तथा यकृतिमें विटेमिन-ए बहुत रहता है। मछलीके तेलमें यह विटेमिन-ए सबसे अधिक रहता है जैसे मछलीके तेल और हलीबट लिवर ऑइल। वनस्पति-चर्बीमें विटेमिन-ए नहीं मिलता है परन्तु पत्तियोंमें, कैरोटीन रंगमें यह विटेमिन बहुत होता है। इस विटेमिन-एकी माँग उचित फलाहारसे पूरी की जा सकती है। पत्तीदार तरकारी (साग) जैसे बथुआका साग, लटूस, पत्ता गोभी, पका आम, पपीता, टमाटर, संतरा आदिमें कैरोटीन बहुत होता है। भारतवर्षमें अधिकतर लोग शाकाहारी हैं; इसलिए विटेमिन-एके लिए ही तरकारी ख़ूब खाना चाहिए। बच्चोंको मछलीके तेलके रूपमें भी विटेमिन-ए दिया जा सकता है।

भोजनमें विटेमिन-एकी मात्रा बदलती रहती है। दूध या मक्खनमें विटेमिन-एकी मात्रा गाय-भैंसके भोजनकी किस्मपर निर्भर है। नाँदसे बँधे जानवरके दूधमें जो भूसा आदि अधिक खाती है और हरी घास कम पाती है विटेमिन कम रहेगा।

विटेमिन-बी

इसकी दो जातियाँ हैं—विटेमिन-बी$_1$ और विटेमिन-बी$_2$। भोजनमें विटेमिन-बी$_1$ अधिक कालतक न रहनेसे बेरीबेरी नामका रोग हो जाता है। इसलिए बी$_1$ को बेरीबेरी-नाशक भी कहते हैं। बिना छिलका उतारे नाज, दाल, अंडे, फल, गरी प्रायः सब तरकारियोंमें, यकृति तथा माँस पेशियोंमें और दूधमें यह विटेमिन-बी$_1$ होता है। पालिश किये हुए चावलमें यह बहुत कम होता है और इसके अधिक खानेसे बेरीबेरी हो जाता है। बंगालमें यह रोग बहुत फैलता है। बिना छिलका अलग की हुई दाल ३ छ०, हरा साग तथा अन्य तरकारियाँ और १-१½ छ० दाल यदि नित्य खाई जायँ तो आवश्यक विटेमिन-बी$_1$ मिल जायगा—चाहे पालिश किया हुआ चावल भी और साथमें क्यों न हो। जितने ही कम दाल और फल आदि भोजनमें रहेंगे उतना ही अधिक बेरीबेरी हो जानेका डर पलिशके चावल खानेसे रहेगा। घरके कुटे चावलको भी यदि पानीमें कई बार भिगोकर धोया जाय तो विटेमिन अधिकांश घुलकर निकल जाता है। गरीब लोग प्रायः सस्ता चावल खाते हैं जिसमें गन्दी महक और घुनड़ी लगी रहती है। महक दूर करनेको बहुत अधिक धोना पड़ता है इसलिए विटेमिन-बी$_1$ घुलकर निकल जाता है और गरीबीके कारण ये लोग साग आदि भी कम खाते हैं इससे इन्हें बेरीबेरी हो जानेकी बहुत आशंका रहती है।

विटेमिन-बी$_2$ भी बहुत आवश्यक वस्तु है। अनाजमें यह बहुत कम पाया जाता है। दालमें अधिक पाया जाता है और मुख्यतया चनेमें। हरे साग और तरकारी तथा कुछ कन्द-मूलमें यह बहुत अधिक होता है पर फलोंमें बहुत कम पाया जाता है। सबसे अधिक खमीर, दूध तथा मक्खन, माँस, यकृति, अंडे, और दाल आदिमें यह पाया जाता है।

विटेमिन-सी

विटेमिन-सी जिसके उचित मात्रामें भोजनमें रहनेसे स्कर्वी (जहाज़पर ताज़े फल तरकारी न मिलनेके कारण जो बीमारी हो जाती है।) बीमारी नहीं होती है। ताज़े फल और तरकारीमें मिलता है। हरी पत्तियोंवाली तरकारीमें सबसे अधिक मात्रामें यह मिलता है और बासी तथा सूखी तरकारीमें विटेमिन-सीका बहुत अधिक भाग नष्ट हो जाता है।

दाल तथा नाजमें साधारण अवस्थामें विटेमिन-सी नहीं होता है परन्तु यदि उन्हें पानीमें भिगोकर रक्खा जाय तो अँखुआ निकलनेपर उन नये अँखुआवाले दानोंमें विटेमिन-सी अच्छी मात्रामें पैदा हो जाता है।

इसके लिए दाल, चना, गेहूँ अन्य कोई अनाज जो दला न हो २४ घंटेतक पानीमें भिगो दिया जाता है और तबतक ज़मीनपर या गीले कपड़ेको गद्दीपर फैलाकर गीले कपड़े या बोरेसे ढक दिया जाता है। इसपर पानी समय-समयपर छिड़क दिया जाता है जिससे यह सदा तर रहे। २ या ३ दिनके बाद अनाजमें अँखुये निकल आते हैं। तब यह काममें लाया जाय।

इस अँखुयेवाले नाजको या तो कच्चे ही खाना चाहिए या पकानेमें १० मिनटसे अधिक देर न लगाना चाहिए। हम लोग जानते हैं कि इस विधिका पहलवान लोग बहुत प्राचीन कालसे अनुसरण करते आ रहे हैं, क्योंकि अधिकांश पहलवान नित्य सुबह कच्चे २ सतके भिगोये हुए चने खाते हैं और उनका पानी पीते हैं।

हरी तरकारी या फल न मिलनेपर इस प्रकार भिगोई हुई दाल खाकर काम चलाना चाहिए।

विटेमिन-सी तापसे बहुत शीघ्र मर जाता है। जो बच्चे केवल उबला दूध ही पीते हैं या विलायती डिब्बाबन्द दूधकी बुकनी या गाढ़े दूधको पानीमें घोलकर पीते हैं उन्हें विटेमिन-सीकी कमी पूरा करनेके लिए फलोंका रस अवश्य देना चाहिए।

विटेमिन-डी

यह वह पदार्थ है जिसके भोजनमें उचित मात्रामें न रहनेसे सूखेका रोग और एक रोग (जिससे हड्डीका चूना निकल जाता है और हड्डी मुलायम होकर शरीरके बोझसे टेढ़ी हो जाती है। यह रोग गर्भवती तथा दूध पिलानेवाली स्त्रियोंमें प्रायः पाया जाता है) हो जाते हैं। विटेमिन-सी यकृत, मछलीके तेल, अँडे, दूध, घी आदिमें मिलता है। सबसे अधिक मछलीके तेलमें पाया जाता है। सूर्यकी किरणें जब शरीरके चमड़ेपर पड़ती है तब शरीरमें विटेमिन-सी उत्पन्न होता है। इसलिए उन बच्चोंमें (विशेषकर अमीरोंके बच्चोंमें या सर्द देशोंमें) जो सूर्यकी रोशनीमें बाहर नहीं आते यह रोग होनेका भय रहता है। यदि गरीब माँ-बाप अपने बच्चोंको अँधेरी कोठरीमें निरंतर रक्खेंगे तो इन्हें भी इस रोगका भय रहेगा। उसी प्रकार पर्देवाली स्त्रियोंमें सूर्यकी रोशनी कम मिलनेके कारण हड्डी टेढ़ी होनेवाला रोग हो जाता है। विटेमिन-सी पानेका सबसे सस्ता तथा सरल उपाय (कम-से-कम भारतवर्षमें जहाँ सर्वदा सूर्यकी रोशनी अच्छी रहती है) सूर्यकी किरणोंमें बैठना है। मछलीका तेल तथा अन्य दवाओंसे यही काम होगा लेकिन धन खर्च करना पड़ेगा पर सूर्यकी किरणें मुफ्तमें मिलती हैं।

शरीरमें खटिकम् (कैलशम) और (फॉसफोरस) स्फुरपर विटेमिन-डीका बहुत प्रभाव होता है। विटेमिन-सीकी कमीसे खटिकम तथा फॉसफोरस शरीरमें कम हो जाते हैं और सूखेका तथा हड्डीका रोग शीघ्र हो जाता है।

विटेमिन-डीका भोजनमें उचित मात्रामें रहना बहुत आवश्यक है। इससे दाँत सुन्दर तथा मज़बूत बनते हैं और गर्भवती माँ-के भोजनमें उपयुक्त मात्रामें होनेसे गर्भके बालककी हड्डियाँ मजबूत बनती हैं।

भोजन बनाते वक्त गरम करने तथा पकानेका असर भोजनके विटेमिन आदिपर बहुत बुरा नहीं पड़ता। विटेमिन-सी अवश्य थोड़ी भी गरमीसे नष्ट हो जाता है इसीलिए इसकी कमीको पूरा करनेके लिए कुछ हरी तरकारी तथा फलका भी खाना आवश्यक है। जब खाना बहुत देरतक अधिक पानीमें पकाया जाता है तो कुछ लवण तथा विटेमिन भोजनसे घुल पानीमें आ जाते हैं। यदि यह पानी फेंक दिया जाय तो उतना बहुमूल्य द्रव्य ख़राब हो गया। चावलको धोने और पकानेमें माँड़में स्फुरका बहुत अंश निकल जाता है। खानेका सोडा भी भोजनमें

डालनेसे (अधिक काल अच्छा बना रहनेके लिए या अन्य कारणसे) कुछ विटेमिन नष्ट हो जाते हैं।

बोर्डिंग हाउस, अनाथालय आदि संस्थाओंके मालिकों तथा गृहस्वामियोंको चाहिए कि वे समझ लें कि समतुलित तथा असमतुलित भोजनका शरीरपर क्या प्रभाव पड़ता है जिससे वे समुचित भोजनका प्रबन्ध कर सकें। समतुलित आहारके लिए अधिक धनकी आवश्यकता नहीं है। भोजनके ठीक न रहनेके कारण बहुत बीमारियाँ भारतवर्षमें प्रायः होती हैं। बेरीबेरी, गर्भकालमें शरीरमें रक्तकी कमी, सूखा आदि ऐसी अनेकों बीमारियाँ हैं जो बहुधा देखी जाती हैं। समतुलित भोजन न मिलनेसे बच्चा अपने उचित वज़न तथा लम्बाईतक नहीं बढ़ पाता है। वह बहुधा बीमार रहा करता है तथा अन्य साथियोंकी तरह फ़ुर्तीला और पढ़नेमें तेज़ नहीं रहता। शरीरके चर्मकी हालतको देखकर बच्चेके भोजनके सम्बन्धमें पता लगा सकते हैं। खुराखुरा, सूखा तथा मछली चमड़े-की भाँति चमड़ीवाले लड़केके भोजनमें विटेमिन-एकी बहुत कमी रहती है। सभी जानते हैं कि भलीभाँति खिलाये-पिलाये जानवरके शरीरके चमड़ेमें चमक रहती है।

समतुलित तथा अच्छा भोजन करनेवालेकी आँखें साफ़ तथा चमकती रहती हैं। ज़ैरोफ्थैल्म्यामें आँख-के कोओंपर सफ़ेद दाने पड़ जाते हैं और वे जगह-जगह सूख जाती हैं और उनकी चमक जाती रहती है। यह रोग विटेमिन-एकी कमीके कारण होता है। उसी प्रकार गलेमें तथा मुँह और ज़बानपर छाले आदि असमतुलित भोजन करनेवालोंमें प्रायः मिलते हैं। अधिक दूध पीनेसे ये छाले शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। जिनके मसूड़ोंसे खून निकलने लगता है उन्हें अधिक ताज़े फल और हरी तरकारी खानी चाहिए क्योंकि उनके भोजनमें विटेमिन-सीकी कमी है।

मान लीजिये कि किसी संस्थाके प्रत्येक मनुष्यको भोजन इस सारिणीके अनुसार मिलता है :—

मिलका चावल	७$\frac{1}{2}$ छ०
दूध	$\frac{1}{2}$,,
अरहरकीदाल	$\frac{1}{2}$,,
बैंगन	$\frac{1}{2}$,,
भिण्डी	$\frac{1}{4}$,,
मीठा तेल	$\frac{1}{4}$,,

इनका विश्लेषण करनेसे मालूम होगा कि इस भोजनमें प्रोटीन आदि इस अनुपातमें हैं :—

(१ सेर = लगभग १००० ग्राम)

प्रोटीन	३८ ग्राम
मज्जा	१९ "
कर्बोदेत	३५६ "
कलारी	१७५०
खटिकम	०·१६ ग्राम
स्फुर	०·६० "
लोहा	९·० मिलीग्राम
विटेमिन-ए	५०० (अंतराष्ट्रीय एकाइयोंमें)
विटेमिन-बी	१६० ,, ,,
विटेमिन-सी	१५·० मिलीग्राम

स्पष्ट है कि यह भोजन मात्रामें बहुत ही कम है तथा भोजनके अन्य आवश्यक पदार्थ भी बहुत कम हैं। पर खेद तो यह है यही भोजन प्रायः लाखों भारत-निवासियोंको खानेको मिलता है।

यदि उपर्युक्त असमतुलित भोजनमें कुछ अंतर इस प्रकार कर लिया जाय तो भोजन ठीक हो जायेगा।

कच्चा मिलका (साफ़ किया हुआ) चावल			५ छ०
बाजरा			२$\frac{1}{2}$,,
दूध			४ ,,
दाल	(अरहर $\frac{1}{2}$ छ०) (चना १ छ०)		१$\frac{1}{2}$,,
तरकारी	बैंगन	१ छ०	३ छ०
	भिण्डी	१$\frac{1}{2}$,,	
	हरी मटर आदि	१$\frac{1}{2}$,,	

साग हरा	पालक	१ छ०	४ छ०
	मैथी	$1\frac{1}{2}$,,	
	बथुआ	$1\frac{1}{2}$,,	
	मीठी		१ छ०
फल	आम	$\frac{1}{2}$ छ०	१ छ०
	पका केला	$\frac{1}{2}$ छ०	

$2\frac{1}{2}$ छ० बाजरेको $2\frac{1}{2}$ छ० चावलके बदले खाया गया है जिससे अन्य वस्तुओंके साथ ही प्रोटीन तथा विटेमिन-बी$_1$ बहुत बढ़ गये हैं। दूध भी अधिक मात्रामें लेनेसे आवश्यक प्रोटीन, खटिकम् तथा विटेमिन-ए मिलने लगे हैं। दाल अधिक लेनेसे प्रोटीन और भी बढ़ गया है। तरकारी बढ़ा देनेसे सभी वस्तुएँ और विटेमिन भी अधिक मिलने लगे हैं। हरे सागसे विटेमिन-ए तथा आवश्यक विटेमिन-सी मिलने लगा है। १ छ० चर्बीसे कलारी-शक्ति बहुत बढ़ गई है। फलके बढ़नेसे हमें निश्चय हो गया है कि विटेमिन-सीकी भोजनमें कमी नहीं है। विटेमिन-बी$_2$ भी बढ़ गया है। इस भोजनमें अब प्रत्येक भाग इस प्रकार है :—

(१ सेर = लगभग १००० ग्राम)

प्रोटीन	७३ ग्राम
मज्जा	७४ ”
कर्बोदेत	४०८ ”
कलारी	२५६० ”
खटिकम्	१·०२ ग्राम
स्फुर	१·४७ ”
लोहा	०·०४४ ”
विटेमिन-ए	७००० (अं० ए०)
विटेमिन-बी	४०० ”
विटेमिन-सी	१७०·० ”

इस भोजनमें साधारण आदमीको शक्ति देनेके लिए उचित मात्रा है। भोजनके सभी आवश्यक अंग भी उचित मात्रामें मौजूद हैं।

समतुलित भोजनमें अवश्य कुछ अधिक खर्च लगता है। ऊपर दिये गये असमतुलित भोजनमें जिसमें मुख्यकर चावल हैं और दूध तथा फल बहुत कम हैं २॥) महीना किसी मनुष्यके लिए लगेगा। समुचित भोजन जिसमें दूध तथा अन्य वस्तुएँ अधिक मात्रामें हों ५) से ६) तकमें मिलेगा। यहीं पर यह समस्या उपस्थित होती है कि रुपया अधिक आवे कहाँसे गरीबोंके पास और अधिक धन ही नहीं है कि समुचित आहारका प्रबंध कर सकें। भारतवर्षमें कितने ही छात्रावासोंमें रुपया नहीं है इससे प्रत्येक लड़केको ३) प्रतिमासके हिसाबसे भोजन मिलता है। कहीं इससे भी कम धनमें काम चलाना पड़ता है। सच पूछिये तो इतने कम धनमें समुचित भोजनका प्रबन्ध असम्भव है।

पर यदि आदर्श भोजन धनाभावके कारण नहीं दिया जा सकता है तो अवश्य ही थोड़ा ही और अधिक खर्च करके काफी बढ़िया भोजन दिया जा सकता है। यदि हम जानते हों कि १ पावसे अधिक दूध नित्य प्रति बच्चेको देना आवश्यक है और इतना धन नहीं है कि १ पाव दूध नित्य दिया जा सके, तब शुद्ध दूधके स्थानपर जो महँगा बिकता है, हम मक्खन निकाला दूध पिला सकते हैं जो सस्ता पड़ता है। अच्छे प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि असमतुलित भोजनके साथ यदि १ पाव मक्खन निकाला दूध नित्य बच्चेको पिलाया जाय तब बच्चा बढ़ने लगता है और उसकी तनदुरुस्ती अच्छी हो जाती है।

घीकी कमी भी भोजनमें बहुत देखी जाती है। शुद्ध घी या मक्खन तो बहुत ही बढ़िया है पर उसके असुलभ होनेपर वनस्पति घी या तेलको ही प्रयोगमें लाना चाहिए। कुछ अन्य बातें भी ध्यान रखने योग्य हैं :—यदि मिलका चावल ही खाया जाय तो सम्पूर्ण (अर्थात् जिसका कोई भी अंश निकाल न दिया हो) चावल या सम्पूर्ण आटेका प्रयोग अधिक लाभदायक होगा। पर यदि निर्धनताके कारण लोग चावल ही खाकर पेट भरनेको बाध्य हों और गेहूँ दाल आदि नहीं खरीद सकते हों तो चावलकी किस्म

पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। मिलका चावल तो ऐसी हालतमें बहुत हानिकारक होगा।

दालमें विटेमिन-बी बहुत होता है। भोजनमें १,१½ छ० दाल अवश्य रहनी चाहिए। सोयाबीन-पर आजकल अनावश्यक ज़ोर दिया जा रहा है परन्तु साधारण दाल जो भारतवर्षमें खाई जाती है सोया-बीनकी अपेक्षा कम पौष्टिक नहीं है।

हरा साग २ छ० प्रति व्यक्तिको प्रतिदिन खाना आवश्यक है। पालक, बथुआ, मैथी, सरसों, चौलाई या चनेके साग सस्ते होते हुए भी महँगे साग जैसे लैट्टसकी ही भाँति लाभदायक हैं।

बच्चोंके भोजनमें फल सम्मिलित होना आवश्यक है। केले जो बहुत सस्ते हैं और प्रायः छात्रालयोंमें बांटे जाते हैं बहुत शक्तिवर्धक नहीं हैं। टमाटर तथा नारंगी और अन्य रसवाले फलोंमें विटेमिनका अंश बहुत होता है। अतएव ये फल बहुत उपयोगी हैं।

भोजनमें कुछ अपद्रव्यका होना परमावश्यक है। भोजनमें जो वस्तु नहीं पचती है वह मलके रूपमें निकल जाती है। अनाजकी भूसी या छिलका, फलका छिलका, फलोंके छोटे-छोटे बीज आदि हज़म नहीं होते। यदि भोजनमें से इन्हें निकाल दिया जाय तो भोजनमें कुछ दरदरापन नहीं रहता। आटेको बारीक चालनेसे सब भूसी निकल जाती है और मैदा बच जाती है जो बहुत चिकनी होती है। प्रायः भोजन बनानेके लिए ये सब वस्तुएँ निकालदी जाती हैं। उनके निकालनेसे खनिज लवण और विटेमिन-बी तथा ई भी बहुत-कम हो जाते हैं। इन भूसी आदि वस्तुओंके भोजनमें रहनेसे मल अधिक मात्रामें बनता है और कब्जकी शिकायत नहीं रहती है क्योंकि आँतोंमें इस बचेखुचे भागके रहनेसे अँतड़ियोंकी गति बढ़ जाती है जिससे नित्य पाख़ाना भली भाँति खुलकर होता है।

चिकित्सकके कामकी प्रश्नावली

[ले०—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी]

रोगी निरीक्षण आयोजना

(गतांङ्कसे आगे)

(१) प्रश्न

नाम। आयु। पेशा। विवाहित या एकाकी। पता। निरीक्षण की तिथि।

शिकायत।

अवधिकाल।

पारिवारिक इतिवृत्त

माता पिता, भाई और बहिन और रोगीके अपने बच्चोंके सम्बन्धमें पूछे। उनके स्वास्थ्यकी अवस्था या उनकी मृत्युका कारण और किस आयुमें वे मरे हैं नोट करे।

वैयक्तिक इतिवृत्त

परिस्थिति— पेशेकी प्रकृति और इसके आस पास-की अवस्थाएँ। घरकी स्वस्थवृत्त संबन्धी अवस्थाएं। व्यायाम, भोजन, पथ्य, एलकौहल और तम्बाकूके लिए आदतें। प्राथमिक बीमारियाँ या दुर्घटनाएं (कोई हों

तो) उनके होनेका समय, अवधिकाल और परिणाम ।

उपस्थित रोग—समय और इसके प्रारंभ होनेकी विधि, लक्षणोंके प्रकट होनेका क्रम; रोगीको वर्त्तमानमें कष्ट देनेवाले मुख्य लक्षण, पहले की गई चिकित्सा (यदि की हो) ।

(२) शरीर परीक्षा

१—वर्त्तमान स्थिति

सामान्य अवस्था— चेतना और बुद्धिकी सामान्य स्थिति । लेटने और खड़े होनेका प्रकार । वृद्धि और पोषणकी सामान्य अवस्था । चेहरेके भाव; फीकापन, चेहरेका नीला पड़ जाना, खपथु और पोषण संबन्धी परिवर्त्तनोंकी विद्यमानता या अभाव । तापमान लें ।

२ महास्रोतस्

वैयक्तिक लक्षण

मुखमें दाँत, मसूड़े जिह्वा, कण्ठ गलद्वार और भोजन प्रणालीकी परीक्षा करें । कोष्ठकी सामान्य दृष्टि, स्पर्शन और टकोर परीक्षा ।

आमाशय— स्पर्शन और टकोर । उसके किसी एक प्रातराश व भोजनकी परीक्षा ।

वमनकी परीक्षा ।

आँतें— परीक्षा । आवश्यक हो तो जुदा परीक्षा । मलपरीक्षा ।

यकृत् और पित्ताशय—स्पर्शन और टकोर-परीक्षा ।

प्लीहा—की परीक्षा ।

३—रक्त संस्थान

हृदय—वैयक्तिक लक्षण ।

नाड़ी—गति और इसकी नियमितताका वर्णन करें । एक दूसरेके अनन्तर आनेवाले धमनोंकी शक्ति की तुलना करें । वाहिनी दीवारोंकी अवस्थाको मालूम करें । धमन कालमें और दो धमनोंके बीचमें रक्त दबाव देखें । नाड़ी तरंगोंके फैलावपर ध्यान दें । दबावके उत्थान, स्थिति और पतनको दृष्टिमें रखते हुए एक नाड़ी धमनका पूर्ण विश्लेषण करें । उपतरंगोंकी उपस्थिति व अनुपस्थितिका निश्चय करें । यदि नाड़ी असाधारण है तो नाड़ी सूचक यन्त्रसे कई चित्र लें ।

हृदय—दर्शन और स्पर्शन । हृदय शिखरके धमनकी स्थिति और अवस्था । गर्भाशयके ऊपरके प्रदेशपर होनेवाली धमन, हृदय प्रदेशपर तरंगें, गर्दन या हृदयके आधारके धमनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति ।

हृदयका टकोर :—

(क) ऊर्ध्व पार्श्व
(ख) दक्षिण पार्श्व } उत्तान या गंभीर ।
(ग) वाम पार्श्व

हृदयका श्रवण :—

(क) शिखरपर और इससे थोड़ा-सा अन्दरकी ओर ।

(ख) उरोऽस्थिके निचले सिरेपर दक्षिण कपाटी प्रदेश ।

(ग) महाधमनी क्षेत्र ।

(घ) फुफ्फुसीय सेल और इससे थोड़ा-सा बाहिर-की ओर ।

(ङ) आधार और शिखरके बीचमें । तीसरे और चौथे बाएँ उरुस्तरूणास्थिपर ।

(च) ग्रीवाकी शिराएँ और रक्त वाहिनियाँ ।

यदि कोई शब्द सुनाई देता हो तो नोट करें :—

(क) इसका समय ।

(ख) इसकी विशेषता (वाद्य, कठोर आदि)

(ग) इसका अधिकतम उच्चताका विन्दु ।

(घ) इसके विस्तारकी दिशा ।

४—रक्त

लाल और सफेद रक्ताणुओंको गिनें । रक्तरञ्जक

द्रव्यका अन्दाजा लगाएँ। रक्तकी अणुवीक्षिक परीक्षा करें, आवश्यक हो तो फलक बनाएँ।

५—श्वास संस्थान

वैयक्तिक लक्षण।

श्वासोच्छ्वासको गिनें और उनकी विशेषता वर्णन करें।

छातीका दर्शन; आकृति और फैलनेकी शक्ति आदि नोट करें।

छातीके दोनों पार्श्वोंका माप।

छातीका स्पर्शन (फैलाव और ध्वनिवाहकता)।

सामने, पार्श्व और पीछेकी ओर फुफुओंका टकोर।

उसी क्रममें फुफुओंका श्रवण। यह भी नोट करें,

(क) श्वास शब्दोंका प्रकार।

(ख) वाचिक ध्वनि।

(ग) सहवर्ती शब्दोंकी विद्यमानता या अभाव।

थूक—स्थूल और सूक्ष्म विशेषताएँ।

६—मूत्र संस्थान

वृक्कोंकी स्पर्शन परीक्षा करें।

मूत्रकी परीक्षा करें—भौतिक, रासायनिक और णुवीक्षिक। प्रत्येक अवस्थामें निम्न बातोंको नोट करें :—

२४ घण्टेमें परिमाण, रंग, आपेक्षिक गुरुत्व, प्रतिक्रिया, गन्ध, निक्षेपका सामान्य गुण।

एल्वूमिन, रक्त, शर्करा और पित्तकी उपस्थिति या अनुपस्थिति।

निक्षेपोंके अणुवीक्षिक गुण।

७—त्वचा

सामान्य रंग; रञ्जन या दानोंकी उपस्थिति या अनुपस्थिति। दानोंमें 'प्रारम्भिक क्षत' की और यदि विद्यमान हो तो 'गौण क्षतों' की प्रकृति।

त्वचाका स्पर्शन करें; शुष्कता, मृदुता, मोटाई, लचक। अधरत्वक तन्तुओंकी विशेषता।

८—वात संस्थान

वैयक्तिक लक्षणोंके संबन्धमें पूछें।

निम्न अवस्थाएं मालूम करें—

(१)बौद्धिक क्रियाएं। बुद्धि, स्मृति, निद्रा, मूर्छा, प्रलाप, वासी आदि)।

(२) कपालनाड़ीके कार्योंकी क्रमसे जाँच करें।

(३) गत्युत्पादक क्रियाओंमें पक्षाघात, विकृत मांसपैशिक गतियोंकी विद्यमानता या अभाव और मांसपैशिक पोषणकी अवस्थाको नोट करें। आवश्यक हो तो मांसपेशियों और वातनाड़ियोंकी वैद्युतिक प्रति क्रियाएं।

(४) संज्ञा उत्पादक क्रियाओंमें स्पर्श, भार, तापमान, वेदना और मांसपैशिक ज्ञानकी अनुभव क्षमता। असामान्य संज्ञाओंकी विद्यमानता या अभाव।

(५) स्वभाविक प्रति क्रियाएँ—

वहिः प्रतिक्षेप

अन्तः प्रतिक्षेप

अंग प्रति क्रियाएं और गुद संकोचिनी पेशियां

(६) वाहिनी और पोषण संबन्धी परिवर्त्तन।

स्थानिक पीलापन या नीलिमा। किसी स्थान पर स्वेदकी विद्यमानता या अभाव। संधियोंके परिवर्त्तन नाखून, बाल, या त्वचामें परिवर्त्तन-असामान्य रञ्जन, दाने, क्षीणताएँ आदि।

९ आँख।

पलक, नेत्र श्लेष्म कला, नेत्र श्वेत पटल, नेत्र कृष्णपटल, आदिकी सामान्य दृष्टिपरीक्षा पर आकृति तिरछे प्रकाश और नेत्रान्तः परीक्षाके प्रयोगसे माध्यम, प्रकाशका विचलन और नेत्रगुहाकी अवस्था देखें। सभी वातिक रोगोंमें नेत्रगुहाकी अवस्था अवश्य देखनी चाहिए।

कान—कर्ण शस्कुली, छिद्र और परदेकी परीक्षा करें। आवश्यक हो तो स्पेकुलम (कर्ण प्रदर्शक यन्त्र) का प्रयोग करें। वायु भर कर भी देख सकते हैं।

कण्ठ, नासा, और स्वरयंत्र—स्वरयंत्रकी परीक्षा करें और अग्रिम और पश्चिम नासिका द्वारके विकारोंको नोट करते हुए परीक्षा करें।

१० गति संस्थान

अस्थियों और सन्धियोंमें कोई परिवर्त्तन हो तो वर्णन करें।

निदान

(साध्यासाध्य)

चिकित्सा और उन्नति विषयक टिप्पणियाँ

(तीव्र अवस्थाओंमें दैनिक टिप्पणियाँ, दूसरोंमें उन्नतिकी टिप्पणियाँ प्रति तीसरे दिन लिखें)

पृथक्करणकी अवस्था

यदि रोगी मर गया है तो मृत्यूत्तर परीक्षाकी टिप्पणी दो (यदि हुआ हो)

मानसिक लक्षणोंवाले रोगियोंमें डा० हेनरी हैड द्वारा प्रतिपादित निम्न योजना रोगी गृहोंमें उपयोगी होगी—

१. सामान्य

मानसिक निवृतिसे रोगीमें किस अंशमें परिवर्त्तन आया है—सामान्य प्रवृत्ति और व्यवहार।

कपड़ोंमें कोई विशेषता। क्या रोगी स्वयं कपड़े उतारने लगता है या अशिष्ट व्यवहार करता है ? क्या वह स्वयं कपड़े पहिन सकता है ? वह अपना भोजन कैसे खाता है ?

बुद्धिकी सामान्य अवस्था। क्या वह पढ़ और लिख सकता है ? क्या वह चित्रों द्वारा स्वयं मनोरंजन कर सकता है ? मानसिक विकृति द्वारा भावमें कोई परिवर्त्तन आ गया है ?

वह कुछ हानि तो नहीं कर रहा ?

क्या उसकी आदतें मलिन हैं ? यदि ऐसा है तो असावधानीसे या जान बूझ-कर वह मैला रहता है ?

मैथुन, मद्यपान, आदि।

चेहरेकी माँसपैशियोंकी क्रियाओंमें अधिकता तो नहीं ? मुँह बिगाड़ना, फुलाना, चिल्लाना आदि।

क्या उसे नींद आती है ?

क्या वह रातमें उठकर घरमें या कमरेमें इधर-उधर घूमना तो नहीं शुरू करता ?

२. संज्ञाएँ

दृष्टि, श्रवण, गन्ध, स्वादकी प्रान्तियाँ। किसी वास्तविक संज्ञाको अशुद्ध रूप देकर काल्पनिक संज्ञाएँ अनुभव करना।

आभास

३. भावनाएँ

प्रसन्नता—बोलते रहना, चिल्लाना, गाना। अत्यधिक ख़ुशीका अनुभव। बेचैनी या मारपीट।

विषाद—चीख़ना, आह भरना, रोना। दुःख अनुभव, निरन्तर या वेगोंमें।

भय—क्या रोगी आत्महत्या करना चाहता है ?

वासनाएँ—क्या रोगीकी बातोंमें वासनाओंकी झलक है ? उदाहरण दो।

धर्म—क्या रोगीकी मानसिक अवस्थापर अत्यधिक धार्मिकताका प्रभाव है ?

४. स्मृति

इरादेकी स्मृति अर्थात् क्या जब रोगी कुछ कहना या करना चाहता है तो तुरन्त अपना इरादा भूल जाता है ? क्या रोगी वस्तुओंको नियत स्थानसे अन्यत्र रख देता है ?

ताज़ी घटनाओंकी स्मृति।

बहुत पुरानी घटनाओंकी स्मृति तथा बचपनकी घटनाएँ।

यदि ताज़ी घटनाओंको ही स्मृति नष्ट हो गई हो तो यह भी पता लगाएँ कि विस्मृति कबसे शुरू हुई है।

५. विचार

स्थान और कालका निश्चय करनेका सामर्थ्य। व्यक्तित्व निश्चय करनेका सामर्थ्य अर्थात् क्या रोगी चिकित्सालयमें आसपास विद्यमान व्यक्तियोंको अपने पुराने मित्र और साथी समझता है या क्या वह उन्हें बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति या काल्पनिक व्यक्ति समझता है? क्या वह अपनी परिस्थितियोंको समझ सकता है? या क्या वह अपने आपको वास्तविक स्थानसे अन्यत्र समझता है? क्या वह अन्य व्यक्तियोंके कार्योंमें कुछ अन्तर्निहित भाव मानता है? जिन कार्योंको उसने नहीं किया है चाहे वे असंभव न भी हों उन्हें वह अपने किये हुये तो नहीं कहता? तथा जब वह मद्यके नशेमें मस्त हुआ सो रहा है तो यह तो नहीं कहता कि मैं प्रातःकाल घूमने गया था, अमुक व्यक्तिसे मिला था आदि।

विचारोंकी संगति या असंगति।

सन्देहकी भ्रान्तियाँ—निरन्तर या केवल वेगोंमें।

किसी अदृश्य शक्ति द्वारा अपने आपको अभिभूत तो नहीं समझता जो उसके पीछे पड़ी हुई हो? विशेषकर रातमें।

बड़प्पनका भ्रान्त विश्वास—संपत्ति, अधिकार, शारीरिक शक्ति।

अपने स्वास्थ्य और शारीरिक अवस्था विषयक भ्रान्तियाँ।

वातिक नैर्बल्यमें निराधार भय।

अच्छा नौकर पर बुरा मालिक

[ले०—श्री उमाशंकरजी]

(१)

आगका प्रयोग कबसे आरंभ हुआ, कोई ठीक नहीं कह सकता। गर्मीके लिए आगकी आवश्यकता है। यह गर्मी खाना पकानेके लिए या सरदीमें बदन गर्म रखनेके लिए या और किसी और काममें लाई जाती है। बदमाश लोग इसी आगसे लाभ उठाकर दूसरोंको भस्म करते हैं। आतशबाज़ीमें यही आग रंग-बिरंगी रोशनीसे देखनेवालोंको खुश करती है। गरजते हुए बादलोंसे बिजली गिरकर आग लगा देती है और जला देती है। सूरजकी गर्मी सब जानते ही हैं।

आगकी पहचान गर्मी और रोशनी है। पर हर तरहकी रोशनीमें आग और गर्मीका होना आवश्यक नहीं है। जुगनू और कुछ तरहकी गहरे पानीकी मछलियोंमें चमक होती है। सूरजकी किरणों-पर पड़कर उलटती हैं। इनमें कोई गर्मी नहीं होती।

आग छूनेका असर तो बचपन ही से जाननेको मिलता है। दूधका जला मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीता है। गुस्सेसे बदनमें 'आग' लग जाती है—आँखें 'अँगारा' हो जाती हैं। कवि लाल-लाल फूलोंको खिले देखकर कहता है कि वसन्तने आग लगा दी है। लाल चमकदार चीज़को एकदम छू लेनेमें डर लगता है—कहीं आग न हो।

इसी आगको नौकर बनानेसे भाप बनती है जिससे मशीनें चलती हैं। चीज़ें गर्म की जाती हैं। और यही आग बढ़कर जब बसके बाहर हो जाती है तो सारा सत्यानाश कर देती है।

(२)

लड़नेके लिए दो चीज़ोंकी आवश्यकता है। दो

आदमी, या एक आदमी और ख़राब दिमाग। आगके लिए भी जलनेवाली चीज और एक गैस (ओषजन) या बिजली और एक पतला तार या कार्बनके टुकड़े। लेकिन इन सबसे पहिले एक और चीज़की ज़रूरत है। एक समय एक प्रश्न किया गया - एक आदमी देरसे घर पहुँचता है। उसके पास एक सिगरेट है, गैस जलाता है, और चूल्हा भी—उसके पास सिर्फ़ एक ही दियासलाई है। वह सबसे पहिले क्या जलाये ? आप क्या उत्तर देंगे, सोचिये ! असली उत्तर है—दियासलाई पहिले ! आग पैदा करनेकी तरकीब सबसे पहिले है, फिर कौनसी चीज़ें जलती हैं, विज्ञानमें जलनेका क्या अर्थ है, आग कैसे बुझाते हैं—यह सब जानना चाहिए।

पुराने समयमें लोग सूखी लकड़ी रगड़कर आग निकालते थे—या लोहा और पत्थर रगड़कर। आजकल दियासलाई है। बिजली अथवा हवाको बंद करके खूब दबानेसे भी आग निकलती है। धूपमें आतशी शीशेको रखनेसे भी नीचे रक्खी हुई चीज़ जलाई जा सकती है !

पानी आगको बुझाता है लेकिन पानीमें एक गैस है—उदजन, जो जलती है ओषजनसे मिलकर—लेकिन आग लगानेपर। अगर खास तरहसे बना हुआ प्लैटिनम मौजूद हो, तो आप ही आग लग जाती है। कुछ धातुओं (पोटेशियम) को पानीमें फेंकनेसे भी उदजन निकलती है और जल उठती है।

इसी तरह अगर स्पिरिटकी भापमें प्लैटिनमका तार रक्खा जाय, और हवा उपस्थित हो, तो तार गरम हो जाता है, और स्पिरिट जल उठती है।

कभी बिना जलाये ही आग लग जाती है ! घासके ढेरमें आग लग जाती है। यह थोड़ी गीली होनेसे सड़ने लगती है। इसकी सड़ाँदमें गर्मी निकलती है और यह गर्मी धीरे-धीरे जमा होती जाती है—ढेर घना होनेके कारण इतनी जमा हो जाती है कि आग लग जाती है। ऐसे ही तेलसे भीगे हुए चिथड़ोंमें भी—यहाँ तेल ओषजनसे मिलता है। कपड़ेपर फैले होनेसे और तेज़ीके साथ। साथ ही जो गर्मी निकलती है वह जमा होती जाती है—कपड़ा गर्मीको नहीं ले सकता (लोहेकी तरह)—इसलिए आग लग जाती है।

ज्वालामुखी पहाड़में भी बहुत गर्मीसे आग पैदा हो जाती है। जानवरोंके बदनमें भी गर्मी है, पर इतनी नहीं कि आग लग जाय। ताज़े सूखे चूनेमें पानी पड़नेसे गर्मीके कारण आग लग सकती है, और भी रासायनिक पदार्थोंके आपसमें मिलनेसे ऐसा होता होता है।

जंगलोंमें जो आग लग जाती है वह सूखी लकड़ियोंकी रगड़से या बिजलीसे। आदमीकी लापरवाहीका नतीजा भी सबको मालूम है।

(३)

चिनगारी पैदा करनेके बाद कोई ऐसी चीज़ चाहिए जो जलायी जा सके। लकड़ी और कोयला और कंडे, तो मामूली चीज़ें हैं। कपड़ा, काग़ज़ भी जल सकता है लेकिन ज़्यादा नहीं—इतना आये कहाँसे।

मिट्टीका तेल और पेट्रोल या और कोई तेल भी जलता है। चरबी पिघलाकर भी जलाई जाती है।

गैस जलती है। इसे एसिटिलीन कहते हैं। यह ओषजनसे मिलकर बहुत तेज़ गर्मी देती है। फ़ौलादकी चादर आसानीसे काटी जा सकती है। उदजन भी इसी तरह जलती है।

बिजलीकी आग ख़ास तरहकी है।

लकड़ी जब जलाई जाती है तो इसमेंसे गैस निकलती है जो जलती है—नीली लौ दिखाई देती है। यह गैस और तरह प्रयोग की जा सकती है, लेकिन यहाँ बेकार जाती है। कुछ देशोंमें इसे लकड़ीसे निकालकर काममें लाया जाता है, और शेष आगसे घरोंमें खाना बनता है। लेकिन अब आगमें चमक और लौ नहीं होती।

जब लकड़ी पड़े-पड़े गीली जगहमें सड़ती है, बरसों बीत जानेपर तहोंपर तहें जम जाती हैं, और ऊपरसे मिट्टीका बोझ दबाता है, तो कोयला बन जाता है। चूँकि इसमेंसे गैस निकल गई, इसलिए इसमें भी लौ और तेज़ चमक नहीं होती।

मिट्टीका तेल ज़मीनसे निकलता है। लेकिन इसी तरह जलाना ठीक नहीं, इसमें गैसें जल उठती हैं। यह तेल गरम किया जाता है और हलके हिस्से भारीसे अलग कर लेते हैं। सबसे पहले पेट्रोल भाप बनकर उड़ता है और जमा कर लिया जाता है। इसके बाद मिट्टीका तेल जो जलानेके काममें आता है, जमा किया जाता है। फिर गाढ़ा तेल आता है जिसे मशीनोंमें चिकनाहटके कारण डालते हैं – यह जल्दी नहीं सूखता। उसके बादके हिस्सेसे वेसलीन और मोम निकलता है।

कुछ जगहोंपर जमीनसे गैस निकलती है जो जलानेके काममें आती है। कोयलेकी खानोंमें इसकी पहिचान बहुत ज़रूरी है, नहीं तो आग लग जाये।

लेकिन कोयला, तेल, यह सब कबतक चलेगा—पेट्रोलकी इतनी ज़रूरत है—इसके लिए स्पिरिट काम देगी। यह आलू, चावल या चुकन्दरसे बन सकती है।

पानीकी भापको जलते हुए कोयलेपर प्रकाशित करनेसे पानीकी गैस बनती है। कोयलेको बन्द जगहमें गर्म करनेसे कोयलेकी गैस बनती है। लेकिन इस कारखानेमें खादके लिए उपयोगी वस्तुएँ भी निकलती हैं। इससे अब भी इसका काम जारी है।

आजकल बिजली सबसे जरूरी है। इसमें भी तेल या भापकी जरूरत पड़ती है जिससे मोटर चलता है, लेकिन अब पानीसे बिजलीकी मशीनें चलती हैं। बिजलीका लाभ तो कारखानोंको है, आग बनानेके लिए बहुत ही कम बिजलीका प्रयोग होता है, जैसे खाना पकाना, जाड़ेमें गर्मी, लोहा पिघलाना आदि कामोंमें, क्योंकि बिजलीसे सबसे ज्यादा गर्मी हो सकती है।

यह सब आनन्द तो अमरीका, और दूसरे पश्चिमी देशोंमें है। बिचारे भारतीय लोहारोंके लिए कोयला और धौंकनी है—जलानेके लिए लकड़ी और पत्ते, रातको रोशनीके लिए तिल या सरसोंका तेल—लेकिन अब तो मिट्टीके तेलका रिवाजका फ़ी फैल गया है।

आग जब मालिक बन जाये तो उसको बुझाना ज़रूरी है। पानीका काम तो मामूली है। पानीको ऊपर जोरसे दूरतक फेंकनेके लिए उपाय निकाले गये हैं। अगर ओषजनकी पहुँच रोक दी जाय तो भी आग बुझ जाय—यह कर्बन-द्वि-ओषिद गैससे हो सकता है। थोड़ी आग ठीकसे ढक देनेसे भी बुझ जाती है।

जलकुम्भीका खादमें प्रयोग

[संयुक्त प्रान्तीय कृषि विभागका एक बुलेटिन]

जलकुम्भी क्या है ?

जलकुम्भी जो कि कहीं-कहीं 'जलमुखी' या 'पानीकी घास' भी कहलाती है पानीकी, तलैयों तालाबों और धीरे-धीरे बहनेवाले चश्मोंमें अधिकतर फैलती हैं। यह एक भयानक घास होती है और शीघ्रतासे बढ़ती है यहाँ तक कि जब उगना शुरू हो जाती है तो बढ़कर पानीकी तमाम सतहपर फैल जाती है और इस प्रकार बोरो धान और पानीकी फ़सलें जैसे कमलगट्टा, सिंघाड़ा इत्यादिके पैदा होनेमें बाधक होती है। यह सड़कर पानीको गन्दा कर देती है जो कि पीने योग्य नहीं रहता और साथ ही वायुको भी दूषित कर देती है जो कि स्वास्थ्यके लिए हानि-

कारक है। नदियोंमें इस घासके फैलावके कारण छोटी छोटी नौकाओं द्वारा भी, जो कि शिकार खेलने, मछली मारने और माल ले जानेके काममें लाई जाती हैं, जहाज़रानी करना असम्भव हो जाता है।

इस पौधेको नष्ट करनेके लिए अब तक बहुत-सी रीतियाँ काममें लाई गई हैं और कदाचित सबसे उत्तम रीति तो यही होगी कि इस घासको पानीसे निकाल लिया जाय और सड़ा कर खाद बना ली जाय। इस घासकी वैज्ञानिक परीक्षा अथवा विश्लेषण करनेसे यह मालूम हुआ है कि इसमें नोषजन और स्फुरिकाम्ल (फासफोरिक ऐसिड) काफ़ी परिमाणमें मौजूद हैं और पोटाश तो विशेष प्रकारसे अधिक परिमाणमें पाया जाता है।

इस घासमें ९५ प्रतिशत पानीकी मात्रा होनेके कारण इसको किसी दूरीतक ले जाना कठिन सा हो जाता है। इसलिए इसको तालाबों या चश्मोंके नजदीक ही, जिनमें कि यह पाई जाती है, प्रयोगमें लाया जा सकता है। कुछ सूख जानेके पश्चात् इस घासको कुछ दूरतक अवश्य ले जाया जा सकता है।

पाँस बनाना

पानीसे निकालनेके पश्चात् इस घासको थोड़ा सुखा लेना चाहिए और तब इसके बाद इसको कमपोस्ट या पाँस बनानेके लिए कूड़ा करकट इत्यादिके साथ मिलाकर बैलोंके पैरोंके नीचे डाल देना चाहिए और इस प्रकार साधारण कमपोस्ट या पाँस बना लेना चाहिए और यदि अधिक परिमाणमें इसका प्रयोग करना है तो चीनवालोंकी कमपोस्ट बनानेकी रीति काममें लाना चाहिए।

गन्नेकी सूखी और बेकार पत्तियोंकी तरह यह घास भी देरमें सड़ती है परन्तु यदि इसके परिमाणकी $\frac{1}{3}$ सनई या किसी दूसरी चीजको इसके साथ मिला दिया जाय तो शीघ्र ही सड़न आरम्भ हो जाती है और साथ ही इसके गुण भी अच्छे हो जाते हैं।

निम्नलिखित रीतिसे साधारण कमपोस्ट पाँस बनाई जा सकती है :—

(१) जलकुम्भीको कुछ सुखाकर इसका $\frac{1}{3}$ परिमाण की सनई अथवा दूसरे कूड़ा करकट इत्यादि मिलाकर बैलोंके नीचे बिछौनेके सदृश्य प्रतिदिन फैला देना चाहिए और दो दिन पश्चात् हटा देना चाहिए।

(२) अब इस कूड़ेको बैलोंके थानसे हटाकर गोबर, राख और पशुओंका पेशाब मिला देना चाहिए (आधी तगड़ी गोबर एक तगड़ी पेशाब मिली हुई मिट्टी और दो मुट्ठी राख एक जोड़ी मवेशियोंके नीचेके निकले हुए कूड़ेमें काफ़ी होती है)।

(३) इस मिले हुए मालको जैसा सुभीता समझा जाय या तो ढेर बना लिये जायँ, या खाइयोंमें डाल दिया जाय और वर्षाकालमें तो खाद बनानेके लिए ढेरोंका बनाना ही उत्तम और सुगम होगा।

(४) यदि ढेर लगानेकी ही रीति काममें लाई जाये तो प्रत्येक ढेर २॥ से ३ फुटतक ऊँचा और ६ फुट चौड़ा और आवश्यकतानुसार लम्बाईका होना चाहिये। एक ढेर पूरी ऊंचाई तक ६ दिनमें तैयार हो होता है। वर्षाका पानी जब ढेरमें ६ से ९ इंच गहराई तक खप जाय, ढेरको पहिला पलटा देना चाहिए और तब इस पूरे मिलावको दूसरी ओरको पलटकर एक दूसरा ढेर बना लेना चाहिए।

(५) पहिले पलटेसे क़रीब एक महीनेके पश्चात दूसरा पलटा देना चाहिये और दूसरे पलटेसे एक महीनेके पश्चात तीसरा। पलटे उसी दिन देना चाहिये जिस दिन पानी बरसता हो। यदि अच्छी तरहसे पानी न जज़्ब हुआ हो तो और पानी मिला देना चाहिये। इस प्रकार क़रीब चार महीनेमें खाद तैयार हो जायेगी।

(६) यदि खाइयोंकी रीति प्रयोगमें लाई जाये तो दो फुट गहरी, दस फुट चौड़ी और सुभीते अनुसार

लम्बाईकी खाइयाँ खुदवाना चाहिये और और मिलाव जैसा कि ऊपर पैरा नं० २ में तैय्यार हुआ है इनमें भर देना चाहिये परन्तु भरनेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि भरावका फैलाव एक सा रहे। दो जानवरों-के नीचे जो मिलाव बिछा हुआ है उससे क़रीब ४६ वर्ग फ़ुट खाई ७ दिनमें भर जायेगी।

(७) पहिले और दूसरे पानीके बीच दो सप्ताहका अन्तर होना चाहिये और इसके बाद फ़ौरन ही उसको पहिला पलटा देना चाहिये। थोड़ी सी गोबर-की खाद या पुरानी पांस उस समय इसमें पहिले पहल बतौर जामन मिला देनी चाहिये।

(८) क़रीब एक पखवारेके बाद, दो दिन लगातार, तीसरा और चौथा पानी देना चाहिए और इसीके बाद दूसरा पलटा देना चाहिए। पाँचवा और छठा पानी दूसरे पखवारेके बाद, दो सप्ताहका अन्तर देकर, देना चाहिए, और इसके बाद तीसरा पलटा देना चाहिए।

(९) अब इस पलटेके बाद इस मालके ज़मीनके ऊपर, १० फ़ुट चौड़े, ३॥ फ़ुट उंचे और सुविधानुसार लम्बाईके ढेर बना लेना चाहिए। पानी देते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि पानी कुल मालमें भली भांति खप गया है। पानी सुविधानुसार, तालाब, तलैया अथवा नहरसे लिया जा सकता है।

चीन निवासियोंकी विधि

यदि जलकुम्भीकी खाद बहुत अधिक परिमाणमें तैयार करना है तो कदाचित् यही उत्तम होगा कि चीनवालोंकी रीति, जो कि मिट्टीकी खाद (पांस) बनानेकी रीति कहलाती है, प्रयोगमें लाई जावे—

(१) क़रीब १८ फ़ुट लम्बे, १२ फ़ुट चौड़े और २॥ फ़ुट गहरे गड्ढे खोद लेना चाहिए, या इस क्षेत्रफलको अंकित करके ढेरोंकी रीतिके अनुसार कार्य करना चाहिए।

(२) पांच गाड़ी जलकुम्भी जिसमें इसके परि-माणका $\frac{1}{3}$ भाग सनई मिली हुई हो, १ इंचकी तह बनाते हुए फैला देना चाहिए और इसपर एक हल्की तह $\frac{1}{2}$ गाड़ी मिट्टी, $\frac{1}{2}$ गाड़ी गोबर और दो टोकरी लकड़ीकी राखको फैला देना चाहिए और तब इसको पानीसे तर करके पूरे ढेरको कांटे द्वारा मिला देना चाहिए।

(३) इसी प्रकार जलकुम्भीकी एक दूसरी तह जिसमें इसका $\frac{1}{3}$ भाग सनई भी मिली हुई हो इसके ऊपर फैला देना चाहिए और इसमें गीली मिट्टी, गोबर और लकड़ीकी राख भी मिला देना चाहिए। इस प्रकार, जब तक कि जलकुम्भी और सनईकी ३०—३६ गाड़ियाँ न पड़ जायें प्रयोगको जारी रक्खो।

(४) अब इस ढेरको थोड़ीसी मिट्टीकी हल्की तहसे ढककर एक महीने तकके लिए छोड़ देना चाहिए और एक महीना पूरा होनेपर ढेरको फिर उलटो पलटो ताकि उसके अन्दर तक हवा अच्छी तरह पहुंच जाय और यदि आवश्यकता समझी जाय तो इसको थोड़ा तर भी कर देना चाहिए।

(५) दो महीनेके पश्चात् खाद बनानेका कार्य पूरा हो जायगा और तब एक प्रकारकी गीली सड़ी हुई पत्तियोंके गूंधनके समान खाद तैयार हो जावेगी यदि इस मिलावका खेतके धरातलमें प्रयोग किया गया तो यह पौधोंके बढ़नेमें सहायता पहुंचानेके लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा।

चीन, कोरिया, जापान आदि देशोंमें सब्ज़ पौधों से एक बहुत बड़े परिमाणमें खाद (पाँस) बनाई जाती है। यदि यह भारतवर्षमें भी नियमानुसार बनाई जावे तो अवश्य बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी।

परिहासचित्र क्या है ?

[ले०—एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका, श्री रत्नकुमारी एम० ए०]

उस आकृति-लेखनका नाम परिहासचित्र है जिसमें किसी भी मनुष्यका व्यक्तित्व उसके अंगों, आकृतियों, अवयव स्थितियों, प्रकृतियों और अभिव्यंजनाओंको सरल एवं प्रभावशाली रूपमें करके व्यक्त किया जाता है। यह एक-मात्र चरित्र-प्रदर्शनकी समस्या है,—उस व्यक्तिके चरित्रकी जिसकी आकृति तुम खींचना चाहते हो। यदि तुममें मनुष्य के चेहरे और आकृति खींचनेकी योग्यता है और यदि तुम उसके चरित्रको समझ सकते हो तो अभ्याससे तुम परिहासचित्र खींच सकोगे। यह पुस्तक परिहास-लेखन संबंधी-ज्ञान और अभ्यासमें तुम्हें शीघ्र और सीधा मार्ग दिखलायगी, और यह भी बतलायगी कि परिहास-चित्रणके समय मनुष्यके व्यक्तित्वके किन किन अंगोंपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

मनुष्यकी ओर देखो और स्वयं यह विचारो कि इस मनुष्य और अन्य सामान्य व्यक्तियोंमें क्या अन्तर है। क्या उसकी नाक अपेक्षाकृत लंबी है, या पैर छोटे हैं? यदि ऐसा है तो तुम्हें इन विचित्रताओं-पर ज़रूर ही ज़ोर देना चाहिए। वह विनोदी है या शांत, अविचारशील है या गंभीर? प्रत्येक प्रश्नका उत्तर तुम्हारे चित्रमें होना चाहिए। जैसा मैंने पहले कहा है तुम्हें आकृतिचित्रणका गहरा व्यवहारिक ज्ञान होना चाहिए। इस बारेमें मैंने इसी सर्ज़की पुस्तक "आकृति लेखन" में (इस पुस्तकका अनुवाद 'आकृति लेखन' के नामसे विज्ञानके पूर्व अंकोंमें दिया जा चुका है) प्रधान समस्याओंको सुलझाया है। परंतु बहुतसे अच्छे आकृतिलेखक हैं जो परिहासचित्र नहीं खींच सकते। ऐसा क्यों है? अच्छा, कदाचित् यह इस लिए है कि मनुष्यमें परिहासचित्रके लिए विनोदकी प्रबल भावना होनी चाहिए। ऐसे व्यक्तिका चित्र खींचतेमें जो अपनेको शानदार प्रदर्शित करनेका प्रयत्न कर रहा हो, उसे ऐसा देखो मानो वह प्रयत्न कर रहा है; एक ऐसे मनुष्यका चित्र खींचनेमें जो सिंहके समान भयंकर दीखता है उसे क्रुद्ध बिल्लीके बच्चोंकी तरह देखो। यही सफल-कार्य का रहस्य है। प्रत्येक रेखामें व्यंग और छिपा हुआ हास्य होना चाहिए। चरित्रकी एक-रसतामें हास्यजनक स्वरकी- भांड़पनेकी एक छाप अवश्य होनी चाहिए। रेखाओंकी सरलता भी आवश्यक है। रेखायें जितनी कम रहेंगी उतनी ही अधिक व्यंजना पूर्ण और प्रभावकारिणी होंगी। केवल आवश्यक यह है कि वे ठीक हों।

आकृति चित्रणका एक-मात्र सफल मार्ग जीवित व्यक्तियोंके चित्रणमें है। अनुभवी कलाकार एक फोटोसे बड़ा सुन्दर परिहासचित्र बना सकता है परंतु वह प्रधानतः अनुभवसे ही कार्य लेगा। शीशे द्वारा अपने आपका ही परिहासचित्र बनानेकी चेष्टा करो। बराबर चेष्टा किये जाओ; तुम अपनेको उसी प्रकार देखोगे जैसे अन्य मनुष्य तुम्हें देखते हैं और इससे विनम्रता और योग्यता दोनों ही आ जाती हैं। अपने मालिककी आकृति उस समय खींचो जब वह न देखता हो या अपने मातहतका चित्र खींचो जब वह देखता हो। अपनी प्रिय चाची अथवा अपने सबसे अधिक हँसोड़ भाईकी आकृति खींचो। उसी व्यक्तिके चित्र खींचनेका प्रयास तबतक करते रहो जबतक तुम उसके चित्रमें उसकी आकृतिकी समानता और परिहास दोनों ही न पा जाओ।

यहाँ यह अच्छा होगा कि मैं तुम्हें इस बातके लिए सावधान कर दूँ कि केवल मनुष्योंकी कमज़ोरियों

और अनौचित्योंपर ही ध्यान मत दो। हमें सर्वदा याद रखना चाहिए कि मनुष्य ईश्वरके आकारका बनाया गया है। यद्यपि उसने अपनी बनावटमें बुराइयाँ उत्पन्न कर ली हैं, परंतु तब भी कलाकार और परिहासचित्रकारके लिए उसमें सच्ची शान और सौंदर्यके चिह्न विद्यमान रहते हैं। इन गुणोंको सूक्ष्म रूपसे व्यक्त करो। परिहास-पूर्ण अत्युक्ति करो परंतु नम्रतासे। व्यक्तिकी विशेषताओं — भव्य मस्तक, दृढ़ ठोढ़ी—को देखो और उनको ज़रासा बढ़ा दो। मनुष्यको उचित और उचितसे कुछ अधिक दोनों दो।

यह आवश्यक नहीं है कि तुम व्यक्तियोंका आदर ही करते रहो। अत्युक्ति करनेमें डरो मत। साहस-पूर्वक खींचो परंतु केवल व्यक्तिकी दृढ़ नासिकाको अत्युक्ति पूर्णकरके ही उसकी निर्बल ठोढ़ीको भुला न दो। उसके शृंग-मंडित चश्मेको दुगना मत बनाओ और न उसकी दोहरी ठोढ़ीको आधा करके दिखाओ।

हर एक चीज़को न तो सिर्फ बहुत बड़ा बनाओ, न बहुत छोटा। आकृतिको देखो और साधारण ढंगसे अत्युक्ति करो। अगर कोई नासिका कुछ गोलसी है तो उसे गोल बनाओ, यदि नुकीली न हो तो उसे वर्गाकार बनाओ। चित्र १३ की ख-आकृतिमें तुम एक प्रसिद्ध नाटक-कारका परिहासचित्र देखते हो। यह चित्र उस आकृतिचित्रणसे बनाया गया है जो मैंने उसके व्याख्यानको सुनते समय बनाया था। उसका ऊंचा लंबा सिर एक ऐसी विशेषता थी जो भुलाई नहीं जा सकती। मेरे लिए उसकी मुसकान दाढ़ीसे अधिक मूल्यवान थी।

कदाचित तुम्हें अनुभव होगा कि किसी किसी चेहरेमें ऐसी कोई भी विशेषता नहीं होती है जिसे लेकर उसका परिहासचित्र बनाया जाय। ध्यानसे देखो; कदाचित सिरका ढाल, घुंघराले बाल, कोटके कालरको रखनेका ढंग, तुम्हारे कामके हो सकें। व्यक्तिका चरित्र उसके सारे रूपमें अंकित है, परंतु यह बहुधा बहुत विचित्र ढंगों और स्थानोंसे बड़ी स्पष्टतापूर्वक व्यक्त होता रहता है। कुछ व्यक्तियोंका परिहास-चित्र बन ही नहीं सकता यदि तुम उनके जूते न खींचो। कुछ अन्य व्यक्तियोंका चित्र बिना उनकी टोपीके असंभव हो जायगा। कुछ बिल्कुल स्वाभाविक दीखनेवाले स्त्री पुरुष पीछेसे देखे जानेपर बड़े उपहासा-स्पद दीख पड़ते हैं, और कुछ जिनका चेहरा काफ़ी गंभीर है यदि बगलसे देखे जायं तो अपना मादक-प्रभाव अच्छे परिहासचित्रकार पर डाले बिना नहीं रहते।

मुझे इस बातको फिरसे याद दिलानेके लिए क्षमा करना कि कटुता एवं क्रूरतामें हास्य नहीं है। हमारा लक्ष्य तो संसारको हंसाना है, न कि बुरे कटाक्ष-भाव उत्पन्न करना। हमारा उद्देश्य है, संसार मुसकरा उठे न कि नाक सिकोड़े। स्मरण रक्खो कि परिहास बुराईको दूर करता, परंतु अच्छाईको हानि नहीं पहुँचाता है। ज़रासा "पैर खींचना" किसीको हानि नहीं पहुँचाता है। इससे असत्यकी मात्रा जो अवश्य ही सबमें पाई जाती है कम हो जाती है। मैं चाहता हूँ कि अपना पहला परिहासचित्र बनानेसे पहले इस पुस्तकके आगामी परिच्छेदोंको तुम ध्यानपूर्वक पढ़ डालो।

अवश्य ही मनुष्यका चेहरा उसके चरित्रका सबसे प्रधान परिचायक है, क्योंकि और सब अंग तो ढके रहते हैं पर इसमें परिवर्त्तित होनेकी और मनुष्यके भावोंका प्रत्यक्षीकरण करनेकी क्षमता होती है। भावभंगी और आकृति चाहे कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, यदि तुमने उस व्यक्तिका चेहरा बुरी तरह खींचा है तब तुम असफल हो गये। प्रकृति-में मनुष्यका शिर और अंग-प्रत्यंगोंको छोड़कर और भला कौन सी वस्तु अधिक विचित्र है।

इसलिए मैं अपना अध्ययन मनुष्यके इस परम महत्वशाली और अधिकतासे प्रत्यक्षीकरण करनेवाले अंगसे प्रारम्भ करता हूँ। यहाँ मस्तकके ठीक सामने मनुष्यकी सुननेवाली, देखनेवाली और सूंघनेवाली अर्थात् अनुभव करती हुई आकृति है। और यहाँ

नेकी या बुराईकी झलकसे आवृत्त वह मुख है जिसको मनुष्य ने उससे बनाया है, जिसको उसने अपने अन्दर ग्रहण किया है।
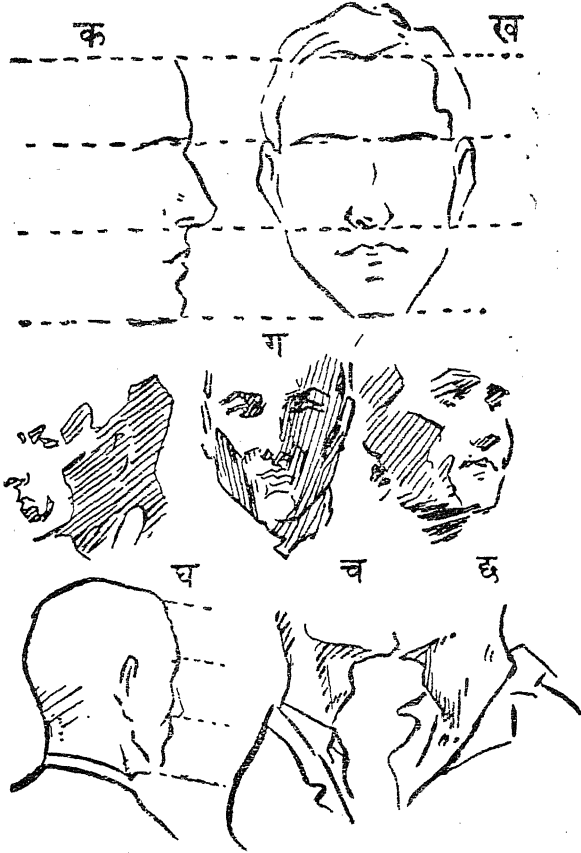
चित्र १

थोड़ेमें ही चेहरेकी बनावटका विश्लेषण कर लो। चित्र १ की 'क' और 'ख' आकृतिमें तुम चेहरेके साधारण अनुपातको देखते हो। देखो, बाल और भ्रू, भ्रू और नासिका-रंध्र, नासिका-रंध्र और दाढ़ी और कानकी लंबाईके बीचमें लगभग समान दूरी हैं। साधारण चेहरेकी यह नाप याद कर लेनी चाहिए और सर्वदा मस्तिष्कमें रहनी चाहिए क्योंकि इससे उस व्यक्तिके चेहरेमें प्रत्येक प्रकारका अंतर जिसे तुम खींच रहे हो ज्ञात करनेमें सहायता मिलेगी।

शिरको भली भाँति खींचना सीखो। मैं इस पुस्तकमें तुम्हें शास्त्रीय और शारीरिक आकृति-चित्रण नहीं सिखा सकता। परन्तु मैं उस व्यक्तिको जो कुशल आकृति-लेखनकार नहीं है फिर सलाह दूँगा कि वह परिहास-चित्र बनानेसे पहले "आकृति लेखन" का अभ्यास करे।

तुमको कितनी योग्यता होनी चाहिए इसको बतानेके लिए मैं उदाहरण रूपमें पहले चित्र की 'ग' आकृतिमें तीन शिर दिखाता हूँ। यह आकृतियाँ एक शिरकी हैं जो तीन विभिन्न परिस्थितियोंमें खींचा गया है। इस प्रकार शीघ्रतासे बनाई साधारण शिर-की आकृति परिहास-चित्रके लिए बड़ी मूल्यवान है। वास्तवमें प्रत्येक अच्छा परिहासचित्र विशुद्ध चित्रकारी पर ही अवलंबित रहता है।

तुम्हारे लिए यह आवश्यक होगा कि केवल 'चित्र खींचनेका' ध्यान ही मनमें रखकर लगातार चित्र बनाते रहो। समय समय पर परिहासचित्रका समस्त विचार त्याग दो और केवल अच्छी गठन, धरातल और शुद्ध रेखाओंके लिए ही कार्य करो। पहले चित्रकी 'घ', 'च' 'छ' आकृतियोंसे मेरा तात्पर्य प्रगट होता है। इन तीनों छोटे रेखा-चित्रोंमें मैंने जो कुछ देखा था उसीको खींचना उद्देश्य रक्खा है, अत्युक्ति करने वा परिहास-चित्र खींचनेकी चेष्टा ही नहीं की। तुम्हें लगातार सीखते रहना चाहिए कि एक एक अंग अथवा आकृतिको अधिक अच्छा और सत्यके अधिक निकट कैसे दिखाया जाय। तुम चित्रको तब तक व्यंगपूर्ण नहीं कर सकते जब तक तुम्हें खींचना न आता हो। चरित्रकी खोज और चरित्रका चित्रण चाहे कितना ही आनंददायक एवं विस्मय-कारक क्यों न हो, यह याद रक्खो कि यह मांस और अस्थिके चित्रणपर आश्रित और अतः निर्भर है। बहुधा मैंने देखा है कि नौसिखिये कलाकार

वस्तुतः अच्छे परिहासचित्रका आभास तो प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु हीन-चित्रकारीके कारण उनका चित्र बिगड़ जाता है। ऐसे उत्साही व्यक्तिको यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता है तो धैर्य और मार्ग-प्रदर्शन की।

क्या तुमने कभी डबल्यू० एम० थैकरेकी चित्रकारी उसकी पुस्तकोंमें देखी है ? वे अंतर्दृष्टि और परिहासमें अत्यंत ही स्पष्ट हैं पर यदि थैकरेमें चित्रकारकी वह कुशलता—कलाकारकी विद्या— होती जिसका आनन्द हम फील मे-के चित्रोंमें पाते हैं तो वे चित्र कहीं अधिक प्रभावोत्पादक होते। 'पंच' के अनेक चित्र बहुत हास्यप्रद हैं परन्तु उनकी प्रधान सफलता आकृति-लेखनकी सफलता ही है। पॉय और स्ट्रूबेके व्यंग-चित्रोंको सूक्ष्मतासे देखो। चेष्टायें, पेशियां, कपड़ोंकी शिकनें और आकृतिकी स्थिति देखो। व्यंग और परिहास-चित्रणके अतिरिक्त इन सबसे आकृति-लेखन-की चरम योग्यताका पता चलता है। मैं फिर कहूँगा कि परिहास खींचनेका यत्न करनेसे पूर्व आकृति-लेखनमें कुशलता प्राप्त कर लो।

अंगोंमें गति

इस विशेषतासे युक्त कार्यपर लक्ष्य रखनेसे पूर्व चेहरे और अन्य अंगोंकी गतियोंका अध्ययन करना सर्व-प्रथम आवश्यक बात है। यह बहुत आसान है कि किसी व्यक्तिको छोटी नाक, ऐनक, और आंखोंके नीचे झुर्रियां दे दी जायं परन्तु उसमें किसी भावका प्रदर्शन न हो। इस प्रकारका परिहासचित्र शर्तिया बेजान होगा और व्यंग चित्रके लिए व्यवहारिक रूपसे बेकार होगा। क्या तुम हँसी, रुलाई, घृणा, चिल्लाहट, उदासी इत्यादिको खींच सकते हो ? यदि खींच सकते हो तो क्या तुम इन सबको एक ही चेहरेमें प्रदर्शितकर सकते हो ?

इन प्रश्नोंमेंसे पहला प्रश्न यहाँ लो—दूसरा इस पुस्तकके आगेके अंशके लिए है। क्या तुम भावनायें खींचकर प्रदर्शित कर सकते हो ? यहाँ फिर केवल एक ही समस्यापर ध्यान देना चाहिए। मैंने तुम्हें सलाह दी थी कि चेहरेको आकृति देने और चित्र खींचनेका अध्ययन करते समय उसका चरित्र भूल
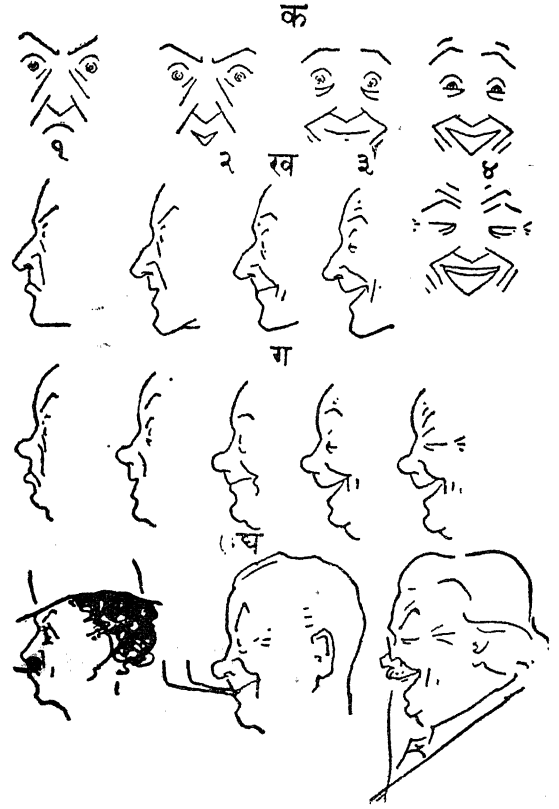
चित्र २

जाओ। अब मैं सलाह देता हूँ कि जब तुम भावनाओं-का अध्ययन कर रहे हो तब चरित्र और चित्रण दोनोंको ही भूल जाओ। जिस प्रकार दूसरा चित्र दिखाया गया है वैसे ही अभ्यास करो। यहाँ 'क' आकृतिमें चार भिन्न भावनाओंका प्रदर्शन है। नीचे इनका बगलसे लिया हुआ चित्र है। 'ग' आकृतिमें वे ही भावनायें एक दूसरे प्रकारके चेहरेमें दिखाई गई हैं।

तुम नीचे दी हुई उपयोगी बातोंपर ध्यान दो। 'क$_1$' आकृतिमें दुखी चेहरा है, सब रेखायें नीचेकी ओर जाती हैं। भौंहे भी मध्यकी ओर नीचेको झुकती हैं। जैसे जैसे चेहरा अधिक प्रसन्न होता जाता है वैसे वैसे रेखायें चंपटी या चौड़ी होती जाती हैं। भौंहें भी उठ गई हैं और अन्य छोटी रेखायें दीख पड़ती हैं।

अपना समस्त खाली समय इसी प्रकार "चेहरे बनाने" में लगाओ। समता अथवा विशेष अंगोंकी चिंता न करो। केवल इच्छा, भय, चालाकी, चिल्लाहट, रुलाई जैसी भावनाओंके प्रदर्शनकी चेष्टा करो। अंतमें तुम इस योग्य हो जाओगे कि इस प्रकारकी भावनायें किसी भी पात्रमें जिसे तुम खींचना चाहते हो दिखा सको जैसा कि 'घ' आकृतिमें दिखाया गया है। तुम देखोगे कि समस्त चेहरे एक ही नियमसे कार्य करते हैं और एक बार किसी भी भावना प्रदर्शनमें कुशलता प्राप्त कर लेनेपर तुम इस योग्य हो जाओगे कि उसे प्रत्येक चेहरेपर दर्शा सको। संगीतमें कुछ बहुत ही साधारण नियम हैं जो कठिन और सरल दोनों प्रकारके स्वरोंपर शासन करते हैं। इसी तरह भावना-प्रदर्शनके भी नियम हैं। वे हर प्रकारके चेहरेपर लागू हो सकते हैं पर अवश्य ही कुछ परिवर्त्तनके साथ। यदि तुम दूसरे चित्रकी 'ख$_4$' और 'ग$_4$' आकृतियोंकी तुलना करो तो रेखाओंकी संख्या और क्रममें बिल्कुल समानता पाओगे। अंतर केवल रेखाओंके प्रकारका है, जो पहले-सीधी हैं और दूसरेमें गोलाकार। व्यंग-चित्रके लिए भावना-चित्रणका ऐसा ज्ञान अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि चित्रकारको सर्वदा ही जाने बूझे चेहरेपर भिन्न भिन्न भावनाओंका प्रदर्शन दिखलाना पड़ता है।

शीशेके द्वारा अपने ही मुखसे भावनाओंका चित्रण करना अच्छा अभ्यास है; परन्तु यदि तुम किसी व्यक्तिको पा सको जो तुम्हारे लिए दो तीन मिनटतक बैठ जाय तो तुम्हें बहुत ही अधिक सहायता मिलेगी। कलाकी एक पाठशालामें हम विद्यार्थियोंको तीन मिनटतक आकृतिसे भावना-प्रदर्शनके लिए चित्रण करना पड़ता था। इस प्रकारका अध्ययन चेहरेमें न केवल जीवन लाना ही सिखाता है बल्कि शीघ्रता और एकदम सीधे खींचना भी।

आयु

चेहरेका एक और मुख्य भाव है जिसे प्रकट करनेकी योग्यता तुममें होनी चाहिए। यह एक ऐसा रोग है जिससे हम सब कष्ट पाते हैं और जिसका ज़बर्दस्त नाशक प्रभाव न तो कोई छिपा सकता है और न मिटा सकता है। यह आयु है। यह मुखपर भी उतना ही प्रभाव डालती है जितना शरीर और गति पर। परन्तु हम चेहरेको ही लेंगे।

वह अच्छा परिहास-चित्रकार कितना चतुर है जो कुछ रेखाओंमें ही आयुका प्रदर्शन कर देता है। यह वृद्धावस्था नहीं है जो अधिक कठिनाई उपस्थित करती है। तीस और पैंतालीसके बीचकी आयु अत्यन्त मायावी है। उस समय ये सब बातें देखनेमें अधिक सूक्ष्म होती हैं और उनका खींचना तो और भी कठिन हो जाता है।

पैंतालीस वर्षसे नीची आयुवाले मनुष्यमें साधारणतः कुछ मुटापा होता है, जो बाद को लटकता मालूम होने लगता है। कभी-कभी कुछ सूजन-सी पाई जाती है जो माँसके पतले और माँस पेशियोंकी अधिकता होनेसे हो जाती है। पैंतालीस वर्षसे ऊपर लटकन अधिक हो जाती है और ज़ोर पड़ता मालूम होता है। इस आयुमें कौनसी दो प्रधान भावनायें होती हैं? थकावट और चलते रहने की कठिन चेष्टा। यह दोनों चालीस या पचास वर्षसे ऊपरके प्रत्येक चेहरेमें होती हैं, और कुछ चेहरोंमें कुछ कम आयुमें ही।

तीसरे चित्रमें 'क' आकृतिमें चार चित्र हैं। 'कक′' में करीब पच्चीस वर्षके युवकका औसत चेहरा है। 'क ख′' में वही मनुष्य चालीस वर्षका

है, 'क ग'' में फिर वही मनुष्य है, जब वह करीब पचपनका है और 'क घ'' में उसी चेहरेमें वह आयु है जो साठसे सत्तर वर्षोंतककी गर्मी और
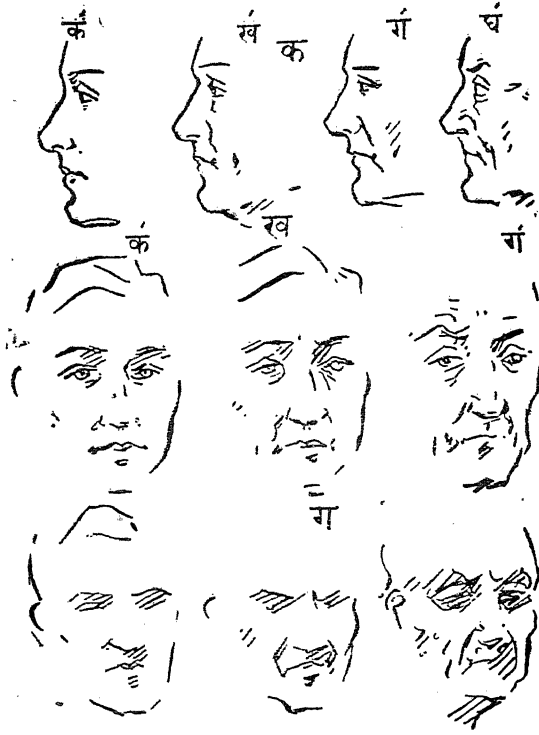
चित्र ३

सरदी झेल चुकी है। मैं चाहता हूँ कि तुम चारों चेहरोंकी भिन्नताओंको ध्यानसे देखो। आयु केवल रेखाओं और झुर्रियोंसे ही व्यक्त नहीं की जा सकती है, यद्यपि निस्संदेह वह इनसे ही अधिक प्रदर्शितकी जाती है। मुख्यतया ध्यान देनेवाली अंतिम आकृति 'क घ'' है। इस वृद्ध मनुष्यकी भौंहोंकी थकावट और उसकी ठोढ़ी और गर्दन और गालका लटकन देखो। इस चेहरेकी भावनाओंमें एक 'चेष्टा' है, जो 'क ग'' में भी झांकती दीख पड़ती है;—चैतन्य, क्रियाशील; जीवित रहनेकी चेष्टा।

नीचे 'ख क'' 'ख ख'' 'ख ग'' आकृतिमें मैंने वही चेहरा भिन्न ढंगसे खींचा है जिससे मेरे विचार तुम अच्छी तरहसे समझ लो। 'ख क'' की तुलना में 'ख ख'' मेंकी उन्नति देखो। उसमें नेत्रोंमें व्यवहारकी शुद्धता दृढ़ता, और जीवनकी कुछ कमी है, कम बाल हैं। गाल लटके हैं और कुछ चपटे हैं। 'ख ग'' में सब कुछ बदल गया है, केवल रहनेवाली समानता भर है। उसमें एक धीर दृढ़ता है। गाल नीचे को लटक गये हैं और अन्दर चले गये हैं, पलकें अधिक भारी और मुँह अपेक्षाकृत पतला और चूसा हुआ-सा है।

तुम मेरे इस कथनके महत्वको कि वृद्धावस्था चेहरेकी रेखाओंपर निर्भर नहीं है, अच्छी तरहसे समझ सको, इस उद्देश्यसे मैंने चित्र 'ग' शीघ्रतामें खींच दिया है जिसमें एक दो अंगोंपर ही, जैसे आँखकी भृकुटियोंपर, अधिक बल दिया गया है। यह तो सामान्य नियम है कि नौजवानीकी सीधी भृकुटियाँ मध्य-आयुमें जाकर कुछ नीचे खिंच जाती हैं, और फिर जैसे-जैसे बुढ़ापा आता है, फिर ऊपरको खिसकने लगती हैं। पहली गति तो प्रौढ़ताके कारण है और दूसरी गति पेशियोंके थकाव और आंखोंपर ज़ोर पड़नेके कारण है।

सिरकी साधारण आकृतियों और उनसे संबन्ध रखनेवाले चेहरोंपर विचार कर लेनेके उपरान्त, और आयुके भी अवश्यम्भावी प्रभावके विवरणके उपरान्त अब हम कुछ आंखवाले शिरोंपर परिहास-चित्रकी दृष्टिसे ध्यान देंगे।

(क्रमशः)
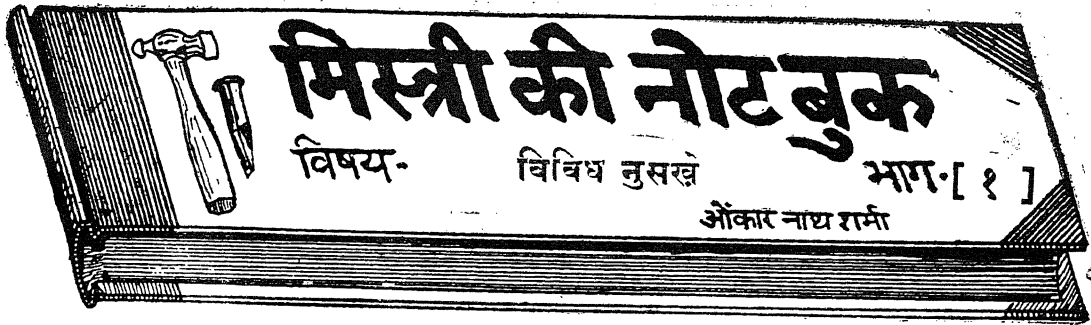
१—शिलालेख अथवा किसी खुदाई इत्यादिकी प्रतिलिपि लेनेके लिए ४ भाग राल और १ भाग मोमको गलाकर ढाल देना चाहिए।

२—ढालनेकी मिट्टी—ग्लीसरिनमें चिकनी मिट्टी को मीढ़ लेना चाहिए और फिर उसे फरमेमें दबा देना चाहिए।

३—ढालने योग्य मोम—मक्खीका मोम, सफेदा, जैतूनका तेल, पीली रालको, बराबर भाग लेकर गला लेना चाहिए और फिर उसमें आवश्यकतानुसार पिसी हुई खड़िया मिला कर गाढ़ा कर लेना चाहिए।

४—पीतल गलानेके लिए लाग—

साधारण साबुन	१ भाग
चूना	$\frac{1}{2}$ भाग
शोरा	$\frac{1}{4}$ भाग

इन्हें सबको मिलाकर पौने दो औंस वज़नकी गोलियाँ बना लेनी चाहिए। जब घरियाको भट्टीमेंसे निकालें तब उसमें एक गोली छोड़ी जाय। यह गोली ५० पौंड धातुके लिए काफी होगी।

५—प्लम्बेगोकी घरिया बनानेके लिए २ भाग तो ग्रेफाइट ले लीजिए और एक भाग मिट्टी। उन दोनों को पानी और जरासे सिलिकेट आफ सोडाके साथ मिलाकर आटेकी माफिक मीड़ लीजिए और फिर उसकी घड़िया बना डालिये।

६—कैन्वस और कपड़ेका "वाटरप्रूफ" बनाना :—

उबाला हुआ अलसीका तेल	१ क्वार्ट
साबुन	१ औंस
मोम (मक्खीका)	१ औंस

इन सबको औटा कर $\frac{3}{4}$ मात्रामें गाढ़ा कर लिया जाय अर्थात् गाढ़ा होने पर पौना हो जाय। फिर उसमें कपड़े या कैन्वसको भिगो दिया जाय। सूखनेपर काममें लाया जाय।

७—पैकिंगके कागजको वाटरप्रूफ बनाना :— पहिले सफेद साबुन १$\frac{3}{4}$ पौंड लेकर उसे १ क्वार्ट पानीमें घोल लिया जाय और फिर २ औंस गोंद और ५ औंस सरेसको १ क्वार्ट पानीमें गला लिया जाय फिर दोनों घोलोंको मिला कर गरम कर लिया जाय और उसमें कागजको डुबो कर सुखा दिया जाय।

८—ढले हुए लोहेके फरमोंको जंगसे बचाना:—

पहिले फरमेको उतना गरम कर लिया जाय कि जिसपर अलसीका उबाला हुआ तेल गिरते ही काला पड़ जाय, फिर उस फरमेको उबाले हुए तेलमें डुबो दिया जाय।

९—ढले हुए लोहेसे पपड़ियाँ छुड़ाना:—

एक भाग कसीस और दो भाग पानी मिलाकर जो घोल तैयार हो उससे उस लोहेके सामानको धोया जाय और ८-१० घण्टेतक उसमें यदि आवश्यकता हो तो भीगने भी दिया जाय। जब अन्तमें साफ पानीसे धोया जायगा तब सब पपड़ियाँ छूट जावेंगीं।

१०—पुराने फाइलों (रेतियों) को तेज़ करना:—

पहिले उन रेतियोंको तार की ब्रुशसे खूब साफ कर लिया जाय और फिर १ भाग धोनेका सोडा और ८ भाग पानीका घोल बना कर उन फाइलोंको आधे घंटेतक उबाला जाय और फिर धोकर सुखा लिया जाय। फिर किसी पत्थरके बरतनमें १ भाग गंधकका तेजाब और ८ भाग बरसाती या भभकेका पानी मिला कर उस घोलमें उन रेतियोंको डुबो दिया जाय। दर्रा रेतियोंको १२ घंटेतक और साफ रेतियोंको ८ घंटे तक डुबोया जाय। पीछे उन्हें निकाल कर साफ़ पानीसे अच्छी तरहसे धो दिया जाय और फिर जल्दीसे सुखा कर उनपर मीठा तेल (तिल्लीका तेल) चुपड़ दिया जाय।

११—छोटे छोटे औज़ारोंकी नोकके आबदारी लगाना—:

जिस भागके आबदारी न लगानी हो उसे कच्चे आलूमें घुसेड़ देना चाहिए। और फिर भट्टीमें रख कर मामूली तरहसे गरम किया जाय और बुझाया जाय।

१२—केस हार्डन (खोल आबदारी) करनेका मसाला:—

प्रूसेट आफ पोटाश (पीला)	७ भाग
बाइक्रोमेट आफ पोटाश.	१ भाग
साधारण नमक	८ भाग

इन तीनों चीजोंको कूट पीस कर खूब मिला दिया जावे। जिस पुर्जेपर आबदारी लगानी हो उसे आगमें लाल तपा कर इस चूर्णमें डुबो दिया जाय और फिर उस पुर्जेको आगमें फिर तपाया जावे जिससे वह पुर्जा उस मसालेको सोखले। फिर लाल हो जानेपर उसे मसालेमें डुबोया जावे फिर तपाया जावे इस प्रकार बार-बार करनेसे खोल सख्त हो जाती है। जितनी गहरी खोल सख्त करनी हो उतनी ही बेर उसे मसालेमें डुबोना और तपाना चाहिए। फिर आखिरमें ठंडे पानीमें बुझा देना चाहिए।

१३—देगसार लोहेकी खोल सख्त करना:—

जिन चीजोंकी खोल सख्त करनी हो पहले उन्हें लाल सुर्ख गरम कर लेना चाहिए और फिर गरम गरमपर प्रूसेट आफ पोटाश, नौसादर और शोराके बराबर भागके बनाये हुए चूर्णको मल देना चाहिये या चूर्णमें उस पुर्जेको डुबो देना चाहिए। फिर नीचे लिखे घोलमें उसे बुझा देना चाहिए।

प्रूसेट आफ पोटाश	२ औंस
नौसादर	४ औंस
ठंडा पानी	१ गैलन

१४—बरमोंकी नोकको बहुत सख्त करना:—

शुद्ध गंधकका तेज़ाब किसी तश्तरीमें लगभग ५/८" की गहराईतक भर लीजिये और फिर बरमेकी नोकको तपा कर उसमें बुझा दीजिये। इस प्रकार बरमा इतना सख्त हो जायगा कि उससे कमानियों और आरी वगैरामें आसानीसे छेद किया जासकेगा।

१५—कागज़परसे चिकनाईके धब्बे छुड़ाना:—

जिस कागज़पर धब्बा हो उसके ऊपर नीचे ब्लाटिंग पेपर रखदो जिससे दूसरोंको नुकसान न पहुँचे। फिर मगनेशियाका चूर्ण धब्बेके ऊपर और नीचे रखदो और उसके ऊपर इस्तरी गरम करके फेरो, इस्तरी इतनी गरम न हो कि जिससे कागज जल जाय, थोड़ी देर बाद जब चूर्णको झड़काया जायगा तब धब्बा गायब मिलेगा।

१६—ट्रेसिंग क्लाथपर बने नक़शेसे मैल साफ़ करना— पेट्रोलमें कपड़ा भिगोकर रगड़नेसे मैल साफ हो जाता है।

१७—ब्ल्यूप्रिंटके नक़शेपर सफ़ेद पक्के हरूफ लिखना— पानीमें हलका सोडा मिलाकर धातुके निबसे लिखनेसे सफेद हरुफ उघड जाते हैं।

१८—ब्ल्यूप्रिंटके नक़शेपर तरह-तरहके रंगके हरूफ व लकीरें बनाना :—सोडेके साफ घोलमें हल्कासा गोंद और जिस प्रकारका रंग करना हो वैसा और उतना ही रंग मिला देना चाहिए फिर धातुके क़लमसे लिखना चाहिए। गोंद मिलानेसे रंग फूटेगा नहीं।

१९—ब्ल्यूप्रिंटके नकशेपर सफेद रंगसे पक्के हरूफ लिखना :—सोडेसे लिखे हुए हरूफ़ एक बार लिखे बाद फिर मिटाये नहीं जासकते लेकिन सफेदेसे लिखे हुए हरूफ पानीसे धोये जा सकते हैं, लेकिन कई बेर दराजोंमें रखे हुए नकशोंपर बने सफेदेके हरूफोंको कीड़े भी चाटकर साफ़ कर देते हैं। यदि सफ़ेदे (सफेद रंग) में ऑक्सगाल थोड़ा-सा मिला दिया जाय तो हरूफोंको कीड़े नहीं चाटेंगे।

२०—ब्ल्यूप्रिंट तैयार करनेका घोल :—

घोल (क)—	अमोनियम साइट्रेट आफ आयरन	१ भाग
	साफ़ पानी	४ भाग
घोल (ख)—	पोटेशियम फेरोक साइनाइड	१ भाग
	साफ़ पानी	४ भाग

घोल (क) और (ख) दोनोंको बनाकर अलहदा अलहदा बोतलोंमें रखना चाहिए और जब आवश्यक हो तब दोनोंमेंसे समान भाग मिलाकर किसी इस्पंजसे अंधेरे कमरेमें कोरे काग़ज़पर पोतना चाहिए और फिर उस काग़ज़को वहीं सूखनेके लिए लटका देना चाहिए। इस प्रकारसे तैयार किया हुआ कागज़ अँधेरी जगहमें हिफाजतसे रखा रहनेपर महीने भरतक काम दे सकता है। इस प्रकारसे तैयार कियेकागजको जब ट्रेसिंगके नीचे प्रिंटिंग फ्रेममें लगाकर उचित समयतक धूपमें रखा जाता है और फिर उसे निकालकर साफ पानीमें भली भांति धोया जाता है तो आसमानी धरतीपर सफेद लकीरोंवाला नकशा तैयार हो जाता है।

ट्रेसिंगपर बने नकशेसे सफ़ेद धरतीपर काली लकीरोंवाली प्रतिलिपि तैयार करना :—ऐसी प्रतिलिपियाँ कई तरीकोंसे तैयार होती हैं लेकिन सबसे आसान तरीका जो प्रोफेसर कोलासका ईजाद किया हुआ है इस प्रकार है :—

टारटरिक ऐसिड	२ औंस
परक्लोराइड आफ आयरन	४ औंस
परसल्फेट आफ जिंक	२ औंस
जिलेटीन	२ औंस
पानी	६० औंस

उपरोक्त घोलको तैयार करके यदि काग़ज़को उससे पोत दिया जावे तो उसका कुछ हरा-हरा-सा रंग हो जावेगा। इस प्रकारसे तैयार किये कागजको प्रिंटिंग फ्रेममें ट्रेसिंगके नीचे रंगकर धूपमें आवश्यकतानुसार रखकर नीचे लिखे घोलसे डेवलप करना चाहिए।

मिथेलेटड अलकोहल	५ औंस
गैलिक ऐसिड	½ औंस
पानी	२५ औंस

इस घोलसे लगभग ३ मिनटमें साफ-साफ़ काली लकीरें उघड जाती हैं। फिर उस नकशेको १५ मिनट-तक बहते पानीमें धोना चाहिए।

बग़ीचोंमें सुन्दर फर्न उगाना

[ले०—श्री राधानाथ टंडन, बी० एस-सी० एल० टी०]

फर्नरीके उत्तम स्टाकके बिना कोई भी बग़ीचा परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह शोचनीय बात है कि वास्तवमें उत्तम तथा भली प्रकार उगे हुए फर्नोंके समूह बहुत कम देखनेको मिलते हैं। अधिकांश बग़ीचोंमें निस्सन्देह अति साधारण प्रकारके फर्न ही पाये जाते हैं।

औसत दर्जेके मालियोंको पौधोंके जीवनका तथा तरह तरहकी उपयुक्त मिट्टीका तथा अन्य आवश्यकताओंका ज्ञान बहुत कम होता है। जब वह पुरस्कार पाने योग्य 'बोगनविली' उत्पन्नकर सकता है तो कोई कारण नहीं कि उसी प्रकारके कलचरसे एक उत्तम फर्न क्यों न पैदा कर सके।

नियमानुसार फर्न्स अधिकांश फूलवाले पौधोंकी अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं और उनके लिए अधिक ध्यान और समझकी आवश्यकता है। बागके शीतलसे शीतल तथा अधिक नम भागमें फर्नरीको स्थान देना चाहिए, तथा विशेष घनी छायामें उनको नहीं रखना चाहिए यद्यपि सूर्यके सीधे पड़ते हुए प्रकाशसे दूर रखना चाहिए, तथापि अधिकांश पौधे छनकर आते हुए तीव्र प्रकाशको भी सह लेते हैं।

मैं यहां केवल उपयुक्त जातिके फर्नोंके सम्बन्धमें ही जो मेरी समझमें उत्तम निकलेंगे अपने विचार प्रकट करूँगा, और अन्तमें स्पोरों तथा बीजों द्वारा उनकी सन्तति उत्पन्न करनेके संबंधमें भी कुछ लिखूँगा।

पार्थिव (टेरेस्ट्रियल) फर्न

फर्न दो मुख्य समूहोंमें विभाजित किये जा सकते हैं :—(१) पार्थिव अथवा पृथ्वीपर उगनेवाले, (२) वृक्षोंपर उगनेवाले। प्रथम प्रकारके फर्न गमलोंमें उगानेके उपयुक्त हैं, और उनके संबन्धमें निम्नलिखित बातें रुचिकर होंगी।

समस्त फर्नोंमें एडीएन्टम (कुमारी चालवाले फर्न) अधिक प्रसिद्ध हैं, तथा उनमें विशेष उत्तम प्रकारके यह हैं—क्युनीटम एलीगैन्टीसीमम, क्यु० ग्रेसीलीमम, क्यु० ग्रैन्डीसेप्स, क्यु० ग्रैन्डिस, क्यु० वैरीगेटम, फार्लिएन्स, मैक्टोफाएलम, ट्रोपीजीफार्मी, टेनेटम, तथा विलीयमसी। अन्तिम जाति वाला फर्न सुनैहरी बुकनीसे आच्छादित रहता है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह गोल्ड फर्नमें होता है।

एडीऐण्टम फार्लेअन्स समस्त एडीऐण्टमोंमें निस्सन्देह सबसे उत्तम समझा जाता है। इसमें उगनेपर बड़ी गौरववान पत्तियां निकलती हैं। नियमानुसार फर्न्सको अल्प अम्लीय मिट्टीकी आवश्यकता होती है।

परन्तु एडीऐण्टममें ऐसा नहीं होता, और इसके लिए पूर्णतया सड़ी हुई गायकी खाद, पत्ती, बालू तथा अधिक चूनेदार कङ्कड़ोंसे बनी हुई खाद देनी चाहिए। इस प्रकारकी खाद गमलेमें ऊपरतक नहीं भरनी चाहिए और इसमें औसत दर्जेकी नमी रखनी चाहिए।

ऐसप्लेनिममोंमें अधिक प्रसिद्ध ऐस-नाइडस है। जिसको कि साधारणतया "बर्ड्स नेस्ट-फर्न" कहते हैं। इसकी लम्बी, चमड़ेदार, गहरी हरी पत्तियां गोलाईमें गुलाबके फूलोंके सदृश, पक्षीके घोंसलेसे समता रखती हुई निकलती हैं। यह उत्तम पौधा है और बहुधा ६ फुट ऊँचाईतक पहुँचता है। ऐस बुलबीकेरम जिसका ऐसा नाम पत्तियोंके किनारोंपर बुलबिलोंके उत्पन्न होनेसे पड़ा अत्यन्त आकर्षक गमलेवाला पौधा है। यदि पत्ती तोड़ ली जाये और किसी बालूमें जहाँ बुलबिल्स शीघ्र जड़ पकड़ लें रख दी जाये तो यही बुलबिल्स निस्सन्देह पूर्ण पौधोंके रूपमें बढ़ जायेंगे। इसके लिए अर्धमात्रामें लोम की तथा शेषमें पत्ती, गोबर और बालूकी खाद पर्याप्त होगी।

नम्नग्रामा—(जीम्नॉग्रामाज़) अथवा "स्वर्ण तथा रजत फर्न" फर्न परिवारके शाहीवंशज पौधे हैं, और इनके उगानेमें अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है। खादमें पौन भाग रेशेदार पीट, मोल्ड पत्ती, लोम, तथा अधिकांश बालू होनी चाहिए, तथा पौधेको अधिक जल कभी नहीं देना चाहिए। पौधेके ताजको किसी अवस्थामें भी जल न छूने पावे, वरना यह बहुधा इसकी मृत्युका कारण बन जाता है।

नीफरोलेपिस—इस कुटुम्बमें अनेक ऐसे हैं जो लटकनेवाली डलियोंमें उगानेके उपयुक्त हैं जिनमें नीफरोलेपिस मार्शलाइवर कम्पैक्टरा सबसे उत्तम है। निकरो कार्डेटा तथा एग्जाल्टेटा (उच्चसिर वाले) भी बड़े दृढ़ उगनेवाली जातिके हैं। यह अपनी सन्तान उत्पत्ति बहुधा अपनी शाखाओंसे सरलता पूर्वक करते हैं तथा मिट्टी एवं अन्य आवश्यकताओंके विशेष उत्सुक नहीं हैं।

टेरिस अथवा-रिबन फर्न्स मैदानमें उगानेके लिए विशेष उपयुक्त नहीं हैं, परन्तु मध्यम ऊँचाई या ऊँची सतहों पर यह अच्छे बढ़ते हैं। अधिकांश फर्न पौधोंकी अपेक्षा इनको भारी मिट्टीकी आवश्यकता होती है। शक्तिवान होनेके कारण यह अधिक प्रकाश सहन कर सकते हैं तथा घरकी सजावटके लिए विशेष उपयुक्त हैं। उच्च कोटिके उत्तम प्रकारोंमें कुछ टेरिस ट्रेमुला, बाइआरिटा, क्रिस्म अर्जेन्टिमा, क्रिटीका, क्रिस्म ऐलबोलिनिएटा, लाङ्गी फोलिया (लम्बी पत्तीवाले), सेमीपिन्नेटा (अर्ध पत्तीवाले), इस्ट्रैमिनीया, तथा बालोचीएना हैं।

अधिकांश सेलैजिनेले निस्सन्देह मनोरम पौधे हैं और उनके लिए छिछले तसले उत्तम होते हैं। उनको साधारण हल्की मिट्टी, समभागमें लोम, पीट तथा मोल्ड पत्तीकी आवश्यकता पड़ती है जिसमें ऊपरसे थोड़ी बालू और मिला देते हैं। इसके भी अनेक प्रकार हैं। चढ़ने वाले (लतर) पौधोंमें मेरे बिचारसे सेलैजिनेला वैल्डीनोवाई तथा सलाउन सिनेटा सबसे उत्तम हैं। यदि उतम रीतिके उगाये जाएँ तो पत्तियां सुन्दर गहरे नीले वर्णकी निकलती हैं। और जब सेला इमीलिन्सिम आरिया-एनाके साथ साथ उगाए जाएँ तो इनमें एक चिताकर्षक वर्णिक प्रभाव आ जाता है। कुछ ऐसे पौधे जैसे सेलैजिनेला काले सेन्स, ग्रैन्डिस, इनीक्वाली फोलिया, मोलीऐप्स, सर्पेस तथा वाटसोनिएना भी अच्छे प्रकारके हैं।

वृक्षों पर उगने वाले फर्न्स

वृक्षों पर उगने वाले फर्नोंमें दवालिअस, पालियोडिमम्स (बहुपत्ती वाले) तथा प्लैटीरिमम्स अधिक प्रसिद्ध हैं। निस्सन्देह दवालिअस तथा पालियोडिमम्स (बहु पत्ती वाले) अधिक सरलता पूर्वक उगाये जा सकते हैं। लम्बीलम्बी राइज़ोमों अथवा जड़ोंसे युक्त यह अपनी पूर्ण अवस्था पर तब देखे गये हैं जब वृक्षके तनोंपर उगाये जायें।

स्टैग्ज हार्न फर्न (बारहसिंगीके सींग वाला फर्न) विशेष हैं। कारण कि इसमें दो प्रकारकी पत्तियां निकलती हैं, एक वह जिसको 'ब्रैक्ट फ्रान्ड' कहते हैं जो सीधा निकलता है तथा दूसरा वह जिसको 'फलदायिनी पत्ती' कहते हैं, जिसमें बीज अथवा स्पोर्स निकलते हैं।

सन्तति-विस्तार

यद्यपि अधिकांश फर्नों के वंशको वानस्पतिक रीतिसे बढ़ाया जा सकता है, तथापि स्पोरों अथवा बीजों द्वारा पैदा करनेकी रीति अधिक अच्छी है। यह अणुवीक्षणीय बीज कुछ पत्तियोंके पृष्ठोंपर सैकड़ों छुद्र थैलोंमें जिनको "स्पोर थैले" कहते हैं अधिकांशमें पैदा होते हैं। थैलोंमेंसे बीजोंके निकलनेके पूर्व ही पूरी पत्तीको काट लेना चाहिए और तत्पश्चात् उसको काग़ज़के बने लिफाफेमें रखकर अच्छी तरहसे मोहर लगा देनी चाहिए। एक सप्ताहके अन्दर लिफाफेको खोल सकते हैं और सूखी हुई पत्तीको लिफाफेके ही अन्दर अच्छी तरह हिला दो। जब पत्तीको निकाल लोगे तो लिफाफेके अन्दर बहुसी शुष्क गर्द जो बीज हैं दिखाई पड़ेगी। इसका वर्ण बहुधा श्यामता युक्त भूरा होता है, परन्तु कभी कभी यह घना नीला हो सकता है जैसे नम्र ग्रामोंमें।

आधी दूर तक कङ्कड़ोंसे तथा शेष भाग किनारेसे १ इंच तक महीन छनी हुई लोम मिट्टीसे भरे हुए उपयुक्त गमले तैयार रहने चाहिए। गमलोंकी मिट्टी गुलाबके छोटे फूल द्वारा उबलते हुए जलसे पूर्णतया सींच कर शुद्ध कर लेनी चाहिए। जब मिट्टी अपने साधारण तापक्रम पर आजाये तब बीजोंको बड़े हल्के तौरसे मिट्टी पर बुरक कर बो दो। तत्पश्चात् एक कांचका ढक्कन प्रत्येक गमलेके ऊपर रख कर और गमलोंको एक ठण्डे छायादार स्थानमें ले जाकर पानीसे भरे हुए छिछले तसलोंमें रख दो। ऐसा इस कारण किया जाता है कि जिसमें ऊपरसे न सींचना पड़े कारण कि बीजोंके सूक्ष्म होनेके कारण ऐसा करना उचित नहीं है। इस रीतिसे तसलेका जल गमलेके निम्न भागके छिद्र द्वारा सूक्ष्म सूची-आकर्षणसे आपसे आप ऊपर खिंच आता है, और गमलेकी मिट्टी समरीतिसे नम हो जाती है। कांचके ढक्कनको प्रतिदिन प्रातःकाल शुष्क कर लेना चाहिए। कुछ सप्ताहोंमें वृद्धिके प्रोथैलियम तककी पहुँच हो जाती और तत्पश्चात् बहुत शीघ्र ही तरुण फर्न या पौधा दृष्टिगोचर होता है। जब पूर्णतया शक्तिवान हो जावें, तो तरुण पौधोंको चुन कर लघु गमलोंमें लगाओ तथा जिस प्रकार एक साधारण पौधेको उगाते हैं उसी प्रकार उगाओ, पर निस्सन्देह उनको छायामें रखना और खूब नमी पहुँचाना चाहिए।

[अँग्रेजी लेखका अनुवाद]

वैज्ञानिक जगत् के ताज़े समाचार

वैद्युतिक-पेटी-द्वारा रेगमाल पर सच्ची धार बनाना।

रेगमाल अब केवल सरेस* फेरी हुई दफ्तीपर तितर-बितर रेतके कणका बिखरा हुआ कागज नहीं है। विद्युतकी पेटीके प्रयोग द्वारामें नोकीले कण इस प्रकार चुपकते हैं कि इनकी नोकें ऊपरकी ओर रहें और उनसे अत्युत्तम काटनेकी सतह बन जाय। पहिले एक ४०—५० हजार वोल्टका विद्युत-क्षेत्र तैयार किया जाता है। उसमें अपनी सतहपर बारीक रेतके कण लिये एक पेटी चलती है। इन कणोंके लगभग ¾ इंच ऊपर सरेस लगी हुई दफ्ती थमी रहती है। विद्युत-शक्तिकी रेखाओं द्वारा ये कण उठ आते हैं दीर्घ अक्षकी

दिशामें और जिससे इनकी नोकें एक सार दफ्तीपर चिपक जाती हैं। फ्लिंट, गारनैट और एमेरी प्राकृतिक पदार्थ है। जिनका चूर्ण इस काममें आता है और रसायन शालाके बनाये हुए पदार्थ सिलिकन कार बाइड और बुझा हुआ अल्युमिनियम ओषिद जिनका प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे काटनेके पदार्थ जिनपर किसीर रासायनिकका लेप (कोटिंग) रहता है अब बहुत अधिक मात्रामें बनते हैं और ऐसे विभिन्न उद्योगोंमें, जैसे लकड़ीका सामान, फेल्ट हैट, जूते, मोटर, हवाई जहाज, संगमरमरका सामान, जवाहरातका सामान गोल्फक्लबकी चीज़ें आदि, काम आते हैं।

पुरातन मनुष्योंकी आयुका भेद पेड़के छल्लोंसे जानना।

दक्षिणी पश्चिमी भारतमें पेड़के तनोंकी बनी प्राचीन ऋषियोंकी मूर्त्तियाँ भी अब उनकी आयुके भेदको छिपाये नहीं रख सकतीं। पेड़के छल्लोंके कलेन्डरसे यह तुरन्त जाना जा सकता है। कलेन्डरका बनना इस सिद्धान्तपर है कि उगते हुए पेड़में हरसाल एक छल्ला बढ़ जाता हैं। इस छल्लेकी चौड़ाई उस सालकी वर्षा और ऋतुपर निर्भर होती है। दक्षिणी भारतमें टेनेसी घाटीकी अधिकारिणी सभा ने एक ऐसा दक्षिणका कलेन्डर बनाया है जिसके द्वारा यह निर्धारित किया जा सके कि बुरे-से-बुरे सूखे (अनावृष्टिकाल) में इसके बाँधोंमें पर्याप्त मात्रामें जल-शक्ति अर्थात् जलसे बिजली (वाटर-पावर) पैदा की जा सकती है या नहीं। जो पेड़ इस घाटीमें अभी खड़े हैं वे ३५० वर्ष तकके हैं। उनके छल्लोंका अध्ययन करके इतिहास लेखक यह अनुमान कर सकता है कि अमुक लकड़ी कब काटी गई थी। अब विज्ञान-वेत्ता दक्षिणके पेड़ोंके ठूँठोंपर खुदी हुई अर्वाचीन ऋषियोंकी मूर्त्तियोंके आधारका अध्ययन कर यह पता लगा सकेंगे कि कब भारत वासियों ने उस पेड़को मूर्त्ति-आकार किया।

अलकोहल—बैनजोलका मिश्रण प्रयोग करनेसे मोटरकी तीव्र गति

यह अब निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि गैसोलीनकी जगह अलकोहल बैनजोलका मिश्रण प्रयोग करनेसे मोटरें अधिक तीव्र गतिसे चल सकती हैं और यही कारण है कि बाहरकी मोटरें अमरीकाकी मोटरों पर दौड़में विजय पाती हैं। फ्रांसमें मोटरोंके लिए दो रासायनिक अलकोहल और बैनजोल ५०-५० प्रतिशतकी मात्रामें मिलाये जाते हैं। साथमें थोड़ा-सा ईथर और अण्डीका तेल भी मिला दिया जाता है। यह तेल सिलिंडरके ऊपरी भागको चिकना बनाये रखनेके लिए है। दूसरी प्रकारकी मोटरोंमें हवाईजहाज़में प्रयुक्त की जानेवाली गैसोलीन १० से २० प्रतिशतकी मात्रामें मिली रहती है। और साथमें अलकोहल और बैनजोल विभिन्न अनुपातमें मिश्रित रहते हैं। दो नुसखे ये हैं १—अलकोहल ८०%, बैनजोल १०%, हवाईजहाज़ोंवाली गैसोलीन १०%,

२—अलकोहल ६४%, बैनजोल २६%, हवाईजहाज़वाली गैसोलीन १०% और थोड़ा-सा चतुर्दारील सीसा भी मिला रहता है। नुसखेवाला तेल इस्तेमाल करनेवाली मोटर गैसोलीन वाली मोटरकी अपेक्षा तेज चलेगी यदि और सब बातोंमें दोनों एक-सी हों। इसका कारण यह है कि अलकोहल थोड़े ही तापक्रमपर वाष्पीभूत होता है, इसकी गुप्त-ताप अधिक है। इसलिए किसी अमुक संकोच-अनुपात पर (कम्प्रैशन-रेशियो) इसमें अपेक्षतया अधिक अश्व-बल (हार्स-पावर) उत्पन्न होती है फिर, अलकोहल गैसोलीनकी अपेक्षा कहीं अधिक दबोचा जा सकता है और विस्फोटन या झटका नहीं होता। बैनजोलमें शक्ति बहुत पैदा होती है और ऊँचे तापक्रमपर इसकी वाष्प बनती है। दोनों का उपयुक्त मिश्रण ही दौड़में विजय-प्राप्तिका एक साधन है।

दृष्टि-संबंधी फाँसेसे चौराहेपर मोटरोंका धोखा हो जाना

दक्षिणी कैरोलीनामें किसी बड़े संकटमय चौराहेपर आँखोंको धोखा हो जानेसे मोटरें धीमी हो जाती हैं। इस चकमेके लिए सड़कके दोनों ओर ६ फुट ऊँचे और ८ फुट चौड़े तख्तोंका जिनपर क्रमानुसार काले और सफेद धब्बे दोनों ओर अंकित हुए रहते हैं प्रयोग होता है। इनके लगानेकी विधि यह है। चौराहेके चारों रास्तोंमेंसे प्रत्येक पहिले ८७१ फुटकी दूरीपर (चौराहेसे) ६७५, ५००, ३५०, २२५, १२५, ५००, फुट दूरीपर ७ तख्ते और क्रमानुसार सड़कके गोलेसे १४, १२, १०, ८, ६, ४, २ फुट दूरीपर लगे होते हैं। इन दोनों उपायोंसे मोटर चलानेवालेको ऐसा प्रतीत होता है कि सड़क आगे बन्द है और वह मोटरको धीमा कर लेता है। अब उस चौराहेपर जहाँ सुबहके ७ बजेसे शामके ७ बजे तक लगभग १४०० मोटर-गाड़ियाँ निकलती हैं आकस्मिक घटनाएँ बहुत कम हो गई हैं।

गैस—विस्फोटनके यंत्र द्वारा चील आदिसे बागोंकी रक्षा

चील, कौओं आदिसे फलोंके बागों और नाजके खेतोंकी रक्षा करनेके लिए एक नया यंत्र बना है। इसमे ३ खाने होते हैं। एक खानेमें कारबाइड (जो साइकिलकी कारबाइड लैम्पमें काम आता है) भरा रहता है दूसरेमें पानी और तीसरे खानेमें कारबाइड और पानीके संयोगसे उत्पन्न हुई एसिटिलीन गैस और हवा सम्पर्कमें आती है। जब इस मिश्रणका दबाव अधिक हो जाता है तो ये गैसें जल उठती हैं और विस्फोटन पैदा हो जाता है। इसकी आहट १२ गोलियोंकी बन्दूक की-सी होती है। दस-दस मिनट पीछे या घंटेमें ४ बार जैसा चाहें विस्फोटनके द्वारा आहट करनेकी व्यवस्था की जा सकती है। २५ फुट ऊँचे बाँस या बल्ली परसे लटका दें और इसमें स्प्रिंग द्वारा इस यंत्रके झूलने देनेका इन्तजाम कर दिया जाय तो हर विस्फोटनपर यह यंत्र इधरसे उधर खूब ज़ोरमें झूलेगा और चिड़ियों वगैरहको भगा देगा।

साइकिलके पहियेपर कस देनेसे रोशनीके लिए बिजलीका पैदा होना

साइकिलके आगेके पहियेके चीमटेपर एक बिजली पैदा करनेका यंत्र कसा होता है जब साइकिल १ मील प्रति घंटेकी गतिसे भी चलती है तो पहियेके टायरसे रगड़ खाकर इस यंत्रमें बिजली पैदा होने लगती है जो आगे और पीछेकी दोनों रोशनियोंको जला देती है। ४ मील प्रति घंटेकी चालपर पूरी वाल्टेजकी बिजली पैदा होती है। अगर गति इससे भी तीव्र हो तो वाल्टेज और नहीं बढ़ता और विद्युत स्वतः नियंत्रित रहती है। एक छोटे-से क्लिप द्वारा यह यंत्र टायरसे अलग किया जा सकता है जिससे दिनके समय रोशनी न जले।

चीनी घासके बने वस्त्र सस्ते पड़ेंगे

प्राचीन मिश्रवासी चीनी घासके थान बुनते थे। लेकिन इस कल-प्रधान युगमें इसकी ओर ध्यान आकर्षित नहीं हुआ क्योंकि इससे कला द्वारा काम नहीं हो सकता था। किन्तु अब मशीनोंसे इस घासपर काम करनेकी विधि मालूम हो गई है और आशाकी जाती है कि निकट भविष्यमें ही एक नया उद्योग चल पड़ेगा और कम दामोंमें बढ़िया वस्त्र जो ज़्यादा दिन चलेंगे मिल सकेंगे। क्योंकि इस पौधेका रेशा कपासके रेशेसे ८ गुना तनाव-शक्तिमें अधिक है। चीनी घास जिसे अँग्रेजीमें रेमी कहते हैं क्योंकि यह पूर्वमें बहुतायतसे पैदा होती है अबतक व्यापाररूपमें काममें इसलिए नहीं आई क्योंकि यह चिपचिपी और चिमड़ी होती है। अब रासायनिक और यांत्रिक क्रियाओं द्वारा इसका लसलसापन अगर इनको बारीक और छोटे टुकड़ोंमें काट लिया जाय तो हट जाता है।

सितंबर, १९३८ मूल्य ।)

भाग ४७, प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र जिसमें आयुर्वेद विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या ६

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२८२

वार्षिक मूल्य ३)

नियम

(१) विज्ञान मासिक पत्र विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख-पत्र है।

(२) विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।

(३) परिषद् के सभी कर्मचारी तथा विज्ञान के सभी सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। मातृभाषा हिन्दी की सेवा के नाते ही वे परिश्रम करते हैं।

(४) कोई भी हिन्दी-प्रेमी परिषद् की कौंसिल की स्वीकृति से परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्यों को ५) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है।

(५) सभ्यों को विज्ञान और परिषद् की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं।

नोट—आयुर्वेद-सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें 'स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर' के पास भेजे जायँ। शेष सब सामयिक पत्रादि, लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र तथा मनीऑर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।
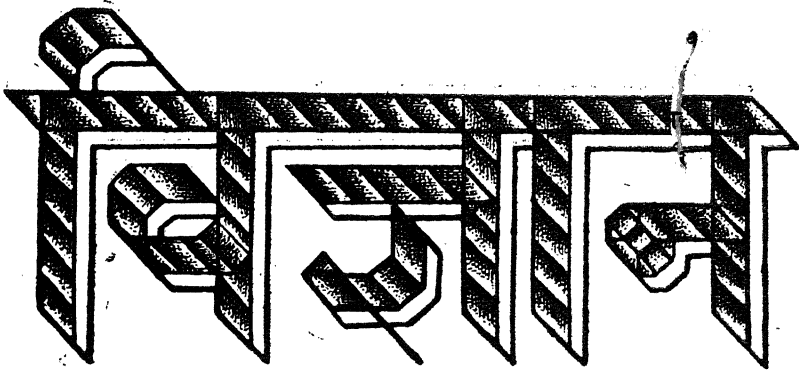
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४७	प्रयाग, कन्यार्क, संवत् १९९५ विक्रमी सितम्बर, सन् १९३८	संख्या ६

मिट्टीके बर्त्तनोंमें कच्चे मालका प्रयोग

(प्रो० फूल देव सहाय वर्मा, हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस)

मिट्टीके सामानोंके तैयार करनेमें अनेक द्रव्योंकी आवश्यकता पड़ती है। इन्हें हम 'कच्चा माल' कहेंगे। ये क्या हैं और कहां मिलते हैं उनका संक्षिप्त वर्णन यहां होगा।

मिट्टी।

मिट्टीके सामानोंके निर्माणके लिये मिट्टी अत्यावश्यक वस्तु है। मिट्टी हिन्दुस्तानके अनेक भागोंमें पायी जाती है।

जम्मूकी मिट्टी।

काश्मीरके जम्मू प्रान्तमें चीनी मिट्टी (केओलीन) बहुत प्रचुरतासे पायी जाती है। कहीं-कहीं यह सफ़ेद होती है पर अधिकांश स्थलोंकी मिट्टी भूरे वा हल्के पीले रंगकी होती है। कहीं-कहीं यह बिलकुल धुंधले रंगकी भी होती है। यहांकी मिट्टीमें अलुमिनाका अंश अधिक होता है। यहांकी मिट्टी ४ से १२ फुटकी तहमें पायी गयी है। इसकी मात्रा अनेक स्थानोंपर लाखों टनतक पहुँच जाती है।

दिल्लीकी मिट्टी

दिल्लीके निकट कुसुमपुरमें भी मिट्टी मिलती है। यह मिट्टी कहीं-कहीं कुछ लाल वा पीले रंगकी होती है। जैसे-जैसे यह अन्दर खोदी जाती है वैसे-वैसे यह अधिक शुद्ध पायी जाती है। ६० फुटतक यह मिट्टी यहां खोदी गयी है। जिस मिट्टीमें लोहेका अंश कम रहता है वह मिट्टी ग्वालियर पौटरी वर्क्स

नामक कारखानेमें बरतन बनानेमें काम आती है। बरतन बनानेके पहले यह मिट्टी शुद्ध कर ली जाती है।

संयुक्त प्रान्तमें नैनीताल, अलमोड़ा और मिर्जापुरमें अच्छी सफ़ेद मिट्टी मिलती है। उड़ीसामें महानदीके तटपर सफ़ेद मिट्टी मिलती है। वहांके निवासी इस मिट्टीको अपने घरोंके सुसज्जित करनेमें प्रयुक्त करते हैं। राजमहल पहाड़ियोंमें भी अच्छी मिट्टी पायी गयी है। यह मिट्टी काफ़ी सफ़ेद होती है। इसमें स्फटिक (क्वार्ट्ज़) तथा अन्य अपद्रव्य बहुत कम मिले रहते हैं। यह भुरभुरी होती है। इससे इसमें नम्रता कम रहती है। बरतनोंके बनानेके लिये यह मिट्टी बहुत अच्छी होती है। कई स्थलोंपर यह मिट्टी खोदी गयी है। ई० आई० रेलवेके कौलगंज स्टेशनसे प्रायः ६ मीलकी दूरीपर गंगाके तटपर पत्थर-घट्टा नामक स्थान है जहांपर १८० फुट मोटी तहकी मिट्टी पायी गयी है। इसके सिवा करनपुरा, दोढानी, काठङ्गी, मंगल हाट, समुकिया और कठुरिया, और सरायकेला नामक स्थानोंमें भी मिट्टी पायी गयी है और वहांसे निकाली जाती है।

बंगाल प्रान्तके दार्जलिंग और बर्दवान जिलेके रानीगंजमें मिट्टी पायी गयी है। बर्न कम्पनीद्वारा यह काममें आती है। आसामके ब्रह्मकुण्ड और ढोरामुख स्थानोंमें सफ़ेद स्फटिकके ऊपर सफ़ेद मिट्टीकी मोटी तहें मिलती हैं। बंबईके कनारा ज़िलेके 'कैसल रौक' में कुछ मिट्टी मिलती है। रत्नगिरी और बेलगांव जिलोंमें भी मिट्टी पायी गयी है। मैसूर और ट्रावनकोर ज़िलोंमें भी पर्याप्त मिट्टी मिलती है। उसे काममें लानेकी चेष्टाएँ हो रही हैं।

ज़मीनके अन्दरसे मिट्टी को बाहर निकालनेके लिये पर्याप्त पानीकी ज़रूरत पड़ती है। अतः वहांकी ही मिट्टी निकाली जा सकती है जहां पर्याप्त पानी हो। इङ्गलैण्ड और यूरोपके अन्य देशोंमें खुली हुई खानोंसे मिट्टी निकाली जाती है। अन्य देशोंमें विशेषतः हिन्दुस्तानमें एक पतली लम्बी खोदाई ऊपरसे होती है और फिर अन्दर चारों ओर खोदकर मिट्टी निकाली जाती है। इङ्गलैंडमें साधारणतया ऊपरी तहके १० से २० फुटके नीचे सफ़ेद मिट्टी मिलती है। ऊपरी तहकी मिट्टीको हटा कर तब सफ़ेद मिट्टीको निकालते हैं। यह मिट्टी जलमें घुलाकर निकाली जाती है। उससे फिर निपतन या अधःक्षेपण द्वारा मिट्टी प्राप्त करते हैं।

सफ़ेद मिट्टीकी चट्टानोंपर जलकी प्रबल धारा प्रवाहित की जाती है जिससे मिट्टी और उसके साथ-साथ कंकड़ और रेत बह कर निकल आते हैं। यदि मिट्टीकी चट्टानें सख्त हों तो उन्हें हाथोंसे ढीलाकर लेते अथवा डायनामाइटसे उड़ा देते हैं। मिट्टी मिली हुई जलको यह धारा खानोंके पेंदेमें स्थित गढ़ोंमें बह कर इकट्ठी होती है। इन गढ़ोंको 'रेत गड्ढा' (सैण्ड-पिट) कहते हैं।

यहाँ कंकड़ और रेतके बड़े बड़े टुकड़े तहमें बैठ जाते हैं। स्फटिक, फेल्सपार, टुरमलीन और ग्रेनाइटके अल्प-विच्छेदित टुकड़े भी नीचे बैठ जाते हैं। इससे मिट्टी बहुत कुछ शुद्ध हो जाती है। इस मिट्टी मिले हुए जलको तब लकड़ीके बने छीछले नलोंकी पंक्तियोंमें लेजाते हैं जहाँ मिट्टीके और भी अपद्रव्य नीचे बैठ जाते हैं इन नलोंको ड्रैग कहते हैं। इन नलोंसे निकला जल तब गढ़ेके तलपर पम्प किया जाता है। यह जल सफ़ेद दूध-सा होता है। इस जलमें जो मिट्टी रहती है उसमें बहुत महीन रेत और अभ्रकके बहुत छोटे-छोटे कण छिटके रहते हैं। यह जल तब लम्बे-लम्बे खुले नलोंमें बहाया जाता है। ये नल पत्थर वा काठके बने होते हैं। ये एक दूसरे बरतनसे लगे हुए होते हैं। इन बरतनोंको 'मायकास' कहते हैं। यह बरतन प्रायः १५० फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा होता है।

ऐसे बरतनका चित्र यहां दिया हुआ है। इस बरतनमें रेत और अभ्रकके टुकड़े निक्षिप्त होजाते हैं।

यह बरतन पाँच वा सात खण्डोंमें विभक्त होता है। ये खण्ड एक-दूसरेसे नीचे तलपर स्थित होते हैं। प्रत्येक खण्ड फिर डेढ़से दो फुट चौड़ी क्यारियोंमें विभक्त होता है। इन्हें ऐसा विभक्त करनेका उद्देश्य यह होता है कि उनमें जलके प्रवाहकी गति कुछ कम

होती जाय ताकि अपद्रव्योंके छोटे-छोटे टुकड़े तलपर बैठते जायँ। इनमें जल ४० से ५० फुट प्रतिमिनट-की गतिसे बहता है। इन बरतनोंसे फिर मिट्टीवाला जल छोटे-छोटे तलोंके द्वारा बहकर सीमेन्टके बने हुए गोलाकार कूप सदृश्य गढ़ेमें आता है जिसे स्थिर होनेवाला गढ़ा—निक्षेप कुंड (सेटलिंग-पिट) कहते हैं। यह कुण्ड नीचेकी ओर पतला होता जाता है। इनके पेंदेमें डेढ़ इंच व्यासका छेद होता है। इन कुण्डोंके व्यास १५ से २० फुटतक होते हैं। ये कुंड प्रायः १० फुट गहरे होते हैं। इनकी संख्या ३ से अधिक होती है। इन कुंडोंके पार्श्वमें छेद होते हैं जिनसे मिट्टीके बैठ जानेपर पानी निकाल दिया जाता है। यह पानी फिर मिट्टीको घुलानेके लिए प्रयुक्त होता है।

चित्र १—सफ़ेद मिट्टीकी खोदाई

इन कुण्डोंसे मिट्टीकी जो मलाई प्राप्त होती है उसमें प्रायः २५ प्रतिसैंकड़ा ठोस पदार्थ रहता है। यह सुखानेवाले हौज़में रख दिया जाता है और उनके ऊपर जो जल इकट्ठा होता है वह समय-समयपर निकाल लिया जाता है। इस प्रकार इस मिट्टीमें प्रायः ५० प्रतिशत जल रह जाता है। इन हौजोंके आकार समकोणाकार होते हैं। और ये प्रायः ६०से १८० फुट लम्बे और ३० से ६० फुट चौड़े होते हैं। इनकी गहराई ६ से १० फुटतक होती है। इन हौजोंमें बहुत महीन छेद होते हैं ताकि उनसे स्वच्छ जल बाहर निकाल लिया जा सके।

इस मिट्टीको अब 'सूखानेवाले कड़ाहों' (ड्राई-पैन) में रखते हैं। इन कड़ाहोंका तल कुछ नीचा होता है ताकि मिट्टी आसानीसे उनमें रखी जा सके। ये कड़ाह प्रायः १२० फुट लम्बे और २ फुट चौड़े छीछले अग्नि जित (फायर-क्ले) मिट्टीके बने होते हैं। इन कड़ाहोंके नीचे एक सिरेकी ओर आग जलाई जाती है ताकि वे गरम किये जा सकें। दूसरे सिरेकी ओर चिमनी रहती है। जहां आग जलती है कड़ाहका वह सिरा अधिक गरम रहता है और चिमनी-की ओरवाला सिरा कम। इन कड़ाहोंमें प्रायः ६ इँच मोटाईकी मिट्टी बिछादी जाती है। जब वह पर्याप्त सूख जाती है तब उसे अनेक वर्गोंमें काट डालते हैं ताकि बिलकुल सूख जानेपर वे समकोण टिकियोंमें टूट जाती है। इसी रूपमें यह बाजारोंमें बिकती है। इससूखी मिट्टीमें प्रायः ८ से १० प्रतिशत जल रहता है।

मिट्टी निकालनेकी जो विधि इस देशमें प्रयुक्त होती है वह बहुत सरल है। यहां हाथोंसे मिट्टी तोड़ी और बुकी जाती है। इसबुकी मिट्टीपर तब पर्याप्त पानी डालते हैं ताकि इस मिट्टीसे कंकड़के टुकड़े अलग हो जायँ। इस मिट्टीवाले जलको तब लम्बी सकरी नलियोंके द्वारा बहाते हैं ताकि अपद्रव्योंके बड़े बड़े टुकड़े वहां बैठ जायं। इसके बाद मिट्टीवाले जलको निक्षेप कुण्डमें लेजाते हैं और वहांसे उसे टिकियेमें बनाकर धूपमें सूखाते हैं। धोनेपर भी कुछ मिट्टीमें हलका पीला रङ्ग होता है। ऐसी मिट्टीमें थोड़ा एनि-लीन रंगका विलेय डालकर पीले रंगको दूर करते हैं। जिस कुण्डमें मिट्टी निक्षिप्त होती है उसमें लानेके पहले एनिलीन रंगके विलयको मिट्टीवाले जलके साथ मिला देते हैं।

केओलीनका शोधन

उपर्युक्त विधिसे प्राप्त मिट्टी बिलकुल शुद्ध नहीं होती। उसे विशेष-विशेष कार्योंके लिये फिरसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये मिट्टीको जलके साथ मिलाकर उसमें किसी विद्युत, वैच्छेद्यको डालकर दो-तीन घन्टेके लिये छोड़ देते हैं ताकि उससे अपद्रव्य नीचे बैठ जायँ। यह शोधन सीसा धातुके सिलिंडरमें होता है। यह सिलिंडर एक हौज़में रखा जाता है। सिलिंडर और हौज़के बीच पीतलके तारोंकी जाली रहती है जो ऋणद्वार (कैथोड) का कार्य करती है। सिलिंडर स्वयं धनद्वार (एनोड) होता है। इसमें ६० से १०८ वोल्ट तककी विद्युत, धारा प्रवाहित की जाती है। विद्युत, धारासे अपद्रव्यियाँ इकट्ठी होजाती हैं। और वहाँसे हटा ली जाती हैं। इससे १२ मिलिमीटरकी मोटाईकी तहमें मिट्टी सिलिंडर-में इकट्ठी होती है। वहांसे हटा कर वह बरतनोंमें रखी जाती है। ऐसी मिट्टीमें २० से २५ प्रतिशत जल रहता है। इसे दबा और सुखाकर बाजारोंमें भेजते हैं।

मिट्टियाँ अनेक प्रकारकी होती हैं। बरतन बनानेके लिये मिट्टीमें नम्रता होनी चाहिए। किसी आर्द्र स्थानपर मिट्टीके रखनेसे इसकी नम्रता बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है। इस क्रियाको एजिंग और सावरिंग कहते हैं। इसक्रियामें सम्भवतः मिट्टीके कार्ब-निक पदार्थ विच्छेदित हो हलके अम्लबनते हैं जो मिट्टीके छोटे-छोटे कणोंको स्कंधित कर उसकी नम्रताको बढ़ाते हैं। यदि मिट्टीमें अधिक अलकली हो तो उसकी नम्रता बढ़ती नहीं है। ऐसीदशामें कुछ सिरका वा सिरकाम्ल एसेटिक ऐसिड डालकर मिट्टीकी नम्रता बढ़ानेमें सहायता करते हैं।

जो मिट्टी उच्च तापक्रमके सहन करनेमें समर्थ होती है उसे अगालनीय मिट्टीकी (रिफ्रैक्टरी मिट्टी) कहते हैं। शुद्ध मिट्टियाँ सब रिफ्रैक्टरी होती हैं पर प्रधानतः अग्निजित मिट्टी ही इसके अन्तर्गत आती है। अग्निजित मिट्टियां साधारणतया कोयलेकी तहोंके नीचे पायी जाती हैं। ऐसी मिट्टीयोंका संगठन एकसा नहीं होता। इनका रंग कुछ भूरा होता है और ये सघन होती हैं इनमें भिन्न-भिन्न दर्जेकी कठोरता होती है। अग्निजित मिट्टियां राज-महल पहाड़ियोंमें प्रचुरतासे पायी जाती हैं और कल-कत्तेकी बर्न कम्पनी द्वारा भट्टियोंके लिये ईंट बनानेमें प्रयुक्त होती हैं।

एक दूसरे प्रकारकी मिट्टीको कांचीय मिट्टी (विट्रिफायेबिल) कहते हैं। यह मिट्टी प्रायः १३५०° श० पर कांचसा अंशतः द्रवित हो जाती है। इसमें रिफ्रैक्टरी अगालनीय मिट्टीकी अपेक्षा द्रावक (फ्लडक्सकी) मात्रा अधिक रहती है। चित्रित पत्थरसे वा स्वास्थ-सम्बन्धी सामानों वा रासायनिक उद्योग-धन्धे सम्बन्धी सामानोंके निर्माणमें यहकाम आती है।

चित्र २—मायकास

एक तीसरे प्रकारकी मिट्टीको गालनीय मिट्टी कहते हैं। यह अपेक्षाकृत निम्न तापक्रमपर ही अपने आकारको खोदेती है। ऐसी मिट्टी सामान मिट्टीके बरतनों वा टाइलोंके बनानेमें काम आती है। इसमें सिलिकाकी मात्रा बहुत अधिक रहती है। चूना सोडा और पोटाश भी इसमें अधिक रहते हैं। लोहेके कारण

इसका रंग भी कुछ और ही होता है। किसीका लाल, किसीका नारङ्गी किसीका पीला और किसीका हरा पीला होता है।

फेलस्पार—एक दूसरेसे मिलते-जुलते हुये कुछ खनिजोंके समूहको फेलस्पार कहते हैं। ये चट्टानोंके बड़े महत्व पूर्ण अवयव हैं आग्नेय चट्टानोंके प्रायः ६० प्रतिशत फेलस्पार होते हैं। इन खानिजोंमें भिन्न-भिन्न मात्रामें सोडा वा पोटाश वा चूना वा अलुमिनके सिलिकेट होते हैं। विभिन्न प्रकारके फेलस्पारोंको एक-दूसरेसे विभेद करना कठिन होता है। इनका घनत्व प्रायः २'५ से २'६ होता है। शुद्ध अलकली फेलस्पार पारदर्शक और वर्णहीन होता है। अनेक फेलस्पारोंका रंग अशुद्धियोंके बहुत अल्प मात्राके कारण होता है। इन अशुद्धियोंके कारण ही यह अपारदर्शक हो जाता है। लोहेके आक्साइडोंके कारण इसका रंग पीला वा लाल वा गुलाबी होता है। गुलाबी फेलस्पार पोटाशके भी होते हैं। भूरे रंगके फेलस्पार चूनेके होते हैं। फेलस्पार ११३०° से १३००° श० पर पिघलता है। ११२०° श० तक जलनेसे यह बहुत कम प्रसारित होता है और तब इसका घनत्व बहुत कम घटता है। फेलस्पार जलसे जल-विच्छेदित हो अलकली सिलिकेट बनता है। जलवायुका इसपर बहुत जल्द असर पड़ता है। जल-वायुसे विच्छेदित हो स्फटिक और केओलीनमें परिणत हो जाता है। इसके साथ-साथ कुछ और जल-संयोजित (सार्द्र) अलुमिनियम सिलिकेट बनते हैं।

चीनी पत्थर—ग्रेनाइट चट्टानोंके अंशतः विच्छेदनसे चीनी-पत्थर बनता है। यह स्फटिक और फेलस्पारका बना होता है। फेलस्पारके स्थानमें चीनी-पत्थर प्रयुक्त होता है। यह बहुत कठोर होता है और ग्रेनाइटके सदृश डायनामाइटसे तोड़ा जाता है। चीनी-पत्थर अनेक प्रकारका होता है। इसका घनत्व प्रायः २'६ होता है। यह १२००° श० पर पिघल कर कांच-सा बन जाता है। स्फटिक और चकमक (क्वार्ट्ज़ और फिलण्ट)। स्फटिक और चकमक सिलिकेटके विभिन्न रूप हैं। ये प्रचुरतासे प्रकृतिमें पाये जाते हैं। सिलिकेटके विभिन्न रूप तीन प्रधान समूहोंमें विभाजित किये जासकते हैं। मणिभीय सिलिका साधारणतया स्फटिक ट्राइडिमाइट और क्रिस्टोबेलाइट रूपमें पाया जाता है। इनके भौतिक गुण विभिन्न होते हैं पर रासायनिक संगठन इनका एक ही है। ये शुद्ध सिलिकेट हैं। जब शुद्ध होता है तब स्फटिक बिना रंगका होता है। ऐसा स्फटिक चश्मा और प्रकाश-यन्त्रोंके निर्माणमें प्रयुक्त होता है। इसे सब क्रिस्टल कहते हैं। पर यह कदाचित ही शुद्ध रूपमें पाया जाता है। इसमें कुछ अशुद्धियां रहती हैं जिनसे यह धुंधले रंगका वा अपारदर्शक होता है। इसका घनत्व २६५ होता है। यह १७५०°
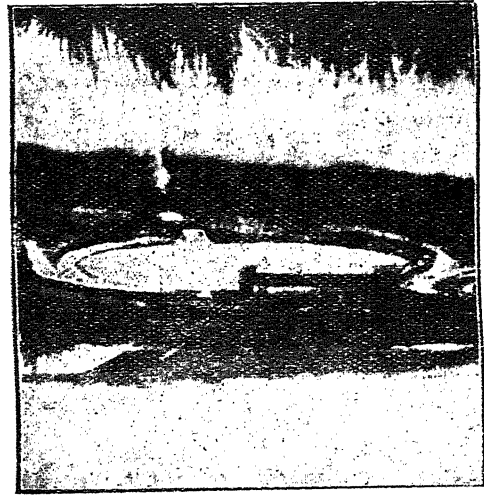
चित्र ३—निक्षेप कुंड

श० तक भी पिघलता नहीं है। गरम करनेपर यह प्रतिशत १४ तक प्रसारित होता है।

अमणिभीय जल-संयोजित सिलिका वा ओपालमें प्रायः १२ प्रतिशततक जल रहता है। इसके कुछ नमूने बहुत अधिक चमकदार होते हैं। अतः यह बहुमूल्य पत्थर वा जवाहरातके रूपमें बहुत अधिक प्रयुक्त होता है।

चकमक, चर्ट और चालकी दोनों पत्थरोंमें कुछ मणिभीय सिलिकाके साथ २ न्यूनाधिक अमणिभीय सिलिका रहता है। फ्लिंट (चकमकी-पत्थर) प्रकृतिमें

भूरेवाक्षान रंगमें पाया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि स्पंज वा अन्य जानाव पदार्थोंके अति-सूक्ष्म केन्द्रपर सिलिकाके शनैः शनैः अवक्षेपणसे चकमक बनता है। इसमें प्रायः ९५ प्रतिशतः सिलिका होता है। शेष ५ प्रतिशत अशुद्धियाँ खड़िया और जानाव पदार्थ होते हैं। चकमकका घनत्व २·६ होता है। यह प्रायः १७५०° श० पिघलता है। स्फटिककी अपेक्षा यह अधिक प्रसारित होता है। आगमें पकानेसे यह जल जाता है। जलाहुआ फ्लिंट बरतन बनानेमें प्रयुक्त होता है। इसका घनत्व प्रायः २·३ से २·४ होता है। कृष्णवर्णकी अपेक्षा भूरेवर्णका फ्लिंट जलानेपर अधिक टूटता है क्योंकि प्रसारकी गति अधिक होती है। नाइट्रोजनवाले कार्बनिक पदार्थोंके कारण इसका रंग होता है। अतः गरम करनेसे इसका रंग सरलतासे नष्ट हो जाता है।

१३००° श० तक गरम करनेसे तापका प्रभाव स्फटिक और चकमकपर विभिन्न होता है। स्फटिककी अपेक्षा चकमक अधिक प्रसारित होता है जिसका परिणाम यह होता है कि गरम करनेपर चकमकका घनत्व स्फटिककी अपेक्षा बहुत कम हो जाता है। आगमें जलानेपर जो स्फटिक वा चकमक प्राप्त होता है उसकी सक्रियता बहुत बढ़ जाती है। बिना पकाये हुये चकमक वा स्फटिकके प्रयोगसे जो बरतन बनते हैं उनपर लुक़ कठिनतासे चढ़ता है। जब बिना पकाये हुए सिलिकाको प्रयुक्त करते हैं तब ऐसे बरतनोंको बहुत उच्च ताप-क्रमतक गरम करनेकी आवश्यकता होती है।

बरतनोंके बनानेमें स्फटिक और चकमकके कणोंकी बारीकीका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि इनके कण बहुत महीन पीसे हुये हैं तो ऐसे बरतन निम्न तापक्रमपर ही पकजाते हैं। बहुत बारीक पीसनेसे उनका आयतन भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। पर यदि बरतनोंके सिलिकाकी कणिका अतिसूक्ष्म होती है तो उनकी सान्द्रता और मज़बूती कम हो जाती है।

प्लास्टर आफ़ पेरिस। जब सिलखड़ी (जिप्सम) को प्रायः १२०° श० तक गरम करते हैं तब उसके जलका कुछ अंश निकल जाता है और तब वह सफ़ेद चूर्णके रूपमें परिणत हो जाता है। इस सफ़ेद चूर्ण को 'प्लास्टर आफ़ पेरिस' कहते हैं क्योंकि यह पहले पहल पेरिसके निकट पाया गया था। यदि जिप्समको २००° श० तक गरम करें तो यह अनार्द्र जिप्सममें परिणत हो जाता है जो फिर पानीसे जमता नहीं है। अतः इस अनार्द्र जिप्समको 'मृत प्लास्टर' कहते हैं। इसमें सोहागा वा फिटकरीके मिलानेसे जमनेका गुण कम हो जाता और
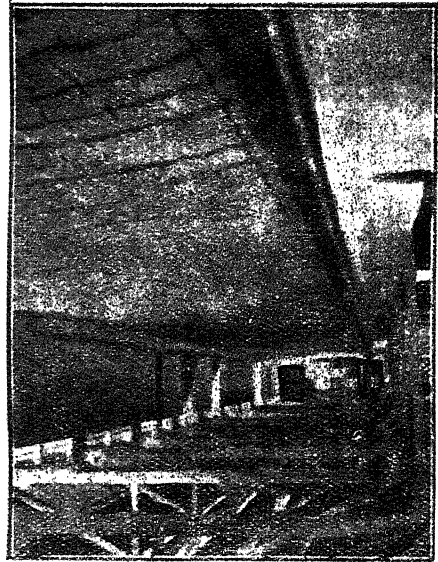
चित्र ४—सुखानेवाले कड़ाहे

साधारण लवण-नमकके मिलानेसे बढ़जाता है। अमाज आ प्लास्टर फिटकरीसे और अधिक जमजाता है। प्लास्टर-आफ़पेरिसके चूर्णमें जो जल मिलाया जाता है उस जलकी मात्राका उस प्लास्टरके जमने पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जलकी मात्रासे उसके घनत्व, सान्द्रता और प्रबलतापर बहुत असर होता है मूर्त्तियों आभूषणों चित्रित सामानों और साँचोंके बनानेमें प्लास्टरआफ़पेरिस प्रयुक्त होता है। जमनेपर यह प्लास्टर फैलता है इससे किसी वस्तुके चिन्होंको वा

स्तविक रूपमें ढालनेमें उसका सांचा बनानेमें यह बड़ा उपयोगी है।

प्लास्टरआफ़पेरिस बनानेके लिये जो जिप्सम प्रयुक्त होता है वह संगमरमर-सा सफ़ेद पत्थर होता है पर इतना कोमल होता है कि चाकूसे सरलतासे खुरचा जासके। ऐसा सफ़ेद पत्थर होनेसे पहले इसका रंग कुछ धुंधला होता है और यह तब अधिक कठोर होता है। ऐसा पत्थर साधारणतया सीमेंट बनानेमें काम आता है।

प्लास्टर आफ़ पेरिस बनानेमें जिप्समके बड़े-बड़े पत्थर वायुमें सूखाकर तब प्राय २ इंच व्यासके टुकड़ोंमें तोड़े जाते हैं। ये तब लोहेके थालमें बिछाकर ये थाल ट्रौलीपर रखदिये जाते हैं। इस देशमें इन पत्थरोंमें २३ से २५ प्रतिशत जल रहता है। ये ट्रौली तब एक छोटी संवृत्ता भट्टीमें ठेल दिये जाते हैं। जो बाहरसे कोयलेसे १८० से १९० श० तक गरमकी जाती है।

ये ट्रौली भट्टीमें प्राय: ४८ घन्टा रहते हैं। समय-समयपर इन ट्रौलियोंसे नमूने निकाल कर उनके जलके अंशकी मात्रा निर्धारित होती है। जब उनमें जलकी मात्रा प्राय: ६ प्रतिशत होजाती है तब ट्रौलियोंको भट्टीसे निकाल लेते हैं। ऐसा जला हुआ जिप्सम बहुत कोमल होता है और चक्कियोंमें पीसा जाता है। ये चक्कियां पत्थरोंकी बनी होती हैं। इनमें एक पत्थर उर्ध्वाधार स्थिर रहता है और उसके आसपास दो पत्थरकी चक्कियाँ घूमती रहती हैं जिनसे पीसा जाता है। ये पीसे हुए चूर्ण तब एलक्ट्रो-मैगनेटमें ले जाए जाते हैं और वहांसे फिर उपयुक्त बारीक चूर्णमें पीसे जाते हैं। ठीक प्रकारसे पीसा हुआ प्लास्टरआफपेरिस १० नम्बरकी चलनीमें बिलकुल छन जाता है।

जब थोड़ी तादादमें जिप्समको प्लास्टरआफपेरिसमें परिणत करना होता है तब जिप्समको पहले चूर्ण कर चलनीमें छानते हैं। इसे तब सीधे आगमें लोहेके कड़ाहमें गरम करते हैं और उसे बराबर चलाते रहते हैं। यह चूर्ण वस्तुतः उबलता है। प्रायः ४५ मिनटमें इसका उबलना बन्द होजाता है। तब इसे हटा लेते हैं। यह अब कामके लिये तैयार

जिप्सम प्रचुर मात्रामें हिन्दुस्तानमें पाया जाता है। पंजाबमें झेलमके निकट बन्नू और कोहाट जिलोंमें यह पाया जाता है। राजपूतानाके मारवाड़, बीकानेर, आदि जोधपुरमें यह मिलता है। संयुक्तप्रान्तके देहरादून कमायूँ और गढ़वालमें हल्द्वानीके निकट इसके निक्षेप मिले हैं। बम्बई, काठियावाड़, कच्छ और सिन्धमें पाया जाता है। मद्रास प्रान्तके चिंगलपट और नेलोर जिलोंमें भी यह पाया गया है।

भारतमें बिजलीका प्रश्न

[ले० श्री सुरेश शरण अग्रवाल]

विभिन्न बलोंका प्रयोग

मनुष्य और प्रकृतिमें सदासे संघर्ष चला आता है और मनुष्य धीरे-धीरे सफलता भी प्राप्त कर रहा है। प्रसिद्ध अमरीकन वैज्ञानिक थोरोके अनुसार हम पूर्णतया प्रकृतिके आधीन नहीं हैं। प्रकृतिकी निराली वस्तुओंको मनुष्य नाना प्रकारसे और नवीन ढंगसे अपने काममें लारहा है। एक राष्ट्रकी आधुनिक सभ्यताका नाप उसके द्वारा कृषिमें, उद्योग-धन्धेमें, आवागमनके साधनों आदिमें किया गया लाभदायक कार्य है। परन्तु सब धन्धोंके लिए शक्तिकी परम आवश्यकता है। प्राचीन कालमें मनुष्य ही इस शक्तिका काम करता था उसके बाद उसने गधे, बैल और घोड़े पालने प्रारंभ किये। गुलामीकी प्रथा भी इसीमें शामिल है। तदुपरान्त मनुष्य नाव जहाज व आटा पीसनेकी चक्की चलानेके हेतु हवाकी शक्तिका भी प्रयोग करने लगा। हवाके अतिरिक्त चलते पानीका भी उपयोग किया।

१८ वीं शताब्दिके अंतमें भापके इञ्जिनके आविष्कारसे मानो संसारमें एक नवीन सभ्यताने जन्म

लिया। वाष्प इञ्जिनके सैकड़ों सहायक कार्योंसे संसारके इतिहासमें एक नये पृष्ठका आवरण हुआ। इस आविष्कारने सबको स्तम्भित कर दिया और लोगोंको प्रथम बार ज्ञात हुआ कि जिन देशोंमें कोयलेकी उपज होती है वह देश शीघ्र ही अपना व्यवसाय वाणिज्य बढ़ाकर दूसरे देशोंसे आगे निकल सकते हैं और (यदि हो सके) उनपर अपना आधिपत्य भी स्थापित कर सकते हैं। इसीका परिणाम है कि आज दो महान् महाद्वीपोंका अधिकांश भाग असभ्य और पराधीन है। कोयलेके अलावा लकड़ी, तेल, पीट द्वारा भी शक्ति उत्पन्न की जाती है। परन्तु बिजलीकी शक्तिका प्रयोग अभी कोई एक शताब्दिसे ही हुआ है। इसका श्रेय अतर वैज्ञानिक माईकेल फ़ैरैडेको है। परन्तु जनताको इसका लाभ १८८० से मिला जब सर जासेफ़ स्वानने प्रथम बिजलीका लैम्प बनाया और थामद ऐल्वा एडीसनने बिजलीको घर-घर भेजना शुरू किया। उसके बादसे अनगिनती व्यवसाय और कलायें खुल गई हैं जिनमें बिजलीकी सहायतासे सब काम किया जाता है। जहाँ-जहाँ ऐसे व्यवसाय और कलायें हैं वहांके देश उन्नितपर हैं।

बिजलीसे विभिन्न काम

परन्तु भारतवर्षकी महिमा निराली है। उसके लिए तो बिजली महान उपकारक है और बिजलीसे निम्नलिखित काम लिये जा सकते हैं:—

(१) घरेलू काम (रोशनी, भोजन पकाना, पङ्खा, और छोटी-छोटी मशीनें हेतु)

(२) आवागमनके साधन।

(३) सर्व प्रकारके व्यवसया।

(४) कृषि।

इसपर भी भारतवाले बिजलीसे अपरिचित हैं। आज भारत संसारमें दरिद्र और असभ्य गिना जाता है। दूसरे राष्ट्र या सभ्यतायें जो उसकी बात पूछती हैं, वह भाई-बहनके स्थान पर एक दयाके रूपमें। भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके साथ-साथ लगभग सर्वत्र अशिक्षा और बेकारीका साम्राज्य है। यही दोनों अज्ञान और आलस्यका कारण हैं। अतएव देशके व्यवसाय बढ़ाना और उसकी औद्योगिक उन्नति करना एक महान आवश्यकता है। इस औद्योगिक उन्नितके लिए बिजलीकी शक्ति अनिवार्य है। लेकिन हमारे देशमें तो बिजलीकी खपत बहुत कम है।

बिजलीकी खपत

निम्न तालिकासे संसारके विभिन्न देशोंकी बिजलीकी खपतका हाल भली भाँति विदित होता है।

देश	वर्ष	प्रति वर्ष कुल यूनिटोंकी खपत (प्रतियूनिट = १० लाख यूनिट)	प्रतिवर्ष प्रति-जन संख्या यूनिटोंकी खपत
संयुक्त राज्य	१९२६	११३७४	३००
	१९३५	२३६००	६००
जर्मनी	१९२६	२१२१८	३००
	१९३५	३४५००	५३०
इटली	१९२६	७६४४	२००
	१९३५	१२८००	३००
स्विटज़रलैंड	१९२६	४१७०	११००
	१९३५	५७०५	११५०
नार्वे	१९३०	२४००	६००
	१९३५	७१४३	१६००
रूस	१९२६	३६०८	२०
	१९३५	२५९००	१५०
संयुक्त राष्ट्र (अमरीका)	१९२६	९०३००	७५०
	१९३५	१२३२३६	९५०
कनाडा	१९२६	१२०९३	१३००
	१९३५	२१३६२	२०००
जापान	१९२६	९३१३	१६०
	१९३५	२१०००	३५०
भारत		निश्चित मालूम नहीं	७

इससे ज्ञात होता है कि जितनी अधिक बिजलीकी देशमें खपत होती है उतना ही वह देश धन-धान्य पूर्ण होता है। भारतवर्षकी खपत तो अत्यधिक कम है, केवल सात!

रूस और चीनके उदाहरण

यदि भारतकी व्यवसायिक अवनतिमें समता है

तो वह चीन देश से। उसका दंड चीन आजकल भयानक रूपसे दे रहा है। भारतका एक दूसरा साथी महायुद्धके पूर्वका रूस था। वहाँ भी भारतकी भांति ७० प्रतिशत खेतिहर थे और देश गांवोंसे लदा पड़ा था। सन् १९१२ में रूसकी प्रतिजन कार्यकी निकासी लगभग आज भारतमें जैसी थी। परन्तु सन् १९२० में रूसको बिजलीयुत करनेके लिए २०० वैज्ञानिकों और इञ्जीनियरोंकी एक दस वर्षीय समिति बनाई गई (उसका समय बादको १० से १५ वर्ष कर दिया गया था)। इस गोएलरो स्कीममें ढाई करोड़ रुपयाकी लागत थी और ध्येय था रूसकी युद्धके पूर्वके रूससे १८०-२०० प्रतिशत औद्योगिक उपज बढ़ाना। सन् १९२८ में रूसकी उपार्जन शक्ति ७० प्रतिशत बढ़ गई और विद्युत्-मात्रा १६० प्रतिशत। उस समयमें रूसकी बिजलीकी प्रयोग-मात्रा यूरोपके अन्य देशोंसे गिरी हुई थी, परन्तु प्रथम पंचवर्षीय स्कीममें और द्वितीय पंचवर्षीय स्कीमके आरम्भके तीन वर्षोंमें (१९३५ में) ६५० प्रतिशत उन्नति हुई और आज रूसका कला कौशल यूरोपके अन्य देशोंसे कहीं ऊँचा है। इस समय सब राष्ट्रोंमें सबसे अधिक बड़ी हवाई सेना रूस ही की है।

हमारी कठिनाइयाँ

भारतकी औद्योगिक अवनतिका कारण यहांपर बिजलीका हीन-प्रयोग है। हीन-प्रयोगके कई कारण हैं। एक तो दोष हमारे पुरातन प्रेमका है। हम लोग परिवर्तन विरोधी हैं और अब भी पुरानी रूढ़ियों पर टिके हुए हैं। हमको समयके अनुसार चलना होगा और उसके उपयुक्त देश अथवा राष्ट्रका निर्माण करना होगा। अपनी आध्यात्मिकतामें (जो आजकल बहुत ही कम है) हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि बीजकी भांति हमें भी विदेशी सम्पत्ति अपनी अनुकूलताके अनुसार) लेनी है अन्यथा यह बीज नष्ट हो जायगा। कुछ सज्जन हैं जो अपने आपको नवीन वातावरणके अनुसार बना सकते हैं, परन्तु उनको

पराराज्य जो हमारा भला क्यों चाहने लगा, नहीं बनने देता। जितने दामोंमें बिजली तैयार होती है उससे ५ व ६ गुना दाम हमसे लिया जाता है जिसके कारण कम खपत होती है। कम खपतसे कम उपज होती है कम उपजसे फिर मूल्य बढ़ जाता है और यही चक्र चलता रहता है। इसके विरूद्ध इंगलैंडमें लागतसे २ व ३ गुना दाम लिया जाता है। इसी विषयपर कलकत्ता-कारपोरेशन और कलकत्ता-बिजली-सपलाई-कारपोरेशनमें द्वन्द्व छिड़ गया, परन्तु बंगाल-मंत्रिमंडल-के विरोधी व्यवहारसे कलकत्ता-कारपोरेशनको चुप होना पड़ा। यही नहीं, यदि कोई स्वयं सस्ते दाम-पर बिजली जनताको दे तो गौर्मिन्ट आज्ञा नहीं देती। एक बार यू० पी० लैजिस्लेटिव कौन्सिलमें निम्नलिखित प्रश्नपर माननीय मिस्टर ब्लंटने उत्तर दिया 'नो',—क्या गौर्मिन्ट दूसरी कम्पनीयोंको लैसंस देनेको तैयार है जो बनारसमें कम वोल्टेजपर और सस्ते दरपर बिजली जनताको देना चाहती है? यद्यपि बिजली-एक्ट, भाग २ सैक्शन ३ पृष्ठ १६६ पर लिखा है, 'इस भागमें लैसंसकी मंजूरी उसी भागमें उसी कार्य हेतु किसी दूसरे व्यक्तिको लैसंस देनेसे न रोकेगी"।

सारांश यह कि हमको सब ओरसे दबोचा जाता है। लैसंसमें जो अत्याधिक दर दी होती है वही न्यूनतम बन जाती है और वही जनतासे ली जाती है। इसपर ऊपरसे मीटर रैन्ट, न्यूनतम किराया, सर्विस रैन्ट, इत्यादि अलग। दुष्प्रबन्ध, बेईमानी हिसाबकी चोरी और प्रबन्धकोंके भयानक ऊँचे वेतन—सबका भार जनतापर ही पड़ता है। १९१० से जो भारतका बिजलीका ऐक्ट चला आता है वही अबभी स्थिर है। इसके विरुद्ध इन्गलैन्डमें १९२७ में वीयर कमैटीकी रिपोर्टके अनुसार बिजलीके नियमोंमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो गये। प्रकृतिका नियम है कि समय बीतता है, तब आयु बढ़ती है, और सम्पूर्ण सृष्टि नया चोला धारण करती है। आदमी भी बड़ा होनेपर दूसरा कुरता या क़मीज़ पहनता है। यदि पुराना कुरता पहिने तो शरीर भी पूरा न ढकेगा और कुरता स्थान स्थानसे फट जायगा। परिवर्त्तन प्रकृतिका नियम है। परन्तु

हमारे शासकोंका हमारे ऊपर नियम अपरिवर्त्तनका ही है।

पानीसे बिजली

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है विद्युत्-शक्तिके लिए कोयला, तेल, पीटकी आवश्यकता है। परन्तु एक साधन चलता पानी भी है और आज नार्वे जैसे समृद्धशाली देशमें अधिकांश शक्ति पानी द्वारा ही ली गई है और बहुतसे हाइड्रोइलैक्ट्रिक प्लांट हैं। हमारे देशमें अच्छा कोयला केवल दामोदरके मैदानमें और उड़ीसाकी कुछ नदियोंके मैदानोंमें पाया जाता है। घरिया कोयला मध्यप्रान्त और हैदराबाद (रियासत) में भी मिलता है। देशके दूसरे भागोंको कोयला इन स्थानोंसे मंगाना पड़ता है या अपने यहांकी पानीकी शक्तिपर निर्भर रहते हैं। परन्तु दुर्भाग्य है कि हमारे देशमें पानीकी शक्तिकी खोज बड़े अपूर्ण ढंगसे हुई है। मैसूर रियासतके प्रसिद्ध भूतपूर्व मंत्री सर विश्वेश्वरयाका कहना है कि भारतमें बिजली केवल ५००,००० बार पैदा की जाती है और यह देशकी पूरी शक्तिका केवल २ या ३ प्रतिशत है। भारतमें शक्तिके साधनोंकी खोज कभी उचित ढंगसे नहीं हुई है और यह आंकड़े केवल अनुमान हैं। सम्भव हैं कि यहां भी रूसकी दशा हो। रूसमें साम्यवादी साम्राज्यके पूर्व वहांकी शक्तिकी मात्रा ४४,०००,००० किलोवाट लगाई जाती थी, परन्तु बादके अन्वेषणसे यह संख्या २० गुनी बढ़ गई! तदापि भारतकी जल शक्तिकी इतनी अपूर्ण खोज होनेपर भी यहांकी जल-शक्ति उसको जापान या इटलीके समान औद्योगिक-धंधेवाला बनानेको यथेष्ट है। आवश्यकता है सह-योग, संगठन और सुप्रबंधकी।

जापानियोंसे सीख

देशकी भीषण दरिद्रताको देखकर दुःखोद्र विस्मय होता है। ज़रा जापानकी दशा देखें। जापानमें कुल मिलाकर ११,६०० छोटे बड़े नगर और गांव हैं जिनमें-से ९७.९ प्रतिशत (११,३५०) में बिजलीका प्रकाश है। जापानमें घरों और इमारतोंकी संख्या १२,५००,००० है और सन् १९३३ के अंतमें ११,४००,००० में बिजली थी, अथवा ११ प्रतिशत मकानोंमें बिजली। यह संख्या तो संसारके सर्वाधिक बिजली उपार्जन करनेवाले देश (संयुक्त अमेरिका) से भी ज़्यादा है। जहाँ २५ प्रतिशत मकानोंमें बिजली नहीं है। सन् १९३४ के अंतमें जापानके प्रतिजन-संख्या १०० पर ५९ बिजलीकी बत्तियाँ थीं। जापानमें बिजलीकी प्रथम स्कीम सन् १८९२ में बीवा झीलपर क्योटोके निकट हुई थी, और आज तो बिजली जापान-में चारों ओर बिराजमान है, बिजलीकी जापानमें 'पाँच बड़ी' कम्पनियाँ हैं जिनके हाथमें सब काम है। यदि हमारे देशमें भी ऐसा हो तो क्या अच्छा! बिजलीको प्रत्येक ग्रामीणकी व्यवहारिक वस्तु बना देना चाहिए। बिजलीके लिए हमारे यहां कुछ थोड़ा-सा उद्योग किया गया है परन्तु अधिकांश कम्पनियोंने तो जनताको चूसनेका बिजली एक सीधा व सुन्दर साधन बना रखा है।

हमारे देशमें बिजलीके साधन

हमारे देशमें बिजलीके तीन प्रकारके उपार्जक हैं।

(१) राज्यकी ओरसे—संयुक्तप्रान्तकी-गंगा-ग्रिड स्कीम, पंजाबकी मंडी स्कीम, मैसोरकी शिवसमुद्रम और मदरासकी पिकड़ा स्कीम आदि।

(२) कम्पनियोंकी ओरसे (जॉइण्ट-स्टाक या सहकारी संस्थायें)—टाटा हाइड्रोइलेक्ट्रिक स्कीम, आंध्र-वैली और टाटा पॉवर कम्पनियाँ।

(३) निजी कम्पनियाँ—यह छोटे स्थानोंपर खुली हुई हैं। पंजाबकी मंडीस्कीम जनताके प्रतिनिधियोंके पूर्ण विरोधपर भी जनतापर लायी गई। उसमें गौर्मिन्ट-का व्यय ३८००) प्रति किलोवाट हुआ। इस मूल्यका संसार भरमें रेकार्ड है। गौर्मिन्टको बधाई। यह मूल्य योरप व अमेरिकाके इतने बड़े पैमानेके प्रबन्धसे १० गुना है। इन्गलैन्डमें ५० पौन्ड प्रतिकिलोवाट एक हाइड्रोइलेकट्रिक स्टेशनके लिए बड़ा उँचा दाम माना जाता है। ऐसी ही कथा पश्चिमी-गंगा-हाइड्रोइलेक-ट्रिक-स्कीमकी है जिसमें लागत १२०४) प्रतिकिलोवाट

हुई। यह अंक संसारमें द्वितीय हैं। यू० पी० की स्कीममें लागत ०·८७ आना प्रतियूनिट है जो कोयले द्वारा उपार्जित यूनिटसे जिसका लागत दाम ०·४५ आना प्रतियूनिट है लगभग दूनी है। काशमीरमें छोटे पैमानेपर एक ऐसी स्कीम बनी है, उसमें लागत ढाई पाई प्रतियूनिट है। कहाँ ढाई पाई और कहाँ ·०८७ आना! चौगुनेसे भी अधिक। यू० पी० की इस स्कीमसे तो अच्छा कानपुरमें ही है जहाँ भाफ-प्लांट्स हैं और लागत ०·३५ आनासे ०·४५ आनातक है। शिवसमुद्रम स्कीममें केवल ५००) प्रतिकिलोवाट लगा। पाठक हमारे शासकों और कुछ हमारी अपनी कृतियोंका मिलान करें। एक बात और। पंजाबकी मंडी स्कीममें ६ करोड़के व्ययके बाद यह पता चला कि जो नदियाँ पानी देंगी वह ग्रीष्म ऋतुमें लगभग शुष्क हो जाती हैं।

असफलताके कारण

इन सब स्कीमोंकी असफलताके कारण निम्नलिखित मालूम पड़ते हैं।

(१) यह स्कीमें उपस्थित हाइड्रोइलेकट्रिक शक्तिके साधनोंकी जाँच-पड़ताल बिना बनाई गईं।

(२) बिजलीका विभाजन अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तोंपर नहीं हुआ।

(३) यह स्कीमें ऐसे सज्जनोंके संरक्षणमें थीं जो इस कलासे अनभिज्ञ-से थे, और जैसा उसको चाहिये था, कि कुछ छात्रोंको इस काममें विशेषज्ञ होनेके लिये शिक्षायें, देते नहीं किया।

(४) इन स्कीमोंके लिये विशेषज्ञ ५००० मील लगभगकी दूरीसे बुलाये गये ऐसे देशसे जहाँका जलवायु, जहाँकी नदियाँ, जहाँकी वर्षाकी मात्रा और प्रकार हमारे देशसे सर्वथा भिन्न हैं और वह विशेषज्ञ यहाँकी अवस्थासे अपरिचित थे। जो देशमें हो अधिक चतुर और प्रतिभाशाली भारतीय वैज्ञानिक थे उनकी बात भी न पूछी गई।

कुछ प्रस्ताव

संसारके सभी देशोंमें एक सरल ढंगसे कार्य करनेके पूर्व पूंजीपती और जनतामें झगड़ा रहा है। परन्तु अब यह सर्व-विदित हो गया है कि शक्तिके साधन जैसे कोयला, चलता पानी, पैट्रोल और अन्य प्रकारके ईंधन जैसे पावर अलकोहल, लकड़ी, पीट, शेलको राष्ट्रीय सम्पत्ति समझना चाहिए। इन साधनोंके जमा करनेके लिए, उनकी उन्नतिके लिये और उचित कार्य करनेके लिए बड़े कड़े नियम निर्धारित किये गये हैं। यह भी विदित हो गया है कि शक्तिका बढ़ाना प्रत्येक राज्यका प्रथम कर्त्तव्य है और शक्तिके साधन किसी विशेष जन या समुदायके लाभ या चूसनेकी वस्तु या ठेका नहीं है। उसके लिए, सरल शब्दोंमें निम्न उपाय किये गये हैं।

(१) एक पॉवर-सपलाई विभाग हो जिसका काम राज्यकी सीमाके अन्दर समस्त उपस्थित शक्तिके साधनोंका नियमित रूपसे अन्वेषण करना है। उस विभागको इन साधनोंकी उन्नतिके लिये उचित उपाय करना चाहिए।

(२) राज्य ऐसा प्रबन्ध करेगा जिससे सस्ती और अधिक सपलाई हो और जनता पूंजीपतियोंकी लदमौंरसे बची रहेगी।

(३) राज्य स्वयं ऐसे विशेषज्ञोंको शिक्षा दिलयगा जो सुधारकी नवीन विधियाँ बना वा प्रयोगमें ला सकें। कोई राज्य विशेषज्ञोंके लिये आयात पर निर्भर नहीं रह सकता।

उपर्युक्त बातोंसे ज्ञात होगा कि बिजलीके कितने लाभ हैं, हमारे देशमें बिजलीकी दशा अन्य देशोंसे कैसी है, और हमारे शासकोंने उसके प्रचारसे हमारा कितना हित व अहित किया। किस भाँति रूस और जापान जैसे पुरातन देशोंने अपना कायाकल्प किया। हम समझते हैं कि राज्यका कर्त्तव्य है कि वह हमारी जागृति पैदाकर पुनःर्निमाण करें। आज स्वदेशके ११ मेंसे ७ प्रान्तोंमें देशकी सबसे बड़ी और सच्ची प्रतिनिधि संस्थाका मंत्रित्व है, परन्तु वह तो एक टिमटिमाताता दीपक है। यह दीपक इस प्रकार कबतक जलता रहेगा और कबतक जलना चाहिये, इसका

उत्तर हम इस समय इस स्थानपर नहीं देंगे। हाँ, यह अवश्य चाहते हैं कि प्रकाश सम्पूर्ण और स्वतंत्र रूपसे हो और वह सर्व अन्धकारको नष्ट करे। अभी गत एक वर्षके निकट काँग्रेसकी कार्यकारिणी समिति-ने काँग्रेसके सब प्रधान-मंत्रियोंके नाम पत्र भेजा था। जिसमें देशकी औद्योगिक उन्नतिके लिये ज़ोर दिया गया था। कुछ प्रान्तोंमें इस ओर ध्यान भी दिया जा रहा है। हमारी प्रान्तीय सरकारोंको सफलताके लिये आवश्यक है कि पावर सप्लाईकी पूरी पद्धति राष्ट्रीय नींवपर स्थापित की जायँ और 'ग्रिड' प्रणाली जारी हो, और राष्ट्रीय स्कीमें बननी चाहिए जिससे कि सब शक्तिको नाना प्रकारकी कलाओंमें भली भाँति प्रयोग किया जा सके।

जापानकी पाँच बड़ी कम्पनियोंपर सन् १९३२ में एक विशेष मंत्री नियत किया गया। परन्तु सन् १९३७ में ही ठीरो मंत्रि-मंडलके बननेपर सब कम्पनि-योंपर राज्यका नियन्त्रण हो गया है। विदेशोंमें भी अब शक्तिका पूरा प्रबन्ध राज्य अपने हाथमें ले रहे हैं। जब तक यह प्रबन्ध राष्ट्रीय जागीर नहीं बनेंगे तब तक राष्ट्रमें एक छोटा-सा समुदाय समस्त शेष राष्ट्रका शोषण करता जायगा और राष्ट्र भी घुलता जायगा साथ-साथ सरकारको चाहिये कि देशके प्रतिभासंपन्न रत्नोंको उचित शिक्षा दिलवाये (देशमें या विदेशमें आरम्भमें तो विदेशमें भी भेजना पड़ेगा, जापानवाले तो अब भी भेजते हैं) ताकि वह राष्ट्रकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर सकें। जनताको महान लाभ इस विद्युतसे होगा, उनमें एक विशेष लाभ यह भी है कि भारतकी बेकारीका प्रश्न अधिक मात्रामें हल हो जायगा, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिकामें सभापति रूजवैल्ट ने किया है।

सुगन्धित तैल और इत्र

[ले०—श्रीमती कमला सद्गोवाल बी० ए०, हिन्दुस्थान एरोमैटिक्स कम्पनी बनारस]

इस लेखमें उन पदार्थोंका वर्णन किया जावेगा, जिनको साधारण बोल-चालकी भाषामें खुशबू, इत्र या सेन्टके नामसे पुकारा जाता है। साधारण जन-समाज-की दृष्टिसे किसी भी सुगन्धित तैल पदार्थको इसी श्रेणीमें रक्खा जाता है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे ऐसे मौलिक सुगन्धित तैलोंकी परिभाषा इस प्रकार की जाती है कि यह तैल वे सुगन्धयुक्त स्निग्ध पदार्थ हैं जो प्रायः वानस्पतिक द्रव्योंमेंसे साधारण तापक्रमपर बिना किसी प्रकारकी विकृतिके उड़नशील उपायों द्वारा द्रवावस्थामें प्राप्त किये जाते हैं। वास्तवमें ऐसी सभी परिभाषायें अपूर्ण और दोषयुक्त हैं, फिर भी ऊपर दी गयी व्याख्या ऐसी है जो कि अधिकांशमें सत्य कही जा सकती है।

ऐसे सुगन्धित तैलोंका विषय इतना विस्तृत है कि उसका संक्षिप्त वर्णन कभी भी संतोष जनक नहीं हो सकता। प्राकृतिक फूलोंमेंसे जो भीनी-भीनी गन्ध प्रत्येक मनुष्यके हृदयको अपनी ओर खींच लेती है उसकी शक्तिका वास्तविक कारण किसी न किसी सौगन्धिक तैलकी विद्यमानता ही हुआ करती है। प्रकृतिमें वनस्पतियों द्वारा इन सुगन्धित पदार्थोंकी जो रचना प्रत्येक क्षण हो रही है उसकी जिज्ञासा मनुष्य-को आश्चर्यसे स्तब्ध कर देती है।

वर्गीकरण

सुगन्धित पदार्थोंका विभाजन साधारणतया दो श्रेणियोंमें किया जा सकता है :—

(१) वह मौलिक द्रव पदार्थ जो प्राकृतिक क्षेत्रोंसे अलग किये जाते हैं।

(२) वह सुगन्धित द्रव्य जो कि रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित सुगन्धित रासायनिक द्रव्योंके मिश्रणसे बनाये जाते हैं।

पहली श्रेणीके प्राकृतिक द्रव्योंको उनके उद्गमकी दृष्टिसे दो श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है :—

(१) जान्तव पदार्थ जैसे कस्तूरी, सिवेट और एम-बर्गरिस इत्यादि।

(२) वह मौलिक तैल जिनका उद्गम उद्भिज्जों अथवा वनस्पतियोंके किसी भागसे होता है।

वानस्पतिक सुगन्ध

जान्तव उद्गमोंसे प्राप्त सुगन्धित द्रव्योंकी संख्या अधिक नहीं है, किन्तु वानस्पतिक उद्गमों द्वारा असंख्य सुगन्धित द्रव्य प्राप्त होते हैं। इसका कारण यही है कि इन पदार्थोंकी विद्यमानता केवल फूलोंतक ही सीमित नहीं होती, किन्तु वनस्पतियोंके प्रत्येक भागमेंसे ऐसे पदार्थ निकाले जा सकते हैं। दृष्टान्तके रूपमें नीचे उन विशेष वानस्पतिक अंगोंका वर्णन दिया जाता है। जिनमेंसे कई मूल्यवान सौगन्धिक द्रव्य प्राप्त होते हैं :—

(१) फूल—लवंग, बेला, चमेली, मोतिया, मोगरा, सन्तरा, गुलाब, बनफशा, केवड़ा, मेंहदी, सुरंगी, चम्पा और पारिजात इत्यादि।

(२) फूल और पत्ती—लेवेण्डर, रोजमेरी और पिपरमेन्ट इत्यादि।

(३) पत्ती और टहनियाँ—जिरेनियम, पानड़ी तेजपात और सन्तरेकी पत्ती इत्यादि।

(४) छाल—दालचीनी इत्यादि।

(५) लकड़ी—चन्दन, चीर और सिनेलो इत्यादि।

(६) जड़ें—खस और कूठ इत्यादि।

(७) मूलकल्प—अकरकरा अदरख और सोंठ इत्यादि।

(८) फल—नींबू, सन्तरा और माल्टा इत्यादि।

(९) बीज—सौंफ, अजवायन और जायफल इत्यादि।

(१०) गोंद—लोबान, बीजबोल, हींग और शिलारस इत्यादि।

एक ही प्रकारके वानस्पतिक उद्गमसे भी विभिन्न तरहके सुगन्धित तैल प्राप्त होते हैं। इस भेदके कारण भूमि, जल, वायु और खाद इत्यादि होते हैं। विदेशोंमें नाना प्रकारके वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा इतनी उन्नति की गयी है कि वनस्पतियों द्वारा प्राप्त सुगन्धित तैलोंकी विभिन्नतापर भी अधिकांशमें अधिकार प्राप्त हो चुका है।

ऋतु विचार

ऋतुओंकी दृष्टिसे हमारे देशमें विविध समयोंपर होनेवाले सुगिन्धित पदार्थोंकी फसलोंका समय-विभाग नीचे दिया जात है :—

चैत्र—बनफशा, खस, गन्धतृण, लवंग, और जिरेनियम।

वैशाख—गुलाब।

ज्येष्ठ—गुलाब सन्तरा, सन्तरेका फूल, रोजमेरी और अजवायन।

आषाढ़—गुलाब, सन्तरेके पत्ते, बेला लेमनग्रास मोतिया और मोगरा।

श्रावण—जैसमिन, बेला, चमेली, लेवण्डर केवड़ा और केशर।

भाद्रपद—जैसमिन, गन्ध राज, ज़ीरा और पारिजात।

आश्विन—सौंफ, गन्धतृण और रोसा।

कार्त्तिक—गन्धराज, रातकी रानी (रजनिगन्ध) और रोसा।

मार्गशीर्ष—खट्टा नींबू, चन्दन, सौंफिया और रोसा।

पौष—माल्टा, नींबू, लेमनग्रास और रोसा।

माघ—लिनेलो, लवंग, माल्टा, नींबू और खस।

फाल्गुण—गन्धखदिर (कैसियाइ), मिमोसा माल्टा, नीबू और खस।

सुगन्धित तैलोंके गुण

सुगन्धित तैल साधारणतया बहुत कुछ जलमें अघुलनशील होते हैं किन्तु एलकोहोल, ईथर तथा खनिज और वानस्पतिक तैलोंमें यह सुगमतासे घुल जाते हैं। आगके पास आनेपर यह तैल बहुत धुँआ देकर जल उठते हैं। अन्य वानस्पतिक तैलोंसे इनका विशेष भेद इस बातमें है कि यह तैल स्निग्ध नहीं होते और किसी स्थलपर ऐसा पक्का दाग नहीं छोड़ते जो आमतौरपर तैलोंसे पड़ जाते हैं। चखनेपर यह सब तैल गरम तथा चुन चुनाते-से मालूम होते हैं। अधिकांशमें सबके सब सुगन्धित तैल पानीसे हलके होते हैं। रासायणिक संगठनकी दृष्टिसे इन तैलों और वानस्पतिक तैलोंमें कोई समानता नहीं है।

तैल निकालनेकी विधियां

प्राकृतिक उद्गमोंमेंसे इन सुगन्धित तैलोंको अलग करनेके लिये नीचे लिखी विधियोंका अवलम्बन किया जाता है।

(१) भभकेसे या स्रावण विधि।

(२) निचोड़कर या उत्पीड़न विधि।

(३) निष्कर्षण विधि।

इस विधिमें नीचे लिखी रीतियोंकी उपश्रेणियोंका वर्णन आवश्यक है—

(क) फूलोंसे बसाकर या पुष्पोपासन विधि।

(ख) स्निग्ध निष्कर्षण विधि।

(ग) उड़नशील घोलकोंकी सहायतासे।

(४) शोषण विधि।

(१) भभकेसे तैलोंका उड़ाना

इस विधिका अवलम्बन हमारे देशमें लाखों वर्षोंसे होता आरहा है। इस कार्यके लिये नीचे दिये गये चित्रके अनुसार यन्त्रका अवलम्बन किया जाता है:—

इस विधिको वास्तवमें जलके साथ वाष्पीकरण कहा जाना चाहिए। डेगमें पर्याप्त जलके साथ फूल रखकर और डेगके मुखपर सरपोशको खूब मज़बूतीसे कसकर बांसके चोंगेके आगे भभका लगा दिया जाता है। डेग और भभका ताँबेके बनते हैं और भीतरसे इनकी कलई की होती है। गुलाब, बेला, चमेली, मोतिया, मोगरा, पानड़ी और खस इत्यादिके सुगन्धित तैल वा इत्र बनानेके लिये हमारे देशमें इसी विधिका अवलम्बन होता चला आ रहा है। सब यन्त्र ठीकसे

चित्र नं० १

लग जानेपर डेगके नीचे भट्टीमें लकड़ी अथवा गोबरके उपलोंकी आग दी जाती है। जब पानीकी भाप बनकर ऊपर उठती है तो तैलोंका अंश उड़नशील होनेके कारण पानीकी भापके साथ उड़कर चोंगेमेंसे होता हुआ भभकेमें एकट्ठा हो जाता है। जल-मिश्रित सुगन्धित तैलके वाष्पको ठंढा करनेके लिये भभकेके इर्द गिर्द नाँद बनाकर ठंढा पानी भर दिया जाता है। जब भभका भर जाता है तो उसे अलग रखकर स्थिर किया जाता है। पानी और सुगन्धित तैल आपसमें न मिल सकनेके कारण अलग-अलग हो जाते हैं, और इसी सुगन्धित तैलके अंशको पानीके ऊपरसे हाथ द्वारा काछकर अलग कर लिया जाता है।

रूह—इन विधिओंसे प्राप्त सौगन्धित तैलको रूह अथवा 'एसेन्शल ऑयल' कहा जाता है।

संदली इत्र—यदि भभकेको खाली न रखकर आरंभसे ही उसमें शुद्ध चन्दनका तैल छोड़कर फूल आदिका वाष्पीकरण किया जावे तो भभकेको स्थिर करनेके पश्चात् सुगन्धित तैलवाला अंश चन्दनके तैलमें मिलकर पानीके ऊपर तैरने लग जाता है। रस मिले हुये अंशको उसी प्रकारसे काछकर अलग किया जाता है। इन पदार्थोंको 'सन्दली इत्र' के नामसे बेचा जाता है।

खनिज इत्र—आजकल चन्दनके शुद्ध तैलके बजाय भभकेमें खनिज तैल आदि रखकर सुगन्धित पदार्थोंका वाष्पीकरण अधिकतौरपर किया जाता है। हमारे देशके दुर्भाग्यसे यह हानिकारक पदार्थ भी सस्ते इत्रोंके नामपर अन्धाधुन्ध बेच दिये जाते हैं।

गुलाबजल आदि—यदि सुगन्धित पदार्थोंके वाष्पीकरण करनेके पश्चात् जलके ऊपर तैरते हुए सुगन्धित तैलके अंशको अलग न किया जावे तो ऐसे पानीको उस पदार्थके जलके नामसे पुकारा जाता है। गुलाबजल तथा केवड़ाजल इसी विधिसे बनते हैं।

हमारे देशमें सहस्रों वर्षोंसे प्रचलित इस विधिमें कोई भी वैज्ञानिक परिवर्त्तन न होनेसे हम लोग वाष्पीकरणमें पाश्चात्य देशोंसे बहुत पिछड़ चुके हैं। चोंगेकी बनावट ठीक न होनेसे, डेगमें दी गयी आँचके तापक्रमका कोई नियन्त्रण न होनेसे और यथायोग्य ठण्डे करनेके प्रबन्धके अभावसे हमारे सुगन्धित तैलोंके गुण न केवल घटिया ही होते हैं, बल्कि उनका अधिकांश भाग वायुमण्डलमें उड़कर नष्ट भी हो जाता है।

(२) वाष्पीय स्रावण विधि

पाश्चात्य देशवालोंने वैज्ञानिक उन्नति द्वारा ऊपर लिखे सब दोषोंका निराकरण करके वाष्पीय स्रावण विधिका अवलम्बन किया है। इसके अनुसार एक बॉयलर द्वारा वाष्प अलग बनाकर सुगन्धित पदार्थोंमें विद्यमान तैलके अंशको भापके साथ उड़ाकर बहुत ही सावधानतासे ठंढा करके अलग किया जाता है। इस विधिसे प्राप्त सुगन्धित तैलोंकी मात्रा अधिक होती है और गुण भी उत्तम होते हैं। एक ऐसे ही यन्त्रका चित्र नीचे दिया जाता है :—
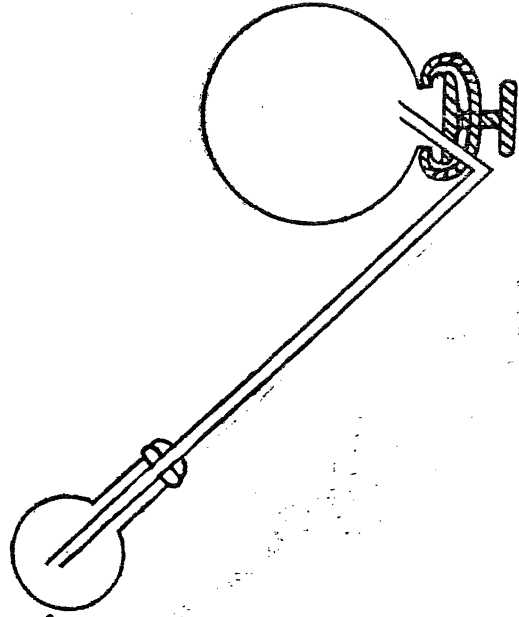
चित्र २

(३) निचोड़कर इत्र निकालना

इस उत्पीडन विधिको नीचे लिखी तीन उपश्रेणिओंमें विभक्त किया जा सकता है :—

(क) स्पञ्ज शोषण विधि।
(ख) एक्युले विधि।
(ग) यान्त्रिक विधि।

पहली विधि द्वारा नींबू और सन्तरेके सुगन्धित तैल निकाले जाते हैं। दूसरी विधिका अवलम्बन बहुत वर्ष पहले नींबूके सुगन्धित तैलके लिये किया जाता था, किन्तु अब इसका उपयोग नहींके बराबर है। तीसरी विधिका अवलम्बन अधिकतया बर्गेमोटके सुगन्धित तैलके लिये होता है। आजकल ऐसी भी मशीनें बन गयी हैं जिनके द्वारा नींबूका भी तैल बनाया जा सकता है। किन्तु इस विधिसे

बने नींबू और सन्तरेके तैल स्पञ्जशोषण-विधिवालोंसे घटिया माने जाते हैं।

स्पंजविधि—स्पञ्जशोषण विधिमें सबसे पहले नींबू अथवा सन्तरेके फलको कम गोलाईके भागसे काटकर गूदा अलग कर दिया जाता है। इसके पश्चात् ऊपरके छिलकेको पानीमें भिगोकर एक स्पञ्जवाले प्यालेमें ऐसे दबाया जाता है कि उसमेंसे कुल रस निकल आवे। इस रसमें पानी और सुगन्धित तैल मिले रहते हैं। कुछ देरतक स्थिर करनेपर पानीका भाग अलग हो जाता है और सुगन्धित तैल ऊपर तैरने लग जाता है। बचे हुये पानीको फिर वाष्पीकरण द्वारा सुगन्धित तैलसे अलग किया जाता है। पहली विधिसे प्राप्त सुगन्धित तैल दूसरी विधिसे प्राप्त तैलोंसे गुणमें उत्तम माने जाते हैं। गूदेमेंसे रस निकालकर नींबूका सत्त इत्यादि बनाया जाता है, और रस रहित छिलकोंको नमक आदि लगाकर चटनीके रूपमें वर्त्ता जाता है।

ऊपर लिखी विधिको अधिक सुगमता और शीघ्रताकी दृष्टिसे पूरी करनेके लिये अब ऐसी मशीनोंका निमार्ण हो गया है जिनके द्वारा ये सब सुगन्धित तैल बहुत सस्ते निकाले जा रहे हैं। इस विधिका प्रयोग सबसे अधिक इटलीमें हो रहा हैं। हमारे देशमें सबसे प्रथम यह विधि उपयोगमें लानेका श्रेय काशीकी हिन्दूस्थान एरोमेटिक्स कम्पनीको है।

(४) निष्कर्षण विधि

वाष्पीय स्रावण विधिमें ऊँचे तापक्रम और अन्य कारणोंसे कई बार सुगन्धित तैल विछिन्नावस्थामें प्राप्त होते हैं और उनकी गन्ध उद्गमके पदार्थसे सर्वथा भिन्न रहती है। इस कमीको पूरा करनेकी दृष्टिसे ऐसे-ऐसे सूक्ष्म सुगन्धित पदार्थोंकी गन्ध नाना प्रकारके घोलकोंकी सहायतासे निकाली जाती है। घोलक वाष्पशील और अवाष्पशील दोनों प्रकारके हो सकते हैं।

अवाष्पशील घोलकोंके लिये जान्तव तैल अथवा वानस्पतिक तैलोंका उपयोग किया जाता है। इस विधिको नीचे लिखी दो उपविधियोंमें बाँटा जा सकता है:—

(क) साधारण तापक्रमपर की गयी पुष्पोपासना।

(ख) ऊँचे ताप क्रमपर किये गये स्निग्ध निष्कर्षण विधिका उपयोग।

बेला, चमेली, जूही, मोतिया, मोगरा तथा गन्धराज इत्यादि फूलोंके सुगन्धित तैल पुष्पोपासना विधिसे ही बढ़िया निकाले जा सकते हैं।

देशी विधि

हमारे देशके प्रसिद्ध जौनपुर और ग़ाज़ीपुरके शिरके तैल इन्हीं तरीकोंसे बनाये जाते थे। साधारण भाषामें ऐसे तैलोंको तिल्लीपर फूलोंसे वासित तैलके नामसे पुकारा जाता है। इस विधिके अनुसार नित्यप्रति तिल्लीको नये नये फूलोंके साथ बसाकर पश्चात् कोल्हूमें पेरा जाता है। पाश्चात्य देशोंमें शिरके लिये स्निग्ध पदार्थोंका रिवाज न होनेसे इस विधिमें सूअरकी बढ़िया चर्बीको ज़मीन या आधार मानकर काम लिया जाता है।

स्निग्ध निष्कर्षणविधि—गुलाब, सन्तरे और बनफ़शा आदिके फूलोंके लिये ऊँचे ताप क्रमकी पुष्पोपासना अथवा स्निग्ध निष्कर्षण विधि साधारण पुष्पोपासना विधिसे बढ़िया काम देती है। इस विधिके अनुसार फूलोंको जान्तव अथवा वानस्पनिक तैलोंके साथ-साथ ऊँचे तापक्रमपर बहुत देरतक हिलाकर सुगन्धित अंशको वानस्पतिक तैलोंके साथ शोषण करके निकाल लिया जाता है। इस विधिसे बनी हुई इन जान्तव अथवा वानस्पतिक फूलोंसे वासित ज़मीनोंको पाश्चात्य देशोंमें 'पोमेड' नामसे पुकारा जाता है।

उड़नशील विलायकोंकी सहायतासे भी आजकल फूलोंके सुगन्ध अलग किये जाने लगे हैं। इस विधीके अनुसार ईथर बेनज़ीन और पेट्रोलियम ईथर इत्यादिको वाष्पी करण द्वारा गरम करके सूगन्धित पदार्थों में घोलनेके लिये छोड़ा जाता है। इन घोलकोंका गरम वाष्प सुगन्धित तैलोंके अंशको अपने साथ उड़ाकर ठंढा होनेपर अलग हो जाता है। सुगन्धित

तैलके इस घोलकके साथ प्राप्त घोलको फिरसे वाष्पीकरणके द्वारा घोलक अलग करके सुगन्धित तैलका वह अंश प्राप्त किया जाता है जिसे घन कंकरीटके नामसे कहा जाता है। इन घन सुगन्धित तैलोंमें फूलोंके सुगन्धित अंशके अलावा उद्गम पदार्थोंमें विद्यमान कई अन्य वस्तुएँ भी घुली रहती हैं। इन तैलोंको एक बार फिर एलकोहोलके साथ मिला देनेसे फूलोंके मोम इत्यादिका भाग अलग हो जाता है और सुगन्धित तैल शुद्ध सत्वके रूपमें 'सार' (एबसोल्यूट) कहाते हैं।

अभी २ पाश्चात्य देशवालोंने इस निष्कर्षण विधिसे प्राप्त सुगन्धित तैलोंको ऊँचे तापक्रम द्वारा सम्भव विच्छेदनकी आशंकाको दूर करनेकी इच्छासे द्रव कर्बन-द्विओषिद्का उपयोग घोलकके तौरपर किया है। चूंकि इस विधिमें ऊँचे तापक्रमका आश्रय नहीं लेना पड़ता इस लिये पहली विधिओंकी अपेक्षा सुगन्धित तैल उत्तम और बहुत ही सुगमता तथा शीघ्रतासे प्राप्त हो सकते हैं।

(५) शोषणविधि

जर्मनीके एक प्रसिद्ध कारखानादारने कार्बन और सिलिका-जल द्वारा कुछ फूलोंके सुगन्धित तैल अलग करनेकी घोषणा की है किन्तु अभी इसकी सफलताके बारेमें कुछ अधिक लिखा जाना कठिन है।

प्राकृतिक सु[illegible]त उद्गमों[illegible]त यह तैल साधारण तथा सस्ता न होनेके [illegible] और वर्तमान वैज्ञानिक उन्नतिका वजहसे अ[illegible]निक-प्रक्रियाओं द्वारा प्रयोग शालाओंमें ह. कृत्रिम सुगन्धित द्रव्य बनाए जाने लगे हैं। इन द्रव्योंका मुख्य उद्गम कोलतार और तद्जनित रासायनिक पदार्थ होते हैं। इस सम्बन्धमें रसायनकी गूढ़ प्रक्रिआओंके फेरमें न पड़कर इतना लिख देना पर्य्याप्त होगा कि वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा यह बात निर्विवाद तौरपर सिद्ध हो चुकी है कि प्राकृतिक उद्गमोंके द्वारा प्राप्त सुगन्धित पदार्थोंकी गन्धके विशेष कारणीभूत भागोंको नीचे लिखे तौरपर बांटा जा सकता है।

सुगन्धित तैलोंके रासायनिक अंश

सुगन्धित-तैल

१ एलकोहोल	२ एल्डीहाइड	३ कीटोन	४ फोनोल और संतसम द्रव्य	५ कर्बन अक्लई०	६ नोषजनित द्रव्य	७ हाइड्रोकर्बन
१. जिरेनियोल	१. सिट्रॉल	१. आयोनोन	१. एनिथोल	१. फिनिल-ऐसिटिक ऐसिड	१. इन्डील	१. डाई पेंन्टीन
२. रोडीमोल	२. " ओवर लॅमन	इ०	२. इरिसोन	इ०	२. मस्टर्डऑयल	इ०
३. फिनिल-इथिल अल्कोहल	३. सिनेमिक एल्डीहाइड		२. यूजीनोल		३. मुस्क अम्बर, जाइलोल और कीटोन	
४. लिनेलोल	४. क७ से क२४ तक		३. सैफरोली		इ०	
५. रोजेनोल	५. वैनिलीन		इ०			
६. पर्चॉलियोल	इ०					
इ०						

दो मज़ेदार खेल

[ले० डा० गोरख प्रसाद, डी० एस-सी]

१—पादयष्टियां

दो लाठियोंको हाथमें पकड़ और पैरके अंगूठेके बल उनको पकड़कर अक्सर लड़के आसानीसे लम्बे-लम्बे पैर बढ़ा सकते हैं। परन्तु इस प्रकार कोई भी बहुत देरतक नहीं चल सकता क्योंकि अंगूठे दर्द करने लगते हैं।
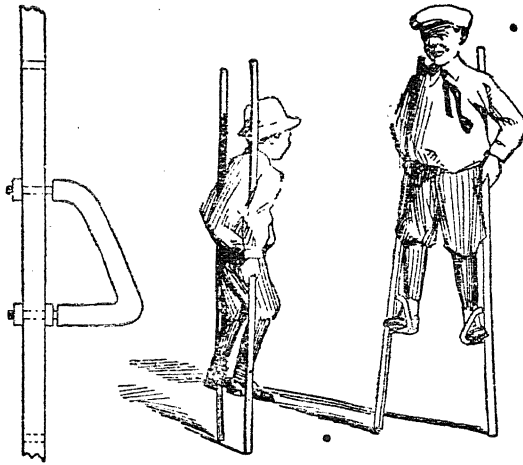
चित्र १

ऐसी लकड़ीको जिसको हाथ और पैरसे पकड़कर चला जाय 'पाद-यष्टि' कहते हैं। अच्छे ढंगकी पाद-यष्टियां बनानेके लिए दो डंडे कड़ी लकड़ियोंके बनाओ या ठोस बांस लो। लकड़ियाँ ६, ६ फुटकी हों, कुछ और लम्बी हों तो कुछ हर्ज नहीं। दोनों लकड़ियां नापमें बराबर हों। कोर और गाठंको रेतीसे रेतकर या चाकूसे छीलकर चिकना कर दो। फिर नीचेसे नापकर एक फुटपर ३/४ इंच व्यासका छेद करो। ठीक तीन इंच ऊपरकी ओर हटकर उतना ही बड़ा छेद और पहले छेदके समानान्तर बनाओ (छेदोंके केंद्रोंके बीचकी दूरी तीन इंच हो)। इसके बाद लोहेका रकाब बनाना होगा और उसमें चूड़ी काटनी होगी। यदि यह काम तुम स्वयम् न कर सको तो किसी लोहारसे बनवालो। १२ इंच लम्बा और ३/४ इंच व्यासका गोल लोहेका छड़ लो और उसे चित्रमें दिखलाए गये आकारका मोड़कर बना दो। दोनों सिरोंके बीचकी दूरी ठीक दो इंच रहे (केन्द्रसे केन्द्रतककी दूरी तीन इंच रहे)। रकाबके दोनों सिरोंपर चूड़ियां कटी हों और चूड़ी इतनी दूरतक काटी जायँ कि लकड़ीके दोनों ओर एक-एक चूड़ी लगाई जा सके। यदि लोहेके ऊपर रबड़की नली पहना दी जाय या उसपर कपड़ा लपेट दिया जाय तो पैरके फिसलनेका कोई डर न रहेगा। यदि डंडोंमें तीन-तीन इंचपर कई छेद कर दिये जायँ तो रकाब ऊंचा-नीचा किसी भी स्थानपर इच्छानुसार कसा जा सकेगा। पहले रकाबको काफी नीचा रखकर

डंडेके बल चलना सीखना चाहिए जैसे जैसे अभ्यास बढ़ता जाय रकाब ऊंचा किया जा सकता है।

इस प्रकारकी पादयष्टि बनाकर आसानीसे बेची भी जा सकती है। परन्तु यदि बेचनेवाला स्वयम् इन पादयष्टियोंपर चढ़कर सफाईसे दौड़ सके तो इनके बेचनेमें अधिक आसानी होगी।

२—बक्सनुमा पतंग

साथके चित्रमें एक बक्सनुमा पतंग दिखलाया गया है। ऐसे पतंग बहुत ऊंचेतक उड़ाये जा सकते हैं और उनमें तरह-तरहके हलके खिलौने बांधे जा सकते हैं। यदि काफी बड़ा बक्सनुमा पतंग बनाया जाय तो यह आदमीको खींच ले जा सकता है। एक सरल तरीका ऐसे पतंगोंके बनानेका नीचे दिया जाता है।
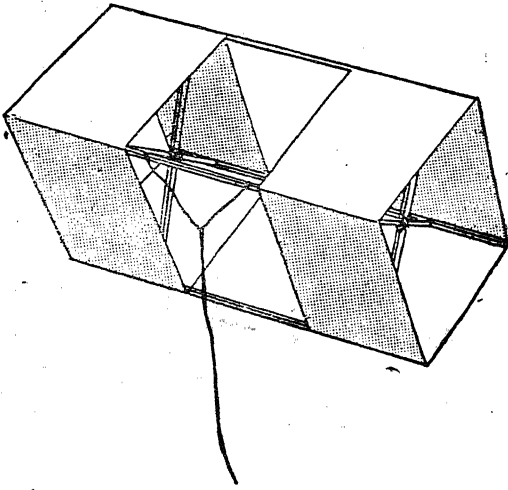
चित्र २

४२ इंच लम्बा और $\frac{3}{8}$″ × $\frac{3}{8}$″ नापके चार टुकड़े लकड़ीके लो। लकड़ी हलकी हो। यदि सीधे रेशोकी चीरकी लकड़ी मिल सके तो यह बहुत अच्छी होगी। कोने-कोने लगानेवाली लकड़ियाँ करीब २६ इंच लम्बी हों और वे करीब $\frac{1}{4}$″ × $\frac{1}{2}$″ की मोटाईकी हों। ऐसी चार लकड़ियोंकी जरूरत पड़ेगी। इनमेंसे दो-दो लकड़ियोंको एकके ऊपर एक इस प्रकार रखकर कि उनके बीच समकोश बनता हो मजबूत तागेसे अच्छी तरह बांध देना चाहिए जैसा कि चित्र ३ में दिखलाया गया है। इन लकड़ियोंके सिरोंपर खांचा काट देना चाहिए। जिसमें ४२ इंचवाली लकड़ियां पहनाई जा सकें। चित्र नं० ३ के बगलमें इस खांचे का आकार बड़े पैमानेपर दिखलाया गया है। इन लकड़ियोंको इस प्रकार फँसाकर बांधना चाहिए कि चित्र नं० २ की शक्का ढाँचा बन जाय। अब १४ इंच चौड़ी पट्टी किसी पतले और हलके कपड़ेसे फाड़नी चाहिए और ढाँचेके दोनों सिरोंपर चित्र २ में दिखलाई गई रीतिसे मढ़ देना चाहिए। नन्ही-नन्ही कील जड़कर कपड़ेको बेंड़ी लकड़ियोंपर (४२ इंचवाली लकड़ियोंपर) जड़ देना चाहिए। कपड़ेपर यदि पेंसिलसे पहले सीधी रेखायं बराबर-बराबर दूरीपर खेंच ली जायं तो सुभीता होगा। यदि कोने-कोनेवाली लकड़ियां उपर्युक्त नापकी होंगी तो इन रेखाओंके बीचकी दूरी १८$\frac{1}{4}$ इंच होगी।

चित्र ?
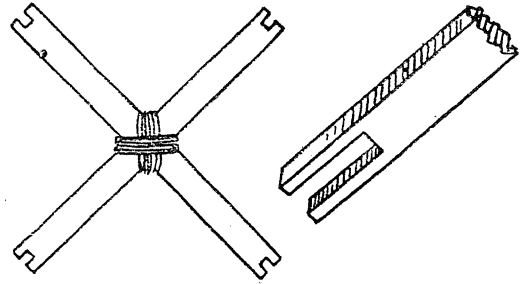
इन रेखाओंके पहले खींच लेनेसे पतंग ठीक चौकोर बन सकता है। कपड़ेके किनारोंको .खूब मजबूतीसे सी देना चाहिए। यदि उनको एकके ऊपर एक आधे इंचतक चढ़ा दिया जाय और दोहरी सिलाई की जाय तो अधिक अच्छा होगा। पट्टीके दोनों बगलवाले किनारेको भी दोहरा करके सी देना चाहिए। जिसमें कपड़ा मजबूत हो जाय। इस प्रकार दोनों ओर सिलाई करनेके बाद कपड़ेकी चौड़ाई करीब १४ इंच हो। कपड़ा .खूब तानकर लकड़ियोंपर चढ़ाया जाय। यदि कपड़ा इतना

ताना जाय कि कोने-कोनेवाली लकड़ियाँ कुछ लच जायं तो अधिक अच्छा होगा क्योंकि तब कपड़ा कभी ढीला न होगा। इस गुड्डीमें डोर उसी तरह बांधी जाती है जिस प्रकार साधारण पतंगमें अर्थात् एक कोनेवाली लकड़ीमें दो जगहोंपर एक २८ इंच लम्बे तागेके दोनों सिरे बांध दिये जाते हैं। इस तागेको कन्ना कहते हैं। कन्नाके करीब बीचमें बाकी डोर बांधी जाती है। हवाकी तेजीके हिसाबसे कन्नेका एक या दूसरा हिस्सा लम्बा या छोटा किया जाता है। हलकी हवामें कन्नेका ऊपरी भाग कुछ छोटा रखा जाता है और बहुत तेज हवामें ऊपरवाला भाग नीचेवाले की अपेक्षा लम्बा रखा जाता है।

परिहास चित्र

[ले०—एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका, श्री रत्नकुमारी एम० ए०]

शिरकी आकृतियां

हमारा दूसरा चित्र चार नम्बरवाला प्रथम बार देखनेमें विचित्र-सा है। इन शीघ्रतासे खींची गई आकृतियोंके पीछे यह भावना है कि सब चेहरोंकी अपनी साधारण रेखा पद्धति होती है। चेहरे और सिरपर मोटी तौरसे ध्यान दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिये तब तुम देखोगे कि दसमेंसे नौ एक सादी आकृतिमें प्रायः ठीक बैठ जायंगे।

चौथी प्लेटकी 'क' आकृति एक सिरकी प्रथम और शीघ्रता पूर्वक लाई गई झांकी है। यह मानो एक अंडा है जिसमें नाक और जोड़ दी गई है। अब 'घ' आकृतिको देखो और तुम समझ सकोगे कि यह वही चेहरा है परन्तु दूसरी ओरसे लिया गया है। 'ज' आकृति और भी दूसरी ओरसे है। मैं इस बातको प्रत्यक्ष कर देना चाहता हूँ कि अंडेकीसी आकृति केवल इस योग्य ही नहीं बल्कि यदि खींची जाय तो कलाकारको आकृति ठीक लानेमें बहुत सहायता देती है। देखो 'घ' आकृतिमें मैंने × × पर एक बाह्य रेखाको कैसे खींचा है और इसमें क आकृतिकी तरह नासिका खींची है।

यह भाव '[illegible]' आकृतिमें अधिक उन्नत हुआ है। तुमने [illegible] [illegible]ाकार चेहरा बहुत बार देखा होगा। मैं [illegible] [illegible] कि इसमें आ[illegible]कि है परन्तु, यदि तुम प[illegible] [illegible]चित्र बना रहे हो [illegible] तुम सिरकी आकृतिकी किसी भी विचित्रताको त्याग नहीं
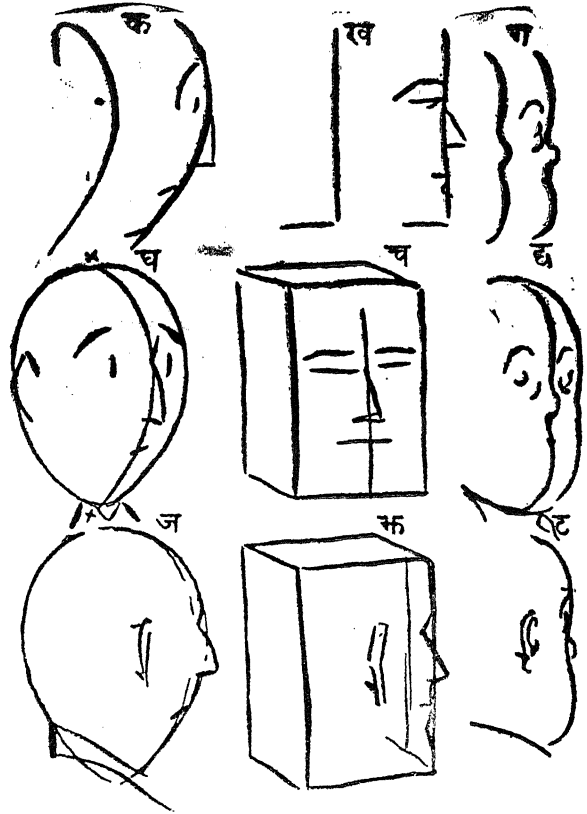
चित्र नं० ४

सकते। 'च' और 'झ' आकृतिमें भी यह उदा-

हरण लिया गया है परन्तु भिन्न-भिन्न दिशाओं-से।

'ग' आकृतिका हास्यास्पद छोटा चेहरा भी प्रति प्रचलित उदाहरण है। मैंने उसे सादी आकृतिमें जैसा दिखाई पड़ता है, कर दिया है और इससे बड़ी आसानीसे आकृतिको घुमाकर 'छ' और 'ट' आकृतियां बना ली हैं। इस प्लेटका ही सिद्धांत मस्तिष्कमें भली भाँति जम जाना चाहिये और मैं चाहता हूँ कि पाठक भिन्न आकृतिके चेहरोंसे ऐसे ही उदाहरणोंको बनानेकी चेष्टा करें।

अवयवोंकी आकृतियां

अब हम मुखके अवयवोंपर आते हैं। चरित्रके समस्त अध्ययनकर्त्ताओंने सभी प्रकारके नेत्रोंका सूक्ष्म अध्ययन किया है। मुझे अच्छी तरहसे स्मरण है कि मैं ट्राममें एक पुलिसवालेके सामने बैठा सोच रहा था कि उसका मुँह कैसा भोला है। वह एक समाचार पढ़ रहा था और उसी समय उसने ऊपर देखा और मैंने उसके नेत्र देख लिये। उन्होंने उसके चेहरेमें कितना परिवर्त्तन कर दिया। वे आंखें ठंडी कठोर और दयाशून्य थीं। यही उसकी आंतरिक प्रकृति थी, और मुझे प्रसन्नता हुई कि मैं अभियुक्त न था।

मैंने बहुधा सोचा है; यद्यपि मैं इसके लिए मौलिकताका दावा नहीं करता कि नेत्र मनुष्यकी सच्ची प्रकृतिको बताते हैं, चेहरा चरित्र बताता है, और नासिका मनुष्यकी बाह्य रूपरेखा का निश्चित चिह्न है। यदि किसी पुरुष या स्त्रीके सुडौल नासिका है तो तुम विश्वास कर सकते हो कि वह देखनेमें अच्छा है, अन्य अवयव चाहे जैसे हों। यदि नेत्रोंमें क्रूरता है तो प्रकृति भी वैसी है; वह पैतृक प्रकृति है। यदि मुँह भोला है तब तुम जान सकते हो उस व्यक्ति-ने कुछ हदतक चरित्र बनाकर उस क्रूरताको जीत लिया है। इस कारण कि मुँह सब अवयवोंसे अधिक परिवर्त्तनशील है भावोंका नेत्रोंपर सबसे शीघ्र और स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। पर नासिकामें सबसे कम परिवर्त्तन होता है। अवश्य ही कानको छोड़कर जिसका मैं जिक्र नहीं करता क्योंकि हम उन्हें बहुत ही कम देख पाते हैं।
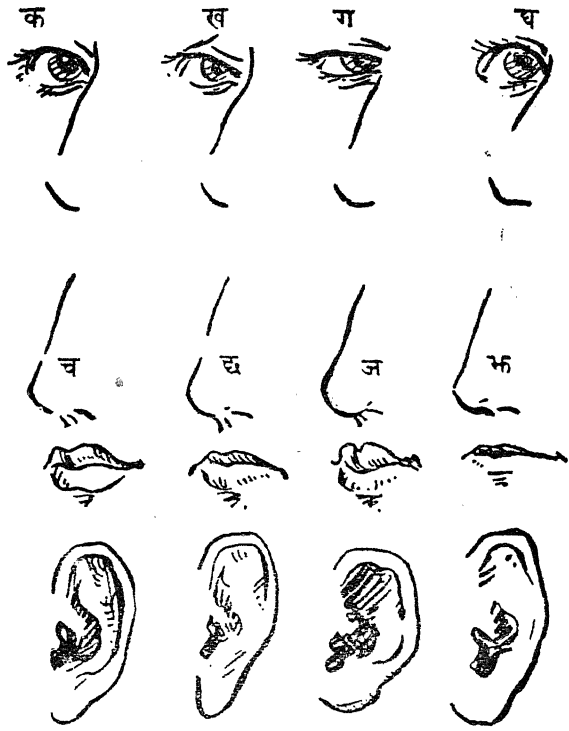
चित्र नं० ५

पाँचवें चित्रमें चार आँखें हैं। 'क' आकृतिमें सुन्दर खुली हुई साधारण आँख है। 'ख' में ऊपरी पलक गिरी हुई है, 'ग' प्रत्यक्ष रूपसे सिकुड़ी है, और 'घ' में नीचेकी पलक झुकी है जैसा कि हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंमें प्रायः पाया जाता है।

नीचे 'च' आकृतिमें पूर्ण मुँह है। 'छ' आकृतिमें लटकता हुआ पतला ओठ और भरा हुआ अधर—यह एक अति प्रचलित आकृति है। 'ज' आकृतिमें भरे हुए ओठ हैं जो यहूदियों और कुछ विदेशियोंमें साधारणतः पाये जाते हैं और 'झ' में सन्यासीका रहस्य भरा पतला और कठोर मुँह है।

कानके सम्बन्धमें आयुके साथ अधिक परिवर्त्तन नहीं पाया जाता है और चरित्र भावनाके साथ तो बिल्कुल ही नहीं। मैं चार साधारण प्रकारके कान दिखाता हूँ—पुरुत्व प्राप्त कान, लम्बा गोलाईसे आगेको बढ़ा हुआ कान, छोटा मोटा गोल कान और चौखूँटा चपटा कान। यदि तुम इस चित्रको दो बार नक़ल कर डालो तो बड़ा अच्छा अभ्यास हो जायगा। तब तुम इन भिन्नताओंको भली भांति समझ लोगे और याद कर लोगे।
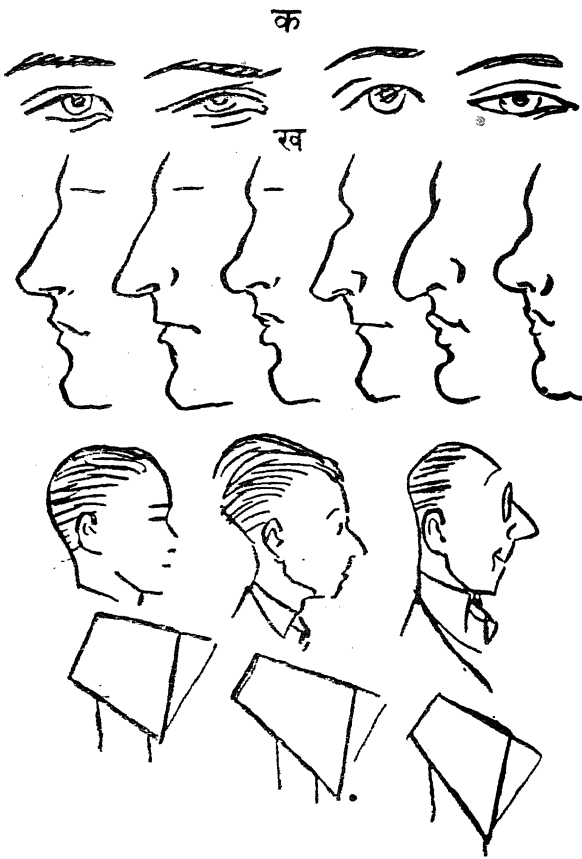
चित्र नं० ६

छठे चित्रकी 'क' आकृतिमें मैंने नेत्रोंकी भिन्नताओंको और विस्तार दिया है। बाईं ओरसे दूसरी को मैं मुख्यता दिखाना चाहता हूँ। ऊपरसे लटके हुए नेत्रके ऊपरका थैला देखो। कुछ अवस्थाओंमें तो यह इतने महत्वका होता है कि इसके बिना पूरा चेहरा परिवर्त्तित हो जायगा और पहचाना न जा सकेगा।

'ख' आकृतिमें नासिकाकी विभिन्नताओंको लेता हूँ। इसमें छः उदाहरण खींचे गए हैं। निस्संदेह यदि प्रयत्न करो तो तुम सर्व प्रथम पहलीवालीको चुनोगे, परन्तु मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है (परिहासचित्रकारकी दृष्टिसे) कि ऐसी नासिका बहुत ही कम हैं। परिहासचित्रकारका जीवन ही कठिन हो जाय यदि सब मनुष्योंके सुन्दर नासिकायें हों। अन्य पांच प्राकरोंका ध्यान पूर्वक अध्ययन करनेकी कृपा करो। प्रत्येक नाकके नीचे ओठ और हड्डीपर और ऊपर माथेपर विशेष ध्यान दो, और इनका नाकके साथ समन्वय करो। वे सब एक ही चेहरेके हैं। जहां कहीं तुमको नाक भरी और गोल मिलेगी, वहां ओठ, ठुड्डी और माथा भी ऐसे ही मिलेंगे। जहां कोई एक नोकीला होगा वहां सभी नोकीले होंगे। इस समन्वयकी विस्तृत आलोचना इस पुस्तकमें आगे दी जायगी।

इसी चित्र ६ में एक तो सुडौल शिर और इसके दो स्वाभाविक परिवर्तित रूप दिखाये गये हैं। प्रत्येक शिरके नीचे जो आकृतियाँ खींची गई हैं उनसे तुमको पता चलेगा कि सुडौल शिरके सामान्य कोण जैसे-के-तैसे सुरक्षित हैं, चाहे परिवर्तन कितना ही विचित्र क्यों न किया गया हो।

चेहरेके प्रत्येक अंगमें कितना समन्वय होता है, यह बात मैंने चित्र ७ में और भी दृढ़ता पूर्वक समझायी है। आंखके साथ मैं एक-एक अंग जोड़ता गया हूँ, और अन्तमें पूरे चेहरेपर आकर रुका हूँ। चित्र 'क' में सुडौल आंख है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। $क_1$ में मैंने सुडौल आंख जोड़ दी है और $क_2$ में पूरा सुडौल चेहरा है। ख पंक्तिमें एक गुंठनदार चेहरा और उसके उपयुक्त ही आंखसे मैंने आरम्भ किया है। $ख_1$ और $ख_2$ में यही विशेषता स्थिर रक्खी गई है। चित्र ग और घ अंगोंके समन्वय या
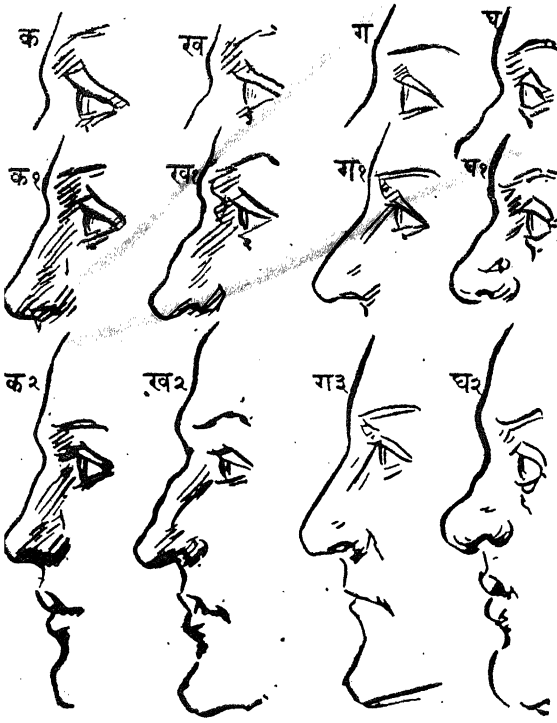
चित्र नं० ७

चित्र नं० ८

उनकी समानता प्रदर्शित करनेके लिये बहुत ही उपयुक्त उदाहरण हैं। नेत्रोंसे ही स्पष्ट पता चल जाता है कि चेहरा पूरा करनेमें किस विचित्र शैलीका अवलम्बन लेना चाहिये।

यदि तुमने इस समानताके सिद्धान्तको एक बार अच्छी तरह समझ लिया तो तुम्हें चरित्र चित्रणमें बहुत आसानी होगी। यह ठीक है, कि तुम समझते होगे कि अबतक हम लोग वास्तविक परिहास-चित्र का नहीं, केवल सामान्य चित्र अंकित करनेका ही उल्लेख करते रहे हैं। अंगोंका यह समन्वय न केवल खोजने या खींचनेके लिये है, प्रत्युत कलाकारको इसकी भावना-से इतना रंग जाना चाहिए कि उसकी रेखायें और शैली इससे प्रभावित जान पड़ें, और जिस चरित्र और चित्रको वह खींच रहा है उसके सर्वथा उपयुक्त हों।
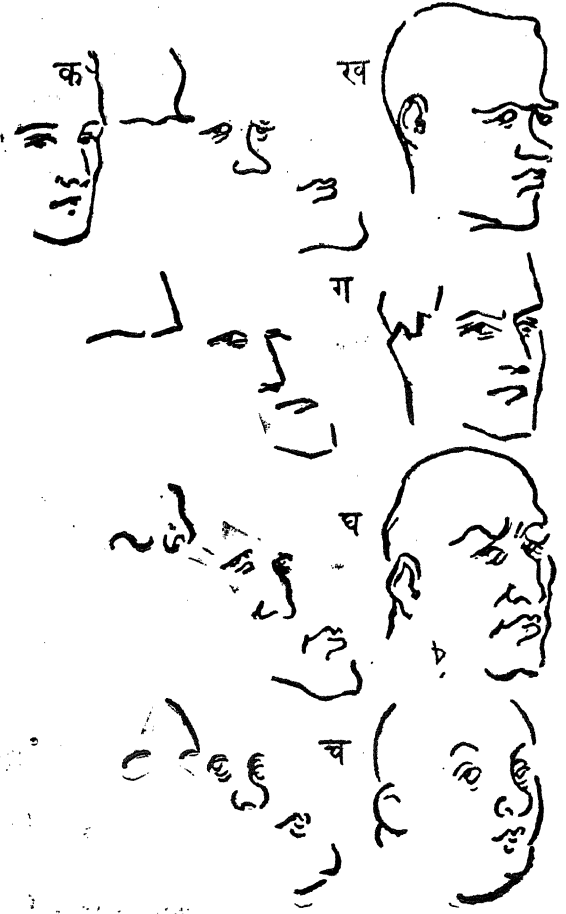
चित्र ८ तुमको हास्यास्पद मालूम होगा, इसमें संदेह नहीं। पर पूर्वोक्त बातोंके पढ़ लेनेके उपरान्त, और इस पुस्तकके आरम्भवाले चित्रोंके अध्ययनके पश्चात्, तुम इस चित्रके निम्न् संक्षिप्त उल्लेखको आसानीसे समझ जाओगे। 'क' आकृतिमें 'आदर्श' चेहरा है। मान लो कि अब हमें 'ख' आकृतिमें दिये गये चेहरे-की वक्र रेखाओंको खींचना है। तुम्हारे मनमें तत्क्षण वक्र रेखाओं और एक-सी ही वक्र, रेखाओंका ध्यान आना चाहिए। इस चित्र ८ की 'ख' आकृतिमें पहले मस्तक दिया गया है, फिर आँख और नाक, फिर ओठ

ठुड्डी और बादको पूरा चेहरा। यह चेहरा यद्यपि विचित्र है, मैं मानता हूँ, पर तो भी ऐसा चेहरा देखनेको बहुत मिल सकता है। मैं यह अनुरोध करता हूँ कि तुम ध्यान पूर्वक यह देखो कि प्रत्येक पृथक् अंगके लिये भी एक-सी ही क़लम चलायी गयी है।

'ग' चित्रकी ओर देखो। इसमें दृढ़ और गूढ़ चित्रणके लिए सब जगहोंपर सीधी और दृढ़ रेखायें काममें लायी गयी हैं।

'घ' चित्रमें बात और साफ है। क़लम हर जगह कैसी एकसी ही चली है। 'च' चित्रमें तो यह बात अर्थात् 'रेखाओंकी समन्वयता' इतनी स्पष्ट है कि इसका अधिक विवरण देना आपकी निरीक्षण-शक्तिको कुण्ठित मानना होगा। जैसा सदा होता है, ऐसी अवस्थाओंमें शब्दोंकी अपेक्षा चित्र स्वयं अपने भाव स्पष्ट प्रकट करनेमें अधिक समर्थ होते हैं।

अब मैं यह मान लूँगा कि तुमने इस पुस्तकको इस स्थलतक ख़ूब ही समझ लिया है और तुम भिन्न-भिन्न शिरोंकी आकृतियां खींचनेका अभ्यास भी कर रहे हो। बहुतसे नौसिखिये यह बड़ी ही भारी भूल करते हैं कि वे शिर थोड़ा-थोड़ा करके खींचना चाहते हैं। वे ऊपरसे आरंभ करते हैं, और सावधानीसे नीचेकी ओर बढ़ते हैं, ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं चित्र पूरा करते जाते हैं। प्रत्येक कलाकार जो जीवनसे आकृति खींचनेका आभ्यस्त है यह जानता है कि ऐसा करना कितना कठिन और अनुपयुक्त है। 'आकृति लेखन' वाली पुस्तकमें मैंने चित्र खींचनेकी सर्वोत्तम विधिका उल्लेख किया है।

संपूर्णका सामान्य विचार न केवल उपयोगी ही है, प्रत्युत सर्वथा आवश्यक भी है। कोई भी एक भाग सचाईसे तबतक नहीं खींचा जा सकता है जबतक संपूर्णको देख और समझ न लिया जाय। चित्र ९ में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है, कई बार दोहराया गया है, पर मैं समझता हूँ कि ऐसा करना सर्वथा उचित है क्योंकि किसी बातपर बल देनेकी सर्वोत्तम विधि दोहराना ही है। सबसे पहले शिर बिलकुल पूरा देखो और खींचो। कभी एक कारणके लिये भी किसी एक अंग या रेखामें जिसे तुम उस क्षण खींच रहे हो पूरी तरह तल्लीन न हो जाओ। अपने मानसिक नेत्रमें शिरके सामान्य भाव और शैलीको सदा विधमान रक्खो।
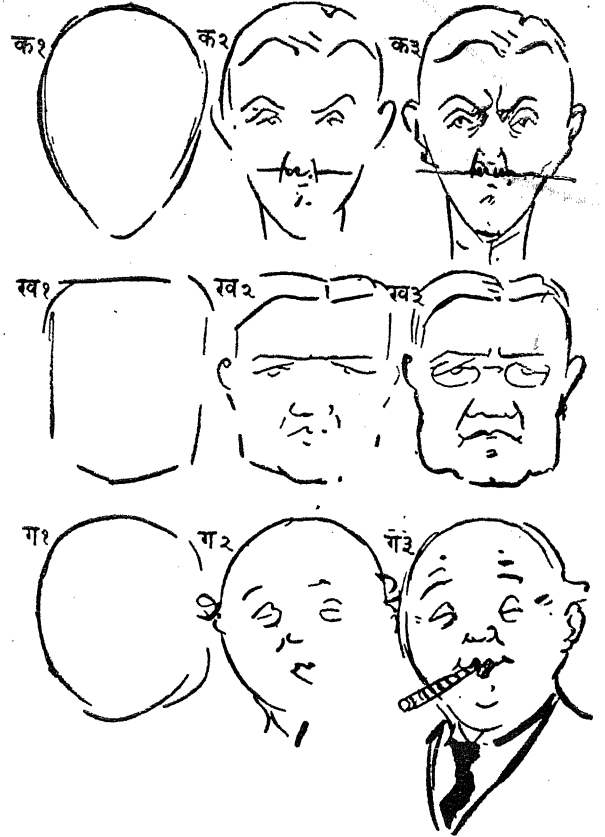
चित्र नं० ९

क१ चित्रको देखो। यह अंडेकी-सी आकृति है। शिरके संबन्धमें यह सबसे पहली भावना है जिसे तुम्हें खींचना चाहिए। अब शीघ्रतामें इसके अंगोंकी भावनाओंको व्यक्त कर डालो। सावधानी या शुद्ध चित्रणका प्रयास न करो यदि तुम यह समझते हो कि ऐसा करनेमें तुम्हारी तेज़ीमें बाधा पड़ती है। जितना ही तुम आंख या मूछ खींचनेमें अधिक बिलम्ब लगाओगे, उतनेमें ही तुम्हारे मस्तिष्कमेंसे शिरकी सामान्य भावना बिलुप्त हो जायगी। दर्शनिक शैलीमें खींचनेका प्रयत्न न करो।

यद्यपि हर बातमें यही शिक्षा दी जाती है कि जल्दबाज़ी न करना चाहिए, पर यहाँ मेरे इस आदेश-का तुम एक अपवाद समझो। सबसे पहले शीघ्रता लाओ क्योंकि शीघ्रतासे ही तुम अपने चित्रणमें सामान्य दृश्य अथवा प्रथम अनुभूति जिसका व्यक्त करना इतना आवश्यक है, ला सकोगे। किसी छोटीसी बातमें व्यस्त हो बड़ीसी बात भुलानेके लिये समय न हो। अवश्य ही ऊपरकी ये सब बातें उन्हींके लिये लिखी गयी हैं जो साधारणतया अच्छा चित्र खींच सकते हैं।

इस प्रकारके शीघ्र चित्रणमें रोबका लाना कठिन है। अभ्याससे तुम शीघ्र ही अपनी साधारण भाव-नाओंको इतनी शीघ्रता पूर्वक व्यक्त करने लगोगे कि पियानो बजानेवालेकी तरह तुम अपनी उंगलियोंको नहीं देखोगे; तुम्हारा नेत्र वस्तुकी छाप तुम्हारे मस्तिष्क पर लगा देगा और वह उंगलियोंको उसे पेंसिलसे कागज़ पर अंकित करने को प्रभावित करेगा। तुम्हें इस बातका विश्वास दिलानेके लिये कि यह सच है में प्रसिद्ध परिहास और व्यंग चित्रकार हैरी-फ़रनिसके संस्यणोंका हवाला देता हूँ जहां वह कहता है कि बहुधा मैं परिहासचित्र एक पैड पर अपनी कोटकी जेबमें खींचता था जिससे जिन स्थानोंमें ऐसा कार्य करना निषिद्ध था मैं देख न लिया जाऊँ।

मैं बिना उदाहरणोंके यह नहीं समझ सकता कि चेहरेकी अपेक्षा सिरके सम्बन्धमें तुम्हारी जो अनुभू-तियां हैं किस सिद्धान्तके आधारपर चित्रित की जायें। अतः मैं तुम्हारा ध्यान चित्र ९ की $क_2$ $ख_2$ और $ग_2$ आकृतियोंकी ओर जो जल्दीमें भद्दी खींच दी गई हैं, आकर्षित करना चाहता हूँ। पर मेरा विचार है कि तुम मुझसे सहमत होगे कि हरेकमें एक विशेष शैलीका चेहरा और शिर है। इनमेंसे हरेक आधारपर चाहे वह कितनी ही भद्दी तरह क्यों न खींचा गया हो, आगेके चित्र $क_3$ $ख_3$ और $ग_3$ आसानीसे खींचे जा सकते हैं। प्रत्येकमें तुम देखोगेकि सम्पूर्ण चेहरा बराबर मेरे मस्तिष्कमें था जब मैं चित्रण प्रारम्भ कर रहा था। इसके अतिरिक्त १ चित्रकी प्रधान शिक्षा इस बातमें भी है कि तुम्हें मालूम हो जायगा कि प्रारम्भिक चित्रणका लाभ और उसकी आवश्यकता क्या है। समाप्तपर तुम चाहे डायसन या खेन दिलकी भांति आकृति लेखक अथवा पारट्रिज या रीडके समान सावधान चित्रकार हो सकते हो।

लघुरिक्थ और उसका उपयोग

[ले०—पं० ओंकार नाथ शर्मा]

प्रस्तावना

लघुरिक्थ जिसे अँग्रेजी भाषामें लॉगरिथ्मस् कहते हैं, गणितकी एक बड़ी उपयोगी शाखा है जिसकी सहायतासे गणितकी बहुत-सी क्रियायें आश्च-र्य्यवत् सरल हो जाती हैं। उदाहरणके लिए लाखों और करोड़ोंकी राशियोंके गुणा और भाग, जिन्हें हल करनेमें मामूली गणित जाननेवाले घबराया और अलसाया करते हैं, इसके द्वारा साधारण जोड़ और बाकीमें क्रमशः परिवर्त्तित हो जाते हैं। किसी भी राशिका वर्ग अथवा घन करना या वर्गमूल अथवा घनमूल निकालना तो खेल हो जाता है। लघुरिक्थ गणितकी सहायतासे कई ऐसी क्रियायें, जिन्हें साधा-रण अंकगणितकी विधिसे हल करना बहुत कठिन होता है अथवा असम्भव होता है, बड़ी सरलतासे की जा सकती हैं। वैज्ञानिकों और यंत्रशास्त्रियोंकी तो इसके बिना गाड़ी बिल्कुल ही अटक जाती है।

इस लेखमें गणितकी इस उपयोगी शाखाका, जो बीजगणितसे अधिक सम्बन्ध रखती है, सैद्धान्तिक

विवेचन न कर-कर केवल उसके प्रयोगतक ही सीमित रहेंगे जिससे वे व्यक्ति जो उच्चगणितको नहीं जानते, फिर भी औद्योगिक क्षेत्रमें मिस्त्री अथवा यांत्रिक चित्रकार आदिका काम करनेके कारण रोजमर्रा उच्च गणितसे जिनका सावका पड़ता है इसे भली भांति सीख और समझकर उपयोगमें लाने लग जावें।

विषयप्रवेश

असली विषयपर आनेके पहिले, गणितकी "घात क्रिया" की कुछ परिभाषायें और सिद्धान्त समझना जरूरी है।

अंकगणितके विद्यार्थीयोंको मालूम है कि $२^२ = २ \times २ = ४$, और $२^३ = २ \times २ \times २ = ८$ उदाहरणों—में दाहिने हाथकी तरफ, २ के ऊपरको जो २ और ३ छोटे-छोटे अंक लिखे गये हैं उनका मतलब यह है कि जिन मूल अंकोंके ऊपर यह अंक लिखे गये उनको उतनी ही बेर आपसमें गुणा करना चाहिए इस छोटे अंकको "घात" कहते हैं और जिस अंकके ऊपर यह लिखा जाता है वह इसका आधार कहलाता है। इस प्रकार से—

$२^४$ का आशय है कि २ को ४ दफे आपसमें गुणा करो जैसे $२^४ = २ \times २ \times २ \times २ = १६$ यहाँपर २ तो आधार अंक है और ४ उसका घात अंक है, और १६ उसका मूल्य है। आगे चलकर पाठकोंको विदित होगा कि २ को आधार माननेपर ४, १६ का लघुरिक्थ कहलावेगा।

घातांकों द्वारा गुणा करना

हम जानते हैं कि $२^२ = २ \times २$

और $२^३ = २ \times २ \times २$

और यहांपर यह भी समझना सरल है कि $२^२ \times २^३ = (२ \times २) \times (२ \times २ \times २) = २^५$

या $२^२ \times २^३ = २^{२+३} = २^५$

यदि इस सिद्धान्तका विस्तार करकर देखा जाय तो हमें मालूम होगा कि:—

$$२^४ \times २^६ = (२ \times २ \times २ \times २) \times (२ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २) = २^{१०} = २^{४+६}$$

इसी प्रकारसे $३^२ \times ३^४ = ३^{२+४} = ३^६$

और $५^३ \times ५^३ = ५^{३+३} = ५^६$

इस प्रकारके उदाहरणोंपर विचार करनेसे हमें निम्नलिखित नियम मालूम हो जाता है जिसे बीजगणितमें हम घातांकोंका प्रथम नियम कहते हैं; यह इस प्रकार है:—

दो या अधिक राशियोंके गुणन-फलका लघुरिक्थ, उसी आधारमें उन राशियोंके लघुरिक्थोंके जोड़के बराबर होता है।

घातांकों द्वारा भाग देना

$$२^३ \div २^२ = \frac{२^३}{२^२} = \frac{२ \times २ \times २}{२ \times २} = २^{३-२} = २^१ = २$$

$$\text{और } २^६ \div २^४ = \frac{२^६}{२^४} = \frac{२ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २}{२ \times २ \times २ \times २} = २^{६-४} = २^२$$

$$\text{और } ४^५ \div ४^२ = \frac{४ \times ४ \times ४ \times ४ \times ४}{४ \times ४}$$

और $४^{५-२} = ४^३$

इन उदाहरणों और इसी प्रकारके अन्य उदाहरणोंपर विचार करनेसे हमें निम्नलिखित नियम जिसे बीजगणितमें हम घातांकोंका द्वितीय नियम कहते हैं मालूम हो जाता है। यह इस प्रकार है:—

किसी एक आधारकी दो राशियोंके भजन-फलका लघुरिक्थ उसी आधारमें उन राशियोंके लघुरिक्थोंके अन्तरके बराबर होता है।

घात क्रिया

यह तो जानते ही हैं कि

$$(२^३)^२ = (२ \times २ \times २)\ (२ \times २ \times २) = २^६ = २^{३ \times २}$$

$$\text{और फिर } (३)^४ = (३ \times ३ \times ३ \times ३)\ (३ \times ३ \times ३ \times ३)\ (३ \times ३ \times ३ \times ३) = ३^{१२} = ३^{४ \times ३}$$

इसी प्रकार $(३^{२} \times २^{२})^{३} =$

$(३ \times ३)^{3} \times (२ \times २)^{3} = (३ \times ३)(३ \times ३)$
$(३ \times ३) \times (२ \times २)(२ \times २)(२ \times २) =$

$३^{६} \times २^{६} = {}_{३}{}^{३ \times २\ \ ३ \times २} \times २$

इन उदाहरणों और इसी प्रकारके अन्य उदाहरणोंसे हम निम्नलिखित नतीजेपर पहुँचते हैं जिसे बीजगणितमें घातांकोंका तीसरा नियम कहते हैं :—

किसी आधारके द्वारा व्यक्तकी हुई किसी राशि घातका लघुरिक्थ, उसी आधारमें उस राशिके लघुरिक्थ और घातकी संख्याके गुणनफलके बराबर होता है।

घातांक भिन्न

यहांपर यह बता देना आवश्यक है कि घातांक सदैव पूर्ण संख्या नहीं हुआ करती। उदाहरणके लिये किसी संख्याका वर्गमूल हम तीन प्रकारसे व्यक्त कर सकते हैं, प्रथम तो उसके असली मान द्वारा, जैसे:— ४ का वर्गमूल = २

दूसरे, वर्गमूलके संकेत द्वारा, जैसे:—
४ का वर्गमूल $= \sqrt{४}$

तीसरे, बीजगणितकी रीत्यानुसार भिन्न घातांक द्वारा, जैसे:— ४ का वर्गमूल $= ४^{\frac{१}{२}}$

इसी प्रकारसे हम संख्याओंके घनमूलको भी व्यक्त कर सकते हैं, जैसे ८ का घनमूल $= \sqrt[३]{८} = ८^{\frac{१}{३}}$

इसी प्रकारसे १६ का चतुष्मूल $= \sqrt[४]{१६} = १६^{\frac{१}{४}}$

उपरोक्त तीनों उदाहरणोंका अंकगणतीय मान इस प्रकार होगा; यथा:—

$\sqrt{४} = ४^{\frac{१}{२}} = २$

$\sqrt[३]{८} = ८^{\frac{१}{३}} = २$

$\sqrt[४]{१६} = १६^{\frac{१}{४}} = २$

यहांपर कुछ उदाहरण देकर बताया जाता है कि घातांकोंके पूर्वोक्त तीन नियम जो पूर्ण संख्याके घातांकोंमें लागू होते हैं वे ही घातांक भिन्नोंमें भी लागू होते हैं यथा:—

(१):— $९^{\frac{१}{२}} \times ९^{\frac{१}{२}} = \sqrt{९} \times \sqrt{९} =$
$९^{\frac{१}{२} + \frac{१}{२}} = ९^{१} = ९$

(२):— $८^{\frac{१}{३}} \times ८^{\frac{१}{३}} \times ८^{\frac{१}{३}} = ८^{\frac{१}{३} + \frac{१}{३} + \frac{१}{३}} = ८$

(३):— $२५६^{\frac{१}{२}} \div २५६^{\frac{१}{४}}$
$= २५६^{\frac{१}{२} - \frac{१}{४}} = २५६^{\frac{१}{४}} = ४$

(४):— $४^{\frac{१}{२}} \times ४^{\frac{१}{३}} = ४^{\frac{१}{२} + \frac{१}{३}} = ४^{\frac{३+२}{६}} = ४^{\frac{५}{६}}$

इसका मतलब होता है पंचघातका षष्ठ मूल।

यहांपर यह ध्यान रखना चाहिये कि घातांककी भिन्नका हर सदैव मूलको व्यक्त करेगा।

यदि उपरोक्त चौथे उदाहरणमें गुणा करनेकी जगह दोनों राशियोंको भाग देदे तो $४^{\frac{१}{२}} \div ४^{\frac{१}{३}} =$

$४^{\frac{१}{२} - \frac{१}{३}} = ४^{\frac{३-२}{६}} = ४^{\frac{१}{६}} = \sqrt[६]{४}$ अर्थात् षष्ठ मूल

(५):— $८^{\frac{२}{३}} = \sqrt[३]{८^{२}} = \sqrt[३]{६४} = ४$

(६):— इसी प्रकार $१६^{१\cdot५} = १६^{\frac{३}{२}} = \sqrt{१६^{3}} =$
$\sqrt{४०९६} = ६४$

उपरोक्त उदाहरण तो बहुत सरल हैं, इस लिये उनका मान अंकगणितकी रीतिसे निकाल लेना आसान है, लेकिन जहां इनसे भी अजीब-अजीब राशियोंसे गणित करनी पड़ती है तब बिना लघुरिक्थ क्रियाके उनका मान जानना असम्भव हो जाता है।

दशक घात और साधारण लघुरिक्थ

ऊपरके उदाहरणोंमें हमने अपनी समझनेकी सुविधाके लिये २, ४, ८, ९, और १६ आदि कई राशियोंको आधार मान लिया था, लेकिन इस तरहसे तो सदैव काम नहीं चल सकता। नित्यके व्यवहारमें सब प्रकारकी क्रियायें करनेके लिये हमें एक ऐसा आधार मान लेना चाहिये जो सबसे

अधिक सुविधाजनक हो। इसलिये लघुरिक्थ गणितमें १० को ही इस प्रकारका आधार निश्चित कर दिया है, साधारण कामोंमें यही सबसे अधिक सुविधा-जनक पड़ता है। इसके कुछ उदाहरणोंकी हम यहां परीक्षा करेंगे।

हम जानते हैं कि $१००० = १० \times १० \times १० = १०^{३}$

$$१०० = १० \times १० \quad १०^{२}$$

$$१० = १०^{१}$$

$$१ = १०^{०}$$

$$\cdot१ = १०^{-१}$$

$$\cdot०१ = \frac{१}{१०^{२}} = \frac{१}{१००} = १०^{-२}$$

इस उदाहरणमें हम देखते हैं कि ऋण-घातांकोंका भी अर्थ होता है। दूसरी बात हम यह देखते हैं कि $१००० = १०^{३}$; अर्थात यह ३ की संख्या जिसे हम घातांक कहते हैं यह बताती है कि यदि हम १० को तीन बेर गुणा करें तो गुणनफल १००० हो जायगा अतः गणितकी भाषामें "३" १००० का लघुरिक्थ है, जिसे हम इस प्रकार लिख सकते हैं, यथाः—लघु० १००० = ३। इसी प्रकार ऊपरके उदाहरणसे मालूम होता है कि लघु० १०० = २, लघु० १० = १, लघु० ·१ = − १ और लघु ·०१ = − २

यह तो सब हुआ १००, १०००, १०००० आदि उन संख्याओंके लिये जो १० की घातसे बनी हैं, लेकिन जो संख्यायें इनके बीचकी हैं उनके लिये भी तो कुछ तरकीब होनी चाहिये।

यह तो स्पष्ट है कि, उदाहरणके लिये, १०० और १००० के बीचकी जितनी भी संख्यायें होंगी उनके घातांकका मान २ और ३ के बीचका होगा, अर्थात् उन सब की पूर्ण संख्या तो दो ही रहेगी लेकिन साथ ही में एक भिन्न भी रहेगी जो प्रत्येक संख्याके लिये अलहदा अलहदा होगी।

उदाहरणके लियेः—

$२३६ = १०^{२\cdot३७२९}$

और $५४७ = १०^{२\cdot७३८०}$

इसी प्रकार १० और १०० के बीचकी संख्याओं-के घातांकोंका मान १ से अधिक और २ से कम होगा, यथाः—

$२९ = १०^{१\cdot६२४}$

और $४२ = १०^{१\cdot६२३२}$

इस प्रकारके लघुरिक्थोंमें, उदाहरणके लिये, मान लीजिये १·६२३२ में पूर्ण संख्या "१" तो लघुरिक्थका "पूर्ण भाग" और दशमलववाला भाग "६२३२" "अपूर्ण भाग" कहलाता है जिन्हें अंग्रेजीमें क्रमशः कैरैक्टरिस्टिक और मैनटीसा कहते हैं।

किसी संख्याके लघुरिक्थका पूर्ण भाग जानना

यदि १० के आधारपर दिये हुए लघुरिक्थोंके पूर्वोक्त उदाहरणोंपर गौर किया जायगा तो किसी भी संख्याके लघुरिक्थके पूर्ण भागको निश्चय करनेकी विधि स्पष्ट हो जावेगी। वह विधि निम्नलिखित नियमोंमें समझाई गई है।

नियम १:—(क) कोई भी संख्या जो १ से बड़ी है, उसके लघुरिक्थका पूर्ण भाग सदैव धन होगा।

(ख) उस पूर्ण भागका मान, उसके पूर्णांकोंकी संख्यासे १ कम होगा।

उदाहरणके लिये:—हमें ४३७·५ का लघुरिक्थ मालूम करना है; इसमें ४, ३ और ७, तीन ही पूर्णांक हैं, अतः इसके लघुरिक्थके पूर्ण भागका मान ३ से १ कम अर्थात् २ होगा। इसी प्रकार ७६६७५१४ के लघुरिक्थमें पूर्ण भागका मान ६ होगा, क्योंकि इसमें ७ अंक हैं, इसी प्रकार और भी समझ लीजिये।

नियम २:—(क) कोई भी संख्या जो १ से कम है, उसके लघुरिक्थका पूर्ण भाग सदैव ऋण होगा

(ख) और उसका मान, दशमलव विन्दुके बाद जितनी भी शून्यें होंगी उनसे एक अधिक होगा।

उदाहरणके लिये:—·७८९ में, दशमलव

विन्दुके बाद एक भी शून्य नहीं है, इस लिये उसके लघुरिक्थका पूर्ण भाग—१ होगा।

'००७८९ में, दशमलव विन्दुके बाद २ विन्दु हैं, इसलिये उसके लघुरिक्थका पूर्ण भाग – ३ होगा।

लघुरिक्थका अपूर्ण भाग जानना

लघुरिक्थका अपूर्ण भाग वैसे तो शुद्ध बीजगणितके द्वारा मालूम किया जा सकता है लेकिन व्यवहारमें ऐसा करना सम्भव नहीं, इसलिये वह सारिणी द्वारा मालूम कर लिया जाता है।

लघुरिक्थ सारणीका उपयोग समझानेके पहिले हम यहाँ बतावेंगे कि किसी संख्याको १० से भाग देनेपर उसके लघुरिक्थमें क्या अन्तर पड़ता है।

हम जान सकते हैं कि लघु ८१०० ३· ९०८५

अर्थात् लघु '८१०० = +३· ९०८५

और लघु ८१० = +२. ९०८५

लघु ८१ = +१· ९०८५

लघु ८·१ = +०· ९०८५

लघु ०·८१ = – १ + ९०८५ = – ०·०९१५

लघु ०·०८१ – २ + ९०८५ , – १·०९१५

इसी रीतिसे लघु ०·००८१ = – २·०९१५

लघु ०·२०००८१ = – ३·०९१५

यह भी सबको मालूम है कि उपरोक्त उदाहरणकी संख्याओंमें केवल ८१ ही अर्थसूचक अंक हैं। ऊपरके उदाहरणसे हमें यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जिन संख्याओंमें उपरोक्त अंक मौजूद हैं और उनका मान एकसे अधिक है उनके लघुरिक्थका अपूर्ण भाग कुछ है और जिनका मान एक से कम है उनका अपूर्ण भाग कुछ और ही है।

इससे यह मतलब निकलता है कि एकसे अधिक और कम संख्याओंके लघुरिक्थके अपूर्ण भागको जाननेके लिये हमें अलहदा अलहदा विधियोंका आश्रय लेना होगा, लेकिन व्यवहारमें यह बात नहीं है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिये हम लघुरिक्थके पूर्ण भागको आवश्यकता होनेपर "ऋण" रहने देते हैं और अपूर्ण भागको सदैव "धन" ही रखते हैं। ऐसी हालतमें ऋणका चिह्न पूर्ण भागके बगलमें पहिले, न लगाकर उसके ऊपर लगाते हैं, यथाः—$\bar{१}$, $\bar{२}$ $\bar{३}$ इत्यादि जिसका यह आशय होता है कि केवल पूर्ण ही ऋण है और अपूर्ण भाग धन है।

इस सिद्धान्तके अनुसार उपरोक्त उदाहरणके एकसे कम संख्याके लघुरिक्थ इस प्रकार लिखे जावेंगे।

लघु ८·१ = ०· ९०८५

लघु ०·८१ = $\bar{१}$· ९०८५

लघु ०·०८१ = $\bar{२}$· ९०८५

लघु ०·००८१ = $\bar{३}$· ९०८४

लघु ०·०००८१ $\bar{४}$· ९०८४

इसलिये व्यवहारमें निम्नलिखित नियम याद रखने चाहियेः—

१—समान सार्थक अंकोंवाली संख्याओंके लघुरिक्थोंके अपूर्ण भाग एक समान ही होते हैं, चाहे संख्या एकसे अधिक हो अथवा कम जिससेकि एक ही सारिणीका सब जगह उपयोग हो सके।

२—लघुरिक्थोंके सब अपूर्ण भाग सदैव

वैज्ञानिक जगत के ताज़े समाचार

गुम्बजपरसे बच्चोंका पैरेच्यूट (एक प्रकारकी छतरी) द्वारा कूदाना

मास्कोमें एक बच्चोंके पार्कमें एक गुम्बज है जिसपर चढ़कर बच्चे पैरेच्यूट पकड़कर कूद पड़ते हैं। पहिले थोड़ी दूर फिसलकर फिर ज़मीनकी ओर धीरे-धीरे गिरने लगते हैं। गुम्बज करीब १२ फुट ऊँची होती है और बच्चोंके मनोरंजनकी एक सामग्री है। इससे पार्ककी शोभा बहुत कुछ बढ़ जाती है।

दियासलाइयोंको पेरेफीनसे सूखा रखना

दियासलाईको सूखा रखनेका सहल उपाय यह है कि दियासलाईके बक्सको ऊपरसे खोलो; दियासलाइयाँ बक्समें ही रहें। फिर ऊपरसे गरम पिघलाहुआ पैरेफीन डालो जो बक्समें चारों ओर फैल जाय और जब वह ठंढा होनेपर कड़ा हो चले तो दियासलाइयों-को दबाते जाओ। इससे सब दियासलाइयाँ एक दूसरेसे चिपक जायँगी। अब, डिब्बेके बाहर निकाल लो और आवश्यकता पड़नेपर चाकूके फल द्वारा एक-एक छुड़ालो। ध्यान रहे कि पैरेफीन बहुत गरम न हो नहीं तो दियासलाई जल उठेगीं।

खिड़कीपर चैक भुनाते हुए मनुष्यका फोटो

बैंकमें खिड़कीपर चैकका रुपया लेनेवाले जिस मनुष्यपर भी संदेह होता है या चैक झूँठा और जाली होनेकी सम्भावना होती है उसका फोटो कोषाध्यक्ष पैरसे १ बटन दबाकर ले लेता है। खिड़कीके ऊपर उपयुक्त स्थितिमें एक कैमेरा लगा रहता है जो सामान्यतया किसीको दिखाई नहीं देता और जिसमें खिड़कीपर खड़े मनुष्यका ठीक फोकस आ जाय अन्दर फर्शपर एक बटनके दबाते ही फोटो आ जाता है। इस विधिसे हिसाब लगानेमें और जाली चैकवाले का पता लगानेमें बड़ी सुविधा होती है।

ऐसे रंग जिनमें डिज़ाइनें आप से-आप बन जाती हैं

हाल ही में ऐसे रंग तैयार हुए हैं जिनको खिड़-कियोंके शीशे आदिपर फेर देनेसे ही शीशेपर सुन्दर रंगीन डिज़ाइनें बन जाती हैं। इससे सजावटके काममें बड़ी सुविधा होती है। ये रंग अर्धं पारदर्शक होते हैं और वार्निशकी तरह बहते हैं। लेकिन ब्रुशसे फेर देनेके २० मिनट बाद ही ये सूख जाते हैं और इनकी प्राकृतिक दृश्य आदि जैसी सुन्दर डिज़ाइनें बन जाती हैं। ये रंग लाल, नीले, हरे, पीले सभी तरहके मिलते हैं और किताबकी जिल्दको, लैम्प-शेड फूलके गमले आदिको सजानेमें बड़े सहायक होते हैं

दाँतोंके दोषोंका पारेकी वाष्पके लट्टू में प्रत्यक्ष दीखना

पारेकी वाष्पके लैम्पके हरे-से प्रकाशमें अस्वस्थ दाँत और रोगी मुँहकी नसें प्रत्यक्ष दीख पड़ती हैं। कुछ दाँत-विशेषज्ञ इस प्रकारके लैम्पको साधारण बिजलीके लट्टू या सूर्यके प्रकाशकी अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं ऐसी रोशनीमें स्वस्थ दाँत कुछ अधिक सफ़ेद दीखते हैं। और वे कुछ चमकते हैं। दाँतोंपर झिल्ली हो या कोई और खराबी हो तो वे इस रोशनीमें चमकते नहीं।

तसवीरें जड़नेके लिए रद्दी किये हुए नेगेटिवोंका प्रयोग

फोटोकी पुरानी नेगेटिव प्लेटोंको फेंक देनेके बजाय वे तसवीरें दस्तावेज़, या डाकखानेकी टिकटें मढ़नेके काममें आ सकती हैं। पहिले नेगेटिवको गरम पानीमें डुबोकर उसपरका एमलशन मुलायम पड़ जाता है और आसानीसे खुरचा जा सकता है। ऐसे दो शीशोंके बीचमें मढ़े जानेवाली वस्तुको रखकर उन्हें किनारोंपर लैंटर्न स्लाइडके सस्ते फीतेसे बाँधा जा सकता है। एक सादी कागजवाली क्लिप फीतेपर लगाकर तसवीर दीवारपर टाँगनेकी व्यवस्था हो जाती है इन दो शीशोंकी तरकीबका विशेष लाभ यह है कि तसवीरके पृष्ठपरका विवेचन सुगमता पूर्वक पढ़ा जा सकता है।

कागजके बेलन द्वारा रेशमपर तरल फेरना

अगर रेशम या किसी और मुलायम रेशेपरसे धब्बे छुड़ानेके लिए किसी विशेष तरल पदार्थका प्रयोग करना हो तो वह तरल कागजके बने बेलनसे कपड़ेके गूदेकी अपेक्षा बढ़िया लगता है। केवल यही नहीं कि कागजकी लुबदीसे लगानेमें रेशोंको कोई हानि नहीं पहुँचती लेकिन साथ-साथ भीगे कागजसे वस्त्रपरके धब्बेका वाह्य तत्व आसानीसे उभर आता है। रेशे जब सूख जायँ तो उनपर चिपके हुए कागजके कण ब्रुशसे साफ किये जा सकते हैं।

मोम चुपड़कर फल और तरकारियोंको ताज़ा बनाये रखना

मोमकी एक पतली तह लगा देनेसे पेड़के पके फल और तरकारियाँ ताज़े बने रहते हैं। यह विधि इतनी सच्ची है कि अनेकों अवसरोंपर जहाज़वालोंको उन्हें ठंडकके कमरेमें रेफ्रीजरेटरमें रखनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि फलों और तरकारियोंके छिलकेमें होकर श्वासोच्छ्वाससे फंगस कीटाणु नष्ट हो जाता है और पेड़परसे या मिट्टीमें से ली हुई तरकारियों और फलोंपर ताज़ी हालतमें मोम चुपड़कर जिससे हवा अन्दर न घुस सके, वे सड़नेसे बचाये जा सकते हैं। मोमके कारण कीटाणु नहीं पड़ने पाते और ये ही सेबोंके सड़नेके मुख्य कारण हैं। इस क्रियासे फल तिगुने समयतक ताज़े बने रहते हैं।

गृह-निर्माण

(१) पृष्ठ ९७ पर प्राचीन ढंगके दो मकानोंका नक्शा दिया गया है। यह अत्यन्त प्राचीन संस्कृत पुस्तक 'मानसर' के अनुसार बनाये गये हैं। कोठरियों के नाप अंदाजसे रख दिये गये हैं। आँगन भी अंदाज से ही खींचा गया है। यदि आँगन इससे बड़े बनाये जायँ तो अच्छा होगा।

(२) पृष्ठ ९८ पर बाईं ओर एक देशी ढंगका बंगला दिखलाया गया है। दाहिनी ओर बँगलेके चारों तरफ़वाले ज़मीनका क्या इन्तज़ाम करना चाहिये यह दिखलाया गया गया है। यह वस्तुतः पृष्ठ १०० पर दिखलाये गये मकानका अहाता है। एक कोनेमें नौकरोंके रहनेकी जगह और उसके साथ मोटरखाना भी है। मकानकी बगलमें जो हौज है उसमें लाल मछलियाँ पाली जा सकती हैं और इससे बागका सौन्दर्य बहुत बढ़ जाता है। सामनेकी हरियाली अच्छी जान पड़ती है और इसके एक कोनेमें पेड़ लगा है जिसके नीचे गरमी में बैठनेमें बड़ा आनन्द आता है।

(३) पृष्ठ ९९ पर एक ऐसा बँगला दिखलाया गया है जिसकी बरसाती कोनेपर लगी है। ऐसे मकान उन स्थितियोंमें बड़े भले जान पड़ते हैं जहाँ बँगलेके दोनों ओर सड़कें हैं। (नोटः—चित्रमें मकानके चित्रसे नक़्शा कुछ बड़े पैमानेपर बन गया है। दोनोंका मिलान करते समय इसका ख्याल रखना चाहिये)

(४) पृष्ठ १०० पर एक दो-मंजिला बँगला दिखलाया गया है। इसमें खास बात है कि यह बहुत हवादार है। बैठकमें बैठनेसे आँगन नहीं दिखलाई पड़ता जिससे बड़ी सुविधा होती है। सीढ़ीके नीचे आने-जानेका रास्ता है इसलिये लोग बाहरी बरामदेसे आँगनमें भीतरी कोठरियोंमें बिना बैठक या किसी दूसरी कोठरीसे गुजरे पहुँच सकते हैं।

(५) पृष्ठ १०१ में एक छोटा-सा बँगला दिखलाया गया है। इसमें केवल चार कोठरियाँ हैं जिनमेंसे एक रसोई-घर है। रसोई-घरमें ही एक कोनेमें भोजनके लिये मेज़ और बेंच लगे हैं। पाखाना शयनगृहसे सटा हुआ है। इसलिये यह आवश्यक है कि पाखाना बहानेवाला हो और इसका मिलान या तो सरकारी नालेसे हो या सेप्टिक टैंक बना हो। अलमारियाँ वस्तुतः छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं।

यह बँगला अंग्रेजी ढंगका है। परन्तु यदि आँगन घेर लिया जाय और पाखाना दूर बनवा दिया जाय तो यही हिन्दुस्तानी ढंगका बँगला हो जायगा। यदि रसोईं-घर भी कुछ दूर बनाया जाय तो मकानोंमें धुआँ जानेका कोई डर न रहेगा। परन्तु यदि चिमनी क़ायदेसे बनाई जाय तो धुआँ होनेका बहुत कम डर रहता है। यदि लकड़ी जलानेमें चिमनीकी भीतरी नाप क़रीब-क़रीब ३ फुट × ५ फुट हो तो इसे मकानसे बहुत ऊँचा उठानेकी आवश्यकता नहीं है। नकशेमें बहुत छोटी चिमनी दिखलाई गई है क्योंकि यह नक़्शा इस ख्यालसे बनाया गया था कि पत्थरका कोयला जलाया जायगा।

(६) पृष्ठ १०२ पर दो-मंजिला अँग्रेजी ढंगका

बँगला दिखलाया गया है। ऐसे बँगलेके एक तरफ़ आँगन घेर लेनेसे और पाखाना, रसोई-घर दूर बनवानेसे यह हिन्दुस्तानी ढंगका बँगला हो जायगा।

(७) पृष्ठ १०३ पर एक और विदेशी ढंगका बँगला दिखलाया गया है। इसमें खास बात यह है कि मोटर-खाना घरसे सटा हुआ ही है जिससे उन लोगोंको बड़ी सुविधा होती है जो अपनी मोटर खुद चलाते हैं।

(८) पृष्ठ १०४ पर बाईं ओर मोटरखाना दिखलाया गया है। मोटरखानोंके बीचमें ३ फुट चौड़ा करीब १२ फुट लम्बा और ४ फुट गहरा गड्ढा बना रहता है जिसकी दीवारें पक्की रहती हैं। गाड़ीकी मरम्मत नीचेसे करनेमें इस गड्ढेसे बड़ी मदद मिलती है। इस गड्ढेमें जानेके लिये एक ओर सीढ़ी बनी रहती है। यदि ड्राइवर होशियार न हो तो गड्ढेके ऊपर सरासर काठका पटरा रखना चाहिये या गड्ढेको सिर्फ २ फुट × २½ फुट चौड़ा बनाना चाहिये।

दाहिनी ओर नौकरोंके घरका एक नमूना दिखलाया गया है जिसके साथमें मोटरखाना भी है। पृष्ठ १०० पर दिखलाये गये बँगलेके साथमें ऐसा नौकरोंका घर बना है। प्रत्येक कोठरीमें ६½ फुटकी ऊँचाई तक ३ फुट चौड़ा टाँड ईंट और सीमेंटसे बना है जिसकी लम्बाई कोठरीकी चौड़ाईकी बराबर है अर्थात् ८ फुट है। इसपर नौकर लोग अपना सामान रखते हैं और इससे कोठरीमें जगह काफ़ी बढ़ जाती है। प्रत्येक १० फुट लम्बी दीवारमें दो-दो खुली अलमारियाँ बना दी गई हैं (नक़शेमें यह नहीं दिखाया गया है)।

हमारे कवरका चित्र

(ले० श्री राधेलाल)

आप कवर पर रेलगाड़ीका एक चित्र देखते हैं। इस क्रान्तिके युगमें रेलगाड़ियोंकी बनावट, चाल-ढाल इत्यादिमें भी आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए हैं। अब गाड़ियाँ एक सिरेसे दूसरे सिरे तक सपाट बनाई गई हैं। इनके बनानेमें लोहेकी चादरकी जगह अब ऐलुमिनियमकी चादरका प्रयोग किया जाता है। ये गाड़ियां बहुत ही सुन्दर और दूरसे तो एक सिंगार-सी मालूम पड़ती हैं।

चिमनी गुम्बज (डोम) कैब आदिकी अब आवश्यकता नहीं रही। नई चालके इंजनोंमेंसे ऐसे झंझट अलग कर दिये गये हैं जिससे अब इंजनोंकी उपयोगता भी बढ़ गई है और वे पहले से अधिक सुन्दर भी दीख पड़ते हैं। नवीन इंजन भापसे नहीं चलता। इसको चलानेके लिये एक बहुत ही सस्ते मिट्टीके तेलसे काम चल जाता है और इंजनकी गति बहुत तेज़ होती है। नये ढंगके इंजन आठ आठ सौ घोड़ोंकी शक्तिके होते हैं और प्रति घंटा १२० मील की गतिसे चल सकते हैं। इनकी उपयोगिताको देखते हुए ये भापसे चलने वाले इंजनोंसे बहुत सस्तेमें चलते हैं। इन डीज़ल इंजनमें गुण ये है कि जब इनकी गति बहुत बढ़ जाती है तभी यह अपनी पूरी शक्तिसे काम देती हैं, इस कारण इसको स्टार्ट करने में कुछ कठिनाई पड़ती है। पर अबतो यह कठिनाई भी दूर हो चुकी है। अब साथमें एक बिजलीका इंजन भी लगा देते हैं। स्टार्ट करनेके लिए प्रयोगमें लाया जाता है। स्टार्ट होने पर डीज़ल इंजन भापके इंजन के मुकाबलेमें कहीं अच्छा काम देता है। इस दोहरे इंजनका नाम डीज़ल एलेक्ट्रिक इंजन है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग

प्राचीन ढंग के दो मकान ~
अत्यंत प्राचीन पुस्तक 'मानसार' के अनुसार (लगभग संवत १)
कोठरी
६'x९'
१४'x९'
१३'x९'
दालान
आँगन
१३'x९'
१३'x९'
दालान
स्वास्तिकाकार गृह
१३'x९'
बैठक २१'x९'
१३x९'
चबूतरा
दालान ८'
कोठरी
८'x१८'
कोठरी
दालान ८'
अतिथि
८'x१८'
आँगन
८'x१८'
पूजा घर
दालान
कोठरी
८'x१८'
कोठरी
दालान
चबूतरा

पैखाना
५'x३'
५'x३'
आँगन
२२'x३२'
बरामदा ६' चौड़ा
७'x८'
गुसल
७'x८'
भंडार
८'x१०'
रसोई
८'x८'
बरामदा
२०'x८'
८'x८'
१२'x१४'
शयनागार
१२'x१४'
बैठक
१२'x१४'
भोजनागार
८'x८'
अध्ययन
बरामदा
८'x८'
अतिथि

देशी ढंग का बँगला ~

कुआँ
फल
नौकरों का घर और मोटरखाना
हौज़
बैडमिंटन कोर्ट
तरकारी
नीम
हरियाली (लॉन)

बाग ~

शयन
१८x१४
पैखाना
गुसल
६'x९'
भंडार
१२'x१०'
रसोई
१३'x१०'
६'x८'
६'x८'
८'x८'
लड़के
१०'x१२'
बरामदा
३३'x१२'
आँगन ३०'x३३'
भोजन
१५'x२०'
९'
बरामदा
कपड़ा
१०'x७'
गुसल
८'x७'
पैखाना
बैठक
२१'x१६'
शयन
१८'x१६'
चबूतरा
अध्ययन
१५'x१२
बरामदा
बरसाती
१५'x१५'

बँगला

दोमंज़िला
बँगला ~
भाग कखगघ दो मंज़िला है। शयनगृह और अध्ययन-कक्ष ऊपर हैं।
पैखाना
गो-दाम
गुसल
गुसल
पैखाना
गुसल-खाना
रास्ता
भंडार ८'x९'
आँगन २४'x३०'
रसोई ८'x १६'
सीढ़ी के नीचे रास्ता
बरामदा ९'x२४'
ग
घ
बरामदा २०'x१०'
बैठक २०'x१४'
ऊपर
भोजन १४'x१५'
फोटो ८x७
गुसल ८x७
१२'x१६' लड़कों का अध्ययन
बरामदा १०'x३०'
अतिथि १२'x१६'
क
ख

शयनगृह
११'×१२'

नीचे
लकड़ी रखने का
तहखाना

रसोई
९'×९½'

अलमारी

अलमारी

अलमारी

स्नान

पैखाना

हाथ धोने को

बैठक
१३'×१७'

शयनगृह
११'×१२'

अलमारी

अलमारी

बरामदा
१०'×१४'
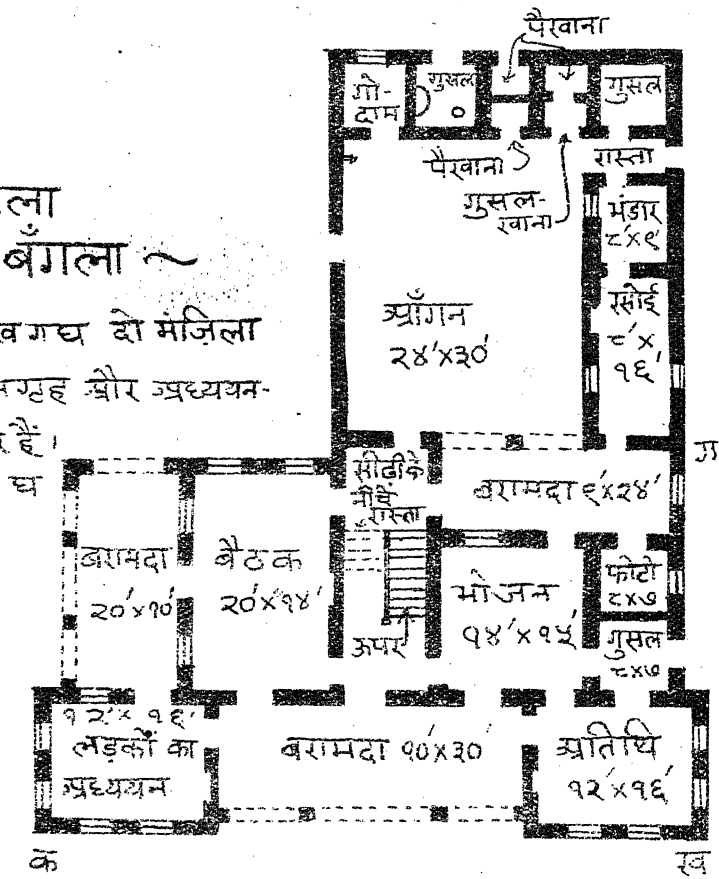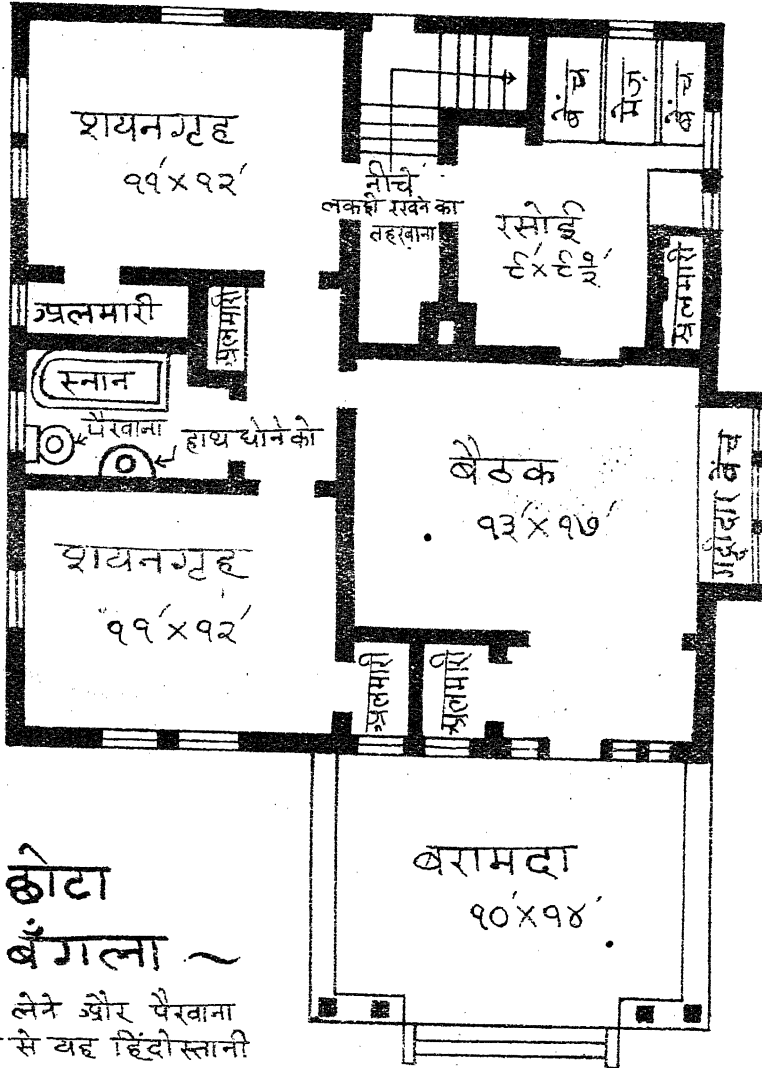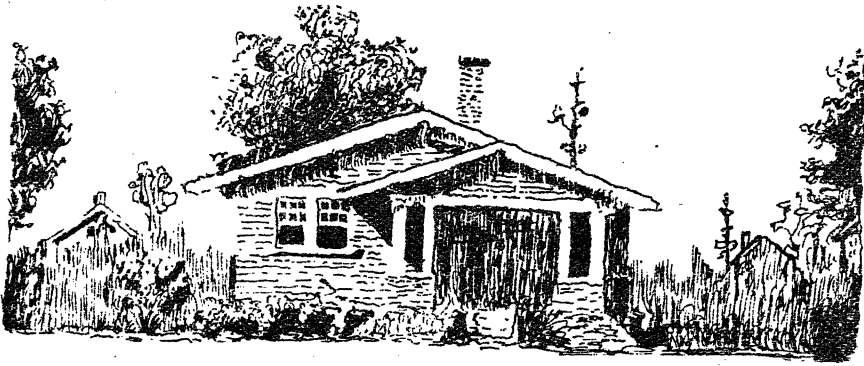
छोटा बँगला ~

आँगन घेर लेने और पैखाना दूर बनवाने से यह हिंदोस्तानी ढंग का हो जायगा ~

बड़े परिवार के लिये बँगला —

खुली छत
बच्चों के लिये ७½'×९½'
कोठे का नकशा
शयन-गृह १२'×१४½'
अलमारी
अलमारी
सोने के लिये बरामदा १२'×१०'
नीचे को
पैखाना
शयन गृह १२'×१२'
नीचे का
बरामदा
बैठक १२'×२३'
बरामदा या मोटरखाना १०'×२०'
रास्ता
भंडार
अलमारी
रसोई ९'×१२'
चूल्हा
विदेशी ढंग का बँगला ~

सौर-परिवार

लेखक—डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) } **मूल्य १२)**

इस पुस्तकको काशी-नागरी-प्रचारिणी सभासे रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

घर बैठे

फ़ोटोग्राफ़ी

सीखिये

बहुत सरल रीति—पहलेसे फ़ोटोग्राफ़ी जाननेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है—हिन्दीका साधारण ज्ञान काफ़ी है—आरम्भसे ही शर्तिया अच्छे फ़ोटो उतरेंगे—सैकड़ों नौसिखिये इसके साक्षी हैं—फ़ोटोग्राफ़ीमें धन है—व्यवसायी फ़ोटोग्राफ़रोंके अतिरिक्त फ़ोटोग्राफ़ी-प्रेमी भी धन कमा सकते हैं—मासिक पत्रिकायें और दैनिक पत्र अच्छे फ़ोटोके लिये बहुत दाम देते हैं।

लेखक—डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०
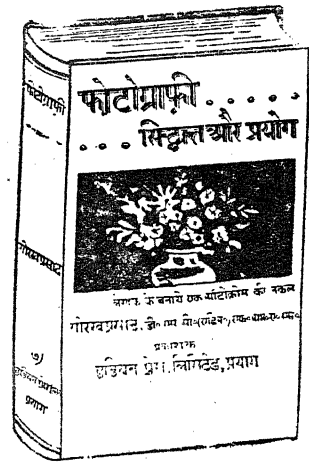
इसमें निम्नलिखित-जैसे अनेक विषयोंका ब्योरेवार और सचित्र विवरण है :—

नेगेटिवोंको गाढ़ा या फीका करना; पत्र-पत्रिकाओंके लिये फ़ोटोग्राफ़ी; तुरंत-तैयार पोस्ट-कार्ड चित्र; फ़ोटोग्राफ़ी-संबंधी सब नुसखे; कनवस या रेशमपर छापना; रि-टचिंग; बनाना; फ़िनिश करना; मनुष्य-चित्रण; स्टूडियो; नक़ल करना; लैंटर्न स्लाइड बनाने वाला परदा बनाना; बिजलीकी रोशनीसे फ़ोटो; रंगीन फ़ोटोग्राफ़ी; ऑटोक्रोम (८० चित्रोंसहित); इत्यादि।

८०५ पृष्ठ, ४८० चित्र (जिसमें २ रंगीन हैं); कपड़ेकी सुन्दर जिल्द; चित्ताकर्षक रंगीन कवर।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे इस पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पा

'अँग्रेजीमें भी इसकी समानताकी पोथियाँ बहुत कम

वि

स्वास्थ्य और रोग

लेखक—डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा,

बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम० (लिवरपूल), ए० एम० (डबलिन),
एफ़० आर० एफ़० पी० एस० (ग्लासगो), सिविल सरजन

भोजन—हैजा—टायफ़ौइड—क्षय रोग—चेचक—डिफ्थीरिया—मलेरिया—डेंगू—प्लेग-टाइफ़स—खुजली—कुष्ठ—पैदाइशी रोग—कैंसर—मूढ़ता—मोटापन—दिनचर्या—जलोदर—व्यायाम—मस्तिष्क और उसके रोग—पागल कुत्ता—बिच्छू—साँप—स्त्रियों और पुरुषोंके विशेष रोग—सन्तानोत्पत्ति-निग्रह, इत्यादि-इत्यादिपर विशद व्याख्या तथा रोगोंकी घरेलू चिकित्सा।

९३४ पृष्ठ; ४०७ चित्र, जिनमें १० रंगीन हैं; सुन्दर जिल्द। — **मूल्य ६)**

इसी लेखककी दूसरी पुस्तक

हमारे शरीरकी रचना

१००० पृष्ठ, ४६० चित्र, सुन्दर जिल्द } मूल्य ७)

इस पुस्तकको जनताने इतना पसन्द किया है कि इसके प्रथम भागकी पाँचवीं आवृत्ति और द्वितीयकी चौथी आवृत्ति छापनी पड़ी। आप भी एक अपने घरमें अवश्य रक्खें। दोनों भाग अलग भी मिलते हैं, प्रथम भाग २॥), द्वितीय भाग ४॥)

क्षय-रोग

लेखक—डा० शङ्करलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस०

"इस पुस्तकमें क्षय-रोग सम्बन्धी आधुनिक खोजों तथा नई-से-नई बातोंका समावेश है।" —डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा "इस पुस्तकको प्रत्येक पढ़े-लिखे देश-हित-चिन्तक स्त्री-पुरुषको पढ़ना चाहिये।"—कविराज श्री प्रतापसिंह

बड़ा (रायल) आकार, ४३२ पृष्ठ, ११५ चित्र, सुन्दर जिल्द, मूल्य ६)

प्रसूति-शास्त्र

लेखक—डा० प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस०

बड़ा (डेमाई) आकार; चिकना मोटा कागज; १५८ पृष्ठ, सुन्दर जिल्द
केवल ११ प्रतियाँ अब बच गई हैं (अक्टूबर १९३७)। कागज कुछ पीला पड़ जानेके कारण

मूल्य ३) से घटाकर केवल २) कर दिया गया है

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

महत्वपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य

मिलनेका पता — विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद

विज्ञान हस्तामलक-विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०, ६)

सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा-वैज्ञानिक कहानी—ले०श्री नवनिद्धिराय, एम०ए०, ~)।

वैज्ञानिक परिमाण-नापकी एकाइयाँ, ग्रहोंकी दूरी आदि, देशोंके अक्षांश, तत्वोंका परिमाण, घनत्व आदि, पदार्थोंके घनत्व, उनकी तनाव शक्तियाँ, स्निग्धता तथा द्रवांक, शब्द संबंधी अनेक परिमाण, दर्पण बनानेकी रीति, वस्तुओंकी वैद्युत बाधायें, बैटरियोंकी विद्युत-संचालक शक्तियाँ, इत्यादि-इत्यादि अनेक बातें तथा चार दशमलव अंकों तक संपूर्ण लघुरिक्थ सारिणी— ले० डा० निहालकरण सेठी, डी० एस-सी०, तथा डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० ।।।)

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द-४८२१ अँग्रेजी शब्दोंके हिन्दी पारिभाषिक शब्द—शरीर-विज्ञान ११८४, वनस्पति-विज्ञान २८८, तत्व ८६, अकार्बनिक रसायन ३२०, भौतिक रसायन ४८१, कार्बनिक रसायन १४४६, भौतिक विज्ञान १०१६—ले० डा० सत्यप्रकाश डी० एस्-सी० ।।)

विज्ञान प्रवेशिका--विज्ञानकी प्रारंभिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन, मिडिल स्कूलोंमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक ।)

मिफ़ताह-उलफ़नून—विज्ञान प्रवेशिकाका उर्दू अनुवाद—ले० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम० ए० ।)

आविष्कार-विज्ञान—उन शक्तियोंका वर्णन जिनकी सहायतासे मनुष्य अपना ज्ञान-भंडार स्वतंत्र रूपसे बढ़ा सके—ले० श्री उदय-भानु शर्मा । पूर्वार्ध ।।=)
उत्तरार्ध ।।।)

विज्ञान और आविष्कार— एक्स-रेज़, रेडियम, भूपृष्ठशास्त्र, सृष्टि, वायुयान, विकाशवाद, ज्योतिष आदि विषयोंका रोचक वर्णन और इतिहास—ले० श्री सुखसम्पति-राय भंडारी १=)

मनोरंजक रसायन—इसमें रसायन-विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० १।)

रसायन इतिहास—रसायन इतिहासके संबंधमें १२ लेख—ले० श्री आत्माराम, एम० एस-सी० ।।।)

प्रकाश-रसायन— प्रकाशसे रासायनिक क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है—ले० श्री वि० वि० भागवत १।)

दियासलाई और फ़ॉस्फ़ोरस-सबके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम० ए० ~)

ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव, एम० एस्-सी, चतुर्थ संस्करण ।।=)

हरारत—तापका उर्दू अनुवाद—ले० प्रो० मेंहदीहुसेन नासिरी, एम० ए०, ।)

चुम्बक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य-पुस्तक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम० एस्-सी० ।=)

पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्य—ले० श्री सालिग्राम वर्मा, एम० ए०, बी० एस-सी० ~)

जीनत वहश व तयर-पशुपक्षियोंका शृङ्गार-रहस्यंका उर्दू अनुवाद—अनु० प्रो० मेंहदी-हुसेन नासिरी, एम० ए० ~)

चींटी और दीमक—सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य अत्यंत रोचक पुस्तक—ले० श्री लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अवस्थी ।।।)

सूर्य-सिद्धान्त— विस्तृत ब्योरा अन्यत्र देखें—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल० टी०, विशारद ५)

सृष्टिकी कथा—सृष्टिके विकासका पूरा वर्णन —ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० १)

सौर-परिवार—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० १२)

समीकरण-मीमांसा—एम० ए० गणितके विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।)
दूसरा भाग ।।=)

निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० गोपालकेशव गर्दे, एम० ए० और श्री गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी० एस-सी० ।।)

बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा-गणित—एफ० ए० गणितके विद्यार्थियोंके लिये-ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी० १।)

क्षय-रोग—क्षय-रोगसे बचनेके उपाय—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० ~)

क्षय-रोग—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये ले० डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी० बी० एस० ६)

शिक्षितोंका स्वास्थ्य-व्यतिक्रम—पढ़े-लिखे लोगोंको जो बीमारियाँ अक्सर होती हैं उनसे बचने और अच्छे होनेके उपाय—ले० श्री गोपालनारायण सेनसिंह, बी० ए०, एल० टी० ।)

ज्वर, निदान और शुश्रूषा-सर्व-साधारण-के पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस० ~)

स्वास्थ्य और रोग--विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ६)

हमारे शरीरकी रचना—विस्तृत विवरण अन्य देखें—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा,
प्रथम भाग २।।।=)
द्वितीय भाग ४=)

स्वास्थ्य-विज्ञान—गृहनिर्माण, वायु, जल, भोजन, स्वच्छता, कीटाणु, छूतवाले रोग, स्वास्थ्य आदि पर सरल भाषामें विशद तथा उपयोगी विवेचन—ले० कैप्टेन, डा० रामप्रसाद तिवारी, हेल्थ ऑफिसर, रीवाँ राज्य । ३)

स्वस्थ शरीर—प्रथम खंड—मनुष्यके अस्थि-पंजर, नस, नाड़ियाँ, रक्ताणु, फुफ्फुस, वृक्क, पेट, शुक्राशय आदिका सरल वृत्तांत और स्वास्थ्य-रक्षाके नियम । दूसरा खंड—व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय—ले० डा० सरजूप्रसाद तिवारी, और पं० रामेश्वर-प्रसाद पाण्डेय, प्रथम खंड २)
द्वितीय खंड २।)

आसव विज्ञान—वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक-ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

मन्थर ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा — वैद्योंके बड़े कामकी पुस्तक—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

त्रिदोष मीमांसा — यह पुस्तक मुख्यतया वैद्योंके कामकी है, किन्तु साधारण जन भी विषय ज्ञानके नाते इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं—ले० स्वामी हरिशरणानन्द १)

क्षार-निर्माण-विज्ञान—क्षार-सम्बन्धी सभी विषयोंका खुलासा वर्णन—ले० स्वामी हरिशरणानन्द ।)

प्रसूति-शास्त्र —विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस० २)

भारतीय वनस्पतियों पर विलायती डाक्टरोंका अनुभव—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये २)

कृत्रिम काष्ठ—एक रोचक लेख—ले० श्री गंगाशंकर पचौली =)

वर्षा और वनस्पति—भारतका भूगोल और आबहवा—भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ—शीतलता प्राप्त करनेके साधन—वर्षा और वनस्पति—जल संचय-वनस्पतिसे अन्य लाभ—ये इस पुस्तकके अध्याय हैं—ले० श्री शङ्करराव जोशी ।)

वनस्पति-शास्त्र—पेड़ोंके भिन्न-भिन्न अंगोंका वर्णन, उनकी विभिन्न जातियाँ, उनके रूप, रंग, भेद इत्यादिका सरल भाषामें वर्णन, सर्व-साधारणके पढ़ने योग्य पुस्तक—ले० श्री केशव अनन्त पटवर्धन, एम० एस-सी०, ।।=)

तरकारीकी खेती—६३ तरकारियों आदिकी खेती करनेका विशद वर्णन ।।=)

उद्भिजका आहार—एक रोचक लेख—ले० श्री एम० के० चटर्जी ।)

फ़ोटोग्राफ़ी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० ७)

सुवर्णकारी—सुनारोंके लिये अत्यंत उपयोगी पुस्तक, इसमें सुनारी संबंधी अनेक नुसखे भी दिये गये हैं—ले० श्री गंगाशंकर पचौली ।)

यांत्रिक चित्रकारी—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिये—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०,
अजिल्द सस्ता संस्करण २।।)
राज संस्करण सजिल्द ३।।)

वैक्युम-ब्रेक—विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई० २)

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन—भारतके प्रसिद्ध विज्ञानाचार्यका जीवन चरित्र—ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, एम० एस-सी० =)

डा० गणेशप्रसादका स्मारक-विशेषांक—८० पृष्ठ—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० और प्रो० रामदास गौड़ ४)

वैज्ञानिक जीवनी—श्री पञ्चानन नियोगी, एम० ए०, एफ० सी० एस०, की 'वैज्ञानिक जीवन' नामक बङ्गला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद—अनु० रीवा-निवासी श्री रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय १)

गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० श्री महावीरप्रसाद, बी० एस-सी०, विशारद ।=)

केदार—बद्री यात्रा—बद्रीनाथ केदारनाथकी यात्रा करनेवालोंको इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिये—ले० श्री शिवदास मुकर्जी, बी० ए० ।)

उद्योग-व्यवसायांक—विज्ञानका विशेषांक-इसमें पैसा बचाने तथा कमाईके सहज और विविध साधन दिये गये हैं। १३० पृष्ठ, १।।)
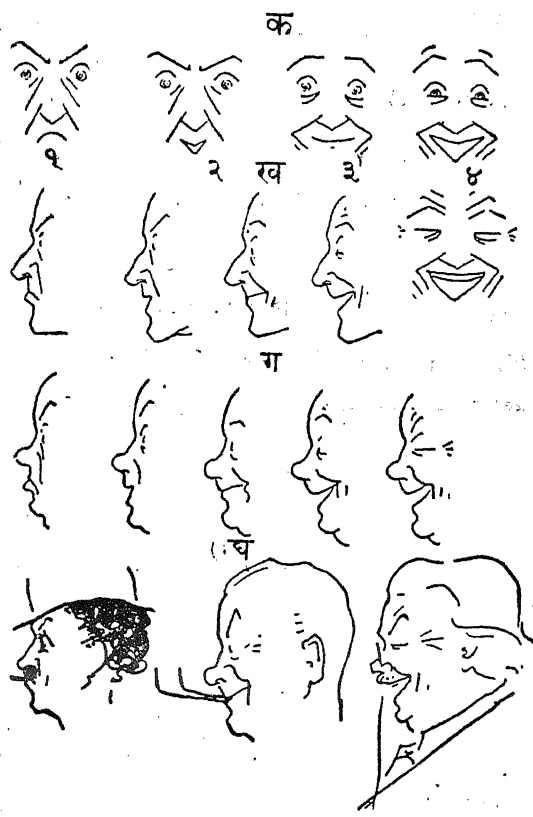
छप गया !! छप गया !! छप गया !!

आसव-विज्ञान (दूसरा संस्करण)

स्वामी हरिशरणानन्द जी कृत

यह किसी से छिपा नहीं है कि यह उनकी सर्वप्रथम मौलिक कृति है और इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर आसवारिष्ट-सम्बन्धी विषय को लेकर काफ़ी विवाद होता रहा। विरोधी पक्ष ने इस पर लेख ही नहीं लिखे प्रत्युत पुस्तकें तक प्रकाशित कीं। उस समय तक स्वामी जी चुप रहे। जब आसव-विज्ञान के दूसरे संस्करण का अवसर आया तो स्वामी जी ने उनकी योग्यता, वैज्ञानिकता, तथा क्रियात्मक अनुभव का परिचय देना उचित समझा।

दूसरे संस्करण की विशेषतायें

इस संस्करण में स्वामी जी ने उन समस्त आक्षेपों का मुँहतोड़ उत्तर दिया है जो सम्पादकों, अध्यापकों, आयुर्वेदाचार्यों और आयुर्वेदालंकारों ने समय-समय पर किये थे। एक तो पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति में काफ़ी बढ़ गई है।

दूसरे, इस संस्करण में समस्त आसवारिष्टों का स्वामी जी ने अकारादि-क्रम से संग्रह कर दिया है। इस एक पुस्तक के पास होने पर आसवारिष्ट के लिए किसी अन्य ग्रन्थ को उठाकर देखने की आवश्यकता नहीं रहती।

तीसरे, स्वामी जी ने समस्त मानों का संशोधन करके आसवों के निर्माण में प्रचलित मान को रक्खा है जिससे तुला-प्रस्तृति का झगड़ा जाता रहा।

चौथे, इसमें आपने अपने निजी अनुभव से आसवारिष्टों के गुण तथा लक्षण और रोगानुसार आसवारिष्टों के गुण-धर्म बतलाये हैं तथा किस-किस रोग पर कौन-सा आसव देने पर कैसे उपयोगी सिद्ध हुआ है इसकी विशद व्याख्या की है।

"आसव विज्ञान पढ़ा। यथा नाम तथा गुण की कहावत चरितार्थ हुई। इस विषय का प्राच्य प्रतीच्य सब विज्ञान आपने एकत्र कर वैद्यक समाज की बड़ी सेवा की है। आपकी संजीवनी लेखनी से चमत्कृत भाषा में अभी अनेक ग्रन्थरत्न प्रकाशित होंगे ऐसी आशा है।

आशा है, विज्ञानप्रेमी इसका पूर्ण उपयोग कर नष्ट होते हुए आसवारिष्टों की प्रक्रिया का सुधार करेंगे।"—(ह०) **कविराज प्रतापसिंह,** अध्यक्ष, आयुर्वेद विभाग, हिन्दू-युनिवर्सिटी, बनारस।

पुस्तक बढ़कर २५० पृष्ठ की हो गई है। फिर भी मूल्य सजिल्द का वही ५) रक्खा है।

प्रकाशक—आयुर्वेद-विज्ञान ग्रन्थमाला ऑफ़िस, अमृतसर

विक्रेता—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर और

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

Only Cover Printed at The Indian Press, Ltd., Allahabad

विज्ञान

(जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है)

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

भाग ४६

अक्टूबर-मार्च सन् १९३७-३८

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य ३)] [इस जिल्दका १॥)

विषयानुक्रमणिका

आरोग्य-शास्त्र और शरीर-विज्ञान

औद्योगिक

चित्र-कला

जीवन-चरित्र

वनस्पति-शास्त्र

वैद्यक-शास्त्र

मिश्रित